ताओ उपनिषद, भाग एक

प्रवचन-क्रम
1. सनातन व अविकारी ताओ..2
2. रहस्यमय परम स्रोत--ताओ...22
3. ताओ की निष्काम गहराइयों में..44
4. अज्ञान और ज्ञान के पार--वह रहस्य भरा ताओ.....................................63
5. सापेक्ष विरोधों से मुक्त--सुंदर और शुभ.......................................83
6. विपरीत स्वरों का संगीत..102
7. निष्क्रिय कर्म व निःशब्द संवाद--ज्ञानी का................................127
8. स्वामित्व और श्रेय की आकांक्षा से मुक्त कर्म..........................147
9. महत्वाकांक्षा का जहर व जीवन की व्यवस्था...................................167 10..भरे पेट और खाली मन का राज--ताओ
.... 194
11.......................कोरे ज्ञान से इच्छा-मुक्ति व अक्रिय व्यवस्था की ओर
.... 208
12...वह परम शून्य, परम उदगम, परम आधार--ताओ
.... 227
13..अहंकार-विसर्जन और रहस्य में प्रवेश
.... 244
14...................................प्रतिबिंब उसका, जो कि परमात्मा के भी पहले था
.... 265
15...समझ, शून्यता, समर्पण व पुरुषार्थ
.... 283
16.......................................निष्पक्ष हैं तीनों--स्वर्ग, पृथ्वी और संत
.... 302
17..विरोधों में एकता और शून्य में प्रतिष्ठा
.... 318
18..घाटी-सदृश, स्त्रैण व रहस्यमयी परम सत्ता
.... 334
19................स्त्रैण-चित्त के अन्य आयामः श्रद्धा, स्वीकार और समर्पण
.... 351
20...धन्य हैं वे जो अंतिम होने को राजी हैं
.... 368
21..जल का स्वभाव ताओ के निकट है
.... 387
22.......................लाओत्से सर्वाधिक सार्थक--वर्तमान विश्व-स्थिति में
.... 405

ताओ उपनिषद, भाग एक
पहला प्रवचन

सनातन व अविकारी ताओ

Chapter 1 : Sutra 1

The Absolute Tao

The Tao that can be trodden is not the enduring
and unchanging Tao. The name that can be
named is not the enduring and unchanging name.

अध्याय 1 : सूत्र 1

परम ताओ
जिस पथ पर विचरण किया जा सके, वह सनातन और अविकारी पथ नहीं है।
जिसके नाम का सुमिरण हो, वह कालजयी एवं सदा एकरस रहने वाला नाम नहीं है।

जिन्होंने जाना है--शब्दों से नहीं, शास्त्रों से नहीं, वरन जीवन से ही, जीकर--लाओत्से उन थोड़े से लोगों में से एक है। और जिन्होंने केवल जाना ही नहीं है, वरन जनाने की भी अथक चेष्टा की है--लाओत्से उन और भी बहुत थोड़े से लोगों में से एक है।
लेकिन जिन्होंने भी जाना है और जिन्होंने भी दूसरों को जनाने की कोशिश की है, उनका प्राथमिक अनुभव यही है कि जो कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं है; जो वाणी का आकार ले सकता है, आकार लेते ही अपनी निराकार सत्ता को अनिवार्यतया खो देता है। जैसे कोई आकाश को चित्रित करे, तो आकाश कभी भी चित्रित नहीं होगा; जो भी चित्र में बनेगा, निश्चित ही वह आकाश नहीं है। आकाश तो वह है जो सबको घेरे हुए है; चित्र तो किसी को भी नहीं घेर पाएगा। चित्र तो स्वयं ही आकाश से घिरा हुआ है।
तो चित्र में बना हुआ जैसा आकाश होगा, ऐसे ही शब्द में बना हुआ सत्य होगा। न तो चित्र में बने आकाश में पक्षी उड़ सकेगा, न चित्र में बने आकाश में सूरज निकलेगा, न रात तारे दिखाई पड़ेंगे। चित्र का आकाश तो होगा मृत; कहने को ही आकाश होगा, नाम ही भर आकाश होगा। आकाश के होने की कोई संभावना चित्र में नहीं है।
जो भी सत्य को कहने चलेगा, उसे पहले ही कदम पर जो बड़ी से बड़ी कठिनाई खड़ी हो जाती है, वह यह कि शब्द में डालते ही सत्य असत्य हो जाता है। ऐसा हो जाता है, जैसा वह नहीं है। और जो कहना चाहा था, वह अनकहा रह जाता है। और जो नहीं कहना चाहा था, वह मुखर हो जाता है।
लाओत्से अपनी पहली पंक्ति में इसी बात से शुरू करता है।
ताओ बहुत अनूठा शब्द है। उसके अर्थ को थोड़ा ख्याल में ले लें तो आगे बढ़ने में आसानी होगी। ताओ के बहुत अर्थ हैं। जो भी चीज जितनी गहरी होती है उतनी बहुअर्थी हो जाती है। और जब कोई चीज बहुआयामी, मल्टी डायमेंशनल होती है, तब स्वभावतः जटिलता और बढ़ जाती है।
ताओ का एक तो अर्थ हैः पथ, मार्ग, दि वे। लेकिन सभी पथ बंधे हुए होते हैं। ताओ ऐसा पथ है जैसे पक्षी आकाश में उड़ता है; उड़ता है तब पथ तो निर्मित होता है, लेकिन बंधा हुआ निर्मित नहीं होता है। सभी पथों पर चरणचिह्न बन जाते हैं और पीछे से आने वालों के लिए सुविधा हो जाती है। ताओ ऐसा पथ है जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, उनके पदों के कोई चिह्न नहीं बनते, और पीछे से आने वाले को कोई भी सुविधा नहीं होती।
तो अगर यह ख्याल में रहे कि ऐसा पथ जो बंधा हुआ नहीं है, ऐसा पथ जिस पर चरणचिह्न नहीं बनते, ऐसा पथ जिसे कोई दूसरा आपके लिए निर्मित नहीं कर

सकता--आप ही चलते हैं और पथ निर्मित होता है--तो हम ताओ का अर्थ पथ भी कर सकते हैं, दि वे भी कर सकते हैं। लेकिन ऐसा पथ तो कहीं दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए ताओ को पथ कहना उचित होगा?
लेकिन यह एक आयाम ताओ का है। तब पथ का एक दूसरा अर्थ लेंः पथ है वह, जिससे पहुंचा जा सके; पथ है वह, जो मंजिल से जोड़ दे। लेकिन ताओ ऐसा पथ भी नहीं है। जब हम एक रास्ते पर चलते हैं और मंजिल पर पहुंच जाते हैं, तो रास्ता और मंजिल दोनों जुड़े हुए होते हैं। असल में, मंजिल रास्ते का आखिरी छोर होता है, और रास्ता मंजिल की शुरुआत होती है। रास्ता और मंजिल दो चीजें नहीं हैं, जुड़े हुए संयुक्त हैं। रास्ते के बिना मंजिल न हो सकेगी; मंजिल के बिना रास्ता न होगा। लेकिन ताओ एक ऐसा पथ है, जो मंजिल से जुड़ा हुआ नहीं है। जब कोई रास्ता मंजिल से जुड़ा होता है, तो सभी को उतना ही रास्ता चलना पड़ता है, तभी मंजिल आती है।
ताओ ऐसा पथ है कि जो जहां खड़ा है, उसी स्थान पर, उसी जगह पर खड़े हुए मंजिल को उपलब्ध हो सकता है। इसलिए ताओ को ऐसा पथ भी नहीं कहा जा सकता। जहां खड़े हैं हम, जिस जगह, जिस स्थान पर, वहीं से मंजिल मिल सके; और ऐसा भी हो सकता है कि हम जन्मों-जन्मों चलें, और मंजिल न मिल सके; तो ताओ जरूर किसी और तरह का पथ है। इसलिए एक तो पथ का अर्थ है कहीं गहरे में, लेकिन बहुत सी शर्तों के साथ।
दूसरा ताओ का अर्थ हैः धर्म। लेकिन धर्म का अर्थ मजहब नहीं है, रिलीजन नहीं है। धर्म का वही अर्थ है जो पुरातनतम ऋषियों ने लिया है। धर्म का अर्थ होता हैः वह नियम, जो सभी को धारण किए हुए है। जीवन जहां भी है, उसे धारण करने वाला जो आत्यंतिक नियम, दि अल्टिमेट लॉ, वह जो आखिरी कानून है वह। तो ताओ धर्म है--मजहब के अर्थों में नहीं, इसलाम और हिंदू और जैन और बौद्ध और सिक्ख के अर्थों में नहीं--जीवन का परम नियम। धर्म है, जीवन के शाश्वत नियम के अर्थ में।
लेकिन सभी नियम सीमित होते हैं। ताओ ऐसा नियम है जिसकी कोई सीमा नहीं है।
असल में सीमा तो होती है मृत्यु की; जीवन की कोई सीमा नहीं होती। मरी हुई वस्तुएं ही सीमित होती हैं; जीवित वस्तु सीमित नहीं होती, असीम होती है। जीवन का अर्थ ही हैः फैलाव की निरंतर क्षमता, दि कैपेसिटी टु एक्सपैंड। एक बीज जीवित है, अगर वह अंकुर हो सकता है। एक अंकुर जीवित है, अगर वह वृक्ष हो सकता है। एक वृक्ष जीवित है, अगर उसमें और अंकुर, और बीज लग सकते हैं। जहां फैलाव की क्षमता रुक जाती है वहीं जीवन रुक जाता है। बच्चा इसीलिए ज्यादा जीवित है बूढ़े से; अभी फैलाव की क्षमता है बहुत।
तो ताओ कोई सीमित अर्थों में नियम नहीं है। आदमी के बनाए हुए कानून जैसा कानून नहीं है, जिसको कि डिफाइन किया जा सके, जिसकी परिभाषा तय की जा सके, जिसकी परिसीमा तय की जा सके। ताओ ऐसा नियम है जो अनंत विस्तार है, और अनंत-असीम को छूने में समर्थ है।
इसलिए सिर्फ धर्म कह देने से काम न चलेगा।
एक और शब्द है--ऋषियों ने उपयोग किया--वह शायद और भी निकट है ताओ के। वह शब्द है ऋत--जिससे ऋतु बना। वेद ऋत की चर्चा करते हैं, वह ताओ की चर्चा है। ऋत का अर्थ होता है... ऋतुओं से समझें तो आसानी हो जाएगी।
गरमी आती है, फिर वर्षा आ जाती है, फिर शीत आ जाती है, फिर गरमी आ जाती है। एक वर्तुल है। वर्तुल घूमता चला जाता है। बचपन होता है, जवानी आती है, बुढ़ापा आ जाता है, मौत आ जाती है। एक वर्तुल है, वह घूमता चला जाता है। सुबह होती है, सांझ होती है, रात होती है, फिर सुबह हो जाती है। सूरज निकलता है, डूबता है, फिर उगता है। एक वर्तुल है। जीवन की एक गति है वर्तुलाकार। उस गति को चलाने वाला जो नियामक तत्व है, उसका नाम है ऋत।
ध्यान रहे, ऋत में किसी ईश्वर की धारणा नहीं है। ऋत का अर्थ है नियामक तत्व; नियामक व्यक्ति नहीं। नॉट परसन, बट प्रिंसिपल। कोई व्यक्ति नहीं जो नियामक हो, कोई तत्व जो नियमन किए चला जाता है। ऐसा कहना ठीक नहीं कि नियमन किए चला जाता है, क्योंकि इससे व्यक्ति का भाव पैदा होता है। नहीं, जिससे नियमन होता है, जिससे नियम निकलते हैं। ऐसा नहीं कि वह नियम देता है और व्यवस्था जुटाता है। नहीं, बस उससे नियम पैदा होते रहते हैं। जैसे बीज से

अंकुर निकलता रहता है, ऐसा ऋत से ऋतुएं निकलती रहती हैं। ताओ का गहनतम अर्थ वह भी है।
लेकिन फिर भी ये कोई भी शब्द ताओ को ठीक से प्रकट नहीं करते हैं। क्योंकि जो-जो इनको अर्थ दिया जा सकता है, ताओ उससे फिर भी बड़ा है। और कुछ न कुछ पीछे छूट जाता है। शब्दों की जो बड़ी से बड़ी कठिनाई है, वह यह है कि सभी शब्द द्वैत से निर्मित हैं। अगर हम कहें रात, तो दिन पीछे छूट जाता है। अगर हम कहें प्रकाश, तो अंधेरा पीछे छूट जाता है। अगर हम कहें जीवन, तो मौत पीछे छूट जाती है। हम कुछ भी कहें, कुछ सदा पीछे छूट जाता है। और जीवन ऐसा है--संयुक्त, इकट्ठा। वहां रात और दिन अलग नहीं हैं। और वहां जन्म और मृत्यु अलग नहीं हैं। और वहां बच्चा और बूढ़ा दो नहीं हैं। और वहां सर्दी और गरमी दो नहीं हैं। और वहां सुबह सूरज का उगना सांझ का डूबना भी है। जीवन कुछ ऐसा है--संयुक्त, इकट्ठा। लेकिन जब भी हम शब्द में बोलते हैं, तो कुछ छूट जाता है। कहें दिन, तो रात छूट जाती है। और जीवन में रात भी है।
तो अगर हम कहें कोई भी एक शब्द--यह है ताओ, यह है मार्ग, यह है धर्म, यह
है ऋत--बस हमारे कहते ही कुछ पीछे छूट जाता है। समझ लें, हम कहते हैं, नियम। नियम कहते ही अराजकता पीछे छूट जाती है। लेकिन जीवन में वह भी है। नियम कहते ही वह जो अनार्किक, वह जो अराजक तत्व है, वह पीछे छूट जाता है। नीत्शे ने कहीं लिखा है कि जिस दिन अराजकता न होगी उस दिन नए तारे कैसे निर्मित होंगे? जिस दिन अराजकता न होगी उस दिन नया सृजन कैसे होगा? क्योंकि सृष्टि तो जन्मती है अराजकता से, केऑस से। आउट ऑफ केऑस इ.ज क्रिएशन। अगर केऑस न होगा, अराजकता न होगी, तो सृष्टि का जन्म न होगा। और अगर सृष्टि अकेली हो, तो फिर समाप्त न हो सकेगी, क्योंकि उसे समाप्त होने के लिए फिर अराजकता में डूब जाना पड़े।
जब हम कहते हैं नियम, प्रिंसिपल, तब अराजकता पीछे छूट जाती है। वह भी जीवन में है। उसे छोड़ने का उपाय जीवन के पास नहीं है, शब्दों के पास है। इसलिए हम कहते हैं ऋत, तो भी कुछ पीछे छूट जाता है; वह अराजक तत्व पीछे छूट जाता है। जो घटता है और फिर भी नियम के भीतर नहीं घटता।
इस जीवन में सभी कुछ नियम से नहीं घटता है; नहीं तो जीवन दो कौड़ी का हो जाएगा। इस जीवन में कुछ है जो नियम छोड़ कर भी घटता है। सच तो यह है, इस जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह नियम छोड़ कर घटता है। जो भी गैर-महत्वपूर्ण है, वह नियम से घटता है। इस जीवन में जो भी गहरी अनुभूतियां हैं, वे किसी नियम से नहीं आतीं--अकारण, अनायास, अनायाचित द्वार पर दस्तक दे देती हैं। जिस दिन किसी के जीवन में प्रभु का आना होता है, उस दिन वह यह नहीं कह पाता कि मैंने यह-यह किया था, इसलिए तुम्हें पाया। उस दिन वह यही कह पाता है कि कैसी तुम्हारी दया! कैसी तुम्हारी अनुकंपा! मैंने कुछ भी न किया था; या जो भी किया था, अब मैं जानता हूं, उसे तुमसे पाने से कोई भी संबंध न था; यह तुम्हारा आगमन कैसा! यह तुम आ कैसे गए! न मैंने कभी तुम्हें मांगा था, न मैंने कभी तुम्हें चाहा था, न मैंने तुम्हें कभी खोजा था। या मांगा भी था, तो कुछ गलत मांगा था; और खोजा भी था, तो वहां जहां तुम नहीं थे; और चाहा भी था, तो भी माना न था कि तुम मिल जाओगे। और यह तुम्हारा आगमन! और जब प्रभु का आगमन होता है किसी के जीवन में, तो उसका किया हुआ कहीं भी तो कुछ संबंध नहीं बना पाता। अनायास!
इस जीवन में सभी कुछ नियम होता, तो हम कह सकते थे, ताओ का अर्थ है ऋत। लेकिन इस जीवन में वह जो नियम के बाहर है, वह रोज घटता है; हर घड़ी-पहर, अनायास भी, अकारण भी, वह मौजूद हो जाता है। न, उसे भी हम जीवन और अस्तित्व के बाहर न छोड़ पाएंगे। इसलिए अब हम ताओ को क्या कहें?
तो लाओत्से अपना पहला सूत्र कहता है। उस सूत्र में वह कहता है, "जिस पथ
पर विचरण किया जा सके, वह सनातन, अविकारी पथ नहीं है।"
जिस पथ पर विचरण किया जा सके! अब पथ का अर्थ ही होता है कि जिस पर विचरण किया जा सके। लेकिन लाओत्से कहता है, जिस पथ पर विचरण किया जा सके, वह नहीं; जिस पर आप चल सकें, वह नहीं। फिर अगर जिस पर हम चल ही न सकें, उसे पथ कहने का क्या प्रयोजन? हम चल सकें तो ही पथ है।
लाओत्से कहता है, "जिस पथ पर विचरण किया जा सके, वह सनातन, अविकारी पथ नहीं है।"

बहुत सी बातें इस छोटे से सूत्र में हैं। एक, जिस पथ पर चला जा सके, जिस
पर चलने की घटना घट सके, उस पर पहुंचने की घटना न घटेगी। क्योंकि जहां हमें पहुंचना है, वह कहीं दूर नहीं, यहीं और अभी है। अगर मुझे आपके पास आना हो, तो मैं किसी रास्ते पर चल सकता हूं। लेकिन मुझे अपने ही पास आना हो, तो मैं किस रास्ते पर चलूंगा? और जितना चलूंगा रास्तों पर, उतना ही भटक जाऊंगा; अपने से दूर, और दूर होता चला जाऊंगा। जो आदमी स्वयं को खोजने किसी रास्ते पर जाएगा, वह अपने को कभी भी नहीं पा सकेगा। कैसे पा सकेगा? अपने ही हाथ से, खोज के ही कारण, वह अपने को खो देगा।
जिसे स्वयं को खोजना है उसे तो सब रास्ते छोड़ देने पड़ेंगे, क्योंकि स्वयं तक कोई भी रास्ता नहीं जाता है। असल में, स्वयं तक पहुंचने के लिए रास्ते की जरूरत ही नहीं है। रास्ते की जरूरत तो दूसरे तक पहुंचने के लिए है। स्वयं तक तो वह पहुंच जाता है, जो सब रास्तों से उतर कर खड़ा हो जाता है। जो चलता ही नहीं, वह पहुंच जाता है।
तो लाओत्से कहता है, जिस पथ पर चला जा सके, वह सनातन और अविकारी पथ नहीं है।
दो बातें कहता है। वह सनातन नहीं है। असल में, जिस रास्ते पर भी हम चल सकें, वह हमारा ही बनाया हुआ होगा। हमारा ही बनाया हुआ होगा, इसलिए सनातन नहीं होगा। आदमी का ही निर्मित होगा, इसलिए परमात्मा से निर्मित नहीं होगा। और जो पथ हमने बनाया है, वह सत्य तक कैसे ले जाएगा? क्योंकि अगर हमें सत्य के भवन का पता होता, तो हम ऐसा रास्ता भी बना लेते जो सत्य तक ले जाए। ध्यान रहे, रास्ता तो तभी बनाया जा सकता है, जब मंजिल पता हो। मुझे आपका घर पता हो, तो मैं वहां तक रास्ता बना लूं। लेकिन यह बड़ी कठिन बात है। अगर मुझे आपका घर पता है, तो मैं बिना रास्ते के ही आपके घर पहुंच गया होऊंगा। नहीं तो फिर मुझे आपके घर का पता कैसे चला है?
इजिप्त के पुराने सूफियों के सूत्रों का एक हिस्सा कहता है कि जब तुम्हें परमात्मा मिलेगा और तुम उसे पहचानोगे, तब तुम जरूर कहोगे कि अरे, तुम्हें तो मैं पहले से ही जानता था! और अगर तुम ऐसा न कह सकोगे, तो तुम परमात्मा को पहचान कैसे सकोगे? रिकग्नीशन इ.ज इम्पासिबल। रिकग्नीशन का तो मतलब ही यह होता है। अगर परमात्मा मेरे सामने आए और मैं खड़े होकर उससे पूछूं कि आप कौन हैं? तब तो मैं पहचान न सकूंगा। और अगर मैं देखते ही पहचान गया कि प्रभु आ गए, तो उसका अर्थ है कि मैंने कभी किसी क्षण में, किसी कोने से, किसी द्वार से जाना था; आज पहचाना। यह रिकग्नीशन है। हम जाने को ही पहचान सकते हैं।
अगर आपको पता ही है कि सत्य कहां है, तो आपके लिए रास्ते की जरूरत कहां रही? आप सत्य तक कहीं पहुंच ही गए हैं, जान ही लिया है। तो जिसे पता है वह रास्ता नहीं बनाता। और जिसे पता नहीं है वह रास्ता बनाता है। और जो नहीं जानते, उनके बनाए हुए रास्ते कैसे पहुंचा पाएंगे? वे सनातन पथ नहीं हो सकते।
सनातन पथ कौन सा है?
जो आदमी ने कभी नहीं बनाया। जब आदमी नहीं था, तब भी था। और जब आदमी नहीं होगा, तब भी होगा।
सनातन पथ कौन सा है?
जिसे वेद के ऋषि नहीं बनाते, जिसे बुद्ध नहीं बनाते, जिसे महावीर नहीं बनाते, मोहम्मद, कृष्ण और क्राइस्ट जिसे नहीं बनाते। ज्यादा से ज्यादा उसके संबंध में कुछ खबर देते हैं, बनाते नहीं। इसलिए ऋषि नहीं कहते कि हम जो कह रहे हैं, वह हमारा है। कहते हैं, ऐसा पहले भी लोगों ने कहा है, ऐसा सदा ही लोगों ने जाना है। यह जो हम खबर ला रहे हैं, यह उस रास्ते की खबर है जो सदा से है। जब हम नहीं थे, तब भी था। और जब कोई नहीं था, तब भी था। जब यह जमीन बनती थी और इस पर कोई जीवन न था, तब भी था। और जब यह जमीन मिटती होगी और जीवन विसर्जित होता होगा, तब भी होगा। आकाश की भांति वह सदा मौजूद था।
यह दूसरी बात है कि हमारे पंख इतने मजबूत न थे कि हम उसमें कल तक उड़ सकते; आज उड़ पाते हैं। यह दूसरी बात है कि आज भी हम हिम्मत नहीं जुटा पाते और अपने घोंसले के किनारे पर बैठे रहते हैं, परों को तौलते रहते हैं, और सोचते रहते हैं कि उड़ें या न उड़ें। लेकिन वह आकाश आपके उड़ने से पैदा नहीं

होगा। वह आपके पंख भी जब पैदा न हुए थे, जब आप अंडे के भीतर बंद थे, तब भी था। और आपके पास पंख भी हों, और आप बैठे रहें और न उड़ें, तो ऐसा नहीं कि आकाश नहीं है। आकाश है। आकाश आपके बिना है।
तो सनातन पथ तो वह है जो चलने वाले के बिना है। अगर चलने वाले पर कोई
पथ निर्भर है, तो वह सनातन नहीं है। और जिस पथ पर भी चला जा सकता है वह विकारग्रस्त हो जाता है, क्योंकि चलने वाला अपनी बीमारियों को लेकर चलता है। इसे भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है।
जो बीमारियों के बाहर हो गया वह चलता नहीं। चलने की कोई जरूरत न रही।
वह पहुंच गया। जो बीमारियों से भरा है वह चलता है। चलता ही इसलिए है कि बीमारियां हैं, उनसे छूटना चाहता है। बीमारियों से छूटने के लिए ही चलता है। जिस रास्ते पर भी चलता है, वहीं, उसी रास्ते को संक्रामक करता है। जहां भी खड़ा होता है, वहीं अपवित्र हो जाता है सब। जहां भी खोजता है, वहीं और धुआं पैदा कर देता है।
जैसे पानी में कीचड़ उठ गई हो और कोई पानी में घुस जाए और कीचड़ को बिठालने की कोशिश में लग जाए, तो उसकी सारी कोशिश, जो कीचड़ उठ गई है, उसे तो बैठने ही न देगी, और जो बैठी थी, उसे भी उठा लेती है। वह जितना डेस्पेरेटली, जितना पागल होकर कोशिश करता है कि कीचड़ को बिठा दूं, बिठा दूं, उतनी ही कीचड़ और उठ जाती है, पानी और गंदा हो जाता है। लाओत्से वहां से निकलता होगा, तो वह कहेगा कि मित्र, तुम बाहर निकल आओ। क्योंकि जिसे तुम शुद्ध करोगे वह अशुद्ध हो जाएगा, तुम ही अशुद्ध हो इसलिए। तुम कृपा करके बाहर निकल आओ। तुम पानी को अकेला छोड़ दो। तुम तट पर बैठ जाओ। पानी शुद्ध हो जाएगा। तुम प्रयास मत करो। तुम्हारे सब प्रयास खतरनाक हैं।
वह पथ अविकारी नहीं हो सकता जिस पथ पर बीमार लोग चलें।
और ध्यान रहे, सिर्फ बीमार ही चलते हैं। जो पहुंच गए, जो शुद्ध हुए, जिन्होंने जाना, वे रुक जाते हैं। चलने का कोई सवाल नहीं रह जाता। असल में, हम चलते ही इसलिए हैं कि कोई वासना हमें चलाती है। वासना अपवित्रता है। ईश्वर को पाने की वासना भी अपवित्रता है। मोक्ष पहुंचने की वासना भी अपनी दुर्गंध लिए रहती है। असल में, जहां वासना है, वहीं चित्त कुरूप हो जाएगा। जहां वासना है, वहीं चित्त तनाव से भर जाएगा। जहां वासना है पहुंचने की, जहां आकांक्षा है, वहीं दौड़, वहीं पागलपन पैदा होगा। और सब बीमारियां आ जाएंगी, सब बीमारियां इकट्ठी हो जाएंगी।
लाओत्से कहता है, जिस पथ पर विचरण किया जा सके, वह पथ सनातन भी नहीं, अविकारी भी नहीं।
क्या ऐसा भी कोई पथ है जिस पर विचरण न किया जा सके? क्या ऐसा भी कोई पथ
है जिस पर चला नहीं जाता, वरन खड़ा हो जाया जाता है? क्या ऐसा भी कोई पथ है जो खड़े होने के लिए है?
कंट्राडिक्टरी मालूम पड़ेगा, उलटा मालूम पड़ेगा। रास्ते चलाने के लिए होते हैं, खड़े होने के लिए नहीं होते। लेकिन ताओ उसी पथ का नाम है जो चला कर नहीं पहुंचाता, रुका कर पहुंचाता है। लेकिन चूंकि रुक कर लोग पहुंच गए हैं, इसलिए उसे पथ कहते हैं। चूंकि लोग रुक कर पहुंच गए हैं, इसलिए उसे पथ कहते हैं। और चूंकि दौड़-दौड़ कर भी लोग संसार के किसी पथ से कहीं नहीं पहुंचे हैं, इसलिए उसे पथ सिर्फ नाम मात्र को ही कहा जा सकता है। वह पथ नहीं है।
उस वाक्य का दूसरा हिस्सा है, "जिसके नाम का सुमिरण हो, वह कालजयी एवं सदा एकरस रहने वाला नाम नहीं है।"
दि नेम व्हिच कैन बी नेम्ड, जिसे नाम दिया जा सके, जिसका सुमिरण हो सके, जिसे शब्द दिया जा सके, वह असली नाम नहीं है। वह कालजयी, समय को जीत ले, समय के अतीत हो, समय जिसे नष्ट न कर दे, वैसा वह नाम नहीं है। इसे थोड़ा समझें।
सभी चीजों को हम नाम दे देते हैं। सुविधा होती है नाम देने से। व्यवहार-सुलभ हो जाता है, संबंधित होना आसान हो जाता है, विश्लेषण सुगम बन जाता है। नाम न दें तो बड़ी जटिलता, उलझन हो जाती है। नाम दिए बिना इस जगत में कोई गति नहीं। पर ध्यान रहे, जैसे ही हम नाम दे देते हैं, वैसे ही उस वस्तु को, जिसकी असीमता थी, हम एक सीमित दरवाजा बना देते हैं।

इसे थोड़ा समझ लें। वस्तुओं को भी जब हम नाम देते हैं, तो हम सीमा दे देते हैं।
एक व्यक्ति आपके पास बैठा है। अभी आपको कुछ पता नहीं, वह कौन है। पड़ोस में बैठा है आपके, शरीर उसका आपको स्पर्श करता है। अभी आपको कुछ भी पता नहीं है, वह कौन है। अभी उसकी सत्ता विराट है। फिर आप पूछते हैं और वह कहता है कि मैं मुसलमान हूं, कि हिंदू हूं। सत्ता सिकुड़ गई। जो-जो हिंदू नहीं है--वह छंट गया, गिर गया। उतना सत्ता का हिस्सा टूट कर अलग हो गया। एक सीमित दायरा बन गया। वह मुसलमान है। आप पूछते हैं, शिया हैं या सुन्नी हैं? वह कहता है, सुन्नी हूं। और भी हिस्सा, मुसलमान का भी, गिर गया। आप पूछते चले जाते हैं। और वह अपनी आखिरी जगह पर पहुंच जाएगा बताते-बताते। तब वह बिंदु मात्र रह जाएगा। वह यूक्लिड के बिंदु की भांति हो जाएगा। इतना सिकुड़ जाएगा, इतना छोटा हो जाएगा, आखिर में तो वह एक छोटा सा ईगो, एक छोटा सा अहंकार मात्र रह जाएगा--सब तरफ से घिरा हुआ।
लेकिन तब सुविधा हो जाएगी हमें। तब आप अपने शरीर को सिकोड़ कर बैठ सकते हैं, या निकट ले सकते हैं उसको हृदय के। तब आप उससे बात कर सकते हैं, और तब आप अपेक्षा कर सकते हैं कि उससे क्या उत्तर मिलेगा। वह प्रेडिक्टेबल हो गया। अब आप भविष्यवाणी कर सकते हैं। इस आदमी के साथ ज्यादा देर बैठना उचित होगा, नहीं होगा, आप तय कर सकते हैं। इस आदमी के साथ अब व्यवहार सुगम और आसान है। इस आदमी की जो रहस्यपूर्ण सत्ता थी, अब वह रहस्यपूर्ण नहीं रह गई। अब वह वस्तु बन गया है। नाम हम देते ही इसीलिए हैं कि हम व्यवहार में ला सकें। चीजों के साथ व्यवहार कर सकें; चीजों का हम उपयोग कर सकें; हमारे सारे दिए हुए नाम ऐसे ही कामचलाऊ, यूटिलिटेरियन हैं। उनकी उपयोगिता है, उनका सत्य नहीं है।
क्या हम परमात्मा को, परम सत्ता को भी नाम दे सकते हैं? क्या हमारा दिया हुआ नाम अर्थपूर्ण होगा?
हम छोटी सी वस्तु को भी नाम देते हैं, तो उसकी सत्ता को भी विकृत कर देते हैं। हमने दिया नाम कि सत्ता विकृत हुई, सीमा बंधी। हम परमात्मा को नाम, पहली तो बात यह है, दे न सकेंगे। क्योंकि कहीं भी उसे हमारी आंखें देख नहीं पाती हैं, कहीं भी हमारे हाथ उसे छू नहीं पाते हैं, कहीं भी हमारे कान उसे सुन नहीं पाते हैं, कहीं उससे हमारा मिलन नहीं होता है। और फिर भी, जो जानते हैं, वे कहते हैं, हमारी आंख उसी को देखती है सब जगह; उसी को सुनते हैं हमारे कान; जो भी हम छूते हैं, उसी को छूते हैं; और जिससे भी हमारा मिलन होता है, उसी से मिलन है। पर ये वे, जो जानते हैं। जो नहीं जानते, उन्हें तो उसका कहीं दर्शन नहीं होता। उसे नाम कैसे देंगे? और जो जानते हैं, जिन्हें उसका ही दर्शन होता है सब जगह, वे भी उसे कैसे नाम देंगे? क्योंकि जो चीज कहीं एक जगह हो, उसे नाम दिया जा सकता है।
एक मित्र को हम मुसलमान कह सकते हैं, क्योंकि वह मस्जिद में मिलता है, मंदिर में नहीं मिलता। वह आदमी मंदिर में भी मिल जाए, वह आदमी गुरुद्वारे में भी मिल जाए, वह आदमी चर्च में भी मिल जाए, वह आदमी एक दिन तिलक लगाए हुए और कीर्तन करता मिल जाए और एक दिन नमाज पढ़ता मिल जाए, तो फिर मुसलमान कहना मुश्किल हो जाएगा। और तब तो बहुत ही मुश्किल हो जाएगा कि जहां भी आप जाएं, वही आदमी मिल जाए। तब तो फिर उसे मुसलमान न कह सकेंगे।
जो नहीं जानते हैं, वे नाम नहीं दे सकते, क्योंकि उन्हें पता ही नहीं
वे किसे नाम दे रहे हैं। और जो जानते हैं, वे भी नाम नहीं दे सकते, क्योंकि उन्हें पता है, सभी नाम उसी के हैं, सभी जगह वही है। वही है।
इसलिए लाओत्से कहता है, उसे नाम नहीं दिया जा सकता। ऐसा कोई नाम नहीं दिया जा सकता, जिसका सुमिरण हो सके।
और नाम तो इसीलिए होते हैं कि उनका सुमिरण हो सके। नाम इसीलिए होते हैं कि हम पुकार सकें, बुला सकें, स्मरण कर सकें। अगर ऐसा उसका कोई नाम है जिसका सुमिरण न हो सके, तो उसे नाम कहना ही व्यर्थ है। नाम है किसलिए? एक बाप अपने बेटे को नाम देता है कि बुला सके, पुकार सके; जरूरत हो, आवाज दे सके। नाम की उपयोगिता क्या है, कि पुकारा जा सके। और लाओत्से कहता है कि सुमिरण हो सके, तो वह नाम उसका नाम नहीं है। सुमिरण के लिए ही तो लोगों ने नाम रखा है। कोई उसे राम कहता है, कोई उसे कृष्ण कहता है, कोई उसे अल्लाह

कहता है। सुमिरण के ही लिए तो नाम रखा है। इसलिए कि हम, जो नहीं जानते, उसकी याद कर सकें, उसे पुकार सकें।
लेकिन हमें, जिन्हें उसका पता ही नहीं है, हम उसका नाम कैसे रख लेंगे?
और जो भी हम नाम रखेंगे वह हमारे संबंध में तो खबर देगा, उसके संबंध में कोई भी खबर नहीं देगा। जब आप कहते हैं, हमने उसका नाम राम रखा है। तो उससे खबर मिलती है कि आप हिंदू घर में पैदा हुए हैं, और कुछ भी नहीं। इससे उसका नाम पता नहीं चलता। आप कहते हैं, हम उसका नाम अल्लाह मानते हैं। इससे इतना ही पता चलता है कि आप उस घर में बड़े हुए हैं जहां उसका नाम अल्लाह माना जाता रहा है। इससे आपके बाबत पता चलता है; इससे उसके संबंध में कुछ भी पता नहीं चलता। और इसीलिए तो अल्लाह को मानने वाला राम को मानने वाले से लड़ सकता है। अगर अल्लाह वाले को पता होता कि यह किसका नाम है, और राम वाले को पता होता कि यह किसका नाम है, तो झगड़ा असंभव था। वह तो कुछ भी पता नहीं है। नाम ही हमारे हाथ में है। जिसे हमने नाम दिया है, उसका हमें कोई भी पता नहीं है।
लाओत्से बड़ी अदभुत शर्त लगाता है। वह शर्त यह लगाता है कि जिसका स्मरण किया जा सके, वह उसका नाम नहीं है।
और सभी नामों का स्मरण किया जा सकता है। ऐसा कोई नाम आपको पता है जिसका स्मरण न किया जा सके? अगर स्मरण न किया जा सके, तो आपको पता भी कैसे चलेगा?
बोधिधर्म सम्राट वू के सामने खड़ा है। और सम्राट वू ने उससे पूछा है, बोधिधर्म, उस पवित्र और परम सत्य के संबंध में कुछ कहो! बोधिधर्म ने कहा, कैसा पवित्र? कुछ भी पवित्र नहीं है! नथिंग इ.ज होली! और कैसा परम सत्य? देयर इ.ज नथिंग बट एम्पटीनेस। शून्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। स्वभावतः, सम्राट वू चौंका और उसने बोधिधर्म से कहा, फिर क्या मैं यह पूछने की इजाजत पा सकता हूं कि मेरे सामने जो खड़ा होकर बोल रहा है, वह कौन है? तो बोधिधर्म ने क्या कहा, पता है? बोधिधर्म ने कहा, आई डू नॉट नो, मैं नहीं जानता। यह जो तुम्हारे सामने खड़े होकर बोल रहा है, यह कौन है, यह मैं नहीं जानता।
वू तो समझा कि यह आदमी पागल है। वू ने कहा, इतना भी पता नहीं कि तुम कौन हो? बोधिधर्म ने कहा, जब तक पता था, तब तक कुछ भी पता नहीं था। जब से पता चला है, तब से यह भी नहीं कह सकता कि पता है। क्योंकि जिसका पता चल जाए, जिसे हम पहचान लें, जिसे हम नाम दे दें, वह भी कोई नाम है!
लाओत्से कहता है, जिसका सुमिरण किया जा सके, वह उसका नाम नहीं है। और जिसका सुमिरण किया जा सके, वह समय के पार नहीं ले जाएगा। समय के पार वही वस्तु जा सकती है जो सदा समय के पार है ही। कालातीत वही हो सकता है जो कालातीत है ही। समय के भीतर जो पैदा होता है, वह समय के भीतर नष्ट हो जाता है। अगर आप कह सकते हैं कि मैंने पांच बज कर पांच मिनट पर स्मरण किया प्रभु का, तो ध्यान रखना, यह स्मरण समय के पार न ले जा सकेगा। जो समय के भीतर पुकारा गया था, वह समय के भीतर ही गूंज कर समाप्त हो जाएगा। और परमात्मा समय के बाहर है। क्यों? क्योंकि समय के भीतर सिर्फ परिवर्तन है। और परमात्मा परिवर्तन नहीं है।
अगर ठीक से समझें, तो समय का अर्थ है परिवर्तन। कभी आपने ख्याल किया
कि आपको समय का पता क्यों चलता है? सच तो यह है कि आपको समय का कभी पता नहीं चलता, सिर्फ परिवर्तन का पता चलता है। इसे ऐसा लें। इस कमरे में हम इतने लोग बैठे हैं। अगर ऐसा हो जाए कि वर्ष भर हम यहां बैठे रहें और हममें से कोई भी जरा भी परिवर्तित न हो, तो क्या हमें पता चलेगा कि वर्ष बीत गया? कुछ भी परिवर्तित न हो, एक वर्ष के लिए यह कमरा ठहर जाए, यह जैसा है वैसा ही वर्ष भर के लिए रह जाए, तो क्या हमें पता चल सकेगा कि वर्ष भर बीत गया? हमें यह भी पता नहीं चलेगा कि क्षण भर भी बीता। क्योंकि बीतने का पता चलता है चीजों की बदलाहट से। असल में, बदलाहट का बोध ही समय है। इसलिए जितने जोर से चीजें बदलती हैं, उतने जोर से पता चलता है। आपको दिन का जितना पता चलता है, उतना रात का नहीं पता चलता।
एक आदमी साठ साल जीता है, तो बीस साल सोता है। लेकिन बीस साल का कोई एकाउंट है? बीस साल का कुछ पता है? बीस साल साठ साल में आदमी सोता है। पर

बीस साल का कोई हिसाब नहीं है। बीस साल का कोई पता नहीं चलता; वे नींद में बीत जाते हैं। वहां चीजें कुछ थिर हो जाती हैं। उतने जोर से परिवर्तन नहीं है, सड़क उतने जोर से नहीं चलती, ट्रैफिक उतनी गति में नहीं है। सब चीजें ठहरी हैं। आप अकेले रह गए हैं।
अगर एक व्यक्ति को हम बेहोश कर दें और सौ साल बाद उसे होश में लाएं, तो उसे बिल्कुल पता नहीं चलेगा कि सौ साल बीत गए। जाग कर वह चौंकेगा। और अगर वह ऐसी ही दुनिया वापस पा सके जैसा वह सोते वक्त पाई थी उसने--वही लोग उसके पास हों; वही घड़ी-कांटा वहीं हो दीवार पर लटका हुआ; बच्चा स्कूल गया था, अभी न लौटा हो; पत्नी खाना बनाती थी, उसके बर्तन की आवाज किचन से आती हो; और वह आदमी जगे--तो उसे बिल्कुल पता नहीं चलेगा कि सौ साल बीत गए।
समय का बोध परिवर्तन का बोध है। चूंकि चीजें भाग रही हैं, बदल रही हैं, इसलिए समय का बोध होता है। इसलिए जितने जोर से चीजें बदलने लगती हैं, उतनी टाइम कांशसनेस, समय का बोध बढ़ने लगता है।
पुरानी दुनिया में समय का इतना बोध नहीं था। चीजें थिर थीं। करीब-करीब वही थीं। बाप जहां चीजों को छोड़ता था, बेटा वहीं पाता था। और बेटा फिर चीजों को वहीं छोड़ता था जहां उसने अपने बाप से पाया था। चीजें थिर थीं। अब कुछ भी वैसा नहीं है। जहां कल था, आज नहीं होगा; जहां आज है, कल नहीं होगा। सब बदल जाएगा। इसलिए समय का भारी बोध। एक-एक पल समय का कीमती मालूम पड़ता है।
समय में जो भी पैदा होगा, वह परिवर्तित होगा ही। समय के भीतर सनातन की कोई घटना प्रवेश नहीं करती। शाश्वत की कोई किरण समय के भीतर नहीं आती। ऐसा ही समझें कि जैसे जो नदी में होगा वह गीला होगा ही। हां, जिसे गीला नहीं होना, उसे तट पर होना पड़ेगा। समय की धारा में जो होगा वह परिवर्तित होगा ही। समय के बाहर होना पड़ेगा, तो अपरिवर्तित नित्य का जगत प्रारंभ होता है। लाओत्से कहता है, जो नाम सुमिरण किया जा सके... ।
सुमिरण तो समय में होगा। शब्द का उच्चारण तो समय लेगा। एक पूरा शब्द
भी हम एक क्षण में नहीं बोल पाते। एक हिस्सा बोल पाते हैं, फिर दूसरा दूसरा, तीसरा तीसरा। जब मैं बोलता हूं समय, तब भी समय बह रहा है--स बोलता हूं और हिस्से में, म बोलता हूं और हिस्से में, य बोलता हूं और हिस्से में। हेराक्लतु ने कहा है, यू कैन नॉट स्टेप ट्वाइस इन दि सेम रिवर--एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते हो। क्योंकि जब दुबारा उतरने आओगे तब तक नदी तो बह गई होगी।
हेराक्लतु भी बहुत कंजूसी से कह रहा है। सच तो यह है, वन कैन नॉट स्टेप ईवन वंस इन दि सेम रिवर। क्योंकि जब मेरे पैर का तलवा पानी की ऊपर की धार को छूता है, नदी भागी जा रही है। और जब मेरा तलवा थोड़ा सा प्रवेश करता है, तब नदी भागी जा रही है। जब मैं नदी को स्पर्श करता हूं, तब नदी में पानी और था; और जब मैं नदी की तलहटी में पहुंचता हूं, तब पानी और है। एक बार भी नहीं छू सकता।
और नदी तो ठीक ही है। जब नदी को मैं छू रहा हूं, तो नदी ही बदल रही होती
तो भी ठीक था। जो पैर छू रहा है, वह भी उतनी ही तेजी से बदला जा रहा है। नहीं, नदी में दुबारा उतरना तो असंभव है; एक बार भी उतरना असंभव है। इसलिए नहीं कि नदी बदल रही है, इसलिए भी कि नदी में उतरने वाला भी बदल रहा है। जब नदी की पहली सतह पर मैंने पैर रखा था, तो मेरा मन और था। और जब नदी की आधी सतह पर मैं पहुंचा था, तो मेरा मन और हो गया। और जब तलहटी में मेरा पैर पड़ा, तब मेरा मन और था। नहीं, इतना ही नहीं कि शरीर बदल रहा है, मेरा मन भी बदला जा रहा है।
बुद्ध कहते थे अनेक बार; कोई आता तो बुद्ध कहते उससे जाते वक्त, ध्यान रखना, तुम जो आए थे वही वापस नहीं लौट रहे हो! अभी घड़ी भर पहले वह आदमी आया था। चौंक जाते थे लोग और कहते थे, क्या कहते हैं आप? बुद्ध कहते थे, निश्चित ही! तुमने सुना, मैंने कहा, इतने में भी सब बदल गया है।
झेन फकीर बोकोजू एक पुल पर से गुजर रहा है। साथी है एक साथ में। वह साथी बोकोजू से कहता है, देखते हैं आप, नदी कितने जोर से बही जा रही है! बोकोजू कहता है, नदी का बहना तो कोई भी देखता है मित्र, जरा गौर से देख, पुल भी कितने जोर से बहा जा रहा है--दि ब्रिज!

वह आदमी चौंक कर चारों तरफ देखता है, ब्रिज तो अपनी जगह खड़ा है। पुल कहीं बहते हैं? नदियां बहती हैं। वह आदमी चौंक कर बोकोजू की तरफ देखता है। बोकोजू कहता है, और यह तो अभी मैंने तुझसे पूरी बात न कही। और गौर से देख, पुल पर जो खड़े हैं, वे और भी जोर से बहे जा रहे हैं।
यहां जो भी घटित होता है समय के भीतर, वह परिवर्तन है। यहां जो भी कहा जाता है, वह मिट जाएगा। यहां जो भी लिखा जाता है, वह बुझ जाएगा। यहां सब हस्ताक्षर रेत के ऊपर हैं। रेत पर भी नहीं, पानी पर।
तो जो नाम परमात्मा का स्मरण किया जा सके, ओंठों से, वाणी से, शब्द से, समय में, स्थान में; नहीं, वह कालजयी नाम नहीं है। वह वह नाम नहीं है, जो समय के पार है। लेकिन उस नाम को स्मरण नहीं किया जा सकता। उसे कोई जान सकता है, बोल नहीं सकता। उसे कोई जी सकता है, पुकार नहीं सकता। उसमें कोई हो सकता है, लेकिन अपने ओंठों पर, अपनी जीभ पर उसे नहीं रख सकता।
साथ ही कहता है लाओत्से, न तो वह कालजयी है और न सदा एकरस रहने वाला है।
एक सा रहने वाला नहीं है। और परमात्मा भी जो बदल जाए उसे क्या परमात्मा कहना? और मार्ग भी जो बदल जाए उसे क्या मार्ग कहना? और सत्य भी जो बदल जाए उसे क्या सत्य कहना? सत्य से अपेक्षा ही यही है कि हम कितने ही भटकें और कहीं हों, जब भी हम पहुंचेंगे, वह वही होगा--एकरस, वैसा ही होगा-- एकरस। हम कैसे भी हों, हम कहीं भी भटकें, जन्मों और जन्मों की यात्रा के बाद जब हम उस द्वार पर पहुंचेंगे, तो वह वही होगा--एकरस।
एकरसता, एक सा ही होना--इसमें दो-तीन बातें ख्याल में ले लेने जैसी हैं। वही हो सकता है एक सा जो पूर्ण हो। जो अपूर्ण हो वह एक सा नहीं हो सकता। क्योंकि अपूर्णता के भीतर गहरी वासना पूर्ण होने की बनी रहती है। वही तो परिवर्तन करवाती है। नदी कैसे एक जगह रुकी रहे? उसे सागर से मिलना है। भागती है। आदमी कैसे एक जगह रुका रहे? उसे न मालूम कितनी वासनाएं पूरी करनी हैं! न मालूम कितने सागर! मन कैसे एक सा बना रहे? उसे बहुत दौड़ना है, बहुत पाना है। एकरस तो वही हो सकता है, जिसे पाने को कुछ भी नहीं, पहुंचने को कोई जगह नहीं। वही जो पहुंच गया वहां, हो गया वही जिसके आगे और कोई होना नहीं है; या जो है सदा से वही।
ध्यान रहे, एकरस का अर्थ है पूर्ण। पूर्ण में दूसरा रस पैदा नहीं होता।
नसरुद्दीन के संबंध में एक मजाक बहुत जाहिर है। एक तारों वाला वाद्य उठा लाया था फकीर नसरुद्दीन। पर उस वाद्य की गर्दन पर एक ही जगह उंगली रख कर, और रगड़ता रहता था तारों को। पत्नी परेशान हुई। एक दिन, दो दिन, चार दिन, आठ दिन। उसने कहा, क्षमा करिए, यह कौन सा संगीत आप पैदा कर रहे हैं? मोहल्ले के लोग भी बेचैन और परेशान हो गए। आधी-आधी रात और वह एक ही तूं-तूं, एक ही बजती रहती थी।
आखिर सारे लोग इकट्ठे हो गए। कहा, नसरुद्दीन, अब बंद करो! बहुत देखे बजाने वाले, तुम भी एक नए बजाने वाले मालूम पड़ते हो! हमने बड़े-बड़े बजाने वाले देखे। आदमी हाथ को इधर-उधर भी सरकाता है, कुछ और आवाज भी निकालता है। यह क्या तूं-तूं तुम एक ही लगाए रखते हो; सिर पका जा रहा है। मोहल्ला छोड़ने का विचार कर रहे हैं। या तो तुम छोड़ दो, या हम! मगर इतना तो बता दो कि तुम जैसा बुद्धिमान आदमी और यह एक ही आवाज? ऐसा तो हमने कोई संगीतज्ञ नहीं देखा।
नसरुद्दीन ने कहा कि वे लोग अभी ठीक स्थान खोज रहे हैं, मैं पहुंच गया हूं। नीचे-ऊपर हाथ फिरा कर ठीक जगह खोज रहे हैं कि कहां ठहर जाएं। हम पहुंच गए हैं। हम तो वही बजाएंगे। मंजिल आ गई।
यह मजाक था नसरुद्दीन का। लेकिन उस आदमी ने बड़े गहरे और कीमती मजाक किए हैं। अगर परमात्मा कोई स्वर बजाता होगा, तो एक ही होगा। हाथ उसका इधर-उधर न सरकता होगा। वहां कोई धारा न बहती होगी, वहां कोई परिवर्तन न होगा।
लाओत्से कहता है, एकरस नहीं है वह, जो हम बोल सकते हैं; जो आदमी उच्चारित कर सकता है, वह उसका नाम नहीं है।
अंतिम रूप से इस सूत्र में एक बात और समझ लें।

शब्द हो, नाम हो, सब मन से पैदा होते हैं। सारी सृष्टि मन की है। मन ही निर्मित करता और बनाता है। और मन अज्ञान है। मन को कुछ भी पता नहीं। लेकिन जो मन को पता नहीं है, मन उसको भी निर्मित करता है। निर्मित करके एक तृप्ति हमें मिलती है कि अब हमें पता है।
अगर मैं आपसे कहूं, आपको ईश्वर का कोई भी पता नहीं है, तो बड़ी बेचैनी पैदा होती है। लेकिन मैं आपसे कहूं कि अरे आपको बिल्कुल पता है, आप जो सुबह राम-राम जपते हैं, वही तो है ईश्वर का नाम, मन को राहत मिलती है। अगर मैं आपसे कहूं, नहीं, कोई उसका नाम नहीं, और जो भी नाम तुमने लिया है, ध्यान रखना, उससे उसका कोई भी संबंध नहीं है, तो मन बड़ी बेचैनी में, वैक्यूम में, शून्य में छूट जाता है। उसे कोई सहारा नहीं मिलता खड़े होने को, पकड़ने को। और मन जल्दी ही सहारे खोजेगा। सहारा मिल जाए, तो फिर और आगे खोजने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।
मन सब्स्टीट्यूट देता है सत्य के, सत्य की परिपूरक व्यवस्था कर देता है। कहता है, यह रहा, इससे काम चल जाएगा। और जो मन पर रुक जाते हैं, वे उन पथों पर रुक जाएंगे जो आदमी के बनाए हुए हैं, उन शास्त्रों पर रुक जाएंगे जो आदमी के निर्मित, और उन नामों पर रुक जाएंगे जिनका परमात्मा से कोई भी संबंध नहीं है।
इस पहले ही छोटे से परम वचन में लाओत्से सारी संभावनाएं तोड़ देता है। सहारे, सारे सहारे, छीन लेता है। आदमी का मन जो भी कर सकता है, उसकी सारी की सारी पूर्व-भूमिका नष्ट कर देता है। सोचेंगे हम कि अगर ऐसा ही है, तो अब लाओत्से आगे लिखेगा क्या? कहेगा क्या? जो नहीं कहा जा सकता, उसको कहेगा? जिस पथ पर विचरण नहीं हो सकता, उसका इशारा करेगा? जिस अविकारी को, जिस कालजयी को इंगित कर रहा है, शब्दों में उसे लाओत्से बांधेगा कैसे? लाओत्से की पूरी प्रक्रिया निषेध की होगी। इसलिए निषेध के संबंध में कुछ बात समझ लें, ताकि आगे लाओत्से को समझना आसान हो जाए।
दो हैं रास्ते इस जगत में इशारा करने के। एक रास्ता है पाजिटिव, विधायक इंगित करने का। आप मुझसे पूछते हैं, क्या है यह? मैं नाम ले देता हूं--दीवार है, दरवाजा है, मकान है। विधायक अंगुली सीधा ही इशारा कर देती है, डायरेक्ट, यह रहा। आप पूछते थे, दरवाजा कहां है? यह है। आप पूछते थे, दीया कहां है? यह है।
लेकिन अंगुलियों से जिस तरफ इशारे किए जा सकते हैं, वे क्षुद्र ही हो सकती हैं चीजें। विराट की तरफ अंगुलियों से इशारे नहीं किए जा सकते। क्षुद्र की तरफ इशारा अंगुली से किया जा सकता है--यह। कोई पूछता है, परमात्मा कहां है? तो नहीं कहा जा सकता, यह है। परमात्मा की तरफ इशारे अंगुलियों से नहीं करने पड़ते; सब अंगुलियां बांध कर, मुट्ठी बंद करके करने पड़ते हैं कि यह है। जब मुट्ठी बांध कर कोई कहता है कि यह है, तो उसका मतलब है इशारा कहीं भी नहीं जा रहा है--नोव्हेयर गोइंग। किसी तरफ है, ऐसा नहीं कह सकते; क्योंकि सब तरफ है।
लेकिन वह आदमी तो इससे राजी न होगा। मुट्ठी बांध कर अगर मैं कहूं कि
यह है, तो शायद समझेगा कि मुट्ठी है। तो मुझे कहना पड़ेगा, यह भी नहीं है, मुट्ठी भी नहीं है। और तब निषेध शुरू होगा। शायद वह आदमी पूछेगा, शायद आप समझे नहीं, मैं और अपने सवाल को सरल कर लूं। पूरब की तरफ है? तो मुझे कहना पड़ेगा, नहीं। जानते हुए कि पूरब भी उसी में है, कहना पड़ेगा, नहीं। क्योंकि अगर मैं कहूं पूरब की तरफ है, तो फिर दक्षिण का क्या होगा? उत्तर का क्या होगा? पश्चिम का क्या होगा? और जब हम कहते हैं, हां, पूरब की तरफ है, तो जाने-अनजाने हम कह जाते हैं कि पश्चिम की तरफ नहीं है। क्योंकि दिशाएं तो सिर्फ सीमित की सूचना देती हैं। शेष जो रह जाता है, उसको इनकार कर देती हैं।
तो दूसरा रास्ता है निषेध-इंगित का। उसमें जब कोई बताने चलता है, तो
वह यह नहीं कहता, यह है। वह कहता है, यह नहीं है, यह नहीं है, यह नहीं है, नेति-नेति। नॉट दिस, नॉट दिस, नॉट दिस, वह कहता चला जाता है। बड़े धीरज की जरूरत है निषेध के मार्ग पर। क्योंकि जो-जो आप कहेंगे, यह है? वह कहेगा, नहीं है। जो-जो आप कहेंगे, यह है? वह कहेगा, नहीं है। और वह जगह आ जाएगी, जब पूछने को कुछ भी न रहेगा कि यह है? तब वह कहेगा, यही है।

जैसे आप कमरे में मुझसे पूछने चले और आपने टेबल पकड़ी और कुर्सी पकड़ी
और दीवार पकड़ी। और मैं इनकार करता गया, इनकार करता गया। और कमरे की सब चीजें चुक गईं। और आपने मुझे पकड़ा, और मैंने इनकार किया। और आपने आपको पकड़ा, और मैंने इनकार किया। और इनकार करने को कुछ भी न बचा। तब लाओत्से कहेगा, यह है। लेकिन तब आपकी कठिनाई होगी; आप कहेंगे, अब तो सब इनकार कर दिया। अब?
असल में, जो इनकार करके भी इनकार नहीं किया जा सकता--वही है। जिसे हम इनकार कर दें और इनकार हो जाए, उसकी क्या सत्ता है! आदमी के हां कहने पर जिसका होना निर्भर है, आदमी के न कहने पर जिसका न होना निर्भर है, उसका भी कोई मूल्य है? आस्तिक कहता है, है; और सोचता है कि ईश्वर उसके है कहने से कुछ बलवान होता होगा। नास्तिक कहता है, नहीं है; और सोचता है कि शायद नहीं कहने से ईश्वर कमजोर होता होगा। और ऐसा नास्तिक ही नहीं सोचता; आस्तिक भी सोचता है कि किसी ने अगर कहा, नहीं है, तो बड़ा नुकसान पहुंचाता है। और ऐसा आस्तिक ही नहीं सोचता; नास्तिक भी सोचता है कि किसी ने कहा, है, तो जाओ खंडन करो कि नहीं है; क्योंकि बड़ा नुकसान पहुंचाता है। आदमी के हां और न कहने से... ।
एक बहुत पुरानी तिब्बतन कथा है कि एक छोटा सा मच्छर था। आदमी ने लिखी, इसलिए छोटा सा लिखा है। मच्छर बहुत बड़ा था, मच्छरों में बड़े से बड़ा मच्छर था। कहना चाहिए, मच्छरों में राजा था, सम्राट था। कोई मच्छर गोबर के टीले पर रहता था, कोई मच्छर वृक्ष के ऊपर रहता था, कोई मच्छर कहीं। राजा कहां रहे, बड़ी चिंता मच्छरों में फैली। फिर एक हाथी का कान खोजा गया। और मच्छरों ने कहा कि महल तो यही है आपके रहने के योग्य।
मच्छर जाकर दरवाजे पर खड़ा हुआ, हाथी के कान पर। महान विशालकाय दरवाजा था--हाथी-द्वार। मच्छर ने दरवाजे पर खड़े होकर कहा कि सुन ऐ हाथी, मैं मच्छरों का राजा, फलां-फलां मेरा नाम, आज से तुझ पर कृपा करता हूं, और तेरे कान को अपना निवास-स्थान बनाता हूं। जैसा कि रिवाज था, मच्छर ने तीन बार घोषणा की। क्योंकि यह उचित नहीं था कि किसी के भीतर निवास बनाया जाए और खबर न की जाए। हाथी खड़ा सुनता रहा। मच्छर ने सोचा, ठीक है--मौनं सम्मति लक्षणम्। वह सम्मति देता है, मौन है।
फिर मच्छर वर्षों तक रहता था, आता था, जाता था। उसके बच्चे, संतति और बड़ा विस्तार हुआ, बड़ा परिवार वहां रहने लगा। फिर भी जगह बहुत थी। मेहमान भी आते, और भी लोग रुकते। बहुत काफी था।
फिर और कोई जगह सम्राट के लिए खोज ली गई और मच्छरों ने कहा कि अब आप चलें, हम और बड़ा महल खोज लिए हैं। तो मच्छर ने फिर दरवाजे पर खड़े होकर कहा कि ऐ हाथी सुन, अब मच्छरों का सम्राट, फलां-फलां मेरा नाम है, अब मैं जा रहा हूं। हमने तुझ पर कृपा की। तेरे कान को महल बनाया।
कोई आवाज न आई। मच्छर ने सोचा, क्या अब भी मौन को सम्मति का लक्षण मानना पड़ेगा? अब भी? यह जरा दुखद मालूम पड़ा कि ठीक है, जाओ, कुछ मतलब नहीं। वह हां भी नहीं भर रहा है, न भी नहीं भर रहा है। उसने और जोर से चिल्ला कर कहा, लेकिन फिर भी कुछ पता न चला। उसने और जोर से चिल्ला कर कहा। हाथी को धीमी सी आवाज सुनाई पड़ी कि कुछ... । हाथी ने गौर से सुना, तो सुनाई पड़ा कि एक मच्छर कह रहा है कि मैं सम्राट मच्छरों का, मैं जा रहा हूं, तुझ पर मेरी कृपा थी, इतने दिन तेरे कान में निवास किया। क्या तुझे मेरी आवाज सुनाई नहीं पड़ती है?
हाथी ने कहा, महानुभाव, आप कब आए, मुझे पता नहीं। आप कितने दिन से रह रहे हैं, मुझे पता नहीं। आप आइए, रहिए, जाइए, जो आपको करना हो, करिए। मुझे कुछ भी पता नहीं है।
तिब्बतन फकीर इस कथा को किसी अर्थ से कहते हैं। आदमी आता है। दर्शन, फिलासफी, धर्म, मार्ग, पथ, सत्य, सिद्धांत, शब्द निर्मित करता है। चिल्ला- चिल्ला कर कहता है इस अस्तित्व के चारों तरफ कि सुनो, राम है उसका नाम! कि सुनो, कृष्ण है उसका नाम! आकाश चुप है। उस अनंत को कहीं कोई खबर नहीं मिलती। हाथी ने तो मच्छर को आखिरी में सुन भी लिया, क्योंकि हाथी और मच्छर में कितना ही फर्क हो, कोई क्वालिटेटिव फर्क नहीं है। क्वांटिटी का फर्क है; मात्रा ही का फर्क है। हाथी जरा बड़ा मच्छर है, मच्छर जरा छोटा हाथी है।

कोई ऐसा गुणात्मक भेद नहीं है कि दोनों के बीच चर्चा न हो सके। हो सकती है, थोड़ी कठिनाई पड़ेगी। मच्छर को बहुत जोर से बोलना पड़ेगा, हाथी को बहुत गौर से सुनना पड़ेगा। लेकिन घटना घट सकती है, असंभव नहीं है।
लेकिन अस्तित्व और मनुष्य के मन के बीच कोई इतना भी संबंध नहीं है। न
हम आते हैं, तब उसे पता चलता है कि हमने बैंड-बाजे बजा कर घोषणा कर दी है कि मेरा जन्म हो रहा है। न हम मरते हैं, तब उसे पता चलता है। हम आते हैं और चले जाते हैं। पानी पर खींची रेखा की भांति बनते हैं और मिट जाते हैं। लेकिन इस थोड़ी सी देर में, जब कि रेखा बनने और मिटने के बीच में थोड़ी देर बचती है, उतनी थोड़ी देर में हम न मालूम कितने शब्द निर्मित करते हैं। उस बीच हम न मालूम कितने सिद्धांत निर्मित करते हैं। उस बीच हम न मालूम कितने शास्त्र बनाते हैं, संप्रदाय बनाते हैं। उस बीच हम मन का पूरा जाल फैला देते हैं। लाओत्से उस जाल को काटेगा। नेति-नेति उसके कहने का ढंग है। असल में, जिनको परम के संबंध में कुछ कहना हो, परम के संबंध में कुछ कहना हो, तो उन्हें कहना ही पड़ेगा कि उस संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता। और फिर कहने की कोशिश करनी पड़ेगी। और वह कोशिश यही होगी कि यह नहीं है, यह नहीं है। वह पथ, जिस पर विचरण किया जा सके, नहीं, वह नहीं है। वह शब्द, जिसका स्मरण किया जा सके, नहीं, वह नहीं है।
और आप भाषा की भूल में मत पड़ जाना। क्योंकि जिसका स्मरण किया जा सके, वही है नाम; और तो कोई नाम हम बोल नहीं सकते। और जिस पर विचरण किया जा सके, उसी को तो हम पथ कहते हैं; और किसी पथ को तो हम जानते नहीं हैं। अगर इसको बिल्कुल ठीक, ठीक से रख दिया जाए, तो बहुत हैरानी होगी। वह हैरानी यह होगी कि अगर इसको ऐसा कहा जाएः जो भी पथ है, वह पथ नहीं; जो भी नाम है, वह नाम नहीं; तो आपकी समझ में... । सीधा अर्थ इतना ही हैः दैट व्हिच इ.ज ए वे इ.ज नॉट ए वे एट ऑल, दैट व्हिच इ.ज ए नेम इ.ज नॉट ए नेम एट ऑल!
यही कह रहा है वह। वह यही कह रहा है, पहुंचना हो तो पथ से बचना, नहीं तो भटक जाओगे। और जानना हो उसे, पुकारना हो उसे, तो नाम भर मत लेना, नहीं तो चूक जाओगे। और उसके संबंध में इंच भर की चूक अनंत चूक है। कोई इंच भर की चूक छोटी चूक नहीं है; बड़ी से बड़ी चूक है, हो गई।
मारपा के सामने एक युवक आकर बैठा है। वह तीन वर्ष से मारपा के पास है।
और मारपा से कह रहा है, रास्ता बताइए। कुछ उसका पता-ठिकाना बताइए। कुछ नाम हो तो बोलिए। और जब भी वह कहता है कि कुछ उसका पता-ठिकाना बताइए, तभी अगर मारपा बोलता भी है, तो एकदम चुप हो जाता है। वैसे बोलता रहता है। और जब भी वह युवक कहता है, कुछ पता-ठिकाना बताइए, अभी तो आप बोल ही रहे हैं, थोड़ा उसका भी, कि वह एकदम आंख बंद करके चुप हो जाता है। अगर मारपा का शिष्य पूछता है कि कोई तो रास्ता बताइए, तो वह चल भी रहा हो रास्ते पर तो एकदम खड़ा हो जाता है।
तीन साल में परेशान हो गया। उसने कहा कि हद्द हो गई। वैसे आप थोड़ा चलते भी हैं, और जब भी मैं रास्ते की बात उठाता हूं कि एकदम ठहर जाते हैं। वैसे आप बोलते हैं, कोई एतराज आपको बोलने में नहीं है, लेकिन जैसे ही मैं उसकी खबर पूछता हूं कि आप आंख बंद करके ओंठ सी लेते हैं। और मैं उसी के लिए आया हूं। न तो आपका बाकी चलना मुझे कोई प्रयोजन है, और न आपकी बाकी बातों से मुझे कोई मतलब है। लेकिन मारपा तो आंख ही बंद करके बैठ जाता है जब ऐसी बात छिड़ती है।
आखिर एक दिन उस युवक ने कहा, अब मैं जाऊं?
मारपा ने पूछा, तुम आए ही कब थे? तीन साल से तुम दरवाजे के बाहर ही घूम रहे हो। आते कहां भीतर? जाने की आज्ञा किससे लेते हो? मैंने एक क्षण को नहीं जाना कि तुम भीतर आए। कई बार मैं द्वार खोल कर खड़ा हो गया। कई बार रुक गया कि शायद मैं चलता हूं, इसलिए तुम प्रवेश न कर पाते होओ। तो मैं खड़ा हो गया। जब भी तुमने सवाल पूछा, मैंने तुम्हें जवाब दिया है।
उस युवक ने कहा, हद्द हो गई। यही तो बेचैनी है कि जब भी मैंने सवाल पूछा, आप चुप रह गए हैं। ऐसे आप बोलते रहते हैं। यह भी इल्जाम मुझ पर आप लगा रहे हैं? इसीलिए तो मैं जाता हूं छोड़ कर तुम्हें कि जब भी मैंने पूछा, आप चुप रह गए हैं।

मारपा ने कहा, वही था जवाब। काश, तुम भी उस वक्त चुप रह जाते! काश, जब मैं चलते-चलते ठहर गया था, तुम भी ठहर जाते! तो मिलन हो जाता हमारा।
बताना है उसके संबंध में, तो मौन होना पड़ता है। चलाना है उसके संबंध में किसी को, तो खड़े हो जाना पड़ता है। उलटी दिखती हैं बातें, लेकिन ऐसा ही है। लाओत्से एक-एक कदम एक-एक चीज को गिराता चलेगा। उस जगह ले जाएगा आपको, जहां कुछ भी न बचे गिराने को। आप भी न बचें! खालीपन रह जाए।
और खालीपन ही निर्विकार है। ध्यान रखें, जहां कुछ भी आया, वहीं विकार
आ जाता है। शून्य के अतिरिक्त और कोई पवित्रता नहीं है। शून्य के अतिरिक्त और कोई निर्दोष, इनोसेंट स्थिति नहीं है। जरा सा कंपन एक विचार का, कि नरक के द्वार खुल जाते हैं। जरा सा एक रेखा का खिंच जाना मन में, और संसार निर्मित हो जाता है। जरा सी वासना की कौंध, और अनंत जन्मों का चक्कर शुरू हो जाता है। शून्य, बिल्कुल शून्य; नहीं है कोई आकार उठता भीतर, नहीं कोई शब्द, नहीं कोई नाम, नहीं कोई मार्ग, नहीं कोई मंजिल, न कहीं जाना है, न कुछ पहुंचना है, न कुछ पाना है। ऐसी जब कोई स्थिति बनती है, तब ताओ प्रकट होता है। तब मार्ग प्रकट होता है। तब वह नाम सुना जाता है। तब वह अविकारी और सनातन नियम बोध में आता है। वह नियम, अराजकता जिसके विपरीत नहीं है; वह नियम, जो अराजकता को भी अपने गर्भ में समाए हुए है।
किसी को भी पूछना हो सवाल तो पूछ लें। और कोई भी सवाल, क्योंकि सब सवाल
एक से हैं। कुछ भी पूछ लें।

एक मित्र पूछते हैं कि विचार चलते हैं और पीछे ऐसा भी लगता है कि थोड़ा निर्विचार हुआ और चारों तरफ विचार चलते रहते हैं और केंद्र पर कहीं कोई निर्विचार का भी ख्याल होता है, और वह स्थिति जब कि सब विचार बंद हो जाते हैं, इन दोनों की बात पूछते हैं।

जब तक विचार चलते हैं, तब तक निर्विचार का ख्याल सिर्फ एक विचार है।
जब तक विचार चलते हैं, तब तक निर्विचार का ख्याल सिर्फ एक विचार है। वह भी एक विचार है कि मैं निर्विचार हूं; और इधर विचार चल रहे हैं, और मैं निर्विचार हूं। क्योंकि मैं निर्विचार हूं, इसकी स्थिति तो तभी स्मरण में आएगी, जब विचार नहीं चल रहे होंगे। और मजे की बात यह है कि यह जब स्थिति बनेगी, तब यह ख्याल भी नहीं रहेगा कि मैं निर्विचार हूं। क्योंकि निर्विचार होने का ख्याल एक विचार मात्र है।
जैसे एक आदमी जब पूर्ण स्वस्थ होता है, तो यह भी पता नहीं रहता कि मैं स्वस्थ हूं। इस बात का पता कि मैं स्वस्थ हूं, बीमारी की खबर देता है। इसलिए अक्सर बीमार आदमी स्वास्थ्य की बात करते हुए देखे जाते हैं--स्वस्थ आदमी नहीं, बीमार आदमी। बीमारी बनी रहे किसी कोने पर, तो स्वास्थ्य का बोध बन सकता है। और कई दफा स्वास्थ्य का ख्याल एक नई तरह की बीमारी ही सिद्ध होती है। अगर कोई आदमी स्वास्थ्य के प्रति बहुत सचेतन हो गया, तो रुग्ण हो जाता है। यह रोग है एक।
तो ऐसी घटना घटती है, जब कि आप मन से सोच-सोच कर, सुन-सुन कर, समझ-समझ कर
यह आकांक्षा मन में बना लेते हैं कि निर्विचार हो जाऊं। क्योंकि सुना कि पवित्र है वही, सुना कि परम आनंद है वही, सुना कि वहीं है समाधि का सुख, सुना कि सब फीका पड़ जाता है, वहीं है आनंद, तो फिर आकांक्षा बनती है, वासना बनती है कि मैं निर्विचार हो जाऊं।
अब ध्यान रखें, निर्विचार होने को कभी वासना नहीं बनाया जा सकता। पर बनती है।
असल में मन की तरकीब ही यही है कि आप कुछ भी कहो, वह उसको वासना में निर्मित कर देता है। वह कहता है, मोक्ष चाहिए? मोक्ष में बड़ा आनंद है, मोक्ष चाहिए? मोक्ष की कोशिश करो, खोजो, मिल जाएगा। अब मोक्ष की खोज शुरू हो गई। और जिस मोक्ष को मन खोजता है, वह मोक्ष नहीं है। असल में, जहां मन नहीं होता, वहां मोक्ष है। इसलिए मन का खोजा हुआ मोक्ष तो मोक्ष नहीं हो सकता। निर्विचार की बात सुनते-सुनते मन में बैठ जाता है, निर्विचार होना चाहिए।

ध्यान रखें, निर्विचार होना चाहिए, यह एक विचार है। यह लाओत्से को सुन
कर आ गया हो ख्याल में, यह मुझे सुन कर ख्याल में आ जाए, किसी और को सुन कर ख्याल में आ जाए, किसी किताब से पढ़ लें और यह ख्याल में आ जाए कि निर्विचार होना चाहिए। पर यह आपके पास क्या है--निर्विचार होना? यह एक विचार है। सिर्फ निर्विचार होना है, इसलिए विचार नहीं है, इस भूल में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। दिस इ.ज ए मोड ऑफ थॉट, टु बी थॉटलेस। यह एक प्रकार हुआ विचार का।
अब अगर इस विचार पर आप जिद्द देकर पड़ जाएं, तो मन आपको दूसरा धोखा देगा। वह कहेगा कि देखो, भीतर तो निर्विचार है, आस-पास विचार घूम रहे हैं; आर-पार चल रहे हैं विचार, मैं तो बाहर खड़ा हुआ हूं।
लेकिन मैं जो बाहर खड़ा हुआ हूं, यह क्या है? इ.ज इट मोर दैन ए थॉट? यह जो मैं बाहर खड़ा हूं, यह क्या है? यह एक विचार है।
पर इससे भी थोड़ा सुख मिलेगा, थोड़ी शांति मिलेगी। वह शांति नहीं, जो कालजयी है; वह शांति नहीं, जिसका कोई नाम नहीं है। न, इससे एक शांति मिलेगी, जो कि मन को सदा मिलती है, जब भी वह अपनी किसी वासना को पूरा कर लेता है। यह एक वासना थी मन में कि निर्विचार हो जाऊं। अब यह विचार बीच में खड़ा हो गया कि मैं निर्विचार हूं। मन को बड़ी तृप्ति मिलती है कि देखो, मैं निर्विचार भी हो गया।
और मन बड़ा कुशल है। एक छोटे से कोने में एक विचार को खड़ा कर देगा कि मैं निर्विचार हूं, और चारों तरफ विचार घूमते रहेंगे। और चारों तरफ कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि भीतर जहां मैं कह रहा हूं कि मैं निर्विचार हूं, वहां भी विचार अभी खड़ा हुआ है। वहां भी विचार मौजूद है। हां, ज्यादा से ज्यादा यह हो सकता है कि वहां जरा एक थिर विचार खड़ा है, बाकी विचार चल रहे हैं। बाकी विचार चल रहे हैं--दूकान है, बाजार है, काम है, धंधा है--वे चारों तरफ चल रहे हैं। और यह एक विचार, कि मैं निर्विचार हूं, खड़ा हो गया है बीच में।
लेकिन अगर इसको भी बहुत गौर से देखेंगे तो यह भी पूरा खड़ा हुआ नहीं मिलेगा, क्योंकि कोई विचार पूरा खड़ा हुआ नहीं हो सकता। यह भी दीए की लौ की भांति नीचा-ऊंचा होता रहेगा। एक क्षण को लगेगा, हूं; एक क्षण को लगेगा, नहीं हूं। एक क्षण को लगेगा कि अरे, ये तो विचार भीतर घुस गए! एक क्षण को लगेगा, मैं फिर बाहर हूं। एक क्षण को लगेगा, मैं फिर खो गया। यह बस ऐसा ही होता रहेगा। यह, क्योंकि कोई भी विचार परिवर्तन के बाहर नहीं हो सकता--यह विचार भी नहीं कि मैं निर्विचार हूं--यह भी डोलता रहेगा, फ्लक्चुएटिंग, नीचा-ऊंचा, इधर-उधर पूरे वक्त होता रहेगा। क्षण भर को ऐसा लगेगा कि हूं, और लगा नहीं कि गया।
नहीं, ताओ ऐसी स्थिति की बात नहीं है। ऋत और बात है। नहीं, विचार तो हैं ही नहीं चारों तरफ, यह विचार भी नहीं है कि मैं निर्विचार हूं। कोई भी नहीं बचा जो कह सके, मैं निर्विचार हूं। भीतर कोई है ही नहीं, निपट सन्नाटा है। चुप्पी के सिवाय कुछ भी नहीं है। यह जानने वाला भी नहीं है, खड़े होकर जो कह दे कि देखो, मैं बिल्कुल चुप हूं। इतना भी अगर मौजूद है, तो जानना, मन आखिरी धोखा दे रहा है--दि लास्ट डिसेप्शन! और इसी धोखे में आए कि मन फौरन आपको वापस पूरे चक्कर में खड़ा कर देगा एक सेकेंड में। अगर आप इस ख्याल में आ गए कि अरे, हो गया निर्विचार, आप वापस पहुंच गए गहनतम नर्क में।
यह एक विचार करीब-करीब ऐसे ही काम करता है, जैसा बच्चे लूडो का खेल खेलते हैं। चढ़ते हैं, बड़ी मुश्किल लगाते हैं, नसेनियां, सीढ़ियां, और फिर एक सांप के मुंह पर पड़ते हैं और सरक कर नीचे सांप की पूंछ पर आ जाते हैं। अगर एक भी विचार का ख्याल आ गया, मैं निर्विचार हूं, यह भी ख्याल आ गया, तो सांप के मुंह में पड़े आप। आप नीचे उतर जाएंगे; वे सब सीढ़ियां जो चढ़े थे, वे सब बेकार हो गई हैं।
इसलिए बोधिधर्म ने कहा, आई डू नॉट नो, मैं नहीं जानता। कौन खड़ा है आपके सामने, मुझे खुद ही पता नहीं।
किसी ने बाद में बोधिधर्म को कहा कि वू बहुत दुखी और पीड़ित हुआ है।
सम्राट बहुत अपमानित हुआ है। आपने इस तरह के जवाब दिए! सम्राट को ऐसे जवाब नहीं देने थे। आपने कह दिया कि मुझे पता ही नहीं कौन है।

बोधिधर्म ने कहा कि तुम सम्राट की बात कर रहे हो! सम्राट की वजह से, कि
यह बेचारा इतनी दूर आया, मैंने इतना भी जवाब दिया। अन्यथा इतना जवाब भी गलत था। वह भी नहीं है मेरे भीतर जो कह सके कि मुझे पता नहीं कौन है। यह तो सिर्फ उसकी वजह से कि वह और ही हैरान हो जाएगा इसलिए उसको मैंने कह दिया। बट डोंट मिसअंडरस्टैंड मी, बोधिधर्म ने कहा, मुझे गलत मत समझना। इतना भी मेरे भीतर नहीं है कोई जो कहे कि मुझे पता नहीं है। यह सिर्फ सम्राट इतनी दूर से चल कर आया था, वर्षों से प्रतीक्षा कर रहा था मेरी। जैसे कोई बच्चा आ जाए और हम उसे खिलौना पकड़ा दें, ऐसा मैंने उसे एक खिलौना दिया है।
जब तक विचार चल रहे हैं चारों तरफ, तब तक जानना कि आप भी एक विचार हो--
यू आर ए थॉट। जब कुछ भी न रह जाए, यह पता करने वाला भी न रह जाए, कुछ रह ही न जाए... ।
और जरा भी कठिनाई नहीं है, जरा भी कठिनाई नहीं है। यह हमें दिक्कत की बात मालूम पड़ती है। और बुद्ध को समझने में इस देश में जो बड़ी से बड़ी कठिनाई हुई, वह यही थी। और चीन में बुद्ध को समझने में आसानी पड़ी, उसका कारण यह लाओत्से था, और कोई नहीं। चीन में बुद्ध समझे जा सके लाओत्से की वजह से। लाओत्से बुद्ध के पहले वह सब कह चुका था। तो जब बुद्ध की बात पहुंची चीन में और बुद्ध का शब्द लोगों ने सुना कि आत्मा भी नहीं है, तो लोग समझ पाए। लाओत्से की एक भूमिका थी, जो कह रहा था, कुछ भी नहीं है।
भारत में बड़ी कठिनाई हो गई। हम यह बात मानने को तैयार हैं, विचार समाप्त हो जाए, बहुत अच्छा; लेकिन मैं तो रहूं। मोक्ष मिले, बिल्कुल ठीक; लेकिन मैं रहूं। मुझे तो बचना ही चाहिए। तो जब बुद्ध ने इस देश में कहा, अनत्ता, अनात्मा। कहा कि नहीं, आत्मा भी नहीं है, क्योंकि यह भी एक विचार है।
इसे समझें थोड़ा। मैं आत्मा हूं, यह भी एक विचार है। और निश्चित ही वह जगह है, जहां यह विचार भी नहीं होता। और वहीं आत्मा है। यह उलटा दिखता है। यह विचार भी जहां नहीं होता कि मैं आत्मा हूं, वहीं आत्मा है। लेकिन वह तो प्रकट हो जाएगी। आप काटते चले जाएं, काटते चले जाएं, आखिर में खुद कट जाएं। करीब-करीब ऐसा करना पड़ता है जैसे दीया जलता है, आग जलती है, लौ जलती है। लौ पहले तेल को जलाती रहती है। फिर तेल चुक जाता है। फिर लौ बाती को जलाने लगती है। फिर बाती चुक जाती है। फिर पता है, लौ का क्या होता है? लौ खो जाती है। लौ पहले तेल को जला देती है, फिर बाती को जला देती है, फिर स्वयं को जला लेती है।
विचार को छोड़ दें, विचार काट डालें। फिर स्वयं को भी छोड़ दें। फिर विचारों को काट डाला, स्वयं को भी छोड़ दिया, यह भी छोड़ दें। तब कुछ नहीं बचता। एक निर्विकार भाव-अवस्था, एक निर्विकार अस्तित्व, एक मौन-शांत सत्ता, एक्झिस्टेंस शेष रह जाता है, जहां मैं का भंवर नहीं बनता।
पानी में भंवर बनते देखे होंगे। जोर चक्कर से भंवर बनता है। और भंवर
की एक खूबी होती है, आप कुछ भी डाल दो तो वह भंवर उसको फौरन खींच कर घुमाने लगता है। मैं एक भंवर है। जिसमें आप कुछ भी डालें, वह किसी भी चीज को पकड़ कर घुमाने लगेगा।
इस निर्विचार, निरहंकार स्थिति में कोई भंवर नहीं रह जाता, कोई घूमने
की स्थिति नहीं रह जाती। और तब, तब ताओ का अनुभव है, तब धर्म का, या बुद्ध जिसे धम्म कहते थे, नियम का, ऋषि जिसे ऋत कहते रहे हैं, महावीर जिसे कैवल्य कहते हैं। कैवल्य का अर्थ है, कुछ भी न बचा, केवल होना ही बचा; कोई उपाधि न रही, कोई विशेषण न रहा; सिर्फ अस्तित्व रह गया। मात्र होना, जस्ट बीइंग! जैसे कोई एक गहन गड्ढ में झांके, या जैसे कोई खुले आकाश में झांके--न कोई बादल, न कोई तारे, खाली आकाश रह गया। ऐसा ही जब भीतर रह जाता है, झांकने वाला भी नहीं रह जाता, सिर्फ खालीपन रह जाता है, तब पता चलता है उसका, उस पथ का, जिस पर विचरण संभव नहीं है, उस पथ का, जो अविकारी है। और तब पता चलता है उस सत्य का, जिसे कोई नाम नहीं दिया जा सकता, जो कालजयी है, जो कालातीत है, जो सदा एकरस है, जो केवल स्वयं है।
जीसस के एक भक्त ने, तरतूलियन ने... तरतूलियन से कोई पूछता है कि जीसस
के संबंध में कुछ समझाओ, कुछ हमें उदाहरण दो जिससे पता चले कि जीसस कैसे थे। तो तरतूलियन कहता है कि मत मुझसे गलती करवाओ। जीसस बस बिल्कुल अपने ही

जैसे थे--जस्ट लाइक हिमसेल्फ। बस अपने ही जैसे; और किसी से कोई तुलना नहीं हो सकती।
क्या होगा वहां? उस ताओ की दशा में, उस ऋत में डूब कर क्या होगा? कैसे होंगे हम? क्या होगा हमारा रूप? क्या होगी आकृति? क्या होगा नाम? कोई बचेगा जानने वाला? नहीं बचेगा? क्या होगा?
कोई तुलना नहीं हो सकती, कुछ कहा भी नहीं जा सकता। इशारे सब नकारात्मक हैं। इतना कहा जा सकता है, आप नहीं होंगे। आप बिल्कुल नहीं होंगे। और जो होगा, उसे आपने अपने भीतर कभी नहीं जाना है। इतना कहा जा सकता है, कोई विचार न होगा, यह विचार भी नहीं कि मैं निर्विचार हूं। फिर भी होगी चेतना, लेकिन ऐसी, जिसे आपने कभी नहीं जानी है।
और उसके पहले मन सब तरह की वंचनाएं खड़ी करने में समर्थ है। इसलिए सजग रहना जरूरी है। मन इतना कुशल है, इतना सूक्ष्म रूप से चालाक और कुशल है कि सब धोखे खड़े करने में समर्थ है। कामवासना से भरे चित्त को ब्रह्मचर्य का धोखा दे सकता है। परिपूर्ण स्वयं के प्रति अज्ञानी को आत्मज्ञानी का धोखा दे सकता है। जिसे कुछ भी पता नहीं है, उसे ख्याल दिला सकता है कि उसे सब पता है। जो नहीं मिला है, उसकी भी खबर दे सकता है कि मिल गया है। इसलिए मन की डिसेप्टिविटी, उसकी जो प्रवंचकता है, उसके सब रूप ठीक से समझ लेने जरूरी हैं।
हुआंग पो के सामने एक युवक आया है और कह रहा है कि मैं शांत हो गया हूं। हुआंग पो पूछता है, फिर तुम यहां किसलिए आए हो? अगर तुम शांत हो गए हो, तो तुम यहां किसलिए आए हो? जाओ! क्योंकि मैं तो सिर्फ अशांत लोगों का इलाज करता हूं। युवक न तो जा सकता है, क्योंकि देखता है, हुआंग पो किसी और ही ढंग से शांत मालूम होता है। कहता है, नहीं, कुछ दिन तो रुकने की आज्ञा दें। हुआंग पो कहता है, शांत लोगों के लिए रुकने की कोई भी आज्ञा नहीं है। जरा सोच कर बाहर से फिर आओ। अशांत तो नहीं हो? क्योंकि मैं नहीं सोचता हूं, हुआंग पो कहता है, कि तुम दो सौ मील पैदल चल कर मुझे बताने सिर्फ यह आओगे कि मैं शांत हूं। दो सौ मील पैदल चल कर मुझे यह बताने आओगे कि मैं शांत हूं! और अगर इसके लिए आए हो, तो बात खतम हो गई। धन्यवाद! परमात्मा करे कि तुम सच में ही शांत होओ। लेकिन एक दफा बाहर जाकर फिर सोच आओ।
युवक बाहर जाता है। और तभी हुआंग पो कहता है, अब बाहर जाने की कोई जरूरत नहीं, लौट आओ। क्योंकि अगर अभी इतनी भी अशांति बाकी है कि सोचना है कि शांत हूं या नहीं, वापस आ जाओ। तुम्हारी झिझक ने सब कुछ कह दिया है। तुम सोचने जा रहे हो बाहर कि मैं शांत हूं या नहीं, यह काफी अशांति है। हुआंग पो कहता है, रुको! हुआंग पो कहता है, व्हेयरएवर देयर इ.ज च्वॉइस--जहां भी चुनाव है, वहीं अशांति है। अभी तुम चुनने जा रहे हो कि शांत हूं कि अशांत हूं? तुम पर्याप्त अशांत हो। बैठो! मैं तुम्हारे काम पड़ सकता हूं। लेकिन तभी, जब तुम अपने मन की धोखे देने की कुशलता को समझ जाओ।
तुम अशांत हो और मन तुम्हें धोखा दे रहा है कि तुम शांत हो। तुम्हें कुछ पता नहीं है और तुम कहते हो, मुझे मालूम है कि भीतर आत्मा है। तुम्हें कुछ पता नहीं और तुम कहते हो, यह सारा संसार परमात्मा ने बनाया है। तुम्हें कुछ भी पता नहीं है और तुम कहते हो कि आत्मा अमर है। मन के इस धोखे में जो पड़ेगा, वह फिर उसे न जान पाएगा जो जानने जैसा है। और उसे न जान पाए, इसलिए मन ये सारे धोखे निर्मित करता है।
तो जब तक तुम्हें पता चलता हो कि विचार चल रहा है और मुझे पता चल रहा
है कि विचार चल रहा है, तब तक तुम जानना कि मन ने अपने दो हिस्से किएः एक हिस्सा विचार चलाने वाला, और एक हिस्सा एक विचार का कि मैं विचार नहीं हूं, मैं निर्विचार हूं। यह मन का ही द्वैत है।
सच तो यह है कि मन के बाहर द्वैत होता ही नहीं। मन के बाहर अद्वैत हो जाता है। और अद्वैत का कोई बोध नहीं होता, ऐसा बोध नहीं होता कि तुम कह सको, ऐसा है। ज्यादा से ज्यादा तुम इतना ही कह सकोगे, ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है।
आज इतना, कल फिर हम बैठें। और आप सब पूछ सकते हैं।

ताओ उपनिषद, भाग एक
दूसरा प्रवचन

रहस्यमय परम स्रोत--ताओ

Chapter 1 : Sutra 2

(Conceived of as) having no name,
it is the originator of heaven and earth;
the named is the mother of all things.

अध्याय 1 : सूत्र 2

वह अनाम ही पृथ्वी और स्वर्ग का जनक है।
वह नामधारी ही सभी पदार्थों की जननी है।

अस्तित्व है अनाम।
नाम देते ही वस्तु का जन्म होता है।
जब तक नाम नहीं दिया, तब तक प्रत्येक वस्तु असीम अस्तित्व का अंग होती है। जैसे ही नाम दिया, टूट जाती है, अलग और पृथक हो जाती है। नाम पृथकता की सीमा-रेखा है। नाम का अर्थ है पृथक करना। जब तक नाम नहीं दिया, तब तक सब एक है। जैसे ही नाम दिया, चीजें टूट जाती हैं और अलग हो जाती हैं।
लाओत्से कहता है, वह अनाम स्वर्ग और नर्क का जन्मदाता है, मूल स्रोत है। और यह नाम, या नामी समस्त वस्तुओं की जननी है।
पहली बात तो यह समझ लेनी चाहिए कि यदि मनुष्य पृथ्वी पर न हो, तो चीजों में कोई भी फर्क न होगा। गुलाब के फूल में और गुलाब के कांटे में भेद न होगा। भेद है भी नहीं। गुलाब का कांटा गुलाब के फूल से ऐसा जुड़ा है, जैसा आपके हृदय से आपकी आंखें जुड़ी हैं। जमीन में और आसमान में भी कोई भेद न होगा। वह जगह बतानी कठिन है, जहां जमीन समाप्त होती है और आसमान शुरू होता है। वे संयुक्त हैं, एक ही चीज के दो छोर हैं। यह समुद्र कहां शुरू होता है और जमीन कहां शुरू होती है, बताना मुश्किल है--आदमी न हो तो। तो समुद्र के भीतर जमीन का फैलाव है और समुद्र का फैलाव जमीन के भीतर है। इसीलिए तो कहीं भी खोदते हैं कुआं तो पानी निकल आता है। सागर में भी गहरे उतरें तो जमीन मिल जाएगी। सागर में पानी थोड़ा ज्यादा और मिट्टी थोड़ी कम है; और मिट्टी में थोड़ा पानी कम और मिट्टी ज्यादा है। बाकी बिना मिट्टी के पानी नहीं हो सकता; और बिना पानी के मिट्टी नहीं हो सकती है।
आदमी को हम अलग कर दें तो चीजों में कोई भेद नहीं है, सब चीजें जुड़ी हुई और एक हैं। आदमी के आते ही चीजें अलग-अलग हो जाती हैं। होती नहीं, आदमी को अलग-अलग दिखाई पड़ने लगती हैं। अगर मैं आपको देखता हूं, तो आपके हाथ मुझे अलग मालूम पड़ते हैं, आपकी आंख मुझे अलग मालूम पड़ती हैं, आपके कान अलग मालूम पड़ते हैं, आपके पैर अलग मालूम पड़ते हैं। लेकिन आपके भीतर, आपके अस्तित्व में कहीं भी तो कोई भेद नहीं है। आंख और कान और हाथ और पैर, सब संयुक्त हैं, एक ही चीज का फैलाव हैं। हाथ के भीतर बहने वाली ऊर्जा और शक्ति आंख के भीतर देखने वाली ऊर्जा और शक्ति से अलग नहीं है। हाथ ही आंख से देखता है; आंख ही हाथ से छूती है। आपके भीतर, आपके अस्तित्व में जरा भी फासला नहीं है। लेकिन बाहर से देखने पर, नाम दिए जाने पर, फासला शुरू हो जाता है। कहा आंख, और आंख कान से अलग हो गई। कहा हाथ, और हाथ पैर से अलग हो गए। दिया नाम, कि हमने सीमा खींची और चीजों को पृथक किया।
लाओत्से कहता है, वह अनाम--दि नेमलेस--जब तक हम उसे नाम न दें, तब तक वह समस्त अस्तित्व का स्रोत है। और अस्तित्व को दो नाम दिए हैं लाओत्से नेः स्वर्ग का और नर्क का, स्वर्ग का और पृथ्वी का।
मनुष्य के अनुभव में, प्रतीति में सुख और दुख दो अनुभूतियां हैं--गहरी
से गहरी। अस्तित्व का जो अनुभव है, अगर हम नाम को छोड़ दें, तो या तो सुख की

भांति होता है या दुख की भांति होता है। और सुख और दुख भी दो चीजें नहीं हैं। अगर हम नाम बिल्कुल छोड़ दें, तो सुख दुख का हिस्सा मालूम होगा और दुख सुख का हिस्सा मालूम होगा। लेकिन हम हर चीज को नाम देकर चलते हैं। मेरे भीतर सुख की प्रतीति हो रही हो, अगर मैं यह न कहूं कि यह सुख है, तो हर सुख की प्रतीति की अपनी पीड़ा होती है। यह थोड़ा कठिन होगा समझना। हर सुख की प्रतीति की अपनी पीड़ा होती है। प्रेम की भी अपनी पीड़ा है। सुख का भी अपना दंश है, सुख की भी अपनी चुभन है, सुख का भी अपना कांटा है--अगर नाम न दें। अगर नाम दे दें, तो हम सुख को अलग कर लेते हैं, दुख को अलग कर देते हैं। फिर सुख में जो दुख होता है, उसे भुला देते हैं--मान कर कि वह सुख का हिस्सा नहीं है। और दुख में जो सुख होता है, उसे भुला देते हैं--मान कर कि वह दुख का हिस्सा नहीं है। क्योंकि हमारे शब्द में दुख में सुख कहीं भी नहीं समाता; और हमारे शब्द सुख में दुख कहीं भी नहीं समाता।
आज ही मैं किसी से बात करता था कि यदि हम अनुभव में उतरें, तो प्रेम और घृणा में अंतर करना बहुत मुश्किल है। शब्द में तो साफ अंतर है। इससे बड़ा अंतर और क्या होगा? कहां प्रेम, कहां घृणा! और जो लोग प्रेम की परिभाषाएं करेंगे, वे कहेंगे, प्रेम वहीं है जहां घृणा नहीं है, और घृणा वहीं है जहां प्रेम नहीं है। लेकिन जीवंत अनुभव में प्रवेश करें, तो घृणा प्रेम में बदल जाती है, प्रेम घृणा में बदल जाता है। असल में, ऐसा कोई भी प्रेम नहीं है, जिसे हमने जाना है, जिसमें घृणा का हिस्सा मौजूद न रहता हो। इसलिए जिसे भी हम प्रेम करते हैं, उसे हम घृणा भी करते हैं। लेकिन शब्द में कठिनाई है। शब्द में, प्रेम में सिर्फ प्रेम आता है, घृणा छूट जाती है। अगर अनुभव में उतरें, भीतर झांक कर देखें, तो जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे हम घृणा भी करते हैं। अनुभव में, शब्द में नहीं। और जिसे हम घृणा करते हैं, उसे हम घृणा इसीलिए कर पाते हैं कि हम उसे प्रेम करते हैं; अन्यथा घृणा करना संभव न होगा। शत्रु से भी एक तरह की मित्रता होती है; शत्रु से भी एक तरह का लगाव होता है। मित्र से भी एक तरह का अलगाव होता है और एक तरह की शत्रुता होती है।
शब्द की अड़चन है। शब्द हमारे ठोस हैं और अपने से विपरीत को भीतर नहीं लेते। अस्तित्व बहुत तरल और लिक्विड है; अपने से विपरीत को सदा भीतर लेता है। हमारे जन्म में मृत्यु नहीं समाती; लेकिन अस्तित्व में जन्म के साथ मृत्यु जुड़ी है, समाई हुई है। हमारी बीमारी में स्वास्थ्य के लिए कोई जगह नहीं है। लेकिन अस्तित्व में सिर्फ स्वस्थ आदमी ही बीमार हो सकता है। अगर आप स्वस्थ नहीं हैं, तो बीमार न हो सकेंगे। मरा हुआ आदमी बीमार नहीं होता। बीमार होने के लिए जिंदा होना जरूरी है, बीमार होने के लिए स्वस्थ होना जरूरी है। स्वास्थ्य के साथ ही बीमारी घटित हो सकती है। और अगर आपको पता चलता है कि मैं बीमार हूं, तो इसीलिए पता चलता है कि आप स्वस्थ हैं। अन्यथा बीमारी का पता किसको चलेगा? पता कैसे चलेगा? मैं यह कह रहा हूं कि जहां अस्तित्व है, वहां हमारे विपरीत भेद गिर जाते हैं और एक का ही विस्तार हो जाता है। जहां हमने नाम दिया, वहीं चीजें टूट कर दो हिस्सों में बंट जाती हैं; एक डिकॉटॉमी, एक द्वैत निर्मित हो जाता है--तत्काल। यहां दिया नाम, वहां अस्तित्व खंड-खंड हो गया। नाम देना खंड-खंड करने की प्रक्रिया है। और नाम छोड़ देना अखंड को जानने का मार्ग है।
पर हम बिना नाम दिए क्षण भर को नहीं रहते। बिना नाम दिए बड़ी बेचैनी होगी। हम देखते हैं, शायद देखते के साथ ही नाम दे देते हैं। सुनते हैं, सुनते के साथ ही नाम दे देते हैं। एक फूल दिखा, कि मन देखने के साथ ही साथ नाम देता है--गुलाब है, सुंदर है, कि असुंदर है, कि पहले जाना हुआ है, कि नहीं जाना हुआ है, अपरिचित है, कि परिचित है। तत्काल गुलाब का फूल तो छूट जाता है और शब्दों का एक जाल हमारे चित्त के ऊपर निर्मित हो जाता है। फिर हम उस शब्द के जाल में अस्तित्व को जब देखते हैं, तो अस्तित्व टूटा हुआ मालूम पड़ता है।
लाओत्से कह रहा है कि अनाम तो अस्तित्व का जनक है, सारे अस्तित्व का स्रोत है; और नाम सारी वस्तुओं की जननी है।
तो हम परमात्मा को कोई नाम न दे सकेंगे; क्योंकि नाम देते ही परमात्मा वस्तु हो जाएगा। जिस चीज को भी हम नाम देंगे, वह वस्तु हो जाएगी। आत्मा को

भी नाम देंगे तो वह वस्तु हो जाएगी। और अगर हम पत्थर को भी नाम न दें तो वह आत्मा हो जाएगा। अगर हम नाम देने से बच जाएं और हमारा मन नाम निर्मित न करे, और हम बिना शब्द और बिना नाम के किसी पत्थर को भी देख लें, तो पत्थर में परमात्मा प्रकट हो जाएगा। और हम किसी प्रेम से धड़कते हुए हृदय को भी नाम देकर देखें--मेरा बेटा, मेरी मां, मेरी पत्नी--कि हृदय जो धड़कता हुआ था जीवन से, वह भी पत्थर का एक टुकड़ा हो जाएगा। दिया नाम, कि चेतना वस्तु बन जाती है। छोड़ा नाम, कि वस्तुएं चैतन्य हो जाती हैं।
तो लाओत्से दो हिस्से करता है--अस्तित्व। अस्तित्व को समझाने के लिए उसने बांटाः हेवन एंड अर्थ, पृथ्वी और स्वर्ग। पृथ्वी से अर्थ है लाओत्से का पदार्थ का, मैटर का। और स्वर्ग से अर्थ है लाओत्से का अनुभव का, अनुभूति का, चैतन्य का, चेतना का। तो समस्त पदार्थ और समस्त चेतना का जनक है अनाम। स्वर्ग है एक अनुभव, पृथ्वी है एक स्थिति। पृथ्वी से प्रयोजन है लाओत्से का--जिन दिनों लाओत्से ने ये शब्द उपयोग किए चीन में, पृथ्वी से वही अर्थ था जो हम पदार्थ से लेते हैं और स्वर्ग से वही अर्थ था जो हम चैतन्य से लेते हैं। क्योंकि स्वर्ग की प्रतीति और अनुभव चेतना को होगी। पदार्थ से अर्थ है जड़ता का और स्वर्ग से अर्थ है चेतना का। समस्त चैतन्य और समस्त पदार्थ का मूल स्रोत है अनाम। और समस्त वस्तुओं की जननी है नाम देने की प्रक्रिया।
हम वस्तुओं के जगत में रहते हैं। न तो हम पदार्थ के जगत में रहते हैं
और न हम स्वर्ग के, चेतना के जगत में रहते हैं। हम वस्तुओं के जगत में रहते हैं। इसे ठीक से, अपने आस-पास थोड़ी नजर फेंक कर देखेंगे, तो समझ में आ सकेगा। हम वस्तुओं के जगत में रहते हैं--वी लिव इन थिंग्स। ऐसा नहीं कि आपके घर में फर्नीचर है, इसलिए आप वस्तुओं में रहते हैं; मकान है, इसलिए वस्तुओं में रहते हैं; धन है, इसलिए वस्तुओं में रहते हैं। नहीं; फर्नीचर, मकान और धन और दरवाजे और दीवारें, ये तो वस्तुएं हैं ही। लेकिन इन दीवार-दरवाजों, इस फर्नीचर और वस्तुओं के बीच में जो लोग रहते हैं, वे भी करीब-करीब वस्तुएं हो जाते हैं।
मैं किसी को प्रेम करता हूं, तो चाहता हूं कि कल भी मेरा प्रेम कायम रहे; तो चाहता हूं कि जिसने मुझे आज प्रेम दिया, वह कल भी मुझे प्रेम दे। अब कल का भरोसा सिर्फ वस्तु का किया जा सकता है, व्यक्ति का नहीं किया जा सकता। कल का भरोसा वस्तु का किया जा सकता है। कुर्सी मैंने जहां रखी थी अपने कमरे में, कल भी वहीं मिल सकती है। प्रेडिक्टेबल है, उसकी भविष्यवाणी हो सकती है। और रिलायबल है, उस पर निर्भर रहा जा सकता है। क्योंकि मुर्दा कुर्सी की अपनी कोई चेतना, अपनी कोई स्वतंत्रता नहीं है। लेकिन जिसे मैंने आज प्रेम किया, कल भी उसका प्रेम मुझे ऐसा ही मिलेगा--अगर व्यक्ति जीवंत है और चेतना है, तो पक्का नहीं हुआ जा सकता। हो भी सकता है, न भी हो। लेकिन मैं चाहता हूं कि नहीं, कल भी यही हो जो आज हुआ था। तो फिर मुझे कोशिश करनी पड़ेगी कि यह व्यक्ति को मिटा कर मैं वस्तु बना लूं। तो फिर रिलायबल हो जाएगा।
तो फिर मैं अपने प्रेमी को पति बना लूं या प्रेयसी को पत्नी बना लूं। कानून का, समाज का सहारा ले लूं। और कल सुबह जब मैं प्रेम की मांग करूं, तो वह पत्नी या वह पति इनकार न कर पाएगा। क्योंकि वादे तय हो गए हैं, समझौता हो गया है; सब सुनिश्चित हो गया है। अब मुझे इनकार करना मुझे धोखा देना है; वह कर्तव्य से च्युत होना है। तो जिसे मैंने कल के प्रेम में बांधा, उसे मैंने वस्तु बनाया। और अगर उसने जरा सी भी चेतना दिखाई और व्यक्तित्व दिखाया, तो अड़चन होगी, तो संघर्ष होगा, तो कलह होगी।
इसलिए हमारे सारे संबंध कलह बन जाते हैं। क्योंकि हम व्यक्तियों से वस्तुओं जैसी अपेक्षा करते हैं। बहुत कोशिश करके भी कोई व्यक्ति वस्तु नहीं हो पाता, बहुत कोशिश करके भी नहीं हो पाता। हां, कोशिश करता है, उससे जड़ होता चला जाता है। फिर भी नहीं हो पाता; थोड़ी चेतना भीतर जगती रहती है, वह उपद्रव करती रहती है। फिर सारा जीवन उस चेतना को दबाने और उस पदार्थ को लादने की चेष्टा बनती है।
और जिस व्यक्ति को भी मैंने दबा कर वस्तु बना दिया, या किसी ने दबा कर मुझे वस्तु बना दिया, तो एक दूसरी दुर्घटना घटती है, कि अगर सच में ही कोई

बिल्कुल वस्तु बन जाए, तो उससे प्रेम करने का अर्थ ही खो जाता है। कुर्सी से प्रेम करने का कोई अर्थ तो नहीं है। आनंद तो यही था कि वहां चैतन्य था। अब यह मनुष्य का डाइलेमा है, यह मनुष्य का द्वंद्व है, कि वह चाहता है व्यक्ति से ऐसा प्रेम, जैसा वस्तुओं से ही मिल सकता है। और वस्तुओं से प्रेम नहीं चाहता, क्योंकि वस्तुओं के प्रेम का क्या मतलब है? एक ऐसी ही असंभव संभावना हमारे मन में दौड़ती रहती है कि व्यक्ति से ऐसा प्रेम मिले, जैसा वस्तु से मिलता है। यह असंभव है। अगर वह व्यक्ति व्यक्ति रहे, तो प्रेम असंभव हो जाएगा; और अगर वह व्यक्ति वस्तु बन जाए, तो हमारा रस खो जाएगा। दोनों ही स्थितियों में सिवा फ्रस्ट्रेशन और विषाद के कुछ हाथ न लगेगा।
और हम सब एक-दूसरे को वस्तु बनाने में लगे रहते हैं। हम जिसको परिवार कहते हैं, समाज कहते हैं, वह व्यक्तियों का समूह कम, वस्तुओं का संग्रह ज्यादा है। यह जो हमारी स्थिति है, इसके पीछे अगर हम खोजने जाएं, तो लाओत्से जो कहता है, वही घटना मिलेगी। असल में, जहां है नाम, वहां व्यक्ति विलीन हो जाएगा, चेतना खो जाएगी और वस्तु रह जाएगी। अगर मैंने किसी से इतना भी कहा कि मैं तुम्हारा प्रेमी हूं, तो मैं वस्तु बन गया। मैंने नाम दे दिया एक जीवंत घटना को, जो अभी बढ़ती और बड़ी होती, फैलती और नई होती। और पता नहीं, कैसी होती! कल क्या होता, नहीं कहा जा सकता था। मैंने दिया नाम, अब मैंने सीमा बांधी। अब मैं कल रोकूंगा, उससे अन्यथा न होने दूंगा जो मैंने नाम दिया है।
कल सुबह जब मेरे ऊपर क्रोध आएगा, तो मैं कहूंगा, मैं प्रेमी हूं, मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए। तो मैं क्रोध को दबाऊंगा। और जब क्रोध आया हो और क्रोध दबाया गया हो, तो जो प्रेम किया जाएगा, वह झूठा और थोथा हो जाएगा। और जो प्रेमी क्रोध करने में समर्थ नहीं है, वह प्रेम करने में असमर्थ हो जाएगा। क्योंकि जिसको मैं इतना अपना नहीं मान सकता कि उस पर क्रोध कर सकूं, उसको इतना भी कभी अपना न मान पाऊंगा कि उसे प्रेम कर सकूं।
लेकिन मैंने कहा, मैं प्रेमी हूं! तो कल जो सुबह क्रोध आएगा, उसका क्या होगा अब? उस वक्त मुझे धोखा देना पड़ेगा। या तो मैं क्रोध को पी जाऊं, दबा जाऊं, छिपा जाऊं, और ऊपर प्रेम को दिखलाए चला जाऊं। वह प्रेम झूठा होगा, क्रोध असली होगा। असली भीतर दबेगा, नकली ऊपर इकट्ठा होता चला जाएगा। तब फिर मैं एक झूठी वस्तु हो जाऊंगा, एक व्यक्ति नहीं। और यह जो भीतर दबा हुआ क्रोध है, यह बदला लेगा। यह रोज-रोज धक्के देगा, यह रोज-रोज टूट कर बाहर आना चाहेगा। और तब स्वभावतः, जिसे प्रेम किया है, उससे ही घृणा निर्मित होगी। और जिसे चाहा है, उससे ही बचने की चेष्टा चलने लगेगी।
पर नाम देकर भूल हुई है। लाओत्से कहता है, नाम देकर भूल हो गई है। जब मैंने किसी से कहा कि मैं तुम्हारा प्रेमी हूं, तब मैंने ठीक से समझ लिया था कि प्रेमी होने का क्या अर्थ होता है? मैंने एक क्षण की अनुभूति को स्थिर नाम दे दिया। अगर मैंने भीतर झांक कर देखा होता, तो शायद मैं ऐसा नाम न देता। शायद चुप रह जाना उचित होता। शायद बोल कर भूल हो गई।
अमरीका का एक प्रेसिडेंट, कुलीज, कम बोलता था, अत्यधिक कम। दुनिया में कोई राजनीतिज्ञ इतना कम बोलने वाला नहीं हुआ है। कोई मरने के वर्ष भर पहले किसी मित्र ने उससे पूछा कि कुलीज, इतना कम बोलते हो, इतना कम बोले हो जिंदगी भर, कारण क्या है? तो कुलीज ने कहा, जो नहीं बोला है, उसके लिए दंड कभी नहीं मिलता; जो नहीं बोला है, उसके लिए कभी पछताना नहीं पड़ता है। जो बोला है, उसके लिए बहुत पछताना पड़ा है। यह तो मुझे ज्यादा अनुभव न था, कुलीज ने कहा, अगर दुबारा मुझे मौका मिले तो मैं बिल्कुल चुप रह जाने वाला हूं। यह तो अनुभव न था ज्यादा, अनुभव से धीरे-धीरे सीखा। लेकिन अब मैं कह सकता हूं कि जो बोला, उसके लिए दंड पाया सदा; जो नहीं बोला, उसके लिए कोई पीड़ा मुझे नहीं झेलनी पड़ी।
शायद आप सोचते होंगे, किसी को गाली दे दी होगी, उससे दंड पाया। नहीं, गाली से तो दंड मिल ही जाता है; टू ऑबियस, साफ ही है। नहीं, जब किसी से कहा कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, उसके भी दंड भोगने पड़ते हैं।
असल में, शब्द दिया, नाम दिया कि दंड होगा। क्योंकि हमने वस्तु बनाई, जहां कि वस्तु नहीं थी, जहां कि तरल व्यक्तित्व था। जहां कि तरल प्रवाह था,

वहां हमने ठोक कर नदी की बीच धार में दीवार खड़ी करने की कोशिश की। अब तकलीफ होगी, अब पीड़ा होगी। जीवन प्रवाह की तरह बहना चाहेगा; और हमारे ठोके गए नाम के तख्ते अड़चन डालेंगे। और जीवन बड़ा है; कोई तख्ता नाम का ठोका हुआ टिकेगा नहीं, बहा कर ले जाएगा। लेकिन तब पीछे पीड़ा का दंश और पश्चात्ताप और विषाद छूट जाता है।
लाओत्से कहता है, नाम ही मत देना। नाम दिया कि वस्तुएं पैदा हो जाती हैं।
एक क्षण को सोचें कि अगर अचानक ऐसी घटना घट जाए कि हम यहां इतने लोग बैठे हैं और हम सब भाषा भूल जाएं--एक घंटे भर के लिए! तो जमीन-आसमान में कोई फर्क होगा? तो अंधेरे और प्रकाश में कोई फर्क होगा? तो आप में और पड़ोसी में कोई फर्क होगा? तो हिंदू और मुसलमान भिन्न होंगे? तो स्त्री और पुरुष में फासला होगा? अगर एक घंटे को हम सारी भाषा भूल जाएं, तो सारे फासले भी तत्काल, घंटे भर के लिए, गिर जाएंगे। एक अनूठा ही जगत होगा--विस्तार से भरा हुआ। जहां कोई सीमा न होगी। जहां चीजें फैलती तो होंगी, लेकिन रुकती न होंगी। तब आपको ऐसा न लगेगा कि कोई आपके पड़ोस में बैठा है। क्योंकि ऐसा लगने के लिए भाषा जरूरी है। तब कोई पड़ोसी है, ऐसा भी न लगेगा। क्योंकि ऐसा लगने के लिए भाषा जरूरी है। तब कोई मित्र है, ऐसा भी नहीं लगेगा; कोई शत्रु है, ऐसा भी नहीं लगेगा। तब तो एक विराट अस्तित्व रह जाएगा।
उस अस्तित्व में दो प्रतीतियां--प्रतीतियां, नाम नहीं--उस अस्तित्व में दो प्रतीतियां रहेंगी, जिनको लाओत्से कहता हैः हेवन एंड अर्थ, स्वर्ग और पृथ्वी। या ज्यादा आज की भाषा में होगा कहना ठीकः पदार्थ और चैतन्य। दो विस्तार रह जाएंगे--पदार्थ का और चैतन्य का। यह प्रतीति होगी, यह भी नाम नहीं होगा। यह प्रतीति होगी। शेष सारे नाम वस्तुओं के हैं। वस्तु पदार्थ भी हो सकती है, वस्तु व्यक्ति भी हो सकता है। अगर हम व्यक्ति को नाम देंगे, तो वह भी वस्तु हो जाता है। अगर हम पदार्थ को नाम देंगे, तो वह भी वस्तु हो जाता है। अगर मैंने कहा यह कुर्सी, तो वह भी वस्तु हो गई। और मैंने कहा पत्नी, पति, बेटा, वे भी वस्तु हो गए। बेटे को भी पजेस किया जा सकता है, कुर्सी को भी पजेस किया जा सकता है। बेटे की भी मालकियत हो सकती है, कुर्सी की भी मालकियत हो सकती है।
लेकिन जीवन की कोई मालकियत नहीं हो सकती। और न पदार्थ की कोई मालकियत
हो सकती है। क्योंकि आपको पता नहीं कि जब आप नहीं थे, तब भी यह कुर्सी थी; और आप जब नहीं होंगे, तब भी यह होगी। और आप जिसको कह रहे हैं मेरा बेटा, कल उसकी श्वास बंद हो जाएगी, तो आप उसको मरघट में जाकर जला आएंगे। और जब उसकी श्वास बंद हो रही होगी, तब आप आकाश से यह न कह सकेंगे कि मेरा बेटा, मेरी बिना आज्ञा के उसकी श्वास कैसे बंद हो रही है? तब आप अपने बेटे से यह न कह सकेंगे कि तू बड़ा अनुशासनहीन है, उच्छृंखल है, मुझसे पूछा भी नहीं और तूने श्वास बंद कर ली। मरते वक्त मुझसे तो पूछ लेना था। मैं तेरा बाप हूं! मैंने तुझे जन्म दिया है!
लेकिन मरते वक्त न बेटा पूछ सकेगा, न बाप की आज्ञा की जरूरत पड़ेगी। अस्तित्व किसी की मालकियत नहीं मानता। जन्म के समय भी आपको भ्रम ही हुआ है कि आपने जन्म दिया है। अस्तित्व किसी की मालकियत नहीं मानता, न वस्तुएं किसी की मालकियत मानती हैं। लेकिन नाम के साथ मालकियत पैदा होती है; और नाम के साथ वस्तु बनती है। वस्तु का दूसरा छोर है मालकियत। जहां भी मालकियत है, वहां वस्तु होगी। वह व्यक्ति की है कि पदार्थ की है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जहां किसी ने कहा, मेरा! वहां मालकियत खड़ी हो जाएगी; वहीं चीजें अस्तित्व को खो देंगी और वस्तुएं बन जाएंगी। हम रहते हैं वस्तुओं से घिरे हुए। इन सारी वस्तुओं का जन्मदाता, लाओत्से कहता है, नाम देने की प्रक्रिया है--दि नेमिंग! यह जो हम नाम दिए चले जाते हैं, यही।
मैं सदा लाओत्से के संबंध में कहता रहा हूं। एक मित्र के साथ लाओत्से सुबह घूमने निकलता है। वर्षों से साथी है। मित्र जानता है कि लाओत्से सदा चुप रहता है। तो मित्र के घर कोई मेहमान आया है और वह उसको भी घुमाने ले आया है। रास्ते में उस मेहमान ने बड़ी परेशानी अनुभव की है। वह बहुत रेस्टलेस हो गया है। क्योंकि न लाओत्से बोलता है, न उसका मेजबान बोलता है। वह मित्र बहुत परेशान हो गया। आखिर उसके वश के बाहर हो गया, तो उसने कहा कि

सुबह बहुत सुंदर है, देखते हैं! लेकिन न मित्र ने देखा न जवाब दिया, न लाओत्से ने देखा न जवाब दिया। तब और बेचैनी उसकी बढ़ गई। इससे तो चुप ही रहता तो अच्छा था।
लौट आए। लौटने के बाद लाओत्से ने मित्र के कान में कहा कि अपने साथी
को दुबारा मत लाना, बहुत बातूनी मालूम पड़ता है--टू मच टाकेटिव। मित्र भी थोड़ा दंग हुआ, क्योंकि इतनी ज्यादा बात तो नहीं की थी। कोई डेढ़ घंटे की अवधि में एक ही तो बात बोला था वह कि सुबह बड़ी सुंदर है।
सांझ को मित्र आया और लाओत्से से कहा, क्षमा करना, उसे तो रोक दिया। लेकिन मैं भी बेचैन रहा हूं। ऐसी ज्यादा बात तो नहीं की थी। इतना ही कहा था कि सुबह बड़ी सुंदर है। लाओत्से ने कहा, दिया नाम कि चीजें नष्ट हो जाती हैं। सुबह बड़ी सुंदर थी, जब तक वह तुम्हारा साथी नहीं बोला था।
कठिन पड़ेगा समझना। लाओत्से कहता है, सुबह बड़ी सुंदर थी, जब तक तुम्हारा साथी नहीं बोला था। तब तक उस सौंदर्य में कोई सीमा न थी। तब तक वह सौंदर्य कहीं समाप्त होता हुआ मालूम नहीं पड़ता था। तब तक उस सौंदर्य का कोई अंत न था। लेकिन जैसे ही तुम्हारे मित्र ने कहा, बड़ी सुंदर है सुबह, सब सिकुड़ कर छोटा हो गया। तुम्हारे मित्र के शब्दों ने सब पर सीमा बांध दी। तुम्हारा मित्र सब पर हावी हो गया। और जब इतना सौंदर्य था, तो बोलना सिर्फ कुरूपता थी। जहां इतना सौंदर्य था, वहां बोलना सिर्फ विघ्न था। तो मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारे मित्र को सौंदर्य का कोई पता नहीं। उसने तो सिर्फ बात चलाई थी, उसे कुछ पता नहीं है सौंदर्य का। क्योंकि सौंदर्य का पता होता तो बोलता हुआ आदमी चुप हो जाता है। चुप आदमी कैसे बोल सकता था? सौंदर्य का इम्पैक्ट है। जब चारों ओर से सौंदर्य घेर लेता है, तो प्राण चुप हो जाते हैं। हृदय धड़कता भी है, तो पता नहीं चलता कि धड़कता है। सब निस्पंद हो जाता है। पर हम चुप थे और तुम्हारा मित्र बोल पड़ा। उसे सौंदर्य का कोई पता न था, उसे सुबह का भी कोई पता न था। वह सिर्फ खूंटी खोज रहा था, बातचीत, चर्चा चलाने को।
हम सब खोजते हैं। कोई भी मिलता है, आप मौसम की चर्चा शुरू कर देते हैं, कुछ भी बात शुरू कर देते हैं। वह सिर्फ बहाना होता है। असल में, चुप रहना इतना कठिन है कि हम किसी भी बहाने से बोलना शुरू कर देते हैं।
अब दुबारा जब आप किसी से बातचीत शुरू करें, तो ख्याल रखना, आपको फौरन पता चल जाएगा कि ये सिर्फ बहाने हैं। न सुबह से मतलब, न सूरज से मतलब, न बादलों से मतलब, न वर्षा से मतलब, कोई मतलब नहीं है। पर कहीं से बात शुरू होनी चाहिए, क्योंकि दो आदमी चुप रहने की कला ही भूल गए हैं, कि दो आदमी साथ हों तो चुप रह सकें।
फ्रायड ने अपने जीवन भर के अनुभवों के बाद लिखा है कि पहले तो मैं सोचता था कि हम बात करते हैं कुछ कहने के लिए, लेकिन अब मेरा अनुभव यह है कि हम बात करते हैं कुछ छिपाने के लिए। कुछ चीजें हैं, जो चुप रहने में उघड़ जाएंगी, उनको हम बातचीत करके छिपा लेते हैं।
एक आदमी के पास घंटे भर मौन से बैठ जाइए तो उस आदमी को जितना आप जान पाएंगे, उतना आप वर्ष भर उससे बात करते रहिए तो न जान पाएंगे। बात जो है, वह आदमी अपने को छिपाने के लिए अपने चारों तरफ एक जाल खड़ा कर रहा है। उसकी आंखों को फिर आप न देख पाएंगे, उसके शब्दों में अटक जाएंगे। उसके उठने को न देख पाएंगे; उसके बैठने को न देख पाएंगे; उसके गेस्चर्स आपके ख्याल में न आएंगे। उसके शब्द ही शब्द आपके आस-पास रह जाएंगे।
कभी आपने ख्याल किया है, जब आप पीछे किसी आदमी को याद करते हैं, तो सिवाय शब्दों के आपको कुछ और याद आता है? याद आता है, उस आदमी ने कैसे आपको देखा था? याद आता है, उसने कैसे आपके हाथ का स्पर्श किया था? याद आता है, उसके शरीर की गंध कैसी थी? याद आता है, उसकी आंखों का ढंग कैसा था? याद आता है, वह कमरे में कैसा प्रवेश हुआ था? याद आता है, वह कैसा बैठा था, उठा था? कुछ भी याद नहीं आता है। इतना ही याद आता है कि उसने क्या कहा था। आदमी
न हुआ वह, ग्रामोफोन हुआ। आपने उसके बाबत जो स्मृति बनाई है, वह सिर्फ शब्दों की है। उसके पूरे अस्तित्व का आपको कोई भी पता नहीं है। कितनी हैरानी की बात है! अगर आप अपनी मां की शक्ल भी आंख बंद करके गौर से देखना चाहें, तो आप पक्का पता न लगा पाएंगे कि मां की शक्ल कैसी है।

आप शायद एकदम से मेरी बात को इनकार करेंगे कि ऐसा कैसे हो सकता है? आप
घर जाकर करना। आंख बंद कर लेना और देखना कि मां की शक्ल कैसी है? और आप पाएंगे कि जब तक गौर नहीं किया था, तब तक तो कुछ-कुछ पता था कि ऐसी है। और जब आप गौर करेंगे, तो बहुत धुंधला हो जाएगा, सब रूप-रेखा खो जाएगी, मां की शक्ल भी आप न पकड़ पाएंगे। क्योंकि किस बेटे ने मां को देखा है?
और अगर याद भी आएगी, तो किसी फोटोग्राफ के कारण याद आएगी, मां की वजह
से नहीं आएगी। कोई चित्र की वजह से याद आ सकती है। आपके घर में कोई चित्र लटका है, वह याद आ जाएगा। लेकिन फर्क समझना आप। मां मौजूद थी, वह याद नहीं आती है। उसके खून से बड़े हुए हैं, उसकी गोदी में उठे हैं, उसके साथ दौड़े हैं, बैठे हैं, बात की है, सब किया है, वह याद नहीं आती। एक तस्वीर जो घर में लटकी है, वह याद आती है! तस्वीर एक वस्तु है, मां एक व्यक्ति है। लेकिन व्यक्ति याद नहीं आता और तस्वीर याद आती है। क्या, कारण क्या होगा?
असल में, हम जीवित के संपर्क से बचते रहते हैं खुद भी; और दूसरा भी हमारे जीवित को न जान ले, उसको भी बचाते रहते हैं। यह सारी जिंदगी एक बचाव है। और भाषा बड़ी कुशलता से बचाने का इंतजाम कर देती है।
एक फ्रेंच वैज्ञानिक बारह वर्षों तक साइबेरिया में एस्कीमोज के बीच में रहा। बारह वर्ष लंबा वक्त है। और एस्कीमो इस पृथ्वी पर उन थोड़ी सी कौमों में से एक हैं, जो भाषा के कारण अभी भी पागल नहीं हुए हैं। एस्कीमो दिन में दस-पांच शब्द बोले तो काफी है। अगर एस्कीमो को भूख लगी है, तो वह इतना नहीं कहता कि मुझे भूख लगी है, वह इतना ही कहता है--भूख! और कहने पर जोर कम होता है, उसका हाथ कहता है भूख, उसकी आंख कहती है भूख, उसका पूरा शरीर कहता है भूख!
बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उस वैज्ञानिक के संस्मरण मैं पढ़ता था। उसने लिखा है कि मेरे पहले छह महीने तो ऐसे थे, जैसे मैं नर्क में पड़ गया। क्योंकि वे बोलते ही नहीं हैं। और मैं बोलने को उबलता था। लेकिन किससे बोलूं? तो उसने लिखा है कि मैं अकेले में जाकर अपने से ही जोर से बोल लेता था।
आप सब भी अपने से अकेले में बोलते हैं। रास्ते पर चलते हुए लोगों को देखो, करीब-करीब सब अपने से बातचीत करते चले जा रहे हैं। कभी-कभी तो बातचीत गर्मा-गर्मी की भी हो जाती है--अकेले में ही। हाथ-पैर तक हिल जाते हैं; सिर झटका दे देता है, इशारे हो जाते हैं। और हर आदमी अपने से भीतर बात करने में लगा है। बाहर आप बात कर रहे हैं; भीतर आप बात कर रहे हैं; एक क्षण का अवकाश नहीं कि नाम से आप हट जाएं, शब्द से आप हट जाएं और अस्तित्व में आपकी गति हो जाए।
लेकिन छह महीने तकलीफ तो बहुत थी उस वैज्ञानिक को, छह महीने के बाद उसे बड़े अनूठे अनुभव होने शुरू हुए। पहली दफे जिंदगी में शब्दहीन गैप, शब्दहीन अंतराल आने लगे। और तब उसे पता चला कि एस्कीमो किसी और ही दुनिया में रह रहे हैं।
लाओत्से जिस दुनिया की बात कर रहा है, जिन लोगों की बात कर रहा है, जिन संभावनाओं की बात कर रहा है, वह शब्दहीन अनुभूति की संभावना की बात है। शब्द के साथ वस्तुओं का जगत आ जाता है। शब्द के हटते ही वस्तुओं का जगत हट जाता है, अस्तित्व मात्र ही रह जाता है।

प्रश्नः ओशो, अनाम की इस मौन अनुभूति को स्वर्ग और पृथ्वी या चेतना व पदार्थ, ऐसा द्वैतमूलक नाम क्यों दिया गया है? अद्वैत की अभिव्यक्ति क्यों नहीं की गई है?

अभिव्यक्ति द्वैत की ही हो सकती है; अद्वैत अनभिव्यक्त रह जाता है।
तो जो अधिकतम किया जा सकता है, वह दो--बोलने में। निकटतम जो सत्य के है, वह दो--बोलने में। बोलने के बाहर तो एक ही रह जाता है। लेकिन भाषा किसी भी चीज को दो में तोड़े बिना नहीं बोल सकती है।
लाओत्से बोल रहा है, लिख रहा है, तो जो न्यूनतम भूल हो सकती है, वह कर रहा है। इससे ज्यादा ठीक बात नहीं हो सकती। और अगर हमें इसे भी इनकार करना हो, तो भी शब्द का ही उपयोग करेंगे। तो हम कहेंगे अद्वैत, दो नहीं। लेकिन

फिर भी हमें दो का तो उपयोग करना ही पड़ेगा। नहीं कहने के लिए भी कहना पड़ेगा, दो नहीं। वह दो तो हमारा पीछा करेगा ही। जब तक हम बोलने की चेष्टा करेंगे, दो हमारा पीछा करेगा ही। बोलना छोड़ें, तो एक रह जाता है।
हम कह सकते हैं कि हम एक ही क्यों न बोलें?
लेकिन हमें ख्याल नहीं है। जब आप बोलते हैं एक, तब तत्काल दो का ख्याल पैदा हो जाता है। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो बोले एक और दो का ख्याल पैदा न करवा दे। और जो बोले एक, उसको भी दो का ख्याल तत्काल पैदा हो जाता है। असल में, एक का कोई अर्थ ही नहीं होता, अगर दो न होते हों। एक सिर्फ दो तक पहुंचने की सीढ़ी का काम करता है, और कुछ भी नहीं।
लाओत्से दो शब्दों का प्रयोग कर रहा है इसीलिए कि शब्द में अधिकतम जो कहा जा सकता है, वह दो। अनेक को घटा-घटा कर दो तक लाया जा सकता है। फिर उसके पार तो निःशब्द का जगत है। उसके पार तो इतना भी नहीं कहा जा सकता जितना लाओत्से कह रहा है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि वह एक अनाम है। उस एक के लिए अभिव्यक्ति नहीं दी जा सकती है। जो भी हम कहेंगे, कहते ही दो बन जाता है। यह करीब-करीब ऐसा है जैसे हम पानी में एक लकड़ी को डालें, डालते ही वह तिरछी हो जाती है। होती नहीं, दिखाई पड़ती है। हो जाती तो इतना उपद्रव न था, तो वह भी सत्य हो जाता कि लकड़ी तिरछी हो गई। होती नहीं, दिखाई पड़ती है। बाहर निकालते हैं, फिर एक हो जाती है। हो नहीं जाती, वह एक थी ही। फिर पानी में डालते हैं, वह फिर तिरछी हो जाती है। और जिस आदमी ने हजार दफे पानी में डाल कर देख ली है, वह जब एक हजार एकवीं बार फिर पानी में डालता है, तो वह यह आशा न रखे कि मैं इतना अनुभवी हो गया, अब मुझे तिरछी न दिखाई पड़ेगी। तिरछी तो दिखाई पड़ेगी ही, अनुभव केवल इतना ही फायदा देगा कि वह आदमी मानेगा नहीं कि तिरछी है। दिखाई तो तिरछी ही पड़ेगी।
जैसे पानी में डालते ही रेडिएशन का नियम बदल जाता है, किरणों की गति बदल जाती है, इसलिए लकड़ी तिरछी दिखाई पड़ने लगती है, वैसे ही भाषा में सत्य को डालते ही रेडिएशन बदल जाता है; और एक बताने वाला शब्द भी डालिए भाषा में, तत्काल तिरछा होकर दो की सूचना देने लगता है।
लाओत्से को भी पता है कि जो मैं कह रहा हूं, वह द्वैत है। लेकिन कोई उपाय नहीं है। लाओत्से भी कहेगा, तो द्वैत का ही उपयोग करना पड़ेगा। इतनी कठिनाई है कि अगर लाओत्से चुप भी रहे और चुप रह कर भी कहना चाहे, तो भी द्वैत हो जाएगा। अभिव्यक्ति की चेष्टा द्वैत बना देगी।
समझें! बहुत मौके पर ऐसा हुआ है।
शेख फरीद के पास कोई गया है और उससे पूछता है कि मुझे कुछ कहो! लेकिन वही कहना जो सत्य है, जरा सा भी असत्य न हो। मुझे तो तुम उसी सत्य को बताना, संतों ने जिसकी तरफ इशारा किया है और कहा है कि बताया नहीं जा सकता। तुम मुझे वही सत्य बता दो, जो निःशब्द है। फरीद ने क्या कहा? फरीद ने कहा, जरूर बताऊंगा, तुम अपने प्रश्न को इस भांति बना कर लाओ कि शब्द उसमें न हों। तुम निःशब्द में पूछोगे, मैं निःशब्द में उत्तर दे दूंगा। लेकिन तुम मेरे साथ ज्यादती मत करो कि तुम शब्द में पूछो और मैं निःशब्द में उत्तर दूं। तुम जाओ, तुम निःशब्द बना लाओ अपने प्रश्न को। मैं वादा करता हूं कि निःशब्द में उत्तर दूंगा।
वह आदमी चला गया। कठिनाई तो थी। बहुत सोचा उसने, वर्षों। कभी-कभी फरीद उसके गांव से निकलता था, तो उसके दरवाजे खटखटाता था कि क्यों भाई, क्या हुआ तुम्हारे सवाल का? बना पाए अब तक कि नहीं बना पाए? वह आदमी कहता, बहुत कोशिश करता हूं, लेकिन प्रश्न बनता नहीं बिना शब्द के। और कोशिश करो, फरीद कहता था। जब तुम्हारी कोशिश पूरी हो जाए और तुम बना लो निःशब्द प्रश्न, तो आ जाना मेरे पास! मैंने उत्तर तैयार रखा है।
वह आदमी भी मर गया, फरीद भी मर गया। न वह आदमी कभी फरीद के पास गया; न कभी वह फरीद का उत्तर किसी को सुनने मिला। मरते वक्त किसी ने फरीद से पूछा कि वह तैयार उत्तर आपके पास है; वह आदमी तो आता ही नहीं, हम सब सुनने को उत्सुक हैं। वह आप हमें बता जाएं! फरीद चुप बैठा रहा। उन्होंने कहा, बता दें! फरीद चुप बैठा रहा। उन्होंने कहा, बता दें, आपकी आखिरी घड़ी है, कहीं उत्तर आपके साथ न चला जाए। फरीद ने कहा कि मैं बता रहा हूं; मैं मौन हूं, यही मेरा उत्तर है। लेकिन अगर मैं इतना भी कहूं कि मैं मौन से बता रहा हूं,

तो उससे द्वैत पैदा होता है। क्योंकि उसका मतलब होता है, मौन से बताया जा सकता है, बिना मौन के नहीं बताया जा सकता। डुआलिटी खड़ी हो जाती है, डिस्टिंकशन पैदा हो जाता है, भेद निर्मित हो जाता है। इसलिए तुम मुझसे यह मत कहलवाओ कि मैं मौन से बता रहा हूं; मैं मौन हूं और तुम समझ लो, शब्द मत उठाओ।
पर अकेले मौन से कैसे समझा जा सकता है?
लाओत्से ने यह अकेली एक ही किताब लिखी है। और यह उसने लिखी जिंदगी के आखिरी हिस्से में। उसने कोई किताब कभी नहीं लिखी। और जिंदगी भर लोग उसके पीछे पड़े थे। साधारण से आदमी से लेकर सम्राटों तक ने उससे प्रार्थना की थी कि लाओत्से, अपने अनुभव को लिख जाओ। लाओत्से हंसता और टाल देता। और लाओत्से कहता, कौन कब लिख पाया है? मुझे उस नासमझी में मत डालें। पहले भी लोगों ने कोशिश की है। जो जानते हैं, वे उनकी कोशिश पर हंसते हैं; क्योंकि वे असफल हुए हैं। और जो नहीं जानते, वे उनकी असफलता को सत्य समझ कर पकड़ लेते हैं। मुझसे यह भूल मत करवाएं। जो जानते हैं, वे मुझ पर हंसेंगे कि देखो, लाओत्से भी वही कर रहा है। जो नहीं कहा जा सकता, उसे कह रहा है; जो नहीं लिखा जा सकता, उसको लिख रहा है। नहीं, मैं यह न करूंगा।
लाओत्से जिंदगी भर टालता रहा, टालता रहा। मौत करीब आने लगी; तो मित्रों का दबाव और शिष्यों का आग्रह भारी पड़ने लगा। लाओत्से के पास सच में संपदा तो बहुत थी। बहुत कम लोगों के पास इतनी संपदा रही है, बहुत कम लोगों ने इतना गहरा जाना और देखा है। तो स्वाभाविक था, आस-पास के लोगों का आग्रह भी उचित और ठीक ही था कि लाओत्से लिख जाओ, लिख जाओ।
जब आग्रह बहुत बढ़ गया और मौत आती दिखाई न पड़ी, और लाओत्से मुश्किल में
पड़ गया, तो एक रात निकल भागा। निकल भागा उन लोगों की वजह से, जो पीछे पड़े थे कि लिखो! बोलो! कहो! सुबह शिष्यों ने देखा कि लाओत्से की कुटिया खाली है। पक्षी उड़ गया, पिंजड़ा खाली पड़ा है। वे बड़ी मुश्किल में पड़ गए। सम्राट को खबर की गई और लाओत्से को देश की सीमा पर पकड़ा गया। सम्राट ने अधिकारी भेजे और लाओत्से को रुकवाया, चुंगी पर देश की, जहां चीन समाप्त होता था। और लाओत्से से कहा कि सम्राट ने कहा है कि चुंगी दिए बिना जा न सकोगे बाहर। तो लाओत्से ने कहा कि मैं कुछ ले ही नहीं जा रहा हूं जिस पर चुंगी देनी पड़े! मैं कोई कर चुकाऊं? मैं कुछ ले नहीं जा रहा हूं! सम्राट ने खबर भिजवाई कि तुमसे ज्यादा संपत्ति इस मुल्क के बाहर कभी कोई आदमी लेकर नहीं भागा है। रुको चुंगी नाके पर और जो भी तुमने जाना है, लिख जाओ!
यह किताब उस चुंगी नाके पर लिखी गई थी। वह लिख जाओ, तो मुल्क के बाहर निकल सकोगे, अन्यथा मुल्क के बाहर नहीं निकल सकोगे। मजबूरी में, पुलिस के पहरे में, यह किताब लिखी गई थी। लाओत्से ने कहा, ठीक है, मुझे जाना ही है बाहर, तो मैं कुछ लिखे जाता हूं।
यह ताओ तेह किंग अनूठी किताब है। इस तरह कभी नहीं लिखी गई कोई किताब। भाग रहा था लाओत्से इसी किताब को लिखने से बचने के लिए। निश्चित कठोरता, लगती है, सम्राट ने की; लेकिन दया भी लगती है। यह किताब न होती! और लाओत्से जैसे और लोग भी हुए हैं, जो नहीं लिख गए हैं। लेकिन जो नहीं लिख जाते हैं, उससे भी तो क्या फायदा होता है? जो लिख जाते हैं, उससे भी क्या फायदा होता है? जो नहीं लिख जाते, उन पर कम से कम विवाद नहीं होता। जो लिख जाते हैं, उन पर विवाद होता है। जो लिख जाते हैं, उनके एक-एक शब्द का हम विचार करते हैं कि क्या मतलब है! और मतलब शब्द के बाहर है। कभी अगर मनुष्य-जाति का अंतिम लेखा-जोखा होगा, तो कहना मुश्किल है कि जो लिख गए हैं वे बुद्धिमान समझे जाएंगे कि जो नहीं लिख गए हैं वे बुद्धिमान समझे जाएंगे। वैसे दो में से कुछ भी चुनो, द्वैत का ही चुनाव है। कोई लिखने के खिलाफ चुप रहने को चुन लेता है; कोई चुप रहने के खिलाफ लिखने को चुन लेता है। बाकी द्वैत से बचने का उपाय नहीं है।
तो लाओत्से जब शब्द का उपयोग करेगा, तो द्वैत आ जाएगा। इसलिए उसने जान
कर कहा कि वह अनाम पृथ्वी और स्वर्ग का जनक है और वह नामधारी वस्तुओं का मूल स्रोत है।
द्वैत निश्चित आ जाता है शब्द के साथ। लेकिन इसी आशा में लाओत्से जैसे लोग शब्द का उपयोग करते हैं कि शायद शब्द के सहारे निःशब्द की ओर

धक्का दिया जा सके। यह संभव है। क्योंकि द्वैत केवल दिखाई पड़ता है, है नहीं; इसलिए यह संभव है। द्वैत केवल दिखाई पड़ता है, है नहीं। अगर होता, तब तो कोई संभावना न थी।
समझें कि हम यहां एक वीणा के तार को मैं छेड़ देता हूं और छोड़ देता हूं। ध्वनि होती है पैदा इस भवन में, गूंजती है आवाज, फिर धीरे-धीरे आवाज शून्य में खोने लगती है। क्या आप बता सकते हैं, आवाज कब खो जाएगी और कब शून्य शुरू होगा? क्या आप कोई सीमा खींच सकेंगे, जब आप कह सकें, इस समय तक वीणा का स्वर गूंजता था और इसके आगे गूंजना बंद हो गया? क्या आप स्पष्ट रूप से ध्वनि में और निर्ध्वनि में कोई सीमा खींच सकेंगे? या कि आप पाएंगे कि ध्वनि निर्ध्वनि में खोती चली जाती है; शब्द शून्य बनता चला जाता है। अगर एक वीणा के छेड़े गए तार के साथ आप अपने मन के तार को बिठा कर बैठ जाएं और जैसे-जैसे तार की छेड़ी हुई ध्वनि शून्य में गिरने लगे, आप भी उसके साथ उतने ही मौन में गिरने लगें, तो थोड़ी ही देर में आप पाएंगे कि ध्वनि के सहारे आप निर्ध्वनि में पहुंच गए हैं, शब्द के सहारे आप निःशब्द में पहुंच गए हैं। इस आशा में ही लाओत्से या बुद्ध या महावीर या कृष्ण या क्राइस्ट बोलते हैं। इस आशा में ही कि शायद उनके शब्द के सहारे से आपको वे धीरे से निःशब्द में ले जा सकें। एक उपाय की भांति।
बुद्ध निरंतर कहते थे कि मैं जो भी बोलता हूं, वह उसे कहने के लिए नहीं
जो है, तुम्हें वहां तक पहुंचाने के लिए। उसे कहने के लिए नहीं जो है, क्योंकि वह तो नहीं कहा जा सकता। लेकिन तुम्हें वहां तक पहुंचाया जा सकता है, जहां वह है। शायद मेरे शब्दों की आवाज सुन कर तुम उस तरफ की यात्रा पर निकल जाओ। उस आयाम में, उस दिशा में तुम्हारा मुंह फिर जाए, तो शायद किसी दिन तुम उस महागड्ढ में, उस एबिस में गिर जाओ, उस अतल में गिर जाओ, जहां उस परम का साक्षात्कार है।
लेकिन द्वैत तो सभी की भाषा में आ जाएगा। बुद्ध संसार और निर्वाण की बात करते हैं, द्वैत हो गया। महावीर पदार्थ और आत्मा की बात करते हैं, द्वैत हो गया। यह तो खैर, लेकिन महावीर तो कहते हैं कि ठीक है, द्वैत को मैं मान कर चलता हूं। शंकर तो द्वैत को मान कर नहीं चलते; लेकिन माया और ब्रह्म की बात किए बिना काम नहीं चलता है। शंकर तो कहते हैं, दो नहीं हैं, फिर भी माया की बात और ब्रह्म की बात तो करनी ही पड़ती है। क्योंकि अगर दो नहीं हैं, तो शंकर लोगों से क्या कह रहे हैं फिर? किस चीज से छूटना है, अगर दो नहीं हैं? किस चीज से मुक्त होना है, अगर दो नहीं हैं? अगर ब्रह्म ही है, तो हम सब ब्रह्म हैं ही। अब जाना कहां? अब पहुंचना कहां है? अब करना क्या है? तो शंकर को भी कहीं से तो छुड़ाना पड़ता है। कुछ है जो छोड़ने जैसा है--अज्ञान है, माया है, अविद्या है। फिर दो खड़े हो जाते हैं। शंकर बड़ी मुश्किल में पड़े रहे, क्या करें?
महावीर ने इसलिए सुस्पष्ट कहा कि दो हैं, मान कर चलें। क्योंकि जब दो मिट जाएंगे, तब तुम खुद ही जान लोगे कि एक है; उसकी चर्चा हम न करें। हम दो की ही चर्चा करें, हम दो की ही चर्चा में से वहां ले चलें, जहां दोनों गिर जाते हैं। शंकर ने कहा, हम उसकी ही चर्चा करेंगे, जो एक है। लेकिन कठिनाई में पड़ गए और दो की चर्चा करनी पड़ी। जिन्होंने दो की चर्चा की है, उनको भी एक का इशारा करना पड़ा है।
बुद्ध इतना कहते हैं--संसार छोड़ो, निर्वाण पाओ। और आखिरी वचन में कहते हैं, संसार और निर्वाण एक ही है। बहुत चौंका गए। बुद्ध का यह वचन दो हजार साल तक बेचैनी का कारण रहा है बौद्ध भिक्षु और साधक के लिए। संसार ही निर्वाण है! इससे ज्यादा, इससे ज्यादा कठिन बात और क्या होगी? अगर संसार ही निर्वाण है, तो फिर जाना कहां है? फिर छोड़ना क्या है? फिर पाना क्या है? तो कुछ तो बुद्ध के पंथ हैं जो इनकार करते हैं कि यह वचन बुद्ध का न होगा। क्योंकि बुद्ध तो कहते हैं, छोड़ो संसार और पाओ निर्वाण। यह दोनों को एक वह कैसे कहेंगे? इनकार ही करते हैं कि यह वचन बुद्ध का नहीं होगा।
लेकिन जो जानते हैं, वे कहते हैं, यही वचन बुद्ध का है; बाकी और छोड़े भी
जा सकते हैं। जब बुद्ध ने जाना होगा, तब संसार और निर्वाण में कोई भी फर्क नहीं रह जाता है। तब शरीर और आत्मा में भेद नहीं। तब माया और ब्रह्म एक

हैं। और तब बंधन और स्वतंत्रता एक ही चीज के दो रूप हैं--बंधन और स्वतंत्रता! पर यह अनुभव; अभिव्यक्ति तो तत्काल दो बन जाएगी।
अभिव्यक्ति देने के लिए लाओत्से कहता हैः पृथ्वी और स्वर्ग, पदार्थ
और चेतना।

प्रश्नः ओशो, कल कहा गया है कि जिसे नाम दिया जा सके, वह सनातन व अविकारी सत्य न होगा। लेकिन परम सत्य को दिए गए नाम कामचलाऊ हैं और नाम-सुमिरण की साधना से भी लोग अनाम को उपलब्ध हुए हैं। कृपया समझाएं कि विकारी नाम से यात्रा प्रारंभ करके अविकारी अनाम को उपलब्ध क्यों नहीं किया जा सकता?

लाओत्से छलांग को पसंद करता है, सीढ़ियों को नहीं। ऐसे तो सीढ़ी भी छोटी छलांग है। जब आप सीढ़ी भी चढ़ते हैं, तब भी सीढ़ी क्या चढ़ते हैं, छोटी-छोटी छलांग लेते हैं। बीस हिस्सों में बांट देते हैं। कोई आदमी बीस हिस्सों की सीढ़ी को इकट्ठी छलांग लेता है, एक छलांग में ही बीस सीढ़ियों वाले हिस्से को कूद जाता है। अगर हम कहना चाहें तो यह भी कह सकते हैं कि वह आदमी बड़ी सीढ़ी बनाता है। छलांग न कहना चाहें तो कोई अड़चन नहीं है, हम कह सकते हैं कि वह आदमी बीस सीढ़ी की एक ही सीढ़ी बनाता है। एक आदमी उसी हिस्से को बीस टुकड़ों में तोड़ कर सीढ़ी पर चढ़ता है। हम ऐसा भी कह सकते हैं कि वह आदमी बीस छलांग लेता है। आदमी-आदमी पर निर्भर है; साहस-साहस पर निर्भर है।
लाओत्से छलांगवादी है। वह कहता है कि जिसे छोड़ना ही है, उसे पकड़ना ही क्यों! विकारी से निर्विकारी तक जाना है--छोड़ कर ही जाया जा सकता है। छोड़ दो और पहुंच जाओ।
जो सीढ़ीवादी हैं, जो ग्रेजुएल प्रोग्रेस की धारणा रखते हैं, जैसा कि आमतौर से नाम-स्मरण वाले साधक और संत हुए हैं। जैसे मीरा है या चैतन्य हैं, ये भी वहीं पहुंच जाते हैं जहां लाओत्से पहुंचता है। लेकिन वे कहते हैं, छोड़ना है जरूर, लेकिन धीरे-धीरे छोड़ना है। एक-एक सीढ़ी छोड़ते चलेंगे।
तो अब जैसे नानक हुए हैं। वे सब सीढ़ी... । तो नानक कहते हैं, पहले जाप शुरू करो, नाम-स्मरण शुरू करो। और कहे चले जाते हैं कि उसका कोई नाम नहीं है; उसका कोई नाम नहीं है। वह जो अलख निरंजन है, उसका कोई नाम नहीं है; वह जो अकाल है, वह समय के बाहर है। पर नाम-स्मरण करो। पहले ओंठ से नाम-स्मरण करो-- यह पहली सीढ़ी। फिर ओंठ को बंद कर लो, फिर कंठ से नाम-स्मरण करो--यह दूसरी सीढ़ी। फिर कंठ से भी छोड़ दो, फिर हृदय से स्मरण करो--यह तीसरी सीढ़ी। फिर हृदय से भी छोड़ दो, फिर अजपा जाप हो जाए। तुम मत करो, जाप को होने दो। तुम मत करो। और ऐसा हो जाता है। ओंठ से; फिर कंठ से; फिर कंठ से भी नहीं, फिर सिर्फ हृदय से; और जब हृदय से होने लगता है, तो छोड़ दो--फिर पूरे शरीर के रोएं- रोएं में, पूरे अस्तित्व में नाम गूंजने लगता है। पर यह भी मंजिल नहीं है, अभी सीढ़ी ही चल रहे हैं। फिर इसको भी छोड़ दो। फिर अजपा; अब जाप ही नहीं। पर यह चार सीढ़ियों में छोड़ा गया। अजपा आएगा, अनाम आएगा, लेकिन चार सीढ़ियों में छोड़ा गया।
लाओत्से कहता है, जिसे छोड़ना ही है, उसे इतने धीरे-धीरे क्या छोड़ना? लाओत्से कहता है कि अगर छोड़ते हो इतने धीरे-धीरे, तो इसका मतलब है, छोड़ने का तुम्हारा मन नहीं है। पकड़े रखना चाहते हो, इसलिए पोस्टपोन करते हो। कहते हो कि जरा अभी ओंठ से कर लें, फिर ओंठ का छोड़ देंगे। फिर कंठ से कर लेंगे, फिर कंठ से छोड़ देंगे। जब अजपा में ही जाना है, तो लाओत्से कहता है, अभी और यहीं! समय को खोने की जरूरत क्या है? छोड़ दो। छलांग, जंप।
लेकिन जरूरी नहीं है कि लाओत्से जैसा कहता है, वैसा सभी को सुगम हो।
कभी-कभी तो छुड़ाने के लिए धीरे-धीरे ही छुड़ाना पड़ता है। लोग हैं, टाइप हैं, बड़े भिन्न-भिन्न तरह के लोग हैं।
अगर किसी को हम कहें कि छलांग के सिवा कोई रास्ता ही नहीं है, सीढ़ियों
से उतरने का उपाय ही नहीं है, तो इसका मतलब यह नहीं कि वह छलांग लगाएगा। अगर वह छलांग लगाने वाला नहीं है, तो सीढ़ियां भी नहीं उतरेगा, बस इतना ही होगा। वह बैठ कर ही रह जाएगा। वह कहेगा, यह बात ही अपने काम की नहीं है। पर

उसके लिए भी परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग तो होना ही चाहिए। उसे कोई कहता है, सीढ़ियों से आ जाओ।
लाओत्से जो कह रहा है, वह उसके अपने टाइप की बात कह रहा है। इसे सदा ध्यान में रखना, नहीं तो मेरी बात में आपको निरंतर कठिनाई होगी। मेरा अपना, खुद का, निजी जो स्वभाव है, वह ऐसा है कि जब मैं लाओत्से पर बोल रहा हूं, तो मैं लाओत्से होकर ही बोल रहा हूं। फिर मैं भूल जाऊंगा कि कोई चैतन्य कभी हुए, कि कोई मीरा कभी हुई, कि कोई कृष्ण ने कभी कोई गीता कही। वह मेरे नहीं बीच में आएगी। वह बात खतम हो गई।
तो अच्छा होगा कि जब लाओत्से पर बोल रहा हूं, तो दूसरे सवाल बीच में मत उठाएंगे। उससे समझने में फायदा नहीं होगा, नुकसान ही पड़ेगा। जब कृष्ण पर बोलता हूं, तब पूछ लेना; तब लाओत्से को बीच में मत लाना। क्योंकि जब कृष्ण पर बोलता हूं, तो कृष्ण ही होकर बोलना है। फिर बीच में दूसरे को लाना नहीं है। और मेरा अपना कोई लगाव नहीं है; इसीलिए मैं किसी के भी साथ पूरा हो सकता हूं। मेरा अपना कोई लगाव नहीं है। अगर मेरा अपना कोई लगाव हो, तो मैं किसी के साथ पूरा नहीं हो सकता। अगर मेरा लगाव हो कि नाम-स्मरण से ही पहुंचा जा सकता है, तो फिर लाओत्से को मैं आपको न समझा पाऊंगा। अन्याय हो जाएगा।
नहीं! मैं कहता हूं, लाओत्से बिल्कुल ही ठीक कहता है, एकदम ठीक कहता है। और फिर भी जब मैं चैतन्य पर बोलूंगा, तो कहूंगा कि चैतन्य बिल्कुल ठीक कहते हैं। सीढ़ियों से भी पहुंचा जा सकता है। लेकिन अभी उसे मत उठाएं। क्योंकि उसे उठाने से लाओत्से को समझने में कोई सुगमता न होगी। उसे भूल जाएं, उसे बिल्कुल ही भूल जाएं। लाओत्से को समझने बैठे हैं तो छलांग की बात ही पूरी समझ लें।
नहीं तो हमारा मन ऐसा करता है, जब मैं छलांग की बात समझाने बैठता हूं
तब आप सीढ़ियों की बात उठाते हैं और जब मैं सीढ़ियों की बात समझाने बैठता हूं तब आप छलांग की बात उठाते हैं। आप चूकते हैं। बेईमानी है वह मन की। क्योंकि जब मैं कहता हूं, कीर्तन करो, तब आप कहते हैं कीर्तन से क्या होगा? और जब मैं कहता हूं, सब फेंक दो, नाम वगैरह जला दो, तब आप कहते हैं कि यह आप तो कह रहे थे कि कीर्तन से होगा। न आपने वह किया, न आप यह करेंगे। आप अपना बचाव खोजते चले जाएंगे।
आप से जो बन पड़े, वह कर लो। लेकिन इतना तो कर ही लो कम से कम कि जो मैं समझा रहा हूं, उसे पूरा का पूरा, प्रामाणिक समझ लो। उसमें दूसरे को डालो ही मत। वह सब फारेन है। जैसे लाओत्से के बीच में नाम की बात ही मत लाना। संकीर्तन, कीर्तन का सवाल ही मत उठाना। वह बिल्कुल कचरा है। लाओत्से की व्यवस्था में उसका कोई भी उपयोग नहीं है। वह वैसा ही है, जैसे कि एक बैलगाड़ी के चाक को उठा कर और कार में लगाने की कोशिश में कोई लग जाए। ऐसा नहीं कि बैलगाड़ी नहीं चलती है; बैलगाड़ी बराबर चलती है। उलटा भी नहीं होगा। कार के चक्के को भी बैलगाड़ी में लगाने मत चले जाना। ऐसा नहीं कि वह नहीं चलता है; वह भी चलता है। एक सिस्टम अपने भीतर गतिमान होती है, अपने बाहर व्यर्थ हो जाती है।
लाओत्से के लिए सब बेमानी है। और लाओत्से ठीक कहता है, गलत नहीं कहता। असल में, ठीक इतनी बड़ी बात है, सत्य इतना बड़ा है कि वह अपने से विपरीत सत्यों को समा लेता है। सत्य इतना बड़ा है कि वह अपने से विपरीत को भी मेहमान बना लेता है। असत्य बहुत छोटा होता है; वह अपने से विपरीत को मेहमान नहीं बना सकता। सत्य के भवन में, जैसा कि जीसस ने कहा है कि मेरे प्रभु के मकान में बहुत कक्ष हैं--देयर आर मेनी मैन्शंस इन माई लार्ड्स हाउस। बहुत कक्ष हैं मेरे प्रभु के मकान में। और एक-एक कक्ष इतना बड़ा है कि एक कृष्ण के लिए, एक बुद्ध के लिए, एक महावीर के लिए, एक लाओत्से के लिए, और इस तरह के हजार लोग हों, तो उनके लिए एक कक्ष काफी है एक-एक के लिए। और वे सभी कक्ष प्रभु के मंदिर के कक्ष हैं।
लेकिन जब मैं तुम्हें लाओत्से के कक्ष का दरवाजा बताऊं, तब तुम यह मत कहना कि यह दरवाजा तो लाल रंग का है; कल जो कक्ष का आपने दरवाजा दिखाया था, कृष्ण का, वह तो पीले रंग का था। आप तो कहते थे कि पीले रंग के दरवाजे से प्रवेश होगा। अब आप कहते हैं, लाल रंग के दरवाजे से प्रवेश होगा!

और मजा यह है कि आप पीले रंग के दरवाजे से भी प्रवेश नहीं किए थे और अब
आप पीले रंग के दरवाजे की आड़ लेकर लाल रंग के दरवाजे से भी प्रवेश नहीं करेंगे।
कहीं से भी प्रवेश कर जाएं! छलांग बने लगाते, छलांग लगा जाएं। जिनका चित्त युवा है और साहस से भरा है, वे छलांग लगा जाएं। जो डरे हुए हैं, भयभीत हैं, छलांग लगाने में पता नहीं हाथ-पैर न टूट जाएं, वे भी कम से कम सीढ़ियां तो उतरें। वे वहीं पहुंच जाएंगे थोड़ी देर-अबेर। लेकिन बैठे न रह जाएं। क्योंकि बैठने वाला कभी नहीं पहुंचेगा। और यह भी मैं नहीं कहता कि हर कोई छलांग लगा जाए। क्योंकि जिसका मन लगाने का न हो, वह न ही लगाए। क्योंकि जरूरी नहीं है कि छलांग से पहुंचे ही, हाथ-पैर भी तोड़ ले सकता है। यह जरूरी नहीं है कि छलांग लगाने में कोई गौरव है। लगती हो तो लगाएं, न लगती हो तो सीढ़ियों से उतर आएं।
लेकिन जिससे छलांग लगती हो वह सीढ़ियों से उतर कर समय क्यों जाया करे?
और ध्यान रहे, जो छलांग लगा सकता है, वह सीढ़ियों पर गिर भी सकता है। सीढ़ियां बहुत छोटी पड़ेंगी उसके लिए। वह गिर सकता है, हाथ-पैर तोड़ सकता है। जैसा सीढ़ियों से उतरने वाला छलांग में हाथ-पैर तोड़ सकता है, वैसा छलांग लगाने वाला सीढ़ियों में हाथ-पैर तोड़ सकता है।
नहीं, निश्चित कर लें। अपने को समझ लें। मैं तो न मालूम कितने मार्गों
की बात किए चला जाऊंगा। आपको जो दरवाजा अपने जैसा लगे, आप उसमें प्रवेश कर जाना। आप इसकी फिक्र मत करना कि आगे के दरवाजे को और समझ लें। आपको जो भी समझने जैसा लगे, वहां से चुपचाप प्रवेश कर जाना।
और आखिर में मंदिर के बीच में पहुंच कर आप पाएंगे कि और दरवाजों से प्रवेश किए लोग भी वहीं पहुंचे हैं। किस दरवाजे से पहुंचे हैं आप, यह मंदिर के अंतर्गृह में पहुंचने पर कोई नहीं पूछता--कि आप किस दरवाजे से आए? बाएं से आए कि दाएं से आए? छलांग लगा कर चढ़े थे सीढ़ियां, कि सीढ़ियां आसानी से चढ़े थे? मंदिर के भीतर पहुंच कर, प्रभु की प्रतिमा के निकट पहुंच कर कोई आप से हिसाब नहीं पूछेगा कि आप धीमे आए, तेजी से आए? एक-एक सीढ़ी चढ़े, दो-दो सीढ़ियां छलांग लगाईं? कूद कर आ गए? क्या किया, कोई नहीं पूछेगा। न आप ही याद रखेंगे कि आप कैसे आए। मंजिल पर पहुंच गया यात्री तत्काल भूल जाता है मार्ग को। मार्ग तभी तक याद रहता है जब तक मंजिल नहीं है।
ये सवाल न उठाएं; इससे लाओत्से को समझने में कठिनाई पड़ेगी। और इससे चैतन्य या मीरा को समझने में कोई सुविधा न होगी। लाओत्से को समझने चले हैं तो पूरा का पूरा आत्मसात हो जाएं, उसकी बात समझें। वह बिल्कुल ठीक कह रहा है। कुछ लोग उसके ही रास्ते से पहुंचे हैं, कुछ लोग उसी के रास्ते से पहुंच सकते हैं। आप में से भी कुछ होंगे, जो उसी के रास्ते से पहुंच सकते हैं। पूरी तरह समझ लें। शायद आप ही वही हों। तो वह रस आपके मन में बैठ जाए तो रास्ता बन जाए।
लेकिन हमारा मन सदा ऐसा होता है। पहले मैं लोगों को शांत बैठ कर ध्यान करवा रहा था। तो वे मुझसे आकर कहते थे कि इसमें तो कुछ होता नहीं, बैठे रहते हैं। वही लोग, ठीक वही लोग, जब मैं तेजी से ध्यान करवाने लगा, आकर मुझसे कहने लगे कि इससे तो वह शांत बैठने वाला बहुत अच्छा था। उन्होंने ही मुझसे कहा था कि इससे कुछ नहीं होता, शांत बैठे समय खराब हो जाता है। अब वे मुझसे कहते हैं कि वह बहुत अच्छा था, उसमें तो शांत बैठ कर बड़ा आनंद आता था। उस वक्त उन्होंने मुझसे उलटा कहा था।
नहीं, आनंद नहीं; अब इससे बचना है। तब वे उससे बच रहे थे, कि इससे कुछ नहीं होता। अब वे पीछे लौट कर कहते हैं कि उससे कुछ होता था। अब इससे बचना है।
अगर बचते चले जाना है, तब तो कोई अड़चन नहीं है। अन्यथा जब एक बात को समझने बैठें, तो शेष सब बातों को भूल जाएं। तब पूरे उसमें लीन हों, डूबें। शायद वह रास्ता आपके लिए रास्ता बन जाए।
और कुछ पूछना हो तो पूछ लें, सूत्र फिर कल लेंगे।

प्रश्नः जिस निर्विचार स्थिति का आपने वर्णन किया है जिसमें कांशसनेस, चेतना का अस्तित्व निष्क्रिय तो होना ही चाहिए। तो अगर कांशस

माइंड पूर्ण निर्विचार व निष्क्रिय हो जाए तो इसमें और जड़ अस्तित्व में क्या फर्क होगा? जब कुछ भी करना नहीं, सिर्फ निपट होना ही लक्ष्य हो, तो ऐसी स्थिति में और मृत शांति में कोई फर्क नहीं होता? हमारे लिए चेतना के अस्तित्व का क्या प्रयोजन हो सकता है? लकड़ी की कुर्सी का अस्तित्व और निर्विचार-निष्क्रिय मानवीय अस्तित्व में क्या फर्क है, कृपया समझाएं।

न तो आपने कभी लकड़ी की कुर्सी होकर देखा, और न कभी निर्विचार मनुष्य होकर देखा। दोनों में से कोई भी आपने नहीं देखा है। लेकिन सोचते हैं हम कि दोनों में फर्क होना चाहिए; या सोचते हैं कि शायद दोनों में कोई फर्क न होगा। लकड़ी की कुर्सी कैसा अनुभव करती है, इसका आपको कोई भी पता नहीं है। अनुभव करती भी है, नहीं करती, इसका भी कोई पता नहीं है। निर्विचार मनुष्य कैसा अनुभव करता है, इसका भी कोई पता नहीं है। लेकिन प्रश्न मन में उठता है। प्रश्न बिल्कुल स्वाभाविक है। हमारे सभी प्रश्न ऐसे हैं। हमारे सभी प्रश्न ऐसे हैं कि जो हमारे अनुभव के बाहर होता है, उसके संबंध में हम प्रश्न निर्मित कर लेते हैं। उनका कोई भी उत्तर परिणामकारी नहीं होगा। सिर्फ अनुभव ही परिणामकारी हो सकता है।
तो पहले तो हम थोड़ा अनुभव को समझें, फिर उत्तर को भी देख लें।
जब व्यक्ति के सारे विचार शांत हो जाते हैं, तो कांशसनेस तो रहती है, सेल्फ कांशसनेस नहीं रहती। चेतना तो रहती है, लेकिन स्वचेतना नहीं रहती। लेकिन हमें बड़ी कठिनाई होगी, क्योंकि हमने सिवाय सेल्फ कांशसनेस के और कोई कांशसनेस कभी जानी नहीं है। जब हम कहते हैं, चेतन हूं मैं, तो उसका मतलब होता है, मैं हूं। हमारे चेतन होने का एक ही मतलब होता है, अपने होने का हमें पता है कि मैं हूं। हालांकि बिल्कुल पता नहीं है कि कौन हूं? क्या हूं? कुछ पता नहीं, बस मैं हूं।
यह जो हमारी स्वचेतना है, सेल्फ कांशसनेस है, यह रोग है, बीमारी है। इसी स्वचेतना के संघट का नाम अहंकार है, ईगो है। इस स्वचेतना को बढ़ाने के लिए हम हजार तरह के उपाय करते हैं। जब आप बहुत अच्छे कपड़े पहन कर निकले हैं, जैसे किसी और के पास नहीं हैं, तो होता क्या है? यह स्वचेतना मजबूत होती है। साधारण कपड़ों में सेल्फ कांशस होना मुश्किल हो जाता है। असाधारण कपड़ों में आप सेल्फ कांशस हो जाते हैं। अगर आप रथ पर बैठ कर चल रहे हैं और बाकी लोग जमीन पर चल रहे हैं, तो आप सेल्फ कांशस हो जाते हैं। आप हाथी पर बैठे हैं, बाकी लोग जमीन पर हैं, तो आप सेल्फ कांशस हो जाते हैं। आप कुछ हैं। यह जो होने का सघन भाव है, यह तो रोग है, बीमारी है। यही चिंता है, यही तनाव है, यही अशांति है।
जिस व्यक्ति के विचार शून्य हो जाएंगे, वह कांशस तो होगा, सेल्फ कांशस नहीं होगा। चैतन्य तो वह पूरा होगा, चेतना तो उसके रोएं-रोएं में होगी, चेतना तो उसके चारों ओर प्रवाहित होगी; लेकिन चेतना के बीच में कोई मैं नाम का केंद्र नहीं होगा--सेंटरलेस! कोई केंद्र नहीं होगा मैं नाम का।
पर यह कठिन होगा बिना अनुभव के ख्याल में आना। क्योंकि हमारा अनुभव
एक ही है, वह मैं नाम का केंद्र जो है, वह घाव की तरह बीच में फड़कता रहता है। उसका ही हमें पता है। इसलिए बेहोशी में अच्छा लगता है; शराब पीकर अच्छा लगता है। क्योंकि उसमें वह जो सेल्फ कांशसनेस है, वह डूब जाती है। वह घाव थोड़ी देर के लिए भूल जाता है। रात गहरी नींद आ जाती है, तो सुबह अच्छा लगता है। क्योंकि उस रात की गहरी नींद में वह जो बीमारी थी, वह थोड़ी देर के लिए छूट जाती है। कहीं संगीत सुन लेते हैं घड़ी भर, भूल जाते हैं, अच्छा लगता है। वह जो मैं नाम की बीमारी थी, वह थोड़ी देर के लिए विसर्जित हो जाती है। लेकिन चैतन्य को हमने नहीं जाना है कभी। हमने सिर्फ इस कनसनट्रेटेड ईगो को जाना है, इस एकाग्र हो गए अहंकार को जाना है। यह अहंकार चेतना का रोग है।
जब विचार शून्य होते हैं, शांत और निर्विचार होते हैं, तब चेतना पूरी होती है, लेकिन आप नहीं होते, मैं नहीं होता हूं। होता हूं सिर्फ। अगर हम इस मैं हूं को दो हिस्सों में तोड़ दें, मैं को अलग कर दें, सिर्फ हूं बच जाए, तो हूं होता हूं--एमनेस। नॉट आई एम, एमनेस। मैं हूं ऐसा नहीं; हूं। इस हूं में कहीं कोई मैं का भाव नहीं होता। और चूंकि हूं में मैं का कोई भाव नहीं

होता, इसलिए तू का कोई सवाल नहीं होता। इधर गिरता है मैं, उधर तू गिर जाता है।
इसलिए जब हम सेल्फ कांशस होते हैं, तो व्यक्ति होते हैं; और जब हम सिर्फ कांशसनेस होते हैं, तो समष्टि हो जाते हैं। जब होता हूं मैं, तब मैं अलग और सारा जगत अलग। मैं एक द्वीप बन जाता हूं, एक आईलैंड, अलग। और जब सिर्फ हूं, मैं खो गया, तो मैं एक महाद्वीप हो जाता हूं। सब चांद-तारे मेरे होने के भीतर घूमने लगते हैं। सूरज मेरे भीतर उगने लगता है। फूल मेरे भीतर खिलने लगते हैं। मित्र, शत्रु, वे सब, जो कल की भाषा में जो भी थे, वे सब मेरे भीतर घटित होने लगते हैं। मैं फैल जाता हूं। इसको पुराना जो ढंग है कहने का, वह यह है कि मैं ब्रह्म हो जाता हूं। ब्रह्म का अर्थ, मैं फैल जाता हूं। मैं इतना फैल जाता हूं कि सब मेरे भीतर आ जाता है, कुछ भी मेरे बाहर नहीं रह जाता।
तो जब तक स्वचेतना है, तब तक सब बाहर और आप अलग। और जब सिर्फ चेतना रह जाती है, तो सब भीतर, सब भीतर, बाहर कुछ भी नहीं--देयर इ.ज नो आउटसाइड। चैतन्य के लिए कोई बाहर का हिस्सा नहीं है, सब भीतर ही भीतर है--ओनली इनसाइडनेस।
पर उसका अनुभव न हो तो ख्याल में न आए। कैसे ख्याल में आए? क्योंकि हम
तो सोच ही नहीं सकते कि कोई ऐसी इनसाइड हो सकती है, जिसमें आउटसाइड न हो। जहां भी इनसाइड होती है, आउटसाइड होती है। हमारा सारा अनुभव यह कहता है कि घर का भीतर होगा, तो बाहर भी तो होगा। क्योंकि हमें उस घर का तो पता नहीं है, जो यह पूरा विराट एक ही घर है, इसके बाहर कुछ भी नहीं है। जब सिर्फ चेतना रह जाती है और विचार खो जाते हैं, तो सब भीतर आ जाता है।
तब सवाल है कि फिर जड़ और चेतन में वहां क्या फर्क होगा? वह पूछते हैं
आप कि कुर्सी में और हममें क्या फर्क होगा?
यह अभी सवाल उठता है, क्योंकि अभी आपको कुर्सी में और अपने में फर्क दिखाई पड़ता है। उस विराट चैतन्य की स्थिति में कुर्सी भी आपके भीतर होगी, आपका हिस्सा होगी। इतनी ही चैतन्य होगी, जितने चैतन्य आप हैं। कुर्सी भी जीवंत होगी; इतनी ही जीवंत होगी, जितने जीवंत आप हैं। कुर्सी अभी भी जीवंत है, लेकिन उसके जीवंत होने की जो डायमेंशन है, वह इतनी भिन्न है कि आप उससे परिचित नहीं हो सकते। कोई भी चीज चेतना के बाहर नहीं है; सब चेतना के भीतर है। और कोई भी चीज ऐसी नहीं है, जिसके बाहर चेतना हो, सब चीजों के भीतर चैतन्य का वास है। लेकिन बहुत-बहुत ढंगों से। ढंग को थोड़ा हम समझ लें तो हमारे ख्याल में आए।
एक पत्थर उठा कर मैं फेंकूं दीवार के पार, तो वह दीवार के पार नहीं जाता, दीवार के इसी पार गिर जाता है। लेकिन हवा में से फेंकता हूं, तो हवा के पार चला जाता है। दीवार का ढंग और है, हवा का ढंग और है। दीवार का ढंग और है, हवा का ढंग और है। लेकिन ऐसी चीजें हैं, जो दीवार के पार चली जाती हैं; जैसे एक्सरे है, वह दीवार के पार चली जाती है। उसके लिए दीवार हवा की तरह ही व्यवहार करती है। एक्सरे के लिए दीवार दीवार का व्यवहार नहीं करती, हवा का ही व्यवहार करती है। एक्सरे को पता ही नहीं चलेगा कि दीवार पड़ी बीच में, या हवा पड़ी बीच में या दीवार पड़ी, पत्थर था कि हवा थी, कुछ पता नहीं चलेगा। एक्सरे दोनों को पार कर जाती है। एक्सरे के लिए दीवार हवा जैसी है, पर पत्थर के लिए हवा जैसी नहीं है। पत्थर कहेगा, दीवार अलग है, हवा अलग है। मैं आपको यह कह रहा हूं कि हमारी जो चेतना होती है, उसके ऊपर निर्भर करता है कि हमें चीजें कैसी दिखाई पड़ती हैं। अगर हम सेल्फसेंट्रिक हैं, तो कुर्सी अलग है, मैं अलग हूं। और अगर सेल्फ टूट गया, तो जैसे दीवार और हवा एक्सरे के लिए एक ही हो जाती हैं, ऐसे ही उस चेतना के लिए दोनों एक हो जाते हैं, कोई भेद नहीं रह जाता।
पर उसका हमें पता हो तभी। उसका हमें पता न हो तो? तो जब तक एक्सरे का कोई पता नहीं था, कोई मानने को राजी नहीं हो सकता था कि आपके पेट की अंतड़ियों की तस्वीर बाहर से ली जा सकेगी। कोई कैसे मानने को राजी होता? यह हो ही कैसे सकता है? फोटोग्राफर कहता कि पागल हो गए हैं आप! तस्वीर लेंगे तो आपकी चमड़ी की आएगी, आपके भीतर की हड्डियों की कैसे आएगी? वह भी किरणों का उपयोग करता है, लेकिन साधारण किरणों का उपयोग करता है। पर ऐसी किरण भी

है, जो चमड़ी को पार करके हड्डी पर पहुंच जाती है। उस किरण का जब हमें पता चला, तब हमने जाना कि यह हो सकता है।
असल में, चैतन्य के भी आयाम हैं। जिस चेतना में हम जीते हैं, उसका फैलाव बिल्कुल नहीं है। अपने में सिकुड़े हुए रहते हैं। कुर्सी भी अलग है, पड़ोसी भी अलग है; सब चीजें अलग हैं, हम अलग हैं। अलगाव हमारी चेतना का स्वभाव है, जैसी चेतना अभी है। और जैसे ही चेतना का रूप बदलता है--विचारों के हटते ही गुणात्मक अंतर होता है--वैसे ही चीजों में पृथकत्व गिर जाता है, बीच के फासले गिर जाते हैं। सारी चीजें एक मालूम होने लगती हैं। और प्रत्येक चीज नए ढंग से जीवंत मालूम होने लगती है।
अल्डुअस हक्सले ने पहली दफा जब एल एस डी लिया तो--भाग्य की बात कि आपके सवाल से मेल खाता है--वह जहां बैठा था, सामने ही एक कुर्सी रखी थी। और जब उसने एल एस डी लिया, तो थोड़ी देर में ही वह बहुत हैरान हो गया! कुर्सी से जैसे किरणें निकलने लगीं! कुर्सी, जो साधारण सी, मुर्दा सी कुर्सी थी, उससे किरणें निकलने लगीं। उसमें अनूठे रंग दिखाई पड़ने लगे। वह बहुत हैरान हो गया। उसने कुर्सी में ऐसे सौंदर्य और ऐसी महिमा का कभी दर्शन ही नहीं किया था। जब उसने अपनी किताब लिखी, जिसमें उसने यह वर्णन किया, तो उसने कहा, मैं चकित हो गया! उस दिन मुझे पहली दफे पता चला, हक्सले ने लिखा, कि कुर्सी ऐसी भी हो सकती है! पर वह तो, वह यह कुर्सी न थी, वह तो कोई और ही रूप था। इतने सुंदर रंग थे उसमें, कि किसी हीरे से कैसे निकलें! इतनी जीवंत थी, कि उस पर बैठा न जा सके! इतनी सुंदर थी, कि मैंने कोई सूर्य और चांद और तारे इतने सुंदर नहीं देखे!
तब अल्डुअस हक्सले ने लिखा कि उस दिन मुझे ख्याल में आया... । एल एस डी
से तो कुछ नहीं हुआ था, एल एस डी से तो थोड़ी सी चेतना फैलती है; वह थोड़ा कांशसनेस एक्सपैंडिंग ड्रग है। थोड़ी सी आपकी चेतना थोड़ी सी फैल जाती है, कुछ क्षणों के लिए। पर इतने से फैलाव में कुर्सी जीवंत हो गई! तो अल्डुअस हक्सले ने लिखा कि अब मैं मान सकता हूं उन लोगों को, जिन्होंने पत्थर को देख कर भगवान जैसा प्रणाम किया हो। उनकी चेतना का कोई फैलाव और रहा होगा। तो अल्डुअस हक्सले ने लिखा कि अब मैं मान सकता हूं वानगॉग जैसे चित्रकार को, जिसने कुर्सी का चित्र बनाया। क्योंकि कुर्सी का कोई चित्र किसलिए बनाए? आप सोच सकते हैं कि पेंट करने बैठें तो कुर्सी का चित्र बनाइएगा? और वानगॉग जैसा अनूठा चित्रकार कुर्सी का चित्र बनाए, महीनों मेहनत करे, पागल होगा? कुर्सी भी कोई बनाने जैसी चीज है? लेकिन हक्सले ने कहा कि तब तक मैं कभी नहीं समझ पाया था कि वानगॉग ने क्यों कुर्सी का चित्र बनाया। तब मैं समझा कि वानगॉग ने किसी और चेतना के क्षण में इस कुर्सी को देखा होगा, जिसको उसने रंगा है।
पर फिर भी हमारे रंग बहुत फीके हैं। एल एस डी के बाद जो रंग दिखाई पड़ते हैं, वे रंग हमने कभी देखे नहीं हैं। पर एल एस डी कुछ भी नहीं करता, आपकी साधारण चेतना को थोड़ा सा फैलाव देता है, जैसे कि हमने किसी गुब्बारे में थोड़ी हवा और भर दी और वह बड़ा हो गया। पर उस थोड़े से फैलाव में सब रंग बदल जाते हैं। साधारण किनारे, रास्ते के किनारे पड़े हुए कंकड़-पत्थर हीरे- मोतियों जैसे चमकने लगते हैं।
आज अगर एल एस डी का इतना प्रभाव है सारे पश्चिम पर और सारी पश्चिम की
नई पीढ़ी दीवानी है, उसका और कोई कारण नहीं है। यह सारा जगत बहुत रूपवान हो जाता है। यह सारा जगत ऐसा सेंसेशन से भर जाता है, जैसा हमने कभी नहीं जाना। साधारण सा हाथ परमात्मा का हाथ जैसा मालूम हो सकता है। साधारण से कपड़े ऐसी रौनक और ऐसी महिमा ले लेते हैं, जैसा कि कल्पना के बाहर है। यह सब... एल एस डी ने एक नया ख्याल तो खोला। वह नया ख्याल यह है कि चेतना अगर जरा सी फैल जाए, तो जगत बिल्कुल दूसरा हो जाता है।
लेकिन महावीर या लाओत्से जैसी चेतना जब पूरी फैलती होगी, छोटी-मोटी नहीं, पूरी तरह ही फैल जाती होगी--असल में, जो-जो रोकने वाले कारण थे अहंकार के, वे सब गिर जाते होंगे, फैलाव पूर्ण हो जाता होगा--उस क्षण कुर्सी में और आप में क्या फर्क रहेगा? समझ में आपके अभी आना मुश्किल पड़ेगा, क्योंकि जिस कुर्सी को आप जानते हैं, वह भी असली कुर्सी नहीं है; और जिस आप को आप जानते

हैं, वह भी असली आप नहीं हैं। दो नकली चीजों के बीच आप हिसाब लगाने बैठेंगे, कुछ ख्याल में नहीं आ सकता।
आप असली हो जाइए, तो कुर्सी को भी असली होने का मौका मिले। क्योंकि नकली आदमी असली कुर्सी को नहीं देख सकता है। और तब आपके लिए नए द्वार... । हक्सले ने अपनी किताब का नाम रखा हैः न्यू डोर्स ऑफ परसेप्शन--दर्शन के नए द्वार; एल एस डी से। और एल एस डी तो सिर्फ एक रासायनिक परिवर्तन है। छह घंटे, आठ घंटे, बारह घंटे के लिए रहेगा, फिर खो जाएगा; और वह भी अत्यल्प। लेकिन जिन्हें परमात्म-अनुभव हुआ, जिनकी स्वचेतना खो गई--चेतना खो गई नहीं, जिनकी स्वचेतना खो गई--और जो चैतन्य हुए, उनके लिए तो सारे फासले गिर जाते हैं और प्रत्येक जगत का कण-कण... ।
अगर महावीर सम्हल कर चलते हैं, तो जैसा जैनी समझते हैं वैसा नहीं है
कि चींटी को बचाने के लिए चल रहे हैं; कि कहीं कोई मच्छर न मर जाए, इसलिए परेशान हैं। जो मच्छर आपको दिखाई पड़ता है, वह महावीर को नहीं दिखाई पड़ता। नहीं तो वे भी इतनी फिक्र उसकी नहीं कर सकते हैं। जो चींटी आपको दिखाई पड़ती है, वह महावीर को दिखाई पड़ती हो, तो इतनी फिक्र वे भी नहीं कर सकते हैं।
असल में, चींटी में पहली बार उस ब्रह्म के दर्शन होते हैं, जो हमको कभी नहीं होते। इसलिए महावीर बचा कर चलते हैं, ऐसा नहीं। और कोई उपाय ही नहीं है, चलना ही पड़ेगा ऐसा बच कर। मच्छर मच्छर नहीं है, चींटी चींटी नहीं है। उतना ही जीवन उनमें प्रकट हो गया, जितना खुद महावीर के भीतर प्रकट हो रहा है। एक और ही जगत का द्वार खुलता है। उस जगत के द्वार खुलने पर आप इसी दुनिया में नहीं रहते। इसलिए इस दुनिया के सवाल आप मत पूछिए। इस दुनिया के सवाल से उस दुनिया का कोई तालमेल, कोई कंसिस्टेंसी, कोई रेलेवेंस नहीं है। हमारे सवाल करीब-करीब ऐसे हैं, जैसे कि आप मुझसे पूछें कि सपने में मैं सो जाता हूं, तो जब मैं सो जाता हूं तो मेरे सोए हुए सपने की हालत में मेरे कमरे का और मेरा क्या संबंध होता है?
कोई संबंध नहीं होता। कि होता है कोई संबंध? आप इस कमरे में सो सकते हैं और लंदन में हो सकते हैं सपने में। कमरे के भीतर बंद सो सकते हैं और खुले आकाश के नीचे हो सकते हैं, चांद-तारों के नीचे, सपने में। क्या संबंध होता है आपका इस कमरे से सोते वक्त?
नहीं, जैसे ही आप सोते हैं, आप चेतना के दूसरे आयाम में प्रवेश कर जाते हैं। यह कमरा जिस आयाम में था, वहीं पड़ा रह जाता है; आप दूसरी दुनिया में चले गए। फिर आपको इस कमरे के बाहर जाना हो, तो दरवाजा नहीं खोलना पड़ता। स्वभावतः, आप पूछेंगे कि सपने में अगर बाहर जाना हो, तो चाबी पास रखनी चाहिए? कि सपना ठीक से देखना हो, तो चश्मा लगाना चाहिए? नहीं, चश्मे की कोई जरूरत न पड़ेगी, आंखें कितनी ही कमजोर हों। आप दूसरे आयाम में प्रवेश कर रहे हैं, जहां इस तरह के चश्मे की कोई जरूरत न पड़ेगी। इस आंख की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। इस दरवाजे को खोलने की भी जरूरत नहीं, और बाहर हो जाएंगे। लेकिन जिस आदमी ने सपना न देखा हो कभी, उससे आप कहें कि एक ऐसी भी हालत होती है कि बिना दरवाजा खोले बाहर हो जाते हैं। वह कहेगा, माफ करो, आपका दिमाग ठीक है? अगर आप किसी आदमी से कहें, जिसने सपना न देखा हो, कि एक ऐसी भी हालत होती है कि न हवाई जहाज में बैठो, न ट्रेन में सवार हो, न जहाज में यात्रा करो, क्षण भर में यहां से लंदन पहुंच जाओ, कोई बीच में वाहन की जरूरत ही नहीं पड़ती; दरवाजा खोलो मत, चाबी की जरूरत नहीं, निकल जाओ, पहुंच जाओ। वह कहेगा, आपका दिमाग तो ठीक है न? जिसने सपना न देखा हो, वह आपसे पूछेगा, तो टकरा न जाएंगे बंद दरवाजे से? तो बिना चाबी के ताला कैसे खुलेगा? उसके सब सवाल संगत हैं। फिर भी आप हंसेंगे। आप कहेंगे, तुझे सपने का पता नहीं। वहां ये कोई सवाल संगत नहीं हैं।
जैसे ही विचार गिर जाते हैं और निर्विचार चेतना का जन्म होता है, आप
एक बिल्कुल ही और लोक में प्रवेश करते हैं। उस लोक में इस जगत की कोई भी चीज संगत नहीं है। कोई भी चीज, कोई भी नियम संगत नहीं है। इस जगत में जो जड़ दिखाई पड़ रहा है, वह वहां चैतन्य हो जाएगा। इस जगत में जो मृत दिखाई पड़ रहा है, वह वहां जीवंत हो जाएगा। इस जगत में जहां दरवाजे थे, वहां दीवारें हो जाएंगी। इस जगत में जहां दीवारें थीं, वहां दरवाजे हो जाएंगे। इस जगत का

कोई भी प्रश्न संगत नहीं है। इसलिए हम जो-जो प्रश्न उठाए चले जाते हैं, उनकी कोई अर्थवत्ता नहीं है।
प्रश्न इसीलिए अर्थपूर्ण हो सकते हैं कि हम उस लोक में कैसे प्रवेश करें? लेकिन अगर आप सोचते हों कि इसी लोक में बैठे हुए हम उस लोक की बातों को प्रश्नों से समझ लेंगे, तो आप गलती में हैं। वह संभव नहीं हो सकता है। आज इतना ही। और पूछना है कुछ? अच्छी बात है।

प्रश्नः ओशो, कल आपने बताया कि अगर भगवान मिल गया तो सहज पता लग जाएगा
कि यह तो मैंने देखा है। दूसरी बात यह बताई कि कुछ नहीं है, और जो है, वही है। और आज भी बताया कि पदार्थ और चैतन्य दो नहीं, पर एक ही है, एकरस है। तो वह भगवान जो एकरस है, वही स्थिति है कि समथिंग बियांड?

दोनों ही बातें हैं। वह जो एकरस स्थिति है, वह तो है ही भगवान। लेकिन
वह जो एकरस स्थिति है, वह सदा ही बियांड और बियांड फैलती चली जाती है। वह कहीं समाप्त नहीं होती।
समझें कि मैं एक सागर में कूद पड़ा। तो मैं यह कह सकता हूं कि मैं सागर में उतर गया, लेकिन फिर भी यह नहीं कह सकता कि पूरे सागर में उतर गया। इतना ही कह सकता हूं, एक किनारे से एक कोना मैंने स्पर्श कर लिया। सागर तो बियांड है। जहां मैं खड़ा हूं, वहां एकाध-दो लहर मुझे छू जाती हैं। सागर तो अनंत है।
तो जब कोई परमात्मा को जानता है, तो ऐसा ही जानता है कि यही सब, जो है, वही परमात्मा है। लेकिन ऐसा भी जानता है साथ ही साथ कि जितना मैं जान रहा हूं, उतना ही नहीं, और भी बियांड, और भी पार, वह और भी पार है। और कितना ही जान ले कोई, यह बियांडनेस खतम नहीं होती; यह बनी ही रहती है। यही उसकी मिस्ट्री है; यही उसका रहस्य है। कितना ही कोई जान ले, कितना ही दूर यात्रा कर आए, फिर भी वह पाता है कि दूसरे किनारे का कोई भी पता नहीं है। जिस किनारे से हम उतरे थे, उसका भर पता है। कितना ही दूर कोई चला जाए, दूसरे किनारे का कोई पता नहीं है।
और एक मजे की घटना घटती है, जो समझ में न आएगी। जब वह लौट कर आता है, तो पाता है, जिस किनारे को छोड़ा था, वह भी अब वहां नहीं है। ऐसा नहीं है कि एक किनारा फिर बचा रहता है; वह तो तभी तक है, जब तक आप किनारे पर खड़े हैं। जब आप कूद गए सागर में, तो दूसरे किनारे का तो कभी पता नहीं लगता; लौट कर अगर अपने किनारे को भी खोजा, कि जहां खड़े थे वह जगह, अब वह भी नहीं है।
जो है, वही परमात्मा है। लेकिन जो है, वह सदा ही पार और पार, पार और पार फैलता चला जाता है। हम जितने भी दूर जाते हैं, हम पाते हैं कि वह और पार फैला हुआ है, और पार फैला हुआ है।
और ऐसी कोई जगह कोई कभी नहीं पहुंच पाया, जहां से उसने कहा हो, बस यहां
तक है! और ऐसी जगह कोई कभी नहीं पहुंच पाएगा। वह लॉजिकली असंभव है। क्योंकि अगर कोई आदमी किसी ऐसी जगह पहुंच जाए और कहे कि यह आ गया आखिरी पड़ाव, यहां तक ही परमात्मा है, तो बड़ा सवाल यह उठेगा कि इसके बाद क्या है? बाद तो कुछ होना ही चाहिए। कोई भी सीमा अकेले नहीं बनती; सीमा बनाने के लिए दूसरे की जरूरत पड़ती है। आपके घर की जो फेंसिंग है, वह आपका घर ही अकेला हो तो मुश्किल हो जाए बनाना। वह तो पड़ोसी के घर की वजह से बन पाती है। अगर पार कुछ दूसरा न हो, तो सीमा नहीं बन सकती। और परमात्मा अकेला ही है। यानी जो अकेला है, उसी को हम परमात्मा कह रहे हैं; जो अस्तित्व है, वही है।
तो उसको हम कभी ऐसी जगह न पहुंच पाएंगे, जहां हम कह सकें, बस यहीं तक! क्योंकि यह तो तभी हो सकता है, जब दूसरा कोई शुरू हो जाए वहां से। कोई भी बिगनिंग, कोई भी प्रारंभ किसी चीज का अंत होता है। और कोई भी अंत किसी चीज का प्रारंभ होता है। अगर कोई दूसरी चीज प्रारंभ हो रही हो, तो हम परमात्मा के अंत को पा सकते हैं। लेकिन कहीं कोई दूसरी चीज नहीं है जो प्रारंभ हो जाए।
वैज्ञानिक भी बहुत तकलीफ में पड़े हैं; क्योंकि उनको भी बड़ी अड़चन है,
यह विश्व कहीं न कहीं तो समाप्त होना चाहिए। परमात्मा उनके लिए सवाल नहीं है अभी। लेकिन विश्व तो कहीं न कहीं समाप्त होना चाहिए। यह यूनिवर्स कहीं

तो पूरा होना चाहिए। यह कहां पूरा होगा? और अगर पूरा हो जाएगा, तो फिर क्या होगा? यह सवाल तत्काल खड़ा हो जाता है। जहां इसकी सीमा आएगी, वहां... तो वैज्ञानिक कहते हैं, दूसरा यूनिवर्स शुरू हो जाएगा। लेकिन उससे कोई हल नहीं होता। अब हम सारे यूनिवर्स जो शुरू हो सकते हैं, उनको इकट्ठा सोचें और फिर पूछें कि वे कहां खत्म होंगे? वे खत्म नहीं हो सकते।
सत्य या सत्ता अनंत है, इस अर्थों में।
इसलिए परमात्मा जो है, वह है। और साथ ही वह भी है, जो पार फैला हुआ है।
वह जो बियांड एंड बियांड है, वह इसके अंतर्गत स्वीकृत है। ये दो चीजें नहीं हैं।
इसलिए हम कभी ऐसा नहीं कह सकते कि यही है परमात्मा। इतना ही कह सकते हैं, यह भी है परमात्मा; और भी पार है, और भी पार है। जो हम जानते हैं, वह भी परमात्मा है; जो हम नहीं जानते हैं, वह भी परमात्मा है। जो किसी ने जाना, वह भी परमात्मा है; जो किसी ने नहीं जाना, वह भी परमात्मा है। और वह भी, जो शायद कोई कभी नहीं जानेगा। अज्ञात ही नहीं है वह, अज्ञेय भी है। नॉट ओनली अननोन, बट अननोएबल आल्सो। क्योंकि अननोन हम उसे कहते हैं, जिसे कभी नोन बनाया जा सकेगा। आज अननोन है, अज्ञात है, कल ज्ञात हो जाएगा। परमात्मा साथ ही अननोएबल भी है, अज्ञेय भी है। ऐसा भी है कि कभी ज्ञात नहीं होगा। वह जो सदा शेष रह जाएगा, सदा शेष रह जाएगा, वह जो सदा पीछे मौजूद रह जाएगा, उसे भी सम्मिलित करना पड़ेगा।
तो कहना पड़ेगा कि यह तो परमात्मा है ही, इसके पार जो है, वह भी परमात्मा है। और जो सदा ही पार रह जाता है, वह भी परमात्मा है।
फिर कल बात करेंगे।

ताओ उपनिषद, भाग एक
तीसरा प्रवचन

ताओ की निष्काम गहराइयों में

Chapter 1 : Sutra 3

Therefore:
Always stripped of passion we must be found,
If life's Secret we would sound;
But if passion always within us be,
Its outer fringe is all that we shall see.

अध्याय 1 : सूत्र 3

इसलिए यदि जीवन के रहस्य की अतुल गहराइयों
को मापना हो तो निष्काम जीवन
ही उपयोगी है। कामयुक्त मन को
इसकी बाह्य परिधि ही दिखती है।

जिस पथ पर विचरण किया जा सके, वह पथ नहीं; जिस सत्य की निर्वचना हो सके,
वह सत्य नहीं।
अनाम है अस्तित्व का जन्मदाता और नाम है वस्तुओं की जननी।
ऐसे दो सूत्रों के बाद लाओत्से का तीसरा सूत्र हैः देयरफोर, इसलिए।
तो सबसे पहले तो इस इसलिए को समझ लेना जरूरी है, फिर हम सूत्र को समझ पाएंगे। आश्चर्यजनक लगता है एकदम से, क्योंकि पहली दो बातों से तीसरे सूत्र का ऐसा कोई संबंध नहीं है, जिसे देयरफोर से जोड़ा जा सके।
सत्य नहीं कहा जा सकता। ऐसा मार्ग नहीं, जिस पर चला जा सके। अनाम है अस्तित्व, वस्तुओं का जगत नाम का जगत है। इसलिए, जो चित्त काम से जड़ा है, वह जीवन की अतल गहराइयों को, जीवन के रहस्य को नहीं जान पाएगा; जान पाएगा केवल जीवन की बाह्य परिधि को।
देयरफोर, इसलिए तो तभी जोड़ा जाता है, जब नीचे आने वाली बात ऊपर गई बातों से निर्गमित होती हो, निकलती हो, निःसृत होती हो। पहली दो बातों से ही तीसरी बात निकलती हो, तभी उसे इसलिए से जोड़ा जा सकता है। लेकिन काम से भरे हुए मन का शब्द से भरे हुए मन से क्या संबंध है? ऐसा पथ जिस पर चला न जा सके, ऐसे पथ का कामवासना से भरे हुए मन से क्या संबंध है? ऐसे अस्तित्व को जिसे कोई नाम न दिया जा सके, उसका कामवासना से भरे हुए चित्त से क्या संबंध है?
प्रकट दिखाई नहीं पड़ता, अप्रकट है। इसलिए लाओत्से के इस इसलिए शब्द को, इस देयरफोर को समझने में बड़ी कठिनाई पड़ती रही है। पहले संबंध को थोड़ा देख लें।
असल में, जो वासना से भरा है, वही कहीं पहुंचना चाहता है। कहीं पहुंचने की इच्छा ही वासना है। मैं जो हूं, अगर मैं वही होने से राजी हूं, तो मेरे लिए सब पथ बेकार हुए, मेरे लिए कोई मार्ग न रहा। जब मुझे कहीं जाना ही नहीं है, जब मुझे कहीं पहुंचना ही नहीं है, तब मेरे लिए किसी भी मार्ग का कोई भी प्रयोजन न रहा। मुझे कहीं पहुंचना है, मुझे कहीं जाना है, मुझे कुछ होना है, मुझे कुछ पाना है, तो फिर रास्ते अनिवार्य हो जाते हैं। यात्रा ही न करनी हो, तो पथों का क्या प्रयोजन है? लेकिन यात्रा करनी हो, तो पथ का प्रयोजन है। हम जितने पथों का निर्माण करते हैं, वे सभी वासना के पथ हैं। कोई भी मार्ग बिना कामना के निर्मित नहीं होता। यद्यपि कामना का मार्ग से कोई संबंध नहीं है, कामना का संबंध है मंजिल से। पर कोई भी मंजिल बिना मार्ग के नहीं पहुंची जा सकती। और कोई भी वासना बिना मार्ग के पूरी नहीं की जा सकती। और कोई भी इच्छा को पूरा करना हो तो साधन जरूरी हैं।

वासना तो कहीं पहुंचने की आकांक्षा है। कोई दूर का तारा वासना से भरे चित्त में चमकता रहता है और कहता हैः यहां आ जाओ तो शांति मिलेगी, यहां आ जाओ तो सुख मिलेगा, यहां आ जाओ तो आनंद पाओगे। जहां तुम खड़े हो, वहां आनंद नहीं है। यहां, जहां यह वासना चमकाती है किसी तारे को, वहां आनंद है। और हममें और उस तारे में बड़ा फासला है। उसे जोड़ने के लिए रास्ता बनाना पड़ता है। फिर वह रास्ता चाहे हम धन से बनाएं, वह रास्ता चाहे हम धर्म से बनाएं, वह रास्ता चाहे हम बाहर यात्रा करें, वह रास्ता चाहे हम भीतर जाएं, उस रास्ते से चाहे हम जगत की कोई वस्तु पाना चाहें और चाहे मोक्ष और चाहे परमात्मा का द्वार खोलना चाहें! लेकिन अगर हमारी मंजिल कहीं दूर है, तो बीच में हमें और उस मंजिल को जोड़ने के लिए मार्ग अनिवार्य हो जाता है।
और लाओत्से कहता है, जिस मार्ग पर चला जा सके, वह असली मार्ग नहीं है।
पर वासना से भरा हुआ चित्त तो मार्गों पर चलेगा ही। इसका अर्थ यह हुआ कि वासना से भरा हुआ चित्त जिन मार्गों पर भी चलता है, वे कोई भी असली मार्ग नहीं हैं। चलना ही गलत मार्ग पर होता है; चलना होता ही नहीं असली मार्ग पर। असल में, कहीं भी जाने की आकांक्षा गलत जाने की आकांक्षा है--कहीं भी; बेशर्त। ऐसा नहीं कि धन पाने की आकांक्षा गलत है; और ऐसा भी नहीं कि सारे जगत को जीत लेने की आकांक्षा गलत है। नहीं, मोक्ष को पाने की आकांक्षा भी इतनी ही गलत है। असल में, जहां पाने का सवाल है, वहीं चित्त तनाव से भर जाता है और अशांत हो जाता है।
कामवासना से भरा हुआ चित्त जहां है, वहां कभी नहीं होता; और जहां नहीं है, सदा वहीं डोलता रहता है। यह बड़ी असंभव स्थिति है। मैं जहां होता हूं, वहां नहीं होता; और जहां नहीं होता हूं, वहां सदा डोलता रहता हूं। स्वभावतः परिणाम में संताप, एंग्विश पैदा होता है, खिंचाव पैदा होता है। क्योंकि मैं जहां हूं, वहीं हो सकता हूं आराम से। जहां मैं नहीं हूं, वहां आराम से नहीं हो सकता। पर जहां मैं हूं, वहीं होने के लिए जरूरी है कि मेरे जाने का मन ही न हो कहीं; चित्त कोई यात्रा ही न करता हो।
इसलिए लाओत्से कहता है, देयरफोर। इसलिए वह कहता है कि काम से भरा हुआ चित्त, इच्छा से भरा हुआ चित्त जीवन की अतल गहराई के द्वार नहीं खोल पाता है; केवल परिधि से, बाह्य परिधि से परिचित हो पाता है। रहस्य अनजाने रह जाते हैं। महल अपरिचित रह जाता है। महल के बाहर की दीवार को ही जीवन समझ कर वासना से भरा हुआ चित्त जीता है।
जीएगा ही। क्योंकि महल है यहां और अभी; और वासना से भरा चित्त सदा होता है कहीं और कभी। वह कभी भी हियर एंड नाउ, अभी और यहीं नहीं होता। कहीं और, स्वप्न में! और ऐसा नहीं है कि वह जब वहां पहुंच जाएगा तो कोई स्थिति परिवर्तित होगी। आज जिस जगह मैं खड़ा हूं, वहां सोचता हूं कहीं और होने के लिए; और जब वहां पहुंच जाऊंगा, तो यही मन मेरे साथ फिर खड़ा हो जाएगा और कहीं और जाने की आकांक्षाओं के बीज पुनः निर्मित कर लेगा। ऐसे हम दौड़ते ही रहते हैं। और यह बहुत मजेदार दौड़ है। क्योंकि जिस जगह के लिए हम दौड़ते हैं, वहां पहुंच कर हम पुनः फिर किसी और जगह के लिए दौड़ने लगते हैं।
असल में, जिसे हमने पाने के पहले मंजिल समझा, पाने के बाद वह फिर पड़ाव
हो जाता है। पाने के पहले लगता है, वहां पहुंच कर सब मिल जाएगा। पहुंच कर लगता है कि यह तो केवल शुरुआत है, और आगे जाना होगा। और हर बिंदु पर ठहराव के ऐसा ही लगता है, और आगे जाना होगा। इसलिए हम कहीं भी शांति से नहीं हो पाते हैं एक क्षण को भी।
लाओत्से ने जान कर इन सूत्रों के पीछे देयरफोर का उपयोग किया है, जैसे कोई गणित या तर्क में करता है। और जो निष्पत्ति ली है, वह यह हैः आलवेज स्ट्रिप्ड ऑफ पैशन वी मस्ट बी फाउंड--वासना से उघड़े हुए, वासना से उखड़े हुए। जैसे वासना की पर्तों को कोई छील दे अपने ऊपर से। जैसे कोई प्याज को छील डाले और सारी पर्तों को अलग फेंक दे; और फेंकता जाए, जब तक एक भी पर्त बचे। लेकिन प्याज को छीलते-छीलते आखिर में हाथ कुछ भी नहीं लगता है। पर्त को निकालते हैं, एक दूसरी पर्त हाथ आती है; उसे निकालते हैं, तीसरी पर्त हाथ आती है। उखाड़ते चले जाते हैं; आखिर में तो शून्य ही बच रहता है।
अगर आप अपनी सारी इच्छाओं को हटा दें, तो क्या आपको ख्याल है कि आप बचेंगे? क्या आप अपनी इच्छाओं के जोड़ से ज्यादा कुछ हैं? अगर आपकी सारी

इच्छाएं खींच डाली जाएं प्याज की पर्तों की भांति, तो आप एक शून्य के अतिरिक्त और क्या होंगे? आपने जो चाहा है, वही तो आप हैं; उसका ही जोड़! अगर आपकी सारी चाह झड़ जाए, तो आप क्या होंगे, कभी सोचा है! एक निपट शून्य; ना- कुछ।
लेकिन उसी शून्य से, उसी ना-कुछ से जीवन का द्वार खुलता है।
असल में, सभी द्वार शून्य से खुलते हैं। आप एक मकान बनाते हैं, आप उसमें एक दरवाजा बनाते हैं। आपने ख्याल रखा कि दरवाजा क्या है? दरवाजा सिर्फ एक शून्य है। जहां आपने दीवार नहीं बनाई है, वह दरवाजा है। ठीक से समझें, तो दरवाजे का अर्थ होता है, जहां कुछ भी नहीं है। दीवार से भीतर प्रवेश नहीं होगा। प्रवेश तो दरवाजे से होगा। दरवाजे का मतलब क्या होता है? दरवाजे का मतलब जहां शून्य है। जहां कुछ भी नहीं है, वहां से आप प्रवेश करते हैं। और जहां कुछ है, वहां से आप प्रवेश नहीं करते। अब यह बहुत मजे की बात है, मकान में प्रवेश मकान से कभी नहीं होता। उस जगह से होता है, जहां शून्य होता है, जहां कुछ भी नहीं होता, मकान नहीं होता। दरवाजे का मतलब है, मकान का न होना। दरवाजे को छोड़ कर मकान होता है।
तो जब तक हमारे भीतर ऐसा शून्य हमें न मिल जाए, जहां कुछ भी नहीं है, तब
तक हम उस जीवन के परम रहस्य में प्रवेश न कर पाएंगे। वह महल हमसे अपरिचित और अनजाना ही रह जाएगा।
तो लाओत्से कहता है, उखाड़ डालो सारी पर्तें कामना की। एक भी पर्त कामना की न रह जाए।
हम भी कभी-कभी कामना की पर्तें तो उखाड़ते हैं। लेकिन हम एक उखाड़ते हैं तभी, जब हम उससे बड़ी निर्मित कर लेते हैं। हम भी वासनाओं को छोड़ते हैं। पर हम एक वासना को तभी छोड़ते हैं, जब उससे बड़ी वासना को रिप्लेस, उसको उसकी जगह परिपूरक कर लेते हैं। असल में, हम छोड़ते तभी हैं किसी वासना को, जब उससे बड़ी वासना पर हमारा पैर पड़ जाता है। छोटे मकान हम छोड़ देते हैं बड़े मकानों के लिए, छोटे पद हम छोड़ देते हैं बड़े पदों के लिए। हम भी छोड़ते हैं। पर सदा और बड़ा परकोटा निर्मित हो जाए, तब हम कोई छोटी दीवार छोड़ते हैं।
और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हम जीवन की पूरी वासना का ढांचा भी छोड़ते हैं। एक आदमी धन खोजता था, पद खोजता था, यश खोजता था। सब बंद कर देता है; पदों से नीचे उतर जाता है, धन का त्याग कर देता है, वस्त्र छोड़ नग्न हो जाता है। और कहता है, मैं अब प्रभु को खोजने जाता हूं। सब छोड़ देता है। लेकिन तब एक और विराट वासना के पीछे सारा ढांचा तोड़ देता है। अब कोई भी उससे न कह सकेगा कि वह धन खोज रहा है। कोई भी न कह सकेगा, पद खोज रहा है। कोई भी न कह सकेगा कि वह प्रतिष्ठा खोज रहा है।
लेकिन अगर ईश्वर शब्द में हम गौर करें, तो हमें सब मिल जाएगा। ईश्वर शब्द बनता है ऐश्वर्य से। परम ऐश्वर्य का नाम ईश्वर है। अब वह उस ऐश्वर्य को खोज रहा है, जिसका कभी अंत नहीं होता। अब वह उस धन की तलाश में है, जिसे चोर चुरा नहीं सकते। अब वह उस संपदा की खोज कर रहा है, जिसे मृत्यु छीन नहीं सकती। पर सब खोज वही है। अब वह उस पद को खोज रहा है, जिस पद से वापस उतरना नहीं होता। अब वह उस प्रतिष्ठा को खोज रहा है, जिसका कोई अंत नहीं है। लेकिन खोज जारी है। नाम उसने अपनी खोज का ईश्वर रखा है।
ध्यान रहे, ईश्वर को कोई भी वासना का विषय, आब्जेक्ट नहीं बना सकता है। और बनाएगा तो वहां ईश्वर को न पाएगा, अपनी ही पुरानी वासनाओं को नए रूप में स्थापित पाएगा। मोक्ष को कोई वासना का विषय नहीं बना सकता है, आब्जेक्ट नहीं बना सकता। और अगर बनाएगा तो मोक्ष केवल एक नया कारागृह-- सुंदर, स्वर्ण से निर्मित, फूलों से सजा, पर एक नया कारागृह ही सिद्ध होगा। असल में, वासना हमें कभी भी कारागृह के बाहर नहीं ले जा सकती। जहां तक चाह है, वहां तक बंधन है।
लाओत्से कहता है, उखाड़ डालो, हटा डालो, एक-एक पर्त को तोड़ दो कामवासना की। क्यों? क्योंकि तभी जीवन में जो छिपा हुआ अतल रहस्य है, उस अतल रहस्य की गहराइयों को मापना हो, तो इसके लिए निष्काम हो जाना ही उपयोगी है। निष्काम का अर्थ है, समस्त कामनाओं से शून्य।
शांति की कामना मन में रह जाती है, ध्यान की कामना मन में रह जाती है, समाधि की कामना मन में रह जाती है। और मन बहुत चालाक है। मन कहता है, कोई

हर्ज नहीं, अब तुम्हें पद नहीं चाहिए, ध्यान तो चाहिए; अब तुम्हें धन नहीं चाहिए, शांति तो चाहिए। और मन जीता है न धन में, न ध्यान में, न शांति में, न स्वर्ग में। मन जीता है चाह में, चाहने में, वह डिजायरिंग में। इसलिए मन कहता है, कोई भी विषय काम दे देगा, कोई हर्ज नहीं। पर कुछ तो चाहिए। निष्काम का अर्थ है, कुछ भी नहीं चाहिए। और ध्यान रहे, मन की चालाकी बहुत गहरी है। यहां तक वह चालाकी कर सकता है कि कहे कि कुछ भी नहीं चाहिए, यही मेरी चाह है। निष्काम होना है, यही मेरी कामना है। लेकिन मन फिर पीछे खड़ा ही रहेगा।
रवींद्रनाथ ने गीतांजलि में कहीं एक पंक्ति में प्रभु से गाया है, प्रभु से प्रार्थना की हैः तुझसे कुछ और नहीं चाहता, इतनी ही चाह है कि मेरे मन में कोई चाह न रह जाए!
पर कोई फर्क नहीं पड़ता, कोई भी फर्क नहीं पड़ता है। और अगर कोई गहराई से देखे, तो जो मांगता है कि मुझे दस हजार रुपए मिल जाएं, जो मांगता है कि मुझे एक बड़ा मकान मिल जाए, उसकी चाह इतनी बड़ी नहीं, जितनी रवींद्रनाथ की है। वह बेचारा बहुत दीन है। वह मांग ही क्या रहा है? उसकी मांग का मूल्य ही क्या है? रवींद्रनाथ कहते हैं, कुछ और नहीं चाहिए सिवाय इसके कि अचाह मिल जाए, चाह के बाहर हो जाऊं। पर यह चाह है--अंतिम, आखिरी, अति सूक्ष्म।
और लाओत्से कहता है, निष्काम! उखाड़ डालो, आखिरी दम तक उखाड़ डालो।
लाओत्से के पास कोई मिलने आया है, एक युवक। और लाओत्से से कहता है, मुझे शांति चाहिए। लाओत्से कहता है, कभी न मिलेगी। वह युवक कहता है, ऐसी मुझमें आपको क्या कठिनाई मालूम पड़ती है? ऐसा मैंने क्या पाप किया है कि मुझे शांति कभी न मिलेगी? लाओत्से कहता है, जब तक तू चाहेगा शांति को, तब तक नहीं मिलेगी। हमने भी चाह कर देखा बहुत दिन तक। और आखिर में पाया कि शांति की चाह जितनी बड़ी अशांति बन जाती है, उतनी जगत में कोई अशांति नहीं है। इस शांति को चाहना छोड़ कर आ।
एक और घटना मुझे याद आती है। लिंची के पास कोई एक साधक आया है और लिंची
से कहता है, सब मैंने छोड़ दिया। लिंची कहता है, कृपा कर, इसे भी छोड़ कर आ! वह युवक कहता है, लेकिन मैंने सब ही छोड़ दिया। लिंची कहता है, इतना भी बचाने की कोई जरूरत नहीं।
इतना सूक्ष्म है निष्काम का भाव!
वह युवक कह रहा है कि मैं सब छोड़ दिया। लिंची कहता है, इसे भी छोड़ आ। इतने से को क्यों बचा रहा है? नहीं, वह कहता है, मेरे पास कुछ बचा ही नहीं है। लिंची कहता है, इसे भी मत बचा।
वासना, कामना, चाह, बहुत घूम-घूम कर अनेक-अनेक द्वारों से हमें पकड़ती है।
निष्काम होने का अर्थ हैः मैं जैसा हूं, वैसा राजी हूं। अशांत हूं तो अशांत; बेचैन हूं तो बेचैन; बंधन में हूं तो बंधन में; दुखी हूं तो दुखी।
मैं जैसा हूं, टोटल एक्सेप्टबिलिटी, इसकी समग्र स्वीकृति। नहीं, मुझे इंच भर भी अन्यथा होने का सवाल नहीं है। जो हूं, हूं।
तो फिर कोई गति नहीं, फिर कोई मोटिवेशन नहीं। फिर कोई यात्रा कैसे शुरू होगी? फिर मन कैसे कहेगा, वहां चलो, वह पा लो। मैं जो हूं, हूं।
ताओ का सार अंश तथाता है--स्वीकृति। जहां समग्र स्वीकृति है, वहां निष्कामता है। और जहां जरा सी भी अस्वीकृति है, वहीं चाह का जन्म है। जरा सी अस्वीकृति, और पैदा हुई चाह, और काम आया, वासना ने पकड़ा, दौड़ शुरू हुई। ख्याल किया आपने, अस्वीकृति से चाह का जन्म होता है। हम सब चाहों में जीए हैं, जीते हैं। अपनी एक-एक चाह को खोज कर देखेंगे, तो फौरन पता चल जाएगा कि किस अस्वीकृति से यह चाह पैदा हुई, कौन सी चीज थी जो आपने चाही ऐसी न हो, अन्य हो, अन्यथा हो, भिन्न हो, और चाह का जन्म हुआ।
नसरुद्दीन के जीवन में पढ़ा है मैंने। एक दिन गांव से कोई की अरथी गुजर रही है, कोई मर गया है। मुल्ला का घर पड़ा है बीच में, नसरुद्दीन का। बड़ा आदमी मरा है गांव का। करीब-करीब गांव के सभी प्रतिष्ठित लोग अरथी में सम्मिलित हुए हैं। नसरुद्दीन का घर बीच में पड़ा देख कर सम्मानवश अनेक लोगों ने नसरुद्दीन के झोपड़े की तरफ हाथ उठा कर सलाम किया है, नमस्कार किया है।

नसरुद्दीन की पत्नी बाहर खड़ी है। वह दौड़ कर आकर मुल्ला को कहती है कि मुल्ला, नगर में कोई प्रतिष्ठित जन गुजर गया है, बहुत लोग अरथी में जा रहे हैं; तुम्हारी तरफ देख कर, तुम्हारे झोपड़े की तरफ देख कर अनेक लोग नमस्कार कर रहे हैं।
नसरुद्दीन ने कहा, हो सकता है, आवाज मुझे सुनाई पड़ती थी; लेकिन उस समय मैं दूसरी करवट लिए हुए लेटा था। और तुझे तो पता ही है कि वह जो आदमी मर गया है, उसकी सदा से गलत आदत है। घड़ी भर बाद भी मर सकता था, तब तक हम करवट उस तरफ किए होते।
नसरुद्दीन तो व्यंग्य कर रहा है आदमी पर। लेकिन वह कहता है कि उस वक्त
हम दूसरी तरफ करवट किए हुए थे। नमस्कार लेने को करवट बदलने का भी कोई सवाल नहीं था!
एक बार गांव के लोगों ने सोचा, नसरुद्दीन बहुत मुश्किल में है। कुछ पैसे इकट्ठे किए और नसरुद्दीन को देने आए। वह सीधा, चित्त लेटा हुआ था, खुले आकाश के नीचे, वृक्ष के पास। लोगों ने कहा कि हम कुछ पैसे भेंट करने आए हैं, नसरुद्दीन! सुना कि तुम बहुत तकलीफ में हो। नसरुद्दीन ने कहा, तुम थोड़ी देर से आना, क्योंकि खीसा मेरा नीचे दबा है। जब मैं उलटा लेट जाऊं, तब तुम आकर रख जाना।
नसरुद्दीन ने आदमी पर गहरे व्यंग्य किए हैं। वह कीमती आदमी था।
पर अगर हम निष्काम भाव की गहराई में जाएं, तो हमें पता चलेगा कि जहां हैं, जैसे हैं, स्वीकृत है; उसमें इंच भर यहां-वहां होने की कोई कामना नहीं है। न हो वैसी कामना, तो लाओत्से कहता है, जीवन के रहस्य को, अतल गहराइयों को स्पर्श किया जा सकता है। और गहराइयों में ही जीवन है। सतह पर तो केवल परिधि है; सतह पर तो बाह्य रेखा मात्र है। जैसे मैं आपके शरीर को स्पर्श करके लौट आऊं और कहूं कि मैंने आपको स्पर्श किया। यद्यपि हम ऐसा ही कहते हैं। अगर मैं आपके शरीर को स्पर्श करके लौट आऊं, तो मैं यही कहता हूं कि मैंने आपको स्पर्श किया। यद्यपि केवल बाह्य रूप-रेखा को, आकृति को छूकर आ गया हूं, आपको नहीं स्पर्श किया है। आपके शरीर की जो बाह्य रूप-रेखा है, आकृति है, वह आप नहीं हैं। वह रूप-रेखा तो केवल आप और जगत के बीच एक सीमा है। आप तो गहन गहरे में, भीतर हैं। वह सब तो आपके लिए बाह्य आयोजन है, जिसके भीतर आप हो सके हैं। वह आपका सिर्फ घर है, भवन है, वस्त्र है।
पर दूसरे को हम वस्त्रों से देखते हों और रूप-रेखा छूते हों, वह तो क्षम्य है। हम अपने को भी बाहर से ही देखते हैं और अपने को भी हम शरीर से ही छूते और स्पर्श करते हैं।
पूरे जीवन को हम बाहर से ही छू पाते हैं। लाओत्से कहता है, कामयुक्त
मन के कारण।
इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। कामयुक्त मन गहरे क्यों नहीं जा सकता? तीन सूत्र हैं।
एक, कामयुक्त मन एक जगह एक क्षण से ज्यादा ठहर नहीं सकता, इसलिए खुदाई नहीं कर सकता। कामयुक्त मन भागा हुआ मन है। एक क्षण भी एक जगह रुक नहीं सकता। तो गहरे उतरने के लिए तो खुदाई की जरूरत पड़ेगी। और अगर आप हाथ में एक कुदाली लेकर और दौड़ते हुए खोदते चले जाते हों, तो कुआं आप न खोद पाएंगे। थोड़े-बहुत कंकड़-पत्थर जगह-जगह के उखाड़ देंगे, रास्ते को खराब कर देंगे या जमीन को व्यर्थ के गड्ढों से भर देंगे, लेकिन कुआं आप न खोद पाएंगे। कुआं खोदने के लिए एक जगह, एक जगह चोट, एक जगह श्रम, प्रतीक्षा--कामयुक्त मन वह नहीं कर पाता। कामयुक्त मन सदा भागा हुआ है। कहना चाहिए, एक कदम आपसे सदा आगे है। आप जहां होते हैं, वहां से थोड़ा आगे ही भागा हुआ होता है। जैसे छाया आपके पीछे चलती है, ऐसे काम आपके आगे चलता है। जहां आप हैं, वह आगे के दर्शन दिलाने लगता है।
तो एक तो कामयुक्त मन क्षण भर भी ठहरता नहीं; ठहराए बिना कोई गहराई नहीं है।
दूसरा, कामयुक्त मन कभी भी वर्तमान में नहीं होता, कभी भी। और जीवन वर्तमान में है। कामयुक्त मन होता है सदा भविष्य में। जीवन को छूना है तो इसी क्षण छूना पड़ेगा। और कामयुक्त मन कहता है, किसी और क्षण में सब कुछ छिपा है। कल जहां मैं पहुंचूंगा, वहां सब आनंद के द्वार खुलेंगे। कल जहां

मैं पहुंचूंगा, वहां खजाने गड़े हैं। आज? आज तो कुछ भी नहीं है। कामयुक्त मन वर्तमान के प्रति अत्यंत उदास और भविष्य के प्रति अति आतुर मन है। और जीवन का रहस्य तो है वर्तमान में।
असल में, अस्तित्व में सिर्फ वर्तमान है; न तो अतीत है कुछ और न भविष्य
है कुछ। अस्तित्व सदा वर्तमान है। अस्तित्व सदा है। अतीत और भविष्य कामयुक्त मन की विडंबनाएं हैं। मन अतीत को सम्हाल कर रखता है, क्योंकि अतीत के ही सहारे भविष्य की यात्रा की जा सकती है। इसलिए जिसे हम भविष्य कहते हैं, वह हमारे अतीत का ही पुनरावर्तन है; अतीत का ही प्रतिफलन, उसका ही रिफ्लेक्शन है, या कहें उसका ही प्रोजेक्शन है। जो-जो हमने अतीत में पाया है, उसे ही हम फिर-फिर करके भविष्य में पाना चाहते हैं, थोड़े हेर-फेर से। तो हम अपने अतीत को सम्हाल कर रखते हैं, ताकि हम अपने भविष्य को निर्मित कर सकें।
लेकिन अतीत केवल स्मृति है, अस्तित्व नहीं। और भविष्य केवल कल्पना है, अस्तित्व नहीं। भविष्य केवल स्वप्न है, जो अभी घटा नहीं; और अतीत वह स्वप्न है, जो घट गया। और जो है सदा, वह न तो अतीत है और न भविष्य है। वह वर्तमान है। शायद उसे वर्तमान कहना भी एकदम ठीक नहीं है। ठीक इसलिए नहीं है कि वर्तमान हम कहते उसे हैं, जो अतीत और भविष्य के बीच में होता है। लेकिन अगर अतीत भी झूठ है और भविष्य भी झूठ है, तो उन दोनों के बीच में कोई सत्य नहीं हो सकता। दो झूठों के बीच में सत्य के अस्तित्व का कोई उपाय नहीं है।
इसलिए अगर और ठीक से हम कहें, तो वर्तमान भी नहीं है, अस्तित्व इटरनिटी है, शाश्वतता है, सनातनता है। न वहां कभी कुछ मिटता है और न कभी वहां कुछ होता है, वहां सब है। सारी स्थिति है की है। और इस है में जो प्रवेश करे, इस इ.जनेस में, वह जीवन की अतल गहराइयों को छू पाएगा। कामयुक्त मन तो दौड़ता रहेगा परिधि पर। अतीत से लेगा रस, भविष्य में फैलाएगा स्वप्न; अतीत में डालेगा जड़ें, भविष्य में फैलाएगा शाखाएं--उन फूलों के लिए जो कभी आएं। और अस्तित्व? अस्तित्व अभी बीता जा रहा है। वह अभी है। इसी क्षण है, यहीं है।
तीसरी बात, जीवन है निकटतम। निकटतम कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि हम स्वयं जीवन हैं। निकटतम भी हो, तो भी हमसे थोड़ा दूर हो गया। जीवन हम स्वयं हैं। और कामयुक्त मन सदा दूर की तलाश है, दि फार अवे। कामयुक्त मन सदा दूर की तलाश है। और जीवन है निकटतम, निकटतम से भी निकट। और कामयुक्त मन है दूर से भी दूर। इन दोनों का कहीं मिलन नहीं होता। जीवन का और मन का कहीं भी मिलन नहीं होता।
किप्लिंग ने कहीं गीत गाया है कि पूरब और पश्चिम कहीं नहीं मिलते।
वे शायद कहीं मिल भी सकते हों, लेकिन मन और जीवन कहीं नहीं मिलते। हैरानी की लगेगी बात कि मन और जीवन कहीं नहीं मिलते। इसलिए जो मन से भरा है, वह जीवन से रिक्त हो जाता है। और जो मन से खाली होता है, वह जीवन से भर जाता है।
लेकिन कठिनाई मालूम पड़ेगी, क्योंकि हम तो मन से ही भरे हैं। तो हमें जीवन का कोई पता चला या नहीं चला? नहीं, हमें जीवन का कोई पता नहीं चला है। हमने मन को ही जीवन समझा है। और मन को जीवन समझ लेना ऐसे ही है, जैसे कंकड़-पत्थरों को कोई हीरा समझ ले। या वृक्ष से गिरते हुए सूखे पत्तों को कोई फूल समझ ले और कभी आंख उठा कर ही न देखे कि ऊपर फूल भी खिलते हैं। सूखे पत्ते जो वृक्ष से गिर जाते हैं, वर्जित, फेंक दिए जाते हैं, निष्कासित, उनको बीनता रहे और समझे कि फूल हैं, उनके ढेर लगा ले और तिजोरियां भर ले। मन केवल राख है अतीत की। जैसे रास्ते से कोई राहगीर गुजरे तो कपड़ों पर धूल जम जाए, ऐसा अस्तित्व से गुजर कर जो राख हम पर इकट्ठी हो जाती है मार्गों की, उसका संग्रह है मन। उसी संग्रह से हम भविष्य के संबंध में सोचते चले जाते हैं।
लाओत्से उसकी जड़ को काट डालना चाहता है। इसलिए लाओत्से कहता है, काम
से मुक्त। क्योंकि काम जहां नहीं है, वहां मन ठहर नहीं सकता। काम जड़ है। अगर बुद्ध से जाकर पूछेंगे, तो बुद्ध कहेंगे, तृष्णा! बस तृष्णा न हो तो सब मिल जाएगा तुम्हें। ठीक शब्द है तृष्णा। जिसको लाओत्से कह रहा है

डिजायरिंग, कामना, पैशन, वासना, उसे बुद्ध कह रहे हैं तृष्णा। महावीर उसे कहते हैं प्रमाद। अलग-अलग शब्द लोगों ने उपयोग किए हैं। पर एक, मन को काटने की जो जड़ है, वह एक ही है।
जिसने कुछ चाहा, वह मन के बाहर न हो सकेगा। जिसने कुछ भी न चाहा, वह इसी क्षण मन के बाहर है, इसी क्षण! उसे कल तक रुकने की जरूरत नहीं है। अगर इसी क्षण बैठ कर आप इतना साहस जुटा पाएं कि अब मैं नहीं कुछ चाह रहा हूं, तो इसी क्षण आप जन्मों-जन्मों की अंधी स्थिति के बाहर हो सकते हैं। इसी क्षण! लेकिन धोखा होगा। और धोखा इसलिए नहीं होता कि बाहर होना असंभव है। धोखा इसलिए होता है कि आप पूरे मन के राज को नहीं समझ पाते हैं। मेरी बात सुनेंगे तो आपके मन में होगा, अगर हो सकते हैं बाहर तो क्यों न हो जाएं? अभी हो जाएं। हो जाना चाहिए।
अगर आपने हो जाने की चाह निर्मित की और आपने इसलिए आंख बंद की कि अच्छा है, मुक्त हो जाएं झंझट से, शांत हो जाएंगे, परम आनंद बरस पड़ेगा, यह तृष्णा को तोड़ ही दें, तो द्वार खुल जाएंगे जीवन के रहस्य के, अगर आपने इसको भी चाह का रूप दिया, तो आप फिर छटक गए, फिर भटक गए।
एक सूफी फकीर हुआ है, बायजीद। बायजीद जब पहली दफा अपने गुरु के पास गया, तो उसे बड़ी नींद की आदत थी। गुरु समझाता रहता, बायजीद सो जाता। गुरु बायजीद को बाहर पहरे पर बिठालता, बायजीद सो जाता। गुरु ने बहुत बार कहा कि देख, तू सोने से ही चूक जाएगा। पर बायजीद कहता कि मैं इतना तो जागता रहता हूं; ऐसा तो नहीं कि सोया ही रहता हूं। बहुत जागता भी हूं, थोड़ा सोता भी हूं। पर उसके गुरु ने कहा, तुझे पता नहीं है कि कभी ऐसा होता है कि चौबीस घंटे जागे हो और एक क्षण को सो गए हो और सब खो जाता है।
बायजीद ने उस रात एक सपना देखा कि वह मर गया है और स्वर्ग के द्वार पर पहुंच गया है। द्वार बंद हैं और द्वार पर एक तख्ती लगी है कि जो भी द्वार पर आए और प्रवेश का इच्छुक हो, वह चुपचाप बैठ जाए। एक हजार वर्ष में एक बार द्वार खुलता है, एक क्षण को। सजग हो बैठा रहे, जब द्वार खुले, भीतर प्रवेश कर जाए। बायजीद बड़ा घबड़ाया, एक हजार साल में एक बार खुलेगा एक क्षण को! और झपकी तो, एक हजार साल का मामला है, लगती ही रहेगी। बड़ी साहस करके, बड़ी हिम्मत जुटा कर, बड़ी ताकत लगा कर, आंखों को खोल कर बैठा-बैठा-बैठा, फिर झपकी लग गई। जब झपकी खुली तो देखा कि द्वार बंद हो रहा था। घबड़ाया, भागा, लेकिन द्वार बंद हो चुका था। फिर बैठा, फिर एक हजार साल बीते। फिर एक दिन झपकी लगी थी, आवाज आई कि द्वार खुला जैसे। लेकिन मन ने कहा, यह सब सपना है; ऐसे द्वार नहीं खुला करते। अभी हजार साल भी कहां पूरे हुए! फिर भी घबड़ा कर उठा, लेकिन देखा कि द्वार बंद हो रहा है। नींद खुल गई। सपने थे।
गुरु के पास, आधी रात थी, उसी वक्त गया। और कहा, अब पलक न झपकाऊंगा, मुझे माफ कर दें। गुरु ने कहा, हुआ क्या? अपना सपना कहा। गुरु ने कहा, तूने ठीक से नहीं देखा। दरवाजे के इस तरफ तख्ती लगी थी कि हजार साल में एक बार द्वार खुलेगा, एक क्षण को खुला रहेगा और फिर बंद हो जाता है। जब द्वार बंद हो रहा था, तूने दूसरी तरफ लगी हुई तख्ती देखी कि नहीं? बायजीद ने कहा, दूसरी तरफ की तख्ती देखने का मौका नहीं मिला। द्वार करीब-करीब बंद ही हो रहा था तभी, तभी दो दफा... ।
बायजीद के गुरु ने कहा, अब दुबारा कभी सपना आए तो दूसरी तरफ की तख्ती
भी एक दफा देख लेना। उस पर यह भी लिखा है कि यह द्वार तभी खुलता है, जब तुम सोते हो।
जब हम मूर्च्छित होते हैं, तभी द्वार खुलता है। ऐसा द्वार के खुलने की क्या शर्त हो सकती है?
असल बात यह है, अगर और गहरे में जाएं--बायजीद के गुरु ने उससे नहीं कहा--अगर और गहरे में जाएं, तो जब द्वार खुलता है, तभी हम मूर्च्छित हो जाते हैं। वह हमारे मन का कारण है। ऐसा नहीं कि जब हम मूर्च्छित होते हैं, तब द्वार खुलता है। लेकिन जब द्वार खुलता है, तभी हम मूर्च्छित हो जाते हैं। क्योंकि अगर वह द्वार एक दफा हमें खुला दिख जाए, तो फिर मन के बचने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए मन अपनी पूरी सुरक्षा करता है; वह अपने को बचाने के पूरे इंतजाम करता है। सब तरह के इंतजाम करता है।

अभी परसों एक युवक मेरे पास आए। और उन्होंने कहा कि ध्यान में तो... । अभी दो महीने पहले आए थे, तो बड़े बेचैन थे। मन शांत कैसे हो? अशांति बहुत है; बेचैनी, घबड़ाहट बहुत है। मन शांत होना शुरू हुआ, घबड़ाहट कम होनी शुरू हुई। तो अभी वे एक नई घबड़ाहट लेकर आए थे, वे यह कह रहे थे कि मन तो शांत हो रहा है, घबड़ाहट भी कम हो रही है, लेकिन अब एक नया डर लगता है कि और भीतर प्रवेश करना या नहीं?
क्या डर है?
कहीं ऐसा तो न होगा कि जीवन की वासनाओं में रुचि कम हो जाए? कहीं ऐसा
तो न होगा कि जीवन की जो चारों तरफ दौड़ है, उसमें रुचि कम हो जाए? ऐसा तो न होगा कि मेरी महत्वाकांक्षा मर जाए? नहीं तो फिर विकास कैसे करूंगा?
ठीक कह रहे हैं, मन ऐसी ही बातें खोज कर लाता है। तभी द्वार खुलता है, तभी मन ऐसी बातें खोज लाता है। ऐसा तो न होगा कि मेरा सब बना-बनाया जो व्यवस्था है, वह बिगड़ जाए? मन तत्काल कोई खबर भीतर से खोज लाता है।
अभी एक सज्जन ने मुझे लिखा कि ध्यान बहुत गहरा जा रहा है, लेकिन अब मैं
कर नहीं पाता हूं, क्योंकि मुझे ऐसा डर लगता है कि कहीं ध्यान में मैं मर न जाऊं! ऐसी घबड़ाहट होती है कि ध्यान में मैं मर न जाऊं! अगर ध्यान में मर गया, तो फिर क्या होगा? आप जिम्मेवार होंगे?

मैंने कहा, तुम्हारा क्या ख्याल है, बिना ध्यान के मरोगे ही नहीं? अगर तुम्हारा यह पक्का हो कि तुम बिना ध्यान के मरोगे ही नहीं, तो ध्यान में मरोगे तो जिम्मा मैं ले सकता हूं। लेकिन अगर तुम बिना ध्यान के भी मर सकते हो, तो ध्यान का जिम्मा मुझ पर क्यों डालते हो?
लोग मुझे लिखते हैं, हम पागल तो न हो जाएंगे? ध्यान गहरा होता है तो हम पागल तो न हो जाएंगे?
मन फौरन ही इंतजाम करता है। जैसे ही आप उस जगह पहुंचेंगे जहां द्वार खुलता हो, मन कहेगा कि नहीं, अब आगे मत बढ़ना; बस अब लौट चलो। अब कोई भी बहाना खोजेगा।
मैं लोगों को समझाता रहा हूं कि वस्त्र बदलने से कुछ भी न होगा, नाम बदलने से कुछ न होगा, संन्यास लेने से कुछ न होगा। तो वे लोग मेरे पास आते थे और कहते थे कि कुछ तो बाहर का सहारा दें! अगर बाहर कोई भी सहारा नहीं, तो हम भीतर कैसे जाएं? तो आप तो ऐसी बात करते हैं कि हम भीतर जा ही न सकेंगे। माला नहीं, कपड़े नहीं, पूजा नहीं, मूर्ति नहीं, मंदिर नहीं, उपवास नहीं, कुछ भी नहीं, तो हम भीतर कैसे जाएं? कुछ बाहर का सहारा दें। मैंने कहा, ठीक, बाहर का सहारा देता हूं। अब वे ही लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, कपड़े बदलने से क्या होगा? माला पहनने से क्या होगा? पूजा, प्रार्थना, कीर्तन से क्या होगा? ये तो सब बाहर की चीजें हैं।
मैं बड़ी हैरानी में पड़ता हूं कभी कि आदमी का मन कैसा है? और यह एक ही आदमी दोनों बातें कह जाता है और फिर भी नहीं देख पाता कि यह मेरा मन दोनों बातें कहता है। जब भीतर जाने का उपाय बनता है तब वह मन कहता है, बिना सहारे के भीतर कैसे जाओगे? जब बाहर का सहारा दो तो वह मन कहता है, बाहर के सहारे से क्या होगा? जाना तो भीतर है! और अदभुत तो बात यह है कि हमारी बुद्धिहीनता इतनी गहरी है कि हम अपने मन की इन मूढ़तापूर्ण बातों को बिल्कुल भी नहीं समझ पाते। हर बार मन इंतजाम जुटा देता है कि सो जाओ। बहुत क्षुद्र बहाने जुटा देता है कि सो जाओ।
एक मित्र अभी आए और मुझसे कहने लगे कि आपने ही तो सदा कहा है कि किसी
को दुख नहीं देना चाहिए। तो अगर मैं कपड़े संन्यासी के पहनूं तो मेरी पत्नी को दुख होता है।
तो मैंने उनसे पूछा कि तुमने मेरी यह बात कब सुनी थी? कहा, दस साल हो गए। दस साल में तुमने पत्नी को दुख कोई दिया कि नहीं? अगर न दिया हो, तुम्हें मैं संन्यासी मानता हूं। तुम जाओ। तुम्हें कपड़े बदलने की जरूरत नहीं है। उन्होंने कहा, नहीं, दुख तो दिया। तो मैंने कहा, सिर्फ यह कपड़ा पहनते वक्त अब दुख न दोगे। और सारे दुख देते वक्त तुम मेरे पास न आए कि आपने कहा था कि पत्नी को कोई दुख न देना, किसी को दुख न देना। और सब दुख तुमने मजे से दिए।

पर आदमी की मूढ़ता अदभुत है। वह कहेगा, यह कपड़े बदलने से पत्नी को दुख
हो जाएगा। और आपने ही तो कहा था कि किसी को दुख मत देना। अगर तुमने दुख देने बंद कर दिए हैं, तो बिल्कुल ठीक है, मत दो दुख।
नहीं, वह कहते हैं, दुख देना तो कुछ बंद नहीं किए, मैं तो वैसे ही का वैसा हूं। और सब तो चलता ही है।
हैरानी जो है, वह यह है कि हम अपने मन को कभी जरा दूर से खड़े होकर नहीं देख पाते कि वह कब हमें सोने की सलाह देता है। और सलाह वह ऐसी देता है कि लगेगा कि बिल्कुल ठीक है। बात तो बिल्कुल ठीक है। मगर यह पत्नी सिर्फ बहाना है। यह मन है असली चीज। यह मन पत्नी का बहाना ले रहा है। यह बगल की, पड़ोस की स्त्री को देखते वक्त इसने कभी बहाना नहीं लिया था कि पत्नी को दुख होगा। इसने कहा, कैसी पत्नी! कैसा क्या! ये सब तो, ये सब तो कामचलाऊ नाते-रिश्ते हैं। संसार में कौन किसका है? तब कभी ख्याल में नहीं आता है। लेकिन मन, जब भी मन के पार जाने का कोई कदम उठाने को हम होंगे, तभी सोने
की सलाह देता है। वह द्वार खुलता है स्वर्ग का, ऐसा नहीं कि जब आप सोते हैं; वह जब खुलने को होता है, तभी मन कहता है, सो जाओ! हजार बहाने जुटा लेता है कि कितनी देर से जग रहे हो! थक गए हो, अब सो जाना चाहिए।
लाओत्से कह रहा है, कामना ही मन है। और निष्काम हुए बिना जीवन की गहराई में उतरने का कोई भी उपाय नहीं है।

प्रश्नः ओशो, कृपया यह बतलाएं कि क्या लाओत्से के ये सारे उपदेश पराजित जीवन के हारे हुए व्यक्ति के उपदेश नहीं हैं? क्या इन उपदेशों के मूल में एक प्रकार की निषेधात्मक अभिवृत्ति या पलायनवादिता नहीं है? तथाता या स्वीकृति की इस नीति से शोषण के तंत्र को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा? और अंत में, क्या इन उपदेशों को केवल कोरी सैद्धांतिक आदर्शवादिता नहीं कह सकते? ये व्यावहारिक नहीं हैं, और न इनमें काम से मुक्त होने का या अमूर्च्छित होने का उपाय बताया गया है।

लाओत्से उपाय में विश्वास नहीं करता। क्योंकि लाओत्से कहता है, उपाय
तो वासना के ही होते हैं। निर्वासना का कोई उपाय नहीं होता। उपाय का मतलब होता है, साधन। उपाय का मतलब होता है, मार्ग। उपाय का मतलब होता है, कहीं पहुंचने के लिए की गई कोई क्रिया। मार्ग का मतलब होता है, किसी मंजिल को जोड़ने वाली व्यवस्था, कोई सेतु, साधन।
लाओत्से कहता है, वासना के लिए उपाय की जरूरत है, मार्ग की जरूरत है, दौड़ने की जरूरत है, श्रम की जरूरत है, प्रयत्न की जरूरत है। निर्वासना के लिए तो समझ, अंडरस्टैंडिंग काफी है। निर्वासना के लिए समझ काफी है, कोई उपाय आवश्यक नहीं हैं--लाओत्से के लिए। और जो भी समझ पाए पूरी बात को, उसके लिए भी कोई उपाय आवश्यक नहीं हैं। सब उपाय नासमझों के लिए दिए गए खिलौने हैं, धीरे-धीरे छीनने की व्यवस्था है। इकट्ठा वे न छोड़ सकेंगे, इसलिए धीरे- धीरे छुड़ाने का आयोजन है।
लाओत्से तो कहता है कि अंडरस्टैंडिंग, समझ, प्रज्ञा! अगर ख्याल में आ जाए मन का यह जाल, तो आप इसी क्षण बाहर हो जाएंगे ख्याल में आने से ही, कोई और उपाय की जरूरत नहीं है। मुझे यह समझ में आ जाए कि यह जहर है, तो यह प्याला मेरे हाथ से छूट जाएगा। इस प्याले को छुड़ाने के लिए मुझे कोई कसरत करने की जरूरत नहीं है। मुझे समझ में आ जाए, आग जलाती है, तो यह हाथ आग की तरफ जाने से रुक जाएगा। इसे रोकने के लिए मुझे दो-चार पहलवान लगाने की जरूरत नहीं है।
उपाय तो तब करने पड़ते हैं जब समझ न हो, समझ हो तो उपाय की जरूरत नहीं है। इसलिए दो मार्ग हैं। एक मार्ग है उपाय का, नासमझी का। नासमझ आदमी कहता है, समझ तो मेरे पास नहीं है, कोई उपाय बता दो, जिससे मैं समझ की कमी पूरी कर लूं। कोई तरकीब, कोई टेक्नीक, कोई मेथड। नासमझी उपाय मांगती है, बिना उपाय के नहीं जी सकती। समझदारी के लिए किसी उपाय की जरूरत नहीं है। बात समझ में आ गई और बात समाप्त हो गई। समझ लेना ही काफी है। उसका कारण है। क्योंकि लाओत्से जैसे लोगों का ख्याल है कि हम वस्तुतः बंधे हुए नहीं हैं, हमें बंधे होने का सिर्फ ख्याल है। हम बीमार नहीं हैं, केवल अज्ञानी हैं।

दो बातें हैं। एक आदमी बीमार है, सच में बीमार है। वास्तविक बीमारी उसके छाती को पकड़े हुए है। तब तो दवा की जरूरत पड़ेगी ही, उपाय आवश्यक होगा। लेकिन एक आदमी है, जो बीमार बिल्कुल नहीं है, सिर्फ वहम है उसे कि मैं बीमार हूं। तब दवा देना मंहगा और खतरनाक भी हो सकता है। क्योंकि दवा तब नई बीमारी बन सकती है। इस आदमी को तो सिर्फ समझ चाहिए कि वह बीमार नहीं है। और अगर इसे दवा भी देनी पड़े कभी, तो शक्कर की गालियां ही देनी पड़ेंगी, पानी ही पिलाना पड़ेगा। वह सिर्फ धोखा ही होने वाला है दवा का। वह दवा होने वाली नहीं है।
लाओत्से का ख्याल है--और ठीक ख्याल है--कि जीवन की जो कठिनाई है, वह अज्ञान की कठिनाई है। वह वास्तविक कठिनाई नहीं है। हम सच में ही परमात्मा से दूर नहीं हो गए हैं, सिर्फ हमें ख्याल है। हम सच में ही अपने जीवन के महल के बाहर चले नहीं गए हैं, चले जाने का हमें सिर्फ ख्याल है। हमने जीवन की संपदा को खोया नहीं है, हम सिर्फ भूल गए हैं। अगर यह बात है, तो लाओत्से कहता है, उपाय की क्या जरूरत है? उपाय का कोई सवाल नहीं है। समझ पर्याप्त होगी। समझ ही उपाय है।
बुद्ध ने कहीं कहा है, कि जो नहीं समझते, उन्हें मैंने विधियां दी हैं। और जो समझते हैं, उन्हें मैंने समझ दी है। जो नहीं समझते, उन्हें मैंने उपाय दिए हैं कि तुम ऐसा-ऐसा करो तो हो जाएगा। जो समझते हैं, उन्हें मैंने समझा दिया है। बात समाप्त हो गई।
करीब-करीब... जैसा कि मनोवैज्ञानिक की कोच पर सैकड़ों मरीज रोज आते हैं, जिन्हें बीमारी नहीं होती। पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, वे बीमार तो हैं ही। बीमारी कोई नहीं है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बीमार तो वे हैं ही। असली बीमारों से भी ज्यादा बीमार हैं! और बीमारी बिल्कुल नहीं है। सिर्फ वहम है, सिर्फ ख्याल है कि बीमारी है। उनका भी इलाज करना पड़ता है। इलाज क्या है? फ्रायड या जुंग क्या करते रहे हैं? कुछ नहीं, उस मरीज से वर्षों तक उसकी बीमारी को उखाड़ कर बात करते रहे हैं। इस बातचीत के दौरान अगर समझ पैदा हो जाए, तो वह आदमी बीमारी के बाहर हो जाता है। और अगर समझ पैदा न हो, तो वह आदमी बीमारी के भीतर रह जाता है।
जीवन की समस्या वास्तविक बीमारी की समस्या नहीं है। जीवन की समस्या
एक भ्रांत, सूडो बीमारी की समस्या है। इसलिए लाओत्से किसी उपाय की बात नहीं करता। वह कहता है, निरुपाय हो रहो! बस, यही उपाय है। जान लो, समझ लो और ठहर जाओ, बस यही उपाय है।
लाओत्से की बात किसी हताशा, किसी पराजय की बात भी नहीं है। यह बहुत मजे की बात है। यह समझनी चाहिए। यह सदा मन में उठती है। लाओत्से जैसे व्यक्तियों की बात सुन कर ऐसा लगता है, एस्केपिस्ट हैं, पलायनवादी हैं। कहते हैं, कुछ चाहो मत। नहीं चाहेंगे तो बढ़ेंगे कैसे? यद्यपि चाह कर कितने बढ़ गए हैं, इसका कोई हिसाब रखा? चाह कर कितने बढ़ गए हैं?
अल्डुअस हक्सले से कोई पूछ रहा था कि आपकी तीन पीढ़ियां--हक्सले परिवार की तीन पीढ़ियां प्रोग्रेस और प्रगति के पक्ष में काम करती रही हैं, बाप और परदादा से लेकर तीन परिवार मनुष्य-जाति की प्रगति हो, इस का काम करते रहे हैं--तो अल्डुअस से किसी ने पूछा है कि आपकी तीन पीढ़ियों ने काम किया है मनुष्य की प्रगति के लिए। आपसे हम लेखा चाहते हैं, ब्योरा चाहते हैं इस बात का कि क्या आप कह सकते हैं कि आदमी आज से पांच हजार साल पहले जैसा था, उससे आज ज्यादा सुखी है? ज्यादा शांत है? ज्यादा आनंदित है? अल्डुअस हक्सले ने कहा, अगर मेरे परदादा से पूछा होता, तो वे हिम्मत
से कह सकते थे कि हां, है! अगर मेरे बाप से पूछा होता, तो वे थोड़ा झिझकते। मैं उत्तर ही नहीं दे सकता।
नहीं, आदमी सुखी भी नहीं हुआ, शांत भी नहीं हुआ, आनंदित भी नहीं हुआ।
और प्रगति काफी हो गई। प्रगति कम न हुई, प्रगति काफी हो गई।
लाओत्से की बात से यह ख्याल उठता है, प्रगति रुक जाएगी। लेकिन आदमी प्रगति के लिए है क्या? या कि प्रगति आदमी के लिए है? अगर आदमी सिर्फ प्रगति के लिए है, तो फिर ठीक है, आदमी की कुर्बानी हो जाए, कोई चिंता नहीं। प्रगति होनी चाहिए; होकर रहनी चाहिए। छोटा मकान बड़ा हो जाना चाहिए; आदमी मर जाए, मर जाए। रास्ते पर दस मील प्रति घंटे की रफ्तार के वाहन हट जाने

चाहिए, हजार मील की रफ्तार के वाहन आ जाने चाहिए; कोई फिक्र नहीं कि रास्ते पर आदमी बचे कि न बचे। चांद-तारों पर पहुंचना चाहिए; कोई फिक्र नहीं, पहुंचने वाला बचे कि न बचे। अगर प्रगति ही लक्ष्य है, तब तो लाओत्से की बात गलत है। लेकिन अगर आदमी, उसका आनंद, उसके जीवन का रस लक्ष्य है, तो लाओत्से की बात सही है। सच तो यह है कि कितनी ही वासना से दौड़ भला कितनी ही हो जाए, पहुंचना नहीं होता है।
ध्यान रखना, दौड़ लिए, इसका मतलब यह नहीं कि पहुंच गए। दौड़ लेने मात्र
से कोई पहुंच नहीं जाता। लेकिन तर्क ऐसा कहता है मन का कि नहीं दौड़ेंगे, तो कहीं न पहुंचेंगे। दौड़ेंगे, तो ही पहुंचेंगे।
लाओत्से कहता है, जीवन की जो परम संपदा है, वह ठहरने और खड़े होने से दिखाई पड़ती है, दौड़ने से दिखाई नहीं पड़ती। और ऐसा लाओत्से अकेला नहीं कहता है। ऐसा बुद्ध भी कहते हैं, महावीर भी कहते हैं, पतंजलि भी कहते हैं। इस जगत में जिन लोगों ने जाना, वे सभी कहते हैं। अगर ऐसा है, तो सब ज्ञानी पलायनवादी हैं और सब अज्ञानी प्रगतिवादी हैं। एक भी ज्ञानी लाओत्से से भिन्न नहीं कहेगा।
फिर यह भी मजे की बात है कि ये सब अज्ञानी, जो प्रगति करते हैं, घूम कर
आज नहीं कल किसी न किसी लाओत्से के चरण में जाते हैं कि शांति चाहिए। लाओत्से कभी इन अज्ञानियों के चरणों में कभी नहीं गया कि शांति चाहिए। प्रगतिवादी सदा ही किसी दिन पलायनवादी के चरण में बैठ जाता है कि मुझे शांति दो। वह पलायनवादी कभी किसी प्रगतिवादी के पास पूछने नहीं जाता कि तुम्हें बड़ा आनंद मिल गया, थोड़ा आनंद मुझे भी दो। निरपवाद रूप से ऐसा क्यों होता है? लाओत्से के पास भी आंखें हैं, बुद्ध के पास भी आंखें हैं। उनको भी तो दिखाई पड़ेगा कि प्रगतिवादी आगे पहुंचा जा रहा है, हम भटक गए। लेकिन ऐसा कभी नहीं होता कि बुद्ध उनके पास आएं पूछने। वही प्रगतिवादी जाता है लौट-लौट कर पूछने कि मेरा मन बड़ा अशांत है, बड़ा पीड़ित हूं, बड़ा परेशान हूं।
नहीं, पलायन से नहीं। स्थिति कुछ ऐसी है। शब्द से कुछ खतरा नहीं है, लेकिन शब्द के कनोटेशंस! घर में आग लगी है और अगर मैं घर के बाहर भागने लगूं और आप कहें कि पलायनवादी हो! भागते हो घर के बाहर! तो एक अर्थ में शाब्दिक तो ठीक ही है, पलायन है। छोड़ रहा हूं घर; जहां आग लगी है, उससे हट रहा हूं। लेकिन आग लगे घर में रहना समझदारी नहीं है। आग लगे घर में रहना अगर समझदारी है, तो जब कोई हार्न बजा रही हो ट्रक तो उसके सामने खड़े रहना बहादुरी है। जो हटता है हार्न सुन कर, एस्केपिस्ट है। भाग रहे हो? यह तो अवसर है परीक्षा का, कि जब हार्न बज रहा है ट्रक का, तब खड़े रहो वहीं। हिम्मत खो रहे हो, साहस कम कर रहे हो!
नहीं, अगर हम जीवन की स्थिति को ठीक से समझें, तो लाओत्से जीवन से नहीं भाग रहा है; लाओत्से सिर्फ मूढ़ता से हट रहा है। लाओत्से सिर्फ आग से हट रहा है, बीमारी से हट रहा है। जीवन में तो गहरे जा रहा है। और हम जो समझ रहे हैं कि हम जीवन में आगे बढ़ रहे हैं, हम सिर्फ निपट मूढ़ता में आगे बढ़ते चले जाते हैं और जीवन से वंचित होते चले जाते हैं। अंतिम कसौटी क्या है? लाओत्से की शक्ल और हमारी शक्ल को मिलाना चाहिए। लाओत्से मरते वक्त भी चिंतित नहीं है, हम जीते वक्त भी चिंतित हैं। लाओत्से मौत को भी आलिंगन करने में आनंदित है, हम जीवन को भी कभी आनंद से आलिंगन नहीं कर पाए। लाओत्से बीमारी में भी हंसता है, हम स्वस्थ होकर भी रोते रहते हैं। कसौटी क्या है? लाओत्से के हाथों में कांटे भी रख दो तो अनुगृहीत हो जाएगा, हमारे हाथों में कोई फूल भी रख जाए तो धन्यवाद का भाव नहीं उठता। नहीं, क्या है मार्ग जिससे हम पहचानें? कौन सा मापदंड है?
लाओत्से पलायनवादी नहीं है। और अगर लाओत्से पलायनवादी है, तो सभी को पलायनवादी होना चाहिए। फिर पलायनवाद धर्म है। क्योंकि लाओत्से व्यर्थ से पलायन करके जीवन की सार्थकता और सार में प्रवेश करता है।
ऐसा लगता है कि शायद इसमें हताशा, निराशा है। जीवन से डर गए, भयभीत हो गए। लड़ने की सामर्थ्य नहीं है। शायद इसलिए हट रहे हो, कमजोर हो। कमजोरी का भी लक्षण लाओत्से नहीं देता।

कमजोरी का जरा लक्षण नहीं देता। बुद्ध और लाओत्से और क्राइस्ट जैसे लोग जितनी सबलता का लक्षण देते हैं, उतनी सबलता का लक्षण कोई भी नहीं देता। और जिनको हम प्रगतिवादी कहते हैं, वे धीरे-धीरे सब नर्वस होते चले जाते हैं, सब। सबके हाथ-पैर कंपने लगते हैं। और सबका स्नायु-मंडल रुग्ण हो जाता है। और सबकी छाती पर हजार तरह के भय प्रवेश कर जाते हैं।
आज अमरीका के मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मुश्किल से दस प्रतिशत लोग हैं जिन्हें हम मानसिक रूप से स्वस्थ कह सकें। तो नब्बे प्रतिशत लोग? और इन दस प्रतिशत का अगर हिसाब लगाने जाया जाए, तो इस दस प्रतिशत में गैर पढ़े- लिखे लोग, ग्रामीण, जंगल में रहने वाले लोग, मजदूर, नीचे वर्ग के लोग हैं। जितनी ऊपर वर्ग की दुनिया है, जितने जो लोग प्रगति कर गए हैं, उतना ही आंकड़ा बड़ा होता चला जाता है। बात क्या है?
लाओत्से जैसी गहरी नींद तो कोई प्रगतिवादी कभी नहीं सो सकता, न लाओत्से जैसा आनंद से भोजन कर सकता है, न लाओत्से जैसे पाचन की क्षमता है। न लाओत्से जैसा स्वास्थ्य है, न लाओत्से जैसी निर्भयता है। न लाओत्से जैसा मौन है।
न, यह जो बहती हुई आनंद की सतत धारा है लाओत्से में, यह निराशा की खबर नहीं देती, हताशा की खबर नहीं देती। यह आदमी हारा हुआ नहीं है। लाओत्से तो कहता है यह कि मुझे कभी कोई हरा नहीं सका। और कोई पूछने लगा, क्यों नहीं हरा सका? तो लाओत्से ने कहा, मैंने कभी किसी को जीतना ही न चाहा। हरा तो तभी सकते हो, जब मैं किसी को जीतना चाहूं। मुझे हराओगे तो तभी, जब मैं जीतने को निकलूं। मैं किसी को जीतने न निकला।
हमें लगेगा कि शायद लाओत्से इसलिए जीतने नहीं निकला कि लड़ने से डरता है।
और लाओत्से कहता है, जीतने इसलिए न निकला कि तुम्हारी दुनिया में जीतने योग्य कुछ भी था नहीं। कुछ दिखा ही नहीं कि कुछ जीतने योग्य है। इन क्षुद्र चीजों को, जिनके लिए तुम जीतने जाते थे, इनको मैंने जीतने योग्य न समझा। और इन क्षुद्र चीजों के लिए हारने के लिए व्यर्थ का उपद्रव खड़ा करना? क्योंकि जीतने निकले कि हारोगे। जीत जाओ, तो भी कुछ नहीं मिलता। और व्यर्थ हार जाओ, तो बेचैनी और परेशानी सिर पर आ जाती है। मैं जीतने ही न गया। इसलिए नहीं कि हारने से डरता था, बल्कि इसलिए कि जीतने योग्य कुछ था नहीं।
यह जो हमें, हमारे मन में जो सवाल उठता है, बिल्कुल स्वाभाविक है। हमें लगता है कि यह तो, यह तो एक पेसिमिस्ट, दुखवादी का दृष्टिकोण है। लेकिन दुखवादी को दुखी होना चाहिए न! तो बड़ी उलटी बात है कि दुखवादी दुखी नहीं मालूम पड़ता। और हम सुखवादी दुखी मालूम पड़ते हैं।

सारे पश्चिम में जब पहली दफा बुद्ध के ग्रंथों का अनुवाद हुआ, तो उन्होंने कहा, यह पेसिमिस्ट है--पार एक्सीलेंस। यह तो आखिरी दम का दुखवादी है बुद्ध। क्योंकि कहता हैः जन्म दुख है, जीवन दुख है, जरा दुख है, मरण दुख है, सब दुख है। यह तो दुखवादी है। लेकिन उनमें से किसी ने न सोचा कि इसके चेहरे की तरफ तो देखो। यह दुखवादी है, तुम सुखवादी हो! तो तुम्हारे चेहरे पर सुख की कोई छाप होनी चाहिए। तुम्हारे चेहरे पर सुख का कोई इशारा नहीं दिखाई पड़ता। और यह आदमी जो कहता है, जन्म दुख है, जीवन दुख है, सब दुख है, इसके आनंद का कोई पारावार नहीं है। तो जरूर कहीं कोई भूल हो रही है। बुद्ध कहते हैं कि जीवन दुख है, इसे जो जान ले, वही आनंद को उपलब्ध होता है। और जो समझे कि जीवन सुख है, वह सिर्फ दुख को उपलब्ध होता है। ठीक है यह गणित बुद्ध का, बहुत ही गहरा है। बुद्ध या लाओत्से कहते हैं कि जो जीवन को सुख समझ कर चलेगा, वह दुख पाएगा, क्योंकि जीवन दुख है। अगर मैं कांटे को फूल मान कर चलूंगा, तो कांटा चुभेगा और दुख पाऊंगा। क्योंकि कांटा है, फूल नहीं है। लेकिन अगर मैं कांटे को कांटा ही मान कर चलूं, तो फिर कांटा मुझे दुख नहीं दे सकता। कांटा दुख देने की तरकीब करता है, फूल जैसा दिखाई पड़ता है, तब दुख दे पाता है। बुद्ध कहते हैं, जीवन दुख है, इसे जान लो; फिर तुमसे तुम्हारे सुख को कोई न छीन सकेगा। और तुमने जीवन को सुख जाना कि तुम दुख में पड़ोगे, क्योंकि तुमने भ्रांति का सिलसिला शुरू किया।

लाओत्से दुखवादी नहीं है। लाओत्से परम आनंदवादी है--परम। आनंद की जितनी उत्कृष्ट चरमता हो सकती है, आत्यंतिकता हो सकती है, लाओत्से आत्यंतिक आनंदवादी है।
लाओत्से का एक शिष्य च्वांगत्से हुआ। च्वांगत्से को चीन के सम्राट ने निमंत्रण भेजा कि तुम आओ और मेरे बड़े वजीर बन जाओ। च्वांगत्से ने खबर भेजी, लेकिन मैं जितने सुख में हूं, उसके ऊपर कोई सुख नहीं। तो वजीर बना कर तुम मुझे नीचे ही उतार पाओगे। क्योंकि इसके आगे तो कोई आनंद है नहीं। अब तो कहीं भी बढ़ना पीछे हटना है। च्वांगत्से ने कहा, अब कहीं भी बढ़ना पीछे हटना है। अब तो इंच भर सरकना, खोना है। क्योंकि जहां मैं हूं, उससे परम कोई आनंद नहीं है।
हमको लगेगा कि वजीर होने का मौका मिलता है, पागल है। खुद सम्राट बुलाता है। नहीं तो एक-एक वोटर के पास जाना पड़ता था। पागल है बिल्कुल, चुपचाप चले जाना था। ऐसा मौका नहीं खोना था। लेकिन च्वांगत्से की समझ उसे कुछ और कहती है। च्वांगत्से की समझ यह कहती है कि मैं जिस परम आनंद में हूं, वहां से जरा भी हिला, तो तुम मुझे नीचे ही उतार लोगे। इसके आगे और कोई गति नहीं है। तुम सम्हालो।
लाओत्से या च्वांगत्से या कोई और तथाता की जब बात करते हैं, एक्सेप्टबिलिटी की, कि सब कर लो स्वीकार, तो इसलिए नहीं कि किसी विषाद से, किसी फ्रस्ट्रेशन से, किसी संताप से, इसलिए नहीं कि जीवन में संतोष रखना बड़ी अच्छी बात है। इसलिए नहीं।
स्वीकार का भाव दो कारणों से हो सकता है। एक तो इसलिए आदमी स्वीकार कर
ले कि अब कोई उपाय नहीं है, अब स्वीकार ही कर लो! इसमें कम से कम कंसोलेशन, सांत्वना रहेगी।
नहीं, लाओत्से की टोटल एक्सेप्टबिलिटी, तथाता का यह अर्थ नहीं है। लाओत्से कहता है, जो आदमी यह कहता है कि स्वीकार करने से संतोष रहेगा, वह आदमी अभी भी अस्वीकार कर रहा है।
इसको समझ लेना चाहिए। वह अभी भी अस्वीकार कर रहा है। क्योंकि अगर अस्वीकार न हो, तो असंतोष कैसा? मैं कहता हूं कि मेरे पैर में कांटा गड़ा है, अब स्वीकार ही कर लूं, तो कम से कम संतोष रहेगा कि ठीक है, गड़ गया। पीड़ा हो रही है, स्वीकार कर लूं। लेकिन इस स्वीकृति में अस्वीकार छिपा हुआ है। सच तो यह है कि मेरी स्वीकृति अस्वीकार का ही एक ढंग है। पीड़ा तो मुझे हो रही है, दुख मुझे हो रहा है। अब कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता, तो मैं आंख बंद करके कहता हूं कि ठीक है, इसमें भी कोई, परमात्मा का कोई राज होगा, कोई रहस्य होगा। अभिशाप में भी वरदान छिपा होगा। काले बादलों के भीतर भी सफेद चमकती हुई बिजली छिपी रहती है। कांटों के भीतर भी फूल रहता है। दुख में भी सुख छिपे रहते हैं। लेकिन मेरी खोज सुख की ही है, वह सफेद बिजली की रेखा के लिए ही मेरी खोज है। काले बादल की मेरी कोई स्वीकृति नहीं है। और जब रात बहुत अंधेरी हो जाती है, तो सुबह करीब होती है। मगर मेरी आकांक्षा सुबह के लिए ही है। काली रात को अपने को समझाने के लिए मैं समझा रहा हूं कि कोई हर्जा नहीं, रात बहुत काली हो गई, अब सुबह, भोर करीब होगी। लेकिन मेरी इच्छा भोर के लिए है। रात के कालेपन को, मैं भोर की इच्छा को सामने रख कर, थोड़ा हलका कर रहा हूं, संतोष कर रहा हूं।
लेकिन लाओत्से इस तथाता की बात नहीं करता। लाओत्से कहता है, इसलिए नहीं स्वीकृति कि संतोष चाहिए; बल्कि इसलिए कि अस्वीकृति मूढ़ता है। अस्वीकृति से सिवाय आदमी अपने को निरंतर नर्क में डालने के और कहीं नहीं ले जाता है। लाओत्से का जोर स्वीकृति पर कम, अस्वीकृति की समझ पर ज्यादा है। जिस दिन हम अस्वीकृति को समझ लेंगे पूरा कि मैं अपने हाथ से नर्क पैदा कर रहा हूं, उस दिन अस्वीकृति विदा हो जाएगी, और जो शेष रह जाएगी, वह स्वीकृति होगी। इस फर्क को समझ लें। एक तो ऐसी स्वीकृति है, जो अस्वीकृति के खिलाफ हम खड़ी करते हैं, इंपोज करते हैं। और एक ऐसी स्वीकृति है, जो अस्वीकृति के तिरोहित हो जाने पर पाई जाती है। इन दोनों में बड़ा फर्क है। जब अस्वीकृति भीतर होती है और स्वीकृति को हम बाहर से खड़ा करते हैं, तो द्वंद्व निर्मित होता है। भीतर अस्वीकार होता है, बाहर स्वीकार होता है।

मित्र मेरा चल बसा, तो मैं कहता हूं कि ठीक है, स्वीकार ही करना पड़ेगा, कोई उपाय भी नहीं है। तो अपने मन को मैं समझाता हूं कि सभी को जाना पड़ता है, मृत्यु तो सभी की होती है, मृत्यु तो होगी ही। कौन इस दुनिया में सदा रहने को आया है? यह सब मैं अपने को समझाता-बुझाता हूं। लेकिन भीतर टीस गड़ती रहती है। मित्र चला गया, उसका खालीपन अखरता रहता है। भीतर मन कहता है, बुरा हुआ, नहीं होना था। और बाहर मन को मैं समझाता हूं कि यह तो होता ही रहता है; यह तो होता ही रहा है; इससे बचा नहीं जा सकता। ये दोनों बातें साथ चलती रहती हैं। ऊपर की कोशिश से मैं मलहम-पट्टी कर रहा हूं। घाव भीतर बना ही रहता है।
लाओत्से इस तरह की स्वीकृति तथाता के लिए नहीं कह रहा है। लाओत्से कह रहा है कि मैं यह नहीं कहता कि मैं दुखी हूं मेरे मित्र के मर जाने से, मैं तो सिर्फ आश्चर्यचकित हूं कि इतने दिन जीए कैसे? मैं सिर्फ आश्चर्यचकित हूं, इतने दिन जीए कैसे? जीवन बड़ी असंभव घटना है; मौत बड़ी सहज घटना है। मौत को आश्चर्य नहीं कहा जा सकता, जीवन आश्चर्य है। है यह आश्चर्य।
लाओत्से कहेगा, इतने दिन जीए कैसे? आश्चर्य!
च्वांगत्से का मैंने नाम लिया। च्वांगत्से की पत्नी मर गई। तो सम्राट गया सांत्वना देने, तो वह खंजड़ी बजा रहा था अपने द्वार पर बैठ कर। सुबह पत्नी को विदा किया, बारह बजे खंजड़ी बजाता था। पैर फैलाए हुए था, गीत गाता था। सम्राट थोड़ा झिझका। वह तो तैयार होकर आया था, जैसा कि जब भी कोई किसी के घर मर जाता है तो लोग तैयार होकर आते हैं--क्या कहना! क्या पूछना! सब तैयार होता है, बिल्कुल रिहर्सल दो दफे घर में करके आते हैं। क्या कहेंगे; क्या उत्तर देगा; और क्या जवाब होगा। सब पक्का ही है। और जो दो-चार अनुभवी हैं, दो-चार को विदा कर चुके हैं, वे तो बिल्कुल पक्के ही हैं। उनको तो कोई जरूरत ही नहीं, उनको डायलॉग बिल्कुल याद ही होता है। वह तैयार करके सम्राट आया था कि ऐसा-ऐसा दुख प्रकट करेंगे, ऐसा-ऐसा भाव बताएंगे। इधर देखा तो हालत ही उलटी थी। यहां पुराने डायलॉग का उपाय न था। वे खंजड़ी बजा रहे थे। और बड़े आनंदित थे।
सम्राट से न रहा गया। उसने कहा, च्वांगत्से, दुख न मनाओ, इतना काफी है;
कम से कम खंजड़ी तो मत बजाओ। बहुत है, इतना ही बहुत है कि दुख मत मनाओ। बाकी खंजड़ी?
च्वांगत्से ने क्या कहा, पता है? च्वांगत्से ने कहा, या तो दुख मनाओ या खंजड़ी बजाओ। दो के बीच में खड़े होने की कोई जगह नहीं है। दो के बीच में खड़े होने की कोई जगह नहीं है। और दुखी मैं क्यों होऊं? परमात्मा को धन्यवाद दे रहा हूं कि इतने दिन जीवन था--आश्चर्य! उसने मेरी इतनी सेवा की--आश्चर्य! उसने मुझे इतना प्रेम दिया--आश्चर्य! और मैं उसे विदा के क्षण में अगर खंजड़ी बजा कर विदा भी न दे सकूं, तो बहुत अकृतज्ञ! मैं उसे विदा दे रहा हूं। अब वह दूर, धीरे-धीरे दूर होती जाती होगी इस लोक से। मैं उसे विदा दे रहा हूं। मेरी खंजड़ी की आवाज धीमी होती जाती होगी। पर जाते क्षण में मैं उसे आनंद से विदा दे पाऊं।
हम हैं एक, साथ रह कर भी आनंद से नहीं रह पाते, हम सुखवादी हैं! च्वांगत्से है एक, मृत पत्नी को खंजड़ी बजा कर आनंद की विदा दे रहा है, वह दुखवादी है! तब फिर हमारा दुखवाद-सुखवाद बड़ा अजीब है। कौन दुखवादी है? हम दुखवादी हैं, चौबीस घंटे दुख में रहते हैं। च्वांगत्से परम सुखवादियों में एक है।
लाओत्से इसलिए नहीं कहता कि स्वीकार कर लो, किसी विवशता से, किसी हेल्पलेसनेस से। नहीं, किसी बल से, किसी शक्ति से, किसी सामर्थ्य से! स्वीकार कर लेना बड़ी सामर्थ्य है, बड़ा बल है। महावीर को कोई पत्थर मार रहा है; महावीर खड़े हैं। हमारे मन में होगा, कैसा कायर आदमी है? पत्थर का जवाब तो और बड़े पत्थर से देना चाहिए। लेकिन महावीर खड़े हैं--किसी कायरता से नहीं, किसी परम शक्ति के कारण। इतनी विराट शक्ति है भीतर कि ये पत्थर लगते नहीं, ये पत्थर चोट नहीं पहुंचा पाते। ये पत्थर भीतर किसी रिएक्शन को, किसी प्रतिक्रिया को जन्म नहीं दे पाते। ये पत्थर फेंकने वाला बचकाना है। महावीर इस पर दया से भरे हैं, पूरी करुणा से, कि कैसा पागल है, व्यर्थ मेहनत उठा रहा है।

हम दो में से एक काम कर सकते हैंः या तो पत्थर का जवाब पत्थर से दें और
या भाग खड़े हों। हमें दो के अतिरिक्त तीसरा विकल्प नहीं दिखाई पड़ता। महावीर का विकल्प तीसरा है। न तो वे भागते हैं, न वे पत्थर का जवाब पत्थर से देते हैं। वे पत्थर को लेते ही नहीं। पत्थर उनके भीतर किसी तरह का कोई व्यवधान पैदा नहीं कर पाता। और इससे वे बड़े लाभ में रहते हैं, हानि में नहीं रहते। इससे वे अपनी परम शांति, अपने परम आनंद में प्रतिष्ठित रहते हैं। वे उससे इंच भर यहां-वहां नहीं होते।
समस्त धर्म महापराक्रम से पैदा होता है, महापुरुषार्थ से; और समस्त धर्म अभय से जन्मता है, भय से नहीं। और समस्त धर्म आनंद में प्रतिष्ठा है, दुख में नहीं। दुख का सूत्र है, सुख की मांग। आनंद की प्रतिष्ठा का मार्ग है, दुख की स्वीकृति।
शेष कल। कुछ पूछते हैं?

प्रश्नः समझ लेना, यह किस घटना का नाम है?

जो भी जीवन में हो रहा है, वह दो ढंग से हो सकता हैः बिना समझे, समझ कर। उदाहरण से समझें तो आसानी होगी।
आपने मुझे दी गाली, मुझे आया क्रोध। क्या मेरा क्रोध आपकी गाली से एकदम पैदा हो जाता है या इन दोनों के बीच में समझने की भी कोई घटना घटती है? क्या जब आप मुझे गाली देते हैं, तो मैं समझने की कोशिश करता हूं कि मेरे भीतर आपकी गाली से क्रोध क्यों पैदा हो रहा है? क्या मैं भीतर लौट कर देखता हूं कि क्रोध पैदा होना चाहिए, नहीं होना चाहिए? क्या मैं भीतर देखता हूं कि क्रोध क्या है?
अगर यह मैं कुछ भी नहीं देखता, आपने गाली दी और मैंने क्रोध किया और इन दोनों के बीच में मेरी समझ के लिए कोई अंतराल न रहा, कोई जगह न रही; उधर गाली, इधर क्रोध; उधर दबाई बटन और मैं भभका; तो फिर मैं यंत्र की तरह व्यवहार कर रहा हूं। यह व्यवहार नासमझी का व्यवहार है।
अगर आपने दी गाली, मैंने समझा कि क्या उठता है मेरे भीतर, क्यों उठता
है मेरे भीतर? गाली मुझे कहां छूती है? किस घाव को स्पर्श करती है? किस जगह गड़ती है? क्यों गड़ती है? गाली में ऐसा क्या है जो मुझे इतना आग से भर जाता है? गाली में ऐसा क्या है जो मुझे इतना जहरीला कर देता है? यह सब मैंने समझा और फिर देखा इस जहर को, इस उठते क्रोध को, इस आग को पहचाना कि यह क्या है, तो जो मैं करूंगा, वह समझ होगी।
और मजे की बात यह है कि क्रोध केवल नासमझी में किया जा सकता है, समझ में नहीं किया जा सकता। इसलिए अगर आपने दी गाली और मैंने की समझ की फिक्र, तो क्रोध असंभव है। आपने दी गाली और मैंने समझ की कोई चिंता न ली, तो ही क्रोध संभव है।
इसलिए लाओत्से जैसा आदमी कहेगा, क्रोध को हटाने की, उपाय की कोई भी जरूरत नहीं है। कोई विधि की जरूरत नहीं है। कोई मंत्र-तंत्र की जरूरत नहीं है। कोई ताबीज बांधने की जरूरत नहीं है। कोई कसम, कोई प्रतिज्ञा, कोई व्रत लेने की जरूरत नहीं है। क्रोध को समझ लो, और क्रोध असंभव हो जाएगा।
अभी एक पश्चिमी मित्र को मैं एक ध्यान करवा रहा हूं। वे यहां मौजूद हैं। क्रोध उनकी पीड़ा है भारी। किसी पर निकलता है। तो उन्हें मैंने कहा है कि तीन दिन से वह एक तकिए को लेकर उस पर क्रोध निकालें।
पहले वे बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा, आप क्या पागलपन की बात करते हैं! तकिए पर?
मैंने कहा, तुम शुरू करो। क्योंकि जब तुम आदमी पर निकाल सकते हो, तो तकिए पर निकालने में बहुत ज्यादा पागलपन नहीं है। आदमी पर निकाल सकते हो, उसमें कभी पागलपन नहीं दिखा, तो तकिए पर निकालने में उतना पागलपन कभी भी नहीं है। कोशिश करो।
पहले दिन कोशिश की। मुझे आकर खबर दी कि पहले तो थोड़ा सा अजीब लगा कि यह मैं क्या कर रहा हूं! लेकिन पांच-सात मिनट में गति आ गई और मैंने तकिए को ठीक ऐसे मारना शुरू कर दिया जैसे वह जीवित हो। और न केवल जीवित, बल्कि थोड़ी ही देर में, मेरी जिस व्यक्ति से सर्वाधिक शत्रुता रही है, तकिया उसका ही

रूप हो गया। मुझे उसकी याद आ गई, जो दस साल पुरानी है। जिसे मैंने मारना चाहा था और नहीं मारा, उसका चेहरा तकिए में मुझे दिखाई पड़ने लगा। हंसी भी आई, बेचैनी भी हुई और रस भी आया। और मारा भी।
अब वे तीन दिन से तकिए को मार रहे हैं। आज सारी रिपोर्ट दे गए हैं। वह चकित करने वाली रिपोर्ट है। वह पूरी रिपोर्ट यह है कि पहले दिन वे सब चेहरे आने शुरू हो गए, जिनको मारना चाहा और नहीं मार पाए। दूसरे दिन चेहरे खो गए, शुद्ध क्रोध रह गया। निकल रहा है एक तरफ से, दूसरी तरफ कोई भी नहीं है। शुद्ध क्रोध! और तब उनको समझ आया कि ये तो सिर्फ बहाने थे लोग, जिन पर मैंने निकाला। यह आग तो मेरे भीतर ही है, जो बहाने खोजती है। तब एक अंडरस्टैंडिंग पैदा हुई, एक समझ पैदा हुई। क्रोध को एक नए रूप में देखा। आज वह दूसरे पर निकलने का दूसरे पर जिम्मा न रहा। आज अपने ही भीतर कोई आग है जो निकलना चाहती है, अपने पर ही जिम्मा आ गया; आब्जेक्टिव न रहा, सब्जेक्टिव हो गया। आपने गाली दी, इसलिए क्रोध किया था, ऐसा नहीं; अब समझ में आया कि मैं क्रोध करना चाहता था और आपकी गाली की प्रतीक्षा थी। और अगर आप गाली न देते, तो मैं कहीं और से गाली खोजता। मैं उकसाता कि गाली दो। मैं ऐसी तरकीब करता, मैं ऐसी बात करता, मैं ऐसा काम करता कि कहीं से गाली आए। क्योंकि मेरे भीतर जो भर गया था, वह रिलीज होना चाहता था। उसे मुक्त होना जरूरी था।
दूसरे दिन उन्हें दिखाई पड़ा--वे दिन भर कर रहे हैं; तीन-चार बार दिन में कर रहे हैं; घंटे-घंटे भर तीन-चार बार--दूसरे दिन उन्हें दिखाई पड़ा कि यह क्रोध किसी पर नहीं है, यह क्रोध मेरे भीतर है। और आज तीसरा दिन था उनका। आज उन्होंने मुझे आकर कहा कि हैरान हूं; जैसे ही यह दिखाई पड़ा कि किसी पर नहीं है, मेरे ही भीतर है, वैसे ही जैसे भीतर कोई चीज विदा हो गई, सब शांत हो गया है। मैं निपट असमर्थ हो गया हूं। अगर मुझे कोई गाली दे इस वक्त, तो मैं क्रोध न कर पाऊंगा। इस वक्त तो नहीं ही कर पाऊंगा। क्योंकि इस वक्त भीतर से जैसे कोई बहुत भार था, वह फिंक गया है। सब खाली हो गया है। समझ का अर्थ है, आपके भीतर जो भी घटे, वह आपके जानते, अवेयरनेस में, आपके होश में, आपके चैतन्य में घटे। जो भी! और तब बहुत कुछ घटना बंद हो जाएगा अपने आप। और जो बंद हो जाए, वही पाप है। और जो होशपूर्वक भी चलता रहे, वही पुण्य है। और समझ कसौटी है। समझ के साथ जो चल पाए, वह पुण्य है; और समझ के साथ जो न चल पाए, वह पाप है। नासमझी में ही जो चल सके, वह पाप है। और नासमझी में जिसे चलाया ही न जा सके, वह पुण्य है। तो यह समझ का अर्थ इतना ही हुआ कि मेरे भीतर जो भी घटता है, वह मेरे ध्यानपूर्वक घटे, मेरे गैर-ध्यान में न घटे।
और सब गैर-ध्यान में घटता है। कब आप क्रोधित हो जाते हैं, कब आप प्रेम
से भर जाते हैं, कभी आप सुख अनुभव करते हैं, कब दुख अनुभव करते हैं, सब भान के बाहर है, अनकांशस है। अचानक लगता है, सुखी हूं; अचानक लगता है, दुखी हूं। लगता है, बड़ा विषाद है। और जब आपको विषाद लगता है, तब आप यह नहीं सोचते कि यह मेरे भीतर से आ रहा है। तब आस-पास आप कारण खोजते हैंः कौन कर रहा है, विषाद में मुझे डाल रहा है? लड़का डालता है, कि लड़की, कि पत्नी, कि पति, कि मित्र, कि धंधा? कौन है? फौरन आप खोजने निकल जाते हैं। और खोज कर किसी न किसी को पकड़ लेते हैं।
लेकिन वे सब एस्केप गोट्स हैं, वे सब बहाने हैं, वे सब खूंटियां हैं।
वे कोई असली नहीं हैं। क्योंकि मजे की बात यह है कि आपको बिल्कुल अकेले कमरे में बंद कर दिया जाए, तब भी यही सब आप करेंगे जो आप किसी के साथ कर रहे हैं। यही करेंगे। आप सोचते हैं, मित्र मिल जाता है, इसलिए बात करते हैं? अकेले में छोड़ दिए जाएं, अकेले में बात करेंगे। सपने के मित्र से बात करेंगे। आप सोचते हैं, क्रोध करते हैं, क्योंकि कोई गाली देता है? तो आपको बंद कमरे में रख दिया जाए, पंद्रह दिन में आप पाएंगे कि आप सैकड़ों दफे क्रोधित हो गए बंद कमरे में। हो सकता है, कमीज जोर से पटकी हो; हो सकता है, बर्तन फेंक दिया हो; हो सकता है, स्नान करते वक्त क्रोध निकाला हो। पच्चीस रास्ते से आप क्रोध निकाल लेंगे।
यह समझपूर्वक हो सके, जो भी भीतर घटता है। अंतर-जीवन की कोई भी घटना मेरे गैर-ध्यान में न हो, इसका नाम समझ है, अंडरस्टैंडिंग है। और मजे की

बात यह है कि समझ अगर हो, तो जो गलत है, वह होना अपने से बंद हो जाता है। समझ न हो, तो जो सही है, उसे आप कितना ही उपाय करें तो भी आप उसको शुरू नहीं कर सकते।
फिर कल।

ताओ उपनिषद, भाग एक
चौथा प्रवचन

अज्ञान और ज्ञान के पार--वह रहस्य भरा ताओ

Chapter 1 : Sutra 4

Under these two aspects, it is really the same; but as development takes place, it receives the different names. Together we call them the Mystery. Where the Mystery is the deepest, is the gate of all that is subtle and wonderful.

अध्याय 1 : सूत्र 4

इन दोनों पक्षों में यह एक ही है; किंतु ज्यों-ज्यों इसकी प्रगति होती है, लोग इसे भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित करते हैं। इन नामों के समूह को ही हम रहस्य कहते हैं। जहां रहस्य की सघनता सर्वोपरि हो, वहीं उस सूक्ष्म और चमत्कारी का प्रवेश-द्वार है।

दो के भीतर एक का ही निवास है। जहां-जहां दो दिखाई पड़ता है बुद्धि को, वहां-वहां अस्तित्व तो एक ही है। ऐसा कहें, बुद्धि का देखने का ढंग चीजों को दो में तोड़ लेने का है। जैसे ही बुद्धि किसी चीज को देखने जाती है, वैसे ही दो में तोड़े बिना नहीं रह सकती।
उसके कुछ कारण हैं। बुद्धि असंगत को अस्वीकार करती है। बुद्धि विपरीत
को साथ नहीं रख पाती; बुद्धि विरोधी को तोड़ देती है। जैसे, बुद्धि देखने जाएगी जीवन को, तो मृत्यु को जीवन के भीतर देखना बुद्धि के लिए असंभव है। क्योंकि मृत्यु बिल्कुल ही उलटी मालूम पड़ती है। जीवन के तर्क के साथ उसकी कोई संगति नहीं है। ऐसा लगता है कि मृत्यु जीवन का अंत है। ऐसा लगता है, मृत्यु जीवन की शत्रु है। ऐसा लगता है, मृत्यु जीवन के बाहर, जीवन पर आक्रमण है।
लेकिन वस्तुतः ऐसा नहीं है; मृत्यु जीवन के बाहर घटने वाली घटना नहीं। मृत्यु जीवन के भीतर ही घटती है, मृत्यु जीवन का ही हिस्सा है, मृत्यु जीवन की ही पूर्णता है। मृत्यु और जीवन ऐसे ही हैं, जैसे बाहर आने वाली श्वास और भीतर जाने वाली श्वास एक ही हैं। जो श्वास भीतर जाती है, वही बाहर जाती है। जन्म में जो श्वास भीतर आती है, मृत्यु में वही श्वास बाहर जाती है। अस्तित्व में मृत्यु और जीवन एक ही हैं। लेकिन बुद्धि जब सोचने चलती है, तो बुद्धि असंगत को स्वीकार नहीं कर पाती; संगत को स्वीकार कर पाती है। संगत की दृष्टि से जीवन अलग हो जाता है और मृत्यु अलग हो जाती है। लेकिन अस्तित्व असंगत को भी स्वीकार करता है, विपरीत को, विरोधी को भी स्वीकार करता है। अस्तित्व को बाधा नहीं पड़ती फूल और कांटे को एक ही शाखा पर लगा देने में। अस्तित्व को कोई अड़चन नहीं है अंधेरे और प्रकाश को एक ही साथ चलाए रखने में। सच तो यह है कि अंधेरा प्रकाश का ही धीमा रूप है, और प्रकाश अंधकार की ही कम सघन स्थिति है। अगर हम प्रकाश को मिटा दें जगत से बिल्कुल, तो तत्काल बुद्धि कहेगी, अंधेरा ही अंधेरा बच रहेगा। लेकिन अगर हम सच में ही जगत से प्रकाश को बिल्कुल मिटा दें, तो अंधेरा भी नहीं बच रहेगा।
और सरलता से समझें तो ख्याल में आ जाए। अगर हम जगत से गर्मी को बिल्कुल मिटा दें, तो बुद्धि कहेगी, ठंड ही ठंड बच रहेगी। लेकिन जिसे हम शीत कहते हैं, ठंड कहते हैं, वह गर्मी का रूप है। अगर हम गर्मी को पूरा मिटा दें जगत से, तो शीत बिल्कुल मिट जाएगी; वह कहीं भी नहीं बच रहेगी। अगर हम मृत्यु को बिल्कुल मिटा सकें जगत से, तो जीवन समाप्त हो जाएगा। अस्तित्व विपरीत के साथ है। बुद्धि विपरीत को बाहर कर देती है। बुद्धि बहुत छोटी चीज है; अस्तित्व बहुत बड़ा। बुद्धि की समझ के बाहर पड़ता है यह कि विपरीत भी

एक हो, कि जीवन और मृत्यु एक हो, कि प्रेम और घृणा एक हो, कि अंधेरा और प्रकाश एक हो, कि नर्क और स्वर्ग एक हो। यह बुद्धि की समझ के बाहर है कि दुख और सुख एक ही चीज के दो नाम हैं। यह बुद्धि कैसे समझ पाए!
बुद्धि कहती है, सुख अलग है, दुख अलग है; सुख को पाना है, दुख से बचना है; दुख को नहीं आने देना है, सुख को निमंत्रण देना है। लेकिन अस्तित्व कहता है, जिसने बुलाया सुख को, उसने दुख को भी निमंत्रण दे दिया है। और जिसने बचना चाहा दुख से, उसे सुख को भी छोड़ना पड़ा है। अस्तित्व में विपरीत एक है।
और लाओत्से कहता है, अंडर दीज टू आसपेक्ट्स, इट इ.ज रियली दि सेम। वह
जो नाम के भीतर है और वह जो अनाम के भीतर है, इन दो पहलुओं में वह एक ही है। इतनी तीव्रता से लाओत्से ने कहा कि वह जो पथ है, विचरण उस पर नहीं किया
जा सकता; और वह जो सत्य है, उसे कोई नाम नहीं दिया जा सकता। और अब लाओत्से कहता है, वह जो नाम के अंतर्गत है वह, और वह जो अनाम के अंतर्गत है वह, वे दोनों एक ही हैं--रियली दि सेम। यथार्थ में, वस्तुतः वे दोनों एक ही हैं। यह भी हमारी बुद्धि का ही द्वैत है कि हम कहें, यह अनाम का जगत है और यह नाम का, कि हम कहें कि यह वस्तुओं का जगत है और वह अस्तित्व का, कि हम कहें कि यह व्यक्तियों का जगत है और वह अव्यक्ति का, कि हम कहें कि यह आकार का जगत है और वह निराकार का।
लाओत्से कहता है, नहीं, वस्तुतः उन दोनों के भीतर भी वह एक ही है। जिसे
हम नाम देते हैं, उसके भीतर भी अनाम बैठा है; और जिसे हम अनाम कहते हैं, उसे भी हमने नाम तो दे ही दिया है। इससे क्या भेद पड़ता है कि हम उसे अनाम कहते हैं? वी हैव नेम्ड इट! अनाम रख लिया है उसका नाम हमने।
यह थोड़ा कठिन मालूम पड़ेगा, क्योंकि लाओत्से ने बहुत जोर दिया है शुरू में कि दोनों बिल्कुल अलग हैं। नाम मत देना उसे; नाम दिया कि वह सत्य न रह जाएगा। बोलना मत उसे; बोले कि वह विकृत हो जाएगा। चलना मत उस पथ पर, क्योंकि वह अविकारी पथ चला नहीं जा सकता। और अब लाओत्से घड़ी भर बाद यह कहता है कि उन दोनों के भीतर वस्तुतः एक ही है। कठिन पड़ेगी बात समझनी। लेकिन यह और भी गहरी बात है; जो लाओत्से ने पहले कहा, उससे भी गहरा है यह। नाम के भीतर भी वही है, आकार के भीतर भी वही है।
मैं अपने मकान की खिड़की से झांक कर देखता हूं, तो आकाश मुझे आकार में दिखाई पड़ता है। पर जिस आकाश को मैं खिड़की के भीतर से देखता हूं आकार में बंधा हुआ, जब बाहर जाऊंगा खिड़की-द्वार के, तो वही निराकार दिखाई पड़ेगा। उस समय मैं क्या कहूंगा, खिड़की से जो आकाश दिखा था, वह दूसरा था?
निश्चित ही, भेद तो है। क्योंकि खिड़की से जब दिखा था, तो आकार के चौखटे में जड़ा हुआ दिखा था। और अब जब देखता हूं, तो कोई भी चौखटा, कोई भी आकार नहीं है। निश्चित ही, भेद तो है। लेकिन गहरे में भेद कहां है? खिड़की से इसे ही देखा था, जो निराकार है। और अगर भूल थी तो आकाश की न थी, खिड़की की थी। और खिड़की आकाश को आकार कैसे दे सकेगी? खिड़की जैसी छोटी चीज अगर आकाश जैसे विराट तत्व को आकार देने में समर्थ हो जाए, तो आकाश से ज्यादा शक्तिशाली हो जाती है।
तो जिसे बुद्धि ने नाम देकर जाना है, वह भी वही है, जिसे बुद्धिमानों
ने बुद्धि के पार जाकर अनाम जाना है।
और लाओत्से कहता है, चल कर वहां तक न पहुंच सकोगे, रुक कर पहुंचोगे। हालांकि रुक कर आदमी वहीं पहुंचता है, जहां चलता हुआ दौड़ता रहता है। उन दोनों में भेद नहीं है, उन दोनों में अंतर नहीं है।
द्वैत को बड़ी गहरी चोट इस छोटे से वचन में लाओत्से ने की है--आखिरी चोट; जिसमें विपरीत को समाहित करने की कोशिश की है। और इसे एकबारगी बहुत साफ ख्याल में आ जाना चाहिए कि सारे द्वैत बुद्धि-निर्मित हैं। अस्तित्व उनसे अपरिचित है। अस्तित्व ने द्वैत को कभी जाना नहीं, डुआलिज्म को कभी जाना नहीं। विपरीत से विपरीत चीज अस्तित्व में जुड़ी और संयुक्त है। जुड़ी और संयुक्त ही नहीं, एक ही है। जुड़ी और संयुक्त भी हमें कहना पड़ती है, क्योंकि हमारा मन दो में तोड़ कर ही देखता है।
एक सिक्के में हम दो पहलू देखते हैं। और साफ ही दो पहलू होते हैं। फिर
भी क्या हम कह सकते हैं कि एक पहलू को दूसरे से अलग किया जा सकेगा? क्या हम

सिक्के के एक पहलू को बचा कर दूसरे को फेंक सकते हैं? हम कुछ भी करें, सिक्के में दो पहलू ही रहेंगे, और हम एक को न बचा सकेंगे और एक को हम न हटा सकेंगे। जिसे हम दूसरा पहलू कहते हैं, वह वही सिक्का है। फिर भी मजे की बात है कि हम एक छोटे से सिक्के के दोनों पहलू भी एक साथ देख नहीं सकते। सिक्का बड़ी चीज नहीं है, उसे हम हाथ पर रख कर देख लें। पर जब भी हम सिक्के को देखते हैं, हमारी आंखें एक ही पहलू को देख पाती हैं। दूसरा पहलू तो सिर्फ कल्पना में होता है कि होगा। उलटा कर जब देखते हैं, तब दूसरा देखते हैं, तब पहला छिप जाता है। कौन कहेगा... ।
बर्कले पश्चिम में एक विचारक हुआ और कीमती विचारक हुआ। वह कहा करता
था कि जब आप कमरे के बाहर जाते हैं, तो कमरे की चीजें शून्य में विलीन हो जाती हैं। आप जब कमरे के भीतर आते हैं, तब वे फिर पुनः प्रकट हो जाती हैं। लेकिन जब कमरे में कोई नहीं रहता, तो कमरे में कोई वस्तु नहीं रह जाती। और बर्कले कहता था कि अगर कोई इससे विपरीत सिद्ध कर दे, तो मैं तैयार हूं। पर विपरीत सिद्ध करना असंभव है। क्योंकि सिद्ध करने के लिए कमरे के भीतर रहना पड़ेगा। और बर्कले कहता ही इतना था कि जब तक कोई कमरे के भीतर है, वस्तुएं होती हैं। जब कमरे के भीतर कोई देखने वाला नहीं होता, तो वस्तुएं तिरोहित हो जाती हैं। क्योंकि वह कहता था, बिना देखने वाले के दृश्य बचेगा कैसे? बिना द्रष्टा के दृश्य बचेगा कैसे? अगर आप एक छेद करके दीवार से झांकें, तो द्रष्टा मौजूद हो जाता है, वस्तुएं प्रकट हो जाती हैं।
बर्कले जो कह रहा था, वह यह कह रहा था कि द्रष्टा और दृश्य में गहरा संबंध है। निश्चित ही, यह बात तो सही नहीं है बर्कले की कि जब कोई देखने वाला नहीं होता, तो वस्तुएं नहीं रह जाती हैं। लेकिन यह बात जरूर सच है कि जब देखने वाला नहीं होता, तो वस्तुएं वैसी ही नहीं रह जातीं, जैसा देखने वाले के होने पर होती हैं।
जैसे, अब तो फिजिक्स भी इसे स्वीकार करती है कि जब आप कमरे के बाहर चले जाते हैं, तो कमरे की वस्तुएं रंग खो देती हैं, कमरे की वस्तुओं में कोई रंग नहीं रह जाता। रह ही नहीं सकता। जब आप कमरे के बाहर होते हैं और कमरा सब तरफ से बंद होता है और कोई देखने वाला नहीं होता, तो कमरे की वस्तुएं बेरंग, कलरलेस हो जाती हैं। निश्चित ही, अगर वस्तुएं रंगहीन हो जाती हैं, तो आपके कमरे में जो पेंटिंग टंगी है, वह क्या होती होगी? कम से कम पेंटिंग नहीं होती होगी।
रंगहीन इसलिए हो जाती हैं कि फिजिक्स कहती है कि रंग आंख के जोड़ से निर्मित होता है। अगर मैं देख रहा हूं कि आप सफेद कपड़े पहने हुए बैठे हैं, तो आपके सफेद कपड़े आपके सफेद कपड़ों पर ही निर्भर नहीं हैं; मेरी आंख उनको सफेद देखती है। अगर कोई आंख न हो इस कमरे में, तो कपड़े सफेद नहीं रह जाएंगे। रंग जो है, वह आंख से जुड़ा हुआ है। और जरूरी नहीं है कि आकार भी वैसा ही रह जाए, जैसा हम देखते हैं, क्योंकि आकार भी हमारी आंख से जुड़ा है। अगर वस्तु रह भी जाती होगी कमरे के भीतर, जब हम बाहर हो जाते हैं, तो ठीक वैसी ही नहीं रह जाती है, जैसी हम थे तब थी। और जैसी रह जाती है, उसे हम कभी न जान पाएंगे। क्योंकि जब भी हम आएंगे, तब वह वैसी न रह जाएगी।
इसलिए इमेनुअल कांट, एक जर्मन चिंतक, कहा करता था कि वस्तु जैसी अपने
आप में है--थिंग इन इटसेल्फ--उसे कभी नहीं जाना जा सकता। जब भी हम जानेंगे, तो हम उसे ऐसा जानेंगे, जैसा हम जान सकते हैं।
असल में, जो भी हम जानते हैं, वह हमारे जान सकने की क्षमता से निर्भर होता है, निर्मित होता है। जरूरी नहीं है कि हम इतने लोग इस कमरे में बैठे हुए हैं, इसमें एक मकड़ी भी चलती होगी, एक छिपकली भी दीवार पर सरकती होगी, एक मक्खी भी गुजरती होगी, एक कीड़ा भी सरकता होगा; वे सभी इस कमरे को एक जैसा नहीं देखेंगे। हो सकता है, कुछ चीजें छिपकली को दिखाई पड़ती हों, जो हमें कभी भी दिखाई न पड़ेंगी। और हो सकता है, मकड़ी कुछ चीजों को अनुभव करती हो, जिसका अनुभव हमें कभी न होगा। और हो सकता है, जमीन पर सरकने वाला कीड़ा कुछ ऐसी ध्वनियां सुनता हो, जो हमें बिल्कुल सुनाई नहीं पड़ रही हैं। और यह तो बिल्कुल ही निश्चित है कि जो हम देख रहे हैं, जान रहे हैं, सुन रहे हैं, उनसे ये कोई भी प्राणी परिचित न हो पाते होंगे।

जो भी हम देखते हैं, उसमें देखने वाला जुड़ जाता है। बुद्धि जैसे ही कुछ देखती है, बुद्धि अपना पैटर्न, अपना ढांचा दे देती है। बुद्धि का सबसे गहरा जो ढांचा है, वह द्वैत का है। वह चीजों को दो हिस्सों में तोड़ देती है सबसे पहले। विपरीत को अलग कर देती है, कंट्राडिक्टरी को अलग कर देती है। और प्रत्येक चीज कंट्राडिक्टरी से निर्मित है। मैं कहता हूं कि मैं क्रोध नहीं करता, सिर्फ क्षमा करता हूं। लेकिन बिना क्रोध के कोई क्षमा नहीं होती। या हो सकती है? अगर आप क्रोधित नहीं हुए हैं, तो क्षमा कर सकेंगे? क्षमा करने के लिए पहले क्रोधित हो जाना बिल्कुल जरूरी है। क्षमा क्रोध के पीछे ही आती है; क्रोध का ही हिस्सा होकर आती है। क्रोध के बिना क्षमा संभव नहीं है। पर हम क्रोध और क्षमा को अलग करके देखते हैं। हम कहते हैं, फलां आदमी क्रोधी है और फलां आदमी क्षमावान है। और हम कभी ऐसा नहीं देख पाएंगे कि क्रोध ही क्षमा है।
बुद्धि तोड़ती है। जीवन के सब तलों पर बुद्धि तोड़ती चली जाती है।
लाओत्से कहता है कि बुद्धि के ये सारे के सारे खंडों के भीतर वह एक ही छिपा है। हम उसे कितना ही तोड़ें, हम उसे तोड़ नहीं पाते हैं। वह एक ही बना रहता है। हम कितनी ही सीमाएं बनाएं, वह असीम असीम ही बना रहता है। हम नाम दें या न दें, वह एक ही है।
तो पहली तो बात लाओत्से कहता है कि इस समस्त द्वैत के भीतर, इन सब दो
के भीतर उस एक का ही वास है।
बैठे हैं इस कमरे के भीतर; हमने दीवारें बना ली हैं; तो हमने कमरे के आकाश को अलग तोड़ लिया है बाहर के आकाश से। लेकिन कभी आपने सोचा है कि आकाश को आप तोड़ कैसे सकेंगे? तलवार आकाश को काट नहीं सकती। दीवार आकाश को काट नहीं सकती, क्योंकि दीवार को ही आकाश में ही होना पड़ता है। और आकाश दीवार के पोर-पोर में समाया हुआ है। तो जो बाहर का आकाश है और जो भीतर का आकाश है, वह जो हमारा विभाजन है, वह विभाजन वस्तुतः कहीं नहीं है। पर हमारे काम चलाने के लिए पर्याप्त है। बाहर के आकाश में सोना मुश्किल हो जाएगा; दीवार के भीतर के आकाश में हम सुविधा से सो जाते हैं। निश्चित ही, भेद तो है। बाहर के आकाश में पानी बरस रहा है; भीतर के आकाश में हम पानी से निश्चिंत बैठे हैं।
पर फिर भी हमने आकाश को दो हिस्सों में बांटा नहीं है। हम कभी बांट नहीं पाएंगे। आकाश अखंड है, एक है। भीतर और बाहर हमारे कामचलाऊ फर्क हैं।
जो भीतर है, वही बाहर है। जो बाहर है, वही भीतर है। भीतर और बाहर शब्द भी हमारे बुद्धि के द्वैत से निर्मित होते हैं। अन्यथा न कुछ भीतर है, न कुछ बाहर है। एक ही है। उसे हम कभी भीतर कहते हैं, उसे हम कभी बाहर कहते हैं। लाओत्से, बुद्धि का जो द्वैत है वह अत्यंत ऊपरी है, यह कह रहा है। भीतर, अंतर-सत्ता में, अस्तित्व की गहराई में, एक का ही वास है। जैसे कोई वृक्ष निकलता है जमीन से, तो पहले एक ही होता है। फिर शीघ्र ही उसमें शाखाएं टूटने लगती हैं। और फिर शाखाएं टूटती चली जाती हैं। इसलिए लाओत्से कहता है, जैसे ही प्रगति होती है, जैसे ही विकास होता है, वैसे ही अनेक पैदा हो जाता है। अनंत नाम आ जाते हैं।
हिंदुओं ने जीवन को एक वृक्ष के रूप में कोई पांच हजार साल पहले से सोचा है। और मोक्ष को एक उलटे वृक्ष के रूप में सोचा है। संसार ऐसा वृक्ष है, जो एक से पैदा होता और अनेक हो जाता है। एक वृक्ष की शाखा उठनी शुरू होती है, पींड़ उसे हम कहते हैं, और फिर अनेक शाखाएं हो जाती हैं। और फिर प्रत्येक शाखा अनेक शाखा बन जाती है। और फिर प्रत्येक अनेक शाखा भी अनेक पत्तों में फैल जाती है। मोक्ष इससे उलटा वृक्ष है, जिसमें अनेक शाखाओं से हम कम शाखाओं की तरफ आते हैं। फिर कम शाखाओं से और कम शाखाओं की तरफ आते हैं। फिर और कम शाखाओं से एक की तरफ आते हैं। और फिर एक से हम उस बीज में चले जाते हैं, जिससे सब निर्मित होता है और विकसित होता है।
लाओत्से कह रहा है, जैसे ही डेवलपमेंट होता है, जैसे ही अनफोल्डमेंट होता है, जैसे ही चीजें खुलती हैं, वैसे ही अनेक हो जाती हैं। एक बीज तो एक होता है, वृक्ष अनेक-अनेक शाखाओं में बंट जाता है। और फिर अनेक शाखाओं पर अनेक-अनेक बीज लग जाते हैं--एक ही बीज से। ठीक वैसे ही अस्तित्व तो एक है,

अनाम, फिर नाम की बहुत शाखाएं उसमें निकलती हैं। सत्य तो एक है, निःशब्द, फिर शब्द की बहुत शाखाएं उसमें निकलती हैं, बहुत पत्ते लगते हैं।
पर लाओत्से कहता है, फिर भी वह जो एक में है, वही अनेक में भी है। और वह
जो बीज में है, वही पत्ते में भी है। दूसरा हो कैसे सकता है? दूसरे के होने का कोई उपाय नहीं है। दूसरा है ही नहीं।
इस वचन के दूसरे हिस्से मेंः ज्यों-ज्यों प्रगति होती है, लोग इसे भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित करते हैं।
वह भिन्न-भिन्न नहीं हो जाता, लोग इसे भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित करते हैं। मैंने कहा कि वृक्ष बीज में एक होता है, शाखाओं में अनेक हो जाता है। लेकिन वह भी, हम जो बाहर खड़े हैं, उनको दिखाई पड़ता है। अगर वृक्ष कह सके, तो वृक्ष कहेगा, मैं एक हूं। वृक्ष को अपना पत्ता भी और अपनी जड़ भी जुड़ी हुई मालूम पड़ेगी। भीतर तो एक ही प्रवाह है, एक ही रस की धार बहती है। आपको अपने पैर का अंगूठा और आपका सिर, आपकी आंख और आपके हाथ की अंगुलियां भीतर से अलग-अलग मालूम होती हैं? आंख बंद करके देखेंगे, तो भीतर एक का ही सतत प्रवाह हो जाता है। उस प्रवाह में ही ये सारे के सारे रूप तिरोहित हो जाते हैं।
बाहर से कोई आपको देखेगा, तो आपकी आंख अलग है, अंगुली अलग है। निश्चित ही, अंगुली तोड़ने से आंख नहीं फूटेगी। और निश्चित ही, आंख फूट जाने से अंगुली नहीं टूट जाएगी। बाहर से सब अनेक ही मालूम पड़ता है। लेकिन भीतर? मैंने कहा कि अंगुली तोड़ने से आंख नहीं फूटेगी, यह भी बाहर से। भीतर तो अंगुली का टूटना भी आंख को कमजोर कर जाता है। भीतर तो आंख का भी फूटना अंगुली को भी अंधा कर जाता है। भीतर तो एक ही है प्रवाह। भीतर तो जरा भी भेद नहीं है।
और अगर हम शरीरशास्त्री से पूछें, तो वह भी यही कहता है। बहुत अनूठी बात शरीरशास्त्री कहता है। नवीन से नवीन खोजें कुछ बड़े पुराने रहस्यों को पुनर्स्थापित करती हैं। शरीरशास्त्री कहता है कि आंख जिन सेल्स से बनी है, उन्हीं सेल्स से पैर का अंगूठा भी बना है। उनमें जरा भी भेद नहीं है। अगर भेद है कुछ, तो वह सिर्फ उन सेल्स ने स्पेशियलाइजेशन कर लिया है। सारे शरीर के कोश एक जैसे हैं। लेकिन शरीर के कुछ कोशों ने विशेषज्ञता प्राप्त कर ली है देखने के लिए। और कुछ कोशों ने विशेषज्ञता प्राप्त कर ली है सुनने के लिए। और कुछ कोशों ने विशेषज्ञता प्राप्त कर ली है स्पर्श करने के लिए। लेकिन वे सब कोश एक जैसे हैं। उन कोशों के जीवन-तत्व में कोई भी भेद नहीं है। रंच मात्र भी फर्क नहीं है। आंख की जो इतनी सूक्ष्म पुतली है, वह भी आपकी चमड़ी ही है। वह भी चमड़ी ही है, जो बहुत सूक्ष्मतम रूप में देखने का काम उसने शुरू कर दिया है। और वैज्ञानिक कहते हैं कि हाथ की चमड़ी भी देखने में उतनी ही समर्थ है। अगर उसका भी प्रशिक्षण हो सके, तो वह भी देख सकती है। क्योंकि दोनों को निर्मित करने वाला जो कोश है, वह एक जैसा है। उसमें कोई फर्क नहीं है।
जब बच्चा मां के पेट में आता है, तो न तो आंख होती है, न कान होते हैं, न नाक होती है, न हाथ, न पैर होते हैं। जब पहले दिन बीजारोपण होता है, तो कुछ भी नहीं होता। सिर्फ सेल होता है खाली। फिर उसी सेल से सेल पैदा होते हैं। और वे सारे सेल जिस सेल से पैदा होते हैं, उससे भिन्न नहीं हो सकते, वही होते हैं। फिर धीरे-धीरे कुछ सेल आंख का काम शुरू कर देते हैं, कुछ सेल कान का काम शुरू कर देते हैं, कुछ सेल हृदय बन जाते हैं। एक ही तरह के सेल फैलते चले जाते हैं। और शरीर में सारा का सारा भेद निर्मित हो जाता है।
बीज एक होता है, शाखाएं अलग-अलग मालूम पड़ने लगती हैं। रस-धार एक होती है, जीवन-धार एक होती है, पर प्रत्येक चीज अलग दिखाई पड़ने लगती है-- अनफोल्डमेंट पर, जब चीजें खुलती हैं। मां के पेट में जो सेल पहले दिन निर्मित हुआ है, वह बंद है। वह अभी खुलेगा, उघड़ेगा, अपने पर्दे तोड़ेगा, फैलेगा। फैलेगा तो बहुत जरूरतें होंगी। प्रत्येक जरूरत के अनुसार बहुत से हिस्से उसके अलग-अलग काम करना शुरू कर देंगे। और जब ये सब अलग-अलग काम करना शुरू कर देंगे, तो इनके अलग-अलग नाम होंगे।
इसे हम एक उदाहरण समझ सकते हैं। हिंदू सदा कहते रहे हैं कि यह जगत भी इसी तरह एक छोटे से अंडे से निर्मित होता है, जैसे व्यक्ति। और इस जगत का

भी सब कुछ जीवन-धार एक ही है। फिर सब चीजें अलग होती हैं; जैसे खुलती जाती हैं, फैलती चली जाती हैं। और लाओत्से भी वही कह रहा है। वह कह रहा है, लोग भिन्न-भिन्न नामों से पुकारने लगते हैं। उपनिषदों ने कहा है, सत्य तो एक है, पर जानने वाले उसे अनेक तरह से जानते हैं। रहस्य तो एक है, लेकिन बुद्धिमानों ने उसे अलग-अलग नामों से पुकारा है। नाम ही अलग-अलग हो पाते हैं। पर नाम के कारण हमारे मन में ऐसी भ्रांति बननी शुरू होती है कि चीजें अलग-अलग हैं। तब गलती हो जाती है, तब भ्रांति हो जाती है। वह भ्रांति टूट जाए, तो अद्वैत का स्मरण हमें हो सकता है।
और लाओत्से कहता है कि जिसे ऐसे अद्वैत का स्मरण हो, वही... । लोग जिसे भिन्न-भिन्न नामों से स्मरण करते हैं, और फिर भी जो एक है। इन नामों के समूह को ही हम रहस्य कहते हैं--दि मिस्ट्री!
रहस्य क्या है इस जगत का?
विज्ञान रहस्य को स्वीकार नहीं करता, धर्म रहस्य को स्वीकार करता है। वही फर्क है विज्ञान और धर्म में। विज्ञान मानता है, जगत में कोई भी रहस्य नहीं है। और जितना हम जान लेंगे, उतना ही रहस्य कम हो जाएगा। अर्थात रहस्य अज्ञान का नाम है। विज्ञान के हिसाब से रहस्य का अर्थ है अज्ञान। जिसे हम नहीं जानते, वह रहस्य मालूम पड़ता है। जान लेंगे, रहस्य समाप्त हो जाएगा। और जानने के लिए विज्ञान क्या करता है? अगर ठीक से समझें, तो लाओत्से जो कह रहा है, ठीक उससे विपरीत करता है। विज्ञान करता क्या है? विज्ञान चीजों को नाम देते चला जाता है। और जिस चीज को विज्ञान नाम देने में समर्थ हो जाता है, समझता है कि हमने जान लिया। नाम की परिभाषा तय कर देता है और जानता है कि हमने जान लिया।
विज्ञान इसीलिए रोज स्पेशलाइज्ड होता चला जाता है। एक युग था कि विज्ञान एक था। फिर उसके विभाजन होने शुरू हो गए। फिर विज्ञान की जो शाखाएं थीं, उनकी भी प्रशाखाएं होनी शुरू हो गईं। और अब प्रशाखाओं की भी प्रशाखाएं होनी शुरू हो गईं।
एक वक्त था कि सारी दुनिया में सारा ज्ञान फिलासफी के अंतर्गत आ जाता था। इसलिए आज भी हम अपनी पुरानी यूनिवर्सिटीज में पी एचड़ी. की डिग्री दिए चले जाते हैं--उसको भी, जिसका फिलासफी से कोई संबंध नहीं है। अब एक आदमी केमिस्ट्री में रिसर्च करता है, उसे हम पी एचड़ी. की डिग्री देते हैं। वह एक हजार साल पुरानी आदत है। उसको डाक्टर ऑफ फिलासफी कहते हैं। फिलासफी से उसका कोई लेना-देना नहीं है अब। लेकिन एक हजार साल पहले केमिस्ट्री फिलासफी का एक हिस्सा थी।
अरस्तू ने एक किताब लिखी है आज से दो हजार साल पहले। तो उसकी किताब के एक-एक अध्याय का जो नाम था, आज एक-एक विज्ञान का नाम है। और बहुत मजेदार मजाक की घटना घटी है। उसने फिजिक्स का जो चैप्टर लिखा था, उसके बाद का जो चैप्टर था, वह धर्म का था। और इसलिए पश्चिम में यूनान धर्म को मेटाफिजिक्स कहने लगा। मेटाफिजिक्स का इतना ही मतलब होता है, फिजिक्स के बाद वाला चैप्टर। फिजिक्स के आगे जो अध्याय आता है, उसका नाम मेटाफिजिक्स था। आज भी आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी पर जो पुरानी तख्ती लगी है फिजिक्स के डिपार्टमेंट पर, वह लगी हैः डिपार्टमेंट ऑफ नेचुरल फिलासफी। हजार साल पहले फिजिक्स नेचुरल फिलासफी थी। फिर विभाजन हुआ। और विज्ञान तो विभाजित होगा। क्योंकि जितना ज्यादा हमें जानना हो, जितना व्यवस्थित जानना हो, उतना संकीर्ण करना पड़ेगा खोज को, उतना नैरो डाउन करना पड़ेगा। जितना ज्यादा जानना हो किसी चीज के संबंध में, उतनी कम चीज जानने के लिए चुननी पड़ेगी। इसलिए विज्ञान की परिभाषा है, ज्यादा से ज्यादा जानने की कोशिश कम से कम के संबंध में।
तो जब हम कम करेंगे तो चीजें टूटती चली जाएंगी। अब तो फिजिक्स भी अकेली नहीं है। अब तो फिजिक्स को भी हमें हिस्सों में तोड़ देना पड़ा। अब तो केमिस्ट्री भी एक विज्ञान नहीं है। अब तो आर्गेनिक केमिस्ट्री अलग होगी, इन-आर्गेनिक अलग होगी। और रोज टूटते जाएंगे हिस्से। विज्ञान धीरे-धीरे पत्तों पर पहुंच जाता है, और रहस्य से दूर होता चला जाता है।
लाओत्से कहता है, नाम और अनाम के, दोनों के बीच में जो एक होना है, उसी
का नाम मिस्ट्री है, उसी का नाम रहस्य है।

असल में, जो अद्वैत की तरफ जाएगा, वह रहस्य की तरफ जाएगा। और जो अनेक
की तरफ जाएगा, वह रहस्य की तरफ नहीं जाएगा। इसलिए विज्ञान धीरे-धीरे रहस्य को तोड़ता चला जाता है। वह सोचता है, कोई रहस्य नहीं है, सब रहस्य हम जान लेंगे। और फिर भी रहस्य अपनी जगह ही खड़ा रहेगा। विज्ञान का जानने का ढंग ऐसा है कि वह रहस्य से वंचित हो जाएगा। और इसलिए विज्ञान जितना विकसित हुआ, आदमी का रहस्य-भाव उतना कम हुआ। धर्म को जो नुकसान पहुंचे हैं, उनमें गहरे से गहरा नुकसान है रहस्य-भाव के कम होने से। कोई रहस्य नहीं मालूम पड़ता। सब चीजें ज्ञात हैं।
एक फूल आप देखते हैं। कोई कहता है, सुंदर है। आप कहते हैं, बेकार की बात कर रहे हो। इसमें कौन सा सौंदर्य है? फलां-फलां रंग हैं, फलां-फलां तत्वों से मिल कर बना है। जाएं और वैज्ञानिक से विश्लेषण करवा लें, वह सब निकाल कर बता देगा कि क्या-क्या है। और सौंदर्य इसमें कहीं भी नहीं है। जैसे ही हम चीजों के सारे तथ्यों को जान लेते हैं और नाम दे देते हैं, वैसे ही वह जो सबके भीतर छिपा हुआ अद्वैत था, वह लुप्त हो जाता है, वह खो जाता है। उसके खोने के साथ ही रहस्य विसर्जित हो जाता है।
लाओत्से कहता है, अनेक जिसे हमने नाम दिए हैं, फिर भी जो एक है, उसे ही
हम रहस्य कहते हैं। अनेक होकर भी जो एक ही बना रहता है, उसे ही हम रहस्य कहते हैं। भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ कर भी जो अभिन्न ही बना रहता है, उसे ही हम रहस्य कहते हैं। द्वैत में बंटा हुआ दिखाई पड़ता है, फिर भी बंटता नहीं, अनबंटा है, अनडिवाइडेड है, उसे ही हम रहस्य कहते हैं। रहस्य का मतलब समझ लें। रहस्य का मतलब होता है, जिसे हम जान भी लेते हैं और फिर भी नहीं जान पाते। धर्म की भाषा में रहस्य का अर्थ होता है, जिसे हम जान भी लेते हैं और फिर भी नहीं जान पाते। जिसे हम पहचान भी लेते हैं और फिर भी जो अनपहचाना रह जाता है।
इसे उदाहरण से समझें तो शायद ख्याल में आ जाए। आप किसी व्यक्ति को प्रेम करते हैं और पचास साल उसके साथ रहे हैं। क्या आप उसे जान पाए? परिचित तो भलीभांति हो गए होंगे। पचास साल में अगर परिचित नहीं हो पाए तो फिर कब परिचित हो पाएंगे? परिचित भलीभांति हो गए हैं, सब कुछ जानते हुए मालूम पड़ते हैं। और फिर भी क्या आप साहस से कह सकेंगे कि आप उसे जान पाए? उसका कोना-कोना जान लिया, उसकी एक-एक बात जान ली, उसकी सब आदतों का आपको पता है। फिर भी आप क्या कह सकते हैं कि वह प्रेडिक्टेबल है? कल सुबह क्या करेगा, यह आप बता सकते हैं?
नहीं, वह अनप्रेडिक्टेबल एलीमेंट मौजूद है। और ऐसा नहीं कि पचास साल
कम हैं, पांच सौ साल में भी वह मौजूद ही रहेगा। वही रहस्य है, दि अनप्रेडिक्टेबल! वह जिसकी हम कोई घोषणा न कर पाएंगे, जिसकी हम कोई भविष्यवाणी न कर पाएंगे! जिसको हम जान कर भी न कह पाएंगे कि हमने जान लिया। और किसी किनारे से देखें।
संत अगस्तीन से कोई पूछता है कि समय क्या है? व्हाट इ.ज टाइम? तो अगस्तीन कहता है, जब तक मुझसे कोई नहीं पूछता, मैं भलीभांति जानता हूं; और जब कोई पूछता है, तभी गड़बड़ हो जाती है।
आप भी जानते हैं कि समय क्या है; भलीभांति जानते हैं। समय से उठते हैं। अगर न जानते, तो समय से उठते कैसे? न जानते, तो समय से घर कैसे पहुंचते? न जानते, तो कैसे तय करते कि समय हो गया? जानते जरूर हैं समय को। लेकिन अगस्तीन ने ठीक कहा है कि जब तक मुझसे कोई नहीं पूछता, तब तक मैं बिल्कुल जानता हूं कि व्हाट इ.ज टाइम, और तुमने पूछा कि सब खो जाता है। कोई पूछे ले कि क्या है समय? तो आज तक जगत का बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी उत्तर नहीं दे पाया है। और ऐसे बुद्धिहीन से बुद्धिहीन आदमी समय का उपयोग कर रहा है। ऐसे मूढ़ से मूढ़ आदमी समय में जी रहा है। और बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी इशारा नहीं कर सकता कि यह है समय।
छोड़ें, समय थोड़ी जटिल बात है; जीवन तो इतनी जटिल नहीं। हम सब जी रहे हैं। हम काफी जी लिए हैं। जो जानते हैं, वे कहते हैं, हजारों-हजारों जन्म जी लिए हैं। छोड़ें उन्हें; इतना ही मान लें कि हम एक जन्म जी लिए हैं। पचास साल, चालीस साल, बीस साल, साठ साल जी लिए हैं। जीवन को जाना है। लेकिन अगर

कोई पूछे कि जीवन क्या है? तो बस चूक जाता है हाथ। क्या हो जाता है? जीवन क्या है, जब जी लिए हैं, तो बताना चाहिए।
लाओत्से कहता है, इसे हम रहस्य कहते हैं। जान भी लेते हैं, फिर भी अनजाना रह जाता है। सब जान लेते हैं, फिर भी पाते हैं कि सब अनजाना रह गया। अस्तित्व चारों तरफ मौजूद है। भीतर-बाहर वही है। रोएं-रोएं में, श्वास-श्वास में वही व्याप्त है। फिर भी अनजाना है। क्या जाना हमने?
ये लहरें समुद्र की लाखों साल से आकर इस तट पर टकरा कर गिर रही होंगी।
तट, अभी तक ये लहरें जान न पाई होंगी कि क्या है? और न यह तट जान पाया होगा कि ये लहरें क्या हैं? लेकिन आप कहेंगे, लहरों की छोड़िए। लेकिन अगर आप भी लाख वर्ष तक इस तट से इसी तरह टकराते रहें, तो भी इतना ही जान पाएंगे जितना लहरें जान पाई हैं। क्या हम जान पाते हैं? एक ऊपरी परिचय, एक एक्वेनटेंस हो जाता है। और उस ऊपरी परिचय को हम कहने लगते हैं ज्ञान। इस ऊपरी परिचय को ज्ञान कहने से बड़ी भ्रांति पैदा होती है; तब हम रहस्य से वंचित रह जाते हैं। लाओत्से कहता है, इस ऊपरी परिचय को ज्ञान मत समझना, जानना कि बस ऊपरी पहचान है। तब तुम्हें प्रतिपल रहस्य चारों तरफ उपस्थित दिखाई पड़ेगा। रहस्य है ही। कितना ही जान लें हम, उसका कोई अंत नहीं होता।
और अब, अब जब कि विज्ञान थोड़ा गहन और गंभीर हुआ है और उसका बचपना टूटा है, क्योंकि विज्ञान को अभी पैदा हुए ज्यादा दिन नहीं हुए। धर्म को, अंदाजन बीस हजार साल के तो चिह्न मौजूद हैं धर्म को पैदा हुए। तो धर्म ने अगर आज से पांच हजार साल पहले भी यह बात कही है कि जीवन रहस्य है, तब भी वह पंद्रह हजार साल पुरानी घटना थी, अनुभव था। विज्ञान को तो पैदा हुए तीन सौ साल हुए हैं। बिल्कुल बचपना है। यह बात पक्की है कि जिस दिन विज्ञान भी पंद्रह हजार साल की उम्र का होगा, तब वह इतने ही जोर से घोषणा करके कहेगा कि जीवन रहस्य है।
पंद्रह हजार साल तो दूर है; अभी आइंस्टीन मौजूद था। तो हमने विज्ञान
की जो बड़ी से बड़ी प्रतिभा पैदा की है, वह उस आदमी में थी। लेकिन मरते वक्त वह आदमी कह कर गया है कि मैं सोचता था अपनी युवा अवस्था में कि सत्य को जाना जा सकेगा, अब मैं ऐसा नहीं सोचता हूं। अब मैं सोचता हूं कि सत्य अज्ञेय है और अज्ञेय ही रहेगा। हम बहुत कुछ जान लेंगे, यह पक्का है। फिर भी जानने को उतना ही शेष रहेगा, जितना हमारे जानने के पहले शेष था। हमारे जानने से कुछ अंतर न पड़ेगा। वह ऐसा ही होगा, जैसे हम एक चुल्लू भर पानी समुद्र से भर लाए। शायद चुल्लू भर पानी समुद्र से भरने में समुद्र थोड़ा कम भी होता होगा, लेकिन वह जो अज्ञात का चारों तरफ विस्तार है, अज्ञेय का, अननोएबल का, वह हमारे कितने ही जान लेने से चुल्लू भर भी कम नहीं होता। धर्म इसे रहस्य कहता है, वह सदा शेष ही रह जाता है--अनजाना, अपरिचित। उतना का उतना मौजूद रह जाता है। रहस्य का अर्थ है... ।
तीन चीजें समझ लें। अज्ञान; अज्ञान रहस्य नहीं है। विज्ञान समझता है
कि अज्ञान की वजह से ही यह रहस्य मालूम होता है। वह विज्ञान की भूल है।
अज्ञान रहस्य नहीं है; क्योंकि अज्ञान में हमें कुछ पता ही नहीं है। रहस्य का तो पता होगा ही कैसे! कुछ भी पता नहीं है। ज्ञान भी रहस्य नहीं है; क्योंकि ज्ञान में हमें कुछ पता है। रहस्य ज्ञान से ऊपर की घटना है। अज्ञान के ऊपर ज्ञान घटता है; ज्ञान के ऊपर रहस्य घटता है। जो अज्ञान से जानने में जाएगा, वह ज्ञानी हो जाएगा। और जो ज्ञान से भी और ऊपर जानने में जाएगा, वह रहस्यवादी, मिस्टिक हो जाएगा।
तीन सीढ़ियां समझ लें। एक अज्ञान की सीढ़ी है। अगर आप अज्ञान से बढ़ेंगे,
तो दूसरी सीढ़ी ज्ञान की है। न जानने से जानने की दुनिया शुरू होती है। लेकिन अगर आप न जानने में रुक गए, तो अज्ञानी रह जाएंगे; और अगर आप जानने में रुक गए, तो ज्ञानी रह जाएंगे; अगर आप जानने के भी ऊपर उठे, तो रहस्य की दुनिया शुरू होती है। और तब उस अवस्था में ज्ञान होते हुए भी अज्ञान का पूर्ण बोध होता है। ज्ञान और अज्ञान रहस्य में एक ही हो जाते हैं। जैसा लाओत्से कह रहा है कि वे दोनों पहलुओं के भीतर एक ही है। रहस्य का अनुभव उसे होता है, जिसे अज्ञान में भी और ज्ञान में भी एक के ही दर्शन होने लगते हैं। और जिसे लगता है कि अज्ञानी और ज्ञानी में बहुत फासला नहीं है।

अज्ञानी को भ्रम है कि मुझे पता नहीं। ज्ञानी को भ्रम है कि मुझे पता है। रहस्यवादी को पता है कि पता होने की कोई संभावना नहीं है।
नहीं, रहस्यवादी यह नहीं कहता है कि जानो मत। वह कहता है, जानो, खूब जानो; लेकिन इतना गहरा जानो कि तुम जानने के भी पार निकल जाओ। वह जानना तुम्हारा बंधन और तुम्हारी सीमा न बन जाए। अज्ञान से तो ऊपर उठ गए हो, ज्ञान के भी ऊपर उठ जाओ।
ईशावास्य के ऋषि ने कहा है, अज्ञानी तो भटक ही जाते हैं अंधकार में, लेकिन उन ज्ञानियों का क्या कहें जो महा अंधकार में भटक जाते हैं!
कौन से ज्ञानी होंगे जो महा अंधकार में भटक जाते हैं? हमने तो यही सुना है कि ज्ञानी नहीं भटकते, अज्ञानी भटकते हैं। यह ईशावास्य का ऋषि क्या कह रहा है? जरूर इसे वही बात पता है जो लाओत्से को पता है। यह कह रहा है कि अज्ञानी तो भटकते हैं इस कारण कि उन्हें पता नहीं है। और ज्ञानी इसलिए भटक जाते हैं कि वे सोचते हैं कि उन्हें पता है। और ध्यान रहे, ऋषि कहता है, अज्ञानी तो अंधकार में भटकते हैं, ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं। उसकी विनम्रता भी खो जाती है, और अहंकार सघन हो जाता है।
रहस्य, ज्ञान और अज्ञान, दोनों का अतिक्रमण है। रहस्य इस बात की खबर
है कि नहीं, जानो बहुत, जान नहीं पाओगे। जानने की कोशिश करो बहुत, कोशिश असफल होगी। दौड़ो, खोजो, आविष्कार करो, लेकिन आखिर में एक ही बात आविष्कार कर पाओगे कि जीवन अतल रहस्य है, उसका तल नहीं खोजा जा सकता है।
लाओत्से कहता है, इसे हम रहस्य कहते हैं। दोनों के भीतर यथार्थ में एक है, इसे हम रहस्य कहते हैं। जन्म और मृत्यु में एक है, अंधेरे और प्रकाश में एक है, इसे हम रहस्य कहते हैं।
और इसके बाद की पंक्ति उसकी बहुत अदभुत है।
"इन नामों के समूह को ही हम रहस्य कहते हैं। और जहां रहस्य की सघनता सर्वोपरि है, वहीं उस सूक्ष्म और चमत्कारी का प्रवेश-द्वार है।"
जहां रहस्य की सघनता सर्वोपरि है! रहस्य की सघनता! क्या अर्थ होगा रहस्य की सघनता का? पीछे लौट कर चलना पड़े।
अज्ञानी को पता होता है कि मुझे पता नहीं है। अहंकार सूक्ष्म होता है, निर्बल होता है। होता है, क्योंकि इतना तो उसे भी ख्याल है कि मुझे पता नहीं है। ज्ञानी को पता होता है कि मुझे पता है। मैं और मजबूत हो गया होता है, सघन हो गया होता है।
अज्ञानी के मन में थोड़ा-बहुत रहस्य का भाव भी होता है अज्ञान के कारण। उसे बहुत वंडर्स दिखाई पड़ते हैं, चारों तरफ विचित्रताएं दिखाई पड़ती हैं, क्योंकि वह कुछ नहीं समझ पाता। आकाश में बिजली चमकती है, तो वह सोचता है, शायद इंद्र नाराज हैं। वर्षा होती है, तो सोचता है, शायद देवता प्रसन्न हैं। फसल आती है, तो सोचता है, पुण्य का फल है। फसल नहीं आती, भूकंप आ जाता है, तो सोचता है, पापों का परिणाम है। वह अपने कुछ हिसाब लगाए चला जाता है। पर रहस्य होता है, अज्ञान-निर्भर होता है। मैं होता है कम सघन, रहस्य की प्रतीति थोड़ी होती है। लेकिन रहस्य को भी अज्ञान शीघ्रता से कुछ न कुछ व्याख्याओं में परिवर्तित कर लेता है। बिजली इंद्र बन जाती है, वर्षा पाप-पुण्य का फल बन जाती है। सुख-दुख न्याय, कर्म के सिद्धांत बन जाते हैं। कुछ न कुछ व्याख्या निर्मित कर लेता है अज्ञानी भी। जिस मात्रा में व्याख्या कर लेता है, उसी मात्रा में अहंकार मजबूत हो जाता है।
ज्ञानी जानता है तथ्यों को। जितना जानता है, उतना मजबूती से मैं मजबूत होता है। और जितनी मजबूती से मैं मजबूत होता है, उतना ही रहस्य का भाव विरल हो जाता है। सघन नहीं, विरल हो जाता है। रहस्य के भाव की सघनता विलीन हो जाती है।
तीसरे चरण में, जहां ज्ञानी न ज्ञानी रह जाता न अज्ञानी, जानता है और फिर भी जानता है कि नहीं जानता हूं, वहां मैं बिल्कुल खो जाता है। और जहां खोता है मैं, वहां रहस्य सघन होता है। ये दो चीजें हैंः मैं और रहस्य। अगर मैं बहुत सघन होगा, तो रहस्य विरल होगा। अगर मैं विरल होगा, तो रहस्य सघन होगा। अगर मैं पूरी तरह से मजबूत हो जाए, तो रहस्य बिल्कुल समाप्त हो जाएगा। और अगर मैं बिल्कुल शून्य हो जाए, तो रहस्य परिपूर्ण रूप से सघन और तीव्र हो जाएगा। मैं के केंद्र की ही मात्रा पर तय करेगा कि रहस्य कितना

सघन है। इसलिए समस्त रहस्यवादी कहते हैं, मैं को विसर्जित करो; मैं को खो दो; तब तुम्हें जीवन का रहस्य पता चलेगा।
यह मैं क्यों बाधा देता है? यह मैं अंधा कर देता है, रहस्य को नहीं देखने देता। रहस्य का मतलब ही यह है कि मेरा कोई वश न चलेगा, मैं जान न पाऊंगा। मेरी कोई सामर्थ्य नहीं है, मैं असहाय हूं। तभी रहस्य का बोध होगा।
इसलिए छोटे बच्चे जितने रहस्य से घिरे रहते हैं, बूढ़े नहीं घिरे रहते। छोटे बच्चे रहस्य के जगत में जीते हैं। क्यों? अभी मैं उतना सघन नहीं है। अभी तितली उड़ती है, तो ऐसा लगता है कि परम स्वप्न पूरा हुआ। अभी फूल खिलता है, तो ऐसा लगता है कि अनंत के द्वार खुले। अभी सूरज निकलता है, तो ऐसा लगता है कि बस परम प्रकाश का दर्शन हुआ। अभी सागर की लहर टकराती है, तो हृदय में आनंद की पुलक नाच जाती है। अभी राह के किनारे पड़े हुए कंकड़-पत्थर रंगीन भी बच्चा उठा लाता है, तो उनमें हीरे और मोती उसे दिखाई पड़ते हैं। अभी मैं बहुत सघन नहीं है। अभी चारों तरफ रहस्य का दर्शन होता है। तो बच्चे का तो पूरा समय एक काव्य में बीतता है, एक कविता में। इसलिए छोटे बच्चे सपने में और जागने में फर्क नहीं कर पाते। छोटा बच्चा सुबह उठ कर रात सपने में खो गई गुड़िया के लिए सुबह रो सकता है, चिल्ला सकता है कि गुड़िया टूट गई, गई कहां! और हम उसे कितना ही समझाएं कि वह सपना था, हम न समझा पाते हैं। उसका कारण है कि अभी सपने में और जागने में कोई बहुत स्पष्ट भेद-रेखा नहीं है। अभी वह दिन में भी सपने देखता है। अभी रात और दिन में बहुत फासला नहीं है, पलक खुलने और बंद होने का ही फासला है। भीतर अभी बहुत तरल है। अभी रहस्य का भाव बहुत मजबूत है।
फिर जैसे-जैसे मैं मजबूत होगा, वैसे-वैसे रहस्य विलीन होता जाएगा। जितना बच्चा शिक्षित होगा, सर्टिफिकेट लाएगा, जितना बड़ा होगा, जितना अपने पैरों पर खड़ा होगा, जितनी-जितनी योग्यता अर्जित करेगा, उतना मैं धीरे-धीरे साफ होगा, निखरेगा, उतना रहस्य गिरता चला जाएगा।
लेकिन बच्चे का जो रहस्य है, वह अज्ञान से संबंधित रहस्य है। संत का
जो रहस्य है, वह ज्ञान के बाद का रहस्य है। ज्ञान के पहले भी एक रहस्य है, वह अज्ञान का है। ज्ञान के बाद भी एक रहस्य है, वह अज्ञान का नहीं है।
यही फर्क है कवि में और ऋषि में। कवि भी रहस्य में जीता है, लेकिन अज्ञान से भरे। और ऋषि भी काव्य में जीता है, लेकिन ज्ञान के पार जो काव्य है। ऋषि का अर्थ कवि ही होता है। लेकिन ऐसा कवि, जिसके पास आंखें हैं, जिसने देखा। ऋषि भी काव्य में ही जीता है। उसके लिए भी जगत प्रोज नहीं, पोएट्री है। उसके लिए जगत गद्य नहीं है, रूखा-सूखा नहीं है। उसके लिए जगत पद्यमय है, गीत में बंधा है, छंद से आविष्ट है, नृत्य से, गीत से आच्छादित है। लेकिन ऋषि, ज्ञान के बाद जो रहस्य आता है, उसका कवि है। और कवि, ज्ञान के पहले जो रहस्य होता है अज्ञान का, उसका ऋषि है। इतना ही उन दोनों में फर्क है।
इसलिए हम उपनिषद के ऋषियों को मात्र कवि नहीं कह सकते। यद्यपि उन जैसा काव्य कम ही पैदा हुआ है। और हम अपने श्रेष्ठतम कवि को भी ऋषि नहीं कह सकते, क्योंकि उसका काव्य केवल अज्ञान का काव्य है। हमारा कवि असल में ऐसा बच्चा है, जो बच्चा ही रह गया। जिसका शरीर तो बढ़ता चला गया, लेकिन जिसके भीतर के सपने और बाहर की दुनिया में भेद-रेखा निर्मित न हुई। बाल-सुलभ है! इसलिए कवि अगर बच्चों जैसे काम करते दिखाई पड़ जाएं, तो बहुत हैरानी की बात नहीं। इसलिए कवियों का व्यवहार अप्रौढ़, इम्मैच्योर मालूम पड़ता है। और कई बार हम समझ नहीं पाते। और इसलिए कवियों का बहुत सा व्यवहार अनैतिक मालूम पड़ता है।
अब पिकासो एक स्त्री को प्रेम करता है। करता है, करता है, बिल्कुल पागल है। ऐसा प्रेम कम ही लोग करते हैं, जैसा पिकासो कर सकता है। लेकिन बस एक दिन प्रेम उजड़ गया। और वह दूसरी स्त्री को वैसा ही प्रेम करने लगा, जैसा इसको करता था। चारों तरफ की दुनिया को यह अनैतिक लगेगा। लेकिन कुल मामला इतना है कि पिकासो बिल्कुल बाल-सुलभ है।
जैसे एक बच्चा एक गुड़िया को प्रेम कर रहा था; कर रहा था, तो छाती से लगाए फिर रहा था। फिर एक दिन ऊब गया, तो उसने उसे टिका कर एक कोने में रख

दिया। अब वह लौट कर भी नहीं देखता। बच्चे को हम अनैतिक न कहेंगे, क्योंकि हम मान कर चलते हैं, वह बच्चा है। पिकासो को हम अनैतिक कहेंगे कि कैसा प्रेम है? यह धोखा है। यद्यपि पिकासो धोखा नहीं दिया। जब उसने प्रेम किया है, तो उतना ही किया है, जैसे बच्चा गुड़िया को छाती से लगा कर चलता था, रात छोड़ता नहीं था। इतना ही प्रेम किया है, सघन प्रेम किया है। लेकिन जब चला गया तो चला गया। वह बच्चे जैसा हट गया। अब वह किसी दूसरे को कर रहा है। अनैतिक लगेगा।
केवल सच पूछा जाए, तो कवि, चित्रकार, संगीतज्ञ उनके भीतर जो अनैतिकता हमें दिखाई पड़ती है, उसका मूल कारण कुल इतना ही होता है कि उनका शरीर तो प्रौढ़ हो गया होता है, लेकिन उनका बचपन गया नहीं होता है। भीतर गहरे में वे बच्चे जैसे रह जाते हैं। इसीलिए वे काव्य लिख पाते हैं। लेकिन इसीलिए वे जीवन में उपद्रव हो जाते हैं। इसीलिए वे सुंदर चित्र बना पाते हैं, लेकिन जीवन उनका कुरूप हो जाता है। इसीलिए वे गीत अच्छा गा पाते हैं, लेकिन जीवन के संबंध में उन जैसा अनगढ़ कोई भी नहीं होता।
ऋषि बहुत और बात है। वह फिर से पाया गया बचपन है, चाइल्डहुड रिगेन्ड। बचपन नहीं है वह। वह समस्त प्रौढ़ता और समस्त ज्ञान के बाद पाई गई फिर से सरलता है, फिर से इनोसेंस है, फिर से वही निर्दोष भाव है।
इसलिए संत में भी बच्चों जैसे भाव दिखाई पड़ सकते हैं, लेकिन संत में कवि जैसी अनैतिकता नहीं दिखाई पड़ सकती। संत में बच्चे जैसी सरलता और निर्दोषता दिखाई पड़ेगी, लेकिन कवि जैसी उच्छृंखलता नहीं दिखाई पड़ सकती। उसकी निर्दोषता में भी, उसकी परम स्वतंत्रता में भी एक व्यवस्था और एक नियम और एक अनुशासन होगा। उसकी स्वच्छंदता में भी एक आत्मानुशासन होगा। उसके सारे बच्चे जैसे व्यवहार के भीतर भी परम अनुभव की धारा होगी। और फिर भी वह ज्ञान और अनुभव के बाहर गया, फिर भी वह ज्ञान से भी ऊपर उठा है। लाओत्से कहता है, रहस्य कहते हैं हम इसे। और इस रहस्य से, इस रहस्य की अगर सघनता बढ़ जाए, तो वह जीवन का जो सूक्ष्म राज है, वह जो चमत्कारपूर्ण जीवन का द्वार है, वह खुलता है।
सघन होगा तब, जब अहंकार होगा विरल। यह प्रपोर्सनेट होगा सदा। इसे हम ऐसा मान सकते हैं, सौ प्रतिशत अहंकार, तो शून्य प्रतिशत रहस्य का भाव। नब्बे प्रतिशत अहंकार, तो दस प्रतिशत रहस्य का भाव। दस प्रतिशत अहंकार, तो नब्बे प्रतिशत रहस्य का भाव। शून्य प्रतिशत अहंकार, तो सौ प्रतिशत रहस्य का भाव। यह बिल्कुल यह शक्ति एक ही है। जो अहंकार में पड़ती है, वह वही शक्ति है, जो रहस्य में पड़ेगी। इसलिए अहंकार जितना मुक्त होगा, उस शक्ति को छोड़ेगा, उतना वह शक्ति रहस्य में प्रवेश कर जाएगी।
जीवन-ऊर्जा की दो वैकल्पिक दिशाएं हैंः अस्मिता और रहस्य। मैं और तू।
वह तू जो है परमात्मा, वह रहस्य है। इधर मैं मजबूत होता है, तो तू क्षीण होता चला जाता है।
हमारी सदी ने अकारण ही ईश्वर को इनकार नहीं किया है। हमारी सदी पृथ्वी पर सबसे ज्यादा अहंकारी सदी है। और मजा यह है कि अहंकार ज्ञान का है। होगा ही; ज्ञान का ही अहंकार होता है। हमारी सदी सबसे ज्यादा ज्ञानपूर्ण सदी है। यह उलटी बात लगेगी, लेकिन अगर आपने मेरी पिछली पूरी बात ठीक से ख्याल में ली है, तो समझ में आ जाएगी।
हमारी सदी मनुष्य-जाति के ज्ञात इतिहास में सर्वाधिक ज्ञानपूर्ण है।
और परिणामतः सर्वाधिक अहंकारी है। और अंततः सर्वाधिक रहस्य से वंचित है। जितना हम ज्ञानपूर्ण होते चले जाएंगे, जितनी हमारी लाइब्रेरीज बड़ी होती चली जाएंगी, हमारी यूनिवर्सिटीज ज्ञान की थाती बनती चली जाएंगी, हमारे बच्चे ज्ञान के जानकार होते चले जाएंगे, उतना रहस्य तिरोहित होता चला जाएगा। और ऐसी घड़ी आ सकती है--और वही आदमी की आखिरी सुसाइडल घड़ी होती है-- जब कोई सभ्यता इतनी ज्ञानी हो जाती है कि उसको रहस्य का कोई बोध न रह जाए, तो सिवाय मरने के फिर कोई उपाय नहीं रह जाता। क्योंकि जीया जाता है रहस्य से, अहंकार से नहीं। हम भी, जो अहंकारी हैं, वे भी रहस्य से ही जीते हैं। पूर्ण अहंकार के साथ जीना असंभव है; सिर्फ मृत्यु ही संभव है, आत्मघात ही संभव है। अगर सब हमने जान लिया, ऐसा ख्याल आ जाए, तो मरने के सिवाय और कुछ जानने को शेष नहीं रह जाएगा।

इसलिए जितना हम पीछे लौटते हैं, उतना हम आदमी को जीवन के प्रति ज्यादा रसमय पाते हैं। आत्महत्या उतनी कम होती है, जितना हम पीछे लौटते हैं। यह बड़े मजे की बात है, अज्ञानी सभ्यताएं आत्महत्याएं नहीं करती हैं। क्योंकि आत्महत्या होने के लिए जितना सघन अहंकार चाहिए, वह उनके पास नहीं होता। मरने के लिए बहुत प्रगाढ़ मैं चाहिए; इतना मजबूत मैं चाहिए कि जीवन के समस्त रहस्य को इनकार करके हत्या में उतर जाए। स्वयं को समाप्त करने के लिए बड़ी मजबूत अस्मिता चाहिए। स्वयं की गरदन काटने के लिए बहुत सघन अहंकार चाहिए। इसलिए जितनी पुरानी सभ्यता, अज्ञानी, आदि, आदिम, उतनी आत्महत्या नहीं। आदिवासी आत्महत्या को जानते ही नहीं। अपरिचित हैं, और सोच ही नहीं पाते। ऐसी बहुत सी भाषाएं हैं आज भी पृथ्वी पर, जिनमें आत्महत्या के लिए कोई शब्द नहीं है। क्योंकि उन्होंने कभी सोचा ही नहीं कि कोई अपने को किसलिए मारेगा!
पर हमारे लिए स्थिति बिल्कुल बदल गई है।
अलबर्ट कामू ने अपनी एक किताब का प्रारंभ किया है और कहा है, दि ओनली फिलासॉफिकल प्राब्लम इ.ज सुसाइड--एकमात्र दार्शनिक समस्या है और वह है आत्मघात।
कोई आदमी एक दर्शन-ग्रंथ की शुरुआत ऐसी करेगा! और अलबर्ट कामू समझदार लोगों में एक था आज के युग के। नहीं, ईश्वर की चर्चा नहीं की है कामू ने अपनी किताब में, कि दर्शन की समस्या ईश्वर है। चर्चा की है कि दर्शन की एकमात्र समस्या आत्मघात है, कि आदमी जीए तो क्यों जीए?
ठीक है उसका पूछना। अगर रहस्य न हो, तो जीने का कारण क्या है? खाना खाने के लिए जीए? मकान में रहने के लिए जीए? बच्चे पैदा करने के लिए जीए? फिर बच्चे किसलिए जीएं? वे और बच्चे पैदा करने के लिए जीएं? इस सबका क्या प्रयोजन है? मकान बनाए, रास्ते बनाए, हवाई जहाज बनाए--पर जीए क्यों?
अगर आप कहें, प्रेम के लिए! तो आप रहस्य की दुनिया में उतरे। कामू कहेगा, प्रेम कहां है? सब जगह खोजा, सिवाय कामवासना के कुछ नहीं पाया। प्रेम तो रहस्य है, कामवासना तथ्य है। पकड़ने जाएंगे, तो कामवासना पकड़ में आएगी, प्रेम पकड़ में नहीं आएगा। कोई कहे, आनंद के लिए! आनंद तो रहस्य है; तथ्य तो तथाकथित सुख-दुख है। और सब सुख के पीछे दुख छिपा है। तो कामू कहेगा, किसलिए जीना है? और ठीक है, एक सुख एक बार देख लिया।
नसरुद्दीन एक होटल में बैठा हुआ है। और कोई आदमी उससे आकर पूछता है... कोई आदमी बैठ कर बातचीत करने लगा है, गांव के समाचार पूछता है। अजनबी है, परदेशी है। नसरुद्दीन उससे कहता है कि आप ताश तो नहीं खेलते हैं? अन्यथा हम ताश खेलें। वह आदमी कहता है, एक बार खेल कर देखा, फिर बेकार पाया। नसरुद्दीन कहता है, आप शतरंज में तो शौक नहीं रखते हैं? अन्यथा मैं शतरंज बुला लूं। वह आदमी कहता है, एक दफा शतरंज भी खेली थी। नहीं, कुछ सार न पाया। नसरुद्दीन कहता है, फिर आपके लिए मैं क्या इंतजाम करूं? संगीत सुनना पसंद करेंगे? तो मैं कुछ वाद्य बजाऊं। वह आदमी कहता है, एक दफा सुना था, सार नहीं पाया। तो नसरुद्दीन कहता है, मछली मारने के शौकीन हैं? तो चलें हम, मौसम अच्छा है, बाहर मछलियां मारें। तो वह आदमी कहता है, मैं तो न जा सकूंगा, मेरा लड़का है उसे ले जाएं।
नसरुद्दीन उससे कहता है, माफ करें, मैं सोचता हूं, आपका एकमात्र लड़का! नसरुद्दीन उससे कहता है, मैं सोचता हूं, आपका एकमात्र लड़का होगा यह। क्योंकि एक दफा देखा होगा आपने प्रेम, काम, फिर दुबारा तो... आई प्रिज्यूम योर ओनली सन, नसरुद्दीन कहता है। क्योंकि एक दफा ताश खेल कर देखा, बेकार पाया। एक दफा शतरंज खेल कर देखी, बेकार पाई। एक दफा मछली मार कर देखी, बेकार पाई। तो आई प्रिज्यूम योर ओनली सन!
जीवन में कोई तथ्य ऐसा नहीं है, जो दुबारा देखने योग्य है। और अगर दुबारा देखने योग्य है, तो वह तथ्य नहीं होगा, उसमें कुछ रहस्य होगा, जो अनजाना रह गया, जिसको फिर जानना पड़ेगा, फिर जानना पड़ेगा। फिर भी अनजाना रह जाएगा, तो फिर जानना पड़ेगा। जिस चीज को हम पूरा जान लें, उसे दुबारा जानने का कोई भी सवाल नहीं है। क्या सवाल है? नहीं जान पाते हैं पूरा, इसलिए दुबारा जानते हैं, तिबारा जानते हैं, हजार बार जानते हैं, और फिर भी एक

हजार एक बार जानने की कामना जगती है। क्योंकि वह अनजाना, अपरिचित रहस्य पीछे शेष रह गया।
तो कामू ठीक कहता है, अगर कोई रहस्य नहीं है, तो आत्महत्या एकमात्र दार्शनिक समस्या है। हमारा युग सर्वाधिक ज्ञानपूर्ण, सर्वाधिक आत्महत्याएं करने वाला, सर्वाधिक अहंकार से भरा। इसलिए हम कहते हैं, कोई ईश्वर नहीं है, कोई धर्म नहीं है, कोई रहस्य नहीं है।
और लाओत्से कहता है, जो विरल करेगा अस्मिता को, सघन करेगा रहस्य को, उसके लिए जीवन के सूक्ष्म और चमत्कारी... ।
ये सूक्ष्म और चमत्कारी, दो शब्द ख्याल में ले लेने चाहिए। एक, सूक्ष्म से हम जो मतलब लेते हैं साधारणतः, वह लाओत्से जैसे लोग नहीं लेते। सूक्ष्म से हमारा मतलब होता है कम स्थूल। हम कहते हैं, दीवार स्थूल है, वायु सूक्ष्म है। लेकिन वायु भी स्थूल है, सूक्ष्म नहीं; कम स्थूल है। जो भेद है वायु में और दीवार में, वह बहुत ज्यादा नहीं है। वह कोई गुणात्मक भेद नहीं है, वह मात्रा का ही भेद है। क्वांटिटी का भेद है, क्वालिटी का भेद नहीं है।
और वायु की भी दीवार बनाई जा सकती है। और वायु से भी आपको इतने जोर से गिराया जा सकता है, जितना आपकी दीवार से आप टकरा कर कभी न गिरें। और दीवार से आप बच भी जाएं, अगर वायु की सघन दीवार खड़ी की जाए, तो आप उससे बच न पाएं। दीवार में ही वजन नहीं है, वायु में भी वजन है, बहुत ज्यादा वजन है। वह तो आपको पता नहीं चलता, क्योंकि आपके चारों तरफ शरीर पर वायु का एक सा वजन पड़ता है। इसलिए वायु अपने वजन को काट देती है। नहीं तो हजारों पौंड का वजन आपके ऊपर है। आप मर जाएं दब कर इसी वक्त, अगर एक तरफ से वायु अलग हो जाए। जब जोर की हवा चलती है, तो आप शायद आगे को गिर पड़ने को होते हैं। तो आप सोचते होंगे, पीछे की हवा धक्का दे रही है इसलिए, तो आप गलत सोचते हैं। पीछे की हवा आपको धक्का देकर नहीं गिरा रही है। पीछे की हवा के धक्के के कारण आपके आगे की हवा धक रही है, वहां खाली जगह पैदा हो रही है, वह खाली जगह में आप गिरेंगे।
वायु का तो अपना बहुत स्थूल रूप है। हम किन चीजों को सूक्ष्म कहते हैं? हमारा सब सूक्ष्म स्थूल का ही एक रूप होता है। लाओत्से जैसे लोग जब सूक्ष्म का उपयोग करते हैं, दि सटल, तो उनका मतलब होता है वह, जो इंद्रियों की किसी भी भांति पकड़ में नहीं आता। सूक्ष्म का अर्थ समझ लेना आप। वायु हमारी आंख को नहीं दिखाई पड़ती, लेकिन हाथ को तो दिखाई पड़ती है। इंद्रियों की पकड़ में आती है, सूक्ष्म नहीं है। सूक्ष्म का अर्थ है, जो इंद्रियों की पकड़ के बाहर है।
आपने कोई ऐसी चीज जानी है जो इंद्रियों की पकड़ के बाहर है? जो भी जाना है, सब इंद्रियों की पकड़ से जाना है। देखा तो आंख से, सुना तो कान से, सूंघा तो नाक से, छुआ तो हाथ से। आपके अनुभव में सूक्ष्म का कोई भी अनुभव नहीं है। इसे हम ऐसी व्याख्या कर लेंः जो इंद्रियों से जाना जाता है, वह स्थूल; और जो इंद्रियों से नहीं जाना जाता और फिर भी जाना जाता है, वह सूक्ष्म। तब आपको ख्याल में आएगा। नहीं तो हम जो फर्क करते हैं, वह इंद्रियों में फर्क कर लेते हैं।
एक आवाज जोर से आ रही है, तो हम कहते हैं स्थूल। और बहुत बारीक और धीमी
आ रही है, तो हम कहते हैं सूक्ष्म। इनमें कोई फर्क नहीं है। ये एक ही आवाज की तारतम्यताएं हैं। और दोनों को कान पकड़ लेता है। और कान अगर न भी पकड़ सके, रेडियो पकड़ ले, तो भी सूक्ष्म नहीं है, वह स्थूल है। उसका मतलब यह हुआ कि थोड़ा बड़ा कान पकड़ लेता है। छोटा कान नहीं पकड़ता, थोड़ा बड़ा कान पकड़ लेता है।
अभी यहां से चित्र गुजर रहे हैं। टेलीविजन पकड़ लेता है; हम, हमारी आंख नहीं पकड़ पाती। लेकिन वह भी सूक्ष्म नहीं है। क्योंकि टेलीविजन तो बहुत स्थूल चीज है। हमसे जरा आंख उसकी तेज है। रेडियो का कान हमसे ज्यादा तेज है। मात्रा का फर्क है।
इसलिए जो चीज भी इंद्रियों की पकड़ में आती है--या एक नई बात और उसमें जोड़ दूं, जो पुराने ऋषियों ने नहीं जोड़ी है, क्योंकि उनको पता नहीं था--जो बात इंद्रियों की पकड़ में आती है वह, और या इंद्रियों के द्वारा बनाए गए

किसी भी यंत्र की पकड़ में आती है वह, वह सब स्थूल है। क्योंकि इंद्रियों से जो यंत्र बनते हैं, वे सूक्ष्म को नहीं पकड़ पाएंगे। इंद्रियों के बनाए हुए यंत्र इंद्रियों के एक्सटेनशंस हैं, और कुछ नहीं। हमारी दूरबीन क्या है? हमारी आंख का फैलाव है। हमारा राडार क्या है? हमारी आंख का फैलाव है। हमारी बंदूक क्या है? हाथ से पत्थर फेंक कर मार सकते थे, उसका बढ़ाव है। हम अपनी इंद्रियों को बढ़ाने में लगे हैं। हमारा छुरा, हमारी तलवार क्या है? हमारे नाखून हैं बढ़े हुए। जंगली जानवर नाखून से आदमी की छाती फाड़ता है, हम एक लोहे का पंजा बना कर छाती फाड़ देते हैं। हमारी सब इंद्रियों के बढ़ाव जो हैं, एक्सटेनशंस जो हैं, उनकी पकड़ में जो आ जाए, वह भी स्थूल है।
सूक्ष्म वह है, जो इंद्रियों की पकड़ में ही न आए, और फिर भी पकड़ में आए। ध्यान रखें, अगर पकड़ में ही न आए, तब तो आपको उसका पता ही न चले। इसलिए दूसरी बात भी ख्याल रख लें। पकड़ में तो आए जरूर, लेकिन किसी इंद्रिय के द्वारा पकड़ में न आए। इमीजिएट हो, कोई मीडिएटर बीच में न हो। कोई मध्यस्थ इंद्रिय का बीच में न हो। मैं आपको देख लूं बिना आंख के, मैं आपको सुन लूं बिना कान के, मैं आपको छू लूं बिना हाथ के, तो सूक्ष्म--तो सूक्ष्म। न हाथ है बीच में, न कोई यंत्र है बीच में; कोई है ही नहीं बीच में। बीच में कोई नहीं है, सीधी मेरी चेतना अनुभव को उपलब्ध हो, तो वह अनुभव सूक्ष्म है। लाओत्से कहता है, जिस व्यक्ति का रहस्य-बोध सघन हो जाता है, वह सूक्ष्म का द्वार खोल लेता है।
रहस्य-बोध के सघन होने से, अहंकार के गिरते ही, हमें इंद्रियों की जरूरत नहीं रह जाती। यह बहुत मजे की बात है। अहंकार के गिरते ही हमें इंद्रियों की जरूरत नहीं रह जाती। असल में, अहंकार ही है जो इंद्रियों के द्वारा काम करता है। अगर अहंकार गिर जाए, इंद्रियों की कोई जरूरत नहीं रह जाती। और बिना इंद्रियों के, नॉन-सेंसरी अनुभव शुरू हो जाते हैं। और जब बिना इंद्रियों के कोई अनुभव होते हैं, तो उनका नाम सूक्ष्म है।
ऐसे अनुभव कभी-कभी आपको भी झलक जाते हैं। कभी-कभी किसी क्षण में, किसी अवसर पर, किसी स्थिति में आपका अहंकार विरल होता है, तो ऐसे अनुभव आपको झलक जाते हैं--अनायास। पर अहंकार सघन हो जाता है पुनः, अनुभव खो जाता है। और फिर आप कितना ही समझने की कोशिश करें, आप उसको न समझ पाएंगे। अहंकार उसे न समझ पाएगा। आपने ऐसी आवाजें सुनी हैं, जिनको आपने बाद में स्वयं झुठलाया और कहा कि नहीं, मैंने नहीं सुना होगा। क्योंकि मैं कैसे सुन सकता था? वहां कोई मौजूद ही न था! आपने ऐसे क्षणों में कभी कुछ ऐसे रूप देखे हैं, जिनको आपने ही बाद में इनकार किया और कहा कि मैं कैसे देख सकता था? वहां तो कोई भी मौजूद न था! आप ऐसी संभावनाओं के निकट आ गए हैं बहुत बार--अनायास-- जिनको बाद में आप खुद भी विश्वास नहीं कर पाते हैं। क्योंकि आपका अहंकार जब सघन होता है, वह कहता है, यह हो कैसे सकता है? बिना इंद्रियों के हो कैसे सकता है?
एक मेरे मित्र; उनके पिता गुजर गए हैं। पर जिस दिन उनके पिता गुजरे, मित्र कवि हैं, सांझ को वे कोई सांझ की छह बजे की बस से दूसरे गांव गए हैं। पिता ठीक थे, भले थे, कोई बात न थी। दूसरे गांव वे जा रहे थे एक कवि सम्मेलन में भाग लेने। तो रास्ते में बस में बैठे हुए वे अपने काव्य के जगत में, अपनी कविता के बनाने में डूबे रहे।
अब जब कोई काव्य में डूबता है, तो अहंकार विरल हो जाता है। क्योंकि वह बच्चा हो जाता है, वह फिर पुरानी दुनिया में रिग्रेस कर जाता है। तितलियों में उड़ता है, फूलों में हंसता है, पक्षियों से बोलता है। वह नीचे उतर जाता है। झरने बात करने लगते हैं, वृक्ष चर्चा उठाने लगते हैं, आकाश के बादलों में संदेश होने लगते हैं। वह अहंकार विरल हो जाता है।
तो वे अपने काव्य में डूबे हुए जाते थे। अचानक नौ बजे रात उन्हें बस में ही बैठे-बैठे एकदम उदासी पकड़ गई। उनकी समझ के बाहर था। एकदम प्रफुल्लित थे, प्रसन्न थे, गीत उतरते थे। क्या हुआ? एकदम चारों तरफ जैसे उदासी आ गई। जैसे कोई काला बादल आकर ऊपर बैठ जाए। कोई कारण न था, अकारण था। इसलिए और बेचैनी हुई। काव्य की धारा टूट गई और मन बड़ी गहन चिंता में और विषाद में डूब गया। वे तीन घंटे, बारह बजे जब दूसरे गांव पहुंचे, तब तक वैसी हालत रही। जाकर सो गए, लेकिन नींद न आए।

रात के दो बजे किसी ने द्वार पर दस्तक दी और आवाज आई, मुन्ना! बहुत हैरान हुए, क्योंकि मुन्ना उनके पिता ही कहते हैं उन्हें। दरवाजा खोला बाहर जाकर। भरोसा तो नहीं आया। पिता के होने का कोई सवाल नहीं। दूसरा कोई जीवित आदमी मुन्ना अब उनसे कहता नहीं है। दरवाजा खोल कर देखा, हवा सांय-सांय करके भीतर भर गई। रात अंधेरी है, कहीं कोई आदमी नहीं है। जिस होटल में ठहरे हैं, सब सो गया है, सब सन्नाटा है। नीचे सड़क खाली है। दूसरी मंजिल पर हैं। कोई आकस्मिक आ नहीं सकता है। फिर द्वार बंद करके सोचा, मन का कोई भ्रम होगा।
फिर सो गए हैं। पर फिर पांच-सात मिनट ही बीते हैं कि फिर वही दस्तक, और फिर आवाज इतनी साफ, और अब दुबारा थी तो वे खुद भी सजग थे। स्वरलहरी इतनी परिचित कि पिता के सिवाय किसी की आवाज नहीं। फिर द्वार खोला है, लेकिन फिर वहां कोई नहीं है। हवा सांय-सांय करके फिर भीतर भर आती है। सो न सके। बेचैनी उठी। तीन बजे रात, जाकर नीचे घर फोन लगाया। पता चला कि पिता चल बसे। ठीक दो बजे रात उनकी सांस टूटी और ठीक दो बजे रात पहली दस्तक और मुन्ना की आवाज! पर वे अपने को झुठलाते रहे। वे अब भी झुठलाते हैं। वे कहते हैं, पता नहीं, कोई भ्रम ही होगा। अब भी--बुद्धिमान आदमी हैं, सोच-विचार करते हैं-- अब भी वे कहते हैं, हुआ है, लेकिन अब भी मैं नहीं मानता कि पिता होंगे। कोई भूल हो गई। या तो मेरे मन का ही कोई खेल होगा, कोई संयोग, कोई कोइंसीडेंस, कि दो बजे वे मरे हैं और दो बजे मुझे कुछ ख्याल आ गया होगा।
ऐसे हम सब के जीवन में कभी-कभी सूक्ष्म झांकता है। हम खुद झुठलाए चले जाते हैं। लेकिन अगर रहस्य का बोध सघन हो जाए, तो सूक्ष्म झांकता नहीं, हम ही सूक्ष्म में कूद जाते हैं। फिर हम सूक्ष्म में जीते हैं। फिर यह चौबीस घंटे चारों तरफ होने लगता है, यह चारों तरफ होने लगता है।
लाओत्से कहता है, सूक्ष्म का द्वार खुल जाता है और चमत्कारी का। दि मिरैकुलस का! वह जो वंडरफुल है उसका! वह जो विस्मयजनक है उसका!
चमत्कार क्या है, इसे भी थोड़ा सा समझ लेना जरूरी है। जगत में हम साधारणतः जिसे चमत्कार कहते हैं, उसमें भी कुछ बात है, इसीलिए चमत्कार कहते हैं। यद्यपि हमें पता नहीं कि क्या बात है।
कब कहते हैं आप चमत्कार? एक आदमी मर गया; और जीसस उसके सिर पर हाथ रख देते हैं और वह आदमी जिंदा हो जाता है। तो हम कहते हैं, चमत्कार हुआ! मरा हुआ आदमी जिंदा हो गया। क्यों कहते हैं चमत्कार? एक आदमी बीमार है और किसी के चरणों में सिर रख देता है और स्वस्थ हो जाता है। हम कहते हैं, चमत्कार हुआ। क्यों हुआ चमत्कार? बुद्ध किसी वृक्ष के पास से गुजरते हैं। और वृक्ष सूखा है और उसमें नए अंकुर आ जाते हैं। तो हम कहते हैं, चमत्कार हुआ। लेकिन क्यों कहते हैं चमत्कार हुआ? कारण क्या है चमत्कार कहने का?
एक ही कारण साधारणतः जो हमारे ख्याल में है, वह यह है कि जहां भी कार्य-कारण के बाहर कोई घटना घटती है, वहां चमत्कार है। ऐसे तो हर वृक्ष में नए अंकुर आते हैं, लेकिन वक्त से आते हैं, नियम से आते हैं। कारण होता है तो आते हैं। अब सूखा वृक्ष। वर्षों से जिस पर पत्ते नहीं, कोई कारण नहीं आने का। बुद्ध के निकलने से आते हैं। और बुद्ध का निकलना वृक्ष में अंकुर आने का कारण नहीं है। असंबंधित है, कोई संबंध नहीं है। बुद्ध के निकलने से वृक्ष में पत्ते आने का क्या संबंध है?
एक आदमी मर गया है। अगर दवा से ठीक हो जाए, तो हम कहेंगे कि शायद हृदय
की गति थोड़ी कम चलती होगी, ठीक चलने लगी है। एक आदमी बीमार है। दवा से ठीक हो जाए, तो हम कहते हैं, कोई चमत्कार नहीं। क्यों? क्योंकि दवा में कारण है और ठीक हो जाना कार्य है। एक कॉजालिटी है। लेकिन एक आदमी के पैर में सिर रख दो और ठीक हो जाओ, तो फिर कोई कॉजालिटी नहीं है। फिर चमत्कार है।
चमत्कार का मतलब है, कार्य-कारण का नियम जहां टूट जाता है; जहां कोई संबंध खोजे नहीं मिलता कि क्या है कारण और क्या है कार्य। अब जीसस किसी के सिर पर हाथ रखें, मुर्दा आदमी जिंदा हो, इसका कोई भी संबंध नहीं है। जीसस के हाथ से क्या संबंध है? लेकिन आदमी जिंदा हो गया है, तो चमत्कार है। साधारणतः हम चमत्कार जिसे कहते हैं, उसके पीछे का राज जो है वह इतना ही है कि वहां कार्य-कारण हमारी समझ में नहीं आते।

लेकिन वहां भी कार्य-कारण हो सकते हैं, होते हैं। वहां भी कार्य-कारण
हो सकते हैं, होते हैं। इसलिए जिन्हें हम चमत्कार कहते हैं, आज नहीं कल विज्ञान सिद्ध कर देगा कि वे चमत्कार नहीं हैं। कार्य-कारण का पता लगाने की बात है, बस! पता चल जाएगा, चमत्कार खो जाएगा।
अगर एक आदमी मेरे पैर में आकर सिर रख दे और उसकी बीमारी ठीक हो जाए, तो चमत्कार नहीं है। नहीं है इसलिए... लेकिन दिखाई पड़ेगा। क्योंकि आपको कार्य-कारण का संबंध आप नहीं जोड़ पाते। लेकिन हो सकता है, वह आदमी सच में किसी बीमारी से पीड़ित ही न हो। सिर्फ उसे ख्याल हो बीमारी का, सिर्फ एक मानसिक बीमारी से ग्रस्त हो। और अगर बहुत भरोसे से, और बहुत आस्था से मेरे पैर में सिर रख दे आकर, तो उतनी आस्था से वह भरोसा, जो बीमारी को मजबूत किए था, पिघल जाए, टूट जाए। चमत्कार हो जाएगा, लेकिन चमत्कार नहीं हुआ। देयर इ.ज नो मिरेकल, क्योंकि कार्य-कारण पूरा काम कर रहा है। उसकी ही अपनी श्रद्धा से बनाई गई बीमारी थी, अपनी ही श्रद्धा से कट गई। मेरे पैर ने कुछ भी नहीं किया है। मेरा पैर कुछ कर भी नहीं सकता। चमत्कार कुछ भी नहीं है। चमत्कार जरा भी नहीं है।
अगर कोई मुर्दा आदमी भी जीवित हो जाए, तब भी चमत्कार नहीं है। और आज नहीं कल हम उसके मुर्दा होने के, जीवित होने का राज खोज सकते हैं कि वह क्यों जीवित हो गया। अगर बीमारी मानसिक होती है, तो क्या आप समझते हैं मौत मानसिक नहीं हो सकती? बिल्कुल होती है। मौत मानसिक भी होती है। सभी लोग शारीरिक बीमारियों से नहीं मरते; समझदार लोग अक्सर मानसिक बीमारियों से मरते हैं।
अगर पक्का भरोसा आ जाए कि मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं, मैं मर गया,
तो आप मर जाएंगे। आपका शरीर-यंत्र पूरी तरह ठीक है, अभी वह चल सकता था। सिर्फ आपकी चेतना भीतर सिकुड़ गई है। जीसस का हाथ उस सिकुड़ी हुई चेतना को फैला सकता है। कोई चमत्कार नहीं है। जीसस के हाथ में इतनी चुंबकीय ताकत है कि आपके भीतर जो दबी चेतना है, वह उठ कर सतह पर आ जाए।
यह जो मैग्नेटिज्म है, यह जो शरीर का जीवंत चुंबकीय तत्व है, यह इसका अपना विज्ञान है, इसके अपने कार्य-कारण हैं। तब यह भी हो सकता है कि पैर में किसी ने सिर रखा हो और उसे कुछ लाभ हो जाए, बिना उसकी आस्था के भी। तब इस व्यक्ति के पैर का जो जीवंत चुंबकीय तत्व है, वह प्रवेश कर सकता है। जैसे बिजली प्रवेश करती है छू देने से, शॉक लग जाता है और आदमी गिर पड़ता है, वैसे ही शरीर की विद्युत-धारा और शरीर का चुंबकीय तत्व भी प्रवेश करता है और दूसरे को छूता है और परिवर्तित करता है। लेकिन तब कार्य-कारण खोज लिए जाते हैं। नहीं, चमत्कार यहां नहीं है। हम चमत्कार सिर्फ इसलिए कहते हैं कि हमें कार्य-कारण का पता नहीं चलता।
लाओत्से जिस चमत्कार की बात कर रहा है, वह बहुत और है। वह चमत्कार उस जगह है, जहां हमारा अहंकार पूरी तरह समाप्त हो जाता है। और जब हमारा अहंकार पूरी तरह समाप्त होता है, तो एक अनूठी घटना घटती है कि हमें कार्य-कारण में जो भेद दिखाई पड़ता था, वह विदा हो जाता है। कार्य ही कारण हो जाता है; कारण ही कार्य हो जाता है। बीज ही वृक्ष हो जाता है; वृक्ष ही बीज हो जाता है। और उस स्थिति में कोई व्यक्ति बीज और वृक्ष को एक ही साथ देख सकता है, साइमलटेनियसली। लेकिन तब वह चमत्कार है।
इसे थोड़ा समझें। यह थोड़ा गहन है।
हम देखते हैं एक दफा बीज को, लेकिन उसी वक्त हम वृक्ष को नहीं देख सकते। वृक्ष को देखने में हमें बीस साल ठहरना पड़ेगा। बीस साल बाद हम वृक्ष को देखेंगे। लेकिन तब बीज न दिखाई पड़ेगा। हम एक बच्चे को देखते हैं पैदा होते हुए, तब हम बूढ़े को नहीं देख सकते। बूढ़े के लिए हमें सत्तर साल रुकना पड़ेगा। लेकिन जब हम बूढ़े को देखेंगे, तब तक बच्चा खो गया होगा। हम दोनों को साथ न देख सकेंगे।
चमत्कार लाओत्से उसे कहता है कि उस रहस्य के जगत में जब गहन होता रहस्य और अहंकार शून्य हो जाता, तो बच्चे में बूढ़ा दिखाई पड़ता है; बूढ़े में बच्चा दिखाई पड़ता है; जन्म में मौत दिखने लगती है; बीज में पूरा वृक्ष दिखाई पड़ता है। जो फूल अभी नहीं खिले, वे खिले हुए दिखाई पड़ते हैं। जो अभी नहीं हुआ, वह होता हुआ मालूम पड़ता है। जो हो चुका, वह मौजूद मालूम पड़ता है।

जो होगा, वह भी मौजूद मालूम पड़ता है। अतीत और भविष्य समाप्त हो जाते हैं। एक ही क्षण रह जाता है। सारा अस्तित्व एक क्षण की इटरनिटी में, सनातन में खड़ा हो जाता है।
तो जो कृष्ण कह रहे हैं अर्जुन से कि ये जिन्हें तू सोचता है कि तू मारेगा, मैं इन्हें मरा हुआ देख रहा हूं अर्जुन! ये मर चुके हैं, अर्जुन! ये सिर्फ तुझे खड़े दिखाई दे रहे हैं, क्योंकि तुझे भविष्य दिखाई नहीं देता। यह चमत्कार है।
चमत्कार का अर्थ है, कार्य-कारण जहां भिन्न न रह जाएं। वे भिन्न हैं
भी नहीं, हमारे देखने के ढंग में भूल है। हमारा ढंग ऐसा है, जैसे मैं दीवार में एक छोटा सा छेद कर लूं और उस छेद में से इस कमरे में देखूं। आपकी तरफ से देखना शुरू करूं, तो पहले मुझे अ नाम का व्यक्ति दिखाई पड़े। फिर जब मेरी आंख आगे घूमे, तो अ खो जाए और ब दिखाई पड़े। फिर जब मेरी आंख और आगे बढ़े, तो ब भी खो जाए और स दिखाई पड़े। और समझ लें कि अगर मेरी गर्दन को मोड़ने की सुविधा न हो, तो मैं क्या समझूंगा? मैं यहीं समझूंगा कि अ समाप्त हो गया, ब समाप्त हो गया, अब स दिखाई पड़ रहा है। लेकिन आगे जो ड है, वह अभी मुझे दिखाई नहीं पड़ रहा है।
लेकिन दीवार अचानक खो जाए और मैं पूरे कमरे को एक साथ देख लूं--अ, ब, स,
ड, सब मुझे एक साथ दिखाई पड़ जाएं--वह चमत्कार है। अगर मुझे इस सृष्टि का जन्म होता हुआ और इस सृष्टि की प्रलय होती हुई एक साथ दिखाई पड़ जाए, तो चमत्कार है।
लाओत्से कहता है कि जो इस रहस्य में सघन उतर जाता है, सूक्ष्म के द्वार खुलते हैं उसे, और अंततः चमत्कार का द्वार खुलता है। तब वह विश्व को पैदा होते और समाप्त होते एक साथ देखता है। तब वह परमात्मा को जगत को बनाते और मिटाते एक साथ देखता है।
पर इसे समझना कठिन होगा। और इसे समझा नहीं जा सकता, इसलिए उसका नाम चमत्कार है। हम जिन्हें चमत्कार कहते हैं, उनका चमत्कार से कोई संबंध नहीं है। उनको समझा जा सकता है, उनको खोजा जा सकता है। लेकिन हम भी इसीलिए कहते हैं कि हमें कार्य-कारण का पता नहीं चलता। असली चमत्कार में भी कार्य-कारण का पता नहीं चलता, क्योंकि कारण और कार्य एक साथ उपस्थित हो जाते हैं।
अभी आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी की एक प्रयोगशाला में बहुत हैरानी की आकस्मिक घटना घट गई। उससे इस चमत्कार को समझने में आसानी मिलेगी। कुछ वैज्ञानिक एक कली का चित्र ले रहे थे। और चित्र कली का नहीं आया, फूल का आ गया। जिस फिल्म का उपयोग किया जा रहा था, वह अधिकतम सेंसिटिव जो फिल्म आज संभव है, वह थी। अभी सामने कैमरे के कली ही थी; अंदर जो चित्र आया, वह फूल का आया।
स्वभावतः, लगा कि कोई भूल हो गई। कली अभी भी कली थी, चित्र फूल का आ गया। लेकिन सुरक्षित रखा गया। समझा गया कि कोई भूल-चूक हो सकती है। पहले से कोई एक्सपोजर हो गया हो। कोई किरण प्रवेश कर गई हो, कोई गड़बड़ हो गई हो। कोई केमिकल भूल-चूक हो गई हो, कुछ न कुछ गड़बड़ हो गई है।
उस चित्र को रखा गया सम्हाल कर। और जब कली फूल बनी, तब उसके दूसरे चित्र लिए गए। और बड़ी हैरानी हुई, क्योंकि वह चित्र वही था। जो बाद में चित्र आए वे चित्र वही थे, जो चित्र पहले आ गया था। उस प्रयोग को दुबारा दुहराया नहीं जा सका है अब तक। लेकिन इस बात की संभावना प्रकट हो गई है और जिस वैज्ञानिक के द्वारा यह घटना घटी है, उसको यह आस्था गहन हो गई है कि हम किसी न किसी दिन इतनी सेंसिटिव फिल्म तैयार कर लेंगे कि जब बच्चा पैदा हो, तो हम उसके बुढ़ापे का चित्र ले लें। क्योंकि जो होने वाला है, वह सूक्ष्म के जगत में अभी हो ही गया है। जो कल होने वाला है, उसकी होने की सारी प्रक्रिया सूक्ष्म के जगत में अभी शुरू हो गई है। यह और गहन जगत में हो गई होगी; हम तक खबर पहुंचने में देर लगेगी। हमारी इंद्रियां जब तक पकड़ेंगी, उसमें देर लगेगी। अगर हम बिना इंद्रियों के पकड़ पाएं, तो शायद अभी पकड़ लें।
शायद टाइम का जो गैप है, कली जब फूल बनती है तो कली और फूल के बीच समय
का जो फासला है, वह कली और फूल के बीच नहीं, वह हमारी इंद्रियों और फूल के

बीच है। अगर हमारी इंद्रियां बीच से हट जाएं, तो हम कली में फूल को देख सकते हैं। और तब चमत्कार घटित होता है। और उस चमत्कार की जो दुनिया है, उस चमत्कार की दुनिया में प्रवेश ही धर्म के विज्ञान का लक्ष्य है।
लाओत्से जो कह रहा है, उसने इस छोटे से वचन में बहुत कुछ कहा है। इस... लेकिन यह सब कोड है। इसको ऐसा सीधा पढ़ जाएंगे, तो कुछ भी इसमें मिलेगा नहीं। इसे खोल-खोल कर, एक-एक शब्द की पर्त उखाड़-उखाड़ कर देखेंगे, तब कहीं लाओत्से की आत्मा से थोड़ा सा स्पर्श होता है।
आज इतना ही रहने दें, कल बात करें।

ताओ उपनिषद, भाग एक
पांचवां प्रवचन

सापेक्ष विरोधों से मुक्त--सुंदर और शुभ

Chapter 2 : Sutra 1

The Rise Of Relative Opposites

When the people of the Earth all know beauty as beauty, there arises (the recognition of) ugliness. When the people of the Earth all know the good as good, there arises (the recognition of) evil.

अध्याय 2: सूत्र 1

सापेक्ष विरोधों की उत्पत्ति

जब पृथ्वी के प्राणी सुंदर के सौंदर्य से परिचित होते हैं,
तभी से कुरूप की पहचान शुरू होती है।
और जब वे शुभ से परिचित होते हैं,
तभी उन्हें इस बात का बोध होता है कि अशुभ क्या है।

सौंदर्य से परिचित होते ही, सौंदर्य की प्रतीति होते ही, इस बात की खबर मिलती है कि कुरूप का परिचय हो गया। शुभ का बोध अशुभ के बोध के बिना असंभव है।
लाओत्से ने अपने प्रथम सूत्रों में जो बात कही है, उसे एक नए आयाम से पुनः दोहराया है। लाओत्से यह कह रहा है, जो व्यक्ति सुंदर को अनुभव करता है, वह बिना कुरूप का अनुभव किए सुंदर को अनुभव न कर सकेगा। जिस व्यक्ति के मन में सौंदर्य की प्रतीति होती है, उस व्यक्ति के मन में उतनी ही कुरूपता की प्रतीति भी होगी। असल में, जिसे कुरूप का कुछ भी पता नहीं है, उसे सौंदर्य का भी कोई पता नहीं होगा। जो व्यक्ति शुभ होने की कोशिश करता है, उसके मन में अशुभ की मौजूदगी जरूर ही होगी। जो अच्छा होना चाहता है, वह बुरा हुए बिना अच्छा न हो सकेगा।
लाओत्से का ख्याल था--और महत्वपूर्ण ख्याल है--कि जिस दिन से लोगों ने जाना कि सौंदर्य क्या है, उसी दिन से जगत से वह सहज सौंदर्य खो गया, जिसमें कुरूपता का अभाव था। और जब से लोगों ने समझा कि शुभ क्या है, तभी से शुभ की वह सहज अवस्था खो गई, जब कि लोगों को अशुभ का कोई पता ही न था।
इसे हम ऐसा समझें। यदि हम मनुष्य के पुरातन, अति पुरातन में प्रवेश करें, यदि मनुष्य की प्रथम सौम्य, सरल और प्राकृतिक, नैसर्गिक अवस्था का ख्याल करें, तो हमें वहां सौंदर्य का बोध नहीं मिलेगा। लेकिन साथ ही वहां कुरूपता के बोध का भी अभाव होगा। वहां हमें ईमानदार लोग नहीं मिलेंगे, क्योंकि बेईमानी वहां संभव नहीं थी। वहां हमें चोर खोजे से नहीं मिलेंगे, क्योंकि साधु वहां नहीं होता था।
लाओत्से यह कह रहा है कि यह सारा जीवन हमारा सदा ही द्वंद्व से निर्मित होता है। अगर किसी समाज में लोग बहुत ईमानदार होने के लिए आतुर हों, तो वे केवल इस बात की खबर देते हैं कि वह समाज बहुत बेईमान हो गया है। अगर किसी समाज में मां-बाप अपने बच्चों को सिखाते हों कि सच बोलना धर्म है, तो जानना चाहिए कि उस समाज ने जीवन की जो सहज सच्चाई है, वह खो दी है, और उस समाज में असत्य बोलना व्यवहार बन गया है।
लाओत्से यह कह रहा है कि हम उसी बात पर जोर देते हैं, जिससे विपरीत पहले ही मौजूद हो गया होता है। अगर हम बच्चों से कहते हैं, झूठ मत बोलो, तो उसका अर्थ इतना ही है कि झूठ काफी जोर से प्रचलित है। अगर हम उनसे कहते हैं, ईमानदार बनो, तो उसका मतलब इतना ही है कि बेईमानी ने घर कर लिया है।

लाओत्से के पास कथा है कि कनफ्यूशियस मिलने गया था। कनफ्यूशियस, इस पृथ्वी पर जो नैतिक विचारक हुए हैं, उनमें श्रेष्ठतम है। नैतिक विचारक, धार्मिक नहीं! कनफ्यूशियस कोई धार्मिक विचारक नहीं है, नैतिक विचारक, माॅरल थिंकर। कनफ्यूशियस उन लोगों में से है, जिन्होंने सिर्फ, मनुष्य कैसे अच्छा हो, इस संबंध में गहनतम चिंतन और विचार किया है।
स्वभावतः, कनफ्यूशियस लाओत्से से मिलने गया, यह सुन कर कि लाओत्से बहुत बड़ा धार्मिक व्यक्ति है, तो मैं लाओत्से से प्रार्थना करूं कि तुम भी लोगों को समझाओ कि वे अच्छे कैसे हो जाएं, ईमानदार कैसे हो जाएं, चोरी क्यों न करें, कैसे चोरी से बचें, कैसे अचोर बनें, कैसे क्रोध छोड़ें, कैसे क्षमावान बनें, हिंसा कैसे मिटे, अहिंसा कैसे आए, तुम भी लोगों को समझाओ। तो कनफ्यूशियस लाओत्से से मिलने गया। लाओत्से अपने झोपड़े के बाहर बैठा है। कनफ्यूशियस ने कहा, लोगों को समझाओ कि वे अच्छे कैसे हो जाएं। लाओत्से ने कहा, जब तक बुराई न हो, तब तक लोग अच्छे कैसे हो सकेंगे? बुराई होगी तो ही लोग अच्छे हो सकेंगे। तो मैं तो यह समझाता हूं कि बुराई कैसे न हो, अच्छे की मैं फिक्र नहीं करता हूं। मैं तो वह स्थिति चाहता हूं, जहां अच्छे का भी पता नहीं चलता है कि कौन अच्छा है।
कनफ्यूशियस की समझ में कुछ भी न पड़ा। कनफ्यूशियस ने कहा, लोग बेईमान हैं, उन्हें ईमानदारी समझानी है। लाओत्से ने कहा कि जिस दिन से तुमने ईमानदारी की बात की, उसी दिन से बेईमानी प्रगाढ़ हो गई है। मैं वह दिन चाहता हूं जहां लोग ईमानदारी की बात ही नहीं करते।
कनफ्यूशियस की फिर भी समझ में न आया। किसी नैतिक चिंतक की समझ में न आएगा यह सूत्र। क्योंकि नैतिक चिंतक ऐसा मानता है कि बुराई और भलाई विपरीत चीजें हैं; बुराई को काट दो, तो भलाई बच रहेगी।
लाओत्से ऐसा मानता है कि बुराई और भलाई एक ही चीज के दो पहलू हैं। तुम
एक को न काट पाओगे। अगर फेंको तो दोनों को फेंक दो; बचाओगे तो दोनों बच जाएंगी। अगर तुमने चाहा कि भलाई बच जाए, तो बुराई पीछे से मौजूद रहेगी। क्योंकि भलाई बुराई के बिना बच नहीं सकती। और तुमने चाहा कि हम ईमानदार को आदर दें, तो तुम तभी दे पाओगे, जब बेईमान मौजूद रहें।
यह बहुत समझने जैसी बात है। सच में ही अगर कोई बेईमान न रह जाए, तो ईमानदार का कोई आदर होगा? कोई चोर न रह जाए, तो साधु की कोई प्रतिष्ठा होगी? इसका अर्थ यह हुआ कि अगर साधु को प्रतिष्ठित रहना हो, तो चोर को बनाए ही रखना पड़ेगा। और जीवन के रहस्यों में एक यही है कि साधु निरंतर चोर के खिलाफ बोल रहा है, लेकिन उसे पता नहीं है कि चोर की वजह से ही वह पहचाना जाता है। चोर की वजह से ही वह है। असाधु नहीं, तो साधु खो जाएगा। साधु का अस्तित्व असाधु के आस-पास ही हो सकता है, उसके बीच में ही हो सकता है। लाओत्से कहता है, धर्म तो तब था दुनिया में, जब साधु का पता ही नहीं चलता था। लाओत्से की बात बहुत गहरी है। वह यह कहता है, धर्म तो तब था दुनिया में, जब साधु का कोई पता ही नहीं चलता था। जब शुभ का कोई ख्याल ही नहीं था कि अच्छाई क्या है। जब कोई समझाता ही नहीं था कि सत्य बोलना धर्म है। जब कोई किसी से कहता ही नहीं था कि हिंसा पाप है। जिस दिन अहिंसा को बनाओगे पुण्य, जिस दिन सत्य को कहोगे धर्म, उसी दिन उनसे विपरीत गुण अपनी पूरी सामथ्र्य से मौजूद हो जाते हैं।
लाओत्से ने कनफ्यूशियस से कहा कि तुम सब भले लोग शांत हो जाओ, तुम दुनिया में भलाई की बातें बंद करो। और तुम पाओगे कि अगर तुम भलाई को बिल्कुल छोड़ने में समर्थ हो, तो बुराई छूट जाएगी।
लेकिन कनफ्यूशियस नहीं समझ पाएगा। न गांधी समझ पाएंगे। न कोई और नैतिक व्यक्ति समझ पाएगा। वह कहेगा, यह तो और बुरा हो जाएगा। हम किसी तरह भलाई को समझा-बुझा कर, पकड़ कर, श्रम-चेष्टा करके, बचा कर रखते हैं। और लाओत्से यह कह रहा है कि तुम भलाई को बचाते हो, साथ ही बुराई बच जाती है। ये दोनों संयुक्त हैं। इनमें से एक को बचाना संभव नहीं है। या तो दोनों बचेंगे या दोनों हटा देने पड़ेंगे।
लाओत्से कहता है, धर्म की अवस्था वह है, जहां दोनों नहीं रह जाते। इसको वह कहता था, सरल ताओ, स्वभाव का, धर्म का जगत। इसे वह कहता था, मनुष्य अगर अपने पूरे स्वभाव में आ जाए, तो न वहां बुराई है, न वहां भलाई है। वहां

ऐसा मूल्यांकन नहीं है, वैल्युएशन नहीं है। वहां न निंदा है, न प्रशंसा है। वहां न कुछ सुंदर है, न कुछ कुरूप है। वहां चीजें जैसी हैं वैसी हैं। इसलिए अक्सर ऐसा होता है, जो व्यक्ति जितना सौंदर्य के बोध से भर जाता है, उतनी कुरूपता उसे पीड़ित करने लगती है। क्योंकि संवेदनशीलता एक साथ ही बढ़ती है। मैंने कहा कि ऐसा होना सुंदर है, तो उससे विपरीत सब कुरूप हो जाएगा। मैंने जरा सा भी तय किया एक पक्ष में कि दूसरे पक्ष में भी उतना ही तय हो जाता है।
तो लाओत्से कहता है, व्हेन दि पीपुल आॅफ दि अर्थ आल नो ब्यूटी ऐज ब्यूटी, जब पृथ्वी के लोग पहचानने लगते हैं कि सौंदर्य यह रहा, यह है सौंदर्य, जब वे सौंदर्य को सौंदर्य कहने लगते हैं, देयर एराइजेज दि रिकग्नीशन आॅफ अग्लीनेस, उसी क्षण वह जो कुरूप है, वह जो विरूप है, उसकी प्रत्यभिज्ञा शुरू हो जाती है, उसकी पहचान शुरू हो जाती है। व्हेन दि पीपुल आॅफ दि अर्थ आल नो दि गुड ऐज गुड, और जब शुभ को शुभ पहचानने लगते हैं पृथ्वी के लोग, देयर एराइजेज दि रिकग्नीशन आॅफ ईविल, वहीं अशुभ की पहचान शुरू हो जाती है।
बड़ा कठिन सूत्र है। इसका अर्थ यह है कि अगर पृथ्वी पर हम चाहते हैं कि सौंदर्य हो, तो सौंदर्य को सौंदर्य की तरह पहचानना उचित नहीं है। पहचानना ही उचित नहीं है, क्योंकि पहचानने में कुरूप के मूल्य का उपयोग करना पड़ता है। अगर कोई आपसे पूछे, सौंदर्य क्या है? तो आप यही कहेंगे न कि जो कुरूप नहीं है। सौंदर्य को पहचानने में बिना कुरूप के कोई उपाय नहीं है। अगर कोई आपसे पूछे कि साधु कौन है? तो आप यहीं कहेंगे न कि जो असाधु नहीं है। साधु को पहचानने में असाधु को परिभाषा के भीतर लाना पड़ता है। और सौंदर्य की पहचान में कुरूपता की सीमा-रेखा बनानी पड़ती है।
तो लाओत्से कहता है, सौंदर्य को सौंदर्य की तरह जब नहीं पहचाना जाता-- सौंदर्य तो होता ही है, लेकिन जब उसे कोई पहचानता नहीं--जब कोई उस पर लेबल नहीं लगाता, नाम नहीं देता कि यह रहा सौंदर्य, जब सौंदर्य अनाम है, तब कुरूपता पैदा नहीं होती। और जब कोई शुभ को शुभ का नाम नहीं देता, शुभ को कोई सम्मान नहीं मिलता, शुभ को कोई आदर नहीं देता, शुभ को कोई पहचानता भी नहीं, तब अशुभ का कोई उपाय नहीं है। द्वंद्व के बाहर भी एक शुभ है, द्वंद्व के बाहर भी एक सौंदर्य है। पर उस सौंदर्य को सौंदर्य नहीं कहा जा सकता, और उस शुभ को शुभ नहीं कहा जा सकता। उसे कुछ कहने का उपाय नहीं है। उस संबंध में मौन ही रह जाना एकमात्र उपाय है।
लाओत्से ने कहा, कनफ्यूशियस वापस जाओ! और तुम नैतिक लोग ही इस जगत को विकृत करने वाले हो। यू आर दि मिस्चीफ मेकर्स। तुम जाओ। तुम कृपा करो, किसी को शुभ बनाने की तुम कोशिश मत करो। क्योंकि तुम्हारे शुभ बनाने की कोशिश से लोग सिर्फ अशुभ में उतरेंगे।
बहुत संभावना तो यह है कि बाप जब बेटे से पहली बार कहता है कि सत्य बोलना धर्म है, तब बेटे को पता भी नहीं होता कि सत्य क्या है और असत्य क्या है। जब पहली बार बाप अपने बेटे से कहता है, झूठ बोलना पाप है, तब तक बेटे को पता भी नहीं होता कि झूठ क्या है। और बाप का यह कहना कि झूठ बोलना पाप है, बेटे में झूठ के प्रति पहले आकर्षण का जन्म होता है। अगर उसके पहले बेटे ने झूठ भी बोला है, तो झूठ जान कर नहीं बोला है। अगर उसके पहले बेटे ने झूठ भी बोला है, तो झूठ जान कर नहीं बोला है, झूठ की कोई प्रत्यभिज्ञा नहीं है उसे। झूठ की कोई पाप की रेखा उसके मन पर नहीं खिंच सकती, जब तक प्रत्यभिज्ञा न हो। लेकिन अब, अब डिस्टिंक्शन, अब भेद शुरू होगा। अब वह जानेगा कि क्या सत्य है और क्या झूठ है। और जैसे ही वह जानेगा क्या सत्य है और क्या झूठ है, वैसे ही चित्त की सहजता नष्ट होती है और द्वंद्व का जन्म होता है।
लेकिन हम सब तरफ द्वंद्व निर्मित कर लेते हैं। और हम ख्याल भी नहीं कर पाते, हम सोचते हैं, भले के लिए ऐसा करते हैं।
लाओत्से बहुत क्रांतिकारी है इस दृष्टि से। वह कहता है, यही है बुराई, यही है बुराई। हम जब भी बुराई को जन्म देते हैं तो भलाई के बहाने देते हैं।
असल में, बुराई को सीधा जन्म दिया नहीं जा सकता। जब भी हम बुराई को जन्म

देते हैं, भलाई के बहाने देते हैं। हम भलाई को ही बनाने जाते हैं और बुराई निर्मित होती है। बुराई को कोई सीधा निर्मित नहीं करता।
एक आदिवासी है, आदिम है, जंगल में रहता है। उसे हमारे जैसा सौंदर्य का बोध नहीं है। उसे हमारे जैसा कुरूपता का भी बोध नहीं है। उसे यह भेद ही नहीं है। वह प्रेम कर पाता है; कुरूप और सौंदर्य को बीच में लाने की उसे जरूरत नहीं पड़ती। हम जिसे कुरूप कहेंगे, वह उसे भी प्रेम कर पाता है। हम जिसे सुंदर कहेंगे, वह उसे भी प्रेम कर पाता है। उसका प्रेम कोई सीमा नहीं बांधता। सुंदर को ही प्रेम मिलेगा, ऐसा नहीं; कुरूप को नहीं मिलेगा, ऐसा नहीं। वह सब को प्रेम कर पाता है। सुंदर और कुरूप की धारणा विकसित नहीं है।
हम धारणा विकसित करते हैं। हम सुंदर और कुरूप को अलग करते हैं। और तब बड़े मजे की बात है कि हम सुंदर को भी प्रेम नहीं कर पाते हैं। जो बड़े मजे की बात है वह यह है कि बिना धारणा के वह आदिम आदमी कुरूप को भी प्रेम कर पाता है, जिसे हम कुरूप कहें। लेकिन हम धारणा को विकसित करके सुंदर को भी प्रेम नहीं कर पाते हैं। पहले हम सोचते हैं कि सुंदर को हम प्रेम कर पाएंगे, इसलिए हम कुरूप को अलग करते हैं और सुंदर को अलग करते हैं। फिर सुंदर को भी हम प्रेम नहीं कर पाते हैं। क्योंकि द्वंद्व से भरा हुआ चित्त प्रेम करने में असमर्थ है। और सुंदर और कुरूप का द्वंद्व है। और जिसे आपने सुंदर कहा है, वह कितनी देर सुंदर रहेगा?
यह बहुत मजे की बात है कि जिसको आपने कुरूप कहा है, वह सदा के लिए कुरूप हो जाएगा। और जिसको आपने सुंदर कहा है, वह दो दिन बाद सुंदर नहीं रह जाएगा। हाथ में क्या पड़ेगा? यह कभी आपने ख्याल किया? जिसको आपने कुरूप कहा है, वह स्थायी हो गया उसका। उसकी कुरूपता सदा के लिए तय हो गई। लेकिन जिसको आपने सुंदर कहा है, दो दिन बाद उसे आप सुंदर न कह पाएंगे। उसका सौंदर्य खो जाएगा। तब अंततः ऐसे द्वंद्वग्रस्त मन के हाथ में सौंदर्य बिल्कुल नहीं पड़ेगा, कुरूपता ही कुरूपता इकट्ठी हो जाएगी।
और एक आदिम चित्त है, जो भेद नहीं करता, कुरूप और सौंदर्य की कोई रेखा नहीं बांटता। हम जिसे कुरूप कहें, उसे भी प्रेम कर पाता है। और चूंकि प्रेम कर पाता है, इसलिए सभी उसके लिए सुंदर हो जाता है।
ध्यान रहे, हम उसे प्रेम करते हैं, जो सुंदर है। दो दिन बाद सौंदर्य पिघल जाएगा और बिगड़ जाएगा। परिचय से, परिचित होते ही सौंदर्य का जो अपरिचित रस था, वह खो जाएगा। सौंदर्य का जो अपरिचित आकर्षण और आमंत्रण था, वह विलीन हो जाएगा। हम उसे प्रेम करते हैं, जो सुंदर है। दो दिन बाद सौंदर्य खो जाएगा। फिर प्रेम कहां टिकेगा? आदिम मनुष्य प्रेम करता है, और जिसे प्रेम करता है, उसे सौंदर्य दे देता है।
भेद आप समझ लेना। हम सुंदर को प्रेम करते हैं। सुंदर दो दिन बाद खो जाएगा। प्रेम कहां टिकेगा? आदिम मनुष्य प्रेम करता है पहले, और जिसे प्रेम करता है, उसमें सौंदर्य को पाता है। और प्रेम की खूबी है, अगर वह स्वयं पर निर्भर हो तो रोज बढ़ता चला जाता है और किसी और चीज पर निर्भर हो तो रोज घटता चला जाता है। अगर मैंने इसलिए प्रेम किया कि आप सुंदर हैं, तो प्रेम रोज घटेगा। लेकिन अगर मैंने सिर्फ इसलिए प्रेम किया कि मुझे प्रेम करना है, तो आपका सौंदर्य रोज बढ़ता जाएगा। प्रेम अगर अपने पैरों पर खड़ा होता है, तो विकासमान है। और प्रेम अगर किसी के कंधे का सहारा लेता है, तो आज नहीं कल लंगड़ा होकर गिर जाएगा।
लेकिन फिर भी यह हम कह रहे हैं, इसलिए हमें सौंदर्य और कुरूप शब्द का प्रयोग करना पड़ता है। आदिम चित्त को सौंदर्य और कुरूप शब्द का कोई बोध नहीं है। करीब-करीब आदम चित्त वैसा है जैसे एक मां के दो बेटे हैं, एक जिसे लोग सुंदर कहते हैं और एक जिसे लोग सुंदर नहीं कहते हैं। लेकिन मां के लिए उनके सौंदर्य में कोई भी भेद नहीं है। एक बेटा कुरूप नहीं है, दूसरा बेटा सुंदर नहीं है। दोनों बेटे हैं, इसलिए दोनों सुंदर हैं। उनका सौंदर्य उनके बेटे होने से निकलता है। मां का प्रेम प्राथमिक है। उस प्रेम से उनका सुंदर होना निकलता है।
आदिम चित्त, जिसकी लाओत्से बात कर रहा है, सरल स्वभाव में जीने वाला चित्त, द्वंद्व और भेद के बाहर है।

इसलिए लाओत्से कहता है, बुराई जरूर मिटानी है; लेकिन जब तक तुम भलाई
को बचाना चाहते हो, तुम बुराई को न मिटा सकोगे। असाधु दुनिया से जरूर विदा करने हैं, लेकिन जब तक तुम साधु का जय-जयकार किए चले जाओगे, तब तक तुम असाधु को विदा नहीं कर सकते।
अब इसके भीतर बहुत गहरा जाल है। साधु भी इसमें ही रस लेगा कि समाज में असाधु हों। इसलिए जब समाज में ज्यादा असाधु होंगे, तो साधु में ज्यादा रौनक दिखाई पड़ेगी। क्योंकि इनकी वह निंदा कर सकेगा, इनको गाली दे सकेगा, इनको बदलने के अभियान चला सकेगा, इनको ठीक करने के लिए श्रम कर सकेगा। उसको काम मिलेगा, वह कुछ कर रहा है। लेकिन अगर एक समाज ऐसा हो कि जिसमें कोई असाधु न हो, तो साधु के नाम से जिनकी अस्मिता और अहंकार परिपुष्ट होते हैं, वे एकदम ही नपुंसक और व्यर्थ हो जाएंगे, उनको खड़े होने की जगह भी नहीं मिलेगी।
अब यह बहुत उलटा है, लेकिन और मजे का भी है कि साधु का अहंकार तभी परिपुष्ट हो सकता है, जब उसके आस-पास असाधुओं का समाज हो। यह ठीक वैसा ही है कि एक धनी आदमी को मजा तभी आ सकता है, जब आस-पास गरीबी से गरीबी में डूबे हुए लोग हों। एक बड़े महल का रस तभी है, जब चारों तरफ झोपड़े बने हों। अन्यथा महल का कोई भी रस नहीं है। महल का रस महल में नहीं है। वह जो झोपड़े में पीड़ा है, उसमें निर्भर है। और साधु का रस भी साधुता में नहीं है, वे जो असाधु चारों तरफ खड़े हैं, उनकी तुलना में जो अहंकार को बल मिलता है, उसमें है। लाओत्से कहता है, दोनों को ही छोड़ दो; हम तो धर्म उसे कहते हैं, जहां न शुभ रह जाता, न अशुभ। इसलिए आमतौर से जो धर्म की व्याख्या की जाती हैः शुभ धर्म है! लाओत्से कहेगा, नहीं। मंगल धर्म है! लाओत्से कहेगा, नहीं। सत्य धर्म है! लाओत्से कहेगा, नहीं। क्योंकि जहां सत्य है, वहां असत्य उपस्थित हो गया। और जहां शुभ है, वहां अशुभ ने पैर रख दिए। और जहां मंगल है, वहां अमंगल मौजूद रहेगा। लाओत्से कहता है, जहां दोनों नहीं हैं, द्वंद्व जहां नहीं है, जहां चित्त निद्र्वंद्व है, जहां चित्त अद्वैत में है, जहां इंच भर फासला पैदा नहीं हुआ, वहां धर्म है। तो धर्म लाओत्से के लिए द्वंद्वातीत है, ट्रांसेनडेंटल है, पार। जहां न अंधेरा है, न उजाला है। अगर लाओत्से से हम कहें कि परमात्मा प्रकाश-स्वरूप है, तो वह इनकार करेगा। वह कहेगा, फिर अंधेरे का क्या होगा? फिर अंधेरा कहां जाएगा? फिर तुम्हारा परमात्मा सदा ही अंधेरे में घिरा रहेगा। क्योंकि जो भी प्रकाश है, वह अंधेरे में घिरा रहता है।
ध्यान रखना, जो भी प्रकाश है, वह अंधेरे में घिरा रहता है। अंधेरे के बिना प्रकाश नहीं हो सकता। इसलिए प्रकाश की एक छोटी सी बाती जलाओ, और अंधेरे का एक सागर चारों तरफ उसे घेरे रहता है। उसके बीच में ही वह प्रकाश की बाती जलती है। अगर चारों तरफ से अंधेरा हट जाए, तो प्रकाश की बाती तत्काल खो जाएगी, दीन-हीन हो जाएगी, वह कहीं नहीं रह जाएगी।
लाओत्से कहेगा, नहीं, परमात्मा प्रकाश नहीं। परमात्मा तो वहां है, जहां प्रकाश और अंधकार दोनों नहीं हैं, जहां द्वैत और दुई नहीं हैं। नैतिक चिंतन और धार्मिक चिंतन का यही बुनियादी फासला है। नैतिक चिंतन सदा जीवन को दो हिस्सों में बांटता है। एक को करता है निंदित, एक को देता है सम्मान। और जिसको सम्मान देता है, उसको बढ़ावा देता है, पुरस्कार देता है। जिसकी निंदा करता है, उसको अपमानित करता है, उसको दीन करता है।
पर आपने कभी सोचा कि इस पूरी की पूरी स्ट्रेटेजी में राज क्या है? इस नीतिशाó की सारी की सारी व्यवस्था में राज क्या है? सीक्रेट क्या है? सीक्रेट है अहंकार। हम कहते हैं, चोर बुरा है, निंदित है, अपमानित है।
तो हम लोगों के अहंकार को यह कहते हैं कि अगर तुम चोरी करते हुए पकड़े गए तो तुम्हारी बड़ी अप्रतिष्ठा होगी, अपमान पाओगे, दो कौड़ी के रह जाओगे। लोग तुम्हें बुरी दृष्टि से देखेंगे। अगर चोरी न करोगे, तो सम्मान पाओगे। लोग फूलमालाएं पहनाएंगे और रथयात्राएं निकालेंगे। लोग सम्मान करेंगे, तुम्हारे नाम की प्रतिष्ठा होगी, तुम यश पाओगे; इस लोक में ही नहीं, परलोक में भी यश पाओगे, स्वर्ग के दावेदार बनोगे। और अगर बुरा किया, तो नर्क में सड़ोगे, पाप और ग्लानि में। पर हम कर क्या रहे हैं? अगर इन दोनों के बीच हम देखें, तो हम कर क्या रहे हैं?

बुरे आदमी के अहंकार को हम चोट पहुंचा रहे हैं और भले आदमी के अहंकार की हम पूर्ति कर रहे हैं। और हम सब को यही सिखा रहे हैं कि अपने अहंकार की पूर्ति चाहते हो तो अच्छे बनो। अगर बुरे बने तो अहंकार को नुकसान पहुंचेगा। नीतिशा ó का सारा ढांचा अहंकार पर खड़ा हुआ है। और बड़े मजे की बात यह है कि हमें यह कभी ख्याल में नहीं आता कि अहंकार के ढांचे पर नीतिशा ó खड़ा कैसे हो सकता है ? अहंकार से ज्यादा अनैतिक और क्या होगा ? लेकिन सारी व्यवस्था नीति की अहंकार पर खड़ी है।

लाओत्से जब यह कह रहा है , तो वह अहंकार के पूरे ढांचे को गिरा रहा है। वह कह रहा है कि हम शुभ -अशुभ को स्वीकार नहीं करते , हम पाप -पुण्य को स्वीकार नहीं करते। हम तो वह चित्त -दशा चाहते हैं , जहां द्वैत का भाव ही नहीं है। लेकिन वहां अहंकार का भी भाव नहीं रह जाएगा।

धर्म निरहंकार स्थिति है , और नीति अहंकार पर ही खड़ी हुई व्यवस्था है।

हमारा सारा उपक्रम , बच्चे से लेकर बूढ़े तक , अहंकार के ही आस -पास घूमता है। हम बच्चों को स्कूल में कहते हैं , प्रथम आओ , अन्यथा अपमानित हो। प्रथम आते हो , तो सम्मान है। अच्छे अंक पाते हो , तो सम्मान है। कम अंक पाए , तो अपमान है। फिर वही खेल हम जारी रखते हैं पूरे जीवन में। बूढ़े को भी हम यही कहते हैं कि अगर अच्छा किया , तो ज्यादा अंक पाओगे , स्वर्ग मिलेगा। अच्छा नहीं किया , नर्क जाओगे , अंक कम मिलेंगे। पराजित हो जाओगे , अपमानित हो जाओगे। इस जगत में भी पृथ्वी पर नाम नहीं मिलेगा , परलोक में भी नाम को खोओगे। पर नाम ही !

अहंकार के ही आधार पर हम जो नीति खड़ी करते हैं , वह नैतिक नहीं हो पाती है। और तब , तब सारी नीति की व्यवस्था के नीचे अनीति का गहन विस्तार होता चला जाता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति , जो कुशल है अपने को नैतिक दिखाने में , वह नैतिक होने की चिंता छोड़ देता है। क्योंकि असली सवाल तो नाम का है , यश का है , अस्मिता का है --लोग क्या कहेंगे ?

अगर मैं चोरी करता हूं और नहीं पकड़ा जाता , तो मैं अचोर बना रहता हूं। और नीति ने भी यही कहा था कि लोग बुरा कहेंगे। लोग कहें बुरा कि परमात्मा कहे बुरा , इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कोई बुरा कहेगा , किसी के सामने मैं अपमानित होऊंगा। अगर मैं चोरी करके और किसी की भी पकड़ में नहीं आता हूं , तो मैं चोरी भी कर लेता हूं , अहंकार भी बचा लेता हूं। तो हर्ज क्या है ? मैं बेईमानी भी कर लेता हूं और अपनी इज्जत भी बचा लेता हूं , तो हर्ज क्या है ? इसलिए नैतिकता घूम -फिर कर अंततः प्रवंचना सिद्ध होती है। और जो लोग कुशल हैं , बुद्धिमान हैं , वे अनैतिक होने के कुशल मार्ग खोज लेते हैं और नैतिक दिखावे की व्यवस्था कर लेते हैं। वे दिखाई पड़ते हैं कुछ और , हो जाते हैं कुछ और।

लाओत्से कहता है , हम इस नैतिकता में भरोसा नहीं करते हैं।

पश्चिम में जब पहली बार उपनिषदों की खबर पहुंची , उन्हें भी बड़ी चिंता हुई। क्योंकि उपनिषद भी लाओत्से के ही निकट हैं। उपनिषदों में कहीं नहीं कहा गया है कि चोरी मत करो , कि हिंसा मत करो। उपनिषदों ने कोई इस तरह का उपदेश नहीं दिया है। तो पश्चिम तो ईसाइयत के टेन कमांडमेंट्स से परिचित था। व्यभिचार मत करो , चोरी मत करो , झूठ मत बोलो , ये तो धर्म के आधार हैं। और जब उपनिषद पहली दफे अनुवादित हुए , या लाओत्से का ताओ तेह किंग पहली दफे अनुवादित हुआ , तो पश्चिम के लोगों ने कहा , ये पूरब के लोग तो अनैतिक मालूम होते हैं। ये इनके महर्षि हैं ! इसमें एक भी शब्द धर्म का नहीं है। क्योंकि धर्म का मतलब यह है कि समझाओ लोगों को कि चोरी मत करो , बेईमानी मत करो , धोखा मत दो। यह तो इनमें कहीं भी नहीं कहा गया है। ये किस तरह के धर्मशा ó हैं !

तो पश्चिम में पहला जो संपर्क हुआ पूरब के गहन विचार का तो पश्चिम के लोगों को लगा कि ये सब अनैतिक सिद्धांत हैं। जैसे -जैसे गहराई बढ़ी समझ की , और पश्चिम और निकट आया , और गहरे गया , वैसे उन्हें पता चला कि ये अनैतिक नहीं हैं। एक नई उन्हें धारणा , एक नई कैटेगरी बनानी पड़ी , अतिनैतिक की। तीन कोटियां बनानी पड़ींः अनैतिक , इम्मॉरल ; नैतिक , मॉरल ; और अतिनैतिक , एमॉरल या ट्रांसमॉरल। धीरे -धीरे ख्याल में आया कि ये ó न तो नैतिक हैं , न अनैतिक हैं। ये नीति की बात ही नहीं करते। ये किसी और ही रहस्य की बात कर रहे हैं , जो नीति के पार चला जाता है। ये ó ही धर्मशा ó हैं।

यह बहुत मजे की बात है, नास्तिक भी नैतिक हो सकता है। और अक्सर आस्तिक
से ज्यादा नैतिक होता है। क्योंकि आस्तिक की तो नैतिकता भी एक सौदा है। वह अपनी नैतिकता से भी कुछ पाने के पीछे पड़ा है--मोक्ष मिलेगा, स्वर्ग मिलेगा, पुण्य मिलेगा, अच्छा जन्म मिलेगा--वह कुछ पाने के पीछे पड़ा है। उसकी नैतिकता एक बार्गेनिंग है। वह जानता है कि थोड़ी तकलीफ मैं उठा रहा हूं तो ज्यादा सुख पा लूंगा। लेकिन नास्तिक की नैतिकता तो शुद्ध नैतिकता है। कोई बार्गेन भी नहीं है, क्योंकि आगे कोई जन्म नहीं है। नास्तिक जान रहा है कि अच्छा भी करने वाला मर जाएगा और मिट्टी में मिल जाएगा और बुरा करने वाला भी मर जाएगा और मिट्टी में मिल जाएगा। कोई पुण्य-फल नहीं मिलने वाला है। फिर भी नास्तिक अगर नैतिक है, तो निश्चित ही उसकी नैतिकता आस्तिकता से ज्यादा मूल्य की है। उसकी नैतिकता ज्यादा शुद्ध है। उसमें कोई सौदा नहीं, कोई अपेक्षा नहीं, कोई आकांक्षा नहीं, कोई पुण्य-फल का सवाल नहीं, कोई फलाकांक्षा का उपाय नहीं। क्योंकि न कोई परमात्मा है, जो फल देगा; न कोई कर्म की व्यवस्था है, जो फल देगी; न कोई भविष्य है, न कोई नया जन्म है। आखिरी है यह बात! अगर मैं झूठ बोलूं, तो भी मिट्टी में मिल जाऊंगा; सच बोलूं, तो भी मिट्टी में मिल जाऊंगा। कोई फल नहीं मिलने वाला है। और नास्तिक अगर नैतिक हो पाए, तो निश्चित ही आस्तिक से उसकी नैतिकता गहरी है। नास्तिक नैतिक हो सकता है। नास्तिक को नैतिक होने में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन नास्तिक धार्मिक नहीं हो सकता है। और जो आस्तिक सिर्फ नैतिक है, वह नास्तिक से भी गया-बीता है। धार्मिक हो आस्तिक, तभी उसकी आस्तिकता का कोई मूल्य है। अन्यथा उसकी आस्तिकता नास्तिक की नैतिकता से भी नीची है। क्योंकि वह कुछ कर रहा है कुछ पाने के लिए।
अगर आस्तिक को पता चल जाए कि नहीं कोई परमात्मा है, तो उसकी नैतिकता अभी डगमगा जाए। आस्तिक को पता चल जाए कि नहीं कोई पुनर्जन्म है, उसकी नैतिकता अभी डगमगा जाए। आस्तिक को पता चल जाए कि कानून बदल गया, और जो लोग सच बोलते हैं वे नर्क जाने लगे, जो लोग झूठ बोलते हैं वे स्वर्ग जाने लगे, वह अभी झूठ बोलने लगेगा।
नास्तिक को फर्क नहीं पड़ेगा। आपका ईश्वर रहे न रहे, नर्क-स्वर्ग में बदलाहट हो जाए, नास्तिक को कोई फर्क नहीं पड़ेगा। क्योंकि वे उसके आधार नहीं हैं। उनके कारण वह नैतिक नहीं है। वह नैतिक है तो इसलिए कि वह कहता है कि नैतिक होने में सुख है। मेरा विवेक कहता है नैतिक होने को, इसलिए मैं नैतिक हूं। और कोई प्रयोजन नहीं है। मैं अपने को ज्यादा स्वच्छ और शांत पाता हूं, इसलिए नैतिक हूं। और कोई प्रयोजन नहीं है।
आस्तिक तो तभी आस्तिक होता है, जब वह धार्मिक हो। नैतिक होने से नहीं होता। नैतिक तो नास्तिक भी हो जाता है, और आस्तिक से बेहतर हो जाता है। लाओत्से आस्तिकता का आधारभूत सूत्र कह रहा है। वह यह कह रहा है कि तुम द्वंद्व में मत बांटो जीवन को; दोनों के पार हटो।
हमारे मन में फौरन डर पैदा होगा। हमारे मन में, जो कि हम नीति से बंधे हैं, हमारे मन में डर पैदा होगा कि अगर दोनों के पार हुए, तो अनैतिक हो जाएंगे। तत्काल जो लाओत्से की बात सुन कर ख्याल में आएगा, वह यह आएगा, अगर दोनों के पार हुए तो फिर चोरी क्यों न करें? हमारे मन में सवाल उठेगा, अगर दोनों ही छोड़ देने हैं, तो दुनिया बुरी हो जाएगी। क्योंकि हम अच्छे तो ऊपर-ऊपर से हैं, बुराई सब भीतर भरी है। अगर हमने जरा भी शिथिलता की, तो अच्छाई तो टूट जाएगी, बुराई फैल जाएगी। यह भय हमारे भीतर का वास्तविक भय है। लेकिन लाओत्से कहता है कि जो अच्छाई के भी पार जाने को तैयार है, वह बुराई में गिरने को कभी तैयार नहीं होगा। जो अच्छाई तक को छोड़ने को तैयार है, उसे तुम बुराई में कैसे गिरा पाओगे? असल में, सब बुराइयों में गिरने का कारण भी अहंकार होता है। और हमने अहंकार को ही अच्छाई में चढ़ने की सीढ़ी बनाई है। और वही बुराई में गिरने का कारण है।
लाओत्से कहता है कि जो अच्छाई तक में चढ़ने को उत्सुक नहीं है, वह बुराई में गिरने को राजी नहीं होगा। और जो अच्छाई में चढ़ने को उत्सुक है, उसे बुराई में गिरने को कभी भी फुसलाया जा सकता है। क्षण भर, और वह नीचे गिर जाएगा। अगर उसको ऐसा दिखाई पड़े कि बुराई अच्छाई से ज्यादा फल दे सकती है--क्योंकि फल के कारण ही वह अच्छाई कर रहा है--अगर उसे ऐसा दिखाई पड़े कि

बुराई से अहंकार ज्यादा तृप्त होगा बजाय अच्छाई के, तो वह अभी बुराई में चला जाएगा। क्योंकि वह अच्छाई में भी अहंकार के लिए ही गया है।
लाओत्से कहता है, जो अच्छाई और बुराई दोनों के पार चला जाता है, उसके गिरने का भी कोई उपाय नहीं, उसके उठने का भी कोई उपाय नहीं। वह पहाड़ों पर भी नहीं चढ़ता, वह खाइयों में भी नहीं उतरता। वह जीवन की समतल रेखा पर आ जाता है। उस समतल रेखा का नाम ऋत, उस समतल रेखा का नाम ताओ। जहां इंच भर वह नीचे भी नहीं गिरता, ऊपर भी नहीं उठता। उस समतल रेखा का नाम धर्म।
तो लाओत्से कहता है कि मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम बुराई छोड़ो, मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम अच्छाई पकड़ो, मैं तुमसे कहता हूं, तुम यह समझो कि अच्छाई और बुराई एक ही चीज के दो नाम हैं। तुम यह पहचानो कि ये दोनों संयुक्त घटनाएं हैं। और जब तुम यह पहचान लोगे ये दोनों संयुक्त हैं, तो तुम इन दोनों के पार हो सकोगे।
इसे हम कुछ और तरह से समझ लें तो शायद ख्याल में आ जाए।
एक फूल के पास आप खड़े हैं। क्या जरूरी है यह कहना कि उसे सुंदर कहें? क्या जरूरी है यह कहना कि उसे कुरूप कहें? और क्या आपके कहने से फूल में कोई अंतर पड़ता है? आपके कहने से फूल में कोई भी अंतर नहीं पड़ता। लेकिन आपके कहने से आप में जरूर अंतर पड़ता है। अगर आप सुंदर कहते हैं, तो आपका फूल के प्रति व्यवहार और हो जाता है। अगर आप कुरूप कहते हैं, तो आपका फूल के प्रति व्यवहार और हो जाता है। आपके कहने से फूल में अंतर नहीं पड़ता, लेकिन आप में अंतर पड़ता है।
और सच में ही क्या है आधार कहने का कि फूल सुंदर है? क्या है क्राइटेरियन? कौन सा है तराजू जिससे आप नापते हैं कि फूल सुंदर है? बड़ी कठिनाई में पड़ेंगे, अगर कोई पूछे कि क्यों? तो क्या है आधार?
गहरे से गहरा आधार यही होगा कि मुझे पसंद पड़ता है। लेकिन आपकी पसंदगी सौंदर्य का कोई नियम है? कुरूप का क्या होगा आधार? कि मुझे पसंद नहीं पड़ता है। लेकिन आपकी नापसंदगी को परमात्मा ने नियम बनाया है कि वह कुरूप हो गई चीज जो नापसंद है? पसंद और नापसंद क्या खबर देती हैं? आपके बाबत खबर देती हैं, फूल के बाबत कोई भी खबर नहीं देतीं। क्योंकि मैं उसी फूल के पास खड़े होकर दूसरी पसंदगी जाहिर कर सकता हूं। फूल फिर भी फूल रहेगा। कोई उसे कुरूप कह जाए, कोई उसे सुंदर कह जाए, कोई कुछ न कहे, फूल फूल रहेगा। और हजार लोग फूल के पास से निकल कर हजार वक्तव्य दे जाएं, तो भी फूल फूल रहेगा। फिर वे वक्तव्य किसके संबंध में खबर देते हैं? फूल के संबंध में या देने वाले के संबंध में?
अगर हम ठीक से समझें तो सभी वक्तव्य देने वाले के संबंध में खबर देते हैं। अगर मैं कहता हूं, यह फूल सुंदर है। तो इसको ठीक से कहना हो तो ऐसा कहना पड़ेगा कि मैं इस तरह का आदमी हूं कि यह फूल मुझे सुंदर मालूम पड़ता है। मगर जरूरी नहीं है कि शाम को भी यह फूल मुझे सुंदर मालूम पड़े; शाम को यह कुरूप मालूम पड़ सकता है। तब मुझे कहना पड़ेगा, अब मैं ऐसा आदमी हो गया हूं कि यह फूल मुझे कुरूप मालूम पड़ता है। लेकिन यह कल सुबह फिर सुंदर मालूम पड़ सकता है। ये सौंदर्य और कुरूप, ये आब्जेक्टिव हैं, विषयगत हैं, वस्तुगत हैं या सब्जेक्टिव फीलिंग्स हैं? ये हमारी आंतरिक, मानसिक भावनाएं हैं या वस्तु का स्वरूप हैं?
ये हमारी मानसिक भावनाएं हैं। मानसिक भावनाओं को फूल पर आरोपित कर देना न्यायसंगत नहीं है। आप कौन हैं फूल पर आरोपित हो जाने वाले? कौन सा अधिकार है? कोई भी अधिकार नहीं है। पर हम सब आरोपित कर रहे हैं अपने को। फूल के पास एक दिन खड़े होकर देखें, न कहें सुंदर, न कहें कुरूप। इतना
ही काफी है कि फूल है। खड़े रहें चुपचाप, सम्हालें अपनी पुरानी आदत को जो तत्काल कह देती है सुंदर या कुरूप। रुकें जजमेंट से, निर्णय न लें, खड़े रहें। उधर रहे फूल, इधर रहें आप, बीच में कोई निर्णय न हो कि सुंदर कि कुरूप।
और थोड़े दिन के अभ्यास से जिस दिन यह संभव हो जाएगा कि आपके और फूल के बीच में कोई भावधारा न रहे, कोई निर्णय न रहे, उस दिन आप फूल के एक नए सौंदर्य का अनुभव करेंगे, जो सौंदर्य और कुरूप के पार है। उस दिन फूल का आविर्भाव आपके सामने नया होगा। उस दिन आपकी कोई मानसिक धारणा नहीं होगी।

उस दिन आपकी पसंद-नापसंद नहीं होगी। उस दिन आप बीच में नहीं होंगे। फूल ही खिला होगा अपनी पूर्णता में। और जब फूल अपनी पूर्णता में खिलता है, हमारे किसी बिना मनोभाव की बाधा के, तब उसका एक सौंदर्य है, जो सुंदर और कुरूप दोनों के पार है। ध्यान रखना, जब मैं कह रहा हूं कि उसका एक अपना सौंदर्य है, जो हमारी धारणाओं के पार है।
लाओत्से कहता है, उसे हम कहते हैं सौंदर्य, जहां कुरूपता का पता ही नहीं है। लेकिन तब सौंदर्य का भी पता नहीं होता, जैसे सौंदर्य को हम जानते हैं।
एक वृक्ष है। आप राह से गुजरे हैं और वृक्ष की शाखा वर्षा में आपके ऊपर गिर पड़ी है। तब आप ऐसा तो नहीं कहते कि वृक्ष ने बहुत बुरा किया; वृक्ष बहुत शैतान है, कि दुष्ट है, कि हिंसक है; कि वृक्ष की इच्छा आपको नुकसान पहुंचाने की थी; कि अब आप वृक्ष से बदला लेकर रहेंगे।
नहीं, आप कुछ भी नहीं कहते। आप वृक्ष के संबंध में कोई निर्णय ही नहीं लेते। आप वृक्ष के संबंध में निर्णय-शून्य होते हैं। तब रात वृक्ष की गिरी हुई शाखा आपकी नींद में चिंता नहीं बनती। तब महीनों आप उससे बदला कैसे लें, इसमें व्यतीत नहीं करते। क्योंकि आपने कोई निर्णय न लिया कि शुभ हुआ कि अशुभ हुआ, वृक्ष ने बुरा किया कि भला किया। आपने यह सोचा ही नहीं कि वृक्ष ने कुछ किया। संयोग की बात थी कि आप नीचे थे और वृक्ष की शाखा गिर पड़ी। वृक्ष को आप कोई दोष नहीं देते।
लेकिन एक आदमी एक लकड़ी आपको मार दे। लकड़ी तो दूर की बात है, एक गाली मार दे। लकड़ी में तो थोड़ी चोट भी रहती है, गाली में तो कोई चोट भी नहीं है। खाली शब्द कैसे घाव कर पाते होंगे? लेकिन तत्काल मन निर्णय लेता है कि बुरा किया उसने, कि भला किया, कि बदला लेना जरूरी हो गया। अब चिंता पकड़ेगी। अब चित्त घूमेगा आस-पास उस गाली के। अब महीनों नष्ट हो सकते हैं; सालों नष्ट हो सकते हैं; पूरा जीवन भी लग सकता है उस काम में। पर कहां से शुरुआत हुई? उस आदमी के गाली देने से शुरुआत हुई, कि आपके निर्णय लेने से शुरुआत हुई, यह समझने की बात है।
अगर आप निर्णय न लेते और आप कहते, संयोग की बात कि मैं निकट पड़ गया और तुम्हारे मुंह में गाली आ गई, जैसे कि मैं पास से गुजरता था और वृक्ष की शाखा गिरी, संयोग की बात कि मैं पास से गुजरता था और तुम्हारे मुंह में गाली आ गई। मैं कोई निर्णय नहीं लेता कि शुभ हुआ कि अशुभ हुआ; संयोग हुआ। अगर सच में ही मैं वृक्ष की शाखा की तरह इसे भी संयोग की भांति देख पाऊं और बुरे और भले का निर्णय न लूं, तो क्या यह मेरे मन में चिंता बन पाएगी? क्या यह गाली घाव बन जाएगी? क्या इसके आस-पास मुझे जीवन का और समय नष्ट करना पड़ेगा? क्या मुझे गालियां बनानी पड़ेंगी और देनी पड़ेंगी? और क्या गालियां देकर मुझे और गालियां निमंत्रण करवानी पड़ेंगी? नहीं, यह बात समाप्त हो गई। मैंने कुछ बुरे-भले का निर्णय न लिया। एक तथ्य था, जाना और बढ़ गया। लाओत्से इसे शुभ कहता है।
अब ध्यान रखना, इसमें बहुत बारीक फासले हैं। जीसस कहेंगे कि जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे, दूसरा गाल उसके सामने कर देना। लाओत्से कहेगा, ऐसा मत करना। जीसस कहेंगे, जो गाल पर तुम्हारे एक चांटा मारे, दूसरा उसके सामने कर देना। लेकिन लाओत्से कहेगा, अगर दूसरा तुमने उसके सामने किया, तो तुमने निर्णय ले लिया, तुमने निर्णय ले लिया। एंड यू हैव रिएक्टेड, और तुमने प्रतिक्रिया भी कर दी। माना कि तुमने गाली नहीं दी, लेकिन चांटा तुमने मार दिया; तुमने दूसरा गाल सामने किया न!
जीसस कहते हैं, अपने शत्रु को भी प्रेम करना। लाओत्से कहेगा, नहीं, ऐसा मत करना। क्योंकि तुमने प्रेम भी प्रकट किया, तो भी इतना मान लिया कि वह शत्रु है। लाओत्से की बात बहुत-बहुत पार है। लाओत्से कहेगा, शत्रु को प्रेम करना, तो शत्रु तो मान ही लिया। फिर तुमने क्या किया, शत्रु को गाली दी, घृणा की, या प्रेम किया, ये दूसरी बातें हैं। लेकिन एक बात तय हो गई कि वह शत्रु है।
नसरुद्दीन के जीवन में एक उल्लेख है कि वह अपने छोटे भाई को चांटा मार दिया है। और उसका पिता उससे कहता है, नसरुद्दीन, कल ही तू बाइबिल में पढ़ रहा था कि अपने शत्रु को भी प्रेम करना चाहिए।

नसरुद्दीन ने कहा, वह मैं पढ़ रहा था; लेकिन यह मेरा भाई है, मेरा शत्रु नहीं है। मैं बिल्कुल मानता हूं। लेकिन यह मेरा शत्रु है ही नहीं।
शत्रु की स्वीकृति, लाओत्से कहेगा, निर्णय हो गया। और तुमने यह मान लिया कि इस आदमी ने बुरा किया है। इसलिए इसको बुराई से जवाब नहीं देना है, भलाई से जवाब देना है।
जीसस कहते हैं कि बुराई का जवाब भलाई से दो। लेकिन बुराई उसने की है,
यह निर्णय तो कर लिया। फिर जवाब तुम भलाई से देते हो, यह नैतिक हुआ, धार्मिक न हुआ। लाओत्से कहेगा, जवाब ही नहीं देते हो, क्योंकि तुम निर्णय ही नहीं लेते हो। तुम कहते हो, ऐसा हुआ, बात समाप्त हो गई। इसके आगे तुम चिंतन ही नहीं चलाते हो, विचार की रेखा ही नहीं उठने देते हो। एक आदमी ने चांटा मारा, बात समाप्त हो गई, घटना पूरी हो गई। तुम इस घटना से कुछ शुरुआत नहीं करते अपने मन में। कुछ भी, कि इसने बुरा किया कि अच्छा किया, कि दोस्त था, कि मित्र था, कि शत्रु था; कौन है, कौन नहीं है; मैं क्या करूं, क्या न करूं; तुम कोई चिंतन का सूत्रपात नहीं करते हो। यह घटना पूरी हो गई, दरवाजा बंद हो गया, अध्याय समाप्त हुआ। तुम उसे इति कर देते हो; दि एंड कर देते हो। बात समाप्त हो गई। तथ्य पूरा हो गया। तुम उसे खींचते नहीं मन में। तो लाओत्से कहता है, तुम धार्मिक हो।
अगर तुमने इतना भी निर्णय किया कि यह बुरा हुआ, अब मैं क्या करूं, तो तुम धर्म से च्युत होते हो। भेद ही धर्म से च्युत हो जाना है। निर्णय ही धर्म से नीचे गिर जाना है।
लाओत्से की समस्त चेष्टा, चित्त की जो बंधी हुई आदत है चीजों को दो में तोड़ लेने की, उससे आपको सजग करना है; कि चित्त दो में तोड़ पाए, उसके पहले आप जाग जाना। इसके पहले कि चित्त चीजों को दो करे, आप जाग जाना। वह दो न कर पाए। उसने दो कर लिया, तो फिर आप कुछ भी करो, फिर आप कुछ भी करो, चित्त ने एक बार दो कर लिया तो आप फिर चक्कर के बाहर न हो पाओगे। दो करने के पहले जाग जाना।
इसलिए वह सौंदर्य और शुभ, दो बातों को उठाता है। दो ही हमारे बुनियादी भेद हैं। सौंदर्य के भेद पर हमारा सारा एस्थेटिक्स, सौंदर्य-शाó खड़ा होता है। और शुभ और अशुभ के भेद पर हमारी ईथिक्स, हमारा पूरा नीति-शाó खड़ा होता है। लाओत्से कहता है, इन दोनों में धर्म नहीं है। इन दोनों के पार! प्रीतिकर-अप्रीतिकर, रुचिकर-अरुचिकर, सुंदर-असुंदर, शुभ-अशुभ, अच्छा-बुरा, श्रेयस्कर-अश्रेयस्कर, ये सारे भेद के पार धर्म है।
लाओत्से न कहेगा, क्षमा कर देना धर्म है। लाओत्से कहेगा, तुमने क्षमा
की तो तुमने स्वीकार किया कि क्रोध आ गया। नहीं, जब क्रोध उठता हो या क्षमा उठती हो, तब तुम चौंक कर सजग हो जाना कि अब विपरीत का द्वंद्व उठता है। इसलिए लाओत्से को हम क्षमावान न कह सकेंगे। अगर लाओत्से से हम पूछेंगे कि तुम सबको क्षमा कर देते हो? तो लाओत्से कहेगा, मैंने कभी किसी पर क्रोध ही नहीं किया। लाओत्से को अगर किसी ने गाली दी है, तो हमें लगेगा कि उसने क्षमा कर दिया, क्योंकि वह कुछ भी नहीं बोला, अपनी राह चला गया। पर हमारी भूल है। लाओत्से से हम पूछेंगे तो वह कहेगा, नहीं, मैंने क्रोध ही नहीं किया; क्षमा का तो सवाल ही नहीं उठता। क्षमा तो तभी संभव है, जब क्रोध हो जाए। और जब क्रोध ही हो गया, तो फिर क्या क्षमा होगी? फिर सब लीपापोती है। फिर सब पीछे से इंतजाम है, मलहम-पट्टी है। लाओत्से कहता है, हमने क्रोध ही न किया। इसलिए क्षमा करने की झंझट में हम पड़े ही नहीं। वह तो दूसरा कदम था, जो क्रोध कर लिया होता, तो करना पड़ता।
लाओत्से का गहरे से गहरा जोर इस बात पर है कि जहां द्वंद्व उठे, उसके पहले ही सजग हो जाना और निद्र्वंद्व में ठहरना, द्वंद्व में मत उतरना।

प्रश्नः भगवान श्री, जैसे कल आपने कैथार्सिस, फुट पिलो बीटिंग के जरिए क्रोध-निवृत्ति का प्रयोग बताया, वैसे काम, लोभ, मोह और अहंकार की निवृत्ति के लिए कौन से प्रयोग किए जाएं, कृपया इन बातों पर दृष्टि डालिए।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार! जैसा शब्दों से लगता है, उससे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे बहुत सी बीमारियां आदमी के आस-पास हैं। सचाई यह नहीं है।

इतनी बीमारियां नहीं हैं, जितने नाम हमें मालूम हैं। बीमारी तो एक ही है। ऊर्जा एक ही है, जो इन सब में प्रकट होती है। अगर काम को आपने दबाया, तो क्रोध बन जाता है। और हम सबने काम को दबाया है, इसलिए सबके भीतर क्रोध कम-ज्यादा मात्रा में इकट्ठा होता है। अब अगर क्रोध से बचना हो, तो उसे कुछ रूप देना पड़ता है। नहीं तो क्रोध जीने न देगा। तो अगर आप लोभ में क्रोध की शक्ति को रूपांतरित कर सकें तो आप कम क्रोधी हो जाएंगे; आपका क्रोध लोभ में निकलना शुरू हो जाएगा। फिर आप आदमियों की गर्दन कम दबाएंगे, रुपए की गर्दन पर मुट्ठी बांध लेंगे।
एक बात ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि मनुष्य के पास एक ही ऊर्जा है,
एक ही इनर्जी है। हम उसके पच्चीस प्रयोग कर सकते हैं। और अगर हम विकृत हो जाएं तो वह हजार धाराओं में बह सकती है। और अगर आपने एक-एक धारा से लड़ने की कोशिश की तो आप पागल हो जाएंगे, क्योंकि आप एक-एक से लड़ते भी रहेंगे और मूल से आपका कभी मुकाबला न होगा।
तो पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि मूल ऊर्जा एक है आदमी के पास।
और अगर कोई भी रूपांतरण, कोई भी ट्रांसफार्मेशन करना है, तो मूल ऊर्जा से सीधा संपर्क साधना जरूरी है। उसकी अभिव्यक्तियों से मत उलझिए। सुगमतम मार्ग यह है कि आपके भीतर इन चार में से जो सर्वाधिक प्रबल हो, आप उससे शुरू करिए। अगर आपको लगता है कि क्रोध सर्वाधिक प्रबल है आपके भीतर, तो वह आपका चीफ करेक्टरिस्टिक हुआ।
गुरजिएफ के पास जब भी कोई जाता, तो वह कहता कि पहले तुम्हारी खास बीमारी मैं पता कर लूं; तुम्हारी खास बीमारी क्या है? तुम्हारा खास लक्षण क्या है?
और हर आदमी का खास लक्षण है। किसी का खास लक्षण लोभ है। किसी का खास लक्षण क्रोध है। किसी का खास लक्षण काम है। किसी का खास लक्षण भय है। किसी का खास लक्षण अहंकार है। लक्षण हैं। अपना खास लक्षण पकड़ लें। और सबसे लड़ने मत जाएं। सबसे लड़ने मत जाएं, खास लक्षण पकड़ लें। वह खास लक्षण आपके मूल स्रोत से जुड़ी हुई सबसे बड़ी धारा है। अगर वह क्रोध है, तो क्रोध को पकड़ लें। अगर वह काम है, तो काम को पकड़ लें। और उस खास लक्षण पर सजगता का प्रयोग करना शुरू करें, और कैथार्सिस का। जैसा मैंने कल क्रोध के लिए आपको कहा कि एक तकिए पर भी प्रयोग एक मित्र कर रहे हैं और बड़े परिणाम हैं।
जो भी आपके भीतर खास लक्षण हो, उस पर दो काम करें। पहला काम तो यह है कि उसकी पूरी सजगता बढ़ाएं। क्योंकि कठिनाई यह है सदा कि जो हमारा खास लक्षण होता है, उसे हम सबसे ज्यादा छिपा कर रखते हैं। जैसे क्रोधी आदमी सबसे ज्यादा अपने क्रोध को छिपा कर रखता है, क्योंकि वह डरा रहता है, कहीं भी निकल न जाए। वह उसको छिपाए रखता है। वह हजार तरह के झूठ खड़े करता है अपने आस-पास, ताकि क्रोध का दूसरों को भी पता न चले, उसको खुद को भी पता न चले। और अगर पता न चले, तो उसे बदला नहीं जा सकता।
तो पहले तो सारे के सारे पर्दे हटा लें और अपनी स्थिति को ठीक समझ लें
कि यह मेरी खास लक्षणा है।
दूसरा, इसके साथ सजग होना शुरू करें। जैसे क्रोध आ गया। तो जब क्रोध आता है तो तत्काल हमें ख्याल आता है उस आदमी का, जिसने क्रोध दिलवाया; उसका ख्याल नहीं आता, जिसे क्रोध आया। अगर आपने मुझे क्रोध दिलवाया, तो मैं आपके चिंतन में पड़ जाता हूं, अपने को बिल्कुल भूल जाता हूं; जब कि असली चीज मैं हूं, जिसे क्रोध आया। जिसने क्रोध दिलवाया, उसने तो सिर्फ निमित्त का काम किया। वह तो गया। वह तो जरा सी चिनगारी फेंक गया और मेरी बारूद जल रही है। और उसकी चिनगारी बेकार हो जाती, अगर मेरे पास बारूद न होती। लेकिन मैं अपने जलते हुए बारूद के भवन को नहीं देखता, अब मैं उसकी चिनगारी को देखता हूं। और सोचता हूं कि जितनी आग मुझमें जल रही है, वह आदमी फेंक गया।
वह आदमी नहीं फेंक गया इतनी आग, वह तो चिनगारी ही फेंक गया। यह आग तो मेरी बारूद है, जो जल कर इतना बड़ा रूप ले रही है। यह इतनी आग वह आदमी नहीं फेंक गया। उसको पता भी नहीं होगा। हो सकता है, अनजाने ही फेंक गया हो। उसको ख्याल भी न हो कि आप जल रहे हैं घर में।
आप इस सारी आग को उस आदमी पर आरोपित करते हैं। और इसलिए जब आप उस पर नाराज होते हैं, तो उसकी समझ में भी नहीं आता कि इतनी तो कोई बात भी न थी।

उसकी भी समझ में नहीं आता, यह इसलिए हमेशा कठिनाई होती है। क्योंकि आप जितनी आरोपित करते हैं, वह आपकी है।
इसलिए वह भी चौंकता है कि इतनी तो कोई बात भी नहीं कही थी आपसे, आप इतने पागल हुए जा रहे हैं! उसकी समझ के बाहर होता है। जिस पर भी आपने कभी क्रोध किया है, आपको पता होगा कि उसकी समझ के बाहर पड़ा है कि इतने क्रोध की तो कोई बात ही न थी। आप पर भी किसी ने क्रोध किया है, तो आप भी यही सोचते हैं कि इतनी तो बात ही न थी। बात जरा सी थी, आप इतना बड़ा कर रहे हैं। लेकिन एक नेचुरल फैलेसी है, एक सहज भ्रांति है, और वह यह है कि जितनी आग मुझमें जलती है, मैं समझता हूं आपने जलाई। आप चिनगारी फेंकते हैं, बारूद मेरे पास तैयार है। वह बारूद पकड़ लेती है आग को। और कितनी बढ़ जाएगी, कहना कठिन है। और जब भी हमें क्रोध पकड़ता है, तो हमारा ध्यान उस पर होता है, जिसने क्रोध शुरू करवाया है। अगर आप ऐसा ही ध्यान रखेंगे, तो क्रोध के कभी बाहर न हो सकेंगे। जब कोई क्रोध करवाए, तब उसे तत्काल भूल जाइए; और अब इसका स्मरण करिए, जिसको क्रोध हो रहा है। और ध्यान रखिए, जिसने क्रोध करवाया है, उसका आप कितना ही चिंतन करिए, आप उसमें कोई फर्क न करवा पाएंगे। फर्क कुछ भी हो सकता है, तो इसमें हो सकता है जिसे क्रोध हुआ है।
तो जब क्रोध पकड़े, लोभ पकड़े, कामवासना पकड़े--जब कुछ भी पकड़े--तो तत्काल आब्जेक्ट को छोड़ दें। एक óी को देख कर मन कामातुर हो गया है, एक पुरुष को देख कर मन कामातुर हो गया है; ध्यान रखिए, वही घटना घट रही है, उसने तो सिर्फ चिनगारी दी, शायद उसे पता भी न हो। और क्रोध के मामले में तो थोड़ी चेष्टा भी होती है दूसरे की तरफ से, काम के मामले में तो अक्सर चेष्टा भी नहीं होती दूसरे की तरफ से। एक óी रास्ते से गुजर रही है, और आपके मन में काम पकड़ गया। तब भी आप उसका ही चिंतन करने में लग जाते हैं। तब भी आप नहीं देखते कि भीतर की ऊर्जा, जिसमें काम की लपट पकड़ रही है, वह क्या है? इस भांति हम चूक जाते हैं स्वयं को जानने से, स्वयं के निरीक्षण से। और स्वयं का निरीक्षण न हो, तो जीवन में कोई रूपांतरण नहीं हो सकता।
तो जब काम पकड़े, तत्काल बाहर को भूल जाएं, आब्जेक्ट को भूल जाएं, विषय
को भूल जाएं। जिसने काम पकड़ाया, क्रोध पकड़ाया, लोभ पकड़ाया, उसे तत्काल भूल जाएं। और तत्काल ध्यान करें भीतर, कि मेरे भीतर क्या हो रहा है? दबाएं न भीतर; जो हो रहा है, उसे पूरा होने दें। कमरा बंद कर लें। जो हो रहा है, उसे पूरा होने दें। उसको जितना साफ करके देख सकें, उतना बेहतर है।
क्रोध भीतर आ रहा है, तो चिल्लाएं, कूदें, फांदें, बकें, जो करना है, कमरा बंद कर लें। अपने पूरे पागलपन को पूरा अपने सामने करके देख लें। क्योंकि दूसरों ने तो कई बार आपका यह पागलपन देखा; आप ही बच गए हैं देखने से। दूसरे तो इसका काफी मजा ले चुके हैं। दूसरों को आपने काफी रस दिया। आप ही बच गए हैं इस घटना को देखने से। और आपको पता तब चलता है, जब यह सब घटना जा चुकी होती है, नाटक समाप्त हो गया होता है। तब बैठे हुए अपने घर में, पीछे स्मृति में उसको देखते हैं। तब राख ही रह गई होती है; आग तो नहीं रहती।
और ध्यान रखिए, राख से आग का कोई भी पता नहीं चलता है। राख का कितना ही बड़ा ढेर घर में लगा हो, उससे आग के छोटे से अंगारे का भी पता नहीं चलता है। और जिस आदमी ने आग न देखी हो, वह राख को देख कर कोई निष्कर्ष ही नहीं ले सकता कि आग क्या है। कोई कनक्लूजन संभव नहीं है। कोई तर्कशाó राख से आग तक नहीं ले जा सकता कि आग क्या है। अनुमान भी नहीं लग सकता, इनफरेंस भी नहीं हो सकता। और आप जब भी अपने क्रोध को देखते हैं, तब राख की तरह देखते हैं। जब सब जा चुका तब राख का ढेर रह जाता है, आप बैठे उस पर पछता रहे हैं।
नहीं, उससे कोई फायदा न होगा। जब आग जलती है पूरी, तब उसे देखें। और उसे देखने में आसानी पड़ेगी, अगर उसको अभिव्यक्त करें। और ध्यान रखिए, जब आप दूसरे पर अभिव्यक्त करते हैं, तब आप पूरी अभिव्यक्ति कभी नहीं कर पाते। अगर मैं अपनी पत्नी पर नाराज होता हूं या पति पर नाराज होता हूं, या पिता पर या बेटे पर या भाई पर, तो लिमिटेशंस हैं नाराजगी के। क्योंकि कोई पत्नी इतनी नहीं है कि मैं पूरा क्रोध उस पर कर पाऊं। एक सीमा है। एक सीमा तक क्रोध करूंगा, बाकी पी जाऊंगा। पूरा तो नहीं कर सकता हूं। आज तक किसी ने भी पूरा क्रोध नहीं किया है। बाप भी जब छोटे से बेटे पर करता है--हालांकि बेटे की कोई सामथ्र्य नहीं, बाप चाहे तो उसकी गर्दन तोड़ दे--वह भी पूरा नहीं कर

पाता। पच्चीस सीमाएं बीच में खड़ी हो जाती हैं। थोड़ा-बहुत कर पाते हैं; तो करने का मजा भी नहीं आ पाता, और पीड़ा भी आ जाती है। उसको देख भी नहीं पाते पूरा। इसलिए कल फिर करेंगे, परसों फिर करेंगे, और सदा अधूरा करेंगे।
अगर क्रोध को पूरा देखना हो, तो अकेले में करके ही पूरा देखा जा सकता है। तब कोई सीमा नहीं होती। इसलिए मैंने वह जो पिलो मेडिटेशन, वह जो तकिए पर ध्यान करने की प्रक्रिया कुछ मित्रों को करवाता हूं, वह इसलिए कि तकिए पर पूरा किया जा सकता है।
जिस मित्र का मैं कल कह रहा था, आज उसके साथी ने मुझे आकर खबर दी है कि
आज तो चाकू निकाल कर उसने तकिए को चीर-फाड़ डाला है। यह तो मैंने कहा भी नहीं था। हमें एकदम हंसी आएगी कि तकिए को कोई चाकू से कैसे चीरेगा-फाड़ेगा? लेकिन जब जिंदा आदमी को चीर-फाड़ सकते हैं हम, तब हंसी नहीं आती, तो तकिए को चीरने-फाड़ने में कौन सी कठिनाई है? और जब एक आदमी जिंदा आदमी को भी चीरता- फाड़ता है, तब भी जो रस है वह चीरने-फाड़ने का है, आदमी से कुछ लेना-देना नहीं है। वह तकिए में भी उतना ही रस आ जाता है। और तकिए में रस ज्यादा आ जाता है, क्योंकि तकिए पर कोई भी सीमा बांधने की जरूरत नहीं है।
तो अपने कमरे में बंद हो जाएं और अपने मूल, जो आपकी बीमारी है, उसको जब प्रकट होने का मौका हो, तब उसे प्रकट करें। इसको मेडिटेशन समझें, इसको ध्यान समझें। उसे पूरा निकालें। उसको आपके रोएं-रोएं में प्रकट होने दें। चिल्लाएं, कूदें, फांदें, जो भी हो रहा है उसे होने दें। और पीछे से देखें, आपको हंसी भी आएगी। हैरानी भी होगी। यह मैं कर सकता हूं, यह जान कर भी चकित होंगे आप। मन को विस्मय भी पकड़ेगा कि यह मैं कैसे कर रहा हूं? और अकेले में? कोई होता, तब भी ठीक था।
एक-दो दफे तो आपको थोड़ी सी बेचैनी होगी, तीसरी दफे आप पूरी गति में आ जाएंगे और पूरे रस से कर पाएंगे। और जब आप पूरे रस से कर पाएंगे, तब आपको एक अदभुत अनुभव होगा कि आप कर भी रहे होंगे बाहर और बीच में कोई चेतना खड़ी होकर देखने भी लगेगी। दूसरे के साथ यह कभी होना मुश्किल है या बहुत कठिन है। एकांत में यह सरलता से हो जाएगा। चारों तरफ क्रोध की लपटें जल रही होंगी, आप बीच में खड़े होकर अलग हो जाएंगे।
और एक दफा इस तरह अलग होकर अपने क्रोध को किसी ने देख लिया, एक दफा इस तरह खड़े होकर किसी ने अपनी कामवासना को देख लिया, लोभ को देख लिया, भय को देख लिया, तो उसके जीवन में एक ज्ञान की किरण फूटनी शुरू हो जाएगी। वह एक अनुभव को उपलब्ध हुआ। उसने अपनी एक ऊर्जा को पहचाना। और अब इस ऊर्जा के द्वारा उसे धोखा नहीं दिया जा सकता। जिस ऊर्जा को हम पहचान लेते हैं, हम उसके मालिक हो जाते हैं। जिस शक्ति को हम जान लेते हैं, उसके हम मालिक हो जाते हैं। और जिस शक्ति को हम नहीं जानते, हम उसके गुलाम होते हैं।
तो आप तकिए को अपनी प्रेयसी भी समझ सकते हैं। आप तकिए को कोहिनूर का हीरा भी समझ सकते हैं। आप तकिए को अपना दुश्मन भी समझ सकते हैं, जिसके सामने आप थर-थर कांप रहे हैं और भयभीत हो रहे हैं। इससे कोई सवाल नहीं है कि आप क्या... । आपका जो लक्षण हो, उस लक्षण को पहचान लें।
और उसे पहचान लेने में कठिनाई नहीं है। क्योंकि वह चौबीस घंटे आपके पीछे लगा हुआ है। वह आप भलीभांति जानते हैं कि आपका मूल लक्षण क्या है। एक ही होता है एक आदमी में मूल लक्षण, बाकी सब चीजें उससे जुड़ी होती हैं। अगर उसमें कामवासना मूल है, तो क्रोध, लोभ सब सेकेंडरी होंगे। अगर वह लोभ भी करेगा, तो कामवासना की पूर्ति के लिए। अगर वह क्रोध भी करेगा, तो कामवासना की पूर्ति के लिए। अगर वह भयभीत भी होगा, तो कामवासना में कोई बाधा न पड़ जाए इसलिए। प्राइमरी, प्राथमिक कामवासना होगी, बाकी सब सेकेंडरी हो जाएंगे।
अगर क्रोध आपका मूल है, तो आप किसी को प्रेम भी करेंगे तो इसीलिए ताकि
आप क्रोध कर पाएं। आपकी कामवासना सेकेंडरी हो जाएगी, नंबर दो की हो जाएगी। वैसा आदमी लोगों से प्रेम करेगा इसलिए कि उन पर क्रोध कर सके। पर उसका मूल क्रोध हो जाएगा। वैसा आदमी लोभ भी करेगा, पैसा भी कमाएगा तो इसीलिए, ताकि जब वह क्रोध करे तो उसके पास ताकत हो। यह उसे चाहे पता हो या न हो पता, उसके पास धन बढ़ता जाएगा, उसी मात्रा में उसकी क्रोध की क्षमता बढ़ती जाएगी। और जिन-जिन के ऊपर उसके धन की ताकत होगी, उनकी गर्दन वह बिल्कुल दबा देगा।

वैसा आदमी अगर पद की इच्छा करेगा तो इसीलिए कि पद पर पहुंच कर वह क्रोध को पूरी तरह कर पाए। कई बार दिखाई नहीं पड़ता कि क्रोध कितना छिपा रहता है। विंस्टन चर्चिल की एक लड़की ने शादी की एक ऐसे युवक से, जिसको चर्चिल नहीं चाहता था कि वह शादी करे। बहुत क्रोध था मन में, पी गया। शादी हो गई। उस युवक को कभी उसने कहा भी नहीं कि मेरे मन में क्रोध है। उस बेचारे को कुछ पता भी नहीं। वह चर्चिल को पापा-पापा कह कर बात करता रहता। लेकिन चर्चिल को जब भी वह पापा कहता था, तो आग लग जाती थी। यह आदमी उसे पापा कहे, उसे बिल्कुल बरदाश्त के बाहर था।
दूसरे महायुद्ध के बाद एक दिन वह आया हुआ था दामाद। और उसने चर्चिल से पूछा कि पापा, आप इस समय दुनिया का सबसे बड़ा राजनीतिज्ञ किसको मानते हैं? फिर उसे उसने पापा कहा, तो उसे बहुत बेचैनी हो गई। उसने कहा कि मैं मुसोलिनी को सबसे बड़ा राजनीतिज्ञ मानता हूं। तो जरा उसका दामाद हैरान हुआ। क्योंकि चर्चिल अपने दुश्मन को और मुसोलिनी को कहेगा! और जब कि दुनिया में बड़े लोग थे। रूजवेल्ट था और स्टैलिन थे और हिटलर थे; तब मुसोलिनी पर एकदम से नजर जाएगी उसकी! और चर्चिल खुद कोई मुसोलिनी से कम आदमी नहीं था, ज्यादा ही आदमी था।
तो उसने पूछा, मैं समझा नहीं कि आप मुसोलिनी को क्यों... ?
तब चर्चिल एकदम चौंका, पर उसने कहा कि जाने भी दो। पर उसके दामाद ने जिद्द पकड़ी कि नहीं, मुझे बताइए कि क्यों? तो उसने कहा, अब तू नहीं मानता तो मैं कहता हूं। मैं मुसोलिनी को इसलिए बड़ा राजनीतिज्ञ कह पाया, क्योंकि उसमें इतनी हिम्मत थी कि अपने दामाद को गोली मार दे। और कोई कारण नहीं है उसमें। उस वक्त मेरे मन में तुझे गोली मारने का एकदम हो रहा था, कि पापा जब तू कहता है, पापा, तब मुझे लगता है कि गोली मार दूं। लेकिन आई हैव नाॅट दि गट्स। मुसोलिनी में गट्स थे, अपने दामाद को उसने गोली मार दी। इसलिए उसको मैं बड़ा भारी आदमी मानता हूं। मुझमें उतने गट्स नहीं हैं।
हमारे दिमाग में पर्तें हैं। छिपाए चले जाते हैं, दबाए चले जाते हैं। कभी उखड़ आती हैं, कभी निकल आती हैं, कभी दिखाई पड़ जाती हैं। कभी जीवन भर भी हम छिपाए चले जाते हैं। कई दफे ऐसा भी होता है कि आदमी समझता है कुछ और मुझमें ज्यादा है, कुछ होता और ज्यादा है।
तो पहचान पहली तो जरूरी यह है कि अपना थोड़ा निरीक्षण करें। एक महीने डायरी रखें। रोज लिखें कि आप रोज क्या कर रहे हैं सर्वाधिक?
तीन बातों से पहचान करें। सर्वाधिक पुनरावृत्ति किस वृत्ति की होती है? लोभ की, काम की, भय की, क्रोध की, किसकी? सर्वाधिक आवृत्ति किसकी होती है चौबीस घंटे में?
फिर जिस चीज की आवृत्ति सर्वाधिक होती है, साथ में यह भी देखेंः उसमें, उसकी आवृत्ति में सर्वाधिक रस आता है? और यह भी देखें कि रस के होने के दो ढंग हैंः उसमें मजा भी आ सकता है, उसमें पश्चात्ताप भी हो सकता है। लेकिन दोनों हालत में रस होता है।
फिर तीसरी बात यह देखें कि वह वृत्ति अगर आपसे बिल्कुल काट दी जाए, तो आपका व्यक्तित्व जैसा पुराना था, वैसा ही रहेगा कि बिल्कुल बदल जाएगा। क्योंकि जो आपका चीफ करेक्टर है, उसके बदलने से आपका पूरा व्यक्तित्व दूसरा हो जाएगा। आप सोच ही न पाएंगे कि मैं कैसा होऊंगा, अगर आप उस हिस्से को काट दें।
एक पंद्रह दिन डायरी रखें। और पंद्रह दिन पूरे चौबीस घंटे का हिसाब-किताब रख कर निकालें नतीजा कि क्या है बात। एक पर आप पहुंच जाएंगे, जो प्राइमरी होगा। और तब उस आधारभूत वृत्ति के प्रति सजग हों। और जब भी वह वृत्ति जगे, तब एकांत में उसकी अभिव्यक्ति का दर्शन करें, साक्षी बनें। उसकी कैथार्सिस भी हो जाएगी, उसका रेचन भी होगा, उसकी पहचान भी बढ़ेगी। और आप अपने संबंध में ज्यादा मालिक अनुभव करने लगेंगे।
इस प्रक्रिया से गुजरने के लिए अगर लाओत्से की बात ख्याल में रखेंगे,
तो और सरलता हो जाएगी। अगर आप क्रोध को सिर्फ इसलिए जानना चाहते हैं कि क्रोध से मैं कैसे मुक्त हो जाऊं, तो आपको जानने में बहुत कठिनाई पड़ेगी। क्योंकि मुक्त होने का जो भाव है, उसमें आपने भेद निर्मित कर लिया। आप मानने लगे कि अक्रोध बहुत अच्छी चीज है, क्रोध बुरी चीज है; काम बुरी चीज

है, अकाम अच्छी चीज है; लोभ बुरी चीज है, अलोभ अच्छी चीज है; अगर आपने ऐसा भेद खड़ा किया, तो आपको जानने में बड़ी कठिनाई पड़ेगी। और अगर आप किसी तरह पार भी हुए, तो वह पार होना सप्रेशन ही होगा, दमन ही होगा।
अगर लाओत्से की बात ख्याल में रखें, क्रोध से अक्रोध को जोड़ने की कोई
भी जरूरत नहीं है। यह भी सोचने की कोई जरूरत नहीं है कि क्रोध बुरा है। अभी तो हमें यही पता नहीं कि क्रोध क्या है। बुरे का निर्णय हम क्यों करें? बुरे का निर्णय उधार है। दूसरे लोग कहते हैं कि क्रोध बुरा है, सुन लिया है। हम भी कहते हैं, क्रोध बुरा है; और किए चले जाते हैं।
नहीं, निर्णय छोड़ें। क्रोध क्या है, इसे ही जानें। अभी जल्दी न करें
कि बुरा है, अच्छा है। कौन जाने? बिल्कुल निष्पक्ष होकर क्रोध को पता लगाने जाएं। अगर आप निष्पक्ष होकर गए, तो क्रोध अपने भीतर दबी हुई सारी पर्तों को आपके सामने प्रकट कर पाएगा। अगर आप कह कर गए, मान कर कि बुरा है, तो उसके गहरे हिस्से दबे रह जाएंगे, वे आपके सामने प्रकट न होंगे। उनके प्रकट होने के लिए आपके चित्त का बिल्कुल ही निष्पक्ष होना जरूरी है। क्योंकि आपने दबाया ही इसलिए है कि बुरा है; इसीलिए तो दबाया। अभी भी मान रहे हैं कि बुरा है, तो दबाए चले जाएंगे। इसलिए एक बड़ी अदभुत और दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटती है कि जो लोग क्रोध से जितना बचना चाहते हैं, उतने क्रोधी हो जाते हैं। क्योंकि बचने के लिए दबाना पड़ता है। और मुक्त होने के लिए जानना जरूरी है। और जानना दबाए हुए चित्त में असंभव है। निष्पक्ष होकर जाएं। इतना ही जान कर जाएं, आकाश में जैसे बिजली कौंधती है, न बुरी, न भली; बादल गरजते हैं, न बुरे, न भले; ऐसे ही भीतर क्रोध की चमक है, लोभ की धाराएं बहती हैं, कामवासना की ऊर्जा सरकती है; ये सब है। ये शक्तियां हैं, इन्हें देखने जाएं, निष्पक्ष मन से। कोई दुर्भाव लेकर नहीं, कोई निर्णय लेकर नहीं। कभी भी कनक्लूजन से शुरू न करें, नहीं तो आप कनक्लूजन तक कभी न पहुंचेंगे। कभी भी निष्कर्ष से शुरू न करें, निष्कर्ष को अंत में आने दें।
नहीं तो आपकी हालत वैसी हो जाती है, जैसे स्कूल का बच्चा किताब को उलटा कर पहले पीछे देख लेता है, उत्तर क्या है। और एक दफा उत्तर दिख गया तो बहुत मुसीबत हो जाती है।
उत्तर दिखने की जरूरत ही नहीं है। आपको तो प्रोसेस करना चाहिए, प्रक्रिया करनी चाहिए। उत्तर आएगा। उत्तर पहले देख लिया, तो फिर उत्तर लाने की इतनी जल्दी हो जाती है कि प्रक्रिया करने की सुविधा नहीं रहती। और हम सब उत्तर लिए बैठे हैं। हम सबने किताब उलटा कर देख ली है। या हमारे सब बाप-दादे उलटी किताब ही हमारे हाथ में दे देते हैं; कि पहले उत्तर मिल जाता है, पीछे प्रोसेस का पता चलता है। और कभी प्रोसेस का पता ही नहीं चलता, क्योंकि जिनको उत्तर पता है, वे सोचते हैं, जब उत्तर ही पता है तो प्रोसेस का क्या करना?
आपको पता ही है कि क्रोध बुरा है, आपको पता ही है कि कामवासना बुरी है। अभी आठ दिन पहले एक मित्र आए। उन्होंने कहा कि मैंने आपको अभी गीता में सुना, तो मुझे बहुत अच्छा लगा, इसलिए आया हूं। पहले आपको मैंने कामवासना के ऊपर सुना, तो मुझे इतना बुरा लगा कि मैंने आना छोड़ दिया था। मैंने आना छोड़ दिया था बिल्कुल। गीता सुनी तो बहुत अच्छी लगी, तो मैं आया हूं।
मैंने कहा, कहिए, क्या तकलीफ है?
तो तकलीफ यही है कि कामवासना मन को बुरा सताती है। तो मैंने कहा, मैं आपसे बात न करूंगा, नहीं तो आपको फिर बुरा लगेगा। आप गीता पढ़ो और अपना रास्ता निकालो।
कैसे अदभुत लोग हो! मैंने कहा, दरवाजे के बिल्कुल बाहर हो जाओ और दुबारा यहां मुझसे कामवासना के संबंध में पूछने मत आना। गीता के संबंध में कुछ पूछना हो तो आना। क्योंकि जो अच्छा लगता है, वही पूछो।
कामवासना है समस्या, पर उसके संबंध में जानने में भी डर लगता है।
इसलिए जो जनाए, वह दुश्मन मालूम पड़ता है। गीता से तो कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। मजे से सुनो और घर चले जाओ। वह जिंदगी को कहीं छूती नहीं। उससे अपना कोई लेना-देना नहीं। बाहर हम खड़े रहते हैं, गीता की धारा अलग बह जाती है।

मैंने कहा कि तुम आदमी कैसे हो? और यह एक आदमी का मामला नहीं है। न मालूम कितने लोगों को मैं जानता हूं, जिनका प्रश्न वह... । लेकिन इसकी स्वीकृति भी तो नहीं होनी चाहिए मन में कि यह मेरा प्रश्न है।
इसको वह मुझसे कहने लगे कि यह प्राइवेट मैं आपसे पूछता हूं, निजी आपसे पूछता हूं, इसको पब्लिक में कहने की कोई जरूरत नहीं है।
मैंने कहा, जिस तरह तुम्हें निजी यह सवाल है, ऐसा सबका यह निजी सवाल है। और सभी पब्लिक में गीता सुनना चाहते हैं। तो निजी मैं एक-एक आदमी को क्या और कहां बताता फिरूंगा? और जो असली तुम्हारी समस्या है, वह तुम उठाने तक में डरते हो। और जो तुम्हारी समस्या नहीं है, उसको सुनने में मजा लेते हो। तो हजारों साल बीत जाते हैं और आदमी वैसे का वैसा बना रहता है।
अपनी समस्या को पकड़ें, निष्कर्ष पहले से लेकर मत जाएं। निष्कर्ष से
जो शुरू करेगा, वह निष्कर्ष पर कभी नहीं पहुंचता। समस्या से शुरू करें। निष्कर्ष हमें पता नहीं है, यह मान कर शुरू करें। हमें मालूम नहीं कि क्रोध अच्छा है कि बुरा है, सुंदर है कि असुंदर है--है। अब हम इसे पूरा जान लें कि क्या है?
और बड़े मजे की बात यह है, जो पूरा जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है। और
जो मुक्त होना चाहता है, वह पूरा जान नहीं पाता। यह जो कठिनाई है, यह ख्याल में ले लें। जो मुक्त होना चाहता है, उसने निष्कर्ष पहले ले लिया कि बुरा है। अब वह प्रक्रिया से गुजरने का सवाल ही नहीं। वह कहता है, वह तो मुझे मालूम ही है कि बुरा है; अब इतना ही बता दीजिए कि मुक्त कैसे हो जाऊं! और मुक्त होने की एक ही प्रक्रिया है, पूर्ण बोध। और वह कहता है कि मुझे तो बोध है ही कि बुरा है। तब वह पूर्ण बोध की प्रक्रिया से नहीं गुजरता।
तो आप प्रक्रिया से गुजरें, उसका पूर्ण बोध लें। दूसरे के उधार निष्कर्ष से बचें। बुद्ध कहते हों, महावीर कहते हों--कोई भी कहता हो--मैं कहता हूं, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि बुरा है या भला है। आप निष्कर्ष न लें। आप बिना निष्कर्ष के, निष्पक्ष, अनप्रेज्युडिस्ड, बिना किसी धारणा के भीतर प्रवेश कर जाएं। और देखें कि क्या है? क्या है क्रोध? क्रोध से ही जानें कि क्रोध क्या है; आप पूर्व-धारणा को उस पर न थोपें। और जिस दिन आप क्रोध को उसकी परिपूर्ण नग्नता में, उसकी परिपूर्ण विकरालता में, उसकी परिपूर्ण आग में और जहर में जान लेंगे, उसी दिन आप पाएंगे, आप अचानक बाहर हो गए हैं, क्रोध है ही नहीं।
और ऐसा किसी भी वृत्ति के साथ किया जा सकता है। यह वृत्ति से कोई फर्क नहीं पड़ता, प्रक्रिया एक ही होगी। बीमारी एक ही है, उसके नाम भर अलग हैं।

ताओ उपनिषद, भाग एक
छटवां प्रवचन

विपरीत स्वरों का संगीत

Chapter 2 : Sutra 2

So it is that existence and non–existence give birth the one to the idea of the other; that difficulty
and ease produce the one the idea of the other;
that length and shortness fashion out the one the figure of the other; that the idea of height and lowness arise from the contrast of the one with
the other; that the musical notes and tones
become harmonious through the relationship of
one with another; and that being before and
behind give the idea of one following another.

अध्याय 2 : सूत्र 2

इस प्रकार अस्तित्व और अनस्तित्व मिल कर एक-दूसरे के
भाव को जन्म देते हैं; असरल और सरल एक-दूसरे के भाव
की सृष्टि करते हैं; विस्तार और संक्षेप एक-दूसरे की आकृति
का निर्माण करते हैं; उच्चता और नीचता का भाव एक-दूसरे
के विरोध पर अवलंबित हैं; संगीत के स्वर और ध्वनियां परस्पर संबद्ध होकर ही समस्वर बनती हैं, और पूर्वगमन एवं अनुगमन से ही क्रम के भाव की उत्पत्ति होती है।

जो विरोधी है, जो विपरीत है, वही संगी भी है, वही साथी भी। जो शत्रु है,
जो दुश्मन है, वही मित्र भी है, वही सगा भी।
लाओत्से विरोधी को विरोधी नहीं देखता, दूर को दूर नहीं मानता, विपरीत
को विपरीत नहीं। लाओत्से का कहना है, सब दूरियां निकटता से ही तौली जाती हैं। और सब निकटताएं दूरियों का ही छोटा रूप हैं। शुभ्र रेखा खींचनी हो, तो अंधेरी, काली पृष्ठभूमि की जरूरत पड़ती है।
इसलिए जो कहता है कि सफेद काले के विरोध में है, वह गलत कहता है; क्योंकि सफेद को उभार कर दिखाने के लिए काले का ही उपयोग करना पड़ता है। जो कहता है कि सुबह रात को नष्ट कर देती है, वह भ्रांत है; सच तो यही है कि सुबह रात से ही जन्म पाती है।
जिन चीजों को हम विरोध में देखते हैं, लाओत्से उन्हें संयोग में देखता है। पूरा गेस्टाल्ट, देखने का ढंग लाओत्से का, हमसे विपरीत है। हम जहां चीजों में तनाव देखते हैं, वहां लाओत्से आकर्षण देखता है। जहां हम देखते हैं सुस्पष्ट रूप से कि कोई हमें मिटाने का उपाय कर रहा है, वहां लाओत्से कहता है, उसके बिना हम हो ही न सकेंगे। वह जो हमें मिटाने का उपाय कर रहा है, उसके बिना हमारे होने की कोई संभावना नहीं है। इसे वह उदाहरण के लिए एक-एक चीज में लेता है।
वह कहता है, अगर दो न होंगे, तो एक के होने की कोई जगह न रह जाएगी। गणित
का एक उदाहरण वह ले रहा है। गणितज्ञ स्वीकार करते हैं कि अगर हम एक की संख्या को बचाना चाहें, तो हमें दो के बाद की सारी संख्याएं बचानी पड़ेंगी। अगर हम दो के बाद की सारी संख्याओं को मिटा डालें, तो एक में कोई भी अर्थ न रह जाएगा। एक में जो भी अर्थ है, वह दो के कारण ही है।
सोचें हम, अगर एक अकेला आंकड़ा हो हमारे पास, तो उसमें क्या अर्थ होगा? व्हाट इट विल मीन? उसमें कोई भी अर्थ नहीं होगा। वह अर्थहीन होगा। उसमें जो अर्थ आता है, वह तो दो-तीन-चार, वह नौ तक जो फैला हुआ विस्तार है, उसी से

आता है। अगर हम एक के बाद की सारी संख्याएं हटा दें, तो एक अर्थहीन हो जाएगा।
लाओत्से कहता है, एक दो से अलग नहीं है, दो का ही हिस्सा है। वह कहता है, अगर हम ऊंचाई को हटा दें, तो नीचाई क्या होगी? अगर हम पर्वत-शिखरों को मिटा दें, तो खाइयां कहां बचेंगी? कैसे बचेंगी? यद्यपि खाइयां विपरीत मालूम पड़ती हैं पर्वत के शिखर से। पर्वत का शिखर मालूम होता है आकाश को छूता हुआ; खाइयां मालूम होती हैं पाताल को छूती हुई। पर लाओत्से कहता है, खाइयां बनती हैं पर्वत के निकट पर्वत के ही कारण। असल में, खाई पर्वत के शिखर का ही दूसरा हिस्सा है, उसका ही दूसरा पहलू है। एक को हम मिटाएंगे, दूसरा मिट जाएगा। अगर हम शिखर बचाना चाहें, खाइयां मिटाना चाहें, तो शिखर न बचेंगे।
हम सदा ऐसा ही देखते हैं कि खाई उलटी है, शिखर उलटा है।
लाओत्से कहता है, खाई ही शिखर का आधार है; शिखर ही खाई का जन्मदाता है।
वे दोनों संयुक्त हैं; उन्हें अलग करने का उपाय नहीं है। लाओत्से कहता है, जिसे हम अलग न कर सकें, उसे विपरीत क्यों कहें? जिसे हम अलग न कर सकें, उसे विपरीत क्यों कहें?
नेपोलियन का एक जन्मजात शत्रु मर गया था। तो नेपोलियन की आंख में आंसू आ गए। पास कोई मित्र बैठा था, उसने पूछा कि आपको प्रसन्न होना चाहिए कि आपका जन्मजात शत्रु मर गया!
नेपोलियन ने कहा, यह मैंने कभी सोचा ही नहीं था। लेकिन आज जब मेरा जन्मजात शत्रु मर गया है, जिससे मेरी सदा की शत्रुता थी और जिससे कभी मित्रता की कोई आशा न थी, तो आज जब वह मर गया है, तब मैं पाता हूं कि मेरा कुछ हिस्सा कम हो गया। अब मैं वही कभी न हो सकूंगा, जो उसकी मौजूदगी में था।
नेपोलियन को यह जो प्रतीति है, यह लाओत्से की धारणा को स्पष्ट करेगी। नेपोलियन कहता है, मेरे शत्रु के मर जाने से मुझमें भी कुछ मर गया, जो उसकी बिना मौजूदगी के अब कभी न हो सकेगा। मैं कुछ कम हो गया। मुझमें कुछ था, जो उसी की वजह से था। आज वह नहीं है, तो मेरे भीतर भी वह बात नहीं रह गई।
तो इसका तो यह अर्थ हुआ कि शत्रु भी आपको बनाते हैं, मित्र ही नहीं। और शत्रुओं के बिना भी आप कम हो जाएंगे, खाली हो जाएंगे।
लाओत्से कहता है, जगत में विपरीत कुछ भी नहीं है; विपरीत केवल दिखाई पड़ता है।
बीमारी स्वास्थ्य के विपरीत नहीं है। और अगर हम मेडिकल साइंस से पूछें, तो वह भी कहेगी कि बीमारी भी स्वास्थ्य का ही हिस्सा है। बीमार होने के लिए भी स्वस्थ होना जरूरी है। हम स्वस्थ हुए बिना बीमार भी नहीं हो सकते। इसलिए मरा हुआ आदमी बीमार नहीं हो सकता। और इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि एक उम्र के बाद मौत भी मुश्किल हो जाती है। क्योंकि मरने के लिए भी जितना स्वास्थ्य चाहिए, अगर उतना भी आदमी के पास न बचा हो, तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। अक्सर अस्सी और नब्बे के पार मौत बड़ी सरक-सरक कर आती है।
लुकमान ने कहा है कि अगर आदमी कभी बीमार न पड़ा हो, तो पहली ही बीमारी में समाप्त हो जाता है। क्योंकि वह इतना जीवंत होता है कि पहली बीमारी ही मौत बन सकती है। जो आदमी बहुत-बहुत बीमार पड़ा हो, वह इतनी जल्दी नहीं मरता है। मरने के लिए, तत्क्षण मर जाने के लिए, बहुत जीवंत स्वास्थ्य चाहिए। ये उलटी बातें दिखाई पड़ती हैं। हम तो स्वास्थ्य के विपरीत देखते हैं बीमारी को। लेकिन अगर हम भीतर से भी देखें, तो भी हमें पता चलेगा कि बीमारी स्वास्थ्य की रक्षा का उपाय है। जब आप बीमार होते हैं, तो आपका शरीर स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जो कठिन चेष्टा कर रहा है, वही आपकी बीमारी है। एक आदमी को बुखार आ गया है। बुखार कुछ भी नहीं है सिवाय इसके कि शरीर स्वस्थ रहने की इतनी चेष्टा कर रहा है कि उत्तप्त हो गया है, गर्म हो गया है; इतना लड़ रहा है स्वस्थ होने के लिए कि बीमार हो गया है।
अस्तित्व में बीमारी और स्वास्थ्य एक ही चीज के दो हिस्से हैं। और जितने भी विरोध हैं, जितनी भी विपरीतताएं हैं, लाओत्से के हिसाब से वे कोई भी विपरीत नहीं हैं। अगर कोई आदमी सोचता हो कि अपमानित मैं कभी न होऊं, तो

वह ध्यान रखे, वह सम्मानित कभी न हो सकेगा। जिसे सम्मानित होना है, उसे अपमानित होने की तैयारी रखनी पड़ती है। और जो सम्मानित होता है, वह बहुत तरह के अपमान से गुजर कर ही हो पाता है। तो लाओत्से कहता है कि अगर किसी को अपमानित न होना हो, तो उसे एक काम करना चाहिए, सम्मानित होने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। फिर उसे कोई अपमानित न कर सकेगा।
लाओत्से ने कहा है कि मैं सदा वहां बैठा, जहां से मुझे कोई उठा न सकता था। मैं आखिरी जगह बैठा; जहां लोग जूते उतारते थे, वहां मैं बैठा। क्योंकि कोई अगर मुझे उठा कर भी फेंकता, तो उससे और ज्यादा फेंकने को कोई जगह न थी। मेरा कभी कोई अपमान नहीं कर सका है, लाओत्से ने कहा है, क्योंकि मैंने कभी सम्मान नहीं चाहा। सम्मान चाहा कि अपमान आएगा। अपमान की तैयारी न हो, तो सम्मान का कोई उपाय नहीं है। जो ऊंचा होना चाहेगा, वह नीचे गिरेगा। और जिसे नीचे गिरने में डर हो, उसे ऊंचे उठने की कोशिश में नहीं पड़ना चाहिए। और जिसे नीचे गिरने की हिम्मत हो, वह मजे से ऊपर उठ सकता है।
लाओत्से यह कह रहा है कि वह जो विपरीत है, उससे हम बचना चाहते हैं, तो
हम भूल में पड़ेंगे, तो हम कठिनाई में पड़ जाएंगे। या तो दोनों से बच जाओ, या दोनों की तैयारी हो। अस्तित्व द्वैत है। जिस अस्तित्व को हम जानते हैं, जहां हम जीते हैं, जो हमारे मन का जगत है, वह द्वैत है। वहां प्रत्येक चीज ऐसे ही सम्हाली गई है, जैसे कोई आर्किटेक्ट किसी दरवाजे पर आर्क बनाता है। असल में, आर्किटेक्ट का नाम ही आर्क बनाने से शुरू हुआ। जो आर्क बना सकता है, वही आर्किटेक्ट है। दरवाजे पर जो आर्क होती है, उसकी कला सिर्फ इतनी है कि हम उसमें विपरीत ईंटें लगा देते हैं। गोल--आधी ईंटें एक तरफ रुख; आधी ईंटें दूसरी तरफ रुख। कुछ और नहीं होता। लेकिन विपरीत ईंटें बड़े से बड़े भवन को सम्हाल लेती हैं ऊपर। विपरीत ईंटें एक-दूसरे को दबाती हैं, एक-दूसरे से संघर्षरत हो जाती हैं। उनके संघर्ष में शक्ति उत्पन्न होती है; वही शक्ति पूरे भवन को सम्हाल लेती है।
कोई सोच सकता है कि जब विपरीत ईंटों में इतनी शक्ति है, तो हम एक ही रुख वाली, एक ही तरफ को झुकी हुई ईंटें लगा दें तो और भी अच्छा होगा। लेकिन तब आर्क नहीं बनेगा और भवन उठेगा नहीं। विपरीत ईंटों से बनता है तोरण-द्वार। फिर कितनी ही बड़ी भवन की क्षमता और शक्ति और वजन को उठाया जा सकता है।
पूरे जीवन का द्वार, पूरे जीवन का आधार विपरीत पर है। जहां भी कोई चीज है, तत्काल उसको सम्हालने वाली विपरीत चीज वहां खड़ी है। चाहे स्त्री हो और पुरुष; चाहे ऋण विद्युत हो और धन विद्युत; चाहे आकाश हो और पृथ्वी; चाहे अग्नि हो या जल--चारों तरफ जीवन का सारा आयोजन विपरीत को एक-दूसरे के विपरीत खड़ा करके, सहारा देकर निर्माण का है। विपरीत सहयोगी है। वे जो ईंटें उलटी लगी हैं, दुश्मन नहीं हैं, वे मित्र हैं। उनकी विपरीतता ही आधार है।
इसलिए लाओत्से कुछ उदाहरण लेता है। वह कहता है, सो इट इ.ज दैट एक्झिस्टेंस एंड नॉन-एक्झिस्टेंस गिव बर्थ दि वन टु दि आइडिया ऑफ दि अदर। अस्तित्व अनस्तित्व का ख्याल देता है; अनस्तित्व अस्तित्व का ख्याल देता है। ऐसा समझें, जीवन मृत्यु का ख्याल देती है, मृत्यु जीवन का ख्याल। न तो हम सोच सकते हैं, अस्तित्व कभी ऐसा होगा जब अनस्तित्व न रह जाए। न हम सोच सकते हैं कि जीवन कभी ऐसा होगा कि मृत्यु न रह जाए। जीवन होगा तो मृत्यु होगी ही। मृत्यु के बिना जीवन के होने का कोई भी उपाय नहीं।
यह लाओत्से क्यों कहता है? यह इसलिए कहता है कि अगर यह समझ में आ जाए,
तो आपके मन में एक अपूर्व स्वीकृति का भाव आ जाएगा। तब आप मृत्यु से भयभीत न रहेंगे। तब आप जानेंगे, वह जीवन का अनिवार्य अंग है। तब मृत्यु को भी स्वीकार और स्वागत करने की क्षमता होगी। तब आप जानेंगे, जब जीवन को चाहा, तभी मृत्यु भी चाह ली गई है। जब मैंने जीवन की तरफ पैर उठाए, तब मैं मृत्यु की तरफ चला ही गया हूं। तब आप जानेंगे कि अकेले जीवन को बचाने की बात मूढ़तापूर्ण है, स्टुपिड है। जीवन बचेगा ही मृत्यु के साथ। अगर मैं चाहता हूं जीवन, तो मृत्यु को भी चाहूं। और अगर मैं नहीं चाहता हूं मृत्यु को, तो जीवन को भी न चाहूं।

और दोनों ही स्थितियों में अपूर्व ज्ञान उत्पन्न होता है। या तो कोई व्यक्ति जीवन और मृत्यु को दोनों ही चाहना छोड़ दे, तो भी परम वीतरागता को उपलब्ध हो जाता है। और या जीवन और मृत्यु को एक साथ चाह ले और भेंट कर ले, तो भी परम वीतरागता को उपलब्ध हो जाता है। या तो द्वंद्व छोड़ दिया जाए, या द्वंद्व पूरा का पूरा अंगीकार कर लिया जाए, तो आप द्वंद्व के बाहर हो जाते हैं।
लेकिन हमारा मन ऐसा होता है, एक को बचा लें और दूसरे को छोड़ दें। मन कहता है, जीवन बचाने जैसा है, मृत्यु छोड़ देने जैसी है। मन कहता है, प्रेम बचाने जैसा है, घृणा छोड़ देने जैसी है। मन कहता है, मित्र बच जाएं, शत्रु छूट जाएं। मन कहता है, सम्मान मिले, अपमान न मिले। मन कहता है, स्वास्थ्य तो हो, बीमारी कभी न आए। मन कहता है, जवानी तो हो, बुढ़ापा न आए। मन कहता है, सुख तो बचे, दुख से बचना हो जाए।
और जब मन ऐसे चुनाव करता है, तभी जीवन एक संकट और एक चिंता और एक व्यर्थ का तनाव हो जाता है। इस दो में से एक को चुनना ही दुख है। या तो दोनों को छोड़ दें या दोनों को स्वीकार कर लें, तो परम आनंद की और परम तृप्ति की अवस्था पैदा होती है।
लाओत्से यह दिखाना चाहता है कि तुम चाहे कुछ भी करो, चाहे तुम पकड़ो, चाहे तुम छोड़ो, द्वंद्व को पृथक-पृथक नहीं किया जा सकता। वे संयुक्त हैं। संयुक्त भी हम कहते हैं भाषा में, वे एक ही हैं। वे एक ही चीज के दो छोर हैं। ऐसा ही, जैसे कोई आदमी सोच ले कि श्वास मैं भीतर तो ले जाऊं, लेकिन बाहर न निकालूं। तो वह आदमी मरेगा। क्योंकि जिसे हम बाहर की श्वास कहते हैं, बाहर जाने वाली श्वास, वह और भीतर जाने वाली श्वास एक ही श्वास के दो नाम हैं। या तो दोनों को ही छोड़ दो, या दोनों को बचा लो। एक को बचाने और एक को छोड़ने की सुविधा नहीं है। लाओत्से ये सारे उदाहरण इसलिए लेता है।
वह कहता है, "अस्तित्व, अनस्तित्व मिल कर एक-दूसरे के भाव को जन्म देते हैं।"
वे संगी हैं, साथी हैं, शत्रु नहीं। एक-दूसरे के विपरीत नहीं, जोड़ा हैं।
"असरल और सरल एक-दूसरे के भाव की सृष्टि करते हैं।"
अगर कोई सरल होना चाहे, चेष्टा करे, जैसा कि साधु करते हैं सरल होने की चेष्टा, और इसलिए साधु जितनी सरल होने की चेष्टा करते हैं, उतने ही जटिल और कांप्लेक्स हो जाते हैं। सरल होने की कोई चेष्टा करेगा, तो जटिल हो जाएगा। हां, यह हो सकता है कि सरल होने में वह दो वस्त्र बचा ले, लंगोटी बचा ले, एक बार भोजन करने लगे, झाड़ के नीचे सोने लगे, यह सब हो सकता है, लेकिन फिर भी सरलता नहीं होगी। झाड़ के नीचे सोना इतना प्रयोजन और इतनी आयोजना से है, झाड़ के नीचे सोना इतनी व्यवस्था और अनुशासन से है, झाड़ के नीचे सोना इतने अभ्यास से है कि इस अभ्यास के पीछे जो चित्त है, वह जटिल हो जाएगा, वह कठिन हो जाएगा।
सरलता का अर्थ ही यही है कि महल के भीतर भी व्यक्ति ऐसे ही सो जाए, जैसे झाड़ के नीचे।
हमें एक तरह की कठिनता दिखाई आसानी से पड़ जाती है। अगर हम एक सम्राट को, जो महलों में रहने का आदी रहा हो, कीमती वस्त्र जिसने पहने हों, आज अचानक उसे लंगोटी लगा कर खड़ा कर दें, तो उसे बड़ी कठिनाई होगी। लेकिन कभी आपने सोचा कि जो लंगोटी लगाने का आदी होकर झाड़ के नीचे बैठा रहा हो, उसे आज हम सिंहासन पर बैठा कर कीमती वस्त्र पहना दें, तो कठिनाई कुछ कम होगी? उतनी ही कठिनाई होगी। ज्यादा भी हो सकती है! ज्यादा भी हो सकती है, क्योंकि महल में रहने के लिए विशेष अभ्यास नहीं करना पड़ता, झाड़ के नीचे रहने के लिए विशेष अभ्यास करना पड़ता है। सुंदर वस्त्र पहनने के लिए कोई आयोजना और साधना नहीं करनी पड़ती, निर्वस्त्र होने के लिए साधना और आयोजना करनी पड़ती है। तो वह जो निर्वस्त्र खड़ा है, उसे अगर अचानक हम वस्त्र दे दें, तो हमारे वस्त्रों से वह बड़ा ही कष्ट पाएगा। उसके भीतर कठिनाई होगी। डायोजनीज, एक फकीर, सुकरात से मिलने गया था। सुकरात बहुत सरल व्यक्ति था--वैसा सरल व्यक्ति, जिसने सरलता को साधा नहीं है। क्योंकि जिसने साधा,

वह तो जटिल हो गया। सरलता भी साध कर लाई जाए, कल्टीवेट करनी पड़े, तो जटिल हो जाती है।
सुकरात सरल व्यक्ति था। उसने सरलता को कभी साधा नहीं था। उसने असरलता
के विपरीत किसी सरलता को कभी पकड़ा नहीं था। डायोजनीज जटिल था। उसने सरलता को साधा था। वह अक्सर नग्न रहता, या अगर कभी कपड़े भी पहनता, तो चिथड़ों से जोड़ कर पहनता। अगर कभी नए कपड़े उसे कोई भेंट कर देता, तो उनको पहले काट कर, टुकड़े करवा कर, पुनः जुड़वा कर, तभी उन्हें पहनता। अगर कोई नए कपड़े भेंट कर देता, तो पहले उन्हें गंदे करता, सड़ाता, खराब करता, फिर चिथड़े बनाता, फिर उन्हें जोड़ता। सरलता का अभ्यासी था।
सुकरात को मिलने आया। सुकरात से उसने कहा, तुम्हें इन इतने सुंदर वस्त्रों में देख कर मुझे लगता है, कैसे तुम साधु हो? कैसी तुम्हारी सरलता? सुकरात हंसने लगा और उसने कहा, हो सकता है, सरल मैं न होऊं; हो सकता है, तुम जो कहते हो, वह ठीक है।
डायोजनीज नहीं समझ पाया होगा कि सरल व्यक्ति का यह लक्षण है। तो डायोजनीज ने कहा कि तुम खुद ही स्वीकार करते हो? यही तो मैंने लोगों से कहा था कि सुकरात सरल आदमी नहीं है। तुम खुद भी स्वीकार करते हो, मुहर लगाते हो मेरी बात पर? सुकरात ने कहा, तुम कहते हो, तो इनकार करने का मैं कोई कारण नहीं पाता हूं; असरल ही होऊंगा। डायोजनीज खिलखिला कर हंसने लगा। जब वह उतर रहा था नीचे, तो सुकरात का शिष्य प्लेटो उसे द्वार पर मिला। उसने प्लेटो से कहा कि सुनो, तुम्हारे गुरु ने लोगों के सामने स्वीकार की है यह बात कि वह सरल नहीं है।
प्लेटो ने नीचे से ऊपर तक देखा और कहा कि तुम्हारे फटे चिथड़ों में जो छेद हैं, उनमें से सिवाय अहंकार के और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। तुम कृपा करके नंगे कभी मत होना, नहीं तो सिवाय अहंकार के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। तुम्हारे छेद में से सिर्फ अहंकार ही दिखाई पड़ता है। प्लेटो ने कहा, तुम समझ ही नहीं पाए, यही तो सरल आदमी का लक्षण है कि तुम उससे कहने जाओ कि तुम सरल नहीं हो तो वह स्वीकार कर लेगा। और तुम्हारी यह घोषित सरलता बड़ी असरल है, बहुत जटिल है।
सरलता अगर सचेष्ट है, तो जटिल हो जाती है। और जटिलता भी अगर निश्चेष्ट है, तो सरल हो जाती है।
असली सवाल द्वंद्व के बीच चुनाव का नहीं है। जब भी हम दो में से किसी
एक को चुनते हैं, तो बड़ी मजे की बात यह है, कि उससे विपरीत तत्काल मौजूद हो जाता है। अगर हमने अहिंसा साधी, तो हमारे भीतर हिंसा का तत्व तत्काल मौजूद हो जाता है। इसलिए जो भी अहिंसा साधेगा, वह बहुत सूक्ष्म रूप से हिंसक हो जाएगा। उसकी हिंसा को पहचानना मुश्किल होगा, लेकिन वह हिंसक हो जाएगा। जो ब्रह्मचर्य साधेगा, वह बहुत गहरे तल पर कामातुर हो जाएगा। विपरीत के बिना हम कुछ साध ही नहीं सकते। क्योंकि साधने के लिए विपरीत से लड़ना पड़ता है। और मजे की बात है, जिससे हम लड़ते हैं, उस जैसे ही हम हो जाते हैं। एक बार यह तो हो सकता है कि मित्र का आप पर कोई प्रभाव न पड़े, लेकिन यह नहीं हो सकता कि शत्रु का प्रभाव न पड़े। मित्र से तो आप अप्रभावित भी रह सकते हैं, लेकिन शत्रु से अप्रभावित रहना असंभव है। शत्रु का तो संस्कार पड़ेगा ही। अगर किसी ने तय किया कि मैं हिंसा का शत्रु हूं, तो वह कितनी ही अहिंसा साध ले, भीतर गहरे में वह हिंसक ही बना रहेगा। और किसी ने अगर निर्णय लिया कि मैं निरहंकारी होकर रहूंगा, अहंकार पोंछ डालूंगा, तो डायोजनीज जैसी हालत होगी; चिथड़ों के छेदों से सिवाय अहंकार के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। लाओत्से कह रहा है, "असरल और सरल एक-दूसरे के भाव की सृष्टि करते हैं।" अगर आपको यह पता चल गया है कि आप सरल हैं, तो आप जानना कि आप असरल हो चुके हैं। अगर आपको यह ख्याल आ गया कि मैं अहिंसक हूं, तो आप जानना कि आपकी हिंसा पुष्ट हो चुकी है। अगर आप कहने लगे कि मैं ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गया हूं, तो आप जानना कि आप अब्रह्मचर्य की खाई में गिर गए हैं। अगर आपने कहीं घोषणा की कि मैंने ईश्वर को पा लिया है, तो आप पक्का समझ लेना कि आपका हाथ ईश्वर पर से छिटक गया है। ये जो घोषणाएं हैं, ये घोषणाएं हम विपरीत के लिए ही तो कर रहे हैं। और विपरीत से बचा नहीं जा सकता। इसलिए सरलता अघोषित होती है। होती है, जिसमें होती है, उसे भी उसका पता नहीं होता।

इसे ऐसा समझें। जब आप स्वस्थ होते हैं, तो आपको स्वास्थ्य का कोई पता नहीं होता। स्वास्थ्य का पता सिर्फ बीमार आदमी को होता है। बड़ी उलटी लगती है बात, पर ऐसा ही सत्य है। अगर आप बिल्कुल स्वस्थ हैं, तो आपको स्वास्थ्य का पता ही नहीं होता। बीमारी खटकती है, तो स्वास्थ्य का पता चलता है। बीमारी दरवाजा ठकठकाती है, तो स्वास्थ्य का पता चलता है। सिर्फ बीमार लोग शरीर के प्रति बोध से भरे होते हैं, स्वस्थ आदमी को शरीर का बोध नहीं होता। इसलिए आयुर्वेद में तो स्वस्थ आदमी का लक्षण है विदेह भाव--दि फीलिंग ऑफ बॉडीलेसनेस। वही आदमी स्वस्थ है, जिसे बॉडी का, शरीर का पता नहीं चलता। अगर पता चलता है, तो वह बीमार है।
असल में, जिस हिस्से में आपको पता चलता है, शरीर का वह हिस्सा बीमार होता है। अगर आपको पता चलता है कि पेट है, तो उसका मतलब पेट बीमार है। आपको पता चलता है कि सिर है, तो उसका अर्थ है कि सिर बीमार है। आपको कभी सिर का पता चला है? हेडेक के बिना हेड का कोई पता नहीं चलता। अगर थोड़ा भी पता चलता है, तो उसी मात्रा में हेडेक मौजूद है। स्वास्थ्य तो सहज स्थिति है; उसका कोई पता नहीं चलता।
जिस दिन कोई व्यक्ति सच में सरल हो जाता है, उसे पता ही नहीं चलता कि
वह सरल है। वह इतना सरल हो जाता है कि दूसरे उससे आकर कहें कि तुम असरल मालूम पड़ते हो, तो वह स्वीकार कर लेगा। वह इतना प्रभु को उपलब्ध हो जाता है कि दूसरे उससे आकर कहें कि तुम्हें कुछ पता ही नहीं, तो उसके लिए भी राजी हो जाएगा। वह इतना अहिंसक हो जाता है कि उसे ख्याल ही नहीं होता कि मैं अहिंसक हूं। क्योंकि ख्याल तो सिर्फ हिंसक को ही हो सकता है।
"विस्तार और संक्षेप एक-दूसरे की आकृति का निर्माण करते हैं।"
विस्तार बड़ी बात मालूम पड़ती है, संक्षेप छोटी बात मालूम पड़ती है; ब्रह्मांड बहुत बड़ी बात है और छोटा सा अणु बहुत छोटी बात है। लेकिन अणु- अणु मिल कर ब्रह्मांड का निर्माण करते हैं। अणुओं को हटा लें, ब्रह्मांड शून्य हो जाएगा। बूंद को हटा लें, सागर रिक्त हो जाएगा। हालांकि सागर को कभी पता नहीं कि बूंद ही उसका निर्माण करती है। और अगर बूंद और सागर की चर्चा हो, तो बूंद को सागर स्वीकार भी नहीं करेगा कि तू मुझे निर्माण करती है। यद्यपि बूंद-बूंद ही मिल कर सागर बनता है। सागर बूंदों के जोड़ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और अगर बूंद-बूंद से जुड़ कर सागर बनता है, तो बूंद भी छोटा सागर ही है। बूंद को अन्य कुछ कहना उचित नहीं; छोटा सागर है। तभी तो बूंद-बूंद मिल कर बड़ा सागर बन जाता होगा।
तो अगर हम ऐसा कहें तो भूल न होगी कि बूंद छोटा सागर है, सागर बड़ी बूंद है। यही सत्य के करीब है कि सागर बड़ी बूंद है और बूंद छोटा सागर है। जिसे हम विस्तार कहते हैं, जिसे हम विराट कहते हैं, जिसे हम ब्रह्मांड कहते हैं, वह भी अणु ही है। और जिसे हम अणु कहते हैं, वह भी ब्रह्मांड ही है। उपनिषदों के ऋषियों ने कहा है कि पिंड और ब्रह्मांड में भेद नहीं जाना, छोटे में और बड़े में अंतर नहीं पाया, ना-कुछ और सब कुछ को एक ही जैसा देखा।
लाओत्से कहता है कि यह जो हमें इतना-इतना भेद दिखाई पड़ता है, यह सारा
का सारा भेद भ्रांति है।
अगर हम वैज्ञानिक से पूछें, तो वह भी लाओत्से की इस बात से राजी होगा।
और यह जान कर आप हैरान होंगे कि पश्चिम के कुछ नवयुवक वैज्ञानिक लाओत्से में बहुत उत्सुक हैं। और इस संबंध में भी चिंतना चलती है वैज्ञानिकों में कि क्या कभी लाओत्से को आधार बना कर किसी नए विज्ञान का जन्म हो सकेगा? और एक बहुत कीमती विचारक और गणितज्ञ ने एक किताब लिखी हैः ताओ और विज्ञान।
लाओत्से के विचार से क्या और तरह के विज्ञान का जन्म नहीं होगा?
होगा! क्योंकि पश्चिम का जो विज्ञान निर्मित हुआ है, वह उस यूनानी धारणा के ऊपर खड़ा है, जो विपरीत को स्वीकार करती है। पश्चिम का सारा विज्ञान एरिस्टोटेलियन है, अरस्तू के सिद्धांत पर खड़ा है। और लाओत्से से बड़ा विरोधी अरस्तू का दूसरा नहीं है। अगर हम ठीक से समझें तो दुनिया में दो ही विचार हैंः एक अरस्तू का और एक लाओत्से का। पूरब का सारा विचार

लाओत्से का विचार है और पश्चिम का सारा विचार अरस्तू का। तो इन दोनों के थोड़े भेद को हम ख्याल में ले लें, तो बात आसानी से समझ में आ जाएगी। अरस्तू कहता है कि अंधेरा अंधेरा है, प्रकाश प्रकाश; दोनों विपरीत हैं, दोनों का कोई मिलन नहीं। और वह कहता है, प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या? जलाओ दीया, और अंधेरा मिट जाता है; बुझाओ दीया, और अंधेरा आ जाता है। अंधेरा तब आता है, जब प्रकाश नहीं होता। प्रकाश जब होता है, तब अंधेरा मिट जाता है। तो अरस्तू कहता है कि अंधेरा अंधेरा है, प्रकाश प्रकाश है; दोनों में कोई मेल नहीं। अरस्तू का पूरा सिद्धांत, उसका पूरा का पूरा तर्कशास्त्र एक बुनियाद पर खड़ा है। और वह यह है कि ए इ.ज ए, बी इ.ज बी; एंड ए कैन नॉट बी बी। अ अ है, ब ब है; और अ कभी ब नहीं हो सकता। लाओत्से का पूरा सिद्धांत अगर हम अरस्तू की भाषा में बनाना चाहें तो वह यह है कि ए इ.ज ए एंड आल्सो बी; एंड ए कैन नॉट रिमेन ए विदाउट बिकमिंग बी। अ अ है और ब भी; और अ अ नहीं रह सकता बिना ब बने। अरस्तू का सिद्धांत ठोस धारणा का है; लाओत्से का सिद्धांत तरल, लिक्विड धारणा का है।
लाओत्से कहता है, चीजें इतनी तरल हैं कि अपने विपरीत में बह जाती हैं। खाई शिखर बन जाती है, शिखर खाई बन जाता है। कल जहां खाई थी, आज वहां शिखर है। आज जहां शिखर है, कल वहां खाई हो जाएगी। जीवन मृत्यु बन जाती है, मृत्यु से पुनः जीवन आविष्कृत हो जाता है। जवानी बुढ़ापा बनती जाती है, बूढ़े नए बच्चों में जन्म लेते चले जाते हैं। नहीं, अंधेरा अंधेरा नहीं है, प्रकाश प्रकाश नहीं है। अंधेरा प्रकाश का ही धीमा रूप है, और प्रकाश अंधेरे का ही प्रखर रूप है।
लाओत्से और अरस्तू--ऐसा निर्णायक स्थिति है जगत में।
तो पश्चिम के वैज्ञानिक सोचते हैं इस दिशा में कि अगर कभी लाओत्से को आधार बना कर विज्ञान विकसित हो, तो दूसरा ही डायमेंशन होगा। अभी तो अरस्तू को मान कर विज्ञान विकसित हुआ। पश्चिम का पूरा विज्ञान ग्रीक विचार पर खड़ा है। अरस्तू पिता है। अरस्तू ने जो सिद्धांत दिए, उन्हीं का फैलाव दो हजार साल में हुआ है। अरस्तू और आइंस्टीन अलग-अलग नहीं, एक हीशृंखला के हिस्से हैं। तर्क वही है; सोचने का ढंग वही है।
लाओत्से तो बिल्कुल विपरीत है। अगर लाओत्से कभी विज्ञान का आधार बने
तो दूसरी ही साइंस पैदा होगी, जिसका हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि उसकी दृष्टि क्या होगी। अगर--इसको उदाहरण से समझें--अगर अरस्तू की बात सही है, तो हम मृत्यु को नष्ट करके जीवन को बचा सकेंगे। बल्कि जितना हम मृत्यु को नष्ट करेंगे, जीवन उतना ही ज्यादा बचेगा। और अगर हम किसी दिन मृत्यु को बिल्कुल ही नष्ट कर दें, तो परम जीवन बचेगा, जीवन ही जीवन बचेगा। लाओत्से के हिसाब से स्थिति उलटी है। अगर हमने मृत्यु को नष्ट किया, तो हम जीवन को नष्ट कर देंगे। और अगर मृत्यु बिल्कुल नष्ट हो गई, तो जीवन बिल्कुल शून्य हो जाएगा।
अब इसे हम देखें कि वस्तुतः घटना क्या घटी है? यह बड़े मजे की बात है कि हमने जितनी बीमारियां नष्ट कीं, आदमी का स्वास्थ्य उतना कम हुआ है। आदमी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं हुआ है बीमारियां घटने से। लाओत्से के जमाने का आदमी जितना स्वस्थ था, उतने स्वस्थ हम नहीं हैं। हालांकि लाओत्से के जमाने में बीमारियों से लड़ने के इतने उपाय नहीं थे, जितने हमारे पास हैं। आज भी जंगल का आदिवासी है, उसके पास बीमारी से लड़ने के बहुत उपाय नहीं हैं। बीमारियां बहुत हैं, उपाय बिल्कुल नहीं हैं। स्वस्थ वह हमसे बहुत ज्यादा है। और स्वास्थ्य के उसके इतने प्रमाण हैं कि हैरानी होती है। अफ्रीकी जंगल में आज भी जो असभ्य कौमें हैं, उनके शरीर पर बनाया गया कैसा भी घाव बिना किसी इलाज के अड़तालीस घंटे में भर जाता है। बिना किसी इलाज के! कुल्हाड़ी मार दी है पैर पर, अड़तालीस घंटे में घाव भर जाएगा। वैज्ञानिक कहते हैं कि उनका स्वास्थ्य अपूर्व है। वही स्वास्थ्य की इतनी ऊर्जा, वही वाइटेलिटी चौबीस घंटे में किसी भी तरह के घाव को भर देती है--बिना किसी इलाज के! और या जो इलाज हैं, वे बिल्कुल इलाज नहीं हैं। कोई पत्ता बांध लिया है, कुछ कर लिया है, उससे कोई लेना-देना नहीं है। उसका कोई साइंटिफिक संबंध नहीं है, पत्ते से उस घाव के भरने का। पत्ता तो सिर्फ बहाना है, शरीर ही घाव को भर लेता है।

अफ्रीका के जंगल के आदिवासी के पास बीमारियां बहुत हैं चारों तरफ; इलाज का कोई उपाय नहीं है, मेडिसिन की कोई समझ नहीं है, कोई मेडिकल कालेज नहीं है, कोई चिकित्सक नहीं है; फिर भी स्वास्थ्य अपूर्व है।
लाओत्से सही हो सकता है। लाओत्से कहता है, तुम जितना बीमारियां खत्म करने में लगोगे, उतना ही तुम स्वास्थ्य भी समाप्त कर लोगे। क्योंकि यह जगत द्वैत पर निर्भर है, तुम एक तरफ की ईंटें गिराओगे, दूसरी तरफ की विपरीत ईंटें तत्काल गिर जाएंगी। और अब पश्चिम का वैज्ञानिक भी इस पर सोचने लगा है कि लाओत्से की बात में सच्चाई हो सकती है।
कहानी है पुरानी कि लाओत्से को मानने वाला एक बूढ़ा अपने जवान बेटे के साथ--बूढ़े की उम्र है कोई नब्बे वर्ष--अपने जवान बेटे के साथ, दोनों अपने बगीचे में, जहां बैल या घोड़े जोतना चाहिए, पानी के मोट में दोनों जुत कर और पानी खींच रहे हैं। कनफ्यूशियस वहां से गुजरता है। कनफ्यूशियस और लाओत्से में वैसा ही विपरीत भेद है, जैसा अरस्तू और लाओत्से में। कनफ्यूशियस एरिस्टोटेलियन है और उसके सोचने का ढंग अरस्तू जैसा है। इसलिए पश्चिम कनफ्यूशियस को बहुत सम्मान दिया पिछले तीन सौ वर्षों में। लाओत्से का सम्मान अब बढ़ रहा है, अब ख्याल में आया है, क्योंकि विज्ञान बड़ी अजीब हालत में पड़ गया और बड़ी मुश्किल में पड़ गया।
कनफ्यूशियस गुजरता है बगीचे के पास से। देखता है, नब्बे साल का बूढ़ा, अपने तीस साल के जवान बेटे को, दोनों जुते हैं, पसीने से तरबतर हो रहे हैं, पानी खींच रहे हैं। कनफ्यूशियस को दया आई। उसने कहा, पागल, तुम्हें पता नहीं मालूम होता है। बूढ़े के पास जाकर उसने कहा कि तुम्हें पता है कि अब तो शहरों में हमने घोड़ों से या बैलों से पानी खींचना शुरू कर दिया है! तुम क्यों जुते हुए हो इसके भीतर?
उस बूढ़े ने कहा, जरा धीरे कहो, मेरा जवान बेटा न सुन ले। कनफ्यूशियस बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, जरा थोड़ी देर से आना, जब मेरा बेटा घर भोजन करने चला जाए।
जब बेटा चला गया, कनफ्यूशियस वापस आया और उसने कहा, तुमने बेटे को क्यों न सुनने दिया?
उस बूढ़े ने कहा कि मैं नब्बे साल का हूं और अभी तीस साल के जवान से लड़ सकता हूं। लेकिन अगर मैं अपने बेटे को घोड़े जुतवा दूं, तो नब्बे साल की उम्र में मेरे जैसा स्वास्थ्य उसके पास फिर नहीं होगा। घोड़ों के पास होगा, मेरे बेटे के पास नहीं होगा। यह बात तुम मत कहो। मेरा बेटा सुन ले तो उसका जीवन नष्ट हो जाए। हमें पता चल गया है, हमें पता चल गया है कि शहरों में घोड़े जुतने लगे हैं। और हमें यह भी पता चल गया है कि मशीनें भी बन गई हैं जो पानी को कुएं से खींच लें। और हमारा बेटा चाहेगा कि मशीनों से खींच ले। लेकिन जब मशीनें कुएं से पानी खींचेंगी, तो बेटा क्या करेगा? उसके शरीर का क्या होगा? उसके स्वास्थ्य का क्या होगा?
हम एक तरफ जो करते हैं, तत्काल उसका दूसरी तरफ परिणाम होता है। और लाओत्से सही है, तो परिणाम बहुत भयंकर होता है।
उदाहरण के लिए, हम गहरी नींद सोना चाहते हैं। तो जो आदमी गहरी नींद सोना चाहता है, वह विश्राम का प्रेमी है। और जो विश्राम का प्रेमी है, वह श्रम न करेगा। और जो श्रम न करेगा, वह गहरी नींद न सो सकेगा। लाओत्से कहता है, श्रम और विश्राम संयुक्त हैं। अगर तुम विश्राम चाहते हो, तो गहरा श्रम करो; इतना श्रम करो कि विश्राम उतर आए तुम्हारे ऊपर।
लेकिन हम अरस्तू के ढंग से सोचेंगे, तो विश्राम और श्रम तो विपरीत हैं। अगर मैं विश्राम का प्रेमी हूं और गहरी नींद लेना चाहता हूं, तो मैं दिन भर आराम से बैठा रहूं। लेकिन जो दिन भर आराम से बैठा रहेगा, रात का आराम उसका नष्ट हो जाएगा। क्योंकि विश्राम के लिए श्रम के द्वारा अर्जन करना पड़ता है। इट हैज टु बी अर्न्ड। विश्राम में जाना है, तो श्रम में अर्जन करना पड़ेगा। और या फिर बिना विश्राम के राजी रहना पड़ेगा।
तो यह बड़े मजेदार घटना घटती है कि जो विश्राम का प्रेमी है, वह दिन भर विश्राम करता है, रात की नींद खो देता है। और जितनी रात की नींद खोता है, दूसरे दिन उतना ही विश्राम करता है कि अब नींद की कमी पूरी कर ले। जितनी

कमी पूरी करता है, उतनी रात की नींद नष्ट होती चली जाती है। एक दिन वह पाता है, एक चक्कर में पड़ गया है, जहां विश्राम असंभव हो जाता है।
लाओत्से कहता है, विश्राम चाहते हो तो उलटी तरफ जाओ, श्रम करो। क्योंकि श्रम और विश्राम विपरीत नहीं, सहयोगी, संगी हैं, साथी हैं। जितना गहरा श्रम करोगे, उतने गहरे विश्राम में चले जाओगे। और इससे उलटा भी सही है, जितने गहरे विश्राम में जाओगे, दूसरे दिन उतनी ही बड़ी श्रम की क्षमता लेकर जगोगे। अगर यह ख्याल आ जाए, तो लाओत्से कहेगा कि सवाल विपरीत को नष्ट करने का नहीं है, सवाल विपरीत के उपयोग करने का है।
अरस्तू कहता है कि प्रकृति बीमारियां देती है, तो प्रकृति से लड़ो। इसलिए पश्चिम का पूरा विज्ञान प्रकृति से संघर्ष है। सारी भाषा लड़ाई की है। रसेल ने एक किताब लिखी हैः कांक्वेस्ट ऑफ नेचर--प्रकृति पर विजय। यह सारा संघर्ष की भाषा है।
लाओत्से हंसेगा। लाओत्से कहेगा, तुम्हें पता ही नहीं है कि तुम प्रकृति के एक हिस्से हो। तुम विजय पा कैसे सकोगे? जैसे मेरा हाथ मेरे ऊपर विजय पाने निकल जाए, तो क्या होगा? जैसे मेरा पैर सोचने लगे कि मुझ पर विजय पा ले, तो क्या होगा? मूढ़ता होगी। लाओत्से कहता है, प्रकृति पर विजय नहीं पाई जा सकती, क्योंकि तुम प्रकृति हो। और जो विजय पाने चला है, वह प्रकृति का ही हिस्सा है। विजय पाने की कोशिश में तुम सिर्फ तनाव से भर जाओगे, संताप से भर जाओगे। प्रकृति को जीओ, विजय पाने मत जाओ। प्रकृति से लड़ कर तुम उसके राज मत पूछो, प्रकृति से प्रेम करो, उसमें डूबो, वह अपने राज खोल देती है।
अगर किसी दिन लाओत्से के ऊपर साइंस का पूरा ढांचा, स्ट्रक्चर खड़ा हो,
तो साइंस बिल्कुल दूसरी होगी। लड़ने की भाषा में नहीं होगी, सहयोग की भाषा में होगी। कांफ्लिक्ट नहीं, कोआपरेशन! संघर्ष नहीं, सहयोग! तब हम और ही ढंग से सोचेंगे। और जो आदमी संघर्ष की भाषा में सोचता है, उसका तर्क वही है कि अ अ है, ब ब है; इसलिए अगर अ को पाना है, तो ब को हटाओ, तो अ बढ़ जाएगा। अगर स्वास्थ्य पाना है, तो बीमारी से लड़ो। बीमारी हटा डालो, तो स्वास्थ्य बढ़ जाएगा। नहीं।
पढ़ता था मैं रथ्सचाइल्ड का संस्मरण। उसने अपना पूरा मकान एयरकंडीशंड किया है। उसका पोर्च भी एयरकंडीशंड है। कार भीतर आती है, तो दरवाजा आटोमेटिक खुलता है; कार बाहर जाती है, तो आटोमेटिक बंद हो जाता है। एयरकंडीशंड कार है। उसमें बैठ कर वह अपने दफ्तर के एयरकंडीशंड पोर्च में उतरता है, फिर अपने एयरकंडीशंड दफ्तर में चला जाता है। फिर उसको पच्चीस बीमारियां आनी शुरू होती हैं। फिर चिकित्सक उससे कहते हैं कि तुम दो घंटे गर्म पानी के टब में बैठे रहो। फिर वह दो घंटे गर्म पानी के टब में बैठ कर पसीना निकलवाता है।
फिर उसको ख्याल आता है कि यह मैं क्या कर रहा हूं? एयरकंडीशंड करके सारी व्यवस्था मैं पसीने को रोक रहा हूं। फिर पसीने को रोक कर, दो घंटे टब में बैठ कर पसीने को निकाल रहा हूं। फिर पसीना ज्यादा निकल गया, गर्मी मालूम पड़ती है, इसलिए एयरकंडीशंड में बैठ कर अपने को ठंडा कर रहा हूं। फिर ज्यादा ठंडा हो गया, फिर पसीना नहीं निकला, बीमार पड़ता हूं, तो फिर... यह मैं कर क्या रहा हूं?
करीब-करीब, संघर्ष की जो भाषा है, वह ऐसे ही द्वंद्व में डाल देती है। लाओत्से कहता है कि जिसको हम विपरीत कहते हैं, वह विपरीत नहीं है। और अगर ठंडक का मजा लेना है, तो धूप का मजा लिए बिना नहीं लिया जा सकता है। यह उलटी दिखाई पड़ती है बात, लेकिन मैं भी कहता हूं कि लाओत्से ठीक कहता है। अगर ठंडक का मजा लेना है, तो धूप का मजा लिए बिना नहीं लिया जा सकता है। और जिसने पसीने का सुख नहीं लिया, वह शीतलता का सुख न ले पाएगा। जिसने पसीने का सुख नहीं लिया, उसके लिए शीतलता भी बीमारी हो जाएगी। और जिसने बहते हुए पसीने का आनंद लिया है, वही ठंडी शीतलता में बैठ कर शीतलता का भी आनंद ले पाएगा। असल में जो गर्म होना नहीं जानता, वह ठंडा नहीं हो पाएगा। ये विपरीत नहीं हैं, ये संयुक्त हैं। और दोनों का संयोग ही जीवन का संगीत है।

इसलिए लाओत्से कहता है, "उच्चता और नीचता का भाव एक-दूसरे के विरोध पर अवलंबित हैं; संगीत के स्वर और ध्वनियां परस्पर संबद्ध होकर ही समस्वर बनती हैं।"
संगीत के स्वर--विपरीत स्वर, विरोधी स्वर--संयुक्त होकर, लयबद्ध होकर, श्रेष्ठतर संगीत को जन्म देते हैं। जिसको हम हार्मनी कहते हैं, संगीत की लय कहते हैं, वह विपरीत स्वरों का जमाव है। जब हम शोरगुल करते हैं तब भी हम उन्हीं ध्वनियों का उपयोग करते हैं, जिन ध्वनियों का उपयोग हम संगीत के पैदा करने में करते हैं। फर्क क्या होता है? शोरगुल में वे ही ध्वनियां अराजक होती हैं, कोई तालमेल नहीं होता उनमें। संगीत में वे ही ध्वनियां तालयुक्त हो जाती हैं; एक-दूसरे के साथ सहयोग में बंध जाती हैं।
इस मकान को गिरा कर हम ईंटों का ढेर लगा दें, तो भी पदार्थ तो यही होगा, ईंटें यही होंगी। फिर इन्हीं ईंटों का फैलाव करके हम एक सुंदर मकान बना लेते हैं। स्वर और ध्वनियां तो वही हैं, जो बाजार के शोरगुल में सुनाई पड़ती हैं। वे ही स्वर हैं, वे ही ध्वनियां हैं। संगीत में क्या होता है? हम उनकी अराजकता को हटा देते हैं, उनकी आपस की कलह को हटा देते हैं, और विपरीत के बीच भी मैत्री स्थापित कर देते हैं। वे ही स्वर, वे ही ध्वनियां अपूर्व संगीत बन जाती हैं। और अगर कोई सोचता हो कि हम एक ही तरह के स्वर से संगीत पैदा कर लेंगे, तो वह पागल है। एक ही तरह के स्वर से संगीत पैदा नहीं होगा। संगीत के लिए अनेक स्वर चाहिए, विभिन्न स्वर चाहिए; विपरीत, विरोधी दिखने वाले स्वर चाहिए; तभी संगीत निर्मित होगा।
यह जो हमारे मन में बचपन से ही बैठी हुई एरिस्टोटेलियन धारणा है, उससे मुक्त हुए बिना लाओत्से को समझना बहुत कठिन है। हमारे मन में सदा ही यही बात है कि हम, चीजों को देखने का हमारा जो गेस्टाल्ट है, हमारा जो ढंग है, वह सदा विपरीत में है। हम कहीं भी कुछ देखते हैं, तो तत्काल विपरीत की भाषा में उसे तोड़ कर सोचते हैं--कहीं भी! अगर एक व्यक्ति आपकी आलोचना कर रहा है, तो आप तत्काल सोचते हैं वह शत्रु है। लेकिन वह मित्र भी हो सकता है। और जो जानते हैं, वे कहेंगे, मित्र है। कबीर तो कहते हैं, निंदक नियरे राखिए, आंगन-कुटी छवाय। वह जो तुम्हारी निंदा करता हो, उसको तो अपने ही पास में आंगन-कुटी छाप कर, अच्छी जगह बना कर पास ही ठहरा लो। क्योंकि वह ऐसी-ऐसी काम की बातें कहेगा कि जो हो सकता है तुमसे कोई भी न कहे। कम से कम जो तुम्हारे मित्र हैं, वे कभी न कहेंगे। वह ऐसी बातें कह सकता है, जो तुम्हें अपने आत्मदर्शन में उपयोगी हो जाएं। वह ऐसी बातें कह सकता है, जो तुम्हें स्वयं से मिलाने में मार्ग बन जाएं। उसे तो अपने पास ही ठहरा लो।
अब कबीर लाओत्से की बात कह रहे हैं। वह जो तुम्हारी निंदा कर रहा है, उसके प्रति भी शत्रुता का भाव न लो। कोई जरूरत नहीं है। उसकी निंदा का भी उपयोग हो सकता है। उसकी निंदा भी एक समस्वर संगीत बन सकती है। लेकिन हम उलटे लोग हैं! निंदा की तो बात दूसरी, अगर कोई आकर अचानक हमारी प्रशंसा करने लगे, तो भी हम चौंकते हैं कि कोई गड़बड़ होगी। नहीं तो कोई किसी की प्रशंसा करता है! जरूर कोई मतलब होगा। खुशामद के पीछे जरूर कोई मतलब होगा। प्रशंसा कर रहा है, तो जरूर अब कुछ न कुछ मांग करेगा। या तो कर्ज लेने आया होगा, या पता नहीं आगे क्या बात निकले! प्रशंसा सुन कर भी हम चौंक जाते हैं, निंदा की तो बात बहुत दूर है।
लाओत्से... जीवन को देखने की जो हमारी व्यवस्था है, एक व्यवस्था तो यह
है कि हम सारे जगत की शत्रुता में खड़े हैं। बीमारी भी दुश्मन है, मौत भी दुश्मन है, बुढ़ापा भी दुश्मन है। आस-पास के लोग भी दुश्मन हैं, प्रकृति भी दुश्मन है, समाज भी दुश्मन है। सारा जगत, सारा परमात्मा हमारे खिलाफ लगा हुआ है। और एक हम हैं। इस सारे संघर्ष को पार करके हमें जीना है। एक तो यह गेस्टाल्ट है। एक तो यह ढंग है।
और दूसरा ढंग यह है कि चांद, तारे और आकाश और पृथ्वी और परमात्मा और समाज और पशु और पक्षी और वृक्ष और पौधे और सब--बीमारी भी, दुश्मन भी, मौत भी--मेरे साथी हैं, संगी हैं। सब मेरे जीवन के हिस्से हैं। उन सब के साथ ही मैं हूं। मैं उनके बिना न हो पाऊंगा। यह दूसरा गेस्टाल्ट है। यह जिंदगी का दूसरा ढंग है।

निश्चित ही, पहले ढंग का अंतिम परिणाम चिंता होगी, एंग्जाइटी होगी। अगर सारी दुनिया से लड़ना ही लड़ना है, चौबीस घंटे, सुबह से सांझ तक लड़ना ही लड़ना है, तो जिंदगी आनंद नहीं हो सकती। और लड़ कर भी मरना ही पड़ेगा। रोज-रोज हारना ही पड़ेगा। क्योंकि लड़ कर भी कौन जीता है? मौत तो आएगी, बुढ़ापा आएगा ही, बीमारी आएगी ही; लड़-लड़ कर भी सब आएगा। और हम लड़ते ही रहेंगे, और यह सब आता ही रहेगा, तो इसका अंतिम परिणाम क्या होगा? हम सिर्फ खोखले हो जाएंगे और चिंता के सिवाय हमारे भीतर कोई अस्तित्व नहीं रह जाएगा।
पश्चिम के विज्ञान के चिंतन ने करीब-करीब ऐसी हालत पैदा कर दी है। हर चीज से लड़ना है, सब चीज से भयभीत होना है। क्योंकि जब लड़ना है, तो भयभीत होगे। और जब लड़ना है, तो हर एक के विपरीत सुरक्षा का आयोजन करना है। हिटलर शादी नहीं किया इसीलिए, कि शादी कर ले, तो कम से कम एक स्त्री तो कमरे में सोने की हकदार हो जाएगी। और रात वह गर्दन दबा दे!
अगर सारी दुनिया से ही संघर्ष है... । फ्रायड के हिसाब से, पति-पत्नी के बीच जो संबंध है, वह एक कलह है, एक कांफ्लिक्ट। वह अरस्तू के विचार का फैलाव है सब पूरा पश्चिम का चिंतन! पति और पत्नी के बीच जो संबंध है, फ्रायड उसे कहता है, ए सेक्सुअल वार। वह कोई प्रेम वगैरह नहीं है। वह सिर्फ एक काम-युद्ध है, जिसमें पति पत्नी को डामिनेट करने की कोशिश में लगा है, पत्नी पति को डामिनेट करने की कोशिश में लगी है। जो होशियार हैं, वे इस अधिकार की और डामिनेशन की कोशिश को शिष्ट ढंगों से करते हैं। जो गंवार हैं, वे सीधा लट्ठ उठा कर संघर्ष कर रहे हैं। बाकी संघर्ष है।
यह एक गेस्टाल्ट है, जिसमें सभी संबंध ऐसे हो जाएंगे। ऐसा नहीं कि प्रकृति और मनुष्य का संबंध ही विकृत होगा। जब संबंध विकृत होने की दृष्टि होगी, तो कोई भी संबंध नहीं बचेगा। बाप और बेटे के बीच तब संघर्ष है। तुर्गनेव की किताब है बहुत प्रसिद्धः फादर्स एंड संस--पिता और पुत्र। जिसमें तुर्गनेव ने यह कहा है कि पिता और पुत्र के बीच निरंतर संघर्ष है। कोई संबंध नहीं है सिवाय संघर्ष के। बेटा जो है, वह बाप का हकदार है; इसलिए बाप को हटाने की कोशिश में लगा है। वह जगह छोड़ दे, बेटा उसकी जगह बैठ जाए। यह एक गेस्टाल्ट है। देखेंगे तो दिखाई पड़ जाएगा कि बेटा बाप को हटाने
की कोशिश में लगा है, कि हटो, एक चाबी दो, दूसरी चाबी दो, तीसरी चाबी दो। अब तुम घर बैठो, अब रिटायर हो जाओ, अब दुकान पर बैठने दो, दफ्तर में बैठने दो। बेटा एक कोशिश में लगा है। बाप एक कोशिश में लगा है पैर जमा कर कि जब तक बन सके, तब तक वह वहीं खड़ा रहे, बेटे को न घुस जाने दे। इसे ऐसा देखने में कोई कठिनाई नहीं है। ऐसा देखा जा सकता है; ऐसा है। जैसी हमने जिंदगी बनाई है, जिस ढंग से, उसमें ऐसा है।
और बड़ी मजेदार बात है कि बाप बेटे को बड़ा कर रहा है, पाल रहा है, पोस रहा है। और सिर्फ इसीलिए कि वह उसकी जगह छीन लेगा कल। उसको शिक्षित कर रहा है, सिर्फ इसलिए कि कल वह उसके खाते-बही पर कब्जा कर लेगा। उसको बीमारी से बचा रहा है, उसको शिक्षित कर रहा है, उसको बड़ा कर रहा है, इसलिए कि कल वह चाबी छीन लेगा। मां बेटे की शादी करने के पीछे पड़ी है। कल उसकी पत्नी आ जाएगी और वह पत्नी सब छीनना शुरू कर देगी। और तब कलह शुरू होगी। और वह कलह जारी रहेगी।
गेस्टाल्ट क्या है हमारे देखने का?
अगर हम जीवन को एक कलह, एक कांफ्लिक्ट, एक संघर्ष, एक स्ट्रगल की भाषा में देखते हैं, तो धीरे-धीरे जीवन के सब पर्तों पर और सब संबंधों में संघर्ष हो जाएगा। तब व्यक्ति अकेला बचता है और सारा जगत उसके विपरीत शत्रु की तरह खड़ा है। सारा जगत प्रतिस्पर्धा में, और अकेला मैं बचा हूं। स्वभावतः, इतने बड़े जगत के खिलाफ प्रतिस्पर्धा में खड़े होकर सिवाय चिंता के पहाड़ के और क्या मिलेगा? और चिंता के बाद भी विजय का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि पराजय ही होने वाली है। बुढ़ापा आएगा ही, मौत आएगी ही, सब डूब ही जाएगा। चाहे बाप कितना ही लड़े, बेटे को दे ही जाना पड़ेगा। चाहे सास कितनी ही लड़े, बहू के हाथ में शक्ति पहुंच ही जाएगी। और चाहे गुरु कितना ही संघर्ष करे, शिष्य आज नहीं कल उसकी जगह बैठ ही जाएगा।

बायजीद ने एक सूत्र लिखा है। लिखा है कि जिन-जिन को मैंने धनुर्विद्या सिखाई, उनका आखिरी निशाना मैं ही बना। जिन-जिन ने सीख ली धनुर्विद्या, बस वे आखिरी निशाना मुझे ही बनाने लगे।
वह ठीक ही कहा है! अगर गुरु और विद्यार्थी के, शिष्य के बीच संघर्ष है,
तो यही होगा। यही होगा कि गुरु विद्यार्थी को इसीलिए तैयार कर रहा है कि कल विद्यार्थी उसको हटाएगा।
यह सारी जिंदगी एक संघर्ष है दूसरे को हटाने के लिए। और सब तरफ दुश्मन हैं, कोई मित्र नहीं। जो मित्र मालूम पड़ते हैं, वे थोड़े कम दुश्मन हैं, बस इतना ही। थोड़े अपने वाले दुश्मन हैं, इतना ही। कुछ लोग जरा दूर के दुश्मन हैं, कुछ जरा पास के दुश्मन हैं। जो पास के हैं, जरा ख्याल रखते हैं। जरा दूर के हैं, बिल्कुल ख्याल नहीं रखते। बाकी दुश्मनी स्थिर है।
लाओत्से एक दूसरे गेस्टाल्ट को प्रस्तावित करता है। और लाओत्से ने जिस तरह से उसे रखा है, काश वह कभी आदमी की समझ में आ सके, तो हम एक दूसरी ही संस्कृति और दूसरे ही जगत का निर्माण कर लें। वह कहता है, तुम अलग हो ही नहीं। इसलिए शत्रुता का सवाल कहां? तुम व्यक्ति हो ही नहीं। क्योंकि व्यक्ति तुम सिर्फ इसीलिए दिखाई पड़ रहे हो कि तुम्हें समष्टि का कोई पता नहीं। लेकिन जहां भी व्यक्ति है, वहां समष्टि से जुड़ा है। व्यक्ति हो ही नहीं सकता समष्टि के बिना। तुम हो इसलिए कि और सब हैं। वह जो वृक्ष दरवाजे पर खड़ा है, वह भी तुम्हारे होने में भागीदार है।
लाओत्से ने कहा है अपने एक शिष्य को जो, सामने के वृक्ष से कुछ पत्ते तोड़ने भेजा है उसे किसी ने, वह पूरी शाखा तोड़ कर लिए जा रहा है। तो लाओत्से उसे रोकता है और कहता है, तुझे पता नहीं पागल, कि यह वृक्ष अधूरा हुआ, तो तू भी कुछ कम हुआ। यह यहां सामने खड़ा था पूरा का पूरा, तो हम कुछ और अर्थों में हरे थे। आज इसका घाव हमारे भीतर भी घाव बन गया।
हम इतने अलग नहीं हैं; हम सब जुड़े हैं। हमने पृथ्वी पर से वृक्ष काट डाले। लाओत्से तो एक शाखा के तोड़ने पर यह कह रहा है। हमने सारे के सारे वृक्ष काट डाले; सारे जंगल गिरा दिए। अब हमको पता चल रहा है कि गलती हो गई। जंगल हमने काटे इसलिए कि हमने सोचा जंगल मनुष्य का दुश्मन है। क्योंकि जंगल में मनुष्य को डर था। जंगली जानवर थे, भय था, घबड़ाहट थी। जंगल काट-काट कर हमने जमीन साफ करके अपने नगर बसा लिए। हम यह भूल ही गए कि हमारे नगरों में जो पानी गिरता था, वह जंगल के बिना नहीं गिरेगा; कि हमारे नगरों पर जो हवाएं बहती थीं, वे जंगल के बिना नहीं बहेंगी; कि हमारे नगरों पर जो शीतलता छा जाती थी, वह बिना जंगलों के नहीं छाएगी; कि हम जंगल सब काट डालेंगे, तो नगर हमारे सब उजड़ जाएंगे।
अब आज सारे यूरोप में मूवमेंट है, आंदोलन है। और वह आंदोलन इसलिए है
कि वृक्ष अब न काटे जाएं; एक पत्ता भी काटना सख्त जुर्म है। क्योंकि आदमी गिर जाएगा, अगर वृक्ष गिर गए।
तो लाओत्से ढाई हजार साल पहले एक डाल के टूटने पर कहता है कि तुझे पता नहीं पागल, हम कुछ कम हो गए हैं। वह वृक्ष हमारा हिस्सा था, हमारे अस्तित्व का।
जैसे कि एक तस्वीर में से, एक पेंटिंग में से किसी ने एक कोने में एक वृक्ष को अलग कर लिया हो, तो तस्वीर वहीं नहीं रह जाती, तस्वीर कुछ और हो जाती है! एक छोटा सा बुरुश, रंग की एक छोटी सी रेखा एक तस्वीर को पूरा बदल देती है। जरा सा इशारा! अगर हमने जरा सा एक वृक्ष एक पेंटिंग में से निकाल लिया, तो पेंटिंग वही नहीं रह जाती है। क्योंकि टोटल, उसका समग्र रूप और हो जाता है। सारा संबंध बदल जाता है। आकाश के और झोपड़े के बीच में जो वृक्ष खड़ा था, वह अब नहीं है। अब आकाश और झोपड़े निपट नंगे होकर खड़े हो जाते हैं। हमने काट डाले वृक्ष। हमने सोचा कि हम आदमी के रहने के लिए अच्छी जगह बना लेंगे। हमने जानवर मिटा डाले, हमने कुछ जानवरों की जातियां बिल्कुल समाप्त कर दीं। अब इकोलॉजी--यह जो मूवमेंट चलता है, इकोलॉजी कहलाता है-- उसका कहना है कि हमने जो-जो चीज कमी कर ली है, उस सब का परिणाम आदमी को भोगना पड़ रहा है। जंगल में जो पक्षी गीत गाते हैं, वे भी हमारे हिस्से हैं। और जिस दिन जंगल में कोई पक्षी गीत नहीं गाएगा, उस दिन हम प्रकृति का जो संगीत है, उसमें एक व्याघात उत्पन्न कर रहे हैं। उस व्याघात के बाद हमारे

चित्त उतने शांत न रह जाएंगे, जितने उस संगीत के साथ थे। पर हमें ख्याल नहीं आता। क्योंकि बड़ा है; आदमी बहुत छोटे अपने घर में, अपने कोने में जीता है। उसे पता नहीं कि आकाश में बादल चलते हैं अब या नहीं चलते, वृक्षों पर फूल आते हैं कि नहीं आते, वसंत में पक्षी गीत गाते हैं कि नहीं गाते। पिछले तीन वर्ष पहले इंग्लैंड में एक किताब छपीः दि साइलेंट स्प्रिंग--मौन वसंत। पिछले तीन वर्ष पहले इंग्लैंड के वसंत में अचानक हैरानी का फर्क आ गया। लाखों पक्षी अचानक वसंत के मौसम में वृक्षों से गिरे और मर गए। लाखों! ढेर लग गए रास्तों पर पक्षियों के। पूरा, पूरा वसंत मौन हो गया। और बड़ी मुश्किल हुई कि क्या हुआ? क्या बात हो गई? रेडिएशन पर इंग्लैंड में जो प्रयोग चलते थे और एटामिक इनर्जी के जो प्रयोग चलते थे, उनकी कुछ भूल-चूक से वैसा हुआ। लेकिन इंग्लैंड उस वसंत के बाद फीका हो गया! अब इंग्लैंड में वैसा वसंत नहीं आएगा कभी। गाने वाले पक्षियों का बड़ा हिस्सा एकदम समाप्त हो गया। उसको रिप्लेस करना मुश्किल है।
लेकिन अगर वैसा वसंत न आएगा, तो हम सोचेंगे, क्या हमें फर्क पड़ता है? हमारी दूकान में क्या फर्क पड़ेगा? हमारे दफ्तर में क्या फर्क पड़ेगा? नहीं पक्षी गाएंगे।
काश, जिंदगी इतनी अलग-अलग होती! इतनी अलग-अलग नहीं है। वहां सब संयुक्त है, सब जुड़ा है। अरबों प्रकाश वर्ष दूर भी अगर कोई तारा नष्ट हो जाता है, तो इस पृथ्वी पर कुछ कमी हो जाती है। अगर कल चांद मिट जाए, तो इस पृथ्वी पर फर्क हो जाएगा! आपके सागर में लहरें न उठेंगी; आपकी स्त्रियों का मासिक धर्म अव्यवस्थित हो जाएगा; वह अट्ठाइस दिन में नहीं आएगा फिर। वह चांद की वजह से अट्ठाइस दिन में आता है। सब कुछ और हो जाएगा। एक छोटा सा अंतर और सारी चीजों की स्थिति बदल जाती है।
लाओत्से कहता था कि चीजें जैसी हैं, उन्हें वैसा रहने दो। स्वीकार करो, वे साथी हैं। विपरीत को भी मत हटाओ। जो बिल्कुल दुश्मन मालूम पड़ता है, उसे भी बसा रहने दो। उसे भी बसा रहने दो, क्योंकि प्रकृति का जाल गहन है, रहस्यपूर्ण है। भीतर सब चीजें जुड़ी हैं। तुम्हें पता नहीं, तुम एक हटा कर क्या उपद्रव कर लोगे।
अब जब इकोलॉजी की चर्चा सारी दुनिया में चलनी शुरू हुई है और समझ बढ़ी
है आदमी की, तो ऐसा पता चलना शुरू हुआ कि हम कितनी तरह से जुड़े हुए हैं, कहना बहुत मुश्किल है! बहुत मुश्किल है कहना कि हम कितनी तरह से जुड़े हुए हैं! उदाहरण के लिए, अगर हम जंगलों को काट डालते हैं, वृक्षों को हटा लेते हैं, तो वृक्ष जो हमारे लिए जीवन का तत्व इकट्ठा करते हैं, वह विलीन हो जाता है।
वृक्ष सूरज की किरणों को रूपांतरित करते हैं, उसको इस योग्य बनाते हैं कि वह हमारे शरीर में जाकर पच जाए। सीधी सूरज की किरण हमारे शरीर में नहीं पच पाएगी। वृक्ष ही उसे पीकर ट्रांसफार्म करते हैं और हमारे भोजन के योग्य बनाते हैं। वृक्ष जमीन से मिट्टी को खींचते हैं और भोजन निर्मित कर देते हैं। आप कभी सोचते भी नहीं कि सब्जी आप खा रहे हैं, वह जिन वृक्षों ने उसे निर्मित किया है, अगर वे निर्मित न करते, तो नीचे सिर्फ मिट्टी का ढेर होता। वह मिट्टी का ढेर सब्जी बन गई है, वह सब्जी बन कर आपके पचने के योग्य हो गई है।
आप पूरे चौबीस घंटे अपने श्वास को बाहर फेंक रहे हैं और आक्सीजन को पचा रहे हैं और कार्बन डाय आक्साइड को बाहर निकाल रहे हैं। वृक्ष सारी कार्बन डाय आक्साइड को पीकर आक्सीजन को बाहर निकाल रहे हैं। अगर पृथ्वी पर वृक्ष कम हो जाएंगे, तो आप कार्बन डाय आक्साइड बाहर निकालेंगे, आक्सीजन कम होती जाएगी रोज-रोज। एक दिन आप पाएंगे, जीवन शांत हो गया, क्योंकि आक्सीजन देने वाले वृक्ष कट गए।
लाओत्से को तो पता भी नहीं था आक्सीजन का। लाओत्से को पता भी नहीं था
कि वृक्ष क्या कर रहे हैं। फिर भी वह कहता है कि चीजें सब जुड़ी हैं, तुम अकेले नहीं हो। और जरा भी तुमने हेर-फेर किया, तो तुम में भी हेर-फेर हो जाएगा। एक इंटीग्रेटेड एक्झिस्टेंस है, एक संयुक्त अस्तित्व है। उसमें अनस्तित्व भी जुड़ा है। उसमें मृत्यु भी जुड़ी है। उसमें बीमारी भी जुड़ी है। उसमें सब संयुक्त है। लाओत्से कहता है कि इन सबके बीच अगर सहयोग की

धारणा हो--विजय की नहीं, साथ की, संग होने की, एकात्म की--तो जीवन में एक संगीत पैदा होता है। वही संगीत ताओ है, वही संगीत धर्म है, वही संगीत ऋत है।
लगता है ऐसा कि इकोलॉजी की समझ हमारी जितनी बढ़ेगी, लाओत्से के बाबत हमारी जानकारी गहरी होगी। क्योंकि जितना हमें पता चलेगा, चीजें जुड़ी हैं, वह उतना ही हमें बदलाहट करने की जल्दी छोड़नी पड़ेगी।
अब अभी मैं देख रहा था कि सिर्फ साठ वर्षों में, आने वाले साठ वर्षों में, जिस मात्रा में हम समुद्र के पानी पर तेल फेंक रहे हैं--हजार तरह से, फैक्टरियों के जरिए, जहाजों के जरिए--जिस मात्रा में हम समुद्र के सतह पर तेल फेंक रहे हैं, साठ वर्ष अगर इसी तरह जारी रहा, तो किसी युद्ध की जरूरत न होगी, सिर्फ वह तेल समुद्र के पानी पर फैल कर हमें मृत कर देगा। क्योंकि समुद्र का पानी सूर्य की किरणों को लेकर कुछ जीवन-तत्व पैदा करता है, जिनके बिना पृथ्वी पर जीवन असंभव हो जाएगा। वह नवीनतम खोज है। और जब समुद्र की सतह पर तेल की पर्त हो जाती है, तो वह तत्व पैदा होना बंद हो जाता है।
अब हम साबुन की जगह डिटरजेंट पाउडर का उपयोग कर रहे हैं। अभी इकोलॉजी
की खोज कहती है कि सिर्फ पचास साल अगर हमने साबुन की जगह धुलाई के नए जो पाउडर हैं, उनका उपयोग किया, तो किसी महायुद्ध की जरूरत नहीं होगी; आदमी उनका उपयोग करके ही मर जाएगा। साबुन, जब आप कपड़े को धोते हैं, तो मिट्टी में जाकर पंद्रह दिन में रि-एब्जार्ब्ड हो जाता है; पंद्रह दिन में साबुन फिर प्रकृति में विलीन हो जाता है। लेकिन डिटरजेंट पाउडर को विलीन होने में डेढ़ सौ वर्ष लगते हैं। डेढ़ सौ वर्ष तक वह मिट्टी में वैसा ही पड़ा रहेगा; विलीन नहीं हो सकता। और पंद्रह वर्ष के बाद वह पायजनस होना शुरू हो जाएगा। और डेढ़ सौ वर्ष तक वह नष्ट नहीं हो सकता। उसका मतलब हुआ कि एक सौ पैंतीस वर्ष तक वह जहर की तरह मिट्टी में पड़ा रहेगा। और सारी दुनिया जिस मात्रा में उसका उपयोग कर रही है, वैज्ञानिक कहते हैं, पचास साल और पूरी की पूरी पृथ्वी पर जो भी पैदा होता है, वह सब विषाक्त हो जाएगा। आप पानी पीएंगे, तो जहर पीएंगे। और आप सब्जी काटेंगे, तो जहर काटेंगे।
लेकिन इसकी हमें समझ नहीं होती कि चीजें किस तरह जुड़ी हैं। साबुन मंहगी पड़ती है, डिटरजेंट पाउडर सस्ता पड़ता है। ठीक है, बात खतम हो गई। सस्ता पड़ता है, इसलिए हम उसका उपयोग कर लेते हैं। जो भी हम कर रहे हैं, वह संयुक्त है। और जरा सा, इंच भर का फर्क बहुत बड़े फर्क लाएगा।
लाओत्से किसी भी फर्क के पक्ष में नहीं था। लाओत्से कहता था, जीवन जैसा है, स्वीकार करो। विपरीत को भी स्वीकार करो, उसका भी कोई रहस्य होगा।
मौत आती है, उसे भी आलिंगन कर लो, उसका भी कोई रहस्य होगा। तुम लड़ो ही मत, तुम झुक जाओ, यील्ड करो। तुम चरण पर पड़ जाओ जीवन के; तुम समर्पित हो जाओ। तुम संघर्ष में मत पड़ो।
और लाओत्से कहता था, अगर तुम समर्पण में पड़ जाओ, तो तुम्हारे जीवन में चिंता का लेश मात्र भी पैदा नहीं होता है। समर्पित मन को कैसी चिंता? जिसने प्रकृति से शत्रुता नहीं पाली, उसको कैसी चिंता? जो लड़ने ही नहीं जा रहा है, उसे हारने का डर कैसा? उसकी विजय सुनिश्चित है। हार ही उसकी विजय है। लाओत्से सरेंडरिंग के लिए, समर्पण के लिए ये सारे सूत्र कह रहा है। अंतिम सूत्र वह कहता है, "और पूर्वगमन एवं अनुगमन से ही क्रम के भाव की उत्पत्ति होती है।"
जो पहले चला गया और जो पीछे आएगा, उससे ही हम क्रम निर्मित करते हैं। अगर पहले जाने वाला न जाए, तो पीछे आने वाला नहीं आएगा। इसे ऐसा समझें कि घर में एक वृद्ध गुजर गया। हम कभी इसे जोड़ते नहीं कि घर में बच्चे के जन्म के लिए जरूरी है कि वृद्ध गुजर जाए! लेकिन जब घर में वृद्ध गुजरता है, तो हम रोते-चिल्लाते हैं। और जब घर में बच्चा पैदा होता है, हम बैंड-बाजे बजाते हैं! हालांकि हम कभी इस जोड़ को नहीं देख पाते कि घर से एक वृद्ध का जाना एक बच्चे के लिए जगह खाली करने का आयोजन मात्र है। जो पहले गया है, वह पीछे आने वाले के लिए जरूरी है।
हम वृद्ध को भी रोक लेना चाहते हैं और बच्चे को भी बुला लेना चाहते हैं। ये दोनों संभव नहीं हो सकते। कभी सोचें कि एक घर में अगर दो-तीन-चार

पीढ़ियों तक बूढ़े न मरें, तो उस घर में क्या हो? उस घर में बच्चे पैदा होते से ही पागल हो जाएं। इधर पैदा हुए कि उधर पागल हुए! अगर चार-पांच पीढ़ी के वृद्ध मौजूद हों घर में, तो बच्चों का जीना असंभव है। एक ही पीढ़ी के वृद्ध काफी मुश्किल कर देते हैं। और अगर चार-पांच पीढ़ी के वृद्ध होंगे तो दो-तीन पीढ़ी के वृद्धों की तो कोई कीमत ही नहीं होगी, उनके पीछे वाले बैठे होंगे। और वे इतने अनुभवी होंगे कि बच्चों को सीखने ही न देंगे। वे इतना जानते होंगे कि बच्चे को जानने का उपाय न रह जाएगा। वे इतनी सख्ती से बच्चे की गर्दन पर बैठ जाएंगे कि बच्चे को हिलने का मौका न रह जाएगा। बच्चे पैदा होते से ही पागल हो जाएंगे।
वृद्ध का विदा होना जरूरी है, ताकि बच्चे आ सकें। और बच्चे आएंगे, तो वृद्ध विदा होते रहेंगे।
लाओत्से कहता है, सब क्रम बंधा हुआ है। इधर जवानी आती है, तो बचपन का जाना जरूरी है। इधर बुढ़ापा आता है, तो जवानी का जाना जरूरी है। और यह सब संयुक्त है। हम इसमें भी हिस्से बांट लेते हैं। और हम कहते हैं, इतना हमें पसंद है, यह बच जाए, जवानी बच जाए।
बर्नार्ड शॉ बूढ़ा जब हो गया, कोई बर्नार्ड शॉ से पूछा है कि क्या ख्याल हैं तुम्हारे अब? तो बर्नार्ड शॉ ने बहुत हैरानी की बात कही। बर्नार्ड शॉ ने कहा, जब मैं जवान था, तो मैं सोचता था, सदा जवान रह जाऊं! बूढ़ा होकर मुझे पता चला कि परमात्मा ने जवानों पर शक्ति देकर व्यर्थ ही शक्ति को गंवाया है। इतनी ताकत बूढ़ों को दी होती, तो अनुभव के साथ मजा आ जाता। जवानों को देकर, बिल्कुल गैर-अनुभवी लोगों को ताकत देकर, व्यर्थ गंवा दिया।
लेकिन अनुभव के बढ़ने के साथ ताकत कम हो जाती है। गैर-अनुभवी के पास ताकत ज्यादा होती है, इस प्रकृति का कुछ राज है। बच्चा सर्वाधिक शक्तिशाली होता है; बूढ़ा सर्वाधिक कमजोर हो जाता है। अगर हमारे हाथ में हो--जैसा बर्नार्ड शॉ ने सुझाव दिया--अगर हमारे हाथ में हो, तो हम ऐसा कहें, बच्चे को बिल्कुल कमजोर होना चाहिए, उसके पास कोई ताकत नहीं होनी चाहिए। ताकत तो बूढ़े के पास होनी चाहिए, उसके पास अनुभव है। लेकिन कोमल गैर-अनुभवी बच्चे के पास ताकत है, फैलने की, बढ़ने की, विकसित होने की। और अनुभवी बूढ़े के पास कोई ताकत नहीं है। बात क्या है?
बात कुछ महत्वपूर्ण है। असल में, अनुभव के इकट्ठे होने का अर्थ ही मृत्यु का पास आना है। अनुभव के इकट्ठे होने का अर्थ ही मृत्यु का पास आना है। अनुभव के इकट्ठे होने का अर्थ ही है कि जीवन का काम पूरा हो गया, अब आप विदा होते हैं। और जब जीवन का काम पूरा हो गया, विश्वविद्यालय से बाहर निकलने का वक्त आ गया--जीवन के विश्वविद्यालय से--तो आपके पास ताकत की कोई जरूरत नहीं है। कब्र में जाने के लिए किसी ताकत की कोई जरूरत नहीं है। आप चले जाएंगे। गैर-अनुभवी के लिए ताकत की जरूरत है, क्योंकि अनुभव बिना ताकत के नहीं मिल सकेगा। भूल-चूक करनी पड़ेगी, भटकना पड़ेगा, गिरना-उठना पड़ेगा। गैर-अनुभवी के पास ताकत है। अनुभवी के पास कोई ताकत नहीं है, क्योंकि अब उसे भूल-चूक भी नहीं करनी पड़ती। अब उसको पक्का बंधा हुआ रास्ता मालूम है। वह उसी पर चलता है। वह लीक इधर-उधर नहीं हिलता। वह भूल नहीं करता, वह झंझट में नहीं पड़ता, वह सदा ठीक ही करता है। उसको ज्यादा ताकत की भी जरूरत नहीं है।
बच्चे के पास ज्यादा ताकत है। क्योंकि अभी पूरा विस्तार अनुभव का खुला पड़ा है। अभी सीखने उसे जाना है। तो गैर-अनुभवी के पास ताकत है, क्योंकि अनुभव के लिए ताकत की जरूरत है। अनुभवी के पास ताकत नहीं है, क्योंकि अनुभवी के लिए अब मृत्यु के सिवा और कुछ शेष नहीं बचा है।
पर जीवन के इस क्रम को हम उलटाने की बहुत कोशिश करते हैं। हम कोशिश करते हैं कि बेटे को हम अनुभव दे दें, उसके समय के पहले अनुभव दे दें। उसके अनुभव के पहले हम अपना अनुभव उसे दे दें। वह कभी संभव नहीं हो पाता। वह कभी संभव नहीं हो सकता है। क्योंकि हमें ख्याल नहीं, प्रकृति की जो अपनी लयबद्ध व्यवस्था है, जिसमें एक क्रम है; जिसमें पहले गया हुआ पीछे आने वाले से जुड़ा है; जिसमें पीछे आने वाला पहले जाने वाले से जुड़ा है। लेकिन हमें उसका कोई बोध नहीं है।

एक व्यक्ति मेरे पास आए और मुझे श्रद्धा दे, तो मैं आशा करता हूं कि अब
वह रोज मुझे श्रद्धा दे। अब मैं गलती करता हूं। अब मैं गलती करता हूं, क्योंकि जिस व्यक्ति ने मुझे श्रद्धा दी, बहुत संभावना पैदा कर ली उसने कि कल वह मुझे अश्रद्धा दे। अश्रद्धा का पूर्ण, पूर्णता कब होगी? क्योंकि जीवन तो विपरीत से मिल कर बना है। जिसने मुझे श्रद्धा दी, वह मुझे अश्रद्धा भी देगा। अगर लाओत्से की समझ गहरी हो, तो लाओत्से जानता है कि जिससे तुमने श्रद्धा ली, उससे अश्रद्धा लेने की तैयारी रखना। लेकिन हम? जिसने हमें श्रद्धा दी, उससे हम और श्रद्धा रखने की तैयारी रखते हैं! तब हम कठिनाई में पड़ते हैं। और जिसने हमें अश्रद्धा दी, उससे हम अपेक्षा रखते हैं कि और अश्रद्धा देगा, हालांकि वह अपेक्षा भी इतनी ही गलत है। जिसने हमें अश्रद्धा दी, वह आज नहीं कल हमें श्रद्धा देने की तैयारी करेगा। क्योंकि विपरीत संयुक्त हैं।
एक यहूदी फकीर की कहानी मैं सदा कहता रहा हूं। एक यहूदी हसीद, उसने एक किताब लिखी है। हसीद क्रांतिकारी फकीर हैं। और यहूदी पुरोहित वर्ग उनके विपरीत है, जैसा कि सदा होता है। इस हसीद ने एक किताब लिखी और अपने प्रधान यहूदी पुरोहित के पास भेजी। जिसके हाथ भेजी, उससे कहा कि तू देखना, वह क्या व्यवहार करते हैं! कुछ बोलना मत, तुझे कुछ करना नहीं है; सिर्फ देखना, साक्षी रहना।
उसने जाकर किताब दी। तो जो बड़ा पुरोहित था, वह और उसकी पत्नी दोनों बैठे थे सांझ अपने बगीचे में। उसने किताब दी और उसने कहा कि फलां-फलां हसीद फकीर ने यह किताब भेजी है। उसने मुश्किल से हाथ में ले पाया था, जैसे ही सुना कि हसीद ने भेजी है, उसने जोर से किताब फेंक दी सड़क की तरफ और कहा, ऐसी अपवित्र किताब को मैं हाथ भी न लगाना चाहूंगा।
उसकी पत्नी ने कहा, लेकिन इतने कठोर होने की जरूरत क्या है? घर में इतनी किताबें हैं, इसको भी रख दिया होता! और फेंकना भी था तो इस आदमी के चले जाने पर फेंक सकते थे। ऐसा असंस्कृत व्यवहार करने की जरूरत क्या है? रख देते, किताबें इतनी रखी हैं, एक किताब और रख जाती। और फेंकना ही था, तो पीछे कभी भी फेंक देते। इतनी जल्दी क्या थी!
यह उस आदमी ने खड़े होकर सुना। उसके मन में ख्याल आया कि पत्नी भली है। लौट कर उसने अपने गुरु को कहा कि पुरोहित तो बहुत दुष्ट आदमी मालूम होता है। उसको तो कभी आप अपने में उत्सुक कर पाएंगे, इसकी कोई आशा नहीं है। लेकिन उसकी पत्नी कभी आप में उत्सुक हो सकती है।
उस फकीर ने कहा, पहले पूरी कथा तो कहो; तुम व्याख्या मत करो। हुआ क्या? उसने कहा, हुआ इतना ही कि पुरोहित ने तो किताब लेकर ऐसे फेंक दी, जैसे जहर हो। और कहा कि फेंको इसे, यहां मैं हाथ भी नहीं लगाऊंगा। इतनी अपवित्र को मैं छू भी नहीं सकता। और उसकी पत्नी ने कहा कि ऐसी जल्दी क्या थी? रख देते, घर में बहुत किताबें थीं, पड़ी रहती। और फेंकना था तो पीछे फेंक देते। इतना अशिष्ट होने की कोई आवश्यकता नहीं है।
हसीद कहने लगा, वह फकीर कहने लगा, कि कभी पुरोहित से तो हमारा संबंध भी
बन जाए, उसकी पत्नी से कभी न बन सकेगा। उस फकीर ने कहा, पुरोहित से हमारा कभी संबंध बन ही जाएगा। जो इतनी घृणा से भरा है, वह कितनी देर इतनी घृणा से भरा रहेगा? आखिर प्रेम प्रतीक्षा करता होगा, वह लौट आएगा। लेकिन जो इतनी उपेक्षा की बात कह रही है कि रख देते, पड़ी रहती, इनडिफरेंट, पीछे फेंक देते, कोई हर्जा न था, शिष्टाचार का तो ख्याल रखो, उस स्त्री का हमारे प्रति कोई भी भाव नहीं है; न घृणा का, न प्रेम का। उससे हमारा संबंध बहुत मुश्किल है। लेकिन पुरोहित से हमारा संबंध बन ही जाएगा। तुम देखोगे कि पुरोहित अब तक किताब उठा कर पढ़ रहा होगा। तुम जाओ वापस।
उसने कहा, क्या बात करते हैं! वह पढ़ेगा कभी?
तुम वापस जाओ, तुम व्याख्या मत करो। तुम जाकर फिर देखो।
लौट कर उसने देखा, द्वार बंद हैं। खिड़की से झांका, पुरोहित वह किताब लेकर पढ़ रहा है।
जीवन ऐसा है! उसमें जो गाली दे जाता है, वह प्रेम करने की क्षमता जुटा
कर ले जाता है। उसमें जो प्रेम प्रकट कर जाता है, वह गाली देने की क्षमता जुटा कर ले जाता है। विपरीत संयुक्त है। जो आदर करता है, वह अनादर करने की

क्षमता इकट्ठी करने लगता है। जो अनादर करता है, वह क्षमा मांगने के लिए उत्सुकता इकट्ठी करने लगता है। अगर कोई जीवन को ऐसा देख पाए, तब न मित्र मित्र, न शत्रु शत्रु! तब चीजें एक विराट पैटर्न में, एक विराट ढांचे में दिखाई पड़ने लगती हैं, एक गेस्टाल्ट में दिखाई पड़ने लगती हैं।
तब अगर कोई मेरे पास आता है, तो मैं जानता हूं कि दूर जाएगा। जब कोई मुझसे दूर जाता है, तो मैं जानता हूं पास आएगा। लेकिन न पास आने वाले पर कोई चिंता लेने की जरूरत है, न दूर जाने वाले पर कोई चिंता लेने की जरूरत है। जीवन का ऐसा नियम है। जब कोई जन्मता है, तो मरने के लिए; और जब कोई मरता है, तो जन्मने के लिए। ऐसा जीवन का नियम है। इस विराट नियम के वैपरीत्य को अगर हम एक ही व्यवस्था का लयबद्ध, छंदबद्ध रूप समझ लें, तो लाओत्से को समझना आसान हो जाएगा। इस सूत्र का यही अर्थ है।

प्रश्नः ओशो, आधुनिक विज्ञान ने मनुष्य-जाति को प्रकृति से दूर करके जीवन के अनेक आयामों को विकसित कर लिया है। कृपया बताएं कि वैज्ञानिक जीवन-प्रणाली की जटिलता के साथ ताओ-युग के सहज जीवन का संतुलन आज किस प्रकार स्थापित किया जाए?

संतुलन स्थापित करने की बात नहीं है। लाओत्से और आधुनिक विज्ञान के बीच संतुलन स्थापित करने की बात नहीं है। लाओत्से की दृष्टि अगर ख्याल में आ जाए, तो बिल्कुल ही नवीन विज्ञान का जन्म होगा। बिल्कुल नए विज्ञान का जन्म होगा। लाओत्से की दृष्टि पर एक नए ही विज्ञान का जन्म होगा, क्योंकि पूरे जीवन की दृष्टि ही और है। अरस्तू के आधार पर जो विज्ञान विकसित हुआ है, वह विज्ञान बहुत अधूरा, अज्ञानी है। उसने जीवन के इतने छोटे से हिस्से को समझने की कोशिश की है, और पूरे हिस्से को छोड़ दिया है। कहना चाहिए, वह बचकाना है, चाइल्डिश है। उसने समग्र को देखने का कोई प्रयास अभी तक नहीं किया है।
लेकिन अभी तक कर भी नहीं सकता था। अब उसे करना पड़ेगा। अणु-शस्त्र के खोज लेने के बाद, अणु-ऊर्जा के विकास के बाद विज्ञान को अपनी पुरानी समस्त आधारशिलाओं पर पुनर्विचार करने को मजबूर हो जाना पड़ा है। क्यों? क्योंकि अगर विज्ञान जैसा अभी तक बढ़ रहा था, अब कहे कि हम ऐसे ही आगे बढ़ेंगे, तो सिवाय मनुष्य-जाति के अंत के कुछ और रास्ता नहीं है। तो विज्ञान को अपनी पूर्व-धारणाओं को फिर से सोचना पड़ रहा है कि कहीं कोई बुनियादी भूल है, कहीं कोई गलती हो रही है, कि हम इतनी मेहनत करते हैं और परिणाम बुरे आते हैं! चेष्टा हम इतनी करते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं, और परिणाम विपरीत आते हैं! सारे श्रम का फल दुख ही होता है! तो विज्ञान को अपनी पूर्व धारणाओं पर पुनः विचार करना पड़ रहा है। और उसमें जो भूल कभी पकड़ में आएगी, वह अरस्तू के साथ हो गई भूल है। और तब जीवन के साथ संघर्ष का विज्ञान नहीं, जीवन के साथ सहयोग का विज्ञान!
अब इसमें फर्क होंगे। सारी आधारशिला बदल जाएगी। जीवन के साथ संघर्ष
का विज्ञान सोचता ही विनाश करने की भाषा में है। समझ लें--उदाहरण लें, तो जल्दी आसानी हो जाए--समझ लें कि मच्छर हैं, मलेरिया आता है। तो एरिस्टोटेलियन दिमाग सोचेगा कि मच्छरों को खतम कर दो, तो मलेरिया नहीं आएगा। विनाश की भाषा फौरन ख्याल में आएगी, मच्छरों को नष्ट कर दो, मलेरिया नहीं आएगा। लेकिन मच्छरों के होने से कुछ और भी आ रहा हो सकता था; वह भी रुक जाएगा। मच्छरों की मौजूदगी कुछ और भी कर रही हो सकती थी; वह भी रुक जाएगा। पर उसका पता तो देर से लगेगा। शायद तब लगे, जब तक कि मच्छर न बचें। और तब मच्छर को रिप्लेस करने के लिए हमें कुछ और उपाय करना पड़े!
लाओत्से के सामने अगर सवाल आएगा कि मच्छर है, हम क्या करें? तो लाओत्से इस भाषा में नहीं सोचेगा कि मच्छर को नष्ट कर दो। दो ढंग हो सकते हैं मच्छर के साथ सहयोग करने के। या तो आदमी के शरीर को बदला जाए कि मच्छर नुकसान न पहुंचा पाए। मच्छर को विनाश करने की कोई जरूरत नहीं है। या मच्छर के शरीर को बदला जाए कि मच्छर मित्र हो जाए, शत्रु न रह जाए। ये दोनों बातें हो सकती हैं।

अगर लाओत्से के ढंग से सोचा गया होता तो यही होता कि हम कोई सामंजस्य खोजते। अगर मच्छर को बिल्कुल मारा जा सकता है, तो इसमें कौन सी कठिनाई है कि मच्छर को विषरहित किया जा सके? अगर मच्छर को मारा जा सकता है, विषरहित किया जा सकता है, तो इसमें कौन सी कठिनाई है कि मनुष्य के रेजिस्टेंस को बढ़ाया जा सके? लाओत्से तो पसंद करेगा कि मनुष्य का रेजिस्टेंस बढ़ा दिया जाए।
दो उपाय हैं। धूप पड़ रही है बाहर। तो एक रास्ता तो यह है कि मैं छाता लगा कर जाऊं। तब मैं धूप को दुश्मन मान कर रोक रहा हूं। और एक रास्ता यह है कि मैं शरीर को ऐसा बलिष्ठ करके जाऊं कि धूप मुझे पीड़ा न दे पाए। लाओत्से कहेगा कि उचित है कि शरीर को बलिष्ठ करके जाओ; और तब धूप तुम्हें मित्र मालूम पड़ेगी। क्योंकि न इतनी धूप पड़ती, न तुम इतना शरीर को बलिष्ठ करके जाते। शरीर को ऐसा बलिष्ठ करके जाओ कि धूप शत्रु मालूम न पड़े। धूप तो कमजोर शरीर को शत्रु मालूम पड़ रही है।
यह जो हमारा, हम जिस ढंग से सोचते हैं, उस पर निर्भर करता है कि हम कोई सहयोग का मार्ग खोजें। जीवन और हमारे बीच सहयोग स्थापित हो।
संघर्ष अंततः हमें आत्मघात में ले जाएगा। क्योंकि संघर्ष हम कहां तक करेंगे? जो भी, संघर्ष की भाषा यह है कि जो भी हमें नुकसान पहुंचाता हुआ मालूम पड़े, उसे समाप्त करो। अगर हम मच्छरों को समाप्त करते हैं, और कल हमें लगता है कि चीनी हमें नुकसान पहुंचाते मालूम पड़ते हैं, तो हम उन्हें क्यों समाप्त न करें? परसों हमें लगता है कि भारतीय नुकसान पहुंचाते मालूम पड़ते हैं, हम उन्हें समाप्त क्यों न करें? जो भाषा है युद्ध की, वह सब जगह लागू होगी। जो भी नुकसान पहुंचाता मालूम पड़ता है, उसे समाप्त करो। अमरीका सोचे, रूस को समाप्त करो; रूस सोचे, अमरीका को समाप्त करे।
लेकिन एटामिक खोज के बाद रूस और अमरीका, दोनों के दिमाग में एक बात साफ हो गई कि समाप्त करने की भाषा अब न चलेगी। क्योंकि अब कोई भी किसी को समाप्त करे, तो इस आशा में नहीं कर सकता कि हम बचेंगे। हां, दस मिनट का फर्क पड़ेगा समाप्त होने में। बस इससे ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा। जो शुरू करेगा, वह दस मिनट बाद समाप्त होगा। जो आक्रामक होगा, वह दस मिनट बाद समाप्त होगा। जो डिफेंसिव होगा, वह दस मिनट पहले समाप्त हो जाएगा। लेकिन घोषणा करने को भी वक्त नहीं मिलेगा कि हम जीत गए हैं। तब रूस और अमरीका के मस्तिष्क में भी पिछले दस वर्षों में निरंतर एक ख्याल आया है कि सहयोग की भाषा में सोचें। संघर्ष की भाषा का अब कोई अर्थ नहीं है। साथी होकर को- एक्झिस्टेंस की भाषा में सोचें, सह-अस्तित्व की भाषा में सोचें।
मगर आदमी ही सह-अस्तित्व की भाषा में सोचे तो नहीं होगा। सह-अस्तित्व
की पूरी भाषा! फिर हम प्रकृति की तरफ भी वही भाषा होनी चाहिए। फिर बीमारियों की तरफ भी वही भाषा होनी चाहिए। फिर हर चीज की तरफ वही भाषा होनी चाहिए। लाओत्से की भाषा सह-अस्तित्व की भाषा है--समग्र के प्रति। और ऐसा नहीं हो सकता कि हम कहें कि हम सिर्फ फलां आदमी के प्रति हमारा सह-अस्तित्व का भाव है, बाकी में हम संघर्ष जारी रखेंगे। यह नहीं हो सकता। क्योंकि अगर हमने बाकी के साथ संघर्ष जारी रखा, तो हम तलाश रखेंगे मौके की कि कभी इस आदमी को भी समाप्त कर दें तो झंझट से मुक्त हो जाएं।
नए विज्ञान का जन्म होगा--लाओत्से की समझ के अनुसार। और लाओत्से की समझ जो है, अगर ठीक से हम समझें, तो लाओत्से का मतलब होता है पूरब का मस्तिष्क, दि ईस्टर्न माइंड। लाओत्से की समझ का अर्थ होता है पूर्वीय मन, पूरब के सोचने का ढंग यह है। अरस्तू का मतलब होता है पश्चिम के सोचने का ढंग।
इसे ऐसा अगर हम कहें, पश्चिम के सोचने के ढंग का अर्थ होता है तर्क, पूरब के सोचने के ढंग का अर्थ होता है अनुभूति। एक विज्ञान अब तक जो खड़ा हुआ है, वह आब्जेक्टिव है, वस्तु की खोज-बीन से खड़ा हुआ है। लाओत्से के साथ, योग के साथ, पतंजलि और बुद्ध के साथ कभी कोई विज्ञान खड़ा होगा, तो वह मनुष्य के मन की खोज से होगा, वस्तु की खोज से नहीं।
संतुलन नहीं हो पाएगा, समन्वय भी नहीं हो पाएगा। हां, लाओत्से का विज्ञान अगर निर्मित होना शुरू हो जाए, तो आधुनिक विज्ञान जो आज तक विकसित हुआ है, उसमें धीरे-धीरे आत्मसात हो जाएगा। क्योंकि यह सिर्फ खंड है। यह

एक टुकड़ा है। अनुभूति का विज्ञान विराट होगा। उसमें यह टुकड़ा समाविष्ट हो सकता है। और समाविष्ट होकर यह अपनी सार्थकता पा लेगा। समाविष्ट होकर इसका जो-जो दंश है, वह नष्ट हो जाएगा, इसमें जो-जो मूल्यवान है, वह उभर आएगा।
और पश्चिम में बहुत लक्षण दिखाई पड़ने शुरू हो गए, जिनसे साफ होता है
कि कई तरफ से हमला शुरू हुआ है। लाओत्से कई तरफ से प्रवेश करता है। लाओत्से का मतलब पूरब। अब जैसे कि अमरीका का एक वस्तुशिल्पी, आर्किटेक्ट है, राइट। उसने जो नए मकान बनाए हैं, वे लाओत्सियन हैं। उसके नए मकान की जो सारी-सारी योजना है, वह यह है कि मकान ऐसा होना चाहिए कि वह आस-पास के जमीन के टुकड़े, आस-पास के पहाड़ के टुकड़े, आस-पास के वृक्षों से पृथक न हो, उनका एक हिस्सा हो।
तो अगर राइट मकान बनाएगा और एक बड़ा वृक्ष आ जाएगा, तो वृक्ष को नहीं काटेगा, मकान को काटेगा। वह कहेगा, मकान आदमी के हाथ की बनाई चीज है, यह कट सकता है। अगर इस बीच, कमरे के बीच में वृक्ष आ जाएगा, तो राइट उसको बचाने की कोशिश करेगा, चाहे इस कमरे को थोड़ा तोड़ना-फोड़ना पड़े। वृक्ष नहीं तोड़ा जा सकता; वृक्ष यहीं रहेगा। इस बैठकखाने में भी वृक्ष की पींड़ रहेगी और बैठकखाने को ऐसा बनाएगा कि वृक्ष की पींड़ के साथ उसका एक तालमेल, एक संगति, एक संगीत बन जाए।
तो राइट ने जो मकान बनाए हैं, वे प्रकृति के हिस्से हैं। अगर दूर से उन्हें देखें, तो पता भी नहीं चलेगा कि मकान है। क्योंकि लाओत्से कहता है, ऐसा मकान, जो दिखाई पड़ जाए, वायलेंट है। वायलेंट है ही। अब जैसे कि यह तुम्हारा वुडलैंड का मकान है, अब यह वायलेंट है। अगर छब्बीस मंजिल ऊंचा मकान जाएगा, तो वृक्ष कहां रह जाएंगे? पहाड़ कहां रह जाएंगे? आदमी कहां रह जाएगा? वह सब खो जाएगा। मकान नंगा खड़ा हो जाएगा। बेतुका! उसका कोई को- एक्झिस्टेंस नहीं होगा। वह अकेला ही खड़ा हो जाएगा अपनी अकड़ से।
वृक्ष उसको छाते हों, पहाड़ उससे स्पर्श करते हों, नदियां उसके पास आवाज करती हों। आदमी उसके पास से गुजरे तो ऐसा न लगे कि मकान दुश्मन है; आदमी उसके पास से गुजरे तो नाचीज न हो जाए, ऐसा न लगे कि कीड़ा-मकोड़ा है। अपनी ही बनाई चीज के सामने आदमी कीड़ा-मकोड़ा हो जाए, तो खतरनाक उसके परिणाम हैं।
राइट जो मकान बनाता है, वे मकान ऐसे हैं कि उन मकानों में बगीचे भीतर चले जाएंगे, लॉन भीतर प्रवेश कर जाएगा, छतों पर वृक्ष हो जाएंगे, घास-पात उग आएगी तो उसको उखाड़ कर नहीं फेंका जाएगा। मकान ऐसा होगा कि जैसे प्रकृति में अपने आप उग आया हो--इट हैज ग्रोन। ऐसा नहीं कि हमने बना दिया, थोप दिया ऊपर से। जैसे वृक्ष उगते हैं, ऐसा मकान भी उगा है।
राइट का बहुत प्रभाव हुआ है अमरीका में और यूरोप में। क्योंकि उसके मकान में एक और ही सौंदर्य है। उसके मकान की छाया में एक और ही रस है। उसके मकान में बैठना प्रकृति से टूटना नहीं है, प्रकृति में ही होना है।
तो हजार रास्तों से पश्चिम के मन में लाओत्सियन ख्याल प्रवेश कर रहे हैं--हजार रास्तों से।
नया कवि है। तो नया कवि तुक नहीं बांध रहा है, व्याकरण की चिंता नहीं
कर रहा है। क्योंकि लाओत्से कहता है, हवाएं जब बहती हैं, तो तुमने कभी सुना कि उन्होंने व्याकरण की फिक्र की हो? और जब बादल गरजते हैं, तो तुमने कभी सुना कि वे कोई तुक बांधते हों? फिर भी उनका अपना एक छंद है; छंदहीन छंद है।
तो सारे पश्चिम पर, सारी दुनिया पर काव्य उतर रहा है, जो छंदहीन है। जिसमें एक आंतरिक लय है, लेकिन ऊपरी बिठाव नहीं है। जिसमें तुकबंदी नहीं है, मात्रा नहीं हैं, शब्दों की तौल नहीं है। लेकिन फिर भी भीतर एक बहाव है, एक प्रवाह है, एक धारा है। और उस धारा में एक संगीत है।
पश्चिम में चित्रकार चित्र बना रहे हैं। ऐसे चित्रकार हैं कुछ, जिन्होंने अपने चित्रों पर फ्रेम लगानी बंद कर दी है। क्योंकि फ्रेम कहीं तो नहीं होती सिवाय आदमी की बनाई हुई चीजों के। आकाश में कोई फ्रेम नहीं है। सूरज निकलता है फ्रेमलेस, उसमें कहीं कोई फ्रेम नहीं है। तारे बिना फ्रेम के हैं। फूल खिलते हैं, वृक्ष होते हैं, सब एंडलेस एक्सटेंशन है।

कहीं कोई चीज खतम होती नहीं मालूम पड़ती। सब चीजें चलती ही चली जाती हैं।
बढ़ते चले जाओ, चलती चली जाती हैं।
तो चित्रकार बना रहे हैं चित्र, जिन पर फ्रेम नहीं लगा रहे हैं। वे कहते हैं, हम फ्रेम न लगाएंगे, क्योंकि फ्रेम आदमी का बिठाया हुआ हिस्सा है। चित्र के भीतर सब आ जाना चाहिए, ऐसा भी जरूरी नहीं है।
लाओत्से के अनुसार पेंटिंग पैदा हुई थी चीन में। ताओ चित्रकला अलग ही चित्रकला है। क्योंकि लाओत्से जैसा आदमी जब भी होता है, तो उसकी दृष्टि को लेकर सब दिशाओं में काम शुरू होता है। तो लाओत्से के अनुसार चित्र बनने शुरू हुए थे। उन चित्रों का मजा ही और था! उन चित्रों में फ्रेम नहीं है। उन चित्रों में चीजें शुरू और अंत नहीं होतीं। जिंदगी में कहीं कोई चीज शुरू और अंत नहीं होती। सब चीजें एंडलेस, बिगनिंगलेस हैं। सिर्फ हम जो चीजें बनाते हैं, वे शुरू होती हैं और अंत होती हैं। तो लाओत्से के जो चित्रकार चित्र बनाते हैं, वे कहीं से भी शुरू हो सकते हैं, कहीं भी समाप्त हो सकते हैं।
नई चित्रकला में वह बात प्रवेश कर रही है। नई कथा में वह बात प्रवेश
कर रही है। कथा कहीं से भी शुरू होती है। पुरानी कथा देखिए। एक था राजा-- वहीं से शुरू होती थी। एक बिगनिंग थी। और एक अंत था कि विवाह हो गया, फिर वे दोनों सुख से रहने लगे। बस यहां सब चीजें इस फ्रेम के बीच में पूरी होती थीं। नई कथा कहीं से भी शुरू होती है; नई कथा कहीं भी पूरी हो जाती है। सच पूछा जाए, तो नई कथा पूरी होती नहीं, शुरू होती नहीं, एक फ्रैगमेंट है। क्योंकि लाओत्सियन जो ख्याल है, वह यह है कि हम कुछ भी कहें, वह एक फ्रैगमेंट होगा। वह पूरा नहीं हो सकता। हम खुद ही पूरे नहीं हैं। सब चीजें खंड ही हैं। तो खंड ही रहने दो, फिर उनको पूर्ण करने की नाहक चेष्टा मत दिखलाओ। अन्यथा विकृति होती है, कुरूप हो जाता है सब।
काव्य में, चित्र में, संगीत में, स्थापत्य में, मूर्ति में, विज्ञान में सब तरफ से पूरब का मन प्रवेश कर रहा है। पश्चिम बहुत आक्रांत है, पश्चिम बहुत भयभीत है। हरमन हेस ने कहीं लिखा है कि पश्चिम को पता चलेगा शीघ्र कि तुमने पूरब के ऊपर हमला करके जो विजय पा ली थी, वह बहुत थोड़े दिन की सिद्ध हुई। लेकिन जिस दिन पूरब अपनी पूरी अंतर-भावनाओं को लेकर हमला कर देगा, उस दिन उनकी विजय स्थायी हो सकती है। तुमने जो विजय पा ली थी, वह बहुत ऊपरी ही सिद्ध होने वाली थी, क्योंकि वह बंदूक के कुंदे पर थी। लेकिन अगर कभी पूरब अपने पूरे अनुभव को, जो उसने हजारों वर्षों में पाला है, लेकर हमला करेगा... । निश्चित ही, उसका हमला भी और तरह का होगा। क्योंकि अनुभूति हमला नहीं करती, चुपचाप न मालूम किस कोने से प्रवेश कर जाती है। वह प्रवेश कर रही है।
पश्चिम आक्रांत है। और पश्चिम को यह बात रोज-रोज अनुभव हो रही है कि उसके मापदंड हिल रहे हैं। उसने जो तय किया था, वह कंप रहा है। और पूरब बड़े जोर से, जैसे आकाश में अचानक बादल छा जाएं, ऐसा छाता जा रहा है। वह धीरे- धीरे पूरे पश्चिम को घेर लेगा। स्वाभाविक भी है, क्योंकि पश्चिम की पूरी पकड़, ठीक से हम समझें, तो बहुत ऊपरी है, सुपरफीशियल है, सतह पर है। और सतह पर है, इसीलिए पश्चिम जल्दी सफल हो सका। पूरब की सारी पकड़ इतनी आत्मगत और गहरी है कि जल्दी सफल नहीं हो सकता।
ध्यान रहे, मौसमी फूल चार महीने में लग जाते हैं, दो महीने में लग जाते हैं। स्थायी फूल लगाने हों तो वर्षों लगते हैं। पूरब की पकड़ गहरी है। इसलिए बहुत, हजारों वर्ष लगते हैं, तब कहीं पूरब की एकाध धारणा विजय पाती है। पश्चिम की धारणाएं बहुत ऊपरी हैं। सौ वर्ष में एक धारणा विजय पा सकती है और अस्त हो सकती है। लेकिन पूरब प्रतीक्षा कर सकता है। पूरब बहुत प्रतीक्षा कर सकता है, और मौका देख सकता है कि जब मौका आएगा और पश्चिम पराजय के किनारे खड़ा हो गया है और पराजय के किनारे खड़ा है, तब पूरब ने जो जाना है, वह वापस फैल जा सकता है। लाओत्से पूरब की अंतरतम प्रज्ञा है, दि इनरमोस्ट विजडम! जो सारभूत है पूरब का, वह लाओत्से में छिपा है।
संतुलन नहीं होगा, समन्वय नहीं होगा। लाओत्से की धारणा पर एक नए विज्ञान का जन्म हो सकता है। और जल्दी होगा। क्योंकि बहुत सी बातें हैं, जो कि आपके ख्याल में एकदम से नहीं आ सकतीं। जैसे यूक्लिड की ज्यामेट्री

पश्चिम का आधार थी अब तक। सारे विज्ञान के नीचे जो गणित का फैलाव था, वह यूक्लिडियन था। और कोई सोच भी नहीं सकता था कि नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री उसको बदल देगी। कभी कोई नहीं सोच सकता था। लेकिन पिछले डेढ़ सौ वर्षों में यूक्लिड के आधार हिल गए और उसकी जगह नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री आ गई। अब नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री बिल्कुल लाओत्सियन है। कोई जानता नहीं है कि वह लाओत्सियन है, वह बिल्कुल लाओत्सियन है।
यूक्लिड कहता है, दो समानांतर रेखाएं कहीं नहीं मिलती हैं। नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री कहती है कि दो समानांतर रेखाएं मिली ही हुई हैं। तो अब लाओत्सियन सूत्र जो है न--मिली ही हुई हैं! तुम्हारे खींचने की कमजोरी है कि तुम आखिर तक नहीं खींचते, अन्यथा वे मिल जाएंगी। तुम खींचे चले जाओ, एक वक्त आएगा, वे मिल जाएंगी। तुम बहुत निकट देखते हो, दूर नहीं देखते। लेकिन दूर निकट का हिस्सा है। और अब स्वीकार करना पड़ रहा है कि अगर कोई भी तरह की दो समानांतर पैरेलल रेखाएं अंतहीन बढ़ाई जाएं, तो मिल जाएंगी।
यूक्लिड कहता है कि किसी भी वर्तुल, किसी भी सर्किल का कोई खंड स्ट्रेट लाइन नहीं हो सकता। कैसे होगा? एक वर्तुल है। उसका हम एक टुकड़ा तोड़ें, तो वह घूमा ही हुआ होगा, स्ट्रेट नहीं हो सकता। नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री कहती है कि सब स्ट्रेट लाइन भी किसी बड़े वर्तुल का हिस्सा हैं। कितनी ही सीधी रेखा खींचो, अगर तुम दोनों तरफ खींचते चले जाओगे, बड़ा वर्तुल निर्मित हो जाएगा।
और अब स्वीकार करना पड़ रहा है कि वह बात ठीक है। क्योंकि इस पृथ्वी पर
हम कोई भी सीधी रेखा खींचें, चूंकि पृथ्वी गोल है... । अगर मैं इस कमरे में, यह हमारा कमरा बिल्कुल सीधा दिखाई पड़ रहा है न! यह रेखा बिल्कुल सीधी है। लेकिन पृथ्वी गोल है, तो यह रेखा सीधी हो नहीं सकती। यह गोल पृथ्वी का, बहुत बड़ा गोल है, उसका एक छोटा सा खंड है। अगर हम किसी भी सीधी रेखा को खींचते ही चले जाएं दोनों तरफ, तो अंत में वर्तुल निर्मित हो जाएगा। इसका मतलब हुआ कि सब सीधी रेखाएं वर्तुल के खंड हैं। और यूक्लिड कहता था कि कोई वर्तुल का खंड सीधी रेखा नहीं हो सकता।
यूक्लिड की ज्यामेट्री की जगह नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री आ गई है। पिछले दो सौ वर्षों में पश्चिम की साइंस का जो बुनियादी आधार था, वह
था सर्टेंटी, निश्चयात्मकता। क्योंकि विज्ञान अगर निश्चय न हो, तो फिर काव्य में और विज्ञान में फर्क क्या है? विज्ञान को बिल्कुल निश्चित होना चाहिए, तभी विज्ञान है। लेकिन अभी पिछले पंद्रह वर्षों से नया सिद्धांत आया हैः अनसर्टेंटी, अनिश्चय। क्योंकि जैसे ही हमने अणु को तोड़ा और इलेक्ट्रान तक पहुंचे, वैसे ही हमको पता चला कि इलेक्ट्रान का जो व्यवहार है, वह अनसर्टेन है। उसके बाबत निश्चित नहीं कहा जा सकता कि वह क्या करेगा।
इलेक्ट्रान का व्यवहार जो है, आदमी जैसा है। अगर आदमी सच्चा हो, तो आदमी के बाबत भी नहीं कहा जा सकता कि वह क्या करेगा। हां, झूठे आदमियों के बाबत कहा जा सकता है कि वे क्या करेंगे। वे सुबह उठ कर क्या करेंगे, बराबर कहा जा सकता है। दोपहर क्या करेंगे, बराबर कहा जा सकता है। शाम क्या करेंगे, कहा जा सकता है। सांझ क्या करेंगे, कहा जा सकता है। उनका पूरा भविष्य लिखा जा सकता है कि ये तीन दफे क्रोध करेंगे दिन में, छह दफे सिगरेट पीएंगे, सात दफे यह करेंगे, वह सब कहा जा सकता है। लेकिन आथेंटिक आदमी के बाबत कल का नहीं कहा जा सकता कि वह क्या करेगा। कल सुबह क्या करेगा, नहीं कहा जा सकता।
रात वह आथेंटिक आदमी उठ कर और सोई हुई यशोधरा को छोड़ कर चला जाएगा, यह नहीं कहा जा सकता। सोच भी नहीं सकती थी यशोधरा कि यह आदमी जो रात साथ सोया था, एक दिन का बच्चा था अभी पैदा हुआ, यह चुपचाप रात नदारद हो जाएगा! यह उसकी कल्पना के भी भीतर नहीं आ सकता था। कोई कारण ही नहीं दिखाई पड़ता था कि यह आदमी कल सुबह अचानक नदारद हो जाएगा।
आथेंटिक, प्रामाणिक आदमी अनिश्चित होगा। अनिश्चित अर्थात स्वतंत्र होगा। निश्चित अर्थात गुलाम होगा।

हम सोचते थे, पदार्थ तो निश्चित ही होगा, क्योंकि पदार्थ तो पदार्थ है। लेकिन अब पदार्थ रहा नहीं, अब पदार्थ ऊर्जा है, इनर्जी है। और इनर्जी अनिश्चित है। इसलिए पिछले पंद्रह वर्षों में जो विज्ञान की गहनतम खोज है, वह हैः प्रिंसिपल ऑफ अनसर्टेंटी। अब अगर विज्ञान भी अनसर्टेन है, तो काव्य में और विज्ञान में अंतर क्या रहेगा?
आइंस्टीन ने अपने अंतिम दिनों में कहा है कि बहुत शीघ्र वह वक्त आएगा
कि वैज्ञानिकों के वक्तव्य मिस्टिक्स के वक्तव्य मालूम पड़ने लगेंगे कि ये कोई रहस्यवादियों के वक्तव्य हैं। और एडिंगटन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जब मैंने सोचना शुरू किया था, तो मैं सोचता था, जगत एक वस्तु है; और अब जब मैं अपना जीवन समाप्त कर रहा हूं, तो मैं कह सकता हूं, जगत एक वस्तु नहीं, एक विचार है। इट रिजेंबल्स मोर ए थॉट दैन ए थिंग।
अब विचार और वस्तु में बड़ा फर्क है। और वैज्ञानिक कहें कि जगत एक विचार जैसा मालूम पड़ता है, वस्तु जैसा नहीं, तो फिर जिन ऋषियों ने कहा कि जगत एक ब्रह्म है, कुछ फर्क रहा? जिन ऋषियों ने कहा, जगत एक आत्मा है, जगत एक चैतन्य है। तो अगर एडिंगटन कहता है, गणितज्ञ, वैज्ञानिक कहता है कि जगत एक विचार जैसा मालूम पड़ता है, वस्तु जैसा नहीं! तो एडिंगटन के वक्तव्य में और ऋषियों के वक्तव्य में फासला नहीं रह जाता।
विज्ञान जगह-जगह से टूट रहा है, उसका घर गिर रहा है। और यह सदी पूरी होते-होते विज्ञान का भवन धीरे-धीरे विनष्ट हो जाएगा। और उसकी जगह एक बहुत नई जीवन-चेतना ले लेगी। और वह जीवन-चेतना सहयोग की, विराट के साथ एक होने की! वह जीवन की जो धारा होगी, ब्रह्मवादी होगी, वस्तुवादी नहीं।
समन्वय नहीं होगा दोनों के बीच। यह खंड तो टूटेगा और गिरेगा। और विराट का अभ्युदय इसके भीतर से हो सकता है। होना चाहिए। होने की पूरी संभावना है।

ताओ उपनिषद, भाग एक
सातवां प्रवचन

निष्क्रिय कर्म व निःशब्द संवाद--ज्ञानी का

Chapter 2 : Sutra 3

Therefore the sage manages affairs without
action; and conveys his doctrine without words.

अध्याय 2 : सूत्र 3

इसलिए ज्ञानी निष्क्रिय भाव से अपने कार्यों
की व्यवस्था करते हैं तथा निःशब्द द्वारा अपने
सिद्धांतों का संप्रेषण करते हैं।

अस्तित्व द्वंद्व है। जो भी किया जाए, उसके साथ ही उससे विपरीत भी होना शुरू हो जाता है।
लाओत्से ने पहले दो सूत्रों में अस्तित्व की इस द्वंद्वात्मकता की बात की है। और अब तीसरे सूत्र में लाओत्से कहता है, "इसलिए--देयरफोर दि सेज मैनेजेज अफेयर्स विदाउट एक्शन--इसलिए ज्ञानी निष्क्रिय भाव से अपने कार्यों की व्यवस्था करता है।"
इसे समझना, थोड़े गहरे में जाना पड़े। अगर ज्ञानी किसी से कहे कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, तो वह साथ ही घृणा को जन्म दे रहा है। अगर ज्ञानी कहे कि मैं लोगों के हित के लिए काम करता हूं, तो वह अहित को जन्म दे रहा है। अगर ज्ञानी कहे कि मैं तुम्हें जो देता हूं, यह सत्य है, तो वह असत्य को जन्म दे रहा है। लाओत्से ने पहले कहा कि प्रत्येक चीज द्वंद्व से भरी है। यहां हम कुछ भी करेंगे, तो उससे विपरीत तत्काल हो जाता है। विपरीत बचेगा नहीं। विपरीत से बचने का उपाय नहीं है। हमने कुछ किया कि हम विपरीत के जन्मदाता हो जाते हैं। हमने किसी की रक्षा की, तो हम किसी को नुकसान पहुंचा देते हैं। और हमने किसी को बचाया, तो हम किसी को मिटाने का कारण बन जाते हैं।
यदि द्वंद्व जीवन का सार है, तो हम जो भी करेंगे, उससे विपरीत भी तत्काल हो जाएगा। चाहे हमें ज्ञात हो, चाहे हमें ज्ञात न हो; चाहे हम पहचान पाएं, चाहे हम न पहचान पाएं; चाहे किसी को ज्ञात हो और चाहे किसी को ज्ञात न हो; लेकिन ऐसा नहीं हो सकता, यह असंभव है कि हम एक को पैदा करें और उससे उलटा पैदा न हो जाए।
इसलिए लाओत्से कहता है, ज्ञानी बिना सक्रिय हुए व्यवस्था करते हैं। बिना सक्रिय हुए व्यवस्था करते हैं। अगर वे चाहते हैं कि आपका मंगल हो, तो आपके मंगल के लिए सक्रिय नहीं होते। अगर वे मंगल के लिए सक्रिय होंगे, तो आपका अमंगल भी हो जाएगा।
यह बहुत कठिन बात है। जटिल भी और गहन भी। क्योंकि साधारणतः हम सोचते हैं कि अगर किसी का मंगल करना हो, तो मंगल करना पड़ेगा। अगर किसी की सेवा करनी है, तो सेवा करनी पड़ेगी। और किसी को सहायता पहुंचानी है, तो सहायता पहुंचानी पड़ेगी। लेकिन लाओत्से जिस सूत्र को समझा रहा है, वह यह है कि तुम जब सेवा करोगे, तभी तुम उसे गुलाम बनाने का यंत्र भी पैदा कर दोगे। जब तुम किसी को प्रेम करोगे, तो तुम घृणा का भी आयोजन निर्मित कर दोगे। क्योंकि प्रकट होते ही प्रेम घृणा को जन्म देता है; सक्रिय होते ही सेवा शत्रुता बन जाती है।
तो ज्ञानी क्या करेगा? क्या ज्ञानी प्रेम नहीं करेगा? क्या ज्ञानी मंगल के लिए कामना नहीं करेगा? क्या ज्ञानी सेवा के लिए आतुर नहीं होगा? अगर वह ज्ञानी है, तो लाओत्से कहता है, ही मैनेजेज अफेयर्स विदाउट एक्शन, वह बिना सक्रिय हुए व्यवस्था करेगा। वह अगर प्रेम भी करेगा, तो

प्रेम को सक्रियता नहीं देगा। उसका प्रेम कभी भी किसी क्रिया में प्रकट नहीं होगा। क्रिया तो दूर, वह अपने प्रेम को शब्द भी नहीं देगा। वह यह भी नहीं कहेगा कि मैं प्रेम करता हूं। इसलिए नहीं कहेगा कि जो कहता है, मैं प्रेम करता हूं, यह कहने से ही इस शब्द के आस-पास घृणा की रेखा खिंच जाती है।
जब मैं किसी से कहता हूं, मैं प्रेम करता हूं, तो एक तो यह बात साफ हुई
कि पहले मैं प्रेम नहीं करता था, अब करता हूं। और जब मैं कहता हूं, मैं प्रेम करता हूं, तो इसकी शर्तें होंगी कि किस स्थिति में मैं करूंगा और किस स्थिति में नहीं करूंगा। या कि यह बेशर्त होगा? कहा हुआ कोई भी शब्द बेशर्त, अनकंडीशनल नहीं हो सकता। फिर जब मैं कहता हूं, मैं प्रेम करता हूं, तो मानता हूं कि कल नहीं करता था, मानना पड़ेगा कि कल भी हो सकता है न करूं। इस प्रेम के छोटे से द्वीप के आस-पास बड़ा सागर अप्रेम का होगा। असल में, उस सागर से अलग दिखलाने के लिए ही तो मैं घोषणा करता हूं कि मैं प्रेम करता हूं। वह जो अंधेरा घिरा है चारों तरफ, उसमें इस दीए को जलाता हूं। उस अंधेरे के विपरीत ही यह दीया जला रहा हूं। और दीया जला कर मैं अंधेरे को और प्रकट कर रहा हूं, स्पष्ट कर रहा हूं; अंधेरे को भी मजबूत कर रहा हूं। लाओत्से कहता है, ज्ञानी अगर प्रेम करेगा, तो सक्रिय नहीं होगा। इतना
भी सक्रिय नहीं होगा कि वह कहे कि मैं प्रेम करता हूं। उसका प्रेम अकर्ममय होगा, इनएक्टिव होगा। उसका प्रेम उसकी घोषणा नहीं, उसका अस्तित्व होगा। उसका प्रेम उसका वक्तव्य नहीं, उसकी आत्मा होगी। वह प्रेम ही होगा। और इसलिए, मैं प्रेम करता हूं, यह कहना उसके लिए उचित नहीं होगा। जो घृणा है, वह कह सकता है, मैं प्रेम करता हूं। लेकिन जो प्रेम ही है, वह कैसे कहेगा कि मैं प्रेम करता हूं? और प्रेम करता हूं, यह तो कहेगा ही नहीं, प्रेम करने के लिए जो आयोजना करनी पड़ती है, जो कर्म करना पड़ता है, वह भी वह करने नहीं जाएगा। उसका प्रेम एक मौन अभिव्यक्ति होगी, एक शून्य अभिव्यक्ति होगी। उसका प्रेम एक मौजूदगी होगी--अघोषित! एक प्रेजेंस होगी, एक उपस्थिति होगी--अप्रचारित, निःशब्द, निष्क्रिय। और बड़े आश्चर्य की बात तो यही है कि ऐसा जो प्रेम है, वह अपने से विपरीत को पैदा नहीं करता, घृणा को पैदा नहीं करता। क्योंकि जो सक्रिय नहीं हुआ, वह द्वंद्व के जगत में नहीं आया। ऐसा प्रेम सिर्फ प्रेम ही होता है। और ऐसा प्रेम कभी समाप्त नहीं होता; क्योंकि जो शुरू ही नहीं हुआ समय की धारा में, वह समय की धारा में समाप्त भी नहीं होगा।
पर ऐसे प्रेम को पहचानना अति कठिन है। क्योंकि हम शब्दों को पहचानते हैं। हम कर्मों को पहचानते हैं। कोई व्यक्ति कहे कि मैं प्रेम करता हूं, तो समझ में आता। कोई ऐसा कर्म करे प्रेम करने जैसा, तो समझ में आता। अगर निष्क्रिय प्रेम हो, अनभिव्यक्त प्रेम हो, अघोषित प्रेम हो, तो हमारे ख्याल में ही नहीं आता। हम समझेंगे, नहीं है। इसलिए बहुत बार ऐसा हुआ कि इस पृथ्वी पर ठीक-ठीक प्रेमी नहीं पहचाने जा सके।
जीसस एक गांव से गुजर रहे हैं। और एक वृक्ष के तले विश्राम किया है।
वह वृक्ष उस जमाने की बड़ी वेश्या मेग्दालीन का वृक्ष है, उसका बगीचा है। उसने अपनी खिड़की से झांक कर जीसस को देखा, जब वह जाने के करीब थे विश्राम करके। उसने बहुत लोग देखे थे, इतना सुंदर व्यक्ति नहीं देखा था। एक सौंदर्य है जो शरीर का है, और जो थोड़े ही परिचय से विलीन हो जाता है। और एक सौंदर्य है जो आत्मा का है, जो परिचय की गहराई से गहन होता जाता है। एक सौंदर्य है जो आकृति का है। और एक सौंदर्य है जो अस्तित्व का है। उसने बहुत सुंदर लोग देखे थे। मेग्दालीन सुंदरतम स्त्रियों में एक थी। सम्राट उसके द्वार पर दस्तक देते थे। सम्राटों को भी सदा द्वार खुला हुआ नहीं मिलता था। जीसस को देख वह मोहित हो गई। वह निकली अपने भवन के बाहर, जाते हुए युवक को रोका और जीसस से कहा, भीतर आएं, मेहमान बनें मेरे।
जीसस ने कहा, अब तो मेरा विश्राम पूरा हो चुका। कभी फिर तुम्हारे राह
पर थक जाऊंगा, तो अब वृक्ष के नीचे विश्राम न करके भीतर आ जाऊंगा। पर अब तो मेरे जाने का समय हुआ।
मेग्दालीन के लिए यह भारी अपमान था। वह सोच भी नहीं सकती थी कि एक भिखारी जैसा युवक हतप्रभ न हो जाएगा उसे देख कर! बड़े सम्राट उसे देख कर होश

खो देते थे। और जीसस ने अपना झोला उठा लिया, वे चलने को तत्पर हो गए। मेग्दालीन ने कहा, युवक, यह अपमानजनक है! यह पहला मौका है कि मैंने किसी को निमंत्रण दिया है। क्या तुम इतना भी प्रेम मेरे प्रति प्रकट न करोगे कि दो क्षण मेरे घर में रुक जाओ?
जीसस ने कहा, जो तुम्हारे पास प्रेम प्रकट करने आते हैं, फिर से सोचना, उन्होंने तुम्हें कभी प्रेम किया है? जिन्होंने प्रकट किया है, उन्होंने कभी प्रेम किया है? मैं ही हूं अकेला जो प्रेम कर सकता हूं। लेकिन अभी तो मेरे जाने का समय हुआ।
मेग्दालीन नहीं समझ पाई होगी जीसस का यह कहना कि मैं ही हूं अकेला जो प्रेम कर सकता हूं, लेकिन अभी तो मेरे जाने का समय हुआ। सैकड़ों वर्ष तक जीसस के इस वक्तव्य पर विचार होता रहा है कि जीसस का क्या मतलब था कि मैं ही हूं अकेला जो प्रेम कर सकता हूं। अगर ऐसा था, तो प्रेम प्रकट करना था। यह वक्तव्य भी बिल्कुल इम्पर्सनल है, अवैयक्तिक है। जीसस ने यह नहीं कहा कि मेग्दालीन, मैं तुझे प्रेम करता हूं। जीसस ने कहा, मैं ही हूं अकेला जो प्रेम कर सकता हूं। यह किसी व्यक्ति के प्रति कही गई बात नहीं थी। सूचक थी। और अगर प्रेम था, तो थोड़ा सा कृत्य करके दिखाना था! इतना ही कृत्य करते कि उसके घर के भीतर चले जाते। यह कैसा प्रेम था?
फिर दुबारा कभी जीसस उस वृक्ष के नीचे भी नहीं रुके और दुबारा कभी मेग्दालीन के घर में भी नहीं गए। दुबारा उस रास्ते से गुजरने का मौका ही न आया। वह जीसस का जो वक्तव्य था कि मैं ही हूं अकेला जो प्रेम कर सकता हूं, वह न तो क्रिया बना और न व्यक्ति के प्रति घोषणा बना। पर उसका अर्थ क्या था?
लाओत्से को समझेंगे तो ख्याल में आएगा। फिर भी, लाओत्से शायद इतना भी
न कहता कि मैं ही हूं अकेला जो प्रेम कर सकता हूं। लाओत्से इतना भी न कहता। क्योंकि इतना भी बहुत हो गया। इतने में भी रूप मिल गया, आकृति बन गई। इतने में भी व्यक्त हो गई बात और समय की धारा में प्रवेश कर गई। लाओत्से चुपचाप ही चल देता; लाओत्से उत्तर भी न देता। क्योंकि लाओत्से कहता है कि जैसे ही हम कुछ प्रकट करते हैं, उससे विपरीत निर्मित हो जाता है, तत्क्षण! जैसे मैं बोलता हूं और पर्वत से प्रतिध्वनि गूंज जाती है, ऐसे ही। यहां प्रेम, वहां घृणा संगृहीत होने लगती है! यहां दया, वहां कठोरता की पर्तें जमने लगती हैं! यहां अहिंसा, वहां हिंसा निवास बनाने लगती है! हम जो भी करते हैं, उससे विपरीत से नहीं बच सकते हैं।
इसलिए एक बहुत अनूठी घटना घटती है कि जिसे भी हम प्रेम करते हैं, उसी
से हम पीड़ा पाते हैं। जो भी किसी को प्रेम करेगा, वह उसी से पीड़ा पाएगा जिससे प्रेम करेगा। प्रेम से पीड़ा नहीं मिलनी चाहिए। लेकिन प्रेम प्रकट होकर तत्काल अप्रेम को पैदा कर देता है। अप्रेम से पीड़ा मिलती है। लाओत्से कहता है, जो ज्ञानी हैं, जो जानते हैं, जिन्हें इस राज का पता
है कि अस्तित्व में किसी भी चीज को बनाओ, विपरीत बन जाता है--इससे बचने का कोई उपाय नहीं है, इससे अन्यथा हो ही नहीं सकता, यही नियम है--वे क्या करेंगे?
वे व्यवस्था तो करते हैं, लेकिन बिना क्रिया के व्यवस्था करते हैं।
"दि सेज कनवेज हिज डॉक्ट्रिन विदाउट वर्ड्स।"
और वह ज्ञानी जो है, बिना शब्द के अपना सिद्धांत समझाता है। बिना कर्म
के अपने व्यक्तित्व को प्रकट करता है, बिना शब्द के अपनी दृष्टि को, अपने दर्शन को।
सोचना पड़ेगा। क्योंकि ऐसा एक भी ज्ञानी नहीं हुआ, जिसने शब्द का उपयोग न किया हो। और लाओत्से कहता है, ज्ञानी कभी भी शब्द से अपने दर्शन को अभिव्यक्त नहीं करता। तो इसके दो मतलब हो सकते हैं।
एक मतलब तो यह कि जो भी बोले हैं, वे कोई भी ज्ञानी नहीं थे। और जो ज्ञानी थे, उनका हमें कोई पता नहीं। फिर लाओत्से, बुद्ध और जीसस और महावीर और कृष्ण और क्राइस्ट, वे भी ज्ञानियों की पंक्ति में सम्मिलित न हो सकेंगे। दूसरा अर्थ यह हो सकता है--और वही अर्थ है--कि बुद्ध ने जो भी बोला है, उस बोलने में उनका दर्शन नहीं है; जो भी बोला है, उसमें उनकी सार बात नहीं है। बोलने से तो केवल उन्होंने लोगों को बुलाया है निकट। जो निकट आ

गए हैं, उनसे बिना बोले कहा है। बोलना तो एक डिवाइस थी, एक उपाय था, सत्य को बताने का नहीं, वे जो बोलने के सिवाय कुछ भी नहीं समझ सकते हैं, उन्हें पास बुलाने का।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। बोलने से तो सत्य को बोला नहीं जा सकता। बोलते ही सत्य असत्य को जन्म देता है। और बोलते ही सिद्धांत विवाद बन जाता है। इसलिए सब सिद्धांत वाद बन जाते हैं, बोलते ही। वाद बनते ही विपरीत वाद निर्मित होता है। संघर्ष और कलह और संप्रदाय और मत, सारा उपद्रव का जन्म होता है। क्या सत्य के बोलने से ऐसा होगा कि सत्य बोला जाए तो विवाद पैदा हो? सत्य के बोलने से तो विवाद पैदा नहीं होगा। लेकिन सत्य बोला ही नहीं जाता, और न कभी बोला गया है। जो भी बोला गया है, वह केवल, जो शब्द को ही समझ सकते हैं, उनको बुलाने का उपाय है। एक बार वे पास आ जाएं, एक बार वे निकट मौजूद हो जाएं, तो उनसे मौन में भी बात की जा सकती है।
यह सिर्फ प्रलोभन है, बोलना सिर्फ प्रलोभन है। जैसे हम छोटे बच्चों
को शक्कर की गोलियां दे देते हैं स्कूल बुलाने के लिए, खेल-खिलौने रख देते हैं स्कूल बुलाने के लिए। फिर धीरे-धीरे खेल-खिलौने कम होते जाते हैं। नर्सरी में तो हमें खेल-खिलौने ही रखने पड़ते हैं; पढ़ाई-लिखाई का कोई सवाल नहीं। कहते उसे स्कूल हैं, बाकी पढ़ाई-लिखाई का कोई वास्ता नहीं है। फिर धीरे-धीरे खिलौने विदा होने लगेंगे। फिर भी बच्चों की किताबों में हमें बड़ी रंगीन तस्वीरें रखनी पड़ती हैं। जब बच्चे पहली दफे किताब लेते हैं, तो किताब के लिए रंगीन तस्वीर नहीं देखते, रंगीन तस्वीर के लिए किताब पढ़ते हैं। फिर रंगीन तस्वीरें समाप्त होने लगती हैं। फिर धीरे-धीरे तस्वीरें विदा हो जाती हैं।
ठीक ऐसे ही बुद्ध या लाओत्से जब बोलते हैं, तो बोलते हैं उनके लिए, जो सिर्फ बोलने को ही समझ सकेंगे। लोग जब पास आ जाते हैं, निकट आ जाते हैं, पास बैठने की क्षमता पा जाते हैं, सत्संग का रस और स्वाद मिलने लगता है, तब बुद्ध और लाओत्से जैसे लोग मौन होने लगते हैं। और जो वाणी के लोभ में आया था, वह किसी दिन मौन का संदेश पाकर लौटता है।
ज्ञानियों ने कभी भी कुछ कहा नहीं है। बहुत कुछ कहा है, यह जानते हुए कहता हूं। ज्ञानी सुबह से सांझ तक समझाते रहे हैं लोगों को, फिर भी सत्य उन्होंने नहीं कहा है। सत्य तो उन्होंने तब दिया है, जब सुनने वाला मौन में लेने को राजी हो गया। जब उसकी ग्राहकता आ गई, जब वह रिसेप्टिव हुआ, और जब उसकी तैयारी हो गई, तब उन्होंने उसे मौन में कुछ कहा है। कहने की घटना सदा मौन में घटी है।
लेकिन हम जो संग्रह करते हैं, वह तो बोला हुआ है। हम जो संग्रह करते हैं, वह बोला हुआ है। इसलिए शास्त्र में वह छूट जाता है, जो सत्य है। क्योंकि सत्य कभी शब्द में कहा नहीं गया था। जो कहा गया था, वह केवल प्रलोभन था। वह ऐसा ही है कि हम कभी भविष्य के लिए किसी स्कूल को बचाना चाहें, उसकी स्मृति को बचाना चाहें, स्कूल में रखे हुए खेल-खिलौने इकट्ठे कर लें। और बाद में, हजारों वर्ष बाद, हम कहें कि यही था स्कूल में जो पढ़ाया जाता था।
ये खेल-खिलौने नहीं पढ़ाए जाते थे। यह तो सिर्फ प्रलोभन था। जो पढ़ाया जाता था, वह यह खेल-खिलौनों में नहीं है। यह तो सिर्फ बच्चों को बुलाने के लिए निमंत्रण था।
बुद्ध ने जो कहा है, कृष्ण ने जो कहा है, लाओत्से ने जो कहा है, महावीर
ने जो कहा है, उस कहे हुए को हम संगृहीत कर लेते हैं। लेकिन जो नहीं कहा है, उसको तो संग्रह करने का कोई उपाय नहीं है। और जो नहीं कहा है, या नहीं कह कर ही जो कहा है, चुप रह कर जो बताया है, मौजूद होकर, किसी के पास होकर जो बताया है, सन्निधि में जो, उपस्थिति में जिसकी प्रतीति हुई है, जो एक से दूसरे में प्रवेश कर गया है एक जीवंत धारा की तरह, उसका तो संग्रह नहीं हो पाता। इसलिए हजारों वर्षों तक ऋषियों ने कोशिश की कि ग्रंथ लिखे न जाएं। हजारों वर्षों तक इस बात की आग्रहपूर्ण चेष्टा रही कि कुछ भी लिखा न जाए। क्योंकि लिखे हुए में वह तो छूट जाएगा जिसे कहने के लिए यह सब कहा था, यद्यपि इसमें वह कहा नहीं जा सका है। वे खाली, रिक्त स्थान तो छूट ही जाएंगे। और वही थे असली। इसलिए सैकड़ों वर्षों तक, बल्कि हजारों वर्षों

तक... । वेद लिखे गए कोई पांच हजार वर्ष पहले। लेकिन लिखे जाने के पहले कम से कम नब्बे हजार वर्ष तक वे अस्तित्व में थे--कम से कम! लिखे तो गए हैं पांच ही हजार वर्ष पहले, लेकिन कम से कम नब्बे हजार--कम से कम कह रहा हूं, इससे ज्यादा की संभावना है, यह न्यूनतम बता रहा हूं आपको--कम से कम नब्बे हजार वर्ष तक वे अस्तित्व में थे। और जो वेद जैसे विचार को जन्म दे सकते थे, वे लिखने की कला न खोज पाते हों, यह नासमझी की बात है। जो वेद जैसे विचार को जन्म दे सकते हों, वे भाषा न बना पाते हों, लिपि न बना पाते हों, यह पागलपन की बात है।
नब्बे हजार वर्ष तक वेद क्यों नहीं लिखे गए?
आग्रह था कि न लिखे जाएं, न लिखे जाएं। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को सीधा ही संक्रमित करता रहे, डायरेक्ट ट्रांसफर हो। क्योंकि वह व्यक्ति शब्द भी दे सकेगा और वह शून्य मौजूदगी भी दे सकेगा! किताब फिर शून्य मौजूदगी नहीं दे सकेगी। किताब तो जड़ हो जाएगी। और किताब उनके भी हाथ लग जाएगी, जो कुछ भी नहीं जानते हैं। किताब को बचाना मुश्किल है। किताब अज्ञानी के हाथ में भी लग सकती है। और किताब अज्ञानी के हाथ में लग जाए तो अज्ञानी को इतनी जल्दी ज्ञानी होने का भ्रम पैदा होता है जिसका कोई हिसाब नहीं। अज्ञानी होना बुरा नहीं है, अज्ञान में ज्ञानी का भ्रम पैदा हो जाना बहुत खतरनाक है। क्योंकि फिर ज्ञान के द्वार ही बंद हो गए। हजारों-हजारों साल तक, सदियों तक आग्रह किया गया कि कुछ लिखा न जाए।
जो जानता हो, वह उसे दे दे जो जानने के योग्य हो गया हो। जब तक जानने के योग्य न हो, तब तक शब्द का उपयोग करे; और जब जानने के योग्य हो जाए, तो निःशब्द संभाषण करे, मौन में कह दे। और जब तक कोई मौन को समझने के योग्य न हो जाए, तब तक जाहिर उसके सामने रखा जाए कि अभी उसे कुछ भी नहीं कहा गया है। अभी सिर्फ बाहरी बातें की गई हैं। अभी असली बात नहीं कही गई। तब तक उसे रोका जाए, ताकि उसे ज्ञानी होने का भ्रम न पैदा हो जाए।
जिस दिन से किताबें लिखी गईं, उस दिन से ज्ञानी कम और ज्ञान ज्यादा मालूम होने लगा। फिर जिस दिन से किताबें छापी गईं, उस दिन से तो बात ही सब समाप्त हो गई। क्योंकि लिखी हुई किताब भी बहुत सीमित लोगों तक पहुंच सकती थी; छपी हुई किताब का तो कोई पहुंचने की बाधा न रही। और जो भी महत्वपूर्ण था, वह क्रमशः--क्योंकि वह तो व्यक्ति के द्वारा सीधा ही संक्रमण हो सकता था--वह खोता चला गया।
लाओत्से जिन दिनों की बात कर रहा है, वह उन दिनों की बात है, जब ज्ञानी अपने दर्शन को निःशब्द में समझाते थे।
इसे और दो-तीन तरह से भी देख लेना जरूरी है।
जितने पीछे हम लौट जाएंगे, उतना ही साधना पांडित्य नहीं है। जितने पीछे हम लौटेंगे, साधना पांडित्य नहीं है। साधना मौन होने का अभ्यास है।
और पांडित्य तो शब्द से भरने का अभ्यास है।
बुद्ध ने घर छोड़ा। तो वे गए; जो भी जानता था, उसके पास गए। और उससे कहा
कि मैं परम सत्य की खोज में आया हूं, तुम्हें परम सत्य हो पता तो मुझे कहो। तो अदभुत लोग थे! जिन्हें नहीं पता था, उन्होंने कहा, परम सत्य का हमें पता नहीं; हम तो शास्त्र सत्य को जानते हैं। तो वह हम तुमसे कह सकते हैं। तो बुद्ध ने कहा, शास्त्र सत्य मुझे नहीं जानना, मुझे तो सत्य ही जानना है। तो उन्होंने कहा, तुम और किसी के पास जाओ।
फिर बुद्ध उनके पास गए, जिन्होंने उन्हें साधना कराई। एक व्यक्ति के पास बुद्ध तीन वर्ष तक साधना करते थे। जो-जो उसने कहा, वह उन्होंने पूरा किया। जब सब पूरा कर डाला, तब बुद्ध ने कहा कि अब कुछ और भी करने को बचा है? या मेरे करने में कोई भूल-चूक रही है? उस गुरु ने कहा, नहीं, तुम्हारे करने में कोई भूल-चूक नहीं रही; तुमने पूरी निष्ठा से पूरा कर दिया है। तो बुद्ध ने कहा, लेकिन मुझे परम सत्य का अभी तक कोई पता नहीं चला। तो उस व्यक्ति ने कहा, जितना मैं जानता था, उतना मैंने तुम्हें करवा दिया। परम सत्य का मुझे भी कोई पता नहीं है। अब तुम कहीं और जाओ; तुम किसी और को खोजो।
बुद्ध छह वर्ष तक ऐसे चक्कर काटते फिरे। जिसके पास जो सीखने मिला, उन्होंने सीखा। जब तक नहीं सीखा, तब तक सवाल भी नहीं पूछा। यह बड़े मजे की बात है। तीन साल एक आदमी के पास समाप्त किए हैं। जब उस आदमी ने कहा, अब मुझे

सिखाने को कुछ भी नहीं है; तब बुद्ध ने कहा, लेकिन परम सत्य मुझे अभी नहीं मिला। तीन साल पहले पूछना था यह बात कि परम सत्य तुम्हारे पास है? तीन साल खराब करके यह पूछने की क्या जरूरत है?
असली सवाल यह नहीं है कि परम सत्य किसी के पास है। असली सवाल यह है कि तुम पहले अपने को योग्य बनाते हो या नहीं। इसलिए तीन साल बाद पूछा। क्योंकि यह योग्यता भी तो आनी चाहिए कि मैं पूछ सकूं। जब गुरु ही कहने लगा कि अब मेरे पास सिखाने को कुछ भी नहीं, तब बुद्ध ने कहा, लेकिन परम सत्य मुझे नहीं मिला। और तुमने जो सिखाया, वह मैंने पूरा किया। अगर उसमें कोई कमी रही हो तो मुझे बताओ। मैं उसे पूरा करने को तैयार हूं। पर उसने कहा कि नहीं, तुम पूरा कर चुके हो। और अब बताने को मेरे पास कुछ भी नहीं। जितना मैं जानता था, वह मैंने तुमसे कह दिया। उसके आगे तुम कहीं और खोजो।
बुद्ध सारे गुरुओं के पास भटक लिए, सारे शास्त्रियों के पास भटक लिए, नहीं मिला। फिर वे अकेली अपनी यात्रा पर चले गए। लेकिन अपनी अकेली यात्रा पर जाने के पहले उन्होंने सब द्वार-दरवाजे खटखटा लिए। ध्यान रहे, अकेले की यात्रा भी वही कर सकता है, जिसने बहुतों के साथ चल कर देख लिया हो। अकेले की यात्रा पर भी वही जा सकता है, जो बहुत सी यात्राओं पर बहुतों के साथ जा चुका हो। हमारे चारों तरफ न मालूम कितना-कितना जानने वाले लोग हैं। जितना वे जानते हैं, उतने दूर तक तो उनके साथ चल लेना उचित है। उसके पहले अकेले होने की जिद्द भी खतरनाक है और नुकसानदायक है। यह अनुभव भी आवश्यक है-- अकेले हो जाने के लिए।
तो बुद्ध ने एक-एक को खोजा। जो जहां तक ले जा सकता था, वहां तक ले गया। उसको धन्यवाद दिया कि उसने इतनी कृपा की, और विदा हुए। जब उन्हें परम सत्य का अनुभव हुआ, तब उन्होंने कहा कि मैं सोचता था कि शायद जिनके पास मैं गया हूं, वे मुझसे कुछ छिपा तो नहीं रहे हैं। लेकिन अब मैं कह सकता हूं, उन्होंने कुछ भी न छिपाया था। असल में, परम सत्य बात ऐसी थी कि उसे कोई दूसरा नहीं दे सकता था। उसे कोई दूसरा नहीं दे सकता था। और मैं दूसरे से ले भी नहीं सकता था, क्योंकि मेरे मौन की भी वैसी क्षमता न थी। मैं शब्द से ही पूछता था, शब्द से ही वे बताते थे। जब कोई परम मौन में उतरने लगे, तभी तो परम मौन में उसे कहा भी जा सकता है।
लाओत्से कहता है, ज्ञानी न तो कर्म करते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं
कि वे व्यवस्था नहीं करते। इस भूल में न पड़ जाना। अकर्म का अर्थ निष्क्रिय नहीं है। अकर्म का अर्थ अकर्मण्यता नहीं है। इसका यह मतलब नहीं है कि ज्ञानी पड़े रहते हैं और कुछ नहीं करते। इसका मतलब बहुत और है। इसका मतलब यह है कि ज्ञानी न करने से कर्म की व्यवस्था करते हैं।
एक पिता है। अगर पिता सच में आदृत है, और आदृत है तो ही पिता है, अन्यथा पिता होने में क्या है! कोई मेकेनिकल, कोई यांत्रिक अर्थ में तो कोई पिता का कोई अर्थ नहीं होता। अगर सच में पिता है, तो उसके कमरे के भीतर आते ही बेटा व्यवस्थित होकर बैठ जाता है। नहीं, उसे आते ही से डंडा नहीं बजाना पड़ता कि सब ठीक-ठाक बैठ जाओ, मैं पिता भीतर आ गया हूं। उसे व्यवस्था नहीं करनी पड़ती। वह आया और व्यवस्था हो जाती है। उसकी मौजूदगी। उसे पता भी नहीं चलता कि उसके आने से व्यवस्था हो गई है। उसका आना और व्यवस्था हो जाना, एक साथ घटित होता है।
अगर पिता थोड़ा कमजोर है, तो उसे आंख से थोड़ा इशारा करना पड़ता है। लेकिन वह भी बड़ा शक्तिशाली पिता है जो आंख के इशारे से व्यवस्था करवा लेता है। उतने शक्तिशाली पिता भी खोजने आज मुश्किल हैं। हालांकि कमजोर है, क्योंकि मौजूदगी काम नहीं करती, उसको आंख से कुछ कर्म करना पड़ता है। उसे कुछ दबाव, कुछ इशारा, उसे कुछ करना पड़ता है। उसे सक्रिय होना पड़ता है। उससे भी कमजोर पिता है जो शब्द बोल कर कहता है, शांत हो जाओ, व्यवस्था
से बैठो। हालांकि वह भी काफी शक्तिशाली पिता है। उतना शक्तिशाली पिता भी आज नहीं पाया जाता कि वह कहे और कोई मान ले! संभावना तो यह है कि वह कहे तो और न कोई माने!
नसरुद्दीन से कोई उसका मित्र पूछ रहा है कि तुम्हारे सात बेटे हैं, परेशान कर डालते होंगे? नसरुद्दीन ने कहा, कभी नहीं, मुझे मेरे बेटों ने कभी कोई तकलीफ न दी। हां, एक दफे भर मुझे घूंसा तानना पड़ा था इन सेल्फ

डिफेंस, अपनी आत्मरक्षा के लिए। बस, बाकी और कभी नहीं। बाकी तो मैं ऐसी चाल ही नहीं चलता जिसमें कि झंझट आए।
बाप कह रहा है! कि मैं ऐसी चाल ही नहीं चलता जिसमें झंझट आए। जहां बेटे होते हैं, वहां से बच कर निकल जाता हूं। सिर्फ एक बार आत्मरक्षा के निमित्त मुझे घूंसा बांधना पड़ा था। बस और कभी मुझे उन्होंने कोई तकलीफ नहीं दी।
और भी कमजोर बाप है, तो एक ही बात को पचास दफे कहेगा। कोई परिणाम न पाएगा तो भी इक्यावनवीं दफे कहने तो तैयार है।
ठीक वैसी ही स्थिति ज्ञानी की है। ज्ञानी अकर्म से व्यवस्था करता है। उसकी मौजूदगी व्यवस्था देती है। कर्म से व्यवस्था नहीं करता। कर्म सब्स्टीट्यूट है। ज्ञान न हो, तो फिर कर्म से व्यवस्था करनी पड़ती है। इसलिए आपको एक और राज ख्याल में आ जाए। आप जितने अतीत में उतरेंगे, ज्ञानी को आप उतना ही अकर्मी पाएंगे। वह अपनी कुटी में बैठा है, या अपने जंगल में बैठा है। यद्यपि उसकी मौजूदगी व्यवस्था देती थी। और वह जंगल की कुटी में बैठा रहता और सम्राट को कुछ पूछना होता तो जंगल भागा हुआ आता। उसके चरणों में आकर बैठता। ज्ञानी राज्य में रहे, इसके लिए सम्राट कोशिश करते। वह राज्य में बना रहे, बस! वह मौजूद रहे!
फिर जैसे-जैसे इतिहास में हम आगे हटें, वैसे हमें पता चलेगा कि ज्ञानी कर्म में उतर रहा है। बुद्ध और महावीर भी हमें बहुत कर्मठ नहीं मालूम पड़ते। लेकिन अगर आज बुद्ध और महावीर हों, तो हम उनसे कहेंगे, कुछ समाज-सेवा करिए, कुछ अस्पताल चलाइए, कोई स्कूल खोलिए, कोई ग्रामदान करवाइए। कुछ तो करिए! गरीबी हटाओ आंदोलन चलाइए, कुछ करिए। बैठे-ठाले आपका क्या फायदा है? अगर आज बुद्ध को पैदा होना पड़े, और लाओत्से को तो भूल कर पैदा नहीं होना चाहिए। अगर लाओत्से आज पैदा हो, तो हम उसको पता नहीं, पता नहीं हम उसको किस काम के लिए कहें कि तू यह काम कर!
आज जिसे हम महात्मा कहते हैं, वह महात्मा ज्ञानी नहीं है। उसका महात्मा होना भी इस बात पर निर्भर करता है कि वह क्या करता है। उसका महात्मा होना उसके शुद्ध अस्तित्व पर निर्भर नहीं करता। उसका महात्मा होना उसके बीइंग पर निर्भर नहीं, उसके डूइंग पर निर्भर है--वह क्या करता है! सवाल यह नहीं है कि व्हाट ही इ.ज, सवाल यह है कि व्हाट ही इ.ज डूइंग, उसने क्या किया? उसका ब्योरा क्या है?
अगर आज हम पूछें कि लाओत्से ने क्या किया? तो कोई भी ब्योरा नहीं है। करने के नाम पर लाओत्से की जिंदगी बिल्कुल खाली है। अगर हम करने से तौलें, तो हमारे गांव का जो छोटा-मोटा सेवक होता है, वह भी बहुत कर रहा है। एक ग्राम-सेवक भी ज्यादा कर रहा है लाओत्से से।
नहीं, लेकिन पुराने दिनों ने यह पूछा ही नहीं कि तुम करते क्या हो? पूछा यह कि तुम हो क्या? और समझ यह थी कि जब इतनी बड़ी आत्मिक सत्ता होती है, तो उसके परिणाम में बहुत कुछ होता है जो करना नहीं पड़ता। लाओत्से अगर इस गांव में मौजूद है, तो उसकी मौजूदगी काफी है। इस गांव के लिए जो भी हो सकता है, वह उसकी मौजूदगी से हो जाएगा। करने जाना पड़े, तो लाओत्से कहता है, बहुत कमजोर ज्ञानी है। ज्ञानी की मौजूदगी सक्रियता है। उसका होना काफी है। जैसे चुंबक मौजूद हो, तो फिर उसे कुछ करना नहीं पड़ता, लोहे के टुकड़े खिंचे चले आते हैं। अगर चुंबक को एक-एक लोहे के टुकड़े को खींचने भी जाना पड़े, तो समझना कि चुंबक नकली है। चुंबक नहीं है। चुंबक का होना जो है, उसकी जो शक्ति है, वह उसके बीइंग में, वह उसके होने में छिपी है। उसके होने से ही उसका फील्ड निर्मित होता है, उसका क्षेत्र बनता है। उस क्षेत्र में जो भी आता है, वह खिंच आता है।
बुद्ध जहां बैठ जाएं, वहां एक चुंबकीय क्षेत्र बन जाता है। उस बीच घटनाएं घटनी शुरू हो जाती हैं। कहानियां कहती हैं--आज कहानियां हो गई हैं-- कि बुद्ध जिस गांव में ठहर जाएं, वहां चोरी बंद हो जाती है। नहीं यह कि बुद्ध एक-एक चोर को समझाते हैं। हत्याएं बंद हो जाती हैं। नहीं कि बुद्ध हत्यारों को जाकर राजी करते हैं कि तुम व्रत लो, अणुव्रत ले लो, कि अब हत्या नहीं करोगे। बुद्ध की मौजूदगी!

और बुद्ध मानते हैं कि अगर मेरी मौजूदगी काम न कर पाए, तो मेरे चिल्लाने से नहीं काम होगा। जब अस्तित्व काम नहीं कर पाता, तो वाणी क्या कर पाएगी? अगर मेरा होना ही काम नहीं कर पाता, तो मेरा प्रचार क्या काम कर पाएगा? अस्तित्व तो बड़ी शक्तिशाली चीज है। अगर वह भी बेकार जा रही है, तो चिल्लाने से क्या होगा? अगर बुद्ध चोर के सामने खड़े हैं और चोर की चोरी नहीं गिर जाती, तो बुद्ध के समझाने से क्या होगा कि चोरी छोड़ दो। अगर बुद्ध की मौजूदगी नहीं चोरी छुड़वा पाती, तो बुद्ध की वाणी क्या बुद्ध से बड़ी है? इसे थोड़ा ऐसा देखें। तो क्या बुद्ध चोर के हाथ-पैर दाबें तो चोर चोरी छोड़ देगा? तो क्या बुद्ध का हाथ-पैर दाबना बुद्ध के होने से बड़ा है?
नहीं, लाओत्से जब कह रहा है, तो वह यह कह रहा है कि बीइंग से बड़ा कुछ भी नहीं है। वह जो आत्म-स्थिति है, उससे बड़ा कुछ भी नहीं है। कर्म वगैरह तो सब परिधि हैं, छोटी-मोटी बातें हैं। वह जो आत्मा में जो सार है, अगर वही कुछ नहीं कर पाता, तो फिर कुछ और कुछ न कर पाएगा।
इसलिए लाओत्से कहता है, देयरफोर। वह फिर कहता है, इसलिए। क्योंकि एक
को पैदा करो तो विपरीत पैदा हो जाता है, इसलिए ज्ञानी निष्क्रिय भाव से अपने कार्यों की व्यवस्था और निःशब्द द्वारा अपने दर्शन का संप्रेषण करते हैं। जो उन्होंने जाना है, उसे मौन से कहते हैं; और जो उन्होंने जीया है, उसे मौजूदगी से फैलाते हैं। यह बड़ी मौन घटना है। यह बड़ी सायलेंट, चुप, शांत घटना है। ज्ञानी एक शून्य की तरह विचरण करते हैं, जैसे नहीं हैं। बड़ी मजेदार घटना है कि लाओत्से की मरने की कोई खबर नहीं मिली है। लाओत्से कब मरा, इसका कोई उल्लेख नहीं है। लाओत्से का क्या हुआ, कहां गया, इसका इतिहास के पास कोई लेखा-जोखा नहीं है। एक लोक-प्रचलित बात जरूर चलती रही है हजारों साल तक कि लाओत्से को जिस आदमी ने आखिरी बार देखा, उसने पूछा कि लाओत्से, कहां जा रहे हो? तो लाओत्से ने कहा, जहां से मैं आया था! तो उस आदमी ने पूछा, लेकिन लोग सदा-सदा चिंता करते रहेंगे कि तुम कहां गए? क्या हुआ?
लाओत्से ने कहा, जब मैं पैदा हुआ तो अज्ञानी था। तो थोड़ा शोरगुल मचा
था मेरे पैदा होने का। थोड़ी आवाज, घटना घटी थी मेरे पैदा होने की। तब मैं अज्ञानी था। अब मैं ज्ञानी होकर मरूंगा, तो मेरे मरने की कोई भी, कोई भी आवाज भी पैदा नहीं होगी। मेरे मरने की घटना ही नहीं घटेगी एक अर्थ में। घटनाओं के जगत में मेरा कोई लेखा-खोजा नहीं रहेगा। क्योंकि ज्ञानी चुपचाप जीता है और चुपचाप विदा हो जाता है।
और ऐसा ही चुपचाप वह विदा हो गया। लोगों ने जाना भर कि वह था, और अब नहीं है। लेकिन उसकी मृत्यु की कोई घटना नहीं घटी है। घटना इस अर्थ में कि किसी दूसरे को भी पता चल गया हो कि लाओत्से अब मर गया। लाओत्से ने जो यह अंतिम बात कही है किसी यात्री से कि अब मैं ज्ञानी हूं, अब तो मेरे मरने की कोई आवाज, कोई ध्वनि पैदा नहीं होगी। अब तो मैं ऐसे ही खो जाऊंगा, जैसे नहीं था। क्योंकि सच में मैं उसी दिन खो गया, जिस दिन मैंने जाना। अब मैं उस दिन के बाद एक शून्य हूं। शून्य चले तो पैरों की आवाज नहीं होती और शून्य चले तो पदचिह्न नहीं बनते और न पगध्वनि होती है। जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं और पैरों के कोई चिह्न नहीं बनते, ऐसे ही।
यह जो लाओत्से कहता है कि ज्ञानी बिना कुछ किए व्यवस्था करते हैं, भाषा में कठिनाई है कहने में, इसलिए उसे कहना पड़ता है, व्यवस्था करते हैं। व्यवस्था भी करते नहीं, व्यवस्था होती है। तो बजाय ऐसा कहने के कि दि सेज मैनेजेज अफेयर्स विदाउट एक्शन, उचित यही है कहने का, अफेयर्स आर मैनेज्ड विदाउट एक्शन। ज्ञानी व्यवस्था करता है, ऐसा नहीं; ज्ञानी से बिना क्रिया के, बिना कर्म के कार्य व्यवस्थित होते हैं। ऐसा जान कर, चेतन रूप से उसे कुछ करना नहीं पड़ता है। वह कुछ करता ही नहीं, क्योंकि करने का जो वहम है, वह अहंकार के साथ ही गिर जाता है। जब तक मैं हूं, तब तक कर्ता होता है, तब तक लगता है, मैं करता हूं। और बड़े मजे की बात है, ऐसी चीजों को भी मैं कहता हूं, मैं करता हूं, जिनको मैं बिल्कुल नहीं करता हूं। जब तक मेरा मैं है, तब तक मैं सब चीजों को इस ढंग से विवेचना करता हूं कि लगे कि मैं उनका कर्ता हूं। श्वास लेता हूं तो मैं लेता हूं, जीता हूं तो मैं जीता हूं, बीमार होता हूं तो मैं होता हूं, स्वस्थ होता हूं तो मैं होता हूं, जैसे कि मैं कर रहा हूं।

जवान होता हूं तो मैं होता हूं, बूढ़ा होता हूं तो मैं होता हूं, जैसे मैं कुछ कर रहा हूं। अहंकार हर एक क्रिया को अपने से जोड़ लेता है।
ज्ञानी का तो अहंकार खो गया, इसलिए हर क्रिया परमात्मा से जुड़ जाती है, ज्ञानी से हट जाती है। इसलिए ज्ञानी कुछ भी नहीं करता। और जिस दिन ज्ञानी इस स्थिति में आ जाता है कि कुछ भी नहीं करता, उस दिन ज्ञानी सिर्फ माध्यम हो जाता है परमात्मा का। वह परमात्मा का एक साधन हो जाता है। परमात्मा ही उसे उठाता, परमात्मा ही उसे बिठाता, परमात्मा ही उसे चलाता, परमात्मा ही उससे बोलता, या परमात्मा ही उससे चुप होता है।
इसलिए उपनिषद के ऋषियों ने अपने नाम अपने वचनों के साथ नहीं लिखे। नहीं लिखे इसलिए कि वे परमात्मा के वचन हैं। इसलिए वेद को हम किसी भी व्यक्ति से नहीं जोड़ पाए, वरन हमने जाना कि वेद अपौरुषेय हैं, किसी पुरुष के द्वारा निर्मित नहीं हैं। इससे बड़ी नासमझी की बात भी पैदा हुई। लोग कहने लगे कि वेद को स्वयं ईश्वर ने लिखा है। सचाई दूसरी है। सचाई इतनी है कि जिन्होंने वेद को लिखा, उनकी ऐसी समझ नहीं थी कि हम लिख रहे हैं। लिखा तो आदमी ने ही है। लेकिन जिस आदमी ने लिखा है, उसकी अस्मिता बिल्कुल खो गई थी। उसे बिल्कुल कारण न था कहने का कि मैं लिख रहा हूं। उससे कोई पूछता, तो वह यही कहता कि परमात्मा लिखवा रहा है, या परमात्मा लिख रहा है। लिखे तो मनुष्यों ने ही हैं। लेकिन जिन्होंने लिखे थे, उनका कोई अहंकार नहीं था। इसलिए वे कह सके कि हमारे नहीं हैं, परमात्मा ही लिखवा रहा है, अपौरुषेय हैं।
इस जगत में जो भी श्रेष्ठतम सत्यों का किसी भी, किसी भी ढंग से प्राकट्य हुआ है, वह सभी अपौरुषेय है। उसमें करने वाले को, मैं कर रहा हूं, इसका कोई भी पता नहीं रहा है। और जहां इसका पता रहा है, वहीं सत्य विकृत हुआ है, वहीं सौंदर्य कुरूप हो गया है, वहीं प्रेम घृणा बन गया है। लाओत्से कहता है, न तो वे कर्म से व्यवस्था करते हैं और न शब्द से संदेश देते हैं। फिर भी कर्म करते हैं। लाओत्से चलता है, उठता है, सोता है, बैठता है। खाना खाता है। भूख लगती है, नींद आती है। भिक्षा मांगता है। एक गांव से दूसरे गांव जाता है। कोई समझने आता है, उसे समझाता है। कर्म तो वह करता है। लेकिन इन कर्मों से लाओत्से ऐसी भ्रांति में नहीं पड़ता कि मैं दुनिया की कोई व्यवस्था कर रहा हूं। इसे और समझ लें।
लाओत्से इन कर्मों को ऐसे ही करता है, जैसे लाओत्से से कोई पूछता है
कि तुम उठते हो, बैठते हो, सोते हो, जागते हो, चलते हो, समझाते हो, कर्म तो करते ही हो! तो लाओत्से कहता है, मेरे कर्म ऐसे ही हैं, जैसे सूखा पत्ता हवा में उड़ता हो। हवा पूरब की तरफ ले जाती है, तो सूखा पत्ता पूरब की तरफ चला जाता है; हवा पश्चिम की तरफ ले जाती है, तो सूखा पत्ता पश्चिम की तरफ चला जाता है। कभी-कभी हवा आकाश में उठा देती है बवंडर पर चढ़ा कर, तो सूखा पत्ता आकाश में उड़ जाता है। और कभी-कभी हवाएं शांत हो जाती हैं और पत्ते को बिल्कुल भूल जाती हैं, और पत्ता जमीन पर पड़ जाता है। मैं एक सूखे पत्ते की तरह हवाओं में डोलता रहता हूं। हवाओं की जो मर्जी! जब वे मुझे आकाश में उठा देती हैं, तब मैं अकड़ नहीं जाता कि देखो, मैं सिंहासन पर बैठा हूं। और जब वे मुझे जमीन पर गिरा देती हैं, तो मैं जार-जार रोने नहीं लगता कि देखो, मैं अपमानित हुआ, मेरी उपेक्षा हुई। जब वे मुझे आकाश में उठा देती हैं हवाएं, तब मैं उनके ऊपर तैरने का आनंद लेता हूं। और जब वे मुझे नीचे गिरा जाती हैं, तब मैं विश्राम में चला जाता हूं, विश्राम का आनंद लेता हूं। जब पश्चिम की तरफ ले चलती हैं, तब पश्चिम की यात्रा! और जब पूरब की तरफ ले चलती हैं, तो पूरब की यात्रा! मेरी अपनी कोई यात्रा नहीं। मुझे कहीं जाना नहीं। हवाओं को भी नाराज करने का कोई कारण नहीं पाता हूं। अपनी कोई मर्जी होती, तो हवाओं से भी कहता कि पूरब मत ले जाओ, कि पश्चिम मत ले जाओ, कि ऊपर मत उठाओ, कि नीचे मत गिराओ। अपनी कोई मर्जी नहीं है।
लाओत्से कहता है, जो भी हो रहा है, वह मैं नहीं कर रहा हूं; वह हो रहा है। इसलिए जो भी फल आए, कोई प्रयोजन नहीं है। कोई लाओत्से से समझता है, समझ ले; ठीक। न समझे, ठीक। लाओत्से किसी को कनविंस करने नहीं निकला हुआ है। इसको फर्क समझें। एक मुसलमान मित्र दो-चार दिन पहले मुझे मिलने आए थे। वे पूछने लगे कि हिंदू धर्म की संख्या इतनी कम क्यों है, अगर इतना ऊंचा

धर्म है तो? इसलाम की इतनी संख्या है, ईसाइयत की इतनी संख्या है, बौद्ध धर्म की इतनी संख्या है। और हिंदू धर्म सबसे पुराना है, आप कहते हैं, तो उसकी संख्या सबसे ज्यादा होनी चाहिए। तो मैंने उनसे कहा कि उसका कारण है। जिन ऋषियों ने हिंदू धर्म के आधार रखे, वे कहते थे, हम कौन हैं किसी को कनविंस करने वाले! हम कौन हैं कि किसी को समझा कर बदल दें! हम कौन हैं कि किसी को कनवर्ट करें! कि उससे कहें कि तू हिंदू हो जा! हम ही नहीं हैं। तो अगर कोई पतंजलि के पास जाए, या वशिष्ठ के पास जाए, या याज्ञवल्क्य के पास जाए, तो समझा देंगे; जो पूछेगा, बता देंगे। फिर बात समाप्त हो गई। लेना- देना नहीं है। वह माना कि नहीं, इसका भी कोई हिसाब नहीं रखना है। वह राजी होकर मेरे पीछे चला कि नहीं, इसका भी कोई हिसाब नहीं रखना है। मैं हूं ही नहीं। मेरे पीछे चलने का सवाल क्या है? तुमने उठाया था सवाल, अगर मेरे प्राणों में जवाब उठा तो दे दिया, नहीं उठा तो नहीं दिया। वह भी मैंने दिया है, ऐसा नहीं।
अगर आप लाओत्से से सवाल पूछें, तो जरूरी नहीं है कि जवाब आए। लाओत्से कहेगा, आएगा जवाब तो दे दूंगा, और नहीं आएगा तो क्षमा मांगता हूं। कई बार लाओत्से के पास लोग कष्ट में पड़ गए हैं। कोई बहुत दूर से यात्रा करके आया है और लाओत्से से सवाल पूछता है। और लाओत्से कहता है, लेकिन जवाब तो आता नहीं है मित्र! वह आदमी कहता है, मैं बहुत दूर से आ रहा हूं, मीलों चल कर आ रहा हूं। लाओत्से कहता है, तुम कितने ही मीलों चल कर आओ, लेकिन जो जवाब मेरे भीतर नहीं आता उसे मैं कहां से लाऊं! तुम रुको। आ जाए, तो मैं तुम्हें दे दूं। न आ जाए, तो तुम क्षमा करना।
कनवर्शन, दूसरे को बदलने की भी चेष्टा नहीं है। जैसे सूरज निकला, और किसी फूल को खिलना हो तो खिल जाए और न खिलना हो तो न खिले। जो फूल नहीं खिले, वे सूरज के मत्थे नहीं मढ़ जाएंगे। कल कोई परमात्मा सूरज से नहीं पूछ सकेगा कि इतने फूल नहीं खिले, उस दिन तुम सुबह निकले थे, उसका जिम्मा? और जो फूल खिल गए, उनका भी गौरव लेने के लिए सूरज किसी दिन परमात्मा के सामने हाथ फैला कर खड़ा नहीं होगा, कि इतने फूल खिल गए थे जब मैं निकला था! सूरज का काम है निकलना। फूल को खिलना हो, खिल जाए। वह फूल का काम है। सूरज निकलता है और चला जाता है। ऐसे लाओत्से जैसे व्यक्ति आते हैं और चले जाते हैं। व्यवस्था भी नहीं करते, संदेश भी नहीं देते। फिर भी जो लेने की तैयारी हो किसी की, तो उनसे संदेश मिल जाता है। और कोई अपने को व्यवस्थित करवाना चाहे, तो उनकी मौजूदगी में व्यवस्थित हो जाता है। लेकिन ये सारी घटनाएं हैपनिंग हैं। ये सारी घटनाएं नियोजित कर्म नहीं हैं। ये सहज फलीभूत होने वाली, सहज घट जाने वाली घटनाएं हैं।
यह हमें ख्याल में आना बहुत कठिन होता है। क्योंकि हमने कभी जीवन में ऐसा कोई काम नहीं किया, जो बिना किए किया हो। और हमने कभी कोई ऐसी बात नहीं कही, जो बिना कहे कही हो। इसलिए हमारे आयाम में, हमारे अनुभव में यह बात कहीं नहीं आती। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, कुछ प्रयोग करके देखें। और आप पाएंगे कि आपके बात यह अनुभव में आनी शुरू हो गई।
जैसे आप चाहते हों कि आपके घर में शांति हो, तो व्यवस्था मत दें, सिर्फ
आप शांत होते चले जाएं। मैनेज मत करें। मैनेज करने वाले से कभी कुछ व्यवस्थित नहीं होने वाला है। आप सिर्फ शांत हो जाएं। अगर आप घर में शांति चाहते हैं, दस सदस्यों का परिवार है, आप चाहते हैं, घर में शांति हो, आप सिर्फ शांत हो जाएं। और थोड़े ही दिन में आप पाएंगे कि घर में अनूठी शांति उतरनी शुरू हो गई। न मालूम अनजाने रास्तों से, न मालूम अनजाने द्वारों और झरोखों से शांति घर में उतरने लगी। जिनमें आपको कल सब अशांति-अशांति का उपाय दिखता था, वे भी शांत होते हुए मालूम होने लगे हैं। आप सिर्फ शांत होते जाएं, और साल भर बाद आप देखेंगे कि घर चारों तरफ शांत हो गया। और आपने कहीं भी कुछ किया नहीं। अगर कुछ किया, तो अपने भीतर किया।
असल में, शांत व्यक्ति अपने चारों तरफ शांति की तरंगें पैदा करने लगता है। अशांत व्यक्ति अपने चारों तरफ पूरे समय रेडिएशन कर रहा है, किरणें फेंक रहा है अशांति की। अब तो वैज्ञानिकों ने उपाय... । अभी एक फ्रेंच वैज्ञानिक ने एक मशीन बनाई है, जो व्यक्ति को सामने खड़ा करके बता सकती है कि इस व्यक्ति के आस-पास अशांति फैलती है या शांति। उस व्यक्ति के

शरीर से जो किरणें निकलती हैं, वे सामने की उस मशीन पर टकराती हैं और वह मशीन इतनी खबर देती है कि किस वेवलेंथ की किरणें इस व्यक्ति के शरीर से रेडिएट होती हैं। और हर तरह के रेडिएशन की अलग वेवलेंथ है। और हर वेवलेंथ का अलग परिणाम है।
और बड़े मजे की बात है कि वह आदमी वहीं सामने खड़ा है, आप उसके कान में जाकर कह दें कि तुम्हें पता है, तुम्हारी पत्नी पड़ोसी के साथ भाग गई! फौरन उसका रेडिएशन बदल जाता है। वह मशीन फौरन खबर देती है कि रेडिएशन बदल गया। अब यह आदमी आग से जला जा रहा है। यह किसी की हत्या कर दे, ऐसी इसकी भीतरी स्थिति हो गई है। या आप उसके कान में आकर कह दें कि तुम्हें लाटरी मिल गई, कुछ पता है! उसका सारा रेडिएशन और हो जाता है।
पूरे समय, हमारा शरीर जो है, एक रेडिएटर है। हम सब छोटे-छोटे न्यूक्लियस हैं, जिनसे चौबीस घंटे हजारों तरह की किरणें बाहर फेंकी जा रही हैं। और बड़े मजे की बात यह है कि जब हम किरणें फेंकते हैं और दूसरे से प्रतिफलित होकर लौटती हैं, तो हम समझते हैं, वह दूसरा हम पर क्रोध कर रहा है। अगर मैं अपने चारों तरफ ऐसी किरणें फेंक रहा हूं जो दूसरे से लौट कर क्रोध बन जाएंगी, तो मुझे लगेगा कि दूसरा आदमी मुझ पर क्रोध कर रहा है। जब कि मैं यह कभी ख्याल न करूंगा कि मैं जो भी उपाय कर रहा हूं अपने व्यक्तित्व से, वे ऐसे हैं कि दूसरे से लौट कर किरणें क्रोध बन जाएंगी। और हम सब यही कर रहे हैं। और एकाध आदमी नहीं, सब जब ऐसा कर रहे हों, तो
एक घर में दस आदमी हैं, तो उपद्रव दस गुना; दस गुना नहीं, बल्कि गुणनफल हो जाता है; कुछ हिसाब ही नहीं रहता उसका कि कितना उपद्रव मच जाता है--एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे, और लौट रही हैं, और जा रही हैं--एक जाल बन जाता है। उस जाल में हम जीते हैं। और फिर हम मैनेज करते हैं। और यह परेशान आदमी, उपद्रव से भरा आदमी शांति के लिए स्थापना करने के उपाय करता है। और अशांति खड़ी कर देता है।
लाओत्से कहता है, शांत हो जाएं, तो आपके चारों तरफ शांति फैलने लगेगी। फिर भी जरूरी नहीं है। क्योंकि लाओत्से के पास भी कोई अशांत रह सकता है। और बुद्ध के पास बैठ कर भी कोई हत्या का विचार कर सकता है। बुद्ध का खुद सौतेला भाई बुद्ध के पास वर्षों रह कर भी बुद्ध की हत्या के आयोजन ही करता रहा। तो उसने बुद्ध को मारने के हजारों उपाय किए हैं। बुद्ध नीचे ध्यान कर रहे हैं शिलाखंड पर बैठ कर, वह ऊपर से पत्थर सरका देता है। बड़ी मुश्किल की बात है! बुद्ध ध्यान में बैठे हों, तो उनके पास तो जो रेडिएशन होना चाहिए, वह अपूर्व शांति का होना चाहिए। और अगर बुद्ध के पास नहीं होगा, तो किसके पास होगा? पर वह देवदत्त है, वह पत्थर सरका रहा है नीचे बुद्ध पर। वे रास्ते से गुजर रहे हैं, निरीह बुद्ध, जो कि एक फूल को भी चोट न पहुंचाना चाहें, और देवदत्त एक पागल हाथी को छुड़वा देता है। और वह सौतेला भाई है, कजिन है। तब तो सवाल उठता है कि बात क्या है? अगर बुद्ध के पास शांति की और आनंद की किरणें फैलती हैं, तो इसको क्या हो रहा है?
लेकिन वे भी तभी फैल सकती हैं, जब आप ग्राहक हों, नहीं तो आपके भीतर नहीं फैलेंगी। आप अपने द्वार बंद रख सकते हैं। इतनी स्वतंत्रता है आपको। आप अपने भीतर के जहर में जी सकते हैं। और अमृत की भी वर्षा हो रही हो, तो छाता लगा सकते हैं।
तो जब यह कहा जा रहा है तो इस बात को ध्यान में रख लेना आप, कि लाओत्से
का जो ज्ञानी है, वह अपनी तरफ से तो शांत हो जाएगा, अपनी तरफ से शांति की किरणें फेंकेगा; फिर जो भी उस शांति की किरणों के लिए ग्राहक हैं, उनमें व्यवस्था हो जाएगी; जो नहीं हैं ग्राहक, उनमें व्यवस्था नहीं होगी। लेकिन फिर भी लाओत्से उनकी अशांति में भागीदार तो नहीं ही रह जाएगा। वह अशांति की किरणें फेंकता, तो उनकी अशांति को बढ़ाने में तो भागीदार होता ही! अब कम से कम अशांति उनकी नहीं बढ़ाएगा। अगर शांति न भी उनको मिल सकी, तो भी अशांति बढ़ाने में हाथ नहीं बंटाएगा। और इतना भी कम नहीं है, इतना भी बहुत है! और इसके इकट्ठे परिणामों का जोड़ तो बहुत ज्यादा हो जाता है। उसका हिसाब लगाना मुश्किल है।
अभी हम अणु का विस्फोट कर लिए हैं। तो हमें पता चला है कि परमाणु में, पदार्थ के आखिरी कण में अपरिसीम शक्ति है। इसकी हमें कभी कल्पना भी नहीं

थी। यह कभी किसी ने सोचा भी नहीं था। यह इमेजिनेशन में भी कभी नहीं था कि परमाणु में इतनी शक्ति होगी। क्योंकि सदा हम सोचते हैं कि शक्ति बड़े में होनी चाहिए, छोटे में क्या शक्ति होगी? शक्ति को हम बड़े से सोचते हैं। छोटे में क्या शक्ति होगी? लेकिन राज उलटा है। जितना सूक्ष्मतम हो, उतना ही ज्यादा शक्तिशाली होता है। शक्ति सूक्ष्म में है, बड़े में नहीं। सूक्ष्मतम में अधिकतम शक्ति है। और जो शून्यतम है, वह शक्ति का अपरिसीम पारावार है। वहां तो कोई हिसाब ही नहीं है। सूक्ष्म में शक्ति बढ़ती चली जाती है। शून्य पूर्ण शक्ति का हो जाता है।
अगर ज्ञानी पूर्ण शून्य हो जाए, निष्क्रिय; न कुछ करता, न कुछ बोलता; नहीं, उसमें कोई हलन-चलन ही नहीं है, कोई कंपन ही नहीं है; निष्कंप हो जाए, शून्य हो जाए, तो परम शक्ति का आगार हो जाता है। वह परम शक्ति अनेक-अनेक रूपों में आयोजन करने लगती है, अनेक व्यवस्थाएं देने लगती है। अनेक जीवन उसके निकट बदल जाते हैं। दूर-दूर तक, कभी-कभी लाखों वर्षों तक उसके परिणाम होते हैं।
अब मैंने आपसे कहा कि देवदत्त है सौतेला भाई। बुद्ध के पास वर्षों रह
कर भी हत्या के विचार बुद्ध की ही कर रहा है। लेकिन ऐसे लोग भी हैं, जो पच्चीस सौ साल बाद बुद्ध के नाम से ही पुलकित हो जाते हैं और उनके भीतर कोई द्वार खुल जाता है। और पच्चीस सौ साल की सीमा पार करके बुद्ध की किरणें उनमें आज भी प्रवेश कर जाती हैं। क्योंकि इस जगत में कोई भी रेडिएशन कभी खोता नहीं है। इस जगत में जो भी किरण है, वह कभी खोती नहीं है। इस जगत में जो भी है, वह नहीं खोता है। बुद्ध के हृदय से जो किरणों का विकीर्णन हुआ था, वे आज भी, आज भी उसी तरह फैलती रहती हैं। आज भी कोई हृदय उनके लिए खुलता है, तो तत्काल उसमें प्रवेश कर जाती हैं।
बुद्ध का ही क्यों, जो भी जानने वाले कभी हुए हैं, उनका भी! और जो नहीं जानने वाले हुए हैं, उनका भी! जब आप हत्या का विचार करते हैं, तो आप अकेले नहीं होते; जगत के सारे हत्यारों की किरणें आपको उपलब्ध हो जाती हैं। ध्यान रहे, न तो इस जगत में किसी आदमी ने अकेले हत्या की है और न इस जगत में अकेले किसी आदमी ने परम ज्ञान पाया है। जब कोई परम ज्ञान पाने को आतुर होता है, तो जगत के सब परम ज्ञानियों की शक्ति उसमें बहने लगती है। और जब कोई किसी की हत्या करने को आतुर होता है, तो जगत के सारे हत्यारे--जो कभी हुए, जो अभी हैं, या जो कभी होंगे--उन सब का प्रवाह उस आदमी की तरफ हो जाता है, वह गड्ढा बन जाता है। इसलिए हत्यारे अक्सर कहते हैं, और ज्ञानी भी। हत्यारे अक्सर कहते हैं कि यह मैं कैसे कर पाया? यह मैं नहीं कर सकता, यह मैं सोच ही नहीं सकता कि हत्या मैंने की होगी। यह मैंने कभी कल्पना नहीं की थी कि मैं ऐसा काम कर पाऊंगा।
इसमें थोड़ा सा सत्य है। क्योंकि हत्या करने का विचार तो हत्यारे ने
ही किया, लेकिन हत्या करते वक्त उसको जो किरणें उपलब्ध होती हैं, जो शक्ति उपलब्ध होती है, उसमें बहुत हत्यारों का हाथ है।
इसलिए कोई ज्ञानी भी यह नहीं कहता कि यह ज्ञान मुझे मिला। यद्यपि चेष्टा उसने की, साधना उसने की, संकल्प उसने किया, समर्पण उसने किया। लेकिन जब ज्ञान उपलब्ध होता है, तो जगत के समस्त ज्ञानियों की शक्ति उसके साथ खड़ी हो जाती है। इस जगत में हम व्यक्ति की तरह नहीं जीते हैं। हम एक बड़े, अनंत व्यक्तियों के जाल में एक बिंदु की तरह जीते हैं।
इसलिए लाओत्से कहता है कि चुप भी हो जाता है सब, मौन से भी कह दिया जाता है, और निष्क्रियता से भी व्यवस्था हो जाती है। व्यक्ति जो है, वह परमाणु है चेतना का। जैसे कि साइंस ने खोज लिया एटम; वह है पदार्थ का। अगर हम व्यक्ति के भीतर उतरते चले जाएं--और उसी के भीतर उतरने का नाम धर्म है। और ये सारे के सारे जो सूत्र हैं लाओत्से के, ये उसी की तरफ इशारे हैं कि हम भीतर उतरते चले जाएं।
अब जब हम कहते हैं, कर्म से क्या व्यवस्था करते हो, होने से ही हो जाएगी। तो कर्म तो होता है बाहर, और होना होता है भीतर। बीइंग तो है भीतर, डूइंग है बाहर। जब लाओत्से कहता है कि तुम शुद्ध हो जाओ तो चारों तरफ शुद्धि फैल जाएगी, तुम शुद्ध करने की कोशिश मत करो; तो वह यह कह रहा है कि भीतर जाओ। जब लाओत्से कहता है, शब्द से न कह सकोगे सत्य को, निःशब्द से। तो

शब्द तो है बाहर, निःशब्द है भीतर। तो वह कहता है, भीतर जाओ। यह सारा आयोजन, यह सारा इशारा भीतर की तरफ गति का है।
और जब कोई भीतर पहुंचता है, तो उस परमाणु को उपलब्ध हो जाता है, जो चैतन्य का परमाणु है, चिन्मय परमाणु है। दि एटम ऑफ कांशसनेस! और उसकी विराट ऊर्जा है। उस चैतन्य के परमाणु को ही हम परमात्मा कहें। उसकी विराट ऊर्जा है। जैसे ही हम उस जगह पहुंचते हैं, इतनी शक्ति हो जाती है कि शक्ति ही काम करती है। फिर हमें अलग से काम नहीं करना पड़ता। अगर हम ऐसा कहें तो अजीब लगेगाः इस जगत में शक्तिहीन ही काम करते हैं; शक्तिशालियों के तो होने से ही काम हो जाता है। इस जगत में जो नहीं जानते, वे ही केवल श्रम करके कुछ कर पाते हैं; जो जानते हैं, वे तो विश्राम से भी कर लेते हैं। जिन्हें पता है, वे तो मौन से भी बोल देते हैं; और जिन्हें पता नहीं है, वे लाख-लाख शब्दों का उपयोग करके भी कुछ भी नहीं कह पाते हैं।
लाओत्से का यह सूत्र बहुत बारीक है। वह आदमी ही बारीक था। वह जो भी कह रहा है, ऊपर से दिखाई पड़ेगा कि बहुत छोटा है। अभी एक मित्र ने मुझे भीतर जाकर कहा कि आज का सूत्र तो बहुत छोटा है।
छोटा नहीं है, यह सूत्र बहुत बड़ा है। एक ही पंक्ति में है, पर इस एक सूत्र में करीब-करीब सब वेद आ जाते हैं, सब धर्म-ग्रंथ आ जाते हैं। जो भी जानने वालों ने कहा है, इसमें सब समाया हुआ है--इस छोटे से सूत्र में! इस अकेले को बचा कर पूरी किताब भी फेंक दी जाए, तो जो जानता है, वह इस छोटी सी कुंजी से पूरी किताब फिर से खोज लेगा। काफी है। उसे फिर दोहरा दूं। फिर आपके सवाल होंगे।
"देयरफोर दि सेज मैनेजेज अफेयर्स विदाउट एक्शन, एंड कनवेज हिज डॉक्ट्रिन विदाउट वर्ड्स। इसलिए ज्ञानी निष्क्रियता से व्यवस्था करता है, और निःशब्द द्वारा अपने दर्शन को संप्रेषित कर देता है।"
इस संबंध में कोई सवाल हों, या पीछे कोई सवाल रह गए हों, तो वे ले लें।
और कल एक बैठक और बढ़ानी पड़ेगी, ताकि एक सूत्र रह गया है दूसरे अध्याय का, वह हम कल कर लेंगे।

प्रश्नः ओशो, लाओत्से के अद्वैत मूलक दर्शन की व्याख्या से पता चलता
है कि वह परम ज्ञान को उपलब्ध हो चुका था। फिर क्या कारण है कि संसार के इने-गिने लोगों ने ही उसके जीवन-दर्शन को अपना मार्ग-दर्शक बनाया? क्या उसकी यह विफलता ही उसके दृष्टिकोण की कटु आलोचना नहीं है? और क्या अरस्तू का अपनाया जाना उसके विज्ञान की उत्कृष्टता का प्रमाण नहीं है? कृपया इस पर प्रकाश डालें!

लाओत्से को बहुत कम लोग जानते हैं। जितना ऊंचा हो शिखर, उतनी ही कम आंखें उस तक पहुंच पाती हैं। जितनी हो गहराई, उतने ही कम डुबकीखोर उस गहराई तक पहुंच पाते हैं। सागर की लहरें तो दिखाई पड़ती हैं, सागर के मोती दिखाई नहीं पड़ते हैं।
लाओत्से की गहराई सागरों की गहराई है। कभी कोई गहरा डुबकीखोर वहां तक पहुंच पाता है। जगत डुबकीखोरों से नहीं बना हुआ है। जगत तो उनसे चलता है, जो लहरों पर तैरने वाली नाव बना लेते हैं। आदमी को उस पार जाना होता है; आदमी को सागर की गहराई में जाने का प्रयोजन नहीं होता। तो जो नाव बनाने का विज्ञान बता सकते हैं, वे प्राथमिक रूप से महत्वपूर्ण हो जाते हैं। अरस्तू महत्वपूर्ण हो गया। क्योंकि अरस्तू ने जो तर्क दिया, वह संसार
के काम का है। चाहे दूर जाकर खतरनाक सिद्ध हो, लेकिन पहले कदम में बहुत प्रीतिकर है। चाहे अंतिम फल जहरीला हो, लेकिन ऊपर मिठास की पर्त है। तो अरस्तू की बात समझ में आएगी, क्योंकि अरस्तू शक्ति कैसे उपलब्ध हो, इसके सूत्र दे रहा है। और लाओत्से शांति कैसे मिले, इसके सूत्र दे रहा है। यद्यपि शांति ही अंतिम रूप से शक्ति है, और शक्ति अंतिम रूप से सिवाय अशांति के और कुछ भी नहीं है।
लेकिन प्राथमिक रूप से ऐसी बात नहीं है। अरस्तू के रास्ते पर चलिए तो एटम बम तक पहुंच जाएंगे। और लाओत्से के रास्ते पर चलिए तो एटम बम तक नहीं पहुंचेंगे। लाओत्से के रास्ते पर चलिए तो लाओत्से पर ही पहुंच जाएंगे, और

कहीं नहीं। तो जिन्हें यात्रा करनी है, उनके लिए तो अरस्तू ही अच्छा लगेगा। क्योंकि कहीं-कहीं-कहीं पहुंचते रहेंगे, चांद पर पहुंचेंगे--दूर! लाओत्से पर तो वे ही लोग यात्रा कर सकते हैं, जो यात्रा नहीं ही करना चाहते हैं। बस, लाओत्से पर ही पहुंच सकते हैं। न किसी चांद पर, न किसी तारे पर, न किसी अणु बम पर, कहीं भी नहीं।
फिर हमारे मन में, सबके मन में, शक्ति की आकांक्षा है, महत्वाकांक्षा है। धन चाहिए, शक्ति चाहिए, पद चाहिए, यश चाहिए, अस्मिता चाहिए, अहंकार चाहिए। लाओत्से की हम सुनेंगे और भाग खड़े होंगे। क्योंकि हमारा सब कुछ छीन लेने की बात है वहां। हमें लाओत्से देता तो कुछ भी नहीं, ले सब लेता है। और हम सब भिखमंगे हैं। हम भिक्षा मांगने निकले हैं। लाओत्से के पास हम जरा भी न टिकेंगे। क्योंकि हमारे पास और जो है, भिक्षापात्र है, शायद वह भी छीन ले!
डायोजनीज के संबंध में कथा है कि डायोजनीज एक लालटेन लेकर घूमा करता था, दिन के उजाले में भी, एथेंस की सड़कों पर। और कोई पूछता, किसको खोज रहे हो? तो वह कहता, एक ईमानदार आदमी की तलाश है, ईमानदार आदमी को खोज रहा हूं। कई वर्षों तक ऐसा चलता रहा; एक आदमी कई वर्षों से देखता था। एक दिन उसने पूछा कि वह ईमानदार आदमी मिला? सफलता मिली? डायोजनीज ने कहा, काफी सफलता यही है कि अपनी लालटेन बची हुई है। इसको भी कई लोग ले जाने की कोशिश करते रहे। अपनी लालटेन बची है, यही कोई कम है!
आदमी लाओत्से के पास जाएगा तब, जब खोने की तैयारी हो। कितनों की खोने
की तैयारी है? छीनने की तैयारी है। तो छीनने का जो शास्त्र है, वह अरस्तू से विकसित हो सका। इसलिए तो पूरब हारा। पूरब अरस्तू को पैदा नहीं कर सका, इसलिए पूरब हारा, गुलाम रहा, इतनी परेशानियां झेली हैं। क्योंकि पूरब छीनने का शास्त्र विकसित नहीं कर सका। लेकिन कोई नहीं कह सकता कि लंबे अरसे में फायदे में कौन रहेगा। लंबे अरसे की बात अलग हो जाती है। पहले कदम पर कौन फायदे में है, इससे कुछ तय नहीं होता। दूसरे कदम पर सब बदल जाता है। अंत तक पहुंचते-पहुंचते सब बदल सकता है। और बदल जाएगा।
पूरब ने बीच में काफी नुकसान उठाया, ऐसा दिखाई पड़ता है। लेकिन अगर पूरब हिम्मत से लाओत्से और बुद्ध के साथ खड़ा रहे, तो पश्चिम को समझना पड़ेगा कि उसने नासमझी की है खुद। उसने जो छीना, वे खिलौने थे। उनसे कुछ फर्क नहीं पड़ता था। और उसने जो खोया, वह आत्मा थी। और पूरब ने जो खोया, वे खिलौने थे। और जो बचाया, वह आत्मा थी। अगर पूरब निश्चित रूप से खड़ा रहे लाओत्से के साथ।
लाओत्से का नाम कम लोगों तक पहुंचा, उसका कारण यही है कि लाओत्से तक कोई जाना नहीं चाहता। मिल जाए तो हम उससे बचना चाहेंगे, कि अभी नहीं, फिर कभी; जब समय आएगा, हम आपके पास आएंगे। आप कहां मिल गए हैं हमें! अभी नहीं, अभी तो हम खोजने निकले हैं, अभी तो हम कमाने निकले हैं। इसलिए, और इसलिए भी कि लाओत्से जो कह रहा है... ।
दो तरह की बातें हैं इस जगत में। एक तो ऐसी बात है, जो कि निपट साधारण मनुष्य को, जैसा मनुष्य है, उसकी ही समझ में आ जाती है। और एक ऐसी बात है, जब तक वह मनुष्य पूरी तरह न बदले, तब तक समझ में ही नहीं आती। एक तो ऐसी बात है कि आदमी जैसा है--प्रकृति उसे जैसा पैदा करती है, एक जानवर की तरह--एक तो उस जानवर की तरह जो आदमी है, उसकी ही सीधी समझ में आ जाता है। कोई और ट्रेनिंग की जरूरत नहीं होती उसको। उसकी वृत्तियां ही समझ लेती हैं कि ठीक है। और एक ऐसा ज्ञान है, जब तक यह आदमी पूरा रूपांतरित न किया जाए, प्रशिक्षित न किया जाए, तैयार न किया जाए, तब तक इसकी समझ में वह ज्ञान नहीं आता। लाओत्से जो कह रहा है, वह सीधे-सीधे आदमी जैसा पैदा होता है, उसकी समझ
का नहीं है। उसकी समझ का नहीं है। आदमी रूपांतरित हो, यानी लाओत्से को समझने के पहले भी एक कीमिया से गुजरना जरूरी है, तभी लाओत्से समझ में आएगा। अन्यथा वह समझ में नहीं आएगा।
समझें हम, एक छोटा बच्चा है। उसे हम हरे, पीले, लाल पत्थर बीनने को कह दें, वह बीन लाएगा। लेकिन हम उससे कहें कि हीरा छांट लो इसमें से, तो जरा कठिनाई हो जाएगी। हीरे की परख के लिए रुकना पड़ेगा। और बहुत संभव यह है कि बच्चा पत्थर बचा ले और हीरा फेंक दे। क्योंकि हीरा तो तैयार करना पड़ता है।

हीरा तो छिपा होता है। कई बार तो हीरा पत्थर से बदतर होता है। उसकी तो पूरी तैयारी होती है, तब वह प्रकट होता है। और बच्चा उसे अभी पहचान न पाएगा। बच्चे की भी तैयारी होती है, तब परख आएगी।
तो लाओत्से तो हीरे की बातें कर रहा है। तो पृथ्वी पर जब भी कोई बच्चे नहीं रह जाते, कोई प्रौढ़ होता है, मैच्योर होता है, तब लाओत्से को समझ पाता है। अरस्तू को समझने के लिए तो स्कूल जाने वाला बच्चा पर्याप्त है। उसमें कोई और विशेष योग्यता की जरूरत नहीं है। अभी भी मनुष्यता उस जगह नहीं आई है, जहां लाओत्से को अधिक लोग समझ सकें--अभी भी। अभी भी कभी लाख में एक-दो आदमी समझ पाते हैं। ध्यान रहे, जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह हमेशा एरिस्टोक्रेटिक है। जो भी महत्वपूर्ण है, वह आभिजात्य है। वह थोड़े से ही लोगों की समझ में आने वाला है। और ज्ञान की शर्त है अपनी, कि ज्ञान आपके लिए नीचे नहीं उतरता, आपको ही ज्ञान के लिए ऊपर चढ़ना पड़ता है। लाओत्से आपके लिए नीचे नहीं उतरेगा; आपको ही लाओत्से के लिए ऊपर चढ़ना पड़ेगा।
तो ज्ञान एक चढ़ाई है, ऊंची चढ़ाई है। विज्ञान, आप जहां हैं, वहीं आपको उपलब्ध होता है। ज्ञान, आप आगे बढ़ें, तो उपलब्ध होता है। तो लाओत्से कम लोगों की समझ में आया। लेकिन जिनकी भी समझ में आया, वे इस जगत के श्रेष्ठतम फूल थे। अरस्तू सबके काम का है, लेकिन वे लोग इस जगत के फूल नहीं हैं।
फिर जितनी गहन बात हो, अपने समय से उतने ही पहले हो जाती है। जैसे लाओत्से ने जो कहा है, अभी भी शायद और ढाई हजार साल लगेगा, तब लाओत्से कंटेंप्रेरी हो पाएगा। तब वह समसामयिक हो पाएगा, आज से ढाई हजार साल बाद। तब लोगों को लगेगा कि ठीक, अब हम वहां खड़े हैं, जहां से लाओत्से को हम समझ सकें।
इसे ऐसा समझें तो आसानी होगी। एक आदमी कविता करता है। अगर कविता उसकी सबको समझ में आ जाती है, अभी समझ में आ जाती है, तो दो दिन से ज्यादा टिकने वाली नहीं है। समझ नहीं आती, किसी को समझ आती है, शिखर पर जो है उसको समझ आती है, तो यह कविता हजारों साल टिक जाएगी। एक कालिदास हजारों साल टिक पाता है। एक फिल्मी गीत दो महीने भी टिक जाए तो बहुत है। फिल्मी गीत दो महीने नहीं टिकता। सब की समझ में आता है; एकदम से धुन पकड़ लेता है। मोहल्ले-मोहल्ले, गांव-गांव, खेत-खेत, गली-कूचे-कूचे गाया जाने लगता है। बच्चे से लेकर बूढ़े तक उसको गुनगुनाने लगते हैं। हर बाथरूम उसे सुन लेता है। फिर अचानक पाया जाता है कि वह खो गया। फिर दुबारा कभी उसकी कोई खबर नहीं मिलती। बात क्या है? सब की समझ में इतना आ गया कि सब की समझ के तल का था। उसके बचने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन जब एक कोई सच में गीत पैदा होता है, तो वर्षों लग जाते हैं; कभी-कभी कवि मर जाता है, तब पता चलता है।
सोरेन कीर्कगार्ड ने किताबें लिखीं। उसकी जिंदगी में किसी को पता न
चल सका। एक किताब मुश्किल से छाप पाया, तो पांच कापी बिकीं। वह भी अपने मित्रों ने खरीदीं। बाप जो पैसा छोड़ गया था, बैंक में जमा था, उसी से अपना जिंदगी भर खर्च चलाया। क्योंकि वह तो चौबीस घंटे सोचने, खोजने में लगा था। कमाने की फुर्सत न थी। बाप जो छोड़ गया था बैंक में, हर एक तारीख को उसमें से कुछ पैसा निकाल लाना है, महीना गुजार कर फिर पहुंच जाना है। जिस दिन आखिरी पैसा चुका, बैंक गया, और बैंक में पता चला कि पैसा तो पूरा समाप्त हो गया। बैंक के बाहर ही उसकी सांस टूट गई, सोरेन कीर्कगार्ड की। उसने कहा, अब तो कोई जीने की कोई बात ही न रही! जिस दिन पैसा खाते में चुक गया, उस दिन दरवाजे पर गिर कर मर गया। क्योंकि एक पैसा आने का तो कहीं से कोई उपाय न था। कोई सवाल ही न था। सौ साल किसी ने याद भी न किया सोरेन कीर्कगार्ड को। उसकी किताबों का, उसके नाम का किसी को पता न था। इधर पिछले तीस-चालीस वर्ष में पुनराविष्कृत हुआ। और आज पश्चिम में जिस आदमी का सर्वाधिक प्रभाव समझा जाए, वह सोरेन कीर्कगार्ड है। और अब लोग कहते हैं कि अभी सैकड़ों वर्ष लगेंगे सोरेन कीर्कगार्ड को ठीक से समझने के लिए। लेकिन उसके गांव के लोग हंसे। लोगों ने मजाक उड़ाई कि पागल हो, अरे कुछ कमाओ! चार पैसे कमा लो! विनसेंट वानगॉग ने जो चित्र बनाए, आज एक-एक चित्र की कीमत तीन लाख, चार लाख, पांच लाख रुपए है। एक-एक चित्र की! और विनसेंट वानगॉग एक चित्र न बेच सका। किसी दूकान से दो कप चाय के लिए थे, तो उसको एक पेंटिंग दे आया कि पैसे तो नहीं हैं। कहीं से एक सिगरेट का पैकेट लिया था, उसको एक पेंटिंग दे आया

कि पैसे तो नहीं हैं। मरने के साठ साल बाद जब उसका पता चलना शुरू हुआ, वानगॉग का, तो लोगों ने अपने कबाड़खानों में खोज कर उसके चित्र निकाल लिए। किसी होटल में पड़ा था, किसी दूकान में पड़ा था, किसी से रोटी ली थी उसने और एक चित्र दे गया था। जिनके पास पड़े मिल गए, वे लखपति हो गए। क्योंकि एक-एक चित्र की कीमत पांच-पांच लाख रुपया हो गई।
आज केवल दो सौ चित्र हैं उसके। लोग छाती पीट-पीट कर रोए, क्योंकि वह तो
कई को दे गया था। वह कोई फेंक चुका था, कोई कुछ कर चुका था। किसी को पता नहीं था, क्या हुआ। और विनसेंट वानगॉग मनुष्य-जाति के इतिहास में पैदा हुए चित्रकारों में चरम कोटि का चित्रकार है अब। लेकिन अपने वक्त में, अभी सिर्फ डेढ़ सौ साल पहले, सप्ताह में पूरे सात दिन रोटी नहीं खा सका। क्योंकि उसका भाई उसे जितना पैसा देता, वह इतना होता कि वह सात दिन सिर्फ रोटी खा सके। तो वह चार दिन रोटी खा लेता और तीन दिन के पैसे बचा कर रंग खरीद कर चित्र बना लेता। बत्तीस साल की उम्र में जब बिल्कुल मरणासन्न हो गया, क्योंकि चार दिन खाना खाना और तीन दिन चित्र बनाना, यह कैसे चलता, तो गोली मार कर मर गया। और लिख गया यह कि अब कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि मैं भाई को व्यर्थ तकलीफ दूं! उसको आखिर रोटी के लिए पैसे तो देने ही पड़ते हैं। और मुझे जो बनाना था, वह मैंने बना लिया। एक चित्र, जिसके लिए मैं साल भर से रुका था, वह आज पूरा हो गया।
अब ये जो लोग हैं, ये किसी और तल पर जीते हैं। उस तल पर जब मनुष्य-जाति कभी पहुंचती है, तब उनका आविष्कार होता है। मगर विनसेंट वानगॉग या सोरेन कीर्कगार्ड, ये कोई एवरेस्ट पर जीने वाले लोग फिर भी नहीं हैं। ये फिर भी ऐसे ही छोटी-मोटी पहाड़ियों पर जीने वाले लोग हैं। लाओत्से तो जीता है गौरीशंकर पर। वहां तक तो कभी-कभी कोई आदमी पहुंचता है। और कभी हम आशा करें कि कभी मनुष्य-जाति का कोई बड़ा हिस्सा भी उस जगह निवास बनाएगा, तो हजारों- लाखों साल प्रतीक्षा करनी पड़े।
इसलिए नहीं प्रभाव हो पाता। पर पुनः-पुनः ऐसे लोगों को फिर-फिर खोजना पड़ता है। इनका स्वर कभी खोता नहीं, बना ही रहता है, गूंजता ही रहता है। और कई दफे तो ऐसा होता है कि हम बिल्कुल ही भूल गए होते हैं। और जब कभी फिर कोई वैसी बात कहता है, तो हमें लगता है, बहुत नई बात कह रहा है। लाओत्से के शिष्य च्वांगत्से ने कहा है, एवरी डिस्कवरी इ.ज जस्ट ए रि-डिस्कवरी, सब आविष्कार सिर्फ पुनआर्विष्कार है। ऐसी कोई बात जगत में नहीं है, जो नहीं जान ली गई। लेकिन जिन्होंने जानी थी, वे इतने शिखर पर थे कि वह कभी सामान्य न हो पाई, खो गई। फिर कभी कोई दूसरा आदमी जब उसको जानता है, तो फिर ऐसा लगता है कि नया आविष्कार हो गया। यह आदमी कितनी नई बात कह रहा है! लेकिन इस जगत में कोई चीज ऐसी नहीं है, जो नहीं जान ली गई हजारों बार।
पर आदमी का दुर्भाग्य कि आदमी पहाड़ों पर नहीं जीता, समतल भूमि पर जीता है। शिखरों की बातें खो जाती हैं, फिर भूल जाती हैं। फिर कभी उनको जन्माता है कोई। जब कोई जन्माता है, तो वे फिर नई मालूम पड़ती हैं।
ये जो लाओत्से के वक्तव्य हैं, ये श्रेष्ठतम वक्तव्यों में से कुछ हैं, जो मनुष्य ने कभी भी दिए हैं। बहुत आखिरी जो कहा जा सकता है, जिसके आगे कहने का कोई उपाय ही नहीं बचता, उस बाउंड्री लैंड पर, उस सीमांत पर लड़खड़ाता हुआ आदमी है लाओत्से, जिसके पार निःशब्द है। बस आखिरी सीमा पर वह कुछ कह रहा है। तो वहां तक जब कोई पहुंचता है, तो समझ में आता है; नहीं पहुंचता, तो नहीं समझ में आता है। उसमें लाओत्से का कसूर नहीं है।
फिर कुछ बातें हैं, जो तब तक आपको पता नहीं चलेंगी, जब तक आपके अनुभव
का हिस्सा न बन जाएं। एक छोटा बच्चा है। उससे हम कुछ ऐसी बातें करें, जो उसके अनुभव का हिस्सा नहीं हैं। सुन लेगा, बहरे की तरह; भूल जाएगा। वे उसकी स्मृति में भी टंकेंगी नहीं। क्योंकि स्मृति में वही टंक सकता है, जो अनुभव से मेल खा जाए। भूल जाएगा। हमारा अनुभव भी तो कहीं मेल खाना चाहिए! अब लाओत्से जो भी कहता है, हमारा अनुभव कहीं भी मेल नहीं खाता। बस लाओत्से की किताब बची है, यही क्या कम है! हमारे अनुभव में कहीं मेल नहीं खातीं ये बातें। अब लाओत्से कहता है, बिना कुछ किए जो करने में समर्थ है, वही ज्ञानी है; बिना बोले जो कह देता है, वही सत्यवक्ता है। जो हिलता-डुलता

नहीं, और सब कर लेता है! जिसके ओंठ नहीं खुलते, और संदेश संवादित हो जाते हैं!
अब हमारे अनुभव में यह कहीं भी तो नहीं आता। हम तो चिल्ला-चिल्ला कर
थक जाते हैं, फिर भी संदेश संवादित नहीं होता। तो हम कैसे मानें कि बिना बोले संवादित हो जाएगा? बोल-बोल कर संवादित नहीं होता। वही-वही बात कहते जिंदगी बीत जाती है, और कोई संवाद नहीं होता। इतना इंतजाम करते हैं, कुछ इंतजाम नहीं हो पाता। आखिर में भिखारी के भिखारी ही मर जाते हैं। इतनी दौड़-धूप मचाते हैं, इतनी व्यवस्था, इतना मैनेजमेंट, और आखिर में भिखारी के भिखारी ही मर जाते हैं। और लाओत्से कहता है, मैनेज ही मत करो, व्यवस्था करो ही मत, बस मौजूद हो जाओ, व्यवस्था हो जाएगी। हम कहेंगे, पागल हो! तुम्हारे साथ हम पागल होने को राजी नहीं हैं।
लाओत्से के साथ तो जाने को जो लोग राजी होंगे, वे वे ही हो सकते हैं, जो हमारी तथाकथित मनुष्यता के पागलपन से भलीभांति परिचित हो गए हैं; जो हमारे होने से इस बुरी तरह से विषाद से भर गए हैं; जो हमारे होने के ढंग को इतना व्यर्थ जान गए हैं; जिन्होंने देख लिया भलीभांति कि जिसको हम समझदारी कहते हैं, वह नासमझी है; और जिन्होंने देख लिया कि जिसको हम बुद्धिमानी कहते हैं, वह सिर्फ बुद्धूपन है; जिनको यह साफ-साफ ख्याल में आ गया, वे ही केवल लाओत्से के साथ कदम उठाने को राजी होंगे।
और लाओत्से के साथ कदम उठाना खतरे में कदम उठाना है। क्योंकि सुरक्षा
का तो कोई आश्वासन लाओत्से नहीं देता। लाओत्से तो ऐसी खतरनाक राह बताता है, जहां आप खो जाएंगे, बचेंगे नहीं। लाओत्से तो कहता है, खोने का ही मार्ग है यह, मिट जाने की ही गैल है यह। अब उसके साथ, उसके साथ जाने को वही राजी होगा, जो यह पक्का समझ ले कि पाकर जब कुछ नहीं पाया, तो खोकर देख लें! दौड़ कर जब नहीं पाया, तो अब खड़े होकर देख लें! और जब बुद्धिमानी से नहीं मिला, तो अब पागल होकर देख लें!
तो बहुत कम लोग उतना साहस कर पाते हैं। इसलिए बहुत कम लोग उस यात्रा
पर जा पाते हैं।
आज इतना ही, शेष कल।

ताओ उपनिषद, भाग एक
आठवां प्रवचन

स्वामित्व और श्रेय की आकांक्षा से मुक्त कर्म

Chapter 2 : Sutra 4

All things take their rise, but he does not turn away from them; He gives them life, but does not take possession of them; He goes through these processes, but does not take possession of them; He acts, but does not appropriate; It is because he lays no claim to credit that the credit cannot be taken away from him.

अध्याय 2 : सूत्र 4

सभी बातें अपने आप घटित होती हैं, परंतु वे उनसे विमुख नहीं होते; उन्हें वे जीवन प्रदान करते हैं, किंतु अधिकृत नहीं करते। वे इन समस्त प्रक्रियाओं से गुजरते हैं, परंतु इनके स्वामी नहीं बनते; कर्तव्य निभाते हैं, पर श्रेय नहीं लेते। चूंकि वे श्रेय का दावा नहीं करते, इसलिए उन्हें श्रेय से वंचित नहीं किया जा सकता।

इसलिए ज्ञानी निष्क्रिय भाव से अपने कार्यों की व्यवस्था तथा निःशब्द द्वारा अपने सिद्धांतों का संप्रेषण करते हैं। इसके बाद के सूत्र में लाओत्से कहता है, "सभी बातें अपने आप घटित होती हैं।"
ताओ के आधारभूत सिद्धांतों में एक यह हैः सभी बातें अपने आप घटित होती हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे घटित करने के लिए हमारी जरूरत होती हो; हमारे बिना ही सब कुछ घटित होता है। नींद आती है, भूख लगती है, जन्म होता है, मृत्यु होती है, वह सब अपने आप घटित होता है।

लेकिन जो अपने आप घटित होता है, उसे भी हम मान कर चलते हैं कि हम घटित करते हैं। लाओत्से की दृष्टि में सबसे बड़ी भ्रांति मनुष्य की यही है कि जो घटित होता है, उसका वह कर्ता बन जाता है। जो घटित होता है, उसका कर्ता बन जाना ही बड़े से बड़ा अज्ञान है।
लाओत्से यह भी नहीं कहता कि तुम चोरी छोड़ दो; लाओत्से यह भी नहीं कहता
कि तुम बेईमानी छोड़ दो। लाओत्से कहता है, न तो तुम कुछ कर सकते हो और न तुम कुछ छोड़ सकते हो। क्योंकि छोड़ने की बात तो तभी हो सकती है, जब हम कुछ करते हैं। यदि मैंने कुछ किया है, तो मैं कुछ छोड़ भी सकता हूं। यदि मैं करता ही नहीं हूं, तो छोड़ने का कोई उपाय भी नहीं है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लेना जरूरी है। क्योंकि त्यागवादी सारी धारणाएं लाओत्से के इस सिद्धांत के विपरीत खड़ी हैं। त्यागवादी मानता है कि मैं छोड़ सकता हूं। लाओत्से कहता है, तुम जब कर ही नहीं सकते, तो तुम छोड़ कैसे सकोगे? लाओत्से कहता है, कर्म में न तो करने की संभावना है, न छोड़ने की। हां, तुम कर्ता बन सकते हो। बस, इतनी स्वतंत्रता है तुम्हें! और तुम कर्ता न बनो, इसकी स्वतंत्रता है तुम्हें। जो घटित हो रहा है, वह घटित होता चला जाएगा।
लाओत्से के समय से प्रचलित चीन में एक मजाक है। एक युवा अपनी प्रेयसी
के साथ समुद्र के तट पर गया है। चांदनी रात है। और समुद्र में जोर से लहलहा कर लहरें आ रही हैं तट की तरफ। वह युवक आकाश की तरफ मुंह उठा कर सागर से कहता है, हे सागर! लहरा, जोर से लहरा! अपनी पूरी शक्ति से लहरों को उठा! इतनी सुंदर रात और लहरें तो उठ ही रही हैं, लहरें उठ कर तट की तरफ आ ही रही हैं। उसकी प्रेयसी कहती है, आश्चर्य, तुम्हारी इतनी सामर्थ्य! मुझे कभी पता न था कि सागर तुम्हारी मानता है। वह प्रेयसी कहती है, तुम्हारी इतनी सामर्थ्य! मुझे कभी पता ही नहीं था कि सागर तुम्हारी इतनी मानता है।

तुमने कहा, लहरें उठो, और लहरें उठने लगीं! और तुमने कहा, लहरें आओ तट की तरफ, और लहरें तट की तरफ आने लगीं!
लाओत्से के समय से वह मजाक प्रचलित है। और लाओत्से कहा करता था, जिंदगी में सब ऐसा ही है। लहरें उठ ही रही हैं, तट के किनारे खड़े होकर हम कहते हैं, लहरें उठो! और अपने मन में यह भ्रांति पाल लेते हैं कि लहरें हमने उठा दी हैं।
लाओत्से कहता है, न तो तुम कर्ता बन सकते हो, न तुम त्यागी बन सकते हो। तुम सिर्फ इतने ही सत्य से अगर परिचित हो जाओ कि वस्तुएं अपने से घटित होती हैं, किसी की भी उनके घटित होने के लिए आवश्यकता नहीं है। वस्तुओं का स्वभाव घटित होना है, ऐसी प्रतीति हो जाए। तो लाओत्से कहता है, ज्ञानी उसे कहता हूं मैं, सभी बातें अपने आप घटित होती हैं, ऐसा जो जानता है। परंतु वे उनसे विमुख नहीं होते। क्योंकि जब अपने से ही घटित होती हैं, तो ज्ञानी उनसे विमुख नहीं होते। विमुख होने का सवाल तो तभी है, त्याग करने का सवाल तो तभी है, वैराग्य का सवाल तो तभी है, जब मैं उन्हें घटित कर रहा हूं। समझें। भूख लगती है, तो अज्ञानी ज्यादा खा लेता है। सोचता है, मैं खा रहा हूं। ज्यादा तो वह भी नहीं खा सकता।
नसरुद्दीन के जीवन में उल्लेख है कि अपने एक शिष्य के साथ वह यात्रा
पर है, तीर्थ-यात्रा पर। वह रोज देखता है कि शिष्य जब भोजन करता है, तो भोजन करने के बाद अपने शरीर को हिलाता है, हिला कर फिर भोजन करता है। वह रोज देखता है यह, महीनों हो गए। एक दिन उसने कहा कि देख, यह मामला क्या है? तू भोजन करता है, फिर हिलता है, फिर भोजन करता है, फिर हिलता है। उस युवक ने कहा कि आपको शायद पता नहीं कि जरा हिल कर मैं फिर शरीर के भीतर जगह बना लेता हूं, फिर थोड़ा भोजन कर लेता हूं। नसरुद्दीन ने उसे बहुत जोर से चांटा मारा और कहा, बेईमान, यह सोच कर मन को कितनी पीड़ा होती है कि कितना भोजन जो मैं कर सकता था, नहीं कर पाया! तूने पहले क्यों न बताया? यह तो मुझे भी शक था कि जितना भोजन मैं करता हूं, वह भोजन करने की सीमा नहीं है। यह तो मुझे भी शक था कि जितना मैं भोजन करता हूं, वह भोजन करने की सीमा नहीं है। और यह मुझे भी पता है कि भोजन की आखिरी सीमा पेट का फट जाना है। पूरा भोजन किया जाए तो पेट फट जाए, वहां तक।
अज्ञानी सोचता है, मैं भोजन कर रहा हूं। एक दूसरा अज्ञानी है, जो सोच सकता है कि मैं उपवास कर रहा हूं। लाओत्से दोनों को अज्ञानी कहेगा। क्योंकि दोनों ही अपने को कर्ता मानते हैं। एक करने में, एक छोड़ने में। लाओत्से कहेगा, ज्ञानी तो वह है, जो विमुख नहीं होता। जो भोजन को, मैं करता हूं, ऐसा नहीं मानता। भूख करती है। देखता रहता है। भूख लगती है, भोजन कर लेता है; नहीं लगती है, नहीं करता है। भूख नहीं लगती है, तो उपवासा रह जाता है; भूख लगती है, तो भोजन कर लेता है। न तो भूख से हटता है, न भूख को आग्रहपूर्वक भरता है। भूख के साथ कोई छेड़खानी नहीं करता। भूख की प्रक्रिया का साक्षी-भाव से व्यवहार करता है।
ताकुआन नाम के फकीर के पास कोई गया है। और पूछता है ताकुआन से कि तुम्हारी साधना क्या है?
तो ताकुआन कहता है, मेरी और कोई साधना नहीं है। मेरे गुरु ने तो इतना
ही कहा है कि जब नींद आए, तब सो जाना; और जब भूख लगे, तब भोजन कर लेना। तो जब मुझे नींद लगती है, मैं सो जाता हूं। और जब नींद टूटती है, तब उठ आता हूं। जब भूख लगती है, तब भोजन ले लेता हूं; जब नहीं लगती है, तब नहीं लेता हूं। जब बोलने जैसा होता है, तो बोल देता हूं; और जब मौन रहने जैसा होता है, तो मौन रह जाता हूं।
तो वह आदमी कहता है, यह भी कोई साधना है! यह कोई साधना है?
पर ताकुआन कहता है, पता नहीं यह साधना है या नहीं। क्योंकि मेरे गुरु
ने कहा कि साध सकते हो तुम, यही अज्ञान है। साध सकते हो तुम, यही अज्ञान है। तो मैं कुछ साध नहीं रहा हूं। अब तो जो होता है, उसे देखता रहता हूं। पता नहीं, यह साधना है या नहीं! इतना तुमसे कहता हूं कि जब से ऐसा स्वीकार किया है नींद को, भूख को, उठने को, सोने को, जागने को, तब से मैं परम आनंद में हूं, तब से दुख मेरे ऊपर नहीं आया है। क्योंकि मैंने सभी स्वीकार कर लिया है।

अगर दुख भी आया है, तो अब मैं उसे दुख करके नहीं पाता हूं, क्योंकि स्वीकार कर लिया है। सोचता हूं कि घट रहा है ऐसा।
ध्यान रहे, दुख भी तभी दुख मालूम पड़ता है, जब हम अस्वीकार करते हैं। दुख का जो दंश है, वह दुख में नहीं, हमारी अस्वीकृति में है। दुख में पीड़ा नहीं है, पीड़ा हमारे अस्वीकार में है कि ऐसा नहीं होना चाहिए था, और हुआ, इसलिए पीड़ा है। अगर मैं ऐसा जानूं कि जो हुआ, वैसा ही होता, वैसा ही होना चाहिए था, वही हो सकता था, तो दुख का कोई दंश, दुख की कोई पीड़ा नहीं रह जाती। सुख के छिन जाने में कोई पीड़ा नहीं है। सुख नहीं छिनना चाहिए था, मैं बचा लेता, बचा न पाया, उसमें पीड़ा है। अगर मैं जानूं कि सुख आया और गया; जो आता है, वह चला जाता है; अगर मेरे मन में यह ख्याल न हो कि मैं बचा सकता था, तो पीड़ा का फिर कोई सवाल नहीं है।
तो ताकुआन कहता है, मुझे पता नहीं कि साधना क्या है। इतना मैं जानता हूं कि जब से मैंने ऐसा जाना और जीया है, तब से मैंने दुख को नहीं जाना। लाओत्से कहता है, वे विमुख नहीं होते हैं। वे जानते हैं कि चीजें अपने
आप घटित होती हैं।
इस बात को समझने के लिए महावीर को थोड़ा सा समझना बहुत उपयोगी होगा। महावीर का एक सूत्र इसके बहुत करीब है। और कीमती सूत्र है। महावीर जहां-जहां धर्म शब्द का प्रयोग करते हैं, जहां-जहां, वहां उनका अर्थ धर्म से कभी भी मजहब या रिलीजन नहीं होता। महावीर का धर्म से अर्थ होता है, वस्तुओं का स्वभाव। महावीर का सूत्र है धर्म के लिएः वत्थू सहाओ धम्म। जो वस्तु का स्वभाव है, वही धर्म है। आग जलाती है, यह उसका स्वभाव है। पानी गड्ढे की तरफ जाता है, यह उसका स्वभाव है। बच्चा जवान होता है, यह उसका स्वभाव है। सुख आता है, जाता है, यह उसका स्वभाव है। कोई चीज ठहरती नहीं जगत में, यह जगत का स्वभाव है। आदमी जन्मता है और मरता है, यह नियति है, यह स्वभाव है। महावीर कहते हैं, यह सब स्वभाव है। इसे अगर तुम ठीक से जान लेते हो कि यह स्वभाव है, तो तुम मुक्त हो--इसी क्षण।
स्वभाव के विपरीत लड़ कर ही हम परेशान हैं। हम सब लड़ रहे हैं, स्वभाव से
लड़ रहे हैं। शरीर बूढ़ा होगा, हम लड़ेंगे; शरीर रुग्ण होगा, हम लड़ेंगे। वह सब स्वभाव है। इस जगत में जो भी होता है, वह सब स्वाभाविक है।
लाओत्से कहता है, सभी बातें अपने आप घटित होती हैं, परंतु वे जो ज्ञानी हैं उनसे विमुख नहीं होते। विमुख होने का कोई कारण नहीं है। विमुख होने में तो फिर वही बात मन में आ जाएगी कि मैं विमुख हो सकता हूं।
नहीं, लाओत्से तो कहता है, ज्ञानीजन मुक्त होने की भी चेष्टा नहीं करते। ज्ञानीजन चेष्टा ही नहीं करते। क्योंकि सब चेष्टाएं बांध लेने वाली सिद्ध होती हैं। ज्ञानीजन कामना नहीं करते कि ऐसा हो। क्योंकि जो भी ऐसी कामना करेगा कि ऐसा हो, वह दुख में पड़ेगा। क्योंकि यह जगत किसी की कामनाओं को मान कर नहीं चलता, यह जगत अपने नियम से चलता है। कभी आपकी कामना उसके अनुकूल पड़ जाती है, तो आपको भ्रम होता है कि सागर की लहरें आपकी मान कर उठ रही हैं। और कभी जब सागर की लहरें नहीं उठ रही होती हैं, और आप पुरानी कविता दोहराए चले जाते हैं कि उठो लहरो, चलो लहरो। वे नहीं चलतीं, तो आप दुखी होते हैं। सागर न तो आपकी मान कर चलता है, न आपकी सुन कर रुकता है। यह संयोग की बात है कि आपकी कामना कभी सागर की लहरों से मेल खा जाती और कभी मेल नहीं खाती।
कभी आप जीतते चले जाते हो, तो आप सोचते हो, मैं जीत रहा हूं। और कभी आप हारते चले जाते हो, तो आप सोचते हो, मैं हार रहा हूं। लेकिन सच्चाई कुल इतनी है कि वस्तुओं का स्वभाव ऐसा है कि कभी संयोग होता है कि आपको जीतने का भ्रम पैदा होता है; और कभी संयोग होता है कि आपको हारने का भ्रम पैदा होता है। कभी आप जो भी पांसा फेंकते हो, वही ठीक पड़ जाता है; और कभी आप जो भी पांसा फेंकते हो, कोई भी ठीक नहीं पड़ता है। कुल सवाल इतना ही है कि वस्तुओं के स्वभाव के अनुकूल हो गया, तो ठीक पड़ जाता है; प्रतिकूल हो गया, तो ठीक नहीं पड़ता है।
सुना है मैंने कि एक व्यक्ति वर्षों से बाजार में नुकसान खा रहा है।
वह जो भी ढंग से सौदा करता, नुकसान पाता है। अरबपति था। करोड़ों रुपए उसने नुकसान में गंवाए। उसके सब मित्र उसके नुकसान होने की इस नियमितता से

परिचित हो गए थे। इसलिए जो भी वह करता था, उसके मित्र उससे उलटा कर लेते थे, और सदा फायदे में रहते थे। यह बात इतनी जाहिर हो गई थी कि पूरा मार्केट उसको देख कर चलता था कि वह क्या कर रहा है। वह जो कर रहा है, वह भर भूल कर नहीं करना।
वर्षों के बाद एक दिन अचानक मामला उलटा हो गया। उसने कुछ किया। उसके मित्र नियमित अनुसार, जैसा सदा करते थे, उससे उलटा किए। और सब हारे। उसने पूरे मार्केट पर कब्जा कर लिया। मित्र उसके पास गए और कहा, चमत्कार कर दिया, बात क्या है? ऐसा कभी नहीं हुआ!
उस आदमी ने कहा कि मैं वर्षों से हार रहा हूं। आज अपने वर्षों का हिसाब-किताब देख रहा था, तब मुझे ख्याल आया कि अब जो मेरा सिद्धांत कह रहा है, करो, वह न करूं इस बार। जिस सिद्धांत से मैं चलता हूं। तो इस बार मैं अपने खिलाफ चला हूं। जैसा तुम मेरे खिलाफ सदा चलते रहे हो, इस बार मैं अपने खिलाफ चला हूं। मेरा सिद्धांत तो कह रहा था कि खरीद करो, मैंने बेचा। उसको बेचते देख कर सारे लोगों ने खरीद की, क्योंकि वह जो करे, उससे उलटा करने में सदा फायदा था। उस आदमी ने कहा कि मुझे पहली दफे ख्याल आया कि मैं चीजों के स्वभाव के बिल्कुल प्रतिकूल ही चलता रहा हूं सदा से, अपनी जिद्द ठोकता रहा हूं। मुझे पता नहीं कि सही क्या है। लेकिन एक बात पक्की थी कि मैं गलत होऊंगा--इतने पांच-दस साल का जो अनुभव है। इसलिए अपने से उलटा चल कर देखा। आज मैं कह सकता हूं, उस आदमी ने कहा कि मैं हार रहा था, यह कहना भी गलत है; मैं जीत रहा था, यह कहना भी गलत है। वस्तुओं के स्वभाव के अनुकूल जब आदमी पड़ जाता है, तो जीत जाता है। प्रतिकूल जब पड़ जाता है, तो हार जाता है।
और इस सत्य को अगर कोई ठीक से देख ले, तो लाओत्से कहता है, वह विमुख नहीं होता। वह जिंदगी में खड़ा रहता है। जैसी है जिंदगी, वैसे ही खड़ा रहता है। वह भाग कर भी कहीं नहीं जाता, क्योंकि वह यह नहीं मानता कि जिंदगी से भागना संभव है। और अगर भागना आ जाए, तो रुकता भी नहीं है।
इसको समझ लेना आप, नहीं तो गलती होगी। नहीं तो गलती होगी। अगर भागना घटित हो जाए, तो वह रुकता भी नहीं है, वह भागने के भी साथ हो जाता है। अपनी तरफ से वह कुछ नहीं करता है, जो घटित होता है उसमें बहता है। ऐसा समझें कि वह तैरता नहीं है, बहता है। वह हाथ-पैर नहीं मारता नदी की धारा में, वह नदी की धारा में अपने को छोड़ देता है। और धारा से कहता है, जहां ले चलो, वही मेरी मंजिल है। निश्चित ही, ऐसी स्थिति में रहने वाले व्यक्ति के जीवन में जो घटित होगा, वह अभूतपूर्व होगा। उस अभूतपूर्व का ब्यौरा दिया है उसने। "उन्हें वे जीवन प्रदान करते हैं, किंतु अधिकृत नहीं करते।"
ज्ञानी जिस चीज के संपर्क में आता है, उसी को जीवन प्रदान करता है। किंतु अधिकृत नहीं करता, उसका मालिक नहीं बनता है। जीवन देता है, सब दे देता है जो उसके पास देने को है, लेकिन फिर भी अधिकार स्थापित नहीं करता। क्योंकि लाओत्से कहता है, जिस पर तुमने अधिकार स्थापित किया, उसे तुमने बगावत के लिए भड़काया; जिस पर तुमने मालकियत कायम की, उसको तुमने दुश्मन बनाया; जिसकी तुमने स्वतंत्रता छीनी, उसे तुमने स्वच्छंद होने के लिए उकसाया।
अधिकृत नहीं करता ज्ञानी। जो भी है, दे देता है, लेकिन देने के साथ लेने की कोई शर्त नहीं बनाता। अगर प्रेम देता है, तो नहीं कहता कि प्रेम वापस लौटाओ। लौट आता है, तो स्वीकार कर लेता है; नहीं लौट आता, तो स्वीकार कर लेता है। लौट आने पर भिन्नता नहीं है; नहीं लौट आए, तो भेद नहीं है। कोई अधिकार स्थापित नहीं करता।
सब अधिकार वापसी की मांग करते हैं। अधिकार का अर्थ ही क्या होता है? अधिकार का अर्थ यह होता है, कुछ मैंने किया है, अब मैं अधिकारी हुआ वापस कुछ पाने का; प्रत्युत्तर पाने का मैं अधिकारी हुआ। अगर नहीं मिलेगा, तो दुख पाऊंगा। और मजे की बात है कि जिस-जिस बात का हम अधिकार कर लेते हैं। मिले तो सुख नहीं मिलता, न मिले तो दुख मिलता है। अगर मैंने समझा कि किसी को मैंने प्रेम दिया है, तो जब मैं मुसीबत में होऊंगा तो मुझे उसकी सहायता मिलेगी। मिले तो मेरे मन में धन्यवाद नहीं उठेगा। क्योंकि अधिकार जब है, तो यह तो होना ही चाहिए, वही हो रहा है। धन्यवाद का कोई सवाल नहीं है। जो

होना चाहिए, वही हो रहा है। मुझे कोई सुख भी नहीं मिलेगा, क्योंकि जब टेकेन फार ग्रांटेड, कोई चीज स्वीकृत ही है, तो उससे कभी सुख नहीं मिलता।
मैं राह पर चलता हूं और मेरी पत्नी मुझे, मेरा रूमाल गिर जाए, उठा कर
दे दे, तो कोई सुख का सवाल नहीं है। लेकिन अजनबी स्त्री उठा कर दे दे, तो सुखद है। उसे धन्यवाद भी मैं दूंगा। उससे कोई अपेक्षा न थी। मेरी मां रात भर बैठ कर मेरा सिर दबाती रहे, तो कोई सवाल नहीं है। लेकिन कोई और स्त्री सिर दबा दे घड़ी भर, तो शायद जीवन भर उसे मैं न भूलूं। जहां अधिकार है, वहां चीजें जैसी होनी चाहिए, उसकी अपेक्षा है। अगर हों, तो कोई सुख नहीं मिलता; अगर न हों, तो बड़ा दुख मिलता है।
अब यह बड़े मजे की बात है कि अधिकार सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं लाता। सुख तो लाता ही नहीं, क्योंकि सुख स्वीकार कर लिया गया है कि होना ही चाहिए। नहीं हो, तो दुख आता है।
लाओत्से कहता है कि ज्ञानी जीवन प्रदान करते हैं, अधिकृत नहीं करते।
असल में, ज्ञानी सुख का राज जानता है, रहस्य जानता है। जो हम करते हैं, उससे उलटी है उसकी स्थिति। चूंकि वह अधिकार नहीं करता, इसलिए अगर कोई कर जाता है, तो सुख पाता है; अगर कोई नहीं कर जाता, तो दुख का कोई कारण नहीं है, क्योंकि अपेक्षा कोई थी ही नहीं कि कोई करे।
ध्यान रखें, हमसे ठीक उसकी उलटी स्थिति है। अगर कोई उसे खाने के लिए पूछ लेता है, तो वह परम सौभाग्यशाली अनुभव करता है, अनुगृहीत होता है, ग्रेटिट्यूड मानता है। क्योंकि यह उसने कभी सोचा ही नहीं था कि कोई दो रोटी के लिए पूछेगा। अनुगृहीत होता है कि परम कृपा है कि किसी ने दो रोटी के लिए पूछा। कोई न पूछे, तो वह दुखी नहीं होता। क्योंकि उसने कभी अपेक्षा न की थी कि कोई पूछेगा। अपेक्षा के पीछे दुख है; अधिकार के पीछे दुख है। मालकियत के पीछे सिवाय नर्क के और कुछ भी नहीं है।
इसलिए जहां-जहां मालकियत है, वहां-वहां नर्क है। वह मालकियत किसी भी शक्ल में हो--वह पति की पत्नी पर हो, पत्नी की पति पर हो, मित्र की मित्र पर हो, बाप की बेटे पर हो, गुरु की शिष्य पर हो--वह मालकियत कहीं भी हो, किसी भी शक्ल और किसी भी रूप में हो, जहां मालकियत है उसी की आड़ में नर्क पनपता है। और जहां मालकियत नहीं है, उसी खुले आकाश में स्वर्ग का जन्म होता है।
तो जहां-जहां आपको नर्क दिखाई पड़े, वहां-वहां तत्काल समझ लेना कि मालकियत खड़ी होगी। उसके बिना नर्क कभी नहीं होता है। जहां-जहां दुख हो, वहां जान लेना कि यह मालकियत दुख दे रही है।
लेकिन हम बहुत अजीब हैं। हम कभी ऐसा अनुभव नहीं करते कि हमारी मालकियत की वजह से दुख आता है। हम समझते हैं, दूसरे की गलतियों की वजह से दुख आता है। और इसलिए इससे उलटा भी हम कभी नहीं समझ पाते कि हमारी गैर-मालकियत की वजह से सुख आता है। वह भी हम नहीं समझ पाते।
लेकिन जहां भी सुख है, वहां गैर-मालकियत है, वहां अधिकार का भाव नहीं है। और जहां भी दुख है, वहां अधिकार का भाव है। और ज्ञानी तो वही है; अगर इतना भी ज्ञान में ज्ञान नहीं है कि वह नर्क से अपने को ऊपर उठा सके, तो ज्ञान का कोई मूल्य ही नहीं है।
लाओत्से कहता है, "वे जीवन प्रदान करते हैं।"
वे जीवन भी दे देते हैं। प्रेम ही नहीं, सब कुछ, जो दे सकते हैं, दे देते हैं। लेकिन लौट कर कोई मांग नहीं करते।
"वे इन समस्त प्रक्रियाओं से गुजरते हैं, परंतु इनके स्वामी नहीं बनते।"
वे जीवन के सब रूपों से गुजरते हैं, सब प्रक्रियाओं से, एवरी प्रोसेस।
वे बचपन में बच्चे होते हैं, जवानी में जवान होते हैं, बुढ़ापे में बूढ़े हो जाते हैं। जवानी से गुजरते वक्त वे जवानी के मालिक नहीं बनते। मालिक जो बनेगा जवानी का, बुढ़ापा आने पर रोएगा, पछताएगा, चिल्लाएगा; मालकियत छिनी। वे जवानी से गुजरते हैं ज्ञानी, लेकिन मालकियत नहीं करते। इसलिए जब बुढ़ापा आता है, तो वे उसका भी स्वागत करते हैं। वे जीवन से गुजरते हैं, लेकिन जीवन के मालिक नहीं बनते। इसलिए जब मौत आती है, तो उन्हें दरवाजे पर आलिंगन फैलाए हुए पाती है। वे जीवन की कोई मालकियत नहीं करते, इसलिए मृत्यु उनसे कुछ छीन नहीं सकती।

ध्यान रहे, छीना तभी जा सकता है, जब आप में स्वामित्व का भाव जग जाए।
आपकी चोरी तब की जा सकती है, जब स्वामित्व का भाव जग जाए। आपको लूटा तब जा सकता है, जब आप में स्वामित्व का भाव जग जाए। आपको धोखा तब दिया जा सकता है, जब आप में स्वामित्व का भाव जग जाए।
ज्ञानी को धोखा नहीं दिया जा सकता। ज्ञानी से कुछ छीना नहीं जा सकता।
ज्ञानी से कुछ चुराया नहीं जा सकता। ज्ञानी का कुछ मिटाया नहीं जा सकता।
क्योंकि उस सबका जो मूल सूत्र है, वह कभी उस मूल सूत्र को ही नहीं जमने देता है। वह मालिक ही नहीं बनता है।
इसे थोड़ा समझें कि मालकियत हमारे कष्टों का आधार है। और हमें पता ही नहीं चलता। हम इतने चुपचाप मालिक बन जाते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं है। नहीं, हम ऐसी चीजों के मालिक तो बन ही जाते हैं, जिन पर हमें मालकियत की सुविधा दिखाई पड़ती है; जहां कोई सुविधा नहीं होती, वहां भी हम मालकियत का भाव पैदा कर लेते हैं। जहां कोई उपाय नहीं होता, वहां भी हम मालकियत का भाव पैदा कर लेते हैं। हमें जरा सा मौका भर मिल जाए कहीं बैठने का कि हम मालिक हो जाते हैं। कई बार तो ऐसी जगह हम मालिक हो जाते हैं, जहां कि कल्पना भी नहीं हो सकती थी मालिक होने की। पूरी जिंदगी हमारी ऐसी मालकियतों से भरी है। अगर आप मेरे पास दो क्षण आए हों और मैंने आपको प्रेम से बिठाया है, तो आपको पता हो या न हो, आप मुझ पर भी मालकियत करना शुरू कर देंगे।
मुझे लोग पत्र लिखते हैं। नियमानुसार मैं उनके पहले पत्र का उत्तर देता हूं। फिर मेरा पत्र पहुंचा कि दूसरा पत्र तत्काल, तीसरा पत्र तत्काल! जब तक मेरी सुविधा होती है, मैं उन्हें उत्तर देता हूं। लेकिन तब शीघ्र ही मैं पाता हूं कि अब उन्हें लिखने को कुछ भी नहीं है, सिर्फ मेरा पत्र पाने को वे कुछ भी लिखे जा रहे हैं। तब मैं रुकता हूं। मैं दो-चार पत्रों का उत्तर नहीं देता कि उनका गाली-गलौज से भरा हुआ पत्र आ जाता है। तब मैं थोड़ा हैरान होता हूं। सोचता हूं कि क्या, हुआ क्या होगा!
मैंने दो पत्रों का उत्तर दिया, मालकियत उन्होंने स्थापित कर ली कि उनके पत्र के उत्तर मिलते हैं। अब अगर मैं नहीं दे रहा हूं पत्र का उत्तर, आठ दिन देरी कर दी है, नहीं दिया, तो उनका उत्तर आ जाता है, जिसमें क्रोध साफ जाहिर होता है कि आपने अभी तक उत्तर क्यों नहीं दिया? वे दुख पा रहे होंगे, इसलिए क्रोध है। वे पीड़ा पा रहे होंगे, इसलिए क्रोध है। लेकिन आपको हक है पत्र लिखने का, लेकिन आपने पत्र लिखा, इससे अनिवार्यता हो गई कि मैं उत्तर दूं? मैं आपको पत्र लिखूं, यह मेरा हक है कि मैं पत्र लिखूं। लेकिन उत्तर आना ही चाहिए, यह तो कोई अनिवार्यता नहीं है। अगर लिखने को मैं स्वतंत्र हूं, तो न लिखने को भी आप स्वतंत्र हैं। नहीं, पर मन ऐसी सूक्ष्म जगह पर भी इंतजाम कर लेता है मालकियत का। और फिर बहुत दुख पाता है। लाओत्से कहता है, वे इन समस्त प्रक्रियाओं से गुजरते हैं।
जिसे हम जीवन कहें, वह प्रक्रियाओं का एक लंबा फैलाव है। प्रतिपल कोई प्रक्रिया चल रही है--चाहे प्रेम की, चाहे घृणा की, चाहे धन की, चाहे मित्रता की--कोई न कोई प्रक्रिया प्रतिपल चल रही है। श्वास चल रही है, नींद आ रही है, भोजन कर रहे हैं, आ रहे हैं, जा रहे हैं। लेकिन इस सारी प्रक्रियाओं के जाल में ज्ञानी इनका स्वामी नहीं बनता है। इसलिए उसे कभी कोई च्युत नहीं कर सकता; उसके स्वामित्व से कभी कोई उसे नीचे नहीं उतार सकता।
लाओत्से कहता है, "वे कर्तव्य निभाते हैं, पर श्रेय नहीं लेते।"
जो करने योग्य मालूम होता है, वह कर देते हैं; लेकिन कभी श्रेय नहीं लेते। वे कभी यह नहीं कहते कि तुम मानो कि हमने ऐसा किया, कि स्वीकार करो कि हमने ऐसा किया था।
नसरुद्दीन एक नदी में नहा रहा है। गहरी नदी है। उसे अंदाज नहीं, आगे
बढ़ गया और डूबने की हालत हो गई। एक आदमी ने उसे निकाल कर बचाया। फिर वह आदमी जहां भी मिल जाता उसे--रास्ते में, बाजार में, मस्जिद में--वह कहता, याद है, मैंने ही तुम्हें बचाया था! नसरुद्दीन परेशान आ गया। कोई मौका न चूके वह आदमी। जहां भी मिल जाए, वह कहे, नसरुद्दीन याद है, मैंने तुम्हें नदी में डूबते से बचाया था।

एक दिन नसरुद्दीन ने उसका हाथ पकड़ा और उसे कहा कि याद है, जल्दी मेरे साथ आओ। उसने कहा, कहां ले जाते हो? उसने कहा, जल्दी तुम मेरे साथ आओ। नदी के किनारे खड़े होकर नसरुद्दीन कूद पड़ा। जितने गहरे पानी में उसने बचाया था, उसमें खड़े होकर कहा कि मेरे भाई, अब तू जा, बचाना मत। वह बहुत मंहगा पड़ गया था। तू जा! अब हम बच सकेंगे तो बच जाएंगे, मरेंगे तो मर जाएंगे। बाकी तू मत बचाना। तू देख ले कि अब हम बिल्कुल उतने ही पानी में आ गए हैं न, जितने पानी से तूने निकाला था! अब तू जा।
हम जो भी थोड़ा सा कर लेते हैं, तो उसका ढिंढोरा पीटते फिरते हैं। वह ढिंढोरा पीटना ही बताता है कि वह हमारे लिए कर्तव्य नहीं था; वह सौदा था। उस करने में हमने कोई आनंद नहीं पाया था। उसमें भी हमने कोई बार्गेन किया था। उसमें भी हमने कोई सौदा किया था; उसमें भी हम... हम उसमें भी अर्थशास्त्र के बाहर नहीं थे।
लाओत्से कह रहा है, कर्तव्य तो वे निभाते हैं, पर श्रेय नहीं लेते। काम पूरा हो जाता है कि चुपचाप हट जाते हैं। बात निपट जाती है, तो चुपचाप विदा हो जाते हैं। इतनी देर भी नहीं रुकते कि आप उन्हें धन्यवाद दे दें। इतनी देर भी नहीं रुकते कि आप उन्हें धन्यवाद दे दें। और अक्सर ऐसा होता है कि ज्ञानी जो करता है, वह इतनी शांति से करता है कि आपको पता ही नहीं चलता कि उसने किया; और अक्सर कोई और ही उसका श्रेय लेता है। अक्सर कोई और ही उसका श्रेय लेता है। वह इतना चुपचाप करके कोने में सरक जाता है! श्रेय लेने वाला कब बीच में आकर सामने खड़ा हो जाता है!
ज्ञानी अक्सर ही चुपचाप, करते वक्त सामने होता है, श्रेय लेते वक्त पीछे हट जाता है। क्यों? क्योंकि ज्ञानी का मानना यह है कि कर्तव्य में ही इतना आनंद है; कर्तव्य अपने में पूरा आनंद है। श्रेय तो वे लेना चाहते हैं, जिन्हें कर्तव्य में आनंद नहीं मिलता।
एक मां अपने बेटे को बड़ा कर रही है। अगर उसे बड़ा करने में आनंद है, तब
वह कहती हुई नहीं फिरेगी कि मैंने बेटे को बड़ा किया है। और अगर कभी वह कहती हुई फिरती है कि मैंने बड़ा किया और नौ महीने पेट में रखा और इतना श्रम उठाया, तो जानना चाहिए कि वह मां के आनंद से वंचित रह गई। उसने नर्स का काम किया होगा; वह मां नहीं हो पाई। क्योंकि मां होना तो इतना आनंदपूर्ण था कि सचाई तो यह है कि अगर सच में मां होने का उसे पूरा आनंद आ गया होता, तो अब इस बेटे से कुछ और लेने का सवाल नहीं उठता। जितना आनंद मिल गया है, वह उसके कर्तव्य से बहुत ज्यादा है।
तो अक्सर ऐसा होगा कि ज्ञानी आपको धन्यवाद दे देगा कि आपने अवसर दिया
कि उसे थोड़ा सा आनंद मिल सका। आपसे धन्यवाद की अपेक्षा नहीं करेगा। "चूंकि वे श्रेय का दावा नहीं करते, इसलिए उन्हें श्रेय से वंचित नहीं किया जा सकता।"
लाओत्से आखिरी वचन कहता है कि चूंकि वे श्रेय का दावा नहीं करते, इसलिए उन्हें श्रेय से वंचित नहीं किया जा सकता। वंचित तो उसी को किया जा सकता है, जो दावेदार है। दावे का खंडन हो सकता है। लेकिन जिसने दावा ही नहीं किया, उसका खंडन कैसे होगा? जिसने कहा ही नहीं कि मैंने कुछ किया है, कैसे आप उससे कहिएगा कि तुमने नहीं किया है। जिसने कभी घोषणा ही नहीं की, उसके इनकार करने का सवाल नहीं उठता है।
तो लाओत्से कहता है, जो अपने श्रेय का दावा नहीं करते, उन्हें कभी श्रेय से वंचित नहीं किया जा सकता। वंचित उन्हीं को किया जा सकता है, जो दावा करते हैं। और मजा यह है कि दावा वे ही करते हैं, जो पहले से ही वंचित हैं, जिन्हें कुछ मिला ही नहीं। दावे की इच्छा ही इसलिए पैदा होती है कि कोई आनंद कृत्य में तो उपलब्ध नहीं हुआ, अब श्रेय पाने में उपलब्ध हो जाए। और दावे की इच्छा इसलिए भी पैदा होती है कि वस्तुतः अगर आपने कर्तव्य न किया हो, तो दावे की इच्छा पैदा होती है। क्योंकि कर्तव्य अपने आप में इतना टोटल, इतना संपूर्ण है कि उसके ऊपर कोई दावे का सवाल नहीं उठता। लेकिन जिसने पूरा नहीं किया, उसके भीतर पश्चात्ताप, रिपेंटेंस, उसके पीछे कुछ ग्लानि सरकती रहती है कि मैं नहीं कर पाया। वह यह नहीं कर पाया, इस कीड़े को दबाने के लिए, मैंने किया, इसकी उदघोषणा करता है।

जो मां अपने बेटे के लिए कुछ न कर पाई हो, वह घोषणा करेगी कि उसने क्या- क्या किया। और जो मां अपने बेटे के लिए बहुत कुछ कर पाई हो, वह सदा कहेगी कि वह क्या-क्या नहीं कर पाई। उसको सदा खलेगा वही जो वह नहीं कर पाई, जो कि किया जाना था, नहीं कर पाई। और जब कोई मां इस बात की याद करती है कि वह अपने बेटे के लिए क्या-क्या नहीं कर पाई, तो वह खबर देती है कि वह मां है। और जब कोई मां इस बात की खबर देती है कि उसने अपने बेटे के लिए क्या-क्या किया, तो वह खबर देती है कि वह मां नहीं है।
जीवन में दावा सिर्फ ग्लानि से पैदा होता है।
मनोवैज्ञानिक भी अब इस सत्य से स्वीकृति देते हैं। विशेषकर एडलर, इस युग के तीन बड़े मनोवैज्ञानिकों में एक, वह लाओत्से की इस बात को बहुत गहनता से स्वीकार करता है। एडलर कहता है कि जो आदमी दावा करता है, वह दावा इसीलिए करता है कि उसे भीतर अनुभव होता है कि वह दावे के योग्य नहीं है। और जो आदमी हीन होता है, वह महत्वाकांक्षी हो जाता है। और जो आदमी भीतर भयभीत होता है, वह बाहर से बहादुरी के आवरण बना लेता है। और जो आदमी भीतर निर्बल होता है, वह सबलता की घोषणाएं करता फिरता है। जो आदमी भीतर अज्ञानी होता है, वह बाहर ज्ञान की पर्तों को निर्मित कर लेता है। एडलर कहता है, जो आदमी भीतर होता है, उससे उलटी घोषणा करता है। ठीक उससे उलटी घोषणा करता है! क्योंकि वह जो भीतर है, वह कष्ट देता है। वह अपने ही भीतर को अपनी ही उलटी घोषणा से पोंछना, मिटाना, समाप्त करना चाहता है।
इसमें बहुत दूर तक सचाई है। इसमें बहुत दूर तक सचाई है। जो लोग हीन-ग्रंथि से पीड़ित होते हैं, इनफीरियारिटी कांप्लेक्स से पीड़ित होते हैं, वे ऐसी कोशिश में लग जाते हैं कि दुनिया को दिखा दें कि वे कुछ हैं। जब तक वे दुनिया को न दिखा पाएं कि वे कुछ हैं, तब तक वे अपनी ही हीनता की ग्रंथि के बाहर नहीं हो पाते। जिस दिन दुनिया मान लेती है कि हां, तुम कुछ हो, उस दिन उनको भी मानने में सुविधा हो जाती है कि मैं कुछ हूं। हालांकि वह जो भीतर ना-कुछपन है, वह तो मौजूद ही रहेगा। वह ऐसे मिटने वाला नहीं है। लेकिन फिर भी धोखा, सेल्फ-डिसेप्शन, आत्मवंचना हो जाती है।
लाओत्से की यह बात कि वे श्रेय का दावा नहीं करते... ।
असल में, जो असली दावेदार हैं, वे कभी दावा नहीं करते। इसे ऐसा समझें।
जो असली दावेदार हैं, वे कभी दावा नहीं करते। उनका दावा इतना प्रामाणिक है कि उसके करने की कोई जरूरत नहीं है। उनका दावा इतना आधारभूत है कि स्वयं परमात्मा भी उसे इनकार नहीं कर पाएगा। इसलिए किसी आदमी को मनवाने की कोई भी जरूरत नहीं है।
जीसस को सूली लगी। तो जीसस के शिष्यों को ख्याल था कि सूली पर जीसस को मारा नहीं जा सकेगा। क्योंकि वे चमत्कार दिखला देंगे, वे मिरेकल कर देंगे, सूली बेकार जाएगी और जीसस को मारा नहीं जा सकेगा। जीसस के शिष्यों को यह ख्याल था। क्योंकि ईश्वर का बेटा अगर ऐसे मौके को भी चूक जाएगा और दावा नहीं करेगा--यह तो मौका था, दुश्मन खुद मौका दे रहा था।
और दुश्मन का भी कहना यह था कि अगर तुम सचमुच ईश्वर के बेटे हो, तो सूली पर तय हो जाएगा। अगर ईश्वर अपने बेटे की भी रक्षा नहीं कर सकता, तो फिर और किसकी रक्षा करेगा? और अगर ईश्वर के बेटे को भी साधारण आदमी फांसी पर लटका देते हैं और ईश्वर कुछ नहीं कर पाता, बेटा कुछ नहीं कर पाता, तो सब दावे बेकार हैं। जीसस के दुश्मन भी जीसस को सूली पर ले गए थे इस ख्याल से कि अगर वह सच में ईश्वर का बेटा है, तो दावा हो जाएगा। वह जाहिर हो जाएगी बात, हम सूली न दे पाएंगे।
जीसस के शिष्यों को भी यही ख्याल था कि सूली पर सब निर्णय हो जाएगा-- डिसीसिव, आखिरी बात का फैसला हो जाएगा। चमत्कार देखना चाहते हो? दिख जाएगा!
लेकिन जीसस चुपचाप मर गए; एक साधारण आदमी की तरह मर गए। जब जीसस के हाथ में खीलियां ठोंकी जा रही हैं, तब शिष्य भी उत्सुकता से देख रहे हैं, कि अब चमत्कार होता है! अब चमत्कार होता है! दुश्मन भी आतुरता से देख रहे हैं कि शायद चमत्कार होगा! शायद! पता नहीं, यह आदमी हो ही ईश्वर का बेटा! लेकिन दुश्मन भी निराश हुए, मित्र भी निराश हुए। जीसस ऐसे मर गए, जैसे कोई भी अ, ब, स मर जाता। भारी सदमा लगा।

शत्रुओं को तो सदमा का कोई कारण नहीं था। उन्होंने कहा कि ठीक है, हम
तो पहले ही कहते थे कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। यह सरासर झूठी बात है कि ईश्वर का बेटा है। यह बढ़ई का लड़का है। यह कोई ईश्वर वगैरह का बेटा नहीं है। आखिर मर गया! सिद्ध हो गई बात! शिष्यों को भारी सदमा लगा। लगना ही था।
अपेक्षा थी, वह टूट गई। डिसइल्यूजनमेंट हो गया। एक भ्रम खंडित हो गया।
दो हजार साल तक जीसस को प्रेम करने वाले लोग इस पर विचार करते रहे हैं
कि बात क्या हुई! जीसस को सिद्ध करना चाहिए था। अगर लाओत्से को वे समझ सकें, तो बात समझ में आ जाएगी, अन्यथा जीसस को कभी नहीं समझा जा सकेगा। जीसस सच में ही इतना बेटा हैं ईश्वर के, दावा इतना प्रामाणिक है, कि उसे करने की कोई जरूरत नहीं है। अगर जीसस ने कोई चमत्कार दिखाया होता, तो मेरी दृष्टि में तो वे ना-कुछ हो जाते। उसका मतलब ही यह होता कि वे आदमियों के सामने सिद्ध करने को बहुत आतुर हैं। उनका ऐसा चुपचाप निरीह आदमी की तरह मर जाना इस बात की घोषणा है कि वह आदमी साधारण न था। साधारण आदमी भी थोड़े हाथ-पैर मारता। साधारण आदमी भी थोड़े हाथ-पैर मारता।
नहीं, उन्होंने कुछ किया ही नहीं, हाथ-पैर मारने की बात अलग। वह सूली काफी वजनी थी। तो जो उसे ढो रहे थे, उनसे ढोते नहीं बनती थी। तो जीसस ने कहा, मेरे कंधे पर रख दो, मैं अभी जवान हूं। जो मजदूर ढो रहे थे, वे बूढ़े थे। तो जीसस अपनी सूली को लेकर पहाड़ पर चढ़े। सूली पर चढ़ गए सरलता से, और मर गए चुपचाप!
दावा इतना गहन रहा होगा, ईश्वर की सन्निधि इतनी निकट रही होगी कि उसे सिद्ध करना व्यर्थ था। अगर जीसस ने कोशिश करके उसे सिद्ध किया होता, तो वे साफ सबूत दे देते कि वे दावेदार पक्के नहीं थे। असल में जो दावेदार है, वह दावा करता ही नहीं। मगर ईसाइयत न समझा पाई अब तक इस बात को। क्योंकि लाओत्से का तो ईसाइयत को कोई ख्याल नहीं। और सच यह है कि जो भी जीसस को समझना चाहते हैं, वे बिना लाओत्से को समझे नहीं समझ सकते हैं। क्योंकि यहूदी धर्म के पास जीसस को समझाने का कोई सूत्र नहीं है। और जीसस के पहले उनके मुल्क में जो लोग भी पैदा हुए, उनमें से किसी से भी जीसस का कोई तालमेल नहीं है। जीसस बिल्कुल फारेन एलीमेंट थे, एकदम विजातीय तत्व हैं। असल में, जीसस को जो भी खबरें मिलीं, वे भारत, चीन और इजिप्त से मिलीं। उनका जो शिक्षण हुआ, वह इन तीन मुल्कों में हुआ। और वह जो भी सारभूत पूरब में था, जो भी निचोड़ था पूरब के सारे प्राणों का, वह जीसस के पास था। इसलिए जो जानते हैं, वे तो, जीसस ने चमत्कार नहीं दिखलाया, इसी को चमत्कार मानते हैं। यह बड़ा चमत्कार है, यह बड़ा मिरेकल है। छोटा-मोटा आदमी भी कुछ न कुछ दिखलाने की कोशिश करता। कुछ भी कोशिश नहीं की। बात इतनी सिद्ध थी कि उसका दावा क्या करना था? किसके सामने दावा करना था? अगर ईश्वर के सामने ही दावा साफ है, तो आदमियों के सामने दावा करने की जरूरत कहां है! आदमियों के सामने तो सिद्ध करने वही जाता है, जो ईश्वर के सामने सिद्ध नहीं है।
"चूंकि वे श्रेय का दावा नहीं करते, इसलिए उन्हें श्रेय से वंचित नहीं किया जा सकता।"
इसलिए मैं कहता हूं कि चूंकि जीसस ने दावा नहीं किया, इसलिए उन्हें वंचित नहीं किया जा सकता। वे ईश्वर के बेटे सिद्ध हो गए--उस, उस गैर-चमत्कार में, जब उन्होंने कोई चमत्कार नहीं किया। नहीं तो आदमी का मन कुछ करके दिखाने का होता है। और जहां इतना तनाव रहा होगा, सूली पर लटकाए गए, एक लाख आदमी इकट्ठे थे उस पहाड़ी पर, लोग प्रतीक्षारत थे, कुछ दिखला दो! मित्र भी यही चाहते थे, शत्रु भी यही चाहते थे, कुछ हो जाए! वे सब खाली हाथ लौटे। जीसस चुपचाप मर गए!
और यह वही आदमी है, जिसने मुर्दों को छुआ और वे जिंदा हो गए। और यह वही आदमी है, जिसने बीमारों को छुआ और उनकी बीमारियां विलीन हो गईं। और यह वही आदमी है कि सूखे वृक्ष के नीचे बैठ गया, तो उस पर पत्ते आ गए। और यह वही आदमी है, जो कि सागर तूफान कर रहा हो, तो इसके इशारे से शांत हो गया।
लेकिन यह मरते वक्त गैर-दावे में मर गया! हैरान हुए शत्रु भी कि यह आदमी कुछ तो जानता ही था। नहीं रहा हो ईश्वर का बेटा, तो भी कुछ तो जानता ही था। क्योंकि ये मरीजों को ठीक होते देखा है, मुर्दों को भी उठते देखा है। शत्रु भी इतने ख्याल में नहीं थे कि कुछ भी न होगा। कुछ तो होगा ही। सूली

टूट पड़ती, खीले ठोंके जाते और न ठुंकते; आर-पार हो जाते और खून न बहता! कुछ तो हो ही सकता था! और ये कोई बहुत बड़ी बातें न थीं! इसके लिए ईश्वर का बेटा होने की जरूरत नहीं है। एक साधारण सा योगी भी, हाथ में ठोंकी जाए खीली तो खून को गिरने से रोक सकता है। साधारण योगी, जिसको थोड़ा सा प्राणायाम का गहन अभ्यास है, वह खून की गति को रोक सकता है। इसमें कोई बड़ी अड़चन न थी। कुछ भी न हुआ! बड़ी क्लाइमेक्स पर लोग थे एक्सपेक्टेशन के कि कुछ होगा। कुछ भी न हुआ उस पहाड़ पर।
यह आदमी अदभुत रहा होगा! इसका ऐसा चुपचाप मर जाना एक मिरेकल है, एक चमत्कार है। पर लाओत्से को समझेंगे, तो यह बात समझ में आएगी। और बहुत से वचन हैं जीसस के, जो लाओत्से को बिना समझे समझ में नहीं आएंगे।
जीसस कहते हैं, धन्य हैं वे लोग, जिनके पास कुछ भी नहीं, क्योंकि वे स्वर्ग के राज्य के मालिक होंगे।
लाओत्से को समझे बिना समझना मुश्किल है।
जीसस कहते हैं, धन्य हैं वे लोग, जो विनम्र हैं। जिन्होंने कोई दावा नहीं किया, जो विनम्र हैं, जिन्होंने कोई दावा नहीं किया, वे ही प्रभु के राज्य के हकदार हैं। धन्य हैं वे, जो आत्मा से दरिद्र हैं, क्योंकि परमात्मा की सारी समृद्धि उनकी है।
ये वचन सिवाय लाओत्से के कहीं से आने वाले नहीं हैं। यहूदी परंपरा में इन वचनों की कोई जगह नहीं है। क्योंकि यहूदी परंपरा कहती है कि जो तुम्हारी एक आंख फोड़े, तुम उसकी दोनों फोड़ देना। और अगर किसी ने किसी की एक आंख फोड़ी है, तो परमात्मा उसको सजा देगा और उसकी दूसरी आंख फोड़ देगा। वहां इस लड़के का अचानक पैदा होना और इस लड़के का यह कहना, जीसस का यह कहना कि जो तुम्हारा कोट छीने, उसे कमीज भी दे देना; पता नहीं, संकोचवश कमीज वह न छीन पाया हो; और जो तुमसे कहे कि दो मील तक मेरा बोझ ढोओ, तुम तीन मील तक ढो देना, क्योंकि हो सकता है संकोच में हो और आगे के लिए न कह पाया हो। यह जो हवा है, यह जो दृष्टि है, यह लाओत्सियन है।
श्रेय मत लेना, और तब तुमसे कभी श्रेय छीना न जा सकेगा। और तुमने मांगा श्रेय, और उसी वक्त छीनने वाले लोग मौजूद हो जाएंगे। इधर तुमने दावा किया, उधर खंडन करने वाले लोग इकट्ठे हो जाएंगे। क्योंकि लाओत्से कहता है, विपरीत तत्काल पैदा होता है। अगर तुमने चाही प्रशंसा, तो निंदा मिलेगी। अगर तुमने चाहा आदर, तो अनादर सुनिश्चित है। तुमने खोजा सिंहासन, तो आज नहीं कल तुम धूल में गिरोगे। लाओत्से कहता है, वहां बैठो, जहां से नीचे कोई और गिरने की जगह ही नहीं। फिर तुम्हें कोई न गिरा सकेगा। फिर तुम सिंहासन पर हो।
लाओत्से कहता है, सिंहासन पर वही है, जिसे हटाया न जा सके। और कौन सिंहासन पर है? तुम उस जगह बैठो, जहां से और नीची कोई जगह नहीं है। फिर तुम्हें कोई न उठा सकेगा। फिर तुम सिंहासन पर हो, क्योंकि तुम्हें हटाने का कोई सवाल नहीं उठता।
लाओत्से ने ज्ञान का भी कभी दावा नहीं किया। अगर लाओत्से के पास कोई जाता और पूछता कि मैंने सुना है, आप ज्ञानी हो। तो लाओत्से कहता है, जरूर तुमने कुछ गलत सुना है। मेरी मानो, दूसरों ने जो कहा, उन्हें इतना पता न होगा, जितना मेरे बाबत मुझे पता है। मैं बड़ा अज्ञानी हूं।
जो नहीं जानते थे, वे मान कर लौट आते कि नाहक परेशान हुए। जो जानते थे,
वे लाओत्से का पैर पकड़ लेते कि अब हम न जाएंगे, क्योंकि हमें पता है कि जो ज्ञानी है, वही अज्ञान का ऐसा स्वीकार कर सकता है, अन्यथा नहीं। अज्ञानी तो सदा ज्ञान का दावा करते मिलते हैं। अज्ञानी ही ज्ञान का दावा करता मिलता है। सिर्फ ज्ञानी ही हो सकता है, जो कह दे कि मुझे कुछ पता नहीं है, तुम कहीं और खोजो। तुम्हें कुछ गलत लोगों ने खबर दे दी है।
संत फ्रांसिस का एक संप्रदाय है। और संत फ्रांसिस एक विनम्र लोगों में एक था, ईसाइयत में जो पैदा हुए। तो जो फ्रांसिसवादी फकीर होते हैं... । संत फ्रांसिस तो अदभुत रूप से विनम्र था। उसकी विनम्रता का तो कोई हिसाब नहीं है। पर अनुयायी और वादी तो विनम्र होना बड़ा मुश्किल है। तो एक जगह ईसाइयों के सभी संप्रदाय के लोगों का एक सम्मेलन हो रहा है। तो वहां एक फ्रांसिस का अनुयायी फकीर कहता है कि हम कैथलिकों जैसे परंपरा के धनी

नहीं हैं, यह सच है; और हम ट्रैपिस्ट--एक संप्रदाय है ईसाइयों का--उसके जैसे बुद्धिसंपन्न नहीं हैं, यह भी सच है; और हम क्वेकर--ईसाइयों का दूसरा संप्रदाय--उसके जैसे प्रार्थना में कुशल नहीं हैं, यह भी सच है; बट इन ह्युमिलिटी वी आर एट दि टॉप! वह कहता है, पर विनम्रता में हम तो सबसे ऊपर हैं।
सब गड़बड़ हो गया। इन ह्युमिलिटी वी आर एट दि टॉप! ह्युमिलिटी का मतलब
ही क्या होता है? विनम्रता में तो हम सर्वश्रेष्ठ हैं, सर्वोपरि हैं! उसमें हमारा कोई मुकाबला नहीं! हम फ्रांसिस के अनुयायी हैं।
विनम्रता में सर्वोपरि! विनम्रता का मतलब ही यह होता है कि किसी के ऊपर न होने का भाव--किसी के ऊपर। सबसे पीछे होने का भाव!
जीसस ने कहा है, धन्य हैं वे, जो अंतिम खड़े हैं, क्योंकि मेरे स्वर्ग
के राज्य में वे ही प्रथम होंगे।
मगर यह सारी की सारी धारा, यह हवा लाओत्सियन है। श्रेय का दावा मत करना।
मगर अज्ञान में तो दावा होगा ही। यहां तक हो सकता है, जैसा इस फ्रांसिसियन फकीर के साथ हुआ कि इन ह्युमिलिटी वी आर एट दि टॉप। ऐसा भी हो सकता है कि हम श्रेय का दावा बिल्कुल नहीं करते। लेकिन तब दावा हो गया। और चित्त की सूक्ष्म जटिलताओं में यही सबसे बड़ा खेल है कि चित्त यह भी कह सकता है कि हम श्रेय का दावा नहीं करते। तब दावा हो गया। और चित्त यह भी कह सकता है कि चूंकि ज्ञानी कहते हैं कि हम अज्ञानी हैं, इसलिए हम भी कहते हैं कि हम अज्ञानी हैं। लेकिन तब कोई बात हाथ न आई। फिर तो हम घूम कर वही करने लगे। और मन घूम कर वही कर लेता है।
लाओत्से की दृष्टि, जीवन का जो जटिलता का चक्र है, उसको ही छिन्न-भिन्न कर देने की है। वह जटिलता का चक्र क्या है? वह चक्र यह है कि जिस बात की हम कोशिश करते हैं, उसी को हम चूक जाते हैं। करीब-करीब ऐसा ही है, जैसे कोई नींद लाने की कोशिश करे और चूक जाए, कोशिश से नींद न आए। और कोई कोशिश न करे और नींद आ जाए!
लाओत्से कहता है, श्रेय का दावा किया, तो वंचित हो जाओगे। दावा न किया,
तो श्रेय मिला ही हुआ है। मालकियत जमानी चाही, तो गुलामी में पड़ जाओगे। अन्यथा मालकियत को छीनता कौन है! अगर मांगा, तो दुख पाओगे। क्योंकि मांगने से जगत में कुछ भी नहीं मिलता। नहीं मांगा, तो सब मिला ही हुआ है।
उलटे दिखाई पड़ने वाले ये सूत्र उलटे नहीं हैं। मगर हम उलटे हैं, इसलिए हमें उलटे दिखाई पड़ सकते हैं, हम उलटे हैं। हमें जो भी दिखाई पड़ता है, वह उलटा दिखाई पड़ सकता है। लाओत्से हमें उलटा दिखाई पड़ेगा कि सिर के बल खड़ा है यह आदमी। श्रेय पाना हो, तो सीधा सूत्र है कि श्रेय पाने की कोशिश करो। यश पाना हो, यश पाने की चेष्टा करो। सुख पाना हो, सुख पाने की चेष्टा करो। सीधा सूत्र है। हम जो सब अपने पैर पर खड़े हैं, लाओत्से हमें सिर पर खड़ा हुआ, शीर्षासन करता हुआ मालूम पड़ेगा! कि यह क्या बातें कर रहे हो कि सुख पाना है, तो सुख पाने की चेष्टा मत करो, तो फिर सुख कैसे मिलेगा? हमें तो चेष्टा कर-करके भी नहीं मिल रहा है। तुम कहते हो, चेष्टा मत करो। तब तो गए। तब तो बिल्कुल ही नहीं मिलेगा।
ध्यान रखें, हमारे मन का तर्क हमें कहां भटकाता है? वह कहता है, इतनी चेष्टा करके जब नहीं मिल रहा, तो बिना चेष्टा किए कैसे मिलेगा? लेकिन लाओत्से कहेगा कि चेष्टा कर रहे हो इतनी, इसीलिए नहीं मिल रहा। एक बार बिना चेष्टा किए हुए भी देखो!
फिर चेष्टा करके देख चुके हो। जन्मों-जन्मों तक चेष्टा करके आदमी देख चुका है। कुछ मिलता नहीं। फिर भी हमारी चेष्टा जारी रहती है। क्योंकि मन कहता है कि और थोड़ी चेष्टा की कमी रह गई होगी, इसलिए नहीं मिल रहा। और थोड़ी चेष्टा! और थोड़ी चेष्टा! यह मन का तर्क कभी थकता ही नहीं। और युक्तिपूर्ण लगता है कि ठीक है, अगर अभी तक नहीं पहुंच पाए पहाड़ पर, तो थोड़ा और श्रम करना पड़ेगा।
लेकिन लाओत्से कहता है कि तुम्हारी चेष्टा ही तुम्हें रोक रही है। तुम छोड़ दो चेष्टा।
क्या कारण होगा ऐसा? ऐसा लाओत्से क्यों कह पाता है?

ऐसा इसलिए कहता है कि जीवन में जो भी पाने योग्य है, वह हमें सदा से ही मिला हुआ है। चेष्टा की वजह से हम इतने व्यस्त और परेशान हैं कि हम उसे देख नहीं पाते। कई बार, जो हमारे पास हो चीज, अगर आप बहुत जल्दी में उसे खोजने लग जाएं और बहुत बेचैन हो जाएं, तो खो जाती है। जो बिल्कुल मिली हुई थी, वह खो जाती है। बहुत बार ऐसा होता है कि आप किसी का नाम याद कर रहे हैं और कहते हैं, जबान पर रखा है। मगर इतनी जल्दी है याद करने की, वह आदमी सामने खड़ा है। वह पूछता है, पहचाना कि नहीं! अब बड़ी बेचैनी है। जानते हैं कि पहचानते हैं, सो यह भी नहीं कह सकते कि नहीं। सब जाना हुआ आदमी है, चेहरा पहचाना है, नाम भी पता है। पर इतनी जल्दी है अब लाने की उस नाम को कि लगता है जबान पर रखा है, और फिर भी नहीं आता है।
वह आदमी चला गया है। आप अपने अखबार पढ़ने में लग गए हैं, कि चाय पीने में लग गए हैं, और अचानक वह नाम आपकी जबान पर आ गया है। जब कोशिश कर रहे थे, तब वह खो गया था; और जब बिल्कुल कोशिश नहीं कर रहे हैं, वह आ गया है।
इस सदी के जो बड़े से बड़े वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं, उन सभी आविष्कारकों का यह अनुभव है कि जिसे वे खोज रहे थे, उसे वे तब तक न खोज पाए, जब तक खोजने का मन रहा। बड़े से बड़े आविष्कार इस सदी के जो हैं, जिन बड़े-बड़े आविष्कारों पर नोबल पुरस्कार मिले हैं, उन अधिकतम पुरस्कृत लोगों का यह अनुभव है कि जो हमने जाना, वह कोशिश से नहीं जान पाए। किसी क्षण में जब कोई कोशिश न थी, कोई चीज भीतर से उठी और जवाब आ गया।
मैडम क्यूरी ने तो रात सोते वक्त अपने गणितों के उत्तर लिखे। दिन भर
थक गई है, परेशान हो गई है, नहीं उत्तर आते हैं। सो गई है। रात नींद में उत्तर आ गया है। उठ कर उत्तर लिख लिया है। सुबह पाया कि उत्तर सही है। और उत्तर बिना प्रोसेस के आया है, क्योंकि रात सिर्फ उत्तर लिखा है। फिर प्रोसेस में कभी तो दिनों लग गए पूरी करने में। उत्तर तो मिल गया है।
यह उत्तर कहां से आया?
जो मनुष्य के अंतरतम को जानते हैं, वे कहते हैं, जो भी जाना जा सकता है,
वह मनुष्य जाने ही हुआ है। जो भी इस जगत में कभी भी जाना जाएगा, उसे आप इस क्षण भी जान रहे हैं। सिर्फ आपको पता नहीं है। मनुष्य की अंतस चेतना में वह सब छिपा है, जो कभी भी प्रकट होगा। वृक्ष में जो पत्ते हजार साल बाद प्रकट होंगे, वे भी बीज में छिपे थे। अन्यथा वे प्रकट नहीं हो सकते हैं। हजार साल बाद आदमी जो जानेगा, आदमी आज भी जानता है। पर जानता नहीं कि जानता है। बाहर खोज-बीन में उलझा हुआ है।
जितने भी आविष्कार के क्षण हैं, वे रिलैक्स्ड, विश्राम के क्षण हैं। न्यूटन बैठा है वृक्ष के तले और सेव गिर गया। विश्राम का क्षण था; कोई प्रयोगशाला नहीं थी वह।
एक मजाक मैंने सुना है। एक वैज्ञानिक अपने विद्यार्थियों को प्रयोगशाला में समझा रहा है कि बुद्धि पर जोर डालो, थोड़ी शर्म खाओ। पता नहीं तुम्हें कि न्यूटन वृक्ष के नीचे बैठा था, और फल गिरा और उसने कितना बड़ा आविष्कार कर लिया! और तुम इतनी मेहनत करके भी कुछ नहीं कर पा रहे हो। एक युवक खड़े होकर कहता है कि हमें भी वृक्ष के नीचे बैठने दो, तो शायद फल गिरे और कोई आविष्कार हो जाए! लेकिन इस प्रयोगशाला के तनाव में न्यूटन भी कुछ न कर पाता। यह खोजने की इतनी जो चेष्टा है, इतना जो तनाव और टेंशन है, शायद न्यूटन भी कुछ न कर पाता। न्यूटन भी सोच नहीं रहा था उस वक्त; बिना सोचे बैठा था।
इस जगत में जो बड़े से बड़ी खोजें घटित होती हैं, वे उन क्षणों में होती हैं, जब मन होता है विश्राम में और निर्विचार।
लाओत्से का आधारभूत दर्शनः मनुष्य चेष्टा न करे, प्रयास न करे, कर्ता
न बने, दावेदार न हो, तो उसे वह सब संपदा मिल जाएगी, जिसकी तलाश है। तलाश से नहीं मिलेगी।
यह किसी दिन जब आपको ख्याल में आ जाएगा। और जरूरी नहीं है कि जब मैं समझा रहा हूं, तब ख्याल में आ जाए। हो सकता है, किसी वृक्ष के नीचे जब आप बैठे हों, कोई फल गिरे और लाओत्से समझ में आ जाए। क्योंकि जब मैं समझा रहा हूं, तब आप समझने को आतुर होते हैं, उत्सुक होते हैं। तब आप समझने के लिए

तने होते हैं, तब समझने की चेष्टा चल रही होती है। वही चेष्टा बहुत बार बाधा बन जाती है। निश्चेष्ट जब आप पड़े हों।
अभी स्कैंडिनेविया, स्वीडन, स्विटजरलैंड एक नई शिक्षा की पद्धति पर काम चल रहा है। वह पद्धति को मैं लाओत्सियन कहूंगा। वह पद्धति बहुत नई है।
वह पद्धति यह है कि बच्चों को सिखाओ मत, बच्चों को सीखने पर जोर मत डालो। अभी कक्षा है, तो बच्चे तने हुए बैठे रहते हैं। अगर कोई बच्चा दोनों पैर टेबल पर फैला कर और सिर टिका कर बैठ जाए, तो शिक्षक कहता है, अशिष्टता है। यह तुम क्या कर रहे हो? सम्हल कर बैठो, सीधे बैठो, रीढ़ तनी हुई रखो। लेकिन अभी मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इससे हम बहुत ज्यादा नहीं सिखा पा रहे हैं। तो नया प्रयोग चल रहा है। कक्षा में इस तरह की व्यवस्था है कि बच्चे बिल्कुल विश्राम में बैठ सकें; कोई नियम का आग्रह नहीं है कि वे कैसे बैठें। जो उनका शरीर रुचिकर मानता हो, वैसे बैठ जाएं। जिसको लेटना हो, वह लेट जाए; जिसको बैठना है, बैठ जाए; जिसको खड़ा होना है, खड़ा हो जाए; जिसको फर्श पर पैर पसार लेने हैं, वह फर्श पर पैर पसार ले। शिक्षक जब बोले, तो बच्चे आंख बंद रखें। उलटा है बिल्कुल। शिक्षक जब बोले, बच्चे आंख बंद रखें। बच्चे समझने की कोशिश न करें, केवल सुनें। समझने की कोशिश ही न करें कि शिक्षक क्या कह रहा है; केवल सुनें। शिक्षक को ही न सुनें अकेला; बाहर झींगुर की आवाज आ रही है और मेंढक वर्षा में बोल रहे हों, उनको भी सुनें। हवा का सर्राटा आ रहा है, हवा की आवाज हो रही है, उसको भी सुनें। खुद के हृदय की धड़कन मालूम पड़ रही है, उसको भी सुनें। सुनें! रिलैक्स्ड, विश्राम में पड़े हुए सुनते रहें।
और बड़ी हैरानी की बात हुई है कि जो कोर्स दो साल में हो सकता है, वह तीन महीने में हो जाता है। जो शिक्षण पुरानी व्यवस्था और पद्धति से दो साल लेता है, वह तीन महीने लेता है इस पद्धति से। और उस पुराने शिक्षण में दो साल में बच्चे के बहुत से मानसिक तंतु टूट जाते हैं।
सच तो यह है कि विश्वविद्यालय से निकलने के बाद शायद ही कोई हो जो पढ़ता-लिखता हो। वह इतना ऊब गया होता है, इस बुरी तरह थक गया होता है कि जीवन भर का काम निपट गया होता है। जब कि असलियत यह है कि विश्वविद्यालय सिर्फ पढ़ने की क्षमता देता है, अभी पढ़ना शुरू होना चाहिए। सिर्फ समझने की क्षमता देता है, समझना शुरू होना चाहिए। तो हम समझते हैं, अंत आ गया। आ ही जाएगा, क्योंकि हम इतना थका डालते हैं, इतना तनाव दे देते हैं; सीखने जैसा तो कुछ बहुत नहीं हो पाता, लेकिन सीखने की चेष्टा बहुत चलती है।
इस नई पद्धति में, इसको वे कहते हैं, सब्लिमिनल जो कांशसनेस है, जो हमारी इस ऊपर की चेतना के नीचे दबी हुई जो चैतन्य की धारा है, उस धारा को सीधी शिक्षा। बीच में आपको हम नहीं लेते। आपको तनाव करने की जरूरत नहीं, आप पड़े रहो।
रूस हिप्नोपेडिया पर बहुत से प्रयोग कर रहा है--रात्रि-शिक्षण पर--कि विद्यार्थी सो रहा है, उसके कान के पास छोटा सा यंत्र लगा है। वह यंत्र, जब उसकी गहरी नींद शुरू हो जाएगी घंटे भर के बाद, तब वह यंत्र बोलना शुरू कर देगा। और दो घंटे रात में शिक्षा होगी। समझो कि बारह से दो के बीच। दो बजे वह यंत्र घंटी बजाएगा। विद्यार्थी उठेगा और उसे जो भी याद आता हो, इस दो घंटे में जो नींद में उसने सीखा, उसे नोट कर लेगा, फिर सो जाएगा। फिर सुबह चार से छह, उसको दो घंटे फिर पुनरुक्ति होगी।
और बड़ी हैरानी की बात है कि जो महीनों श्रम करके हम नहीं समझा सकते, वह सात दिन की हिप्नोपेडिया से, सम्मोहनशिक्षा से पूरा हो जाता है। क्योंकि उस वक्त कोई चेष्टा नहीं, कोई तनाव नहीं, बच्चा नींद में तैर रहा है। कोई बात सीधी चली जाती है, हृदय तक पहुंच जाती है। फिर वह उसे कभी नहीं भूलता है। बुद्धि कोई श्रम नहीं करती है।
यह सब लाओत्सियन है। अगर इसको हम ठीक से समझें, तो जो मैं परसों आप से
कह रहा था कि लाओत्से दुनिया के कोने-कोने में बहुत तरह से हमला कर रहा है। अनेकों को पता भी नहीं है कि यह दृष्टि लाओत्सियन है। क्योंकि लाओत्से कहता है, सीखोगे तो क्या खाक सीख पाओगे! सीखो मत। सीखने की चेष्टा बाधा है। तुम तो सिर्फ गुजर जाओ शांति से; जो सीखने योग्य है, वह सीख जाओगे। तुम मौन गुजर जाओ; तुम सिर्फ ग्राहक भर रहो, तुम सिर्फ रिसेप्टिव गुजर जाओ। तुम

चेष्टा मत करो। चेष्टा बंद कर देती है, रिसेप्टिविटी को कम कर देती है।
बंद हो जाता है, क्लोज्ड हो जाता है।
अनेक आयामों में जो उसने कहा है, वह यही है कि आदमी कुछ करता है, यह भ्रांति है; चीजें घटित होती हैं। आदमी न करे, तो बहुत कुछ जान पाएगा।
क्योंकि करने का जो तनाव है, वह उसकी जानने की क्षमता को क्षीण कर देता है।
आदमी जो-जो मांगता है, वह उसे कभी नहीं मिलता। भिखारियों को कभी कुछ नहीं मिलता; सम्राटों को सब कुछ मिल जाता है। जो नहीं मांगता, सब कुछ उसका है। अधिकार नहीं करता ज्ञानी, स्वामित्व निर्मित नहीं करता। करता है, जो करने योग्य जीवन में घटित होता है। श्रेय नहीं लेता, और सारा श्रेय उसका है।

प्रश्नः ओशो, लाओत्से के ऐसे जीवन-दर्शन में साधना का क्या स्थान होगा? और जो केवल बहने पर निर्भर होता है, तैरने पर नहीं, वह अपने लक्ष्य तक कैसे पहुंच सकता है? क्या लक्ष्य तक पहुंचने के लिए भी यत्न की आवश्यकता नहीं है? लाओत्से का कुछ न करना, निष्क्रिय होना भी एक प्रकार का लक्ष्य जान पड़ता है। अबोध, अनजान धाराओं पर अपने आपको छोड़ देना ज्ञान है, ज्ञानी का लक्षण है? अथवा अज्ञान और अज्ञानी का?

लाओत्से साधना में भरोसा नहीं करता। चूंकि लाओत्से कहता है, जो भी साध कर मिलेगा, वह स्वभाव न होगा। इसे थोड़ा समझ लें। जो भी साध कर मिलेगा, वह स्वभाव न होगा। जिसे साधना पड़ेगा, वह आदत ही होगी। स्वभाव तो वही है, जो बिना साधे मिला है। जो है ही, वही स्वभाव है। जिसे निर्मित करना पड़े, वह स्वभाव नहीं, वह आदत ही होगी।
एक आदमी सिगरेट पीने की आदत बना सकता है; एक आदमी प्रार्थना करने की आदत बना सकता है। जहां तक आदत का संबंध है, दोनों आदतें हैं। सब आदतें स्वभाव के ऊपर आच्छादित हो जाती हैं, जैसे जल के ऊपर पत्ते छा जाएं। स्वभाव नीचे दब जाता है।
लाओत्से कहता है, साधना नहीं है कुछ। जो मिला ही हुआ है, जो पाया ही हुआ है, जो तुम हो, उसी को जानना है। इसलिए कोई नई आदत मत बनाओ। लाओत्से योग, साधना, किसी के पक्ष में नहीं है। लाओत्से कहता है, कोई आदत ही मत बनाओ। तुम तो निपट उसे जान लो, जो तुम जन्म के पहले थे और मृत्यु के बाद भी रहोगे। तुम तो उसे खोज लो, जो गहरे में अभी भी मौजूद है। फिर तुम जो भी साधोगे, वह परिधि पर होगा। कोई साधना केंद्र पर नहीं हो सकती। साधेगा जो आदमी, वह परिधि पर साधेगा। तुम जो रंग-रोगन करोगे, वह शरीर पर होगा। बहुत से बहुत जो तुम मेहनत उठाओगे, वह मन पर होगी। लेकिन स्वभाव शरीर और मन दोनों के पार है। उस स्वभाव को जानने के लिए तुम्हें कुछ भी करने की जरूरत नहीं है।
लेकिन ध्यान रहे, कुछ भी न करना बहुत बड़ा करना है। कुछ भी न करना छोटी बात नहीं है। इसलिए जब हम सुनते हैं, कुछ भी न करना, तो हमारे मन में होता है कि हम तो कुछ कर ही नहीं रहे हैं, तो बिल्कुल ठीक है। तो लाओत्से यही कह रहा है, जैसे हम हैं, कुछ भी नहीं कर रहे हैं।
लाओत्से आपके लिए नहीं कह रहा है। आप तो बहुत कुछ कर रहे हैं। आप अगर परमात्मा को नहीं साध रहे हैं, तो आप संसार को साध रहे हैं। साधना आपकी जारी है। अगर आप परमात्मा को खोजने नहीं जा रहे हैं, तो खोने जा रहे हैं, लेकिन पूरी ताकत लगा रहे हैं।
तो आप यह मत सोचना कि आप कुछ नहीं कर रहे हैं, यही लाओत्से कह रहा है। आपका कुछ न करना कुछ न करना नहीं है। आपका कुछ न करना संसार की दिशा में सब कुछ करना है, सिर्फ परमात्मा की दिशा में कुछ न करना है।
तो एक आप हैं। आपके भी खिलाफ है लाओत्से। वह कह रहा है कि नहीं। एक आप में से कोई संसारी कभी-कभी छोड़ कर संसार, परमात्मा को साधने लग जाता है। लेकिन उसकी मेथोडोलाजी वही होती है, उसकी विधि वही होती है। जिस ढंग से वह धन कमाता था, वैसे ही वह धर्म कमाता है। और जिस ढंग से वह शरीर पर मेहनत और तनाव डाल कर इस जगत में कुछ पाना चाहता था, वैसे ही वह उस जगत में पाने की कोशिश में लग जाता है। लाओत्से कहता है, वह भी गलत है और आप भी गलत हो।

क्योंकि जिसे पाना है, अगर वह भविष्य में मिलने वाली चीज हो, तब तो कुछ करना पड़ेगा। लेकिन वह मिली ही हुई है। उसको सिर्फ अनकवर करना है, डिस्कवर करना है, उसे उघाड़ना है। और सब साधना उसे ढांकेगी, उघाड़ेगी नहीं। सब साधना उसे ढांकेगी, उघाड़ेगी नहीं।
तो आप पूछ सकते हैं कि फिर जो साधना के पंथ हैं, वे क्या करते हैं? क्या वे गलत हैं?
लाओत्से के हिसाब से बिल्कुल गलत हैं। लाओत्से के हिसाब से बिल्कुल गलत हैं। क्योंकि लाओत्से कहता है, कुछ मत साधो, सब छोड़ दो, और तुम जान लोगे। लेकिन आपके हिसाब से वे पंथ बड़े सही हैं। क्योंकि आप सिर्फ करने की भाषा ही समझ सकते हैं। न करने की भाषा का मतलब ही आप नहीं समझ सकते। लाओत्से जो कह रहा है, कभी करोड़ में एक आदमी ठीक से समझ पाता है--न करना। और जो न करना समझ लेता है, वह उसी क्षण मुक्त हो गया। उसके लिए दूसरे क्षण भी रुकने की जरूरत नहीं। लेकिन बाकी लोग नहीं समझ पाते हैं। बाकी लोग नहीं समझ पाते, उनके लिए क्या करना है? या तो लाओत्से अपनी बात कहे चला जाए, बाकी लोग जो करते हैं, वह करते चले जाएं।
नहीं, बाकी जो लोग नहीं समझ पाते हैं, करना ही समझ पाते हैं, उनसे कुछ करवाना पड़ता है। और उनसे इतना करवाना पड़ता है कि वे कर-करके थक जाएं और छोड़ दें। लेकिन घटना तभी घटती है, जब वे छोड़ते हैं। ध्यान रखें, घटना लाओत्से के पहले घटने वाली नहीं है। उनको कर-करके थकाना होता है। उनसे इतना करवाना होता है कि वे इतने तनाव में आ जाएं कि और तनाव का उपाय न रह जाए और तनाव छूट जाए।
तनाव के नियम हैं। या तो आप तनाव को छोड़ दें इसी वक्त--समझपूर्वक। एक
तो रास्ता है, समझपूर्वक तनाव का छोड़ देना। मेरी यह मुट्ठी बंधी है। एक रास्ता तो यह है कि आपने मुझसे कहा कि बंधा होना मुट्ठी का स्वभाव नहीं है, इसलिए तुम थक जाओगे। आपने मुझसे कहा, बंधा होना मुट्ठी का स्वभाव नहीं है, इसलिए तुम नाहक थक जाओगे। क्योंकि बांधने में तुम्हें शक्ति लगानी पड़ रही है और व्यर्थ तुम कष्ट पा रहे हो। तो मैं आपसे पूछूं कि मुट्ठी को कैसे खोलूं? क्या उपाय करूं? क्या साधना करूं कि मुट्ठी खोलूं? तो आप कहेंगे, फिर समझे नहीं। क्योंकि साधना करनी पड़ेगी मुट्ठी खोलने के लिए! मुट्ठी बांधने के लिए श्रम करना पड़ रहा है। समझ आ गई, तो मुट्ठी खुल जानी चाहिए। पूछना ही नहीं चाहिए।
लेकिन आप पूछते हैं, क्या करें? क्या दूसरी मुट्ठी बांधें? कि सिर के
बल खड़े हों? क्या करें?
आप कहते हैं, समझ में आ गया। यद्यपि आपकी समझ में नहीं आया है। अगर समझ में आ गया, तो मुट्ठी खुल जानी चाहिए। वही सबूत होगा कि समझ में आ गया। आपको कहना नहीं पड़ेगा कि समझ में आ गया। क्योंकि बांधने के लिए मेहनत करनी पड़ती है, खोलने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता। सिर्फ बांधना जो हम कर रहे थे, वह भर न करें, मुट्ठी खुल जाती है।
खुली मुट्ठी के लिए आपको कुछ नहीं करना पड़ता, यह आपने कभी ख्याल किया? खुली मुट्ठी स्वभाव है। इसलिए खुली मुट्ठी पर कोई श्रम नहीं होता, भार नहीं पड़ता, तकलीफ नहीं होती। आपको कुछ नहीं करना पड़ता, मुट्ठी खुली रहती है। बांधने में कुछ करना पड़ता है।
मोक्ष मनुष्य का स्वभाव है; संसार मनुष्य का विभाव है।
संसार बंधी हुई मुट्ठी जैसा है; मोक्ष खुली हुई मुट्ठी जैसा है।
लाओत्से कहता है, तुम पूछते हो कि खोलने के लिए क्या करें! बांधने के लिए कोई पूछता है क्या करें, तो समझ में आता है। खोलने के लिए कुछ नहीं करना है, सिर्फ खोल दो। जस्ट ओपन इट।
हमको बहुत कठिनाई लगती है कि सिर्फ खोल कैसे दो! असल कारण यह है कि हम खोलना नहीं चाहते। ख्याल है कि मुट्ठी में कोहनूर बंधा है। और लाओत्से कहता है, बस खोल दो। तो वह कोहनूर गिर जाएगा। वह हम छिपाए रखते हैं। वह हम लाओत्से को भी नहीं बताते कि हमारी मुट्ठी में कोहनूर बंधा है। उससे हम पूछते हैं, कैसे खोलें? खोलना बहुत कठिन है, कुछ अभ्यास बताएं! अभ्यास वगैरह तरकीब है पोस्टपोनमेंट की कि तुम जब तक अभ्यास बताओ, तब तक हम वह कोहनूर को तो पकड़े रहें। पहले ठीक से खोलना आ जाए तब खोलेंगे।

लाओत्से को भी हम नहीं बताते कि हमारी मुट्ठी में कोहनूर है। और लाओत्से बड़ा हैरान होता है कि खोलने के लिए तो कुछ भी नहीं करना पड़ता मित्र, खोल दो! पर उसे पता नहीं कि खोलने के लिए कुछ करना पड़ेगा। क्योंकि यह आदमी मुट्ठी के भीतर कुछ बांधने के ख्याल में है। हम ऐसे ही तनाव से थोड़े ही भरे हैं, हम सब बड़े मतलब से तनाव से भरे हैं। हम सोचते हैं, तनाव छोड़ दें, तो वे सब कोहनूर छूट जाएंगे।
जहां-जहां तनाव की मुट्ठी है, वहां-वहां कुछ-कुछ हमने पकड़ा है। मालकियत छोड़ दो। तो हमारी सारी मालकियत का ही तो सारा खेल है! फिर कल बेटा सुबह उठ कर जाने लगा तो? कल पत्नी ने कहा कि अच्छा नमस्कार, फिर? सारा मालकियत का तो खेल है, वह कल सुबह बिखर जाएगा। हम कहते हैं, बात बिल्कुल समझ में आ गई, लेकिन यह तनाव को छोड़ें कैसे? कोई विधि बताओ!
यह विधि हम पूछते हैं पोस्टपोनमेंट के लिए, स्थगन के लिए। तुम्हारी विधि बताओ, हम साधेंगे, कोशिश करेंगे, फिर देखेंगे। जब खुलेगी, तो खोल लेंगे। अभी तो खुलती नहीं है।
लाओत्से की समझ में बिल्कुल नहीं पड़ता कि तुम बात कैसी कर रहे हो! मुट्ठी खोलने के लिए कुछ करना पड़ेगा? कोई मंत्र-तंत्र? कुछ नहीं करना पड़ेगा। स्वभाव तुम्हारा जो है, उसके लिए कुछ नहीं करना पड़ेगा। तुम बस खोल दो। तुम्हें करना पड़ रहा है बांधने के लिए।
अब एक और मजे की बात है। अगर आप नहीं खोलते हैं इस भांति, तो फिर एक दूसरा उपाय है, जो दूसरे हैं। दो ही मार्ग हैं जगत मेंः करके न करने में पहुंचो, या न करने में सीधे उतर जाओ। छलांग ले लो, या सीढ़ियां चढ़ जाओ।
अगर आप राजी नहीं होते अभी मुट्ठी खोल देने को, तो फिर आपके लिए रास्ते खोजने पड़ते हैं। तो फिर आपसे कहा जाता है, जोर से मुट्ठी को बांधो। इतना बांधो, बांधते चले जाओ, जितनी ताकत हो उतना बांधो!
क्या आपको पता है कि एक सीमा आ जाएगी आपके बांधने की, उसके आगे आप मुट्ठी न बांध सकेंगे! और अचानक आप पाएंगे कि मुट्ठी खुल रही है और कोहनूर गिर रहा है। लेकिन तब आप बांध भी न पाएंगे, क्योंकि सारी तो शक्ति लगा चुके, अब शक्ति बची नहीं है बांधने को।
तो जो मेथड के मार्ग हैं, विधि के मार्ग हैं, वे कहते हैं, बांधो। वे आपको जान कर कहते हैं। आपकी नासमझी इतनी प्रकट है कि आपको जान कर कहते हैं। आपको भलीभांति पहचानते हैं कि आपसे खुलेगी नहीं। आपसे तो खुलेगी तब, जब बंध न सकेगी। इस बात को ठीक से समझ लें। जब आपसे बंधेगी ही नहीं, जब आप अचानक पाएंगे कि सारी कोशिश कर रहे हैं भीतर, लेकिन ताकत साथ नहीं देती है, अब बंधती ही नहीं है, अब खुली जा रही है। जब आपसे बंधेगी ही नहीं, तब खुलेगी।
तो फिर आपको बंधवाने का उपाय करना पड़ता है। सारी विधियां आपकी मुट्ठी
को उस सीमा तक ले जाने की हैं, टेंशन टु दि क्लाइमेक्स, आखिरी शिखर तक तनाव, कि उसके बाद बिखराव आ जाता है। सब झटक कर गिर जाता है। अचानक आप पाते हैं कि हाथ खुला है और कोहनूर वगैरह है नहीं। कोहनूर था नहीं कभी। पर खोल कर तक नहीं देखा कि कहीं गिर न जाए। कोहनूर मुट्ठी में है या नहीं, इसको कभी खोल कर भी नहीं देखा। क्योंकि कहीं खोल कर देखें, गिर जाए या पड़ोसी देख ले! तो बांधे चले जाते हैं, बांधे चले जाते हैं। जिस दिन खुलती है मुट्ठी, उस दिन पता चलता है, कोहनूर तो नहीं है। इतनी मेहनत व्यर्थ चली जाती है।
विधि कहती है, बांधो। अविधि का मार्ग, लाओत्से का, कहता है, खोले बिना पाओगे नहीं। तो तुम चाहे अभी खोल लो। लाओत्से कहता है, अभी ही खोल लो। लाओत्से को पता है कि हाथ में कोई कोहनूर नहीं है। पर आपको पता नहीं है। इसलिए हमें अड़चन होती है। दूसरे मार्ग भी यही करवाते हैं, जो लाओत्से करवा रहा है। लेकिन आपको समझ कर चलते हैं। लाओत्से वही कह रहा है, जो वह खुद को समझ कर कह रहा है। अक्सर वह आपके सिर पर से निकल जाएगा।
दूसरे मार्ग आपको समझ कर चलते हैं। वे कहते हैं, ठीक है, आपसे नहीं होगा छोड़ना तो बांधो। हम कुछ विधियां बताते हैं। इनको पकड़ो जोर से। इन पर मेहनत करो। मेहनत करो इतनी कि एक क्षण आ जाए--हालांकि वे यह आपसे नहीं कहेंगे, वे कहेंगे, मेहनत करते जाओ, करते जाओ। एक क्षण आ ही जाएगा, जब सब

मेहनत चुक जाएगी, आप असहाय होकर छोड़ दोगे। वे कहते हैं, तैरो जोर से। अब कब तक तैरोगे? यह सागर का कोई किनारा नहीं है, जहां लग जाओगे तैर कर। लाओत्से कहता है, मत मेहनत उठाओ, क्योंकि कोई किनारा होता, तो तैर कर पहुंच भी जाते। कोई किनारा है नहीं। मत मेहनत उठाओ, बह जाओ। लाओत्से कहता है, कोई मंजिल नहीं है; यह सागर ही मंजिल है। कहीं कोई मंजिल नहीं है, जिस में तुम तैर कर पहुंच जाओगे। यह सागर ही मंजिल है, इसमें ही निमज्जित हो जाना है। इसी में एक हो जाना है। तैरोगे तो लड़ते रहोगे। लड़ते रहोगे तो एक कैसे होओगे? सागर से अलग बने रहोगे।
तैरने वाला सागर से एक कभी नहीं होता। वह लड़ रहा है। तैरने का मतलब है फाइट। वह है लड़ाई। वह यह है कि हम सागर को डुबाने न देंगे, सागर को हम मिटाने न देंगे; हम बचेंगे। सागर की लहरों से हम टक्कर लेंगे। हम किनारा खोजेंगे, हम मंजिल पर जाएंगे। हम हमारी दिशा है; वहां हमें पहुंचना है। लक्ष्य है, जिसे हमें पाना है।
बहने वाला कहता है कि नहीं। लाओत्से कहता है, न कोई मंजिल है सिवाय इस सागर के; न कोई किनारा है सिवाय इस मझधार के; न कहीं पहुंचना है सिवाय वहीं जहां तुम हो। इसलिए छोड़ दो, तैरो मत। बह जाओ, बहना ही मंजिल है। तुम इसी वक्त पा लोगे, अगर तुमने छोड़ दिया तैरना। तो तुम सागर से एक हो जाओगे। दुश्मनी टूट जाएगी, मित्रता सिद्ध हो जाएगी।
लेकिन हम कहते हैं, ऐसा कैसे छोड़ दें? कोई किनारा है। उसे अगर हम ऐसा बहने लगे, तो पता नहीं, उस जगह पहुंच पाएं, न पहुंच पाएं, जहां पहुंचना था। तो हम तो तैरेंगे। तो वे विधियां जो हैं, वे कहती हैं, तैरो! फिर जोर से तैरो। वह रही मंजिल सामने, तैरो। जितनी ताकत लगाओ, तैरो। जन्म-जन्म तैरो। एक दिन तैर-तैर कर इतने थक जाओगे--सागर तो नहीं थकेगा, आप थक जाओगे--एक घड़ी आएगी, हाथ-पैर निढाल हो जाएंगे। एक घड़ी आएगी, सांसें जवाब दे देंगी। फेफड़े कहने लगेंगे, बहुत हो गया, न कोई किनारा मिलता, न कोई पार मिलता, न कोई मंजिल है। जहां जाते हैं, यही सागर है। तैर-तैर कर जहां पहुंचते हैं, यही सागर है। किनारा दिखता है दूर से; पास जाते हैं, लहरें ही मिलती हैं। मंजिल दिखती है दूर से; पास पहुंचते हैं, पता चलता है, सागर है। जन्म-जन्म तैर कर पाते हैं, सागर है, सागर है, सागर है, और कुछ भी नहीं! थक गए अब, छोड़ते हैं। उस छोड़ने में वही घटना घट जाती है, जो लाओत्से आप से कई जन्मों पहले कहा था कि छोड़ दो। और जिस दिन आप छोड़ोगे, उस दिन आपके मन को होगा कि बड़ी भूल की कि लाओत्से की पहले न मान ली। लेकिन शायद, आप जैसे आदमी थे, पहले माना नहीं जा सकता था। आप जैसे आदमी थे, होशियार, पहले नहीं माना जा सकता था। होशियार आदमी तो जब तक पूरी होशियारी न कर ले, तब तक नहीं मानता है। हां, जब होशियारी थक जाती है, टूट जाती है, बिखर जाती है, तब। पर किसी भी स्थिति में घटना तो तभी घटती है, जो लाओत्से कहता है, तभी! आप थक कर वहां पहुंचोगे कि समझ कर?
समझ कर जो काम अभी हो सकता है, थक कर वह जन्मों में होता है। बस, एक टाइम गैप का फर्क पड़ता है। और कोई फर्क नहीं पड़ता है।

प्रश्नः कृष्णमूर्ति यही कहते हैं?

उनकी अलग चर्चा करनी पड़ेगी। जल्दी ही उन पर चर्चा रखेंगे तो ख्याल में आएगा।
ताओ उपनिषद, भाग एक
नौवां प्रवचन

महत्वाकांक्षा का जहर व जीवन की व्यवस्था

Chapter 3 : Sutra 1

Action Without Action

Not to value and employ men of superior ability

is the way to keep the people from rivalry
among themselves; not to prize articles which are difficult to procure is the way to keep them
from becoming thieves; not to show them
what is likely to excite their desires is the way
to keep their minds from disorder.

अध्याय 3 : सूत्र 1

निष्क्रिय कर्म

यदि योग्यता को पद-मर्यादा न मिले, तो न तो विग्रह हो
और न संघर्ष। यदि दुर्लभ पदार्थों को महत्व नहीं दिया जाए,
तो लोग दस्यु-वृत्ति से भी मुक्त रहें।
यदि उसकी ओर, जो स्पृहणीय है, उनका ध्यान आकर्षित
न किया जाए, तो उनके हृदय अनुद्विग्न रहें।

मनुष्य की चिंता क्या है? मनुष्य की पीड़ा क्या है? मनुष्य का संताप क्या है?
एक मनुष्य चिंतित हो, थोड़े से लोग परेशान हों, तो समझा जा सकता है, उनकी भूल होगी। लेकिन होता उलटा है। कभी कोई एक मनुष्य निश्चिंत होता है, कभी कोई एक मनुष्य स्वस्थ होता है; बाकी सारे लोग अस्वस्थ, अशांत और पीड़ित होते हैं। बीमारी नियम मालूम पड़ती है; स्वास्थ्य अपवाद मालूम पड़ता है। अज्ञान जीवन की आत्मा मालूम पड़ती है; ज्ञान कोई आकस्मिक घटना, कोई सांयोगिक घटना मालूम पड़ती है। ऐसा लगता है कि मनुष्य होना ही बीमार होना है, चिंतित, परेशान होना है। कभी कोई, न मालूम कैसे, हमारे बीच निश्चिंतता को उपलब्ध हो जाता है। या तो प्रकृति की कोई भूल-चूक है, या परमात्मा का कोई वरदान है। लेकिन नियम यही मालूम पड़ता है जो हम हैंः रुग्ण, पीड़ित, परेशान।
लाओत्से का यह सूत्र बड़ा अदभुत है। लाओत्से यह कहता है कि इतने अधिक लोगों की परेशानी का कारण निश्चित ही मनुष्य के मन की बनावट, मनुष्य की संस्कृति के आधार, हमारे सभ्यता के सोचने के ढंग, हमारे समाज का ढांचा है। हम प्रत्येक व्यक्ति को इस भांति खड़ा करते हैं कि बीमार होना अनिवार्य है।
पश्चिम में नवीनतम खोजें यह कहती हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जीनियस की तरह पैदा होता है, प्रतिभाशाली पैदा होता है, लेकिन हम सब मिल कर ऐसी व्यवस्था करते हैं कि उसकी प्रतिभा को हम सब तरह से कुंठित और नष्ट कर देते हैं।
स्वामी राम ने संस्मरण लिखा है कि वे जब जापान गए, तो उन्होंने वहां देवदार के आकाश को छूने वाले वृक्षों को एक-एक बालिश्त का देखा, एक-एक बित्ते का देखा। वह बहुत हैरान हुए। वृक्ष छोटे पौधे नहीं थे, सौ-सौ, डेढ़-डेढ़ सौ वर्ष पुराने थे। लेकिन उनकी ऊंचाई एक बालिश्त थी।
तो उन्होंने मालियों से पूछा कि इसका राज क्या है?
तो मालियों ने गमले उलटा कर बताया। नीचे से गमले टूटे हुए थे। और नियमित रूप से वृक्षों की जड़ें काट दी जाती थीं। नीचे जड़ें नहीं बढ़ पाती थीं, ऊपर वृक्ष नहीं बढ़ पाता था। वृक्ष पुराना होता जाता, बूढ़ा हो जाता, लेकिन बालिश्त से ऊपर न उठ पाता। क्योंकि उठने के लिए जड़ों का नीचे जाना जरूरी है, जमीन में प्रवेश करना जरूरी है। वृक्ष उतना ही ऊपर जाता है, जितना नीचे उसकी जड़ें चली जाती हैं। अब अगर माली यह तय कर ले कि जड़ों को नीचे पहुंचने ही नहीं देना है, काटते चले जाना है, तो वृक्ष बूढ़ा होता जाएगा, लेकिन बड़ा नहीं होगा।

मनुष्य को बड़ा करने की हमारी जो व्यवस्था है, वह जड़ों को काटने वाली है। इसलिए जितने लोग हमें दिखाई पड़ते हैं जमीन पर, वे बालिश्त भर ऊंचे उठ पाए। वे लोग आकाश को भी छू सकते थे। जहर हम जड़ों में डाल देते हैं।
लेकिन इतने जमानों से जहर डाला जा रहा है कि कभी स्मरण नहीं आता। फिर
हर पीढ़ी डाल जाती है। आपके बुजुर्ग आपकी जड़ों में जहर डाल जाते हैं। और जो आपके बुजुर्गों ने आपके साथ किया था, वह आप अपने बच्चों के साथ कर देते हैं। स्वभावतः, हर पिता अपने बेटे के साथ वही दुहराता है, जो उसके बाप ने उसके साथ किया था। एक वीसियस सर्किल है, फिर एक दुष्चक्र की भांति बात दुहरती चली जाती है।
इस जहर के लिए ही लाओत्से ने कुछ बातें कही हैं।
इन बातों को समझने के लिए सबसे पहले यह समझ लेना होगा कि मनुष्य के मन में जो जहर सबसे ज्यादा डाला गया है, वह महत्वाकांक्षा का, एंबीशन का है। हमारी सारी समाज की व्यवस्था महत्वाकांक्षा पर खड़ी है। छोटे से बच्चे को भी हम महत्वाकांक्षी बनाते हैं। उसे एक दौड़ में लगाते हैं, एक ऐसी दौड़ में, जहां उसे हर स्थिति में प्रथम आने के लिए उद्विग्न किया जाता है। चाहे वह पढ़ता हो स्कूल में, चाहे खेलता हो, चाहे आचरण सीखता हो, चाहे वस्त्र पहनता हो, वह जो भी कर रहा है या जो भी हम उससे करवाना चाहते हैं, उसके करवाने का एक ही सूत्र है कि हम उसे महत्वाकांक्षा में जकड़ दें, हम उसे प्रतिस्पर्धा में और काम्पिटीशन में बांध दें।
महत्वाकांक्षा का अर्थ है, हम उसके अहंकार को दूसरे लोगों के अहंकार
की प्रतियोगिता में खड़ा कर दें। हम उससे कहें कि दूसरे बच्चे आगे न निकल जाएं! तेरा पीछे रह जाना, तेरे अहंकार के लिए फिर कोई गुंजाइश न रहेगी। तो कहीं भी तू हो, तुझे प्रथम होने की कोशिश में लगे रहना है।
यह प्रथम होने की कोशिश हमारा जहर है। वस्त्र पहनते हों तो, व्यवहार करते हों तो, शिक्षित होते हों तो, धन कमाते हों तो--कुछ भी करते हों--पूजा और प्रार्थना करते हों तो, त्याग और तप करते हों तो, निरंतर यह ख्याल रखना है कि मैं किन्हीं और की तुलना में सोचा जा रहा हूं। सदा मुझे यह देखना है कि दूसरों को देखते हुए मैं कहां खड़ा हूं? पंक्ति में मेरा स्थान क्या है? मैं पीछे तो नहीं हूं?
अगर मैं पीछे खड़ा हूं, तो पीड़ा फलित होगी। अगर मेरे पीछे लोग खड़े हैं,
तो मैं प्रफुल्लित हूं। जो प्रफुल्लित होते हैं, वे भी तभी प्रफुल्लित होते हैं, जब वे दूसरों को पीछे करने का दुख दे पाते हैं। अन्यथा उनकी प्रफुल्लता नहीं है। और पृथ्वी इतनी बड़ी है कि कोई कभी बिल्कुल आगे नहीं हो पाता। और जीवन इतना जटिल है कि इसमें प्रथम होने का कोई उपाय नहीं है। जटिलता अनेकमुखी है।
एक आदमी धन बहुत कमा लेता है, तब वह पाता है कि स्वास्थ्य में कोई उससे आगे खड़ा है। सड़क पर भीख मांग रहा है आदमी, कपड़े फटे हुए हैं, लेकिन शरीर उसका बेहतर है। एक आदमी स्वास्थ्य बहुत कमा लेता है, तो पाता है, सौंदर्य में कोई दूसरा आगे खड़ा है। एक आदमी धन कमा लेता है, तो पाता है, बुद्धिमानी में कोई आगे है। और एक आदमी बहुत बड़ा बुद्धिमान हो जाता है, तो पाता है कि खाने को रोटी भी नहीं है, किसी ने बहुत बड़ा महल बना लिया है।
जीवन है बहुमुखी, मल्टी डायमेंशनल; और हर दिशा में मुझे प्रथम होना है। आदमी अगर पागल न हो जाए--और कोई उपाय नहीं है। जो पागल नहीं हो पाते, वे चमत्कार हैं। यह पूरा का पूरा ढांचा पागल करने वाला है। जहां भी हम खड़े हैं, वहीं पीड़ा होगी--आगे किसी को हम पाएंगे कि कोई आगे खड़ा है। महत्वाकांक्षा का अर्थ है, कभी यह मत सोचना कि तुम कौन हो, सदा यह सोचना कि तुम दूसरे की तुलना में कौन हो। सीधे कभी स्वयं को मत देखना, सदा तुलना में, कंपेरिजन में देखना। कभी यह मत देखना कि तुम कहां खड़े हो; वहां सुख है या नहीं, इसे मत देखना। तुम सदा यह देखना कि तुम दूसरे लोगों के मुकाबले कहां खड़े हो! दूसरे लोग तुमसे ज्यादा सुख में तो नहीं खड़े हैं! यह भी फिक्र मत करना कि तुम दुख में खड़े हो; सदा यह देखना कि दूसरे लोग अगर तुमसे ज्यादा दुख में खड़े हों, तो कोई हर्जा नहीं, तुम प्रसन्न हो सकते हो। सुना है मैंने, गांव में एक पूर आ गया, बाढ़ आ गई। और एक बूढ़े किसान से उसका पड़ोसी कह रहा है। वह बूढ़ा किसान बहुत चिंतित और परेशान बैठा है। उसके

सब खेत डूब गए, उसके गाय-भैंस खो गए, उसकी बकरियां नदी में बह गईं। और पड़ोसी उससे, बूढ़े से कह रहा है कि बाबा, बहुत चिंतित मालूम पड़ते हो; तुम्हारी सारी बकरियां नदी में बह गईं। वह बूढ़ा पूछता है, गांव में किसी और की तो नहीं बचीं? वह कहता है, किसी की भी नहीं बचीं। वह बूढ़ा पूछता है, तुम्हारी भी बह गईं? वह युवक कहता है, हमारी भी बह गईं। तो बूढ़ा कहता है, फिर जितना मैं चिंतित हो रहा हूं, उतना चिंतित होने का कारण नहीं है। यह सवाल नहीं है बड़ा कि मेरी बह गईं, अगर सबकी बह गई हैं, तो फिर इतना चिंतित होने का कोई कारण नहीं है।
सुख हो या दुख, विचार सदा करना है कि हम कहां खड़े हैं? पंक्ति में कहां खड़े हैं? पंक्तिबद्ध चिंतन है हमारा। मुक्त व्यक्ति की तरह हम क्या हैं, यह नहीं। पंक्ति में, कतार में हम कहां खड़े हैं? क्यू में हमारी जगह कहां है? और क्यू ऐसा है कि गोल है, वर्तुल है, सरकुलर है। उसमें हम आगे बढ़ते चले जाते हैं। कई दफा हमें लगता है, एक को पार किया, दो को पार किया, तीन को पार किया। आशा बड़ी बंधती है कि तीन को पार कर लिया तो जल्दी ही प्रथम हो जाएंगे, लेकिन हर बार पार करके पाते हैं कि आगे अभी लोग मौजूद हैं।
क्यू गोल है। वह सीधी रेखा में नहीं है कि कोई उसमें आगे पहुंच जाए।
और अक्सर तो ऐसा होता है कि बहुत दौड़-दौड़ कर आगे पहुंचने वाला अचानक पाता है कि वह बहुत पीछे पहुंच गया। अगर कोई गोल घेरे में खड़े हुए क्यू में बहुत आगे पहुंचने की कोशिश करेगा, तो किसी दिन पाएगा, जिन्हें वह छोड़ गया था पीछे, वे अचानक आगे आ गए हैं।
इसलिए सफलता के शिखर पर पहुंचे लोग अक्सर विपन्न हो जाते हैं। सफलता
के शिखर पर पहुंच गए लोग अक्सर फ्रस्ट्रेटेड हो जाते हैं। वह फ्रस्ट्रेशन क्या है? वह विपन्नता क्या है? वह विपन्नता यह है कि आखिर में वे पाते हैं कि शिखर पर नहीं पहुंचे; जिन्हें पीछे छोड़ गए थे, वे आगे खड़े हैं। क्यू जो है, गोलाकार है।
इसलिए लाओत्से का यह सूत्र इस संदर्भ में समझें।
लाओत्से कहता है, "यदि योग्यता की पद-मर्यादा न बढ़े, तो न विग्रह हो, न संघर्ष।"
लाओत्से कहता है, योग्यता को पद क्यों बनाएं हम? योग्यता को स्वभाव क्यों न मानें!
इस फर्क को समझ लें, इस फर्क पर बड़ी बातें निर्भर होंगी। योग्यता को
हम स्वभाव क्यों न मानें! योग्यता को हम पद क्यों बनाएं? एक आदमी गणित में कुशल है, यह कुशलता उसका स्वभाव है। और एक आदमी संगीत में कुशल है, यह कुशलता उसका स्वभाव है। और एक आदमी गणित में कमजोर है, यह कमजोरी उसका स्वभाव है। जो गणित में कुशल है, उसकी कोई खूबी नहीं, क्योंकि गणित की कुशलता उसे प्रकृति से मिलती है। और जो गणित में कुशल नहीं है, उसका कोई दुर्गुण नहीं, क्योंकि गणित की यह अकुशलता उसे उसी तरह प्रकृति से मिलती है जैसे कुशलता वाले को कुशलता मिलती है।
झेन फकीर रिंझाई एक व्यक्ति को बता रहा है झोपड़े के बाहर, कि देखते हो आकाश को छूने वाले बड़े-बड़े वृक्ष? और देखते हो छोटी-छोटी झाड़ियां? और फिर रिंझाई कहता है कि मुझे वर्षों हो गए इन वृक्षों के पास रहते, कभी मैंने झाड़ियों को यह सोचते नहीं देखा कि बड़े वृक्ष बड़े क्यों हैं। और न कभी मैंने बड़े वृक्षों को अकड़ते देखा कि ये झाड़ियां छोटी हैं और हम बड़े हैं। तो आदमी पूछता है, इसका राज क्या है?
तो रिंझाई कहता है, इसका राज सिर्फ इतना है कि झाड़ियां प्रकृति से झाड़ियां हैं, वृक्ष प्रकृति से वृक्ष हैं। बड़े होने में कोई पद नहीं, छोटे होने में कोई पदहीनता नहीं। जो प्रकृति वृक्षों को बड़ा बनाती है, वही प्रकृति घास के पौधे को छोटा बनाती है। और जरूरी नहीं है कि जो ऊंचा है, वह हर स्थिति में ऊंचा हो। जब तूफान आते हैं, तो बड़े वृक्ष नीचे गिर जाते हैं और छोटे पौधे बच जाते हैं।
नेपोलियन की ऊंचाई छोटी थी, बहुत लंबा नहीं था। और अक्सर ऐसा हो जाता
है कि बहुत छोटी ऊंचाई के लोग बड़े पदों पर पहुंचने की कोशिश करते हैं। अपनी लाइब्रेरी में एक दिन किताब निकाल रहा था, लेकिन अलमारी ऊंची थी। और हाथ उसका पहुंचता नहीं था। तो उसके साथ जो उसका पहरेदार था, वह तो कोई सात

फीट ऊंचा आदमी था, उसने कहा कि महानुभाव, अगर कुछ अनुचित न हो और मैं आपके आगे बढ़ कर निकालने की आज्ञा पाऊं, तो मुझे आज्ञा दें। नो वन इ.ज हायर दैन मी इन योर आर्मी--मुझसे ऊंचा तुम्हारी सेना में कोई भी नहीं है। नेपोलियन ने बहुत क्रोध से देखा और कहा कि नॉट हायर बट लांगर--ऊंचा मत कहो, सिर्फ लंबा। तुमसे लंबा फौज में कोई भी नहीं है, ऊंचे तो बहुत हैं। ऊंचा तो मैं ही हूं। नेपोलियन को चोट लगनी स्वाभाविक है। कहे हायर! इसमें भाषा ही की भर भूल नहीं थी, भूल भारी थी। नेपोलियन ने फौरन सुधार कर दिया कि कहो लांगर, कहो लंबा।
ऊंचा और लंबे में क्या फर्क किया नेपोलियन ने? लंबा तो सिर्फ प्राकृतिक घटना है। ऊंचे के साथ पद-मर्यादा है। ऊंचे के साथ वैल्युएशन है। लंबे के साथ कोई मूल्य नहीं है। तुम लंबे हो सकते हो; लंबाई के साथ कोई मूल्य नहीं है। लंबाई स्वभाव है। ठीक है कि तुम सात फीट लंबे हो, दूसरा पांच फीट लंबा है; इसमें कोई खास गुण की बात नहीं है। लेकिन ऊंचाई! ऊंचाई में हमने गुण जोड़ा है, वैल्युएशन जोड़ा है।
लाओत्से कहता है, यदि योग्यता के साथ पद-मर्यादा न जुड़े, तो न तो जगत में विग्रह हो और न संघर्ष।
काश, हम चीजों को ऐसा देखना शुरू करें कि प्रत्येक अपने स्वभाव के अनुकूल वर्तन करता है, और जैसा उसका स्वभाव है, उसके लिए वह जिम्मेवार नहीं। हम कभी अंधे आदमी को जिम्मेवार नहीं ठहराते कि तुम अंधे होने के लिए जिम्मेवार हो। एक आदमी जन्म से अंधा है, हम कभी ठहराते नहीं कि तुम जिम्मेवार हो। वरन हम दया करते हैं।
अभी मेरे पास एक युवक कोई दो साल पहले मिलने आया--डेढ़ साल, दो साल हुआ। श्रीनगर में महावीर के ऊपर शिविर था। जब हम सब चले आए, तब उस युवक को पता चला होगा, अंधा था। तो वह वहां से जबलपुर मेरे पास आया उतनी यात्रा करके। तो मैं उससे पूछा कि तू अंधा है, तुझे बड़ी तकलीफ हुई होगी, इतनी दूर की यात्रा तूने की है!
उसने कहा कि नहीं, अंधा होने से मुझे बड़ी सुविधा है; सभी मुझे सहायता
कर देते हैं। कोई मेरा हाथ पकड़ लेता है, कोई मुझे टिकट दे देता है, कोई मुझे रिक्शे में बिठा देता है। अब यहां भी रिक्शा वाला मुझे मुफ्त ले आया है और वह बाहर राह देख रहा है कि मैं आप से मिल कर जाऊं, तो वह मुझे स्टेशन वापस छोड़ देगा। अंधे होने से मुझे बड़ी सुविधा है। आंख होतीं, तो इतनी सुविधा मुझे नहीं हो सकती थी।
अंधे पर हम दया कर देते हैं। क्योंकि हम मानते हैं, उसका कसूर क्या! लेकिन बुद्धि मंद हो किसी की तो हम दया नहीं करते। हम कहते हैं, मूर्ख हो! कभी हम नहीं पूछते कि इसमें उसका कसूर क्या? एक आदमी मूढ़ है, तो कसूर क्या? अपराध क्या?
नहीं, उस पर हमें दया नहीं उठती। वह जगत में निंदित होगा, पीड़ित होगा, परेशान होगा। जगह-जगह ठुकराया जाएगा, पीछे किया जाएगा। कोई उस पर दया नहीं करेगा। क्यों? क्योंकि बुद्धि को हमने महत्वाकांक्षा का सूत्र बना लिया। बिना बुद्धि के महत्वाकांक्षा में गति नहीं है। इसलिए बुद्धि का जो माप है, आई.क्यू. जो है, बुद्धि का जो अंक है, वह बड़ा महत्वपूर्ण हो गया।
उसमें भी बात क्या है? एक आदमी आइंस्टीन की तरह पैदा होता है, इसमें आइंस्टीन की गुणवत्ता क्या है? लाओत्से यह कहता है, इसमें आइंस्टीन का हाथ क्या है? और एक आदमी एक महामूढ़ की तरह पैदा होता है, इसमें उसका कसूर क्या है?
लाओत्से यह कह रहा है कि प्रकृति इसे ऐसा बनाती है और उसे वैसा बनाती है। हम चूंकि इस प्रकृति को स्वीकार नहीं कर पाते और एक के साथ पद-मर्यादा जोड़ देते हैं और दूसरे के साथ पदहीनता जोड़ देते हैं, तो हम विग्रह और कलह और संघर्ष को जन्म देते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि हम कभी यह नहीं देख पाते कि प्राकृतिक क्या है, स्वाभाविक क्या है। हम अपनी आकांक्षाओं को प्रकृति पर थोप कर विचार करते हैं।
लाओत्से है प्रकृतिवादी, वह है स्वभाववादी। ताओ का अर्थ होता है, स्वभाव। वह कहता है, हम ऐसे हैं। और ऐसा अपने को ही नहीं कहता, वह दूसरे को भी कहता है कि दूसरा ऐसा है। पर हम कहेंगे, ऐसी बात को मानने का तो अर्थ यह

होगा कि जगत में फिर चोर हैं, बेईमान हैं, बुरे लोग हैं; अगर हम ऐसा मानें कि सब प्रकृति है और स्वभाव है, तो प्रकृति ने एक को चोर बनाया, तो फिर हम क्या करें? प्रकृति ने एक को बेईमान बनाया, तो फिर हम क्या करें? बेईमान को स्वीकार करें और बेईमानी चलने दें?
लाओत्से के साथ नीतिवादी का यही संघर्ष है। नीतिवादी कहेगा, यह सूत्र खतरनाक है। समझ लें, इतने दूर तक भी मान लें कि एक आदमी मूढ़ है और एक आदमी बुद्धिमान है, तो ठीक है, चलो प्रकृति है। लेकिन एक आदमी बेईमान है, एक आदमी चोर है, एक आदमी हत्यारा है, तो हम क्या करें? स्वीकार कर लें? समझ लें कि प्रकृति ने ऐसा बनाया?
लाओत्से से अगर पूछें, तो लाओत्से कहेगा कि तुमने स्वीकार नहीं किया, तुमने कितने हत्यारों को गैर-हत्यारा बना पाए? तुमने स्वीकार नहीं किया, तुमने कितने बेईमानों को ईमानदार बनाया? तुमने स्वीकार नहीं किया, तुमने दंड दिए, तुमने अपराधी करार दिया, तुमने फांसियां लगाईं, तुमने कोड़े मारे, तुमने जेलों में बंद किया, तुमने जीवन भर की सजाएं दीं। तुम कितने लोगों को बदल पाए?
लाओत्से कहता है, सचाई तो यह है कि तुम जिसे दंड देते हो, तुम उसे उसकी बेईमानी में और थिर कर देते हो। और तुम जिसे सजा देते हो, उसे तुम उसके अपराध से कभी मुक्त नहीं करते, तुम उसे और निष्णात अपराधी बना देते हो। और जो व्यक्ति एक बार कारागृह में होकर आता है, वह व्यक्ति धीरे-धीरे कारागृह का पंछी हो जाता है। क्योंकि कारागृह में उसे सत्संग मिलता है। कारागृह से वह बहुत कुछ सीख कर वापस लौटता है। कारागृह से वह वैसे ही वापस नहीं लौटता जैसा गया था। कारागृह में उसे गुरु मिल जाते हैं, और बड़े जानकार मिल जाते हैं, अनुभवी मिल जाते हैं।
और एक बार तुम्हारा निर्णय कि फलां व्यक्ति अपराधी है और चोर है, उसके ऊपर सील-मुहर लग जाती है। उसको ईमानदार होने का अब उपाय नहीं रह जाता। अब वह ईमानदार होना भी चाहे, तो कोई स्वीकार करने को तैयार नहीं है।
लाओत्से कहता है कि तुम एक बेईमान को ईमानदार नहीं बना पाए।
इंग्लैंड में कोड़े की सजाएं थीं चोरों के लिए। डेढ़ सौ साल पहले बंद की गईं। क्योंकि सड़क के चौराहे पर खड़े करके कोड़े मारते थे नग्न, ताकि सैकड़ों लोग देख लें। देख लें और प्रभावित हों और दूसरे लोग चोरी न करें। लेकिन डेढ़ सौ साल पहले ऐसा हुआ कि भीड़ खड़ी थी, और दो आदमी उस भीड़ में जेब काट रहे थे। और एक आदमी को नग्न करके बीच में कोड़े मारे जा रहे थे। भीड़ तो देखने में संलग्न थी। किसी को ख्याल न था कि कोई जेब काट लेगा। वहां अनेक लोगों की जेबें कट गईं।
तो इंग्लैंड की पार्लियामेंट में विचार चला कि यह तो हैरानी की बात है। हम सोचते हैं कि कोड़े मारे जाएं सड़क पर कि लोग चोरी न करें। हैरानी मालूम होती है, जहां कोड़े मारे जा रहे थे, वहां लोगों की जेबें कट गईं! क्योंकि लोग इतने तल्लीन थे देखने में कोड़े, और किसी को ख्याल न था कि यहां चोरी हो जाएगी।
आदमी को हम इतनी सजाएं देकर भी जरा नहीं बदल पाए। आदमी रोज-रोज और बुरा होता चला गया है। जितने कानून बढ़ते हैं, लाओत्से के हिसाब से, उतने अपराधी बढ़ जाते हैं। हर नया कानून नए अपराधी पैदा करने का सूत्र बनता है। हर दंड नए जुर्म पैदा कर जाता है।
तो लाओत्से कहता है, तुम भला कहते हो कि क्या होगा दुनिया का, अगर तुम
न बदलोगे तो! हालांकि तुम बदल किसी को भी नहीं पाए। दुनिया की इतनी अदालतें और इतने कारागृह और इतनी दंड-संहिताएं, कोई किसी को नहीं बदल पाए। पर ऐसा मालूम होता है कि कुछ लोगों का निहित स्वार्थ है। एक चोर पर मैंने सुना है कि तीसरी बार सजा हो रही है। और यह आखिरी है, क्योंकि अब उसे आजीवन कारावास मिल रहा है। और मजिस्ट्रेट उससे आखिरी वक्त पूछता है कि तू पैदा हुआ, तूने मनुष्यता के साथ कौन सा सदव्यवहार किया?
उस चोर ने कहा, आपको पता नहीं, न मालूम कितने मजिस्ट्रेट, न मालूम कितने पुलिस वाले, न मालूम कितने डिटेक्टिव मेरी वजह से एंप्लायड हैं! मेरे कारण चौबीस घंटे काम में लगे हुए हैं। मेरे बिना न मालूम कितने लोग

बिल्कुल बेकार हो जाएंगे। तुम सड़क पर भीख मांगते नजर आओगे! तुम मेरी वजह से काम पर हो।
यह मजाक ही नहीं है। यह सचाई है और गहरी सचाई है। अगर जमीन पर एक चोर न हो, तो मजिस्ट्रेट कैसे होगा? यह इतना बड़ा इंतजाम प्रतिष्ठा का, कानून का, वकीलों का, यह सब का सब चोरों पर, बेईमानों पर, बदमाशों पर निर्भर है। और अगर कभी कोई बहुत गहरे में देख पाए, तो उसे दिखाई पड़ेगा कि यह सारा का सारा व्यवस्थापक वर्ग जो है, लाओत्से की बात सुन कर राजी नहीं होगा। कहेगा, इसका मतलब है कि चोर को स्वीकार कर लो कि चोर चोर है। कुछ मत करो। तो फिर ये जो करने वाले हैं, इनका क्या होगा?
और बहुत मजे की बात है कि ऐसा अनुभव है मनोवैज्ञानिकों का, ऐसा निरंतर शोध है, कि आमतौर से कानून को व्यवस्था देने वाले वे ही लोग होते हैं कि अगर कानून न हो तो वे कानून को तोड़ने वाले होंगे। असल में, चोर को डंडा मारने में चोर को ही मजा आता है।
सुना है मैंने कि नसरुद्दीन एक दुकान पर काम कर रहा है। लेकिन ग्राहकों से उसका अच्छा व्यवहार नहीं है। तो उसे निकाल दिया गया है। जिस दुकान के मालिक ने उसे निकाल दिया है कह कर कि तुम्हारा ग्राहकों से व्यवहार अच्छा नहीं। ध्यान रखो, कानून, नियम यही है दुकान के चलाने का कि ग्राहक सदा ठीक--दि कस्टमर इ.ज ऑलवेज राइट। तो यहां यह नहीं चल सकता कि तुम नौकर होकर दुकान के और तुम अपने को ठीक करने की सिद्ध करो कोशिश और ग्राहक को गलत करने की।
पंद्रह दिन बाद उसने देखा कि नसरुद्दीन पुलिस का सिपाही हो गया है, चौरस्ते पर खड़ा है। उसने कहा, नसरुद्दीन, क्या सिपाही की नौकरी पर चले गए? नसरुद्दीन ने कहा, हां, मैंने फिर बहुत सोचा। दिस इ.ज दि ओनली जॉब, व्हेयर कस्टमर इ.ज आलवेज रांग; जहां ग्राहक सदा गलत होता है। और धंधा अपने को नहीं जमेगा।
लाओत्से की बात कठिन मालूम पड़ेगी। कानून की जो नियामक शक्तियां हैं, उनको ही नहीं, साधु-संन्यासियों को भी बहुत अप्रीतिकर लगेगा। क्योंकि साधु अपनी साधुता को स्वभाव नहीं मानता, अपना अर्जित गुण मानता है। साधु कहता है, मैं साधु हूं बड़ी चेष्टा से, बड़ी मुश्किल से; बहुत आर्डुअस था मार्ग, बड़ी तपश्चर्या की है, तब मैं साधु हूं। और तुम साधु नहीं हो, क्योंकि तुमने कुछ नहीं किया।
लाओत्से की साधुता परम है। वह कहता है कि अगर मैं साधु हूं, तो इसमें मेरा कोई गुण नहीं। इस परम साधुता को समझें। लाओत्से कहता है, अगर मैं साधु हूं, तो इसमें मेरा कोई गुण नहीं। इसमें सम्मान की कोई बात नहीं। अगर तुम साधु नहीं हो, तो इसमें कोई अपमान नहीं। तुम्हारा न साधु होना स्वाभाविक है, मेरा साधु होना स्वाभाविक है। और जहां स्वभाव आ जाता है, वहां हम क्या करेंगे? तो तुम मुझसे नीचे नहीं, मैं तुमसे ऊपर नहीं।
लेकिन हमारे साधु का तो सारा इंतजाम ऊपर होने में है। वह अगर हमसे ऊपर नहीं है, तो उसका सब बेकार है। और ध्यान रहे, अगर हम साधु को ऊपर बिठाना बंद कर दें, तो हमारे सौ में से निन्यानबे साधु तत्काल विदा हो जाएं। उनको रुकाए रखने का कुल एक ही आधार और कारण हैः उनकी साधुता उनकी महत्वाकांक्षा के लिए, उनके अहंकार और अस्मिता के लिए भोजन है। साधु होने में भी बड़ा मजा है। और जब समाज बहुत असाधु हो, तब तो साधु होने में बड़ा ही रस है। क्योंकि आप अपनी अस्मिता को, अपने अहंकार को जितना पुष्ट कर पाते हैं, और किसी तरह न कर पाएंगे।

लाओत्से से साधु भी राजी न होगा। इसलिए लाओत्से ने जब ये बातें कहीं,
तो चीन में बड़ी क्रांतिकारी बातें थीं। अभी भी क्रांतिकारी हैं ढाई हजार साल बाद! और शायद अभी ढाई हजार साल और बीत जाएं, तब भी क्रांतिकारी रहेंगी। क्योंकि लाओत्से से और बड़ी क्रांति क्या होगी? लाओत्से कहता है कि मैं जो हूं, ऐसे ही जैसे कि नीम में कड़वा पत्ता लगता है, इसमें नीम का क्या कसूर? और आम में मीठा फल लगता है, इसमें आम का क्या गुण? नीम क्यों कर पीछे और नीचे हो और आम क्यों कर ऊपर बैठ जाए? भला आपके लिए उपयोगी हो, तो भी। आपकी उपयोगिता ऊंचाई-नीचाई का कोई आधार नहीं है। साधु का, न्यायविद का,

नीतिशास्त्री का जो विरोध होगा, वह समझ लेना चाहिए। वह विरोध यह होगा कि समाज तो पतित हो जाएगा। लेकिन कोई भी यह नहीं देखता कि समाज इससे ज्यादा पतित और क्या होगा? समाज पतित है; हो जाएगा नहीं। और जब समाज पतित है, तो नीतिशास्त्री कहता है कि अगर हम लाओत्से जैसे लोगों की बात मान लें, तो और बिगड़ जाएगी हालत।
लेकिन लाओत्से का कहना यह है कि तुम्हीं ने बिगाड़ी है यह हालत। चोर को तुम निंदित करके सुधार तो नहीं पाते हो, निंदित करके उसके बदलने की जो संभावना है, उसका द्वार बंद कर देते हो। असल में, जैसे ही हम तय कर लेते हैं निंदा और प्रशंसा, वैसे ही हम सीमाएं बांधना शुरू कर देते हैं। और जैसे ही हम निंदा और प्रशंसा के घेरे बनाने लगते हैं और किन्हीं को बुरा और किन्हीं को अच्छा कहने लगते हैं, तो जिस व्यक्ति को हम बुरा कहते हैं, धीरे-धीरे हम उसे बुरा होने को मजबूर करते हैं; और जिस व्यक्ति को हम अच्छा कहते हैं, धीरे-धीरे हम उसे उसकी अच्छाई में भी पाखंड निर्मित करवा देते हैं।
क्यों? क्योंकि जिसे हम अच्छा कहते हैं, उसे हम बुरे होने की सुविधा नहीं छोड़ते। और कोई आदमी इतना अच्छा नहीं है कि उसमें बुराई हो ही नहीं। और कोई आदमी इतना बुरा नहीं है कि उसमें अच्छाई हो ही नहीं। लेकिन हम चीजों को दो टुकड़ों में तोड़ देते हैं। हम कहते हैं, यह आदमी अच्छा है, इसमें बुराई है ही नहीं। और जब उसकी जिंदगी के भीतर की बुराई का कोई हिस्सा प्रकट होना शुरू होगा, तो उस आदमी को धोखा देना पड़ेगा। वह छिपाएगा, दबाएगा। जो उसके भीतर है, उसे प्रकट नहीं करेगा; और जो उसके भीतर नहीं है, उसे प्रकट करेगा। हमारी यह चेष्टा, अच्छाई की प्रशंसा की चेष्टा, अच्छाई को पाखंड और हिपोक्रेसी बना देती है। इसलिए जिसे हम अच्छा आदमी कहते हैं, उसमें निन्यानबे प्रतिशत पाखंडी होते हैं। लेकिन एक बार हमने अच्छाई का लेबल उन पर लगा दिया है, तो वे अपने लेबल की रक्षा के लिए जीवन भर कोशिश करते हैं।
जिसको हम बुरा कह देते हैं, उसको हम अच्छे होने का द्वार बंद कर देते हैं। क्योंकि जब हम उसे इतना बुरा कह चुके होते हैं, वह इतनी बार सुन चुका होता है कि बुरा है, तो धीरे-धीरे अच्छे होने की जो आकांक्षा है, जो संभावना है, जो एडवेंचर है, वह उसके प्रति असमर्थ अपने को पाने लगता है। वह सोचता है, यह होने वाला नहीं है; मैं बुरा हूं, निंदित हूं, यह मुझसे होने वाला नहीं है। तब धीरे-धीरे मैं बुरे में ही कैसे कुशल हो जाऊं, यही उसकी जीवन-यात्रा बन जाती है।
लाओत्से कहता है, बुरे को बुरा मत कहो, भले को भला मत कहो; लेबलिंग मत करो; पद मत बनाओ। इतना ही जानो कि सब अपने स्वभाव से जीते हैं।
इसका क्या अर्थ होगा? इसका अर्थ होगा कि समाज में कोई कैटेगरी नहीं है, समाज में कोई हायरेरकी नहीं है, समाज में कोई ऊंचा और नीचा नहीं है। क्या इसका मतलब कम्युनिज्म होगा? यह थोड़ा सोचने जैसा है। लाओत्से जिस मनुष्य की व्यवस्था की बात कर रहा है, अगर वैसी स्वीकृत हो, तो सभी मनुष्य असमान होंगे और फिर भी सभी अपने स्वभाव में होंगे। इसलिए कोई असमानता का बोध नहीं होगा।
लाओत्से यह कह रहा है कि एक आदमी धन कमा सकता है, तो कमाएगा। और एक आदमी गंवा सकता है, तो गंवाएगा। और एक आदमी भीख मांग सकता है, तो भीख मांगेगा। लेकिन भीख मांगने वाला महल बनाने वाले से नीचा नहीं होगा, क्योंकि महल बनाने को हम कोई पद-मर्यादा नहीं देते। हम कहते हैं, यह उस आदमी का स्वभाव है कि वह बिना महल बनाए नहीं रह सकता, तो वह बनाता है। यह इस आदमी का स्वभाव है कि इसके हाथ में पैसा हो तो बिना लुटाए नहीं रह सकता। यह इसका स्वभाव है। हम कोई पद-मर्यादा नहीं बनाते, हम स्वभाव को स्वीकार करते हैं। और हम हर तरह के स्वभाव को स्वीकार करते हैं। असल में, साधुता का जो परम लक्षण है, वह सब तरह की स्वीकृति, हर तरह के स्वभाव की स्वीकृति है। और अगर ऐसी संभावना हो सके कि हम सब तरह के स्वभाव को स्वीकार करें, तो लाओत्से कहता है, फिर कोई विग्रह नहीं है, फिर कोई संताप नहीं, कोई चिंता नहीं, कोई पीड़ा नहीं, कोई कलह नहीं है।

एक मित्र से कल ही मैं बात कर रहा था। पत्नी और उनके बीच कलह है। स्वभावतः, उनको ऐसा ही ख्याल था, जैसा सभी को ख्याल होता है। सभी को यह ख्याल होता है कि अगर यह स्त्री न होती, कोई दूसरी स्त्री होती, तो कलह न होती। दूसरी स्त्री का कोई अनुभव नहीं है। वह दूसरी स्त्री काल्पनिक है। वह कहीं भी नहीं है। स्त्री को भी यही ख्याल होता है कि इस आदमी के साथ जुड़ गया, यह भूल हो गई। कोई दूसरा पुरुष होता, तो यह उपद्रव जीवन में न होता। तो दूसरा कौन सा पुरुष? वह काल्पनिक है। वह कहीं है नहीं। लेकिन सभी पुरुषों का हमें अनुभव नहीं हो सकता, सभी स्त्रियों का अनुभव नहीं हो सकता; इसलिए भ्रम बना रहता है।
नहीं, उन मित्र से मैंने कहा कि यह सवाल इस स्त्री और उस स्त्री का नहीं है; स्त्री और पुरुष के स्वभाव का है। उस स्वभाव में कलह है। स्त्री और पुरुष के बीच हमने जो व्यवस्था की, उस व्यवस्था का है। उस व्यवस्था में कलह है। जहां भी मालकियत होगी, वहां कलह होगी। और जहां भी हम संबंधों को निश्चित करेंगे सदा के लिए, वहां कलह होगी। क्योंकि चित्त बहुत अनिश्चित है और संबंध बहुत निश्चित हो जाते हैं।
आज मैं किसी से कहता हूं कि तुमसे सुंदर कोई भी नहीं है। कल सुबह कहूंगा, यह जरूरी कहां है? कल सुबह ऐसा मुझे लगेगा, यह भी जरूरी कहां है? और इसका यह अर्थ नहीं है कि मैंने जो आज कहा कि तुमसे सुंदर कोई भी नहीं, यह झूठ था। इसका यह अर्थ नहीं, बिल्कुल सच था। यह मेरे क्षण का सत्य था, इस क्षण मुझे ऐसा ही लगता था। लेकिन यह क्षण मेरे सारे भविष्य को बांधने वाला नहीं हो सकता। कल सुबह मुझे लगेगा कि नहीं, वह भूल थी। वह भी सत्य होगा उस क्षण का। और तब मैं क्या करूंगा? या तो इस पुराने सत्य का धोखा दूंगा, पाखंड खड़ा करूंगा। और पाखंड खड़ा करूंगा, तो कलह होगी। मैं खुद ही अपनी आंखों में नीचे गिरता मालूम पडूंगा कि कल मैंने क्या कहा और आज मैं क्या करता हूं!
जहां हम संबंध थिर करेंगे, वहां अथिर मन कष्ट लाएगा। जहां मांग होगी, वहां संघर्ष होगा। जहां ऊंचा-नीचा होगा कोई, वहां जो ऊंचा है, वह ऊंचे रहने की अपनी पूरी चेष्टा करेगा, इसलिए संघर्ष में रहेगा; जो नीचा है, वह ऊपर आने की चेष्टा करेगा, इसलिए संघर्ष में रहेगा। हमारी सारी की सारी चिंतना जो है, वह कलह की है। कलह-शून्य तो तब हो सकता है मनुष्य, जब वह चीजों के स्वभाव को स्वीकार करता हो।
अब जैसे चीजों का स्वभाव क्या है?
चीजों का स्वभाव यह है कि अगर मैं किसी व्यक्ति को प्रेम करूंगा, उस व्यक्ति से सुख पाऊंगा, तो उस व्यक्ति से दुख भी पाऊंगा। जिस व्यक्ति से सुख पाएंगे, उससे दुख भी पाना पड़ेगा। सुख हमें मिलता ही उससे है, जिससे दुख मिल सकता है। सुख का दरवाजा हम खोलते नहीं कि साथ ही दुख का दरवाजा भी खुल जाता है। वे एक ही दरवाजे से दोनों आते हैं। मैं जब सुख ही चाहता हूं और दुख नहीं लेना चाहता, तो मैं चीजों का स्वभाव अंगीकार नहीं कर रहा। मैं कह रहा हूं, सुख तो ठीक, दुख मैं नहीं लूंगा।
अब जिस व्यक्ति को मैं प्रेम करता हूं, उस व्यक्ति पर मैं क्रोध भी करूंगा। जो व्यक्ति मुझ पर प्रेम करता है, वह मुझ पर क्रोध भी करेगा। लेकिन हम सोचते हैं कि जिस पर हम प्रेम करते हैं, उस पर कभी क्रोध नहीं करना है। प्रेम जहां होगा, वहां क्रोध पैदा होगा; जहां राग होगा, वहां क्रोध होने ही वाला है। और अगर क्रोध न होगा, तो प्रेम की क्वालिटी बिल्कुल और हो जाएगी, उसका गुण-तत्व बदल जाएगा। वह फिर प्रेम नहीं, करुणा हो जाएगा। लेकिन करुणा से तृप्ति न मिलेगी आपको, क्योंकि करुणा बिल्कुल शांत प्रेम है, अनाग्रह से भरा हुआ प्रेम है। आपको तृप्ति तो तब मिलती है, जब कि पैसोनेट, सक्रिय, आक्रामक प्रेम आपकी तरफ आता है। तभी आपको लगता है, जब कोई आपको जीतने आता है।
अब यह बड़े मजे की बात है, जब कोई आपको जीतने आता है, तो आपको बड़ा सुख मालूम पड़ता है। लेकिन जब कोई आपको जीत लेता है, तो बड़ा दुख मालूम पड़ता है। जब कोई जीतने आता है, तो इसलिए सुख मालूम पड़ता है कि मैं जीतने योग्य हूं; नहीं तो कोई जीतने क्यों आएगा! और जब कोई जीत लेता है, तब पीड़ा शुरू होती है कि मैं किसी का गुलाम हो गया। और दोनों बातें संयुक्त हैं।

अगर हम स्वभाव को देखें, तो यह कलह न हो, यह विग्रह न हो।
लाओत्से कहता है, न विग्रह और न संघर्ष।
संघर्ष क्या है? संघर्ष पूरे क्षण यही है, संघर्ष पूरे क्षण यही है कि मैं अपने स्वभाव के अन्यथा होने की कोशिश में लगा हूं। जो मैं नहीं हो सकता, उसकी कोशिश चल रही है। और दूसरे के साथ भी यही कोशिश चल रही है कि जो वह नहीं हो सकता, वह उसको बना कर रहना है।
एक स्त्री को मैं प्रेम करूं। तो उस प्रेम को मैं कर ही तब सकता हूं,
जब स्त्री मुझे प्रीतिकर है। इसीलिए कर सकता हूं। लेकिन वह स्त्री खुश होगी कि मैं उसे प्रेम कर रहा हूं। लेकिन वह नहीं जानती कि मैं स्त्री को प्रेम कर रहा हूं, कोई दूसरी स्त्री को भी कर सकता हूं। मेरे लिए स्त्री में अभी रस है, तो ही मैं उसे प्रेम कर रहा हूं। मैं कल दूसरी स्त्री को भी प्रेम कर सकता हूं। वह खुश होगी, क्योंकि मैंने उसे प्रेम किया। लेकिन कल पीड़ा शुरू होगी, क्योंकि मैं किसी दूसरी स्त्री को प्रेम कर सकता हूं। इसलिए हर स्त्री जिससे आप प्रेम करेंगे, प्रेम के बाद तत्काल आपके पहरे पर हो जाएगी कि आप किसी और की तरफ प्रेम में तो नहीं झुक रहे हैं। क्योंकि उसे पता तो चल गया कि आपका मन स्त्री के प्रति प्रेम से भरा हुआ है। और मन कोई व्यक्तियों को नहीं जानता, मन तो केवल शक्तियों को जानता है। मन अ नाम के पुरुष को, ब नाम की स्त्री को नहीं जानता; मन तो स्त्री और पुरुष को जानता है।
अब वह स्त्री कोशिश करेगी कि आपके मन में स्त्री का प्रेम न रह जाए। लेकिन जिस दिन स्त्री का प्रेम चला जाएगा, उसी दिन यह स्त्री भी मन से चली जाएगी। अब संघर्ष भयंकर है। अब इसकी चेष्टा यह होगी कि स्त्री से तो प्रेम रहे, लेकिन मेरे भीतर जो स्त्री है, उसी से रह जाए। अब एक संघर्ष है, जो इम्पासिबल है, जो असंभव है, जो हो नहीं सकता, जो कभी पूरा नहीं हो सकता, जिसमें सिवाय विषाद के और कुछ हाथ नहीं लगेगा।
सब तरफ ऐसा होता है। सब तरफ ऐसा होता है।
वोल्तेयर ने लिखा है कि एक वक्त था कि रास्ते से मैं गुजरता था तो सोचता था कि कोई मुझे नमस्कार करे। पर लोग नहीं करते थे। लोग जानते ही नहीं थे। तो बड़ी पीड़ा होती थी। बड़ी मेहनत करके वोल्तेयर उस जगह पहुंचा, जहां कि गांव से निकलना मुश्किल हो गया। तो वोल्तेयर ने लिखा है कि दुष्टों ने नींद हराम कर दी है। अकेला घूमने नहीं निकल सकता हूं; कोई न कोई मिल जाएगा, नमस्कार करके, साथ होकर बात करने लगता है।
तो वोल्तेयर ने अपनी डायरी में लिखा है कि अब मुझे ख्याल आता है कि यह उपद्रव मैंने ही मोल लिया है। ये तो बेचारे पहले नमस्कार करते ही नहीं थे। मैं निकल जाता था, तब इसकी पीड़ा होती थी कि कोई नमस्कार करने वाला नहीं! और अब बाजार इकट्ठा हो जाता है जहां निकलता हूं, तो पीड़ा होती है कि ये दुष्ट पीछा कर रहे हैं।
आदमी का मन! जिन बीमारियों को हम निमंत्रण देते हैं, जब वे आ जाती हैं,
तब परेशान होते हैं। पहले आदमी चाहता है कि यश मिल जाए। और यश मिलते ही आइसोलेशन चाहता है। पहले चाहता है, यश मिल जाए। यश का मतलब है, भीड़ मिल जाए। भीड़ मिलते ही भीड़ से घबराहट होती है। हिटलर पूरी कोशिश करता है कि भीड़ मिल जाए। जब भीड़ मिल जाती है, तो फिर भीड़ से बचने की कोशिश करनी पड़ती है। बड़े मजे की बात है, जिन्हें भीड़ नहीं मिली, वे परेशान हैं; जिन्हें भीड़ मिल गई, वे परेशान हैं।
लाओत्से कहता है, स्वभाव को हम स्वीकार नहीं करते, इससे कठिनाई है। और
यह नहीं देखते कि हर चीज के साथ बहुत सी चीजें और जुड़ी हुई हैं। वे साथ ही चली आती हैं। उनको बचाया नहीं जा सकता। कोई मुझे अपमान न करे, हम चाहते हैं। और सब हमें सम्मान करें, यह भी हम चाहते हैं। और जहां सम्मान आया, वहां अपमान अनिवार्य है, इस स्वभाव को हम नहीं देख पाते। यह स्वभाव हमें दिखाई पड़ जाए... । तो लाओत्से कहता है, अपमान नहीं चाहते, तो सम्मान भी मत चाहो। सम्मान चाहते हो, तो अपमान के लिए भी राजी रहो। फिर कोई कठिनाई नहीं है, फिर कोई विग्रह नहीं है। फिर भीतर कोई कांफ्लिक्ट नहीं है, फिर भीतर कोई संघर्ष नहीं है।

और जब एक-एक व्यक्ति के भीतर संघर्ष होता है, तो पूरे समाज में संघर्ष होगा ही। जब एक-एक व्यक्ति चौबीस घंटे लड़ाई में लगा हुआ है... । जिसे हम जीवन कहते हैं, उसे जीवन कहा नहीं जा सकता। क्योंकि हम चौबीस घंटे कर क्या रहे हैं? न मालूम कितनी तरह की लड़ाइयां लड़ रहे हैं! बाजार में आर्थिक लड़ाई लड़ रहे हैं। घर पर पारिवारिक लड़ाई लड़ रहे हैं। मित्रों में लड़ाई चल रही है, पालिटिक्स चल रही है। अगर एक आदमी की हम सुबह से लेकर रात तक, सो जाने तक की पूरी चर्या देखें, तो सिवाय मोर्चे बदलने के और क्या है? इधर मोर्चा बदलता है, उधर मोर्चा। इधर आकर एक दूसरे फ्रंट पर लग जाता है। इधर से किसी तरह छूटता है, तो एक दूसरी लड़ाई पर लग जाता है। लड़ाइयां बदलने में थोड़ी राहत जो मिल जाती है, वह मिल जाती होगी। बाकी लड़ाई चल रही है। कहीं कोई उपाय नहीं है जहां लड़ाई के बाहर हो सके। रात सो जाता है, तो भी सपने लड़ाई के हैं! वही संघर्ष सपनों में लौट आता है।
संघर्ष से भरी हुई यह चित्त की दशा क्यों है? क्यों है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम आदमी की जड़ें ही विषाक्त कर रहे हैं जिससे यह होगा ही? यही है। हम जड़ें विषाक्त कर रहे हैं। और हमारी जड़ें विषाक्त करने का जो योजनाबद्ध कार्य है, वह इतना पुराना है कि हमारे कलेक्टिव माइंड, हमारे पूरे समूह मन का हिस्सा हो गया है। हम और किसी तरह अब जी नहीं सकते, ऐसा मालूम पड़ता है। यह हमारा जाल है। और अगर चौबीस घंटे आपको शांति मिल जाए और कोई संघर्ष का मौका न मिले, तो आप इतने बेचैन हो जाएंगे, जितने आप संघर्ष से कभी न हुए थे। आपको लगता है, लोग कहते हैं कि शांति चाहिए। क्योंकि उन्हें पता नहीं कि शांति क्या है। अगर उन्हें सच में ही शांति दे दी जाए, तो वे चौबीस घंटे में कहेंगे कि क्षमा करिए, यह शांति नहीं चाहिए; इससे तो अशांति बेहतर थी। क्योंकि शांति के क्षण में आपका अहंकार नहीं बच सकेगा। अहंकार बचता है कलह में, संघर्ष में, जीत में, हार में। हार भी बेहतर है; उसमें भी अहंकार तो बना ही रहता है। ना-कुछ से हार बेहतर है; उसमें अहंकार तो बना ही रहता है। लेकिन अगर पूरी शांति हो, तो आपका अहंकार नहीं बचेगा, आप नहीं बचोगे। पूरी शांति में शांति ही बचेगी; आप नहीं बचोगे। वह बहुत घबड़ाने वाली होगी! उससे आप निकल कर बाहर आ जाओगे। आप कहोगे, ऐसी शांति नहीं चाहिए; इससे तो नर्क बेहतर है। कुछ कर तो रहे थे! कुछ हो तो रहा था! होता या न होता, होता हुआ मालूम होता था। व्यस्त थे, लगे थे। और मन में एक ख्याल था कि बड़े भारी काम में लगे हैं।
जितना बड़ा संघर्ष होता है, उतना लगता है कि बड़े भारी काम में लगे हैं। इसलिए लोग छोटे-मोटे संघर्ष छोड़ कर बड़े संघर्ष खोज लेते हैं; छोटी-मोटी मुसीबतें छोड़ कर बड़ी मुसीबतें खोज लेते हैं। अपने घर की काफी नहीं पड़तीं, तो पास-पड़ोस की खोज लेते हैं। समाज की, देश की, राष्ट्र की, मनुष्यता की बड़ी तकलीफें खोज लेते हैं। छोटी तकलीफें उनके काम की नहीं हैं।
एक युवक अभी मेरे पास आया था। वह अमरीकन शांतिवादियों के दल का सदस्य है। और भारत में उनके चार सौ लोग शांति की कोशिश करते हैं। वह यहां आकर संन्यास लिया, तो मैं उससे पूछा कि तू कहीं अपनी अशांति से बचने के लिए तो दूसरों की शांति के लिए कोशिश नहीं कर रहा है?
वह बहुत चौंका! उसने कहा, क्या आप कहते हैं? बात तो यही है। पर आपको पता कैसे चला? घर में इतनी अशांति है, पिता से बनती नहीं, मां से बनती नहीं, भाई से बनती नहीं। और हालात ऐसे हो गए थे कि अगर मैं रुक जाऊं घर में, तो खून-खराबा हो जाएगा। या तो मैं मार डालूं पिता को, या पिता मुझे मार डालें। इसलिए घर से भागना जरूरी था। यह जब मैंने सुना कि भारत में शांति की जरूरत है, तो मैं यहां आ गया। यहां मैं शांति की उसमें लगा हुआ हूं।
जितने समाज-सेवक हैं, समाज-सुधारक हैं, नेता हैं, उनको छोटी अशांति काफी नहीं पड़ती। थोड़ा बड़ा विस्तार चाहिए, फैलाव चाहिए; और मसले ऐसे चाहिए, जो कभी हल न होते हों। हल हो जाने वाले मसलों पर आप ज्यादा देर नहीं जी सकते। हल हो जाएंगे, फिर नया मसला खोजो। तो स्थायी मसले चाहिए, जो कभी हल नहीं होते। पर ये हम सारे लोग, जिन्हें शांति के कोई सूत्र का ही पता नहीं है, जिनका सारा बनाव अशांति का है, जो उठेंगे, बैठेंगे, चलेंगे, बोलेंगे, तो सबसे अशांति खड़ी करेंगे। जो अगर चुप भी रह जाएं... ।

नसरुद्दीन अपनी पत्नी से बात कर रहा है। पत्नी आधा घंटे बोल चुकी है। नसरुद्दीन कहता है, देवी, तुझे आधा घंटा हो गया और मैं हां-हूं भी नहीं कर पा रहा हूं।
उसकी पत्नी कहती है, तुम चुप रहो, लेकिन तुम्हारे चुप बैठने का ढंग इतना खतरनाक है, सो एग्रेसिव! तुम चुप बैठे जरूर हो, लेकिन तुम इस ढंग से बैठे हो कि आई कैन नॉट स्टैंड इट!
आदमी शांत भी इस ढंग से बैठ सकता है कि आक्रामक लगे। आपके चुप होने का ढंग भी ऐसा हो सकता है कि उससे गाली देना भी बेहतर हो। हमारे होने की व्यवस्था कलह की है। उसमें अगर हम चुप भी बैठते हैं... । अब एक आदमी कहता है, मैं तो चुप ही रहता हूं, मैं तो कुछ बोल ही नहीं रहा हूं। लेकिन उनका न बोलना भी काम करता है। आप अक्सर नहीं तभी बोलते हैं, जब आपको बोलने से भी ज्यादा खतरनाक बात कहनी होती है। तब आप चुप रह जाते हैं। क्योंकि जितने वजन के शब्द चाहिए, वे नहीं मिलते। गाली देनी है कोई वजनी, वह नहीं मिलती है। चुप रह जाते हैं। ऐसा लेकिन क्यों है?
लाओत्से के हिसाब से ऐसा इसलिए है कि हमने स्वभाव को स्वीकृति नहीं दी। और हमने स्वभाव के साथ एक खिलवाड़ किया है। और वह खिलवाड़ है पद-मर्यादा का। हम कहते हैं, फलां नीचा है, फलां ऊंचा है। यूटिलिटी की वजह से। जिस चीज की हमें उपयोगिता ज्यादा मालूम पड़ती है, हम उसे ऊंचा कहने लगते हैं। लेकिन जब उपयोगिता बदलती है, तो आपको पता है, ऊंचे-नीचे की व्यवस्था बदलती है। एक जमाना था, पुरोहित सबसे ऊंचा था, प्रीस्ट। क्यों? उसकी यूटिलिटी थी। उसकी उपयोगिता थी। आकाश में बादल गरजते और बिजली चमकती, तो कोई भी कुछ नहीं जानता था। वह पुरोहित ही जानता था कि इंद्र देवता नाराज हैं। अब इंद्र देवता को कैसे प्रसन्न किया जाए, इसका सूत्र भी उसे ही पता था। मंत्र उसके पास था। तो राजा भी उसके पैर में बैठता था जाकर। और इसलिए पुरोहित ने हजारों-हजारों साल तक, वह जो जानता है, उसे और लोग न जान लें, इसकी भरसक चेष्टा की। क्योंकि उसकी मोनोपॉली उस जानकारी पर ही थी। कुछ बातें थीं, जो वह जानता था और कोई नहीं जानता था। सम्राट भी उसके पास पूछने आते। उनको भी उसके पैर छूने पड़ते। तो दुनिया में पुरोहित सबसे ऊपर था। लेकिन आज! आज वह सबसे ऊपर नहीं है। बीस वर्षों में वैज्ञानिक उस जगह बैठ जाएगा, जहां दो हजार साल पहले पुरोहित था। आज एक वैज्ञानिक की इतनी कीमत है, जिसका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि एक वैज्ञानिक पर सब कुछ निर्भर करता है, सारा भाग्य। एक आदमी जर्मनी से चोरी चला जाए, तो पूरा भाग्य बदल जाता है। एक आदमी रूस से खिसक जाए, तो पूरी किस्मत डांवाडोल हो जाती है। आज अगर अमरीका इतना संपन्न और व्यवस्थित दिख रहा है, तो उसका कारण है। सारी दुनिया के, सारे इतिहास के नब्बे प्रतिशत वैज्ञानिक आज अमरीका में हैं। इसलिए आप कुछ कर नहीं सकते। और एक इंतजाम है कि वैज्ञानिक कहीं भी पैदा हो, खिंचा हुआ, जैसे पानी सागर में चला आता है नदियों का, ऐसा वैज्ञानिक अमरीका खिंच जाता है। कहीं भी पैदा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। पूरा इंतजाम है। वह कहीं भी पैदा हो, वह खिंचता हुआ चला जाएगा।
इंग्लैंड में अभी एक बड़ी कांफ्रेंस चिंतकों की हुई और उन्होंने कहा
कि हमें किसी तरह अपने विचारक को अमरीका जाने से रोकना चाहिए। नहीं हम मर जाएंगे।
लेकिन आप रोक नहीं सकते। आप कैसे रोकेंगे? न आप लेबोरेटरी दे सकते हैं उतनी बड़ी, न आप उतनी तनख्वाह दे सकते हैं, न आप उतना इंतजाम दे सकते हैं, न उतनी स्वतंत्रता दे सकते हैं, न उतनी सुविधा दे सकते हैं। आप रोक भी लेंगे, तो कुछ मतलब का नहीं होने वाला वह आदमी। वह अमरीका ही चला जाएगा।
जो लोग जानते हैं, वे अगर आंख खोल कर देख लें कि वैज्ञानिक इस वक्त कहां इकट्ठा हो रहा है, उसी मुल्क का भविष्य है। बाकी मुल्क तो डूब जाएंगे। क्योंकि आज ताकत उसके हाथ में है।
और आज अमरीका में दिखता भला हो कि राजनीतिज्ञ के हाथ में ताकत है। ज्यादा देर नहीं रहेगी। पीछे से ताकत हट गई है। पीछे से ताकत किसी और के हाथ में चली गई है। उसके इशारे पर सब कुछ हो रहा है। राजनीतिज्ञ लाख कहते रहें कि चांद पर पहुंचने का क्या फायदा है? लोग भूखे मर रहे हैं! वैज्ञानिक को चांद पर जाना है, वह जा रहा है। और राजनीतिज्ञ को उसकी

व्यवस्था जुटानी पड़ रही है। वह कितना ही कहता रहे कि क्या फायदा है चांद पर जाने से! उसको समझ में भी नहीं आता फायदा। उसकी बुद्धि भी इतनी नहीं है कि समझ में आ जाए। लेकिन उसका कोई मूल्य भी नहीं है।
आज अगर अमरीका के पांच बड़े वैज्ञानिक इनकार कर दें कि हम हट जाते हैं,
तो अमरीका अभी रूस के पैरों पर पड़ जाएगा। पांच आदमियों के हाथ में इतनी ताकत है! सारी मिलिट्री खड़ी रह जाएगी, सब खड़ा रह जाएगा। पांच आदमी कह दें कि बस ठीक है।
यूटिलिटी बदल गई। पुरोहित नहीं है अब ऊपर, अब वैज्ञानिक है ऊपर। बीच में क्षत्रिय ऊपर था। तलवार मजबूत थी। उसके हाथ में ताकत थी। वह ऊपर था। जहां उपयोगिता बदलती है, ऊपर-नीचे की सारी व्यवस्था बदल जाती है। आज बुद्धि की कीमत है, क्योंकि बुद्धि से आप ऊपर चढ़ सकते हैं। लेकिन कल अगर ऐसी व्यवस्था हो गई दुनिया में--और हो जाएगी--कि लोगों को काम करने की जरूरत न रह जाए, मशीनें काम कर दें, ऊपर चढ़ने का कोई उपाय न रह जाए, तो आप हैरान होंगे, जो बांसुरी बजा सकते हैं, मछली मार सकते हैं, ताश खेल सकते हैं, वे अचानक टॉप पर आ गए। क्योंकि वह... आप एकदम खड़े रह गए! आप बड़ा बाजार चलाते थे और बड़ी दुकान करते थे, आपको कोई नहीं पूछ रहा है। लोग उसको पूछ रहे हैं, जो ताश खेल सकता है। क्योंकि वह फुर्सत का आदमी कीमती हो जाएगा बीस-पच्चीस साल में। अमरीका में तो वह हालत आ जाएगी कि जो आदमी फुर्सत में आनंदित हो सकता है, वह ऊंचाई पर आ जाएगा। क्योंकि काम करने वाले की कीमत उसी दिन खत्म हो जाएगी, जिस दिन काम करना मशीन के हाथ में चला जाएगा।
अब एक बड़ा वैज्ञानिक है, बड़े गणित कर रहा है। लेकिन एक कंप्यूटर से बड़े गणित नहीं कर सकेगा जल्दी ही। वह छह महीने लगाएगा, कंप्यूटर सेकेंड में कर देगा। उसकी कीमत खतम हो जाएगी। एक वैज्ञानिक के पीछे कौन पड़ेगा? एक कंप्यूटर घर में खरीद कर रख लेगा, अपना काम कर लेगा। उसकी कोई स्थिति नहीं रह जाएगी। तत्काल पूरी स्थिति बदल जाएगी। दूसरे लोग टॉप पर आ जाएंगे, और ही तरह के लोग। मनोरंजन करने वाले!
आज आप देखते हैं कि फिल्म एक्टर अचानक ऊंचाई पर पहुंच गया, जो कभी नहीं था। दुनिया में अभिनय करने वाला आदमी सदा था, लेकिन ऊंचाई पर कभी नहीं था। अप्रतिष्ठित था, प्रतिष्ठा भी नहीं थी उसकी। वह कोई बहुत आदरणीय काम भी न था। लोग उसको अनादरणीय काम समझते थे। लेकिन अचानक सारी दुनिया में फिल्म अभिनेता, फिल्म कलाकार ऊपर पहुंच रहा है। रोज पहुंचता जाएगा। और उसका भविष्य आगे और है। क्योंकि वह मनोरंजन का काम कर रहा है। और जैसे- जैसे लोग खाली होते जाएंगे, वैसे-वैसे उनके मनोरंजन की जरूरत पड़ेगी। जैसे- जैसे लोग खाली होंगे, फुर्सत में होंगे, कोई काम न होगा, तो उनको इंगेज रखने के लिए जरूरत पड़ेगी कि कोई नाच कर उनको, कोई गीत गाकर, कोई कथा, कोई नाटक, कोई व्यवस्था जिससे कि वह उनका खाली समय भरा रहे। वह ऊपर होता चला जाएगा। दुनिया ने कभी भी अभिनेता को ऐसी जगह न दी थी, जैसी बीसवीं सदी ने दी है आकर। और वह बढ़ती जाएगी। नेता बहुत जल्दी पीछे पड़ जाएगा। अभी भी पीछे पड़ गया है। पर क्यों?
यह सब यूटिलिटी की वजह से है। और नहीं तो हंसी-मजाक की बात थी। एक आदमी अगर चेहरा बना लेता था और थोड़ा नाच-कूद लेता था, तो लोग समझते थे, ठीक है। गांव में एकाध-दो आदमी हर गांव में ऐसे होते थे। लेकिन कोई नहीं सोचता था कि यह आदमी चार्ली चैपलिन हो जाएगा कि गांधी जी भी मिलने के लिए उत्सुक हों। चार्ली चैपलिन हो जाएगा यह आदमी! गांव में हंसी-मजाक करता था, ठीक था गांव में। बेकार आदमी हर गांव में होते थे, जो इस तरह के कुछ काम करते थे। और गांव उनको कभी-कभी, बेमौके-मौके उनकी तलाश भी कर लेता था। शादी-विवाह होती, कुछ होता, गांव में जलसा होता, वे आदमी कुछ लोगों को मजा देते थे। बाकी वे प्रतिष्ठित न थे, वह काम कोई अच्छा काम न था। लेकिन इतने जोर से वह प्रतिष्ठित हो जाएगा?
लोगों के काम का मूल्य गिर जाएगा, मनोरंजन का मूल्य बढ़ेगा, तो प्रतिष्ठा बदल जाएगी। कौन ऊपर होगा, कौन नीचे होगा, यह सिर्फ उपयोगिता से होता रहता है। लेकिन स्वभाव से कोई ऊंचा और नीचा नहीं है।

लाओत्से कहता है, स्वभाव से तुम जैसे हो, वैसे हो। और यदि हम इसको स्वीकार कर लें, तो फिर कोई विग्रह नहीं है, फिर कोई कलह नहीं है, फिर कोई संघर्ष नहीं है--भीतर भी और बाहर भी।
"यदि दुर्लभ पदार्थों को महत्व न दिया जाए, तो लोग दस्यु-वृत्ति से भी मुक्त रहें।"
हम निरंतर निंदा करते हैं, लेकिन हम कभी सोचते नहीं। चोर की निंदा करते हैं, डाकू की निंदा करते हैं, बेईमान की निंदा करते हैं, धोखेबाज की निंदा करते हैं, पर कभी सोचते नहीं कि वह धोखेबाज, वह चोर, वह बेईमान किस चीज को पाने के लिए लगा है? और हम, जिस चीज को पाने के लिए वह लगा है, उसका तो हम मूल्य बढ़ाए चले जाते हैं और इसकी निंदा करते चले जाते हैं। बहुत अजीब खेल है! और बहुत जालसाजी है खेल में।
हम एक तरफ आदर दिए चले लाते हैं कोहनूर को और दूसरी तरफ कोहनूर को पाने वाले की जो कोशिश चल रही है, उसको हम कहते हैं कि ठीक नहीं है। और कोहनूर एक है। और तीन-चार अरब आदमी हैं। और सभी कोहनूर चाहते हैं। अब एक ही है कोहनूर, सभी को मिल सकता नहीं। इसलिए नीति-नियम से कोहनूर को खोजना संभव नहीं है। और फिर रोज दिखाई पड़ता है कि जो नीति-नियम की सब व्यवस्था छोड़ कर घुस पड़ता है, वह कोहनूर पा लेता है। जब रोज दिखाई पड़ रहा हो, तो जो लोग क्यू बनाए हुए खड़े हैं, कब तक खड़े रहेंगे?
और जो खड़े रहते हैं क्यू बनाए, पाने वाला उनसे कहता है, तुम बुद्धू हो! तुमसे कहा किसने कि तुम क्यू बनाए खड़े रहो? यह तो हमारी तरकीब है, जिनको क्यू तोड़ कर आगे पहुंचना है, बाकी लोगों को क्यू में लगा देते हैं। उनको हम समझा देते हैं कि तुम क्यू मत तोड़ना, इससे बहुत पाप होता है।
सुना है मैंने, एक अदालत में एक चोर से मजिस्ट्रेट ने पूछा है कि तुम्हें शर्म न आई इतने ईमानदार और भले आदमी को धोखा देते! उस आदमी ने कहा कि महाशय, बेईमान को तो धोखा दिया ही नहीं जा सकता। ईमानदारी तो आधार है। ईमानदार को ही धोखा दिया जा सकता है। बेईमान को तो धोखा दिया नहीं जा सकता। तो उस आदमी ने कहा, हम भी यही चाहते हैं कि प्रचार जारी रहे कि ईमानदार होना अच्छा है, अन्यथा हम धोखा न दे पाएं। ईमानदारी जारी रहे, तो बेईमानी काम कर पाए। नहीं तो बेईमानी काम न कर पाए।
मैक्यावेली या चाणक्य, जो कि लाओत्से से ठीक उलटे लोग हैं। अगर लाओत्से का विपरीत छोर खोजना हो, तो मैक्यावेली और चाणक्य ऐसे लोग हैं। मैक्यावेली कहता है कि लोगों को समझाओ कि भले रहो, क्योंकि तुम्हारी बुराई तभी सफल हो सकती है कि लोग भले रहें। लोगों को समझाओ कि सादगी से जीओ। लोगों को समझाओ कि सरल रहो। लोगों को कहो कि धोखा मत देना। तो तुम्हारा धोखा सफल हो सकता है।
मैक्यावेली ने लिखा है अपनी किताब प्रिंस में, राजाओं को जो उसने सलाह दी है उसमें उसने लिखा है कि राजा ऐसा होना चाहिए, जो नीति की बातें लोगों को समझाए, लेकिन नीति से कभी जीए नहीं। क्योंकि अगर खुद ही तुम नीति से जीने लगे, तो तुम बुद्धू हो! फिर तो फायदा क्या है समझाने का? लेकिन समझाते रहना कि लोग नीति से रहें, तब तुम्हारी अनीति सफल हो सकेगी। और अगर तुम ही जीने लगे, तो कोई और दूसरा तुम पर सफल हो जाएगा। इसलिए इस तरह का धोखा जारी रखना कि नीति अच्छी है। और इस तरह का अपना चेहरा भी बनाए रखना कि तुम बड़े नैतिक हो। लेकिन भूल कर भी इस जाल में खुद मत पड़ जाना, इससे बाहर खड़े रहना और सदा होशियार रहना कि जगत में सफल तो अनीति होती है। लेकिन अनीति की सफलता का आधार नीति का प्रचार है। नहीं तो अनीति सफल नहीं हो सकती।
इसलिए मैक्यावेली कहता है कि खूब नीति का प्रचार करो। बच्चों को स्कूल में, कालेज में शिक्षा दो कि नैतिक रहो। लेकिन खुद इस भूल में मत पड़ जाना। इससे बचे रहना। चेहरा बनाए रखना, तो तुम्हारी सफलता की कोई सीमा न रहेगी।
यह लाओत्से से ठीक उलटा आदमी है। बहुत बुद्धिमान आदमी है। और एक लिहाज से, मैं मानता हूं कि आदमी की शक्ल को ठीक-ठीक पेश कर रहा है, जैसा आदमी है। मैक्यावेली आदमी को गहरे में पहचानता है। और आदमी के संबंध में वह जो कह रहा है, वह बहुत दूर तक सच है। निन्यानबे मौके पर बिल्कुल ही सच

है। और वह कहता है, मैं उनको सलाह नहीं दे रहा हूं, जो अपवाद हैं। मैं तो उनको सलाह दे रहा हूं, जो नियम हैं। जैसा नियम है, वह मैं सलाह दे रहा हूं। एक ओर हम दुर्लभ पदार्थों के लिए मोह बढ़ाए चले जाते हैं। अब कोहनूर पत्थर ही है। और अगर कोई... हम ऐसे समाज की कल्पना कर सकते हैं, एक ऐसे आदिवासी समाज की कल्पना कर सकते हैं, जहां कोहनूर सड़क पर पड़ा रहे और बच्चे खेलें और फेंकते रहें और कोई उसको उठाए न। क्योंकि कोहनूर में कोई इंट्रिंजिक वैल्यू नहीं है, कोई भीतरी मूल्य नहीं है। कोहनूर में जो मूल्य है, वह दिया हुआ मूल्य है, आरोपित मूल्य है। कोहनूर के भीतर कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि न उसको खा सकते हैं, न उसको पी सकते हैं, वह किसी काम पड़ नहीं सकता। वह बिल्कुल बेकाम है। लेकिन उसकी सिर्फ एक ही खूबी है कि वह रेयर है, ज्यादा नहीं है। अकेला है। बहुत थोड़ा है। न्यून है। अगर न्यून चीज को हम ऊपर से मूल्य दे दें, तो दुनिया उसके लिए पागल हो जाएगी। अब यह हालत हो सकती है कि एक आदमी अपना जीवन गंवा दे कोहनूर को पाने में और कोहनूर किसी काम में न आए। लेकिन दुर्लभ पदार्थ को दी गई प्रतिष्ठा, समाज में चोरी, बेईमानी और प्रतियोगिता और संघर्ष पैदा करती है। हमारा सब... । सोना है। उसमें कोई इंट्रिंजिक मूल्य नहीं है। कोई भीतरी कीमत नहीं
है उसमें। क्योंकि जीवन को पूरा करने वाली कोई कीमत नहीं है। अगर एक जानवर के सामने आप एक रोटी का टुकड़ा रख दें और एक सोने की डली रख दें, वह रोटी का टुकड़ा खाकर अपने रास्ते पर हो जाएगा। रोटी के टुकड़े में इंट्रिंजिक वैल्यू है, भीतरी मूल्य है। सोने के टुकड़े में कोई मूल्य नहीं है। और जानवर इतना नासमझ नहीं कि वह सोने की डली मुंह में ले ले और रोटी छोड़ जाए। पर अगर आदमी के सामने यह विकल्प हो, तो हम रोटी छोड़ देंगे और सोने की डली चुन लेंगे।
और मजा यह है कि सोने की डली आदमी को छोड़ कर जमीन पर कोई चुनने को राजी नहीं होगा। क्योंकि सोने की डली में कोई भीतरी मूल्य नहीं है। उसकी कोई भीतरी उपयोगिता नहीं है। उसकी उपयोगिता दी गई है। हमने दी है। हमने माना है। माना हुआ मूल्य है। हमने माना है कि मूल्यवान है, इसलिए मूल्यवान है। अगर हम तय कर लें कि मूल्यवान नहीं है, तो मूल्यवान नहीं रह जाए।
सारी दुनिया में पच्चीसों तरह की मूल्य की व्यवस्थाएं हैं। अलग-अलग चीजें मूल्य रखती हैं, जो आपके ख्याल में न आएं कि यह कैसे, इसमें क्या मूल्य हो सकता है!
अब एक अफ्रीकन औरत है। तो उसको पूरे हाथ पर चूड़ियां पहननी हैं हड्डी की। वह आपकी स्त्री के हाथ को देख कर मानती है कि नंगा है हाथ। जैसे आपकी स्त्री पश्चिम की आज कोई लड़की को देख कर मानती है कि यह क्या बात है, न नाक में कुछ, न कान में कुछ, बिल्कुल नंगापन मालूम पड़ता है, खाली मालूम पड़ता है। दिया हुआ मूल्य है। और अजीब-अजीब दिए हुए मूल्य हैं।
अगर कोई समाज मान लेता है कि स्त्रियों के बड़े बाल सुंदर हैं, तो बड़े बाल सुंदर हो जाते हैं। कोई समाज मान लेता है कि छोटे बाल सुंदर हैं, छोटे बाल सुंदर हो जाते हैं। कोई समाज मान लेता है कि सिर घुटा हुआ सुंदर है, तो ऐसी स्त्रियां हैं जमीन पर अभी भी, जहां घुटा हुआ सिर सुंदर है। आपको भले ही कितनी घबड़ाहट हो, लेकिन जहां है सुंदर, वहां सुंदर है अभी भी। आज भी सैकड़ों कबीले स्त्रियों के सिर घोंट देते हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि जब तक बाल न कटें, तब तक चेहरे का सच-सच सौंदर्य पता नहीं चलता। बाल धोखा देते हैं। असली सुंदर स्त्री बाल घुट कर सुंदर होगी। जो नकली है, वह उखड़ जाएगा, उसका साफ पता चल जाएगा कि गड़बड़ है।
आप मतलब समझ रहे हैं? उनके जांचने का ढंग, वे कहते हैं, असली सुंदर स्त्री बाल घुटे पर भी सुंदर होगी। वह तो स्त्री का सौंदर्य हुआ। और बाल की बनावट से जो सौंदर्य दिख रहा है, उसमें धोखा है। तो जो स्त्री बाल घुटा कर, बिल्कुल सिर घुटे हुए स्थिति में सुंदर होती है, वे कहते हैं, वही सुंदर है। धोखा बिल्कुल नहीं है।
दिए हुए मूल्य हैं। हमें कठिनाई लगती है कि सिर घुटा कैसे सुंदर होगा? हमें कठिनाई लगती है, क्योंकि हमारा एक मूल्य है, वह हमने बांध कर रखा हुआ है।

अफ्रीका में एक कबीला है, जो अपने ओंठ को खींच-खींच कर बड़ा करता है। लकड़ी के टुकड़े ओंठ और दांतों के बीच में फंसा कर ओंठ को लटकाने की कोशिश की जाती है। जितना ओंठ लटक जाता है, उतना सुंदर हो जाता है! तो जो स्त्रियां लटके हुए ओंठ से पैदा होती हैं अफ्रीका में उनका बड़ा मूल्य है। जन्मजात सौंदर्य है! बाकी को कोशिश करके वैसा करना पड़ता है। हमारे मुल्क में अगर कोई लटका हुआ ओंठ पैदा हो जाए, तो कुरूपता है।
कुरूपता क्या है और सौंदर्य क्या है? हमारा दिया हुआ मूल्य है। किस चीज को हम मूल्य दे रहे हैं? हम एक पत्थर को मूल्य देते हैं, वह पत्थर मूल्यवान हो जाता है। धातु को मूल्य देते हैं, धातु मूल्यवान हो जाती है। निश्चित ही लेकिन हम उन्हीं चीजों को मूल्य देते हैं, जो न्यून हैं। क्योंकि न्यून नहीं हैं, तो हम कितना ही मूल्य दें, अगर सभी को उपलब्ध हो सकती हैं तो मूल्यवान नहीं हो पाएंगी। न्यूनता मूल्य बनती है।
लाओत्से कहता है, "यदि दुर्लभ पदार्थों को महत्व न दिया जाए, तो लोग दस्यु-वृत्ति से मुक्त रहें।"
फिर कोई चोर न हो, बेईमान न हो। ध्यान रहे, जिंदगी चलाने के लिए बेईमानी जरूरी नहीं, लेकिन ऊंचा उठने के लिए बेईमानी जरूरी है। मात्र जिंदगी चलाने के लिए ईमानदारी पर्याप्त है। और अगर सभी लोग मात्र जीने के लिए श्रम कर रहे हों, तो बेईमानी की जरूरत ही न पड़े। लेकिन अगर मात्र जीने के ऊपर जाना है, रोटी नहीं, कोहनूर भी पाना है, तो फिर ईमानदारी काफी नहीं है। ईमानदारी से कोहनूर नहीं पाया जा सकेगा, बेईमान होना पड़ेगा।
अब यह मजे की बात है कि जितनी न्यून चीज होगी, उसे पाने के लिए उतना ही ज्यादा बेईमान होना पड़ेगा--जितनी कम! जैसे यहां है, अगर सभी लोगों को अपनी- अपनी जगह बैठना है, तो कोई झगड़े की जरूरत नहीं है। लेकिन अगर यह मेरी कुर्सी पर ही सभी को बैठना है, तो कलह-उपद्रव हो जाएगा। और उसमें यह आशा रखना कि सीधा-सादा आदमी आकर यहां बैठ जाएगा, गलती ख्याल है, बिल्कुल गलती ख्याल है। वह तो जो इस संघर्ष में ज्यादा उपद्रव मचाएगा, वह प्रवेश कर जाएगा।
अगर हम यह तय कर लें कि इसी छोटी सी कुर्सी पर सभी को होना जीवन का लक्ष्य है, तो फिर इस कमरे में कलह और संघर्ष और बेईमानी के सिवाय कुछ भी नहीं होगा। जो यहां बैठा होगा, वह भी बैठ नहीं पाएगा, क्योंकि दस-पच्चीस उसके पांव खींचते रहेंगे। कोई उसे धक्का देता रहेगा। वह भी बैठ नहीं पाएगा यहां, बैठा हुआ मालूम भर होगा। उसको भी लगेगा कि कब गए, कब गए, कुछ पता नहीं है। और जिन रास्तों से वह आया है, उन्हीं रास्तों से दूसरे लोग भी आ रहे होंगे!
लाओत्से, बहुत गहरी दृष्टि है उसकी, वह कहता है, दुर्लभ पदार्थों को महत्व न दिया जाए। दुर्लभ पदार्थों में से अर्थ है, जो भी न्यून है, उसे महत्व न दिया जाए, तो लोग बेईमान न हों, चोर न हों। चोरों को दंड देने से चोरी नहीं रुकेगी, और दस्युओं को मार डालने से दस्यु नहीं मरेंगे, और बेईमानों को नर्क में डालने का डर देने से बेईमानी बंद न होगी। वह कहता है, न्यून पदार्थों को मूल्य न दिया जाए, दुनिया से बेईमानी समाप्त हो जाएगी। जरा सोचें। आपने कभी भी, जब भी बेईमानी की है, चोरी की है, करना चाही है, सोची है, तब आपने महज जीने के लिए नहीं। जीने से कुछ ज्यादा! भला आप कहते हों, अपने मन को समझाते हो कि वह जीवन के लिए अनिवार्य है, लेकिन जीने से कुछ ज्यादा! एक अच्छी कमीज मिल जाए, उसके लिए की होगी। तन ढंकने के लिए बेईमानी आवश्यक नहीं है। और जो आदमी तन ढंकने के लिए ही राजी है, वह बेईमानी नहीं करेगा। और वैसा आदमी किसी दिन अगर तन उघाड़ा भी हो, तो उसके लिए भी राजी हो जाएगा, लेकिन बेईमानी के लिए राजी नहीं होगा। लेकिन अगर तन ढंकना पर्याप्त नहीं है, किस कपड़े से ढंकना, वह जरूरी है, तो फिर अकेली ईमानदारी काफी सिद्ध नहीं होगी।
लाओत्से के इस सूत्र का अर्थ यह है कि जीवन, मात्र जीवन के लिए बेईमानी आवश्यक नहीं है। मान्यता है, जरूरी नहीं है। लेकिन जीवन में जो हम न्यून चीजों को मूल्य देते हैं, उससे सारी बेईमानी का जाल फैलता है। इसलिए ध्यान रखें, जितना पिछड़ा हुआ समाज जिसे हम कहते हैं, वह उतना कम बेईमान होता है। उसका और कोई कारण नहीं है। उसका कुल कारण इतना है कि जिन

चीजों को वह समाज मूल्य देता है, वे सर्वसुलभ हैं। एक आदिवासी समुदाय है। खाना है, एक लंगोटी है, नमक चाहिए, केरोसिन आयल चाहिए, वह सभी को मिल जाता है। कभी इतना फर्क पड़ता है, किसी के घर में दो लालटेन जल जाती हैं, किसी के घर में एक लालटेन जलती है। लेकिन जिसके घर में एक लालटेन जलती है, वह भी कोई इससे परेशान नहीं है। क्योंकि एक लालटेन से उतना ही काम हो जाता है, जितना दो से होता होगा। इससे बड़ी कोई आकांक्षा नहीं है। कुछ ऐसा नहीं है, जिसे पाने के लिए स्वयं को बेचना जरूरी हो।
ध्यान रहे, न्यून चीजों को पाने के लिए स्वयं को बेचना पड़ता है। श्रम
से नहीं मिलेंगी वे। कोई नहीं सोच सकता कि मैं रोज आठ घंटे ईमानदारी से श्रम करूं, तो किसी दिन मेरी पत्नी के गले में कोहनूर का हीरा होगा। यह बुद्ध भी नहीं सोच सकते, महावीर भी नहीं सोच सकते, कोई नहीं सोच सकता। दुनिया का भले से भला आदमी भी यह दावा नहीं कर सकता कि सादगी और सरलता से जीवन चलाते हुए किसी दिन कोहनूर हीरा मेरी पत्नी के गले में पहुंच जाएगा। यह उपाय ही नहीं है कोई कोहनूर के गले में पहुंचने का। कोहनूर तो उसके गले में पहुंचेगा, जो लाखों गलों को काटने को तैयार हो। क्योंकि एक हीरा और चार अरब लोगों के मन में आकांक्षा जग आई हो, तो यह सरल नहीं हो सकती बात। लेकिन हम न्यून चीजों को ही मूल्य देते हैं। हमारा सारा मूल्य का जो ढंग है, वह न्यून को है। जितनी कम है कोई चीज, उतनी कीमती है। हालांकि इसका कोई संबंध नहीं है। हालत तो उलटी होनी चाहिए।
सुना है मैंने कि अब्राहम लिंकन ने एक रात एक स्वप्न देखा। स्वप्न देखा कि बड़ी भीड़ है और लिंकन उस भीड़ से गुजर रहा है। और अनेक लोग कानाफूसी कर रहे हैं कि इसकी शक्ल तो बड़ी साधारण है, इसको अमरीका का प्रेसीडेंट बनाने की क्या जरूरत थी! शक्ल में तो कुछ खास बात नहीं, बहुत साधारण है। बेचैनी होती है लिंकन को। कुछ सूझता नहीं कि क्या करे, क्या न करे! लोग खुसर-फुसर कर रहे हैं। आस-पास ही बात चल रही है और उसे सुनाई पड़ रही है-- सपने में। उसे सुनाई पड़ रही है कि लोग कह रहे हैंः कितनी साधारण शक्ल का आदमी! और इसको अमरीका का प्रेसीडेंट बनाने की क्या जरूरत है! कोई और खूबसूरत आदमी नहीं मिल सका? थोड़ा शक्ल पर तो ख्याल करना था।
वह बड़ा बेचैन है। घबड़ाहट में उसकी नींद खुल जाती है। वह रात भर सो नहीं पाता। सुबह वह अपनी डायरी में लिखता है सपना और अपना उत्तर, जो वह सपने में नहीं दे पाया। वह उत्तर में लिखता है कि मैं मानता हूं कि मुझे चुनने का कुछ कारण है। क्योंकि परमात्मा विशेष शक्लें बहुत कम पैदा करता है; लगता है, पसंद नहीं करता। साधारण शक्लें बहुत तादाद में पैदा करता है; लगता है, पसंद करता है। डायरी में लिखता है कि परमात्मा साधारण शक्लों के लोग इतने ज्यादा पैदा करता है कि मालूम होता है कि उसकी पसंदगी साधारण शक्ल की है। असाधारण शक्ल तो, मालूम होता है, भूल-चूक से पैदा होती है। नहीं तो बहुत ज्यादा पैदा कर सकता है।
यह तो मजाक में लिंकन ने लिखा। लेकिन जो भी बड़ी मात्रा में पैदा हो रहा है, वही जीवन का आधार होना चाहिए। लेकिन हम आधार उलटा बनाते हैं। जैसे नाक-नक्श सब के पास हैं, उनकी कोई कीमत नहीं। नाक-नक्श ऐसा हो, जो सबके पास नहीं, वह कीमती हो जाएगा। फिर हम कलह को पैदा करते हैं। फिर हम संघर्ष को पैदा करते हैं। फिर हम असाधारण की दौड़ शुरू होती है, जिसमें हम सब पागल हो जाते हैं। और उस दौड़ का कोई अंत नहीं है। एक चीज में नहीं, सभी चीजों में। "यदि उसकी ओर, जो स्पृहणीय है, उनका ध्यान आकृष्ट न किया जाए, तो उनके हृदय अनुद्विग्न रहें।"
अगर लोगों के हृदय को हम उसके प्रति आकर्षित न करें, जो स्पृहा के योग्य है, जो पाने के लिए तृष्णा को जगाता है, उसकी ओर आकर्षित न करें, तो लोगों के हृदय अनुद्विग्न रहें; उनके हृदय में अशांति के तूफान न उठें; उनके हृदय शांत, मौन रहें।
लेकिन हम प्रत्येक को कहते हैं कि पाओ उसे, वह जो गौरीशंकर के शिखर पर है। जमीन पर, समतल भूमि पर कहीं कुछ पाने योग्य है! पाओ उसे, जिसे कभी कोई हिलेरी या तेनसिंग पाता है। पहुंचो वहां, गाड़ो झंडा गौरीशंकर पर। तभी कुछ तुम्हारे जीवन का उपयोग और अर्थ है। अन्यथा बेकार तुम जीए।

पर बड़ी हैरानी की बात है, गौरीशंकर पर झंडा गाड़ कर कौन सी सार्थकता जीवन में आ जाती है? और कल जब सभी लोग गौरीशंकर पर उतर सकेंगे हवाई जहाज से, तब आप मत सोचना कि आपके झंडा गाड़ने का कोई मूल्य होगा। न्यून का मूल्य है; न गौरीशंकर का कोई मूल्य है, न झंडा गाड़ने का कोई मूल्य है। जिस दिन सारे लोग गौरीशंकर पर उतर सकेंगे, उस दिन... ।
अभी चांद पर कोई आदमी उतर जाता है, आर्मस्ट्रांग, तो सारी दुनिया के अखबार चर्चा में संलग्न हो जाते हैं। एक क्षण में आदमी वहां पहुंच जाता है, जहां सीधे रास्ते से कोई प्रतिष्ठा पाने की कोशिश करे, तो पचास-साठ वर्ष लगते हैं। अखबार के पहले सुर्खी तक पहुंचने के लिए सीधी मेहनत कोई करता रहे--सीधी वह भी काफी टेढ़ी है--तो पचास-साठ साल लगते हैं। फिर भी सुनिश्चित नहीं है। लेकिन एक आदमी चांद पर उतर जाता है, तो क्षण भर में ऐतिहासिक पुरुष हो जाता है।
लेकिन आप यह मत सोचना कि जिस दिन आप चांद पर उतरेंगे, उस दिन आप भी ऐतिहासिक पुरुष हो जाएंगे। नहीं होंगे। क्योंकि आप उसी दिन उतरेंगे, जिस दिन यात्री उतरने लगेंगे। जापान की एक कंपनी तो उन्नीस सौ पचहत्तर के टिकट बेच रही है। उन्नीस सौ पचहत्तर, एक जनवरी, उसका दावा है कि वह चांद पर यात्रियों को... तो एडवांस बुकिंग उसका उन्होंने शुरू किया हुआ है। लोग ले रहे हैं। मगर वे इस ख्याल में न रहें कि वे आर्मस्ट्रांग हो जाएंगे। क्योंकि मूल्य न चांद का है, न चांद पर उतरने का है, मूल्य तो न्यून का है। आर्मस्ट्रांग पहली दफे उतर रहा है, बस इतना मूल्य है। और तो कोई मूल्य नहीं है।
सब तरफ हम, जो बहुत कम है, उसको कीमत देते हैं। उसको कीमत देकर हम संघर्ष को जन्माते हैं। सारे लोग उसे पाने में लग जाते हैं, पाने की दौड़ में उद्विग्न हो जाते हैं। जो पा लेते हैं, वे पाकर पाते हैं कि कुछ नहीं पाया। क्योंकि चांद पर खड़े हो जाएंगे, तो क्या पाएंगे? कोई जमीन से बहुत भिन्न न पाएंगे। खड़े ही हो जाएंगे, क्या पाएंगे? मिल क्या जाएगा? कौन सी आंतरिक उपलब्धि होगी?
कोई उपलब्धि नहीं हो जाएगी। जो नहीं पहुंच पाएंगे, उनके जीवन नष्ट हो जाएंगे। उनकी उद्विग्नता उनको खा जाएगी कि जब तक चांद पर न पहुंचे, तब तक सब बेकार है। अपनी जिंदगी किसी काम की नहीं। यों ही अकारण, अकारथ पैदा हुए और मरे। चांद पर तो पहुंचे ही नहीं। बचपन से पहला बीज हमारे मन में जो डाला जाता है, वह चांद पर पहुंचने वाला बीज है।
और कठिनाई यह है कि वहां पहुंच जाओ, तो कुछ नहीं मिलता; और न पहुंच पाओ,
तो परेशानी भारी झेलनी पड़ती है। जो पहुंचते हैं, वे भी बड़े संघर्ष और कठिनाई से पहुंचते हैं। जो नहीं पहुंच पाते, वे भी भारी संघर्ष करते हुए जीते और मरते हैं। पहुंच कर कुछ मिलता नहीं, लेकिन पहुंचने की कोशिश में बहुत कुछ खो जाता है। खो जाता है जीवन का अवसर, जिसमें आनंद की किरण फूट सकती थी।
लाओत्से का यह सारा आग्रह इसलिए है--सिर्फ निगेटिव नहीं है, यह सिर्फ इसलिए नहीं है कि आप अनुद्विग्न कैसे न हों, ऐसा नहीं है मतलब--मतलब ऐसा है कि अगर आप उद्विग्न न हों, तो वह जो अनुद्विग्न स्थिति आपकी होगी, वह एक पाजिटिव, एक विधायक आनंद का द्वार खोलेगी। इस दौड़ में पड़ा हुआ, न्यून को पाने की दौड़ में, स्पर्धा में, स्पृहा में पड़ा हुआ व्यक्ति उसे पाने से चूक ही जाता है, जो सभी को मिल सकता था।
शायद हम परमात्मा को इसीलिए नहीं खोजते, क्योंकि संत कहते हैं, वह सब जगह है। वह स्पृहणीय नहीं रह जाता। क्योंकि वे कहते हैं, वह रत्ती-रत्ती, कण-कण में छिपा है। वे कहते हैं, वह चारों तरफ वही है।
बेकार है, अगर चारों तरफ है तो। अगर कहीं एक जगह हो, जहां कोई एक पहुंच सके, तो अभी सारी मनुष्यता दौड़ने लग जाए कि ठीक है, हम ईश्वर को पाकर रहेंगे!
तो संत अपने हाथ से ही उसको लोगों की स्पृहा के बाहर कर देते हैं। कहते हैं, सब जगह है। वही-वही है, जहां देखो वही है, जहां पाओ वही है। वे कहते हैं, न पाओ, तो भी वही मौजूद है। तुम जानो तो, न जानो तो, वह तुम्हें घेरे हुए है, जैसे मछली को सागर घेरे है। तो फिर मन हमारा होता है कि ऐसी

बेकार चीज को पाने से क्या होगा! यानी ऐसी बेकार चीज पाने योग्य ही नहीं रह गई, जो सब तरफ है, हर कहीं है, पाओ तो, न पाओ तो, मिली हुई है। सोओ तो, जागो तो, खोते ही नहीं। भागो, कहीं भी जाओ, वह तुम्हारे साथ है।
तो हम कहते हैं, ठीक है, अब जो साथ ही है तो रहो। हम न खोजेंगे।
हम तो उसे खोजने जाएंगे, जो सब जगह नहीं है। जो कहीं-कहीं है, मुश्किल
से है, और कभी किसी को मिलती है। और जिसको मिलती है, धन्यभाग उसके, इतिहास में नाम अमर हो जाता है। इस भगवान को पाकर क्या करेंगे?
अगर पा भी लिया, तो बुद्ध कहेंगे, इसमें क्या किया? वह मिला ही हुआ था। अगर पा भी लिया, तो महावीर कहेंगे, इसमें क्या हुआ? वह तो स्वभाव था। अगर पा भी लिया, तो लाओत्से कहेंगे, कुछ अखबार में नाम छपवाने की जरूरत नहीं है। हजारों को मिल चुका है, हजारों को मिलता रहेगा। कुछ गौरव मत करो। कुछ दीवाने मत हो जाओ। कुछ झंडा गाड़ने का कारण नहीं है। यह मिलता ही रहा है। और जिनको नहीं मिला है, उनके पास भी है, पता भर नहीं है उनको। पता चल जाएगा, उनको भी मिल जाएगा।
तो ऐसी चीज स्पृहा नहीं बनती। परमात्मा अगर हमारी खोज नहीं बनता, तो उसका कारण है कि वह हमारी स्पृहा नहीं बनता है। हमारे मन में कहीं ऐसी उद्विग्नता पैदा नहीं होती उसके पाने के लिए कि दूसरे से छीन कर पा लेंगे। एक और खराबी है, कि मजा तो तभी है किसी चीज को पाने का कि दूसरे से छीन कर पा लें। नहीं तो कोई मजा नहीं है। अब परमात्मा ऐसी चीज है कि आप कितना ही पा लो, किसी का कुछ नहीं छिनेगा। ऐसा नहीं है कि आप पा लोगे तो मुझे पाने में कुछ दिक्कत पड़ेगी, कि आपने पा लिया, तो अब मैं कैसे पाऊं? कि जब आप ही पा चुके, तो अब बात खतम हो गई।
नहीं, आप कितना ही पा लो, मुझे पाने के लिए उतना ही खुला रहेगा। आपका कोई कब्जा, मुझसे छीनने वाला नहीं है। आपका पा लेना, कुछ मेरे अधिकार पर चोट नहीं है। आप कितना ही पाओ, इससे मेरे पाने में फर्क नहीं पड़ता। संत कहते हैं, अनंत है वह। कोई कितना ही पा ले, वह सदा उतना ही शेष है।
और भी प्राण निकल जाते हैं कि बेकार ही है, कोई स्पर्धा ही नहीं है। किसी से छीनने का कोई मजा नहीं है।
छीनने का सुख है! जब हमें छीनने में सुख आता है, तो ध्यान रखना, वस्तु में सुख नहीं होता, छीनने में सुख होता है। दूसरे को दुख देने में सुख होता है।
अचानक ऐसा हो कि कोहनूर घर-घर में बरस जाए, सड़क-सड़क पर गिर जाए, जहां भी निकलें, पैर में वही पड़े! तो जो महारानी उसको पहने हुए है, जल्दी निकाल कर फेंक दे, क्योंकि बेकार है। क्योंकि भिखमंगे पैरों में डाल रहे हैं उसको, उसका कोई मतलब न रहा। जिस पर कोहनूर है, वह उसको छिपा दे फौरन कि किसी को पता न चल जाए कि मैंने गले में पहना था। क्योंकि वह गले में पहनने का सुख ही यह था कि छीना था। लाखों गले देख कर पीड़ित हो जाएं कि नहीं है उनके पास, और है किसी के पास, वही उसका सुख है।
स्पृहा हम जगाते हैं। और स्पृहा जगाई जा सकती है न्यून के लिए।
इस संबंध में एक बात समझ लेनी जरूरी है कि जैसा मैंने कहा कि लाओत्से
से पहले सूत्र में नीतिशास्त्री और साधु-महात्मा, न्यायविद विरोध करेंगे। ऐसा इस दूसरे सूत्र में इकोनॉमिस्ट, अर्थशास्त्री विरोध करेंगे।
अगर ठीक से हम समझें, तो अर्थशास्त्री कहते हैं कि इकोनॉमिक्स का अर्थ ही यह है कि वह न्यून के लिए संघर्ष है; वह जो कम है, उसके लिए संघर्ष है। असल में, वह उसी चीज की इकोनॉमिक वैल्यू है, जो न्यून है।
इसलिए हवा का कोई मूल्य नहीं है। गांव में पानी का कोई मूल्य नहीं है। थोड़े ही जमाने पहले जमीन का कोई मूल्य नहीं था। थोड़े ही जमाने बाद हवा का मूल्य हो जाएगा। क्योंकि हवा कम पड़ती जाती है। उसमें आक्सीजन क्षीण होती चली जाती है। लोग बढ़ते चले जाते हैं। इतनी भीड़ बढ़ती जाती है कि कल पचास साल बाद जिनकी क्षमता होगी, वे ही अपनी-अपनी आक्सीजन का बक्सा अपने साथ लटका कर घूमेंगे। जो गरीब होंगे, वे देखेंगे कि ठीक है, जो मिल जाए हवा में इधर-उधर, उससे काम चलाएंगे। भीख मांगने की हालत हो जाएगी।
कोई आश्चर्य नहीं है कि पचास साल बाद कोई आदमी आपके दरवाजे पर आकर कहे
कि थोड़ी आक्सीजन मिल जाए! बस जरा सी अपनी आक्सीजन के डिब्बे पर मुझे भी

मुंह रख लेने दें, बहुत तड़प रहा हूं। क्योंकि न्यूयार्क की हवा में इतनी आक्सीजन कम है अभी भी कि वैज्ञानिक कहते हैं, हम चकित हैं कि आदमी जिंदा कैसे है! और विषाक्त गैसेस की इतनी मात्रा हो गई है कि डर है कि यह मात्रा में ज्यादा देर जीया नहीं जा सकेगा।
तो कल हवा की कीमत हो जाएगी। पानी की कभी कीमत न थी। अभी एक पचास साल पहले गांव में दूध की कोई कीमत न थी। न्यून होती है चीज और कीमत हो जाती है। सारा अर्थशास्त्र न्यून पर खड़ा होता है। अगर ठीक समझें, तो वैल्यू का मतलब ही होता है, वह जो न्यून है, उसकी कीमत। कीमत का मतलब, कितनी न्यून है! जितनी न्यून हो जाएगी, उतनी कीमत बढ़ जाएगी। जितनी ज्यादा हो जाएगी, उतनी कीमत कम हो जाएगी। इसलिए उन्नीस सौ तीस में अमरीका को अपनी लाखों गठरियां कपड़े की समुद्र में फेंक देनी पड़ीं। क्योंकि कपड़ा हो गया ज्यादा और बाजार में कीमत इतनी गिर जाएगी कि मर जाएंगे। तो उसको सागर में फेंक दिया, ताकि बाजार में कपड़ा अधिक न हो जाए। अधिक हो जाए, तो कीमत खतम हो जाए। बाजार में कीमत बनी रहे, तो कपड़े को सागर में डुबा दिया। और जमीन पर लाखों लोग नंगे हैं। लेकिन इकोनॉमिक्स की धुरी नहीं चलती, वह टूट जाए फौरन।

लाओत्से का बस चले, तो दुनिया में कोई इकोनॉमिक्स न हो। लाओत्से का बस चले, तो दुनिया में अर्थशास्त्र नहीं होगा। क्योंकि लाओत्से यह कहता है, न्यून को कीमत ही क्यों देते हो? जो ज्यादा है, उस पर ध्यान दो। जो पर्याप्त है, उस पर ध्यान दो। जो सबको मिल सकती है, उसको आदरणीय बनाओ। जो कम को मिल सकती है, उसकी बात छोड़ दो। कोई कोहनूर लटकाए फिरे, तो लटकाए फिरने दो। खबर कर दो कि यह आदमी पागल हो गया है। यह देखते हो, कितना बड़ा पत्थर लगाए हुए है गले में! स्कूल-स्कूल, घर-घर में बच्चों को समझा दो कि यह आदमी पत्थर लटकाता है, इसका दिमाग खराब है। तो हम इस जगत को अनुद्विग्न, मनुष्य के चित्त को अशांति के पार एक शांति के अलग जगत में ले जा सकते हैं। लाओत्से ने कहा है कि मैंने सुना है कि मेरे बाप-दादों के जमाने में नदी के उस पार हमें रात में कुत्तों की आवाज सुनाई पड़ती थी। उस तरफ कोई गांव है। कभी-कभी खुला आकाश होता, तो उस गांव के मकानों में जलते हुए चूल्हों का धुआं भी दिखाई पड़ता था। लेकिन सुना है मैंने कि कोई कभी नदी के पार जाकर उस गांव को देखने नहीं गया कि वहां रहता कौन है। लोग इतने शांत थे कि व्यर्थ की अशांतियां नहीं लेते थे। अब इससे क्या मतलब है, कोई रहता होगा! कुत्तों की आवाज सुनाई पड़ती थी रात, तो मालूम होता था, कोई रहता होगा। कभी-कभी धुआं दिखाई पड़ता था मकानों का उठता आकाश में, तो लगता था, कोई रहता होगा। लेकिन कोई नदी पार करके जाने के लिए फिक्र में नहीं पड़ा कि जाकर देख आए, कौन रहता है।
और हमें चैन न मिलेगी, जब तक हम सारे ग्रह-उपग्रह पर न पहुंच जाएं कि कौन रहता है; कि कोई नहीं रहता, तो भी पता लगा लें कि कोई रहता तो नहीं है! गहरे में यह सारी की सारी अनुद्विग्न या उद्विग्न स्थितियों पर निर्भर बात है। उद्विग्न जो है, वह भागा हुआ रहेगा, कोई भी बहाने से भागा हुआ रहेगा। जो अनुद्विग्न है, वह किसी भी बहाने से बैठा हुआ रहेगा। किसी भी बहाने से शांत रहेगा, थिर रहेगा। उसमें व्यर्थ के बवाल नहीं उठेंगे, और व्यर्थ के भंवर नहीं उठेंगे, और व्यर्थ के तूफानों को वह आकर्षित नहीं करेगा, और व्यर्थ की जिज्ञासाओं में नहीं जाएगा।
सारा शिक्षा का आधार लाओत्से के हिसाब से और होना चाहिएः स्पृहा- मुक्त! नॉन-एंबीशस! महत्वाकांक्षा नहीं। किसी से गणित बन जाती है, तो ठीक है। और नहीं बन जाती है, तो भी ठीक है। उतना ही ठीक है। जिससे गणित नहीं बन जाती, उससे क्या बन सकता है, इसकी फिक्र करो, बजाय यह फिक्र करने के कि उससे गणित बने ही। उसको नष्ट मत करो। उससे क्या बन सकता है, इसकी फिक्र करो। कुछ जरूर बन सकता होगा। कुछ तो बन ही सकता होगा।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दुकान पर काम कर रहा है। लेकिन झपकी लग-लग जाती
है उसको। सब काउंटरों पर बिठा कर परेशान हो गया मालिक उसे। वह जहां भी बैठता है, वहीं सो जाता है। आखिर मालिक ने कहा कि मुल्ला, क्या करें हम? तुम्हें कहां बिठाएं? तुम्हीं कुछ सुझाव दो।

उसने कहा कि वह जो पाजामा का काउंटर है, वहां मुझे बिठा दें। और एक तख्ती मेरे गले पर लगा दें कि हमारे पाजामे इतने सुखद हैं कि बेचने वाला भी सो जाता है। अनिद्रा का उपाय है हमारा पाजामा! और तो अब मैं क्या सलाह दे सकता हूं, मुल्ला ने कहा।
मुल्ला ने कहा कि मैं क्या करूं? सवाल नींद नहीं है, सवाल यह है कि जागने योग्य कोई उत्तेजना नहीं है।
आप ऐसे ही थोड़े जागे हुए हैं। अकारण थोड़े ही जागे हुए हैं। और रात अकारण, ऐसा तो नहीं है कि अकारण नहीं सो पाते हैं। वह नसरुद्दीन कह रहा है, असली बात यह है कि सड़क पर कौन गुजर रहा है, देखने की कोई उत्तेजना नहीं है। कौन भीतर गया, कौन बाहर गया, इसकी उत्तेजना नहीं है।
वह कहा करता था कि एक आदमी ने मेरे खीसे में हाथ डाल दिया, तो भी मैंने हाथ बढ़ा कर नहीं देखा कि यह क्या कर रहा है। क्योंकि मैंने कहा कि अगर खीसे में कुछ होगा, तो पहले ही कोई निकाल चुका होगा। मैंने कहा कि इतनी देर तक कहां बचेगा! अगर खीसे में कुछ होगा, तो अब तक कहां बचेगा! कोई निकाल ही चुका होगा।
रात एक चोर उसके घर में घुस गया। उसकी पत्नी ने उसे उठाया है कि उठो,
घर में चोर है! तो मुल्ला ने कहा, उसको गलती अपनी खुद ही खोजने दो। हम क्यों साथ दें? उसकी गलती वह खुद ही खोज ले।
एक बार और उसके घर में चोर घुसा है, तो वह आलमारी में छिप गया। चोर सब मकान खोज डाले, कुछ न मिला। मकान का मालिक भी नहीं मिला। दरवाजा भी अंदर से बंद है, मालिक तो कम से कम होना ही चाहिए। जब कुछ भी न मिला, तो वह मालिक में उत्सुक हो गया कि इस आदमी को भी तो देखो, इस मकान में रहता है, कुछ भी नहीं है। तो सब जगह खोजा तो एक आलमारी का दरवाजा खोला, तो वह पीठ किए हुए, दीवार की तरफ मुंह किए हुए खड़ा था। उन्होंने कहा, अरे! तुम यहां क्या कर रहे हो? तो उसने कहा, मैं सिर्फ शर्म के मारे छिपा हूं कि तुम क्या कहोगे कि घर में कुछ भी नहीं है!
नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे इसलिए नींद आ जाती है कि जगाने का कोई कारण नहीं मालूम पड़ता। मैं किसलिए जगा रहूं? और अगर आपको रात नींद नहीं आती, तो उसका कारण यह है कि रात भी आपको कारण बने रहते हैं, जो जगाए रखते हैं। कैसे सो जाएं! रास्ता दिखाई ही पड़ता रहता है। रास्ते पर चलते लोग दिखाई ही पड़ते रहते हैं। दूकान पर आते ग्राहक दिखाई ही पड़ते रहते हैं। दिन में दी गई गालियां, की गई बातचीत सुनाई ही पड़ती रहती है। वह जारी ही रहती है उत्तेजना, इसलिए नहीं सो पाते। और मुल्ला ने कहा कि मैं क्या कर सकता हूं! कोई उत्तेजना नहीं, जो मुझे जगाए। नींद आ ही जाती है।
यह जो लाओत्से कह रहा है जिस अनुद्विग्न चित्त की बात, बिल्कुल दूसरा
ही आदमी है वह जो अनुद्विग्न है। कुछ पाने की दौड़ नहीं है। जो मिला है, काफी है। जो मिला है, काफी से ज्यादा है। जो मिला है, वह धन्य है उसे पाकर। जो मिला है, वह कृतार्थ है। जो मिला है, वह अनुगृहीत है। जो मिला है, वह बहुत है, जरूरत से ज्यादा है। जो नहीं मिला है, वह उसके मन की दौड़ नहीं। जो नहीं मिला है, वह उसकी स्पृहा नहीं, वह उसकी मांग नहीं, वह उसकी अपेक्षा नहीं। जो नहीं मिला है, वह नहीं मिला है। उसकी बात ही नहीं है। वह उसके चित्त का हिस्सा ही नहीं है।
लेकिन हमारे चित्त का ढंग और है। जो मिला है, उसके प्रति हम अंधे हैं।
और जो नहीं मिला है, उसके प्रति बहुत सजग हैं। जो मिला है, उसे हम भूल जाते हैं। जो नहीं मिला है, उसे हम याद रखते हैं। अगर मेरे पास आप सात दिन रहे, और सात दिन मैं कितना ही आपको दूं और एक दिन तेज आंख से देख दूं; सात दिन जो दिया, वह भूल जाएगा; वह जो तेज आंख है, फिर जिंदगी भर न भूलेगी। कोई व्यक्ति आपको कितना ही प्रेम दे वर्षों तक और एक दिन चूक जाए, वे वर्ष बेकार हो गए। जो नहीं मिला उस दिन, वह भारी कीमती हो गया। जो नहीं मिलता, जो नहीं है, हम उसी को ही पकड़ पाते हैं। हमारी सारी की सारी अटेंशन, सारा ध्यान अभाव पर लगा हुआ है।
मेरे दो हाथ हैं, दो पैर हैं, इन पर मेरा ध्यान नहीं है। एक अंगुली मेरी टूट जाए, बस मेरी जिंदगी बेकार हुई। हालांकि उसके होने से, जब तक वह थी, मुझे कोई मतलब न था। मैंने उसका कोई उपयोग न किया था। अंगुली थी मेरे

पास, तब मैंने कभी भगवान को धन्यवाद न दिया था कि यह अंगुली आपने दी है। कोई प्रयोजन न था। जब तक थी, तब तक पता ही न चला। जब न रही, टूट गई, तब से मुझे पता चला। और तब से दुखी हूं, और तब से परेशान हूं, और तब से निंदा कर रहा हूं। तब से भगवान से विवाद चल रहा है कि मेरी अंगुली तोड़ कर बहुत अन्याय हो गया। देकर कभी कोई धन्यता न हुई थी; लेकर बड़ा अन्याय हो गया है। और थी, तब मैंने उससे कुछ किया न था। उस अंगुली से मैंने कोई चित्र न बनाए थे। न कोई वीणा पर संगीत छेड़ा था। न उस अंगुली से किसी गिरते को सहारा दिया था। उस अंगुली से मैंने कुछ भी न किया था। वह थी या न थी, बराबर थी। मुझे पता ही न था उसके होने का। वह तो जिस दिन नहीं रही, उस दिन मैंने जाना कि बड़ा अभाव हो गया। और मजे की बात है, जिस अंगुली से मैंने कभी कुछ न किया था, उसके न होने से मैं परेशान क्यों हूं? क्योंकि कुछ भी तो खतम नहीं हो रहा, कुछ भी तो बंद नहीं हो रहा, कुछ तो छिन नहीं रहा है। लेकिन हमारे मन का ढंग यह हैः जो नहीं है, वह हमें दिखाई पड़ता है बहुत भारी होकर; और जो है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता।
लाओत्से कहता है, स्पृहा से मुक्त अगर हम चित्त निर्मित करें; यदि उसकी ओर, जो स्पृहणीय है, उनका ध्यान आकृष्ट न किया जाए, तो उनके हृदय अनुद्विग्न रहें।
हम आकृष्ट कर रहे हैं। पुराने जमाने में सारी दुनिया में जिनके पास
धन होता, समाज का आग्रह होता था, धन का प्रदर्शन न करें। धन होना काफी है। कृपा करके उसका प्रदर्शन न करें, उसे दिखाते न फिरें, उसे उछालते न फिरें। क्योंकि उसका उछालना, उसका दिखाना न मालूम कितने लोगों के उद्विग्न होने का कारण हो जाए। इसलिए धनी आदमी का एक ही सबूत था, वह जो आदमी धन को उछालता नहीं फिरता था, वह सबूत था कि वह आदमी धनी है। गरीब ही धन को उछालते थे। जिनके पास कुछ नहीं था, वे कुछ दिखाना चाहते थे कि उनके पास कुछ है। जिनके पास सब था, वे ऐसे चुप होते थे, जैसे नहीं है।
एक सूफी कहानी मैंने सुनी है। सम्राटों की एक परंपरा में एक बेटा भिखारी है। कई पीढ़ियों से भीख मांगी जा रही है। लेकिन परंपरा सम्राटों की है। घर में कथा है कि कभी बाप-दादे किसी पीढ़ी में बड़े सम्राट थे, बड़े खजाने थे उनके पास। पर यह कुछ पता नहीं चलता कि वे खजाने कहां खो गए। कभी वे हारे, इसका पता नहीं चलता। कभी लूटे गए, इसका पता नहीं चलता। फिर यह भिखमंगापन कैसे आया? हुआ क्या? कुछ पता नहीं चलता। पीढ़ियों तक पता नहीं चला। फिर एक पीढ़ी में एक दिन अचानक एक फकीर घर पर आया और उसने उस घर के जवान लड़के को कहा कि अब तुम वह आदमी हो, जिसको खजानों की खबर दी जा सकती है। वी आर दि गार्जियंस!
उस युवक ने कहा, तुम कौन से गार्जियंस हो, हमें कुछ पता नहीं।
हमारे पास तुम्हारे बाप-दादे छोड़ गए हैं। हमारे पास, मतलब हमारे गुरु
के पास, उनके गुरु के पास, फकीरों के पास छोड़ गए हैं कि जब हमारे घर में ऐसा आदमी पैदा हो, जो धन को प्रदर्शन करने में उत्सुक न हो, तब यह खजाना वापस सौंप देना। तो तुम वह आदमी हो। मैं तुम्हें खजाना सौंपने आया हूं।
उस युवक ने कहा, लेकिन मुझे कुछ सोचने का मौका दें।
उस फकीर ने कहा कि बिल्कुल ठीक, तुम्हीं वह आदमी हो, जिसकी तलाश थी।
धन के खजाने की कोई खबर देता, तो आप बैठे रहते? आप खड़े हो गए होते--कहां है? भीख मांग रहा था परिवार। उस युवक ने कहा, सोचने का मौका दें। जिम्मेवारी भारी है। और गरीबी में जीना उतना जटिल नहीं, धन पास हो और बिना प्रदर्शन किए रह जाना बहुत मुश्किल है। थोड़ा सोचने का मौका दें। ऐसी जल्दी भी क्या है? इतने दिन से आप सम्हाल ही रहे हैं, और थोड़े दिन सम्हालें। उस फकीर ने कहा, उठो! क्योंकि हम भी कब तक सम्हालते रहें? और तुम्हीं वह आदमी हो, क्योंकि लक्षण पूरे हो गए। क्योंकि हमारे पास जो दस्तावेज है उसमें कहा गया है कि जब भी कोई परिवार का हमारा आदमी कहे, सोचने का मौका दो, उसे तुम दे आना। हम हर पीढ़ी में आते रहे। लेकिन जिससे भी हमने पूछा, वह उठ कर खड़ा हो गया।
वह धन उसे सौंप दिया गया। सारे गांव में, आस-पास, दूर-दूर तक खबर पहुंच
गई कि धन वापस मिल गया है। लेकिन भीख मांगनी तो जारी रही। सम्राट ने बुलाया उस युवक को और कहा कि पागल तो नहीं हो? या तो अफवाह है यह! हमने सुना

है कि तुम्हें पुश्तैनी धन वापस मिल गया है। खजाना सौंप दिया गया है। फिर यह भीख क्यों मांग रहे हो? उस युवक ने कहा कि पहले तो भीख मांगना एक मजबूरी थी, अब एक कर्तव्य है। नाउ इट इ.ज ए ड्यूटी। क्योंकि इसी शर्त पर वह धन मुझे सौंपा गया है कि उसका प्रदर्शन न हो। और आज मैं घर बैठ जाऊं और भीख मांगने न जाऊं, तो इससे बड़ा प्रदर्शन और क्या होगा? उसने कहा कि यानी मामला ही खतम हो गया, और प्रदर्शन और ज्यादा क्या हो सकता है? लोग अगर मुझे घर में बैठा देख लें कि आज भीख मांगने नहीं गया--क्योंकि रोज जो मिलता है, उसी से तो काम चलता है--तो प्रदर्शन तो हो जाएगा।
धन जब प्रदर्शन बनता है, तो स्पृहा पैदा होती है। लेकिन धन तो हम कमाते ही इसलिए हैं कि प्रदर्शन कर सकें। अगर प्रदर्शन ही न करना हो, तो कमाने की जरूरत क्या है? जो वस्त्र पहनने ही न हों, उनको बनवाने की क्या जरूरत है? और जिन मकानों में रहना ही न हो, उनको खड़ा क्या करना है? जिसका कभी प्रदर्शन ही न करना हो, उसको रखने का भी क्या उपयोग है? हम कहेंगे ऐसा। लेकिन लाओत्से कहता है कि अगर हम लोगों के ध्यान आकर्षित न करें, तो लोग परम शांति में जी सकते हैं। और ये जो एक्झिबीशनिस्ट, प्रदर्शनकारी हैं, रुग्ण हैं। क्योंकि जो तुम्हारे पास है, उसे भोगना तो स्वस्थ है, उसे दिखाना रुग्ण है। इसे थोड़ा समझ लें। जो मेरे पास है, उसे अनुग्रहपूर्वक भोगना तो स्वस्थ है; लेकिन उसे दिखाए फिरना रुग्ण है, बीमार है। असल में, दिखाता वही फिरता है, जो भोग नहीं पाता। जो भोग लेता है, उसे दिखाने की जरूरत नहीं रह जाती। जिस चीज को आप भोग सकते हैं, उसे आप दिखाते नहीं फिरते। जिसको आप भोग नहीं सकते, उसे आप दिखाते फिरते हैं। सभी तलों पर एक्झिबीशन जो है... ।
मनोविज्ञान में एक्झिबीशनिस्ट एक खास तरह के लोगों को कहा जाता है। ऐसे लोग, जो कहीं भी, मौके-बेमौके अपनी जननेंद्रियों को दूसरों को दिखा दें, उनको एक्झिबीशनिस्ट कहते हैं वे। बड़ा वर्ग है दुनिया में एक्झिबीशनिस्ट का। व्यवस्था से भी चलता है वह वर्ग, अव्यवस्था से भी चलता है। व्यवस्था से चलता है, तब तो हम एतराज नहीं उठाते, क्योंकि वह व्यवस्था के भीतर चलता है। जब अव्यवस्था से कोई करता है, तब हम एतराज उठाते हैं। पर बड़ी हैरानी मनोवैज्ञानिकों को थी कि इससे क्या प्रयोजन है कि एक आदमी अचानक, आप सड़क से चले जा रहे हैं, और आदमी नंगा खड़ा होकर आपको अपनी नग्नता दिखा दे! इससे क्या मिलेगा?
पर जैसे-जैसे इसकी खोज चलती है, वैसे-वैसे पता चलता है कि वही आदमी इस तरह के प्रदर्शन में संलग्न होता है, जिसने कभी यौन का कोई सुख नहीं पाया। जिसने यौन को कभी भोगा नहीं, वह एक्झिबीशनिस्ट हो जाता है। अब वह दिखाने का ही सुख ले रहा है, हालांकि दिखाने से कोई सुख मिलने का प्रयोजन नहीं है। कोई अर्थ नहीं है। आप अपने शरीर को नग्न किसी को दिखा दें, इससे कोई मतलब नहीं है। न आपको कुछ मिलता, न दूसरे को कुछ मिलता। न कोई प्रयोजन हल होता है। लेकिन इस दिखाने वाले का कोई न कोई प्रयोजन हल होता है।
और आप हैरान होंगे जान कर कि एक्झिबीशनिस्ट ने क्या-क्या तरकीबें निकाली हैं! यूनान में पुरुषों ने बहुत चुस्त कपड़े निकाले थे कि उनकी जननेंद्रिय अलग दिखाई पड़ती रहे। उतने ही से तृप्ति नहीं मिली एक्झिबीशनिस्ट को, तो उन्होंने चमड़े की जननेंद्रियां बनवा ली थीं, जिनको कि वे कपड़ों के अंदर पहने रखते थे। वे दिखाई पड़ें।
हमें आज हैरानी मालूम होगी। लेकिन स्त्रियां सारी दुनिया में यही, अपने स्तनों के साथ यही कर रही हैं। लेकिन वह हमारी व्यवस्था में है, इसलिए हमको दिखाई नहीं पड़ता। ऐसा ही यूनान में दो हजार साल पहले किसी को दिखाई नहीं पड़ता था। अब हमको समझ में आता है, क्या पागलपन की बात थी! अभी जब एथेंस के म्यूजियम में रखी हैं चमड़े की जननेंद्रियां, तो लोग चकित होते हैं कि कैसे पागल थे! इसकी क्या जरूरत थी? लेकिन दो हजार साल बाद--शायद दो हजार साल भी ज्यादा देर है, और जल्दी--स्त्रियां भी अपने स्तनों को दिखाने का जो-जो इंतजाम सारी दुनिया में किए हुए हैं, वह भी एक्झिबीशन में, म्यूजियम में रखा होगा। और आने वाली भविष्य की स्त्रियां हैरान होंगी कि स्तनों को इतना दिखाने की क्या जरूरत थी? क्या प्रयोजन था?

कोई भी प्रयोजन नहीं है। लेकिन कहीं कोई बात है, कहीं कुछ मामला है।
और वह मामला यह है कि जिस चीज को हम भोगने में असमर्थ होते चले जाते हैं, उसको हम प्रदर्शन करने लगते हैं। जिस चीज को हम भोग लेते हैं, उसको हम प्रदर्शन नहीं करते। जो आदमी बहुत मजे से, आनंद से खाना खा लेता है और पचा लेता है, वह चर्चा नहीं करता फिरता कि उसके घर में आज क्या बना। वह पार्टियां नहीं देता कि लोग देखें।
नसरुद्दीन एक दफा सम्राट के घर निमंत्रित हुआ है। सम्राट का नियम है
कि वह हर वर्ष अपने जन्मदिन पर देश के सभी खास-खास लोगों को बुलाता है। नसरुद्दीन भी बुलाया गया, पहली दफा। कोई पांच सौ मेहमान हैं। थालियां सजती जाती हैं, लेकिन खाना कुछ शुरू नहीं होता। थालियां लगती चली जाती हैं एक से एक सुंदर। और ऐसी प्रचलित बात है कि वह सम्राट हर बार नई से नई चीजें बनवाता है। सुगंध से भर गया है हॉल। भोजन आते जा रहे हैं, लगते जा रहे हैं। नसरुद्दीन बड़ा बेचैन है। उसकी भूख काबू के बाहर होती चली जा रही है। आखिर वह चिल्लाया कि भाइयो, यह हो क्या रहा है? भोजन देखने के लिए है या करने के लिए?
उसके पड़ोस के लोगों ने कहा कि ठहरो, तुम अशिष्टता कर रहे हो। इससे पता चलता है कि तुम किसी भूखे घर से आते हो। सब लग जाने दो, शांति से देखो, दूसरी बातें करो। इसकी तरफ तो देखो ही मत। खाने के वक्त भी पूरा मत खा लेना, छोड़ देना। नहीं तो लोग समझेंगे, तुम गरीब आदमी हो, तुम्हारे पास खाने को नहीं है।
नसरुद्दीन ने कहा, यह बताना बेहतर है कि मेरे पास भोजन है या यह बताना
कि मेरे पास भूख है!
भोजन तो वह आदमी बताता है, जिसके पास भूख नहीं रह जाती। जब भूख नहीं रह जाती, तब भोजन दिखाना पड़ता है। जब तक भूख है, तब तक भोजन दिखाया नहीं जाता, किया जाता है। तो जो हम प्रदर्शन करते हैं, वह सब उन्हीं-उन्हीं चीजों का प्रदर्शन है, जिन्हें हम बिल्कुल नहीं भोग पाते। रुग्ण चित्त का लक्षण है।
लाओत्से कहता है, ध्यान आकृष्ट न किया जाए लोगों का उस तरफ, जो न्यून है, जो व्यर्थ है, जिसका कोई आंतरिक मूल्य नहीं, तो लोग उद्विग्न न हों, अनुद्विग्न रहें।
और लोग अनुद्विग्न रह जाएं, तो उनके जीवन में दूसरी ही यात्रा शुरू हो जाती है। उद्विग्नता ले जाती है संसार में, अनुद्विग्नता ले जाती है परमात्मा में। उद्विग्नता बनती है यात्रा संसार की, संताप की; अनुद्विग्नता बनती है यात्रा मुक्ति की, मोक्ष की, सत्य की।
दूसरे सूत्र पर कल बात करेंगे।

ताओ उपनिषद, भाग एक
दसवां प्रवचन

भरे पेट और खाली मन का राज--ताओ

Chapter 3 : Sutra 2

Therefore, the Sage, in exercise of his Government empties their minds, fills their bellies, weakens their wills and strengthens their bones.

अध्याय 3 : सूत्र 2

इसलिए संत और प्रबुद्ध अपनी शासन व्यवस्था में उनके
उदरों को भरते हैं, किंतु उनके मनों को शून्य करते हैं।
वे उनकी हड्डियों को दृढ़तर बनाते हैं, परंतु उनकी
इच्छा-शक्ति को निर्बल करते हैं।

लाओत्से की सभी बातें उलटी हैं। उलटी हमें दिखाई पड़ती हैं। और कारण ऐसा नहीं है कि लाओत्से की बात उलटी है, कारण ऐसा है कि हम सब उलटे खड़े हैं। लाओत्से का एक शिष्य च्वांगत्से मरने के करीब था। अंतिम क्षणों में उसके मित्रों ने पूछा, तुम्हारी कोई इच्छा है? तो उसने कहा, एक ही इच्छा है मेरी कि इस पृथ्वी पर मैं पैरों के बल खड़ा था, उस परलोक में मैं सिर के बल खड़ा होना चाहता हूं। शिष्य बहुत परेशान हुए। और उन्होंने कहा, हमारी कुछ समझ में नहीं आता। क्या आप परलोक में उलटे खड़े होना चाहते हैं? तो च्वांगत्से ने कहा, जिसे तुम सीधा खड़ा होना कहते हो, उसे इतना उलटा पाया कि आने वाले जीवन में उलटा खड़े होकर प्रयोग करना चाहता हूं, शायद वही सीधा हो।
लाओत्से की यह बात कि जो जानते हैं, जो जागे हुए हैं, वे अपनी शासन-व्यवस्था में लोगों के पेटों को तो भरते हैं, उदर को तो भरते हैं, उनकी भूख को तो पूरा करते हैं, लेकिन उनके मन को शून्य करते हैं। उनकी शरीर की तो सारी जरूरतें पूरी हों, इसका ध्यान रखते हैं; लेकिन उनका मन महत्वाकांक्षी न बने, इस दिशा में प्रयास करते हैं।
साधारणतः हम शरीर कितना ही कटे, कट जाए; गले, गल जाए; शरीर को कुर्बान करना पड़े, हो जाए; लेकिन मन की आकांक्षा पूरी हो, मन की वासनाएं पूरी हों। और मन की वासनाओं की वेदी पर हम शरीर को चढ़ाने को सदा तत्पर हैं, चढ़ाते हैं। हमारा पूरा जीवन मन की वासनाओं को पूरा करने में शरीर की हत्या है। और साधारणतः इसे ही हम बुद्धिमानी कहेंगे। लेकिन लाओत्से कहता है कि पेट तो लोगों के भरे हुए हों, लेकिन मन खाली।
मन के खाली होने का क्या अर्थ है? और पेट के भरे होने का क्या अर्थ है? लोग शरीर से तो स्वस्थ हों, शरीर तो उनका भरा-पूरा हो, शरीर तो उनका बलशाली हो, लेकिन मन उनका बिल्कुल कोरा, खाली, शून्य, एम्पटी हो। और परम स्वास्थ्य की अवस्था वही है, जब शरीर भरा होता और मन खाली होता।
लेकिन हम सब मन को बहुत भर लेते हैं। हमारी पूरी जिंदगी मन को भरने की कोशिश है। विचारों से, वासनाओं से, महत्वाकांक्षाओं से मन को हम भरते चले जाते हैं। धीरे-धीरे शरीर तो हमारा बहुत छोटा रह जाता है, मन बहुत बड़ा हो जाता है। शरीर तो सिर्फ घसिटता है मन के पीछे।

लाओत्से कहता है, मन तो हो खाली! लाओत्से ने जगह-जगह जो उदाहरण लिए हैं, वे ऐसे हैं। लाओत्से कहता है कि जैसे बर्तन होता खाली। किस चीज को आप बर्तन कहते हैं? लाओत्से बार-बार पूछता है, किस चीज को बर्तन कहते हैं? बर्तन की दीवार को या उसके भीतर के खालीपन को?

आमतौर से हम बर्तन की दीवार को बर्तन कहते हैं। लाओत्से कहता है, दीवार तो बिल्कुल बेकार है। वह जो भीतर खाली जगह है, वही काम में आती है।
भरे हुए बर्तन को तो कोई न खरीदेगा।
मकान आप दीवार को कहते हैं कि दीवार के भीतर जो खाली जगह है उसको? हम आमतौर से मकान दीवारों को कहते हैं। और जब हम मकान बनाने की सोचते हैं, तो दीवारें बनाने की सोचते हैं। लाओत्से कहता है, बड़ी उलटी तुम्हारी समझ है। मकान तो वह है, जो दीवारों के भीतर खाली जगह है। क्योंकि कोई आदमी दीवारों में नहीं रहता, खाली जगह में रहता है। और यह खाली जगह अगर भरी हो, तो मकान बेकार है।
तो शरीर तो सिर्फ दीवार है। वह तो मजबूत होनी चाहिए। वह भीतर जो मन है, वही महल है, वह खाली होना चाहिए। और उस महल के भीतर भी जो मनुष्य की चेतना है, आत्मा है, वह निवासी है। अगर मन खाली हो, तो ही वह निवासी ठीक से रह पाए, तो ही स्पेस और जगह होती है। मन अगर बहुत भर जाता है, तो अक्सर हालत ऐसी होती है कि मकान तो आपके पास है, लेकिन इतना कबाड़ से भरा है कि आप मकान के बाहर ही सोते हैं, बाहर ही रहते हैं। क्योंकि भीतर जगह नहीं है।
अगर हम एक ऐसे आदमी की कल्पना करें, जिसके पास बड़ा महल है, लेकिन सामान इतना है कि भीतर जाने का उपाय नहीं है, तो बाहर बरामदे में ही निवास करता है। हम सब वैसे ही आदमी हैं। मन तो इतना भरा है कि वहां आत्मा के रहने की जगह नहीं हो सकती, बाहर ही भटकना पड़ता है। जब भी भीतर जाएंगे, तो आत्मा नहीं मिलेगी, मन ही मिलेगा। कोई विचार, कोई वृत्ति, कोई वासना मिलेगी। क्योंकि इतना भरा है सब। घर के भीतर जाते हैं, तो फर्नीचर तो मिलता है, मालिक नहीं मिलता।
लाओत्से कहता है, जो ज्ञानी हैं, वे कहते हैं, शरीर तो भरा-पूरा हो, पुष्ट हो, मन खाली हो। मन ऐसा हो, जैसे है ही नहीं। और लाओत्से कहता है, मन के खाली होने का अर्थ है, अ-मन हो, नो माइंड हो, जैसे है ही नहीं। जैसे मन की कोई बात ही नहीं है भीतर। उस खाली मन में ही जीवन की परम कला का आविर्भाव होता है और जीवन के परम दर्शन होने शुरू होते हैं।
"वे उनकी हड्डियों को दृढ़तर बनाते हैं, परंतु उनकी इच्छा-शक्ति को निर्बल करते हैं।"
हड्डियों को मजबूत बनाते हैं, लेकिन उनके विल को, उनके संकल्प को कमजोर करते हैं, क्षीण करते हैं। हम सब तो संकल्प को मजबूत करते हैं। हम तो किसी व्यक्ति से कहते हैं कि क्या तुममें कोई विल-पावर ही नहीं? तुममें कोई संकल्प की शक्ति नहीं? अगर संकल्प की शक्ति नहीं, तो तुम बिना रीढ़ के आदमी हो! तुम आदमी ही नहीं! और लाओत्से कहता है, ज्ञानी संकल्प की शक्ति को क्षीण करते हैं। अजीब बात है। हम तो एक-एक बच्चे को सिखा रहे हैं कि विल बढ़नी चाहिए। इस सदी के जो बहुत बुद्धिमान लोग हैं, उन सभी का ख्याल है कि आदमी में संकल्प बढ़ना चाहिए।
नीत्शे ने बहुत अदभुत किताब लिखी हैः विल टु पावर! नीत्शे का ख्याल है
कि आदमी के पूरे जीवन का एक ही लक्ष्य है कि शक्ति का संकल्प। शक्ति कैसे मिले, इसका संकल्प। और जो आदमी जितना संकल्पवान है, उतना महान है। कारलाइल या इमर्सन, ये सारे के सारे पश्चिम के विचारक संकल्प पर जोर देते हैं कि संकल्प मजबूत हो। तुम्हारी इच्छा-शक्ति ऐसी होनी चाहिए कि अटल पत्थर की दीवार; कि जगत हिल जाए, लेकिन तुम न हिलो। टूट जाओ, मिट जाओ, झुको मत। लाओत्से कहता है कि हड्डियां हों मजबूत, संकल्प-शक्ति बिल्कुल क्षीण हो, हो ही नहीं। क्यों? क्योंकि मनुष्य के सामने दो चीजों के बीच चुनाव हैः या तो संकल्प या समर्पण। जो संकल्प करेगा, उसका अहंकार मजबूत होगा। जो समर्पण करेगा, उसका अहंकार गलेगा और मिटेगा। जो संकल्प के रास्ते से चलेगा, वह अपने पर पहुंचेगा। और जो समर्पण के रास्ते से चलेगा, वह परमात्मा पर पहुंचता है। परमात्मा तक पहुंचना हो, तो छोड़ देना पड़ेगा अपने को। और स्वयं के मैं को मजबूत करना हो, तो फिर पकड़ लेना पड़ेगा अपने को।
तो शरीर चाहे मिट जाए, हड्डियां चाहे टूट जाएं, संकल्प न टूटे। ऐसी हम
सब की व्यवस्था है। इसको हम सीधी व्यवस्था कहते हैं। क्योंकि हम कहते हैं, कैसे कमजोर आदमी हो? लड़ नहीं सकते, जूझ नहीं सकते, शक्ति नहीं तुममें कोई। और लाओत्से कहता है, यह शक्ति होनी ही नहीं चाहिए। नहीं, ऐसा नहीं कि तुम

टूट जाओ लेकिन झुको मत; लाओत्से कहता है, तुम ऐसे होओ कि तुम्हें पता ही न चले कि तुम कब झुक गए। हवा को पता भी न चले कि तुमने रेसिस्ट किया, कि तुमने थोड़ा भी प्रतिरोध किया। हवा आए कि तुम पहले ही झुक जाओ, जैसे घास के छोटे- छोटे तिनके झुक जाते हैं। अड़ियल वृक्ष अकड़ कर खड़े रह जाते हैं, तूफान से टक्कर लेते हैं; छोटे पौधे झुक जाते हैं। और बड़ा मजा यह है कि छोटे पौधे तूफान को जीत लेते हैं और बड़े पौधे तूफान से मर जाते हैं।
लाओत्से कहता है, अगर तुम लड़ोगे, तो हारोगे। क्योंकि जिससे तुम लड़ रहे हो, तुम्हें पता नहीं, वह कौन है। एक-एक व्यक्ति जब भी लड़ रहा है, तो अनंत शक्ति से लड़ रहा है। हमारे चारों ओर जो अनंत निवास कर रहा है, हम उससे ही लड़ रहे हैं। लाओत्से कहता है, लड़ो मत, लड़ो ही मत। लड़ने का सवाल ही न उठे, तुम अपने को इतना अलग ही मत मानो कि तुम्हें लड़ना भी है। तुम गिर जाओ। तुम तूफान के साथ ही हो जाओ। कोआपरेट विद इट, उसका सहयोग करो। तूफान पता ही नहीं चलेगा कि तुम्हारे पास से कैसे गुजर गया। और तूफान के गुजर जाने के बाद तुम पाओगे कि तुम्हें तूफान ने छुआ भी नहीं। और तुम पाओगे, तुम्हारी शक्ति का इंच भर भी नष्ट नहीं हुआ। क्योंकि तुम लड़े ही नहीं। और हारने का कोई सवाल नहीं है, क्योंकि जिसका तूफान है, उसी के तुम हो।
वह जो लड़ने आया था, तुम्हें लगा था कि लड़ने आया है। वह लड़ने आया नहीं था। तुम्हारे संकल्प की वजह से तुम्हें लगा था कि लड़ने आया है। तुम लड़ने को उत्सुक थे, इसलिए तुमने उसे शत्रु की तरह व्याख्या कर ली। अन्यथा कोई व्याख्या की जरूरत न थी।
इसे थोड़ा समझें। सच में कोई शत्रु होता है? या हम व्याख्या करते हैं
कि वह शत्रु है। और व्याख्या हम क्यों करते हैं? हम व्याख्या इसलिए करते हैं कि हम लड़ना चाहते हैं। अगर मैं लड़ना ही नहीं चाहता, तो एक बात निश्चित है कि मैं शत्रु की व्याख्या नहीं करूंगा कि कोई शत्रु है। लड़ना चाहता हूं, तो शत्रु को निर्मित करूंगा। सब शत्रुता संकल्प से निर्मित होती है। सब संघर्ष संकल्प से निर्मित होता है।
लाओत्से कहता है, तुम तो ऐसे हो जाओ, जैसे हो ही नहीं। जैसे तलवार हवा
से निकल जाती है। हवा कहीं कटती नहीं, क्योंकि हवा रेसिस्ट नहीं करती। पानी से तलवार गुजार देते हो, पानी कटता नहीं। तलवार काट भी नहीं पाती कि पानी जुड़ जाता है। क्योंकि पानी रेसिस्ट नहीं करता, वह प्रतिरोध नहीं करता। तुम भी लड़ो मत। लाओत्से कहता है, तुम भी हवा-पानी जैसे हो जाओ। काटने वाली शक्ति को गुजर जाने दो। तुम अगर न लड़ोगे, तुम उसके गुजरते ही पाओगे कि जुड़ गए हो। तुम टूटे ही नहीं, तुम खंडित ही नहीं हुए। अगर तुम लड़े, तो तुम टूट जाओगे।
संकल्प को हम जैसा आदर देते हैं, लाओत्से ठीक उससे विपरीत उसकी व्याख्या करता है। हम आदर देंगे, क्योंकि हमारा सारा जीवन का ढांचा अहंकार पर निर्मित है, महत्वाकांक्षा पर खड़ा है। दौड़ना है, कहीं पहुंचना है, कुछ पाना है। धन, यश, पद, मर्यादा, कुछ उपलब्ध करना है। किन्हीं से कुछ छीनना है; किन्हीं को, कुछ हमसे न छीन लें, इस से रोकना है। जीवन हमारा एक संघर्ष है। हमारे देखने का ढंग संघर्ष का ढंग है, झुकना नहीं है। झुके, तो भारी ग्लानि होगी।
लाओत्से कहता है, यह जीवन के सोचने का ढंग बीमारी में ले जाता है, रुग्णता में ले जाता है। तुम ऐसे हो जाओ, जैसे हो ही नहीं।
यह जो न होने जैसा होना है, वहां संकल्प न होगा। जापान में जूडो या जुजुत्सु की पूरी कला लाओत्से के इसी सूत्र पर खड़ी है। उसे थोड़ा समझ लेना उपयोगी है। उससे समझ में आ जाएगा कि लाओत्से क्या कहता है।
अगर मैं आपको घूंसा मारूं, तो जो स्वाभाविक प्रतिक्रिया मालूम होती है, वह यह है कि आप मेरे घूंसे का विरोध करें। विरोध दो तरह का होगा। अगर आपको मौका मिला, तो आप मेरे घूंसे को रोकेंगे या घूंसे के जवाब में घूंसा उठाएंगे। अगर मौका न मिला, फिर भी घूंसा जब आपके शरीर पर पड़ेगा, तो आपके शरीर के रग-रेशे से प्रतिरोध उठेगा। आपकी मांस-पेशियां, आपके स्नायु, सब सख्त होकर घूंसे को रोकेंगे कि भीतर तक चोट न पहुंच जाए। आपकी हड्डियां कड़ी हो जाएंगी। आपका शरीर भिंच जाएगा, खिंच जाएगा, ताकि सख्ती से आप दीवार बना लें और घूंसे की चोट भीतर न पहुंच पाए।

जूडो की कला इससे बिल्कुल उलटी है। और जूडो की कला से बड़ी कोई कला नहीं है युद्ध के मामले में। और जूडो का थोड़ा सा जानकार भी आपके बड़े से बड़े पहलवान को क्षण भर में चित्त कर देगा। और चित्त कर देगा इस तरकीब से कि लड़ेगा नहीं। जूडो की कला यह कहती है कि जब तुम्हें कोई घूंसा मारे, तो तुम घूंसे को पी जाओ। कोआपरेट विद इट। तुम उससे लड़ो मत। जब तुम पर कोई घूंसा मारे, तो तुम ऐसे हो जाओ, जैसे कि तुम एक तकिए जैसे हो। घूंसा तुम पर लग गया और तुम पी गए।
फर्क समझ लें, घूंसे के विरोध में प्रतिरोध और घूंसे को पी जाने का। घूंसा आपके ऊपर मारा गया है, आप सहयोग करो और घूंसे को पी जाओ। उससे कहीं भी लड़ो मत, किसी तल पर भी।
और जूडो कहता है, घूंसे मारने वाले का हाथ टूट जाएगा। घूंसे मारने वाले का हाथ टूट जाएगा। क्योंकि घूंसा मारने वाला बहुत शक्ति और बहुत संकल्प से मार रहा है। और अगर आपने बिल्कुल जगह दे दी, तो उसकी हालत ठीक वैसी हो जाएगी, जैसे एक रस्सी को पकड़ कर आप खींच रहे हैं और मैं खींच रहा हूं, और मैंने रस्सी छोड़ दी; मैंने खींचा ही नहीं, मैंने प्रतिरोध न किया; मैंने कहा, आप खींचते हो, ले जाओ। तो आप गिर पड़ोगे।
जूडो की कला कहती है, मारो मत। जब कोई मारे, तो उसके सहयोगी हो जाओ, उसको दुश्मन मत मानो। मानो कि जैसे वह अपने ही शरीर का एक हिस्सा है। और तब थोड़ी ही देर में मारने वाला थक जाएगा और परेशान हो जाएगा। उसकी शक्ति क्षीण होगी। क्योंकि हर घूंसे में शक्ति बाहर फेंकी जा रही है। और आपकी शक्ति क्षीण नहीं होगी। बल्कि जूडो कहता है कि उसके घूंसे से जो शक्ति निकल रही है, वह भी आप पी जाओगे, वह भी आपको मिल जाएगी। पांच मिनट के भीतर जूडो का ठीक से जानने वाला आदमी किसी भी तरह के आदमी को परास्त कर देता है। परास्त करना नहीं पड़ता, वह परास्त हो जाता है।
एक बहुत प्रसिद्ध कथा है जूडो की। एक बहुत बड़ा तलवारबाज है, एक बड़ा सोर्ड्समैन है। वह इतना बड़ा तलवारबाज है कि जापान में उसका कोई मुकाबला नहीं है। एक रात वह अपने घर लौटा है, दो बजे हैं। जब वह अपने बिस्तर पर लेटने लगा, तो उसने देखा, एक बड़ा चूहा निकला है दीवार से। उसे बड़ा क्रोध आया। उसने चूहे को डराने-धमकाने की कोशिश की अपने बिस्तर पर से ही, लेकिन चूहा अपनी जगह पर बैठा रहा। उसे बड़ी हैरानी हुई। वह बड़े-बड़े लोगों को धमका दे, तो भाग खड़े होते हैं! चूहा! उसको क्रोध इतना आ गया कि उसके पास में ही उसकी सीखने की लकड़ी की तलवार पड़ी थी, उसने उठा कर जोर से चूहे पर हमला किया। हमला उसने इतने क्रोध में किया, चूहा जरा इंच भर सरक गया और उसकी तलवार जमीन पर पड़ी और टुकड़े-टुकड़े हो गई, और चूहा अपनी जगह बैठा रहा। तब जरा उसे घबराहट पैदा हो गई। चूहा कोई साधारण नहीं मालूम होता। उसके वार को चूक जाना, उसका वार चूक जाए, इसकी कल्पना भी नहीं थी।
वह अपनी असली तलवार लेकर आ गया। लेकिन जब चूहे को मारने के लिए कोई असली तलवार लेकर आता है, तो उसकी हार निश्चित है। असली तलवार लेकर आ गया जब वह, तभी हार निश्चित हो गई। चूहे को मारने के लिए असली तलवार एक योद्धा को लानी पड़े! चूहे से डर तो गया वह बहुत। और चूहा असाधारण है। हाथ उसका कंपने लगा। और उसे लगा कि अगर असली तलवार टूट गई, तो फिर इस अपमान को सुधारने का कोई उपाय न रह जाएगा। उसने बहुत सम्हल कर मारा। और जो जानते हैं, वे कहते हैं, जितना सम्हल कर आप निशाना लगाएंगे, उतना ही चूक जाएगा। क्योंकि सम्हलने का मतलब है कि भीतर डर है, भीतर घबड़ाहट है, कंपन है। अगर भीतर कोई डर नहीं, घबड़ाहट नहीं, तो आदमी सम्हल कर काम नहीं करता। काम करता है और हो जाता है। उसने तलवार मारी उसे। जिंदगी में उसने बहुत बार तलवार उठाई और चलाई और वह कभी चूका नहीं था। एक क्षण उसका हाथ बीच में कंपा और जब तलवार नीचे पड़ी, तो टुकड़े-टुकड़े हो गई। चूहा जरा सा हट गया था।
उस तलवारबाज की समझ के बाहर हो गई बात। उसने होश खो दिया। कहानी कहती
है कि उसने गांव में खबर की कि किसी के पास कोई जानदार बिल्ली हो, तो ले आओ। और दूसरे दिन गांव में जो बड़े से बड़ा धनपति था, उसने अपनी बिल्ली भेजी। वह कई चूहों को मार चुकी थी। लेकिन तलवारबाज डरा हुआ था। और जिस धनपति ने अपनी बिल्ली भेजी थी, वह भी डरा हुआ था। क्योंकि जब तलवारबाज की तलवार टूट गई हो, तो बिल्ली कहां तक सफल होगी, यह भय है। और बिल्ली को भी खबर मिल गई

थी। और तलवारबाज बहुत बड़ा था। बिल्ली ने बहुत चूहे मारे थे, लेकिन इस चूहे से आतंकित हो गई थी। रात भर सो न पाई। सुबह जब चली, तो पूरी तैयारी से चली।
रास्ते में पच्चीस योजनाएं बनाईं। कभी-कभी उसके मन को भी हुआ, मैं यह क्या कर रही हूं! चूहे तो मुझे देखते ही भाग जाते हैं। मैं योजना कर रही हूं! लेकिन योजना कर लेनी उचित थी। चूहा असाधारण मालूम होता था।
बिल्ली दरवाजे पर आई। एक क्षण उसने भीतर देखा, चूहे को देख कर कंप गई। चूहा बैठा था। तलवार टुकड़े-टुकड़े पड़ोस में पड़ी थी। इसके पहले कि बिल्ली आगे बढ़े, चूहा आगे बढ़ा। बिल्ली ने बहुत चूहे देखे थे। लेकिन कोई चूहा बिल्ली को देख कर आगे बढ़ेगा! बिल्ली एकदम बाहर हो गई।
तलवारबाज की हिम्मत बिल्कुल टूट गई कि अब क्या होगा! सम्राट को खबर की
गई कि आपके राजमहल की बिल्ली भेज दी जाए, अब कोई और उपाय नहीं है। सम्राट के पास जो बिल्ली थी, वह निश्चित ही देश की श्रेष्ठतम, कुशल बिल्ली थी। लेकिन वही हुआ जो होना था। सम्राट की बिल्ली ने चलते वक्त सम्राट से कहा, आपको शर्म आनी चाहिए, ऐसे छोटे-मोटे चूहों को मारने को मुझे भेजते हैं। मैं कोई साधारण बिल्ली नहीं हूं!
लेकिन यह भी उसने अपनी रक्षा के लिए कहा था। खबरें पहुंच गई थीं कि चूहा आगे बढ़ा, कि बिल्ली वापस लौट गई, कि तलवार टूट गई, कि योद्धा हार गया है, कि चूहे का आतंक पूरे गांव पर छाया हुआ है, चूहा साधारण नहीं है। लेकिन बचाव के लिए उसने राजा से कहा कि इस साधारण से चूहे के लिए मुझे भेजते हैं! सम्राट ने कहा, चूहा साधारण नहीं है। और आतंकित मैं भी हूं कि तू लौट तो न आएगी!
जो होना था, वही हुआ। बिल्ली गई। उसने जोर से झपट्टा मारा। लेकिन चूक गई। दीवार से उसका मुंह टकराया, लहूलुहान होकर वापस लौट गई। चूहा अपनी जगह था।
गांव में एक फकीर के पास और एक बिल्ली थी। इस सम्राट की बिल्ली ने ही कहा कि अब और कुछ रास्ता नहीं है, सिर्फ उस फकीर के पास एक बिल्ली है जो हम सब की गुरु है और जिससे हमने कला सीखी है। शायद उसे कुछ पता हो। वह मास्टर कैट थी। उस बिल्ली को बुलाया गया। सारे गांव की बिल्लियां इकट्ठी हो गईं। कोई पांच सौ बिल्लियों ने भीड़ लगा ली मकान के आस-पास, क्योंकि यह चमत्कार का मामला था। और अगर फकीर की बिल्ली हारती है, तो फिर बिल्ली सदा के लिए चूहों से हार जाएगी।
चूहा अपनी जगह बैठा था। फकीर की बिल्ली जब भीतर जाने लगी, तो सभी बिल्लियों ने सलाह दी कि देखो ऐसा करना, कि देखो ऐसा करना, कुछ ऐसा कर लेना! उस फकीर की बिल्ली ने कहा, नासमझो, अगर योजना बनाओगी चूहे को पकड़ने की, तो चूहे को कभी न पकड़ पाओगी। क्योंकि जिस बिल्ली ने योजना बनाई, वह हार गई। योजना बनाने का मतलब ही यह है कि चूहे से डर गए तुम। चूहा ही है न! पकड़ लेंगे। कोई पकड़ने में कला की जरूरत नहीं है, बिल्ली होना ही हमारी कला है। हम पकड़ लेंगे। योजना मैं नहीं बनाऊंगी।
योद्धा ने भी कहा कि थोड़ा सोच लो, क्योंकि यह आखिरी मामला है। अगर तू
भी लौट गई, तो मुझे घर छोड़ कर भाग जाना पड़ेगा। क्योंकि भीतर इस कमरे के मैं अब नहीं जा सकता हूं। वह चूहे को देखना भी ठीक नहीं है अब। वह वहीं बैठा है अपनी जगह पर। उस बिल्ली ने कहा, ये भी कोई बातें हैं! सब शांत रहें।
वह बिल्ली भीतर गई और चूहे को पकड़ कर बाहर आ गई। बिल्लियों की भीड़ लग गई। उन सब ने पूछा कि चूहे को तुमने पकड़ा कैसे? क्या है तरकीब? उस बिल्ली ने कहा, मेरा बिल्ली होना काफी है। मैं बिल्ली हूं और यह चूहा है। और चूहे सदा से कोआपरेट करते रहे, सदा से सहयोग करते रहे। बिल्लियां सदा से पकड़ती रहीं। यह हम दोनों का स्वभाव है कि मैं बिल्ली हूं और यह चूहा है। यह पकड़ा जाएगा और मैं पकड़ लूंगी। तुमने योजना बनाई, इसी से भूल हो गई। तुम बुद्धि को बीच में लाए, इसी से परेशान हुए।
झेन फकीर इस कहानी को सैकड़ों साल से कहते रहे हैं। यह बिल्ली गरीब फकीर की बिल्ली थी। सम्राट की बिल्ली के बराबर इसके पास शरीर भी न था, ताकत भी न थी। इसके हाथ में तलवार भी न थी। यह साधारण बिल्ली थी। पर उस बिल्ली ने कहा कि मेरा स्वभाव, यह चूहे का स्वभाव, इसमें कोई अनहोना नहीं हुआ है।

जुजुत्सु या जूडो सिखाने वाले लोग कहते हैं कि प्रकृति का एक नियम और
एक स्वभाव है। अगर कोई घूंसा आपकी तरफ मारा जाए, अगर आप प्रतिरोध करें, तो दोनों शक्तियां लड़ती हैं और दोनों शक्तियों में संघर्ष होता है। दोनों शक्तियां क्षीण होती हैं। अगर आप प्रतिरोध न करें, तो एक ही तरफ से शक्ति आती है, दूसरी तरफ खाली गड्ढा बन जाता है। शक्ति आत्मसात हो जाती है। दूसरा व्यक्ति परेशान हो जाता है। वह योजना करके हमला करता है। और आप अनायोजित, बिना किसी प्लानिंग के चुपचाप हमले को पी जाते हैं। अगर ऐसा शून्य भीतर बन जाए कि किसी हमले का कोई प्रतिरोध न हो--क्योंकि भीतर कोई प्रतिरोध करने वाला संकल्प ही न रहा--तो उस शून्य में जगत की महानतम शक्ति का आविर्भाव होता है।
लाओत्से कहता है, संकल्प क्षीण हो। उसका अर्थ है कि संकल्प शून्य हो। भीतर शून्यवत हो जाओ; कुछ होने की कोशिश मत करो। उस बिल्ली ने कहा कि तुम सब बिल्लियां बिल्ली होने की कोशिश कर रही हो! बिल्ली होने की कोई कोशिश करनी पड़ती है? तुम बिल्ली हो। तुम्हारी कोशिश ही तुम्हें तकलीफ में डाल रही है। तुम हमला बनाने की योजना में पड़ी हो।
जूडो का शिक्षक सिखाता है कि हमला मत करना, सिर्फ हमले की प्रतीक्षा करना। और जब हमला आए, तो तुम एक ही बात का ध्यान रखना कि तुम उसे आत्मसात कर जाओ।
और अगर कोई गाली दे और आप गाली को आत्मसात कर जाएं, तो जिसने गाली दी है, वह कमजोर हो जाता है। करें और देखें! और जिसने गाली चुपचाप पी ली है--पी ली, दबाई नहीं--दबाना नहीं है, पी ली, जैसे कोई ने प्रेम का उपहार दिया, ऐसा पी ली है, आत्मसात कर ली, समा ली अपने में, एब्जार्ब कर ली, गड्ढा बन गया। तो गाली देने में जितनी शक्ति उस व्यक्ति की व्यय हुई, उतनी शक्ति इस व्यक्ति को मिल गई।
और जब गाली देने वाला पाता है कि विरोध में गाली नहीं उठी, तो इतना परेशान हो जाता है, जिसका कोई हिसाब नहीं। जब आप विरोध में गाली दे देते हैं, तो परेशान नहीं होता। क्योंकि ठीक है, अपेक्षा यही थी कि आप गाली देंगे उत्तर में। लेकिन जब आप गाली नहीं देते हैं, तब परेशान हो जाता है। और दुगुने वजन की गाली खोज कर लाता है, और जोर से हमला करता है। लेकिन अगर आपको कला है पीने की, तो आप उसके हमले को पीते चले जाते हैं और उसे निर्बल करते चले जाते हैं। वह अपनी ही निर्बलता से गिरता है।
जूडो कहता है कि दुश्मन अपनी ही निर्बलता से गिर जाता है, तुम्हें गिराने की कोई जरूरत ही नहीं है।
लाओत्से के इन्हीं सूत्रों से जूडो का विकास हुआ। और लाओत्से के इन्हीं सूत्रों से और बुद्ध के विचार के सम्मिलन से झेन का जन्म हुआ। बुद्ध का विचार भारत से चीन पहुंचा। और चीन में लाओत्से के विचार की पर्त वातावरण में थी। इन दोनों के संगम से एक बहुत ही नई तरह की चीज दुनिया में पैदा हुई--झेन। बुद्ध ने भी कहा था--बहुत और अर्थों में, किसी और तल पर--कि मैं अपने भीतर के शत्रुओं से लड़-लड़ कर हार गया और न जीत पाया; और जब मैंने भीतर के शत्रुओं से लड़ना ही बंद कर दिया और जीतने का ख्याल ही छोड़ दिया, तो मैंने पाया कि मैं जीता ही हुआ हूं। और जब लाओत्से के इन सूत्रों से बुद्ध के इन विचारों का तालमेल बना, तो एक बिल्कुल ही नया विज्ञान पैदा हुआ। वह विज्ञान है बिना लड़े जीतने का। वह विज्ञान हैः लड़ना ही नहीं और जीत जाना! संघर्ष नहीं और विजय! संकल्प नहीं और सफलता!
हम सोच ही नहीं सकते। क्योंकि हम तो सोचते हैं, जहां भी संकल्प होगा, वहीं सफलता है; जहां संघर्ष होगा, वहीं विजय है। जहां युद्ध होगा, वहीं तो पुष्पहार पहनाए जाएंगे जीत के। लाओत्से उलटा मालूम पड़ेगा। वह कहता है, हड्डियां तो मजबूत हों, लेकिन संकल्प शून्य हो।
क्यों? हड्डियों और संकल्प में क्यों फर्क कर रहा है?
अगर आपके ऊपर मैं हमला करूं, तो हड्डियां इतनी मजबूत होनी चाहिए कि हमले को पी सकें। हड्डियों का मतलब है, आपके पास जो भी पीने की संरचना है, स्ट्रक्चर है, वह इतना मजबूत होना चाहिए कि पी जाए। लेकिन भीतर कोई प्रतिरोध करने वाला अहंकार नहीं होना चाहिए कि लड़ पड़े।

ध्यान रहे, लड़ने के लिए उतने मजबूत शरीर की जरूरत नहीं है, जितना लड़ाई पीने के लिए मजबूत शरीर की जरूरत है। कमजोर शरीर वाला भी लड़ सकता है। और अक्सर ऐसा होता है कि कमजोर हो शरीर और दिमाग हो पागल, तो खूब लड़ सकता है। कोई शरीर की कमजोरी से लड़ने में बाधा नहीं पड़ती। शरीर की कमजोरी लड़ने में बाधा नहीं है। बल्कि सचाई तो यह है कि कमजोर शरीर लड़ने को बहुत आतुर होता है।
सुना है मैंने कि हांगकांग में पहली दफा जो अमरीकन उतरा, उसने हांगकांग के बंदरगाह पर दो चीनियों को लड़ते देखा। लाओत्से की परंपरा से ही जुड़ी हुई अनेक परंपराएं चीन में विकसित हुईं। वह दस मिनट तक खड़ा होकर देखता रहा कि वे बिल्कुल एक-दूसरे के मुंह के पास मुंह ले आते हैं, घूंसा उठाते हैं, एक-दूसरे की नाक तक घूंसा ले जाते हैं, बड़ी गालियां देते हैं, बड़ी चीख-पुकार मचाते हैं; लेकिन हमला नहीं होता। दस मिनट में वह थोड़ा हैरान हुआ कि यह किस प्रकार की लड़ाई है! उसने अपने गाइड को पूछा कि यह क्या हो रहा है? क्योंकि उसको समझ में नहीं आया कि यह लड़ाई हो रही है। क्योंकि लड़ाई कैसी? इतने निकट घूंसे पहुंच जाते हैं और वापस लौट जाते हैं। यह कोई खेल हो रहा है! उस गाइड ने कहा कि यह चीनी ढंग की लड़ाई है--ए चाइनी.ज वे ऑफ फाइटिंग!
उसने कहा कि लेकिन फाइट तो हो ही नहीं रही, लड़ाई तो हो ही नहीं रही। दस मिनट से मैं देख रहा हूं, इतने निकट दुश्मन हो और घूंसा इतने करीब आ जाता हो, फिर वापस क्यों लौट जाता है?
तो उस गाइड ने कहा कि ढाई हजार साल से इस मुल्क में एक ख्याल है कि जो पहले हमला करे, वह कमजोर, वह हार गया। तो ये दोनों प्रतीक्षा कर रहे हैं। जो पहले हमला करे, वह कमजोर, वह हार गया। उसने काबू पहले खो दिया। वह कमजोरी का लक्षण है। तो यह सब भीड़ भी खड़े होकर यह देख रही है कि देखें, कौन हारता है। और हार का लक्षण यह हुआ कि हमला हुआ कि भीड़ हट जाएगी। बात खत्म हो गई। फलां आदमी हार गया, जिसने हमला किया पहले। और ये दोनों एक-दूसरे को उकसा रहे हैं कि हमला करो। अब इसमें कौन हारता है, यह देखना है। और हार का बड़ा अजीब सूत्र हैः वह जो हमला करेगा, वह हार गया।
यह लाओत्से की धारणा है कि कमजोर हमला पहले कर देता है।
मैंने कल मैक्यावेली का नाम लिया आपसे। और मैक्यावेली और लाओत्से में बड़ी समानांतर बातें हैं। मैक्यावेली कहता है, सुरक्षा का सबसे बड़ा उपाय पहले हमला कर देना है--दि बेस्ट वे टु डिफेंड इ.ज टु अटैक फर्स्ट। अगर सुरक्षा चाहते हो, तो पहले ही हमला कर दो।
वह ठीक कह रहा है। वह ठीक इसलिए कह रहा है कि इतनी देर मत करो, हमला पहले ही कर दो। अगर कमजोर भी पहले हमला कर दे, मैक्यावेली के हिसाब से, तो उसके जीतने की संभावना बन जाएगी। वह आगे हो गया। और मैक्यावेली जो संदेश दे रहा है, वह कमजोरों के लिए दे रहा है। असल में, सुरक्षा कमजोर के लिए ही ख्याल है।
लाओत्से कहता है कि हमला आए, तो पी जाओ। हमला करने का तो सवाल ही नहीं; पहले क्या, पीछे भी करने का सवाल नहीं है। उसे आत्मलीन कर लेना है।
ऐसा हो सके कि शरीर हो स्वस्थ, मन हो शून्य, हड्डियां हों मजबूत, मकान
की दीवारें हो सुदृढ़ और भीतर मालिक हो जैसे नहीं है, तो लाओत्से कहता है, परफेक्ट मैन, पूर्ण आदमी का जन्म होता है, पूर्ण मनुष्य का जन्म होता है। यह धारणा उलटी है। हमारे सब के हिसाब में यह धारणा उलटी है। और यह उलटी इसलिए दिखाई पड़ती रहेगी कि हमारे सोचने के सारे मापदंड लाओत्से से बिल्कुल विपरीत हैं। हम कहेंगे, यह कमजोरी है, कायरता है कि कोई हमला करे और तुम जवाब न दो। हम कहेंगे, यह कायरता है कि कोई हमला करे और तुम जवाब न दो, जिंदगी पुकारे लड़ाई के लिए और तुम खड़े रह जाओ, कि तूफान चुनौती दें और तुम लेट जाओ, कि नदी बहाने लगे तुम्हें और तुम बह जाओ और उलटे न बहो। नसरुद्दीन को खबर दी है उसके घर के आस-पास के पड़ोसियों ने कि तू भाग जल्दी, तेरी पत्नी नदी में गिर पड़ी है! पूर है तेज, वर्षा के हैं दिन, धार है कड़ी और डर है कि पत्नी शीघ्र ही सागर में पहुंच जाएगी। तू भाग!
नसरुद्दीन भागा। तट पर बहुत भीड़ इकट्ठी हो गई। वह नदी में कूदा और उलटी धार की तरफ तैरने लगा। उलटी तरफ! सागर की तरफ दौड़ रही है नदी, वह उलटी

तरफ, नदी के उदगम की तरफ जोर से तैरने लगा। तेज है धार, तैर भी नहीं पा रहा। लोगों ने चिल्लाया, पागल नसरुद्दीन, कोई नदी में गिर जाए, तो उलटी तरफ नहीं बहता। तेरी पत्नी नीचे की तरफ गई होगी! उन्होंने कहा कि माफ करो, मेरी पत्नी को मैं तुमसे अच्छी तरह जानता हूं। वह सदा उलटे काम करती रही है। वह कभी नीचे की तरफ नहीं बह सकती। उसे मैं भलीभांति पहचानता हूं। तीस साल का हमारा-उसका सत्संग है। अगर तुम यह कहते हो कि सभी लोग नदी में गिर कर नीचे की तरफ बहते हैं, तो मेरी पत्नी ऊपर की तरफ बही होगी।
लाओत्से और हमारे बीच ऐसे ही उलटे नाते हैं। इसलिए लाओत्से को समझना मुश्किल हो जाता है। लाओत्से को समझना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि हमारे तर्क की व्यवस्था में और उसकी तर्क की व्यवस्था में बड़ा उलटापन है। हम कहते हैं कायरता, और लाओत्से कहता है शक्ति। वह कहता है, जितनी बड़ी शक्ति है, उतनी ही लड़ने की आतुरता कम होगी। अगर शक्ति पूर्ण है, तो लड़ाई होगी ही नहीं।
ऐसा समझें हम, परमात्मा के द्वार पर जाकर हम गाली दे रहे हैं। कोई उत्तर नहीं मिलता। और नास्तिक हजारों साल से खंडन करते रहे हैं। एक भी बार ऐसा नहीं हुआ कि परमात्मा एकाध बार तो कह देता कि मैं हूं। इतने दिन से लंबा विवाद चलता है। एकाध बार तो उसको इतना तो ख्याल आ जाना चाहिए था कि यह बड़ी कायरता होगी, एक दफे तो कह दूं कि मैं हूं। नहीं, वह चुप है।
लाओत्से कहता है, वह इसलिए चुप है कि वह परम शक्ति है। प्रतिरोध वहां नहीं है। अगर नास्तिक कहता है, तुम नहीं हो, तो परमात्मा से भी प्रतिध्वनि आती है कि नहीं हूं। कोआपरेट कर जाता है, उसके साथ भी सहयोग कर देता है। उससे भी विरोध नहीं है। जितनी बड़ी ऊर्जा, उतना ही प्रतिरोध नहीं होता। सुना है मैंने, एक स्कूल में एक पादरी बच्चों को बाइबिल का पाठ सिखा रहा है। और उनसे कह रहा है कि कल मैंने तुम्हें क्षमा के लिए सारी बातें समझाई थीं। अगर कोई तुम्हें मारे, तो तुम उसे क्षमा कर सकोगे? एक छोटे से लड़के को उसने खड़े करके पूछा कि तेरा क्या ख्याल है? अगर कोई लड़का तुझे घूंसा मार दे, तो तू उसे क्षमा कर सकेगा? उस लड़के ने कहा, कर तो सकूंगा, अगर वह मुझसे बड़ा हो। उसने कहा, कर तो सकूंगा, अगर वह मुझसे बड़ा हो। छोटे को करना जरा मुश्किल पड़ जाएगा।
असल में, हम सब की मनोदशा ऐसी ही है। जिसको हम दबा सकते हैं, हम दबा देते हैं। जिसको हम सता सकते हैं, उसे हम सता देते हैं। जिसको हम चोट पहुंचा सकते हैं, उसे हम चोट पहुंचा ही देते हैं। जिसे हम नहीं पहुंचा सकते, तब हम बड़े सिद्धांतों की बात कर लेते हैं।
लाओत्से कह रहा है कि तुम्हारे भीतर वह बिंदु ही न रह जाए, जो छोटे-बड़े
को सोचता है। इसके साथ, उसके साथ, सोचता है। इस स्थिति में क्या करूं, उस स्थिति में क्या करूं, सोचता है। वह बिंदु ही न रह जाए। तुम्हारे भीतर संकल्प ही न रह जाए।
लाओत्से को अगर एक छोटा बच्चा भी चांटा मार दे, तो भी जवाब नहीं देगा।
और एक सम्राट भी हमला बोल दे, तो भी जवाब नहीं देगा।
अगर इस सूत्र को ठीक से ले लें, तो साधना का बड़ा सूत्र है। कभी छोटा सा प्रयोग करके देखें एक सात दिन के लिए, अप्रतिरोध का, नान-रेसिस्टेंस का, कि कुछ भी होगा, पी जाएंगे। प्रयोगात्मक, एक सात दिन के लिए, कुछ भी होगा, पी जाएंगे। जिन-जिन चीजों में कल प्रतिरोध किया था, प्रतिरोध नहीं करेंगे। या जिन-जिन चीजों में कल दबाना पड़ा था, दबाएंगे नहीं, पी जाएंगे। और एक सात दिन में आप पाएंगे कि आप इतनी शक्ति अर्जित कर लेते हैं, जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। आपके पास इतनी ऊर्जा, इतनी इनर्जी इकट्ठी हो जाती है, जिसका हिसाब नहीं। तब मुश्किल हो जाएगा, उसके बाद, इस ऊर्जा को व्यर्थ डिसिपेट करना।
हम सब डिसिपेट कर रहे हैं, फेंक रहे हैं। सड़क से गुजर रहे हैं, एक छोटा
सा बच्चा सड़क के किनारे खड़े होकर हंस दे, और आपमें प्रतिरोध शुरू हो गया। प्रतिरोध शुरू हो गया।
लाओत्से पर किसी ने एक गांव में हमला कर दिया था। लाओत्से ने तो लौट
कर भी नहीं देखा कि वह आदमी कौन है। वह चलता ही गया। उस आदमी को बड़ी बेचैनी हुई। उसने लौट कर भी नहीं देखा कि पीछे से लकड़ी किसने मारी है। वह आदमी

भागा हुआ आया और उसने लाओत्से को रोका और कहा कि लौट कर तो देख लो! अन्यथा हमारा मारना बिल्कुल बेकार ही गया। कुछ तो कहो!
लाओत्से ने कहा, कभी भूल-चूक से अपना ही नाखून हाथ में लग जाता है, तो क्या करते हैं! कभी राह चलते अपनी ही भूल से गिर पड़ते हैं, घुटने टूट जाते हैं, तो क्या करते हैं!
लाओत्से ने कहा, एक बार ऐसा हुआ कि मैं नाव में बैठा था और एक खाली नाव आकर मेरी नाव से टकरा गई, तो मैंने क्या किया! लेकिन अगर उस दूसरी नाव में कोई मल्लाह बैठा होता, तो? तो झगड़ा हो जाता। तो झगड़ा हो जाता। खाली नाव थी, तो कुछ न किया। कोई मल्लाह बैठा होता, तो झगड़ा हो जाता। लेकिन उसी दिन से मैंने समझ लिया कि जब खाली नाव को कुछ नहीं किया, तो मल्लाह भी बैठा हो तो क्या फर्क पड़ता है? तुमने अपना काम कर लिया, तुम जाओ। मुझे मेरा काम करने दो।
वह आदमी दूसरे दिन पुनः आया और उसने कहा, मैं रात भर सो नहीं सका। तुम आदमी कैसे हो? तुम कुछ तो करो, तुम कुछ तो कहो, ताकि मैं निश्चिंत हो जाऊं। स्वभावतः, उसके मन में बहुत कुछ कठिनाई चलती रही होगी। हम सब अपेक्षाओं में चलते हैं। अगर मैं गाली देता हूं, तो मैं मान कर चलता हूं कि गाली लौटेगी। लौट आती है, तो नियमानुसार सब हो रहा है। नहीं लौटती है, तो बेचैनी होती है। बेचैनी उतनी हो जाती है कि मैं अगर प्रेम करता हूं, तो मान कर चलता हूं कि प्रेम लौटेगा; नहीं लौटता है, तो जैसी बेचैनी हो जाती है। हम सब के लेन-देन के सिक्के तय हैं।
लाओत्से कहता है, ये सिक्कों को बदल डालो। भीतर हो जाओ शून्यवत; संकल्प को हटा दो; और जो होता है, होने दो।
हम कहेंगे, तब तो मौत आ जाएगी, बीमारी आ जाएगी, कोई लूट ही लेगा। सब बर्बाद ही हो जाएगा। हम हजार दलीलें खोज लेंगे जरूर। लेकिन हमारी दलीलों का बहुत मूल्य नहीं है। क्योंकि जिन चीजों को बचाने के लिए हम दलीलें खोज रहे हैं, उनमें से हम कुछ भी नहीं बचा पाते, सभी छूट जाता है। न तो मौत रुकती, न बीमारी रुकती, कुछ रुकता नहीं, सभी नष्ट हो जाता है। और उसको बचाने की चेष्टा में हम कभी उसे पा ही नहीं पाते, जो ऐसा था कुछ कि मिल जाता, तो कभी नष्ट नहीं होता है।
एक बार सात दिन का छोटा सा प्रयोग करके देखें।
मेरे लिए तो संन्यास का अर्थ यही है, जो लाओत्से कह रहा है। यही अर्थ
है संन्यास का कि ऐसा व्यक्ति, जिसने संकल्प छोड़ दिया, जिसने समर्पण स्वीकार कर लिया, जिसने इस जगत के साथ संघर्ष छोड़ दिया और सहयोगी हो गया। जो कहता है, मेरी शत्रुता नहीं; हवाएं जहां ले जाएं, मैं चला जाऊंगा। जो कहता है, मेरी अपनी कोई आग्रह की बात नहीं कि ऐसा हो; जो हो जाएगा, वही मुझे स्वीकार है। ऐसी कोई मंजिल नहीं, जहां मुझे पहुंचना है; जहां पहुंच जाऊंगा, कहूंगा यही मेरी मंजिल है। ऐसा व्यक्ति संन्यासी है। और ऐसी संन्यास की भाव-दशा में जीवन का जो परम धन है, उसका द्वार, उस खजाने का द्वार खुल जाता है।
लाओत्से कहता है, "संत, जो जानते हैं, वे प्रज्ञावान पुरुष अपने शासन में... ।"
यह भी शब्द सोचने जैसा है। क्योंकि संत का कोई शासन नहीं होता। संत की क्या गवर्नमेंट होती? सेजेज इन देयर गवर्नमेंट! संत अपने शासन में! संतों की तो कोई सरकार दिखाई पड़ती नहीं। लेकिन यह बड़ा पुराना शब्द है, बड़ा पुराना शब्द है। और वक्त था ऐसा जब कि संत का ही शासन था। कोई गवर्नमेंट नहीं थी उसकी, कोई शासन-व्यवस्था न थी, कोई स्ट्रक्चर न था। लेकिन शासन उसी का था।
जैन परंपरा में अभी भी, महावीर का शासन, ऐसा ही शब्द प्रयोग किया जाता है। जो शासन दे, उसको शास्ता कहा जाता है। इसलिए महावीर को या बुद्ध को शास्ता कहते हैं। शास्ता, जिसने शासन दिया। और वह शास्ता ने जो कहा, जहां संगृहीत हो, उसको शास्त्र कहा जाता है। शासन का अर्थ है, ऐसे नियम जिनसे आदमी चल सके और पहुंच सके।
तो लाओत्से कहता है, संत अपने शासन में, अपनी सूचनाओं में, मनुष्य को चलाने के लिए जो शास्त्र वे निर्मित करते हैं उसमें, आदमी के मन को तो खाली

करने की कोशिश करते हैं, शरीर को भरने की कोशिश करते हैं। संकल्प को तोड़ते हैं, हड्डियों को मजबूत कर देते हैं।
सारे हठयोग की पूरी प्रक्रियाएं हड्डी को मजबूत करने की प्रक्रियाएं हैं। भीतर से संकल्प को हटा कर समर्पण को... । यह ख्याल में आ जाए, तो व्यक्तित्व का एक दूसरा ही रूप है; जैसे हम हैं, फिर वैसे नहीं। देखने का और ही ढंग, एक दूसरा गेस्टाल्ट।
और जैसा हम देखना शुरू करते हैं, वैसी ही चीजें दिखाई पड़नी शुरू हो जाती हैं। अगर आपने तय कर रखा है, सजग रहना है हर वक्त, हमला हो तो हमले से उत्तर देना है, हमला न हो तो पहले से तैयारी रखनी है, तो आप रोज दुश्मन को खोज लेंगे। जगत बहुत बड़ा है और हर आदमी की जरूरतें पूरी कर देता है। अगर आप दुश्मन को खोजने निकले हैं, तो आप दुश्मन को प्रतिपल खोज लेंगे।
यह खोज करीब-करीब वैसी ही है, जैसे कभी पैर में चोट लग जाए, तो फिर दिन
भर पैर में उसी जगह चोट लगती मालूम पड़ती है। और कभी-कभी हैरानी भी होती है कि मामला क्या है? इतना बड़ा शरीर है, कहीं चोट नहीं लगती, वहीं चोट लगती है जहां चोट लगी है! नहीं, चोट तो रोज वहां ही लगती थी, पता नहीं चलती थी। आज वहां चोट लगी है, इसलिए पता चलती है। आपका वह हिस्सा संवेदनशील है, सेंसिटिव है, इसलिए पता चलता है। दूसरे हिस्से पर पता नहीं चल रहा है। वह संवेदनशील नहीं है।
तो हम जिस-जिस चीज के लिए संवेदनशील हो जाते हैं, वही-वही हमें पता चलता है। अगर हम आक्रमण के प्रति संवेदनशील हैं, अगर हमें लग रहा है कि सारा जीवन एक संघर्ष, युद्ध है, तो फिर हम रोज, हर घड़ी उन लोगों को खोज लेंगे जो शत्रु हैं, उन स्थितियों को खोज लेंगे जो संघर्ष में ले जाएं। लाओत्से दूसरा गेस्टाल्ट, देखने का दूसरा ढंग, दूसरी सेंसिटिविटी दे रहा है। वह दूसरी संवेदनशीलता दे रहा है। वह कह रहा है कि सहयोग को खोजो। और जो आदमी उस भाव से खोजने निकलेगा, उसे मित्र मिलने शुरू हो जाते हैं।
उसकी संवेदनशीलता दूसरी हो जाती है। वह मित्र को खोजने लगता है। और हम जो खोजते हैं, वह हमें मिल जाता है। या हम ऐसा कहें कि जो भी हमें मिलता है, वह हमारी ही खोज है। इस जगत में हमें वह नहीं मिलता, जो हमने नहीं खोजा है।
इसलिए जब भी आपको कुछ मिले, तो आप समझ लेना कि आपकी अपनी ही खोज है।
लेकिन हम ऐसा कभी नहीं मानते। अगर दुश्मन मिलता है, तो हम सोचते हैं, हमारी क्या खोज है? दुश्मन है, इसलिए मिल गया! नहीं, दुश्मन होने के लिए आप संवेदनशील हैं, आप तैयार हैं। खोज ही रहे हैं।
सहयोग की यह व्यवस्था, कोआपरेशन और कांफ्लिक्ट।
क्रोपाटकिन ने एक किताब लिखी है। और क्रोपाटकिन इस सदी में... कांफ्लिक्ट की सदी है हमारी तो, हमारा तो पूरा युग संघर्ष का है, जहां मार्क्स से लेकर और माओ तक सारा विचार संघर्ष और कलह का है। वहां एक आदमी जरूर--रूस में ही हुआ वह आदमी भी क्रोपाटकिन--वह कोआपरेशन, सहयोग, संघर्ष नहीं। और उसने एक बहुत बड़ी कीमती बात प्रस्तावित की, हालांकि इस सदी में सुनी नहीं गई। क्योंकि यह सदी उसके लिए संवेदनशील नहीं है।
डार्विन ने सिद्ध करने की कोशिश की कि यह सारा जगत जीवन के लिए संघर्ष है, स्ट्रगल है, स्ट्रगल टु सरवाइव। अपने-अपने को बचाने के लिए हर एक लड़ रहा है। और उसने यह भी सिद्ध किया कि इसमें वही बच जाता है, जो फिटेस्ट है। और फिटेस्ट का मतलब यह, जो युद्ध में सर्वाधिक कुशल है वही बच जाता है। डार्विन से लेकर फिर इन तीन सौ सालों में सारे जगत में संघर्ष का विचार परिपक्व होता चला गया। और मजे की बात है कि इस संघर्ष के परिपक्व विचार ने हमें संघर्ष के लिए और उन्मुख बनाया। और जब इस सिद्धांत को हमने स्वीकार कर लिया कि जीवन एक संघर्ष है, हर एक लड़ रहा है सिर्फ। बाप बेटे से लड़ रहा है, बेटा बाप से लड़ रहा है, पति पत्नी से लड़ रहा है। सब लड़ रहे हैं। ऐसा नहीं है कि नौकर मालिक से ही लड़ रहा है। संघर्ष ही चल रहा है पूरे समय। यह सारा जीवन एक संघर्ष का ही रूप है। यह डार्विन से लेकर माओ तक सारा ख्याल संघर्ष का है। कलह, वर्ग-कलह, फिर कलह बढ़ती चली जाती है। तो सभी तलों में प्रवेश कर जाती है। फिर एक-एक आदमी अकेला है और सारी दुनिया से लड़ रहा है।

क्रोपाटकिन ने कहा कि संघर्ष आधार नहीं है, सहयोग आधार है। और मजे की बात उसने यह कही कि संघर्ष भी करना हो, तो भी सहयोग जरूरी है। जिससे लड़ना है, उसका भी सहयोग चाहिए--लड़ाई के लिए भी। अगर वह लड़ने में भी असहयोगी हो जाए, नॉन-कोआपरेटिव हो जाए और कह दे कि नहीं लड़ते, तो लड़ने का भी कोई उपाय नहीं है। यह बहुत मजे की बात क्रोपाटकिन ने कही कि संघर्ष के लिए सहयोग अनिवार्य है, लेकिन सहयोग के लिए संघर्ष अनिवार्य नहीं है। फाउंडेशनल, बुनियादी सहयोग है, क्योंकि संघर्ष भी बिना सहयोग के नहीं हो सकता।
अगर मैं आपसे लड़ना भी चाहूं, तो किसी न किसी रूप में आपके सहयोग की जरूरत है। अगर आप बिल्कुल कोआपरेट ही न करें, तो लड़ाई भी नहीं चल सकती। लड़ाई भी बड़ा सहयोग है। और दो आदमी जब लड़ते हैं, तो बहुत-बहुत ढंगों से एक-दूसरे का सहयोग करते हैं। लेकिन सहयोग के लिए किसी संघर्ष की जरूरत नहीं है। इसका अर्थ यह होता है कि सहयोग ज्यादा गहरे में है।
और क्रोपाटकिन ने कहा कि डार्विन ने जाकर देख लिया जंगल में कि शेर इस जानवर को खा रहा है, वह जानवर उस जानवर को खा रहा है। लेकिन क्रोपाटकिन का कहना है कि चौबीस घंटे में अगर एक बार शेर एक जानवर पर हमला करता है, तो बाकी तेईस घंटों में हजारों जानवरों के साथ सहयोग कर रहा है। उसे कभी डार्विन ने देखा नहीं। जंगल के जानवर चौबीस घंटे लड़ नहीं रहे हैं। सच बात यह है कि आदमी से ज्यादा लड़ने वाला कोई भी जानवर जंगल में नहीं है।
एक सूफी फकीर हुआ है, जलालुद्दीन। वह अपने ध्यान में बैठा है। और उसके
एक शिष्य ने आकर उससे कहा कि उठिए, उठिए, बड़ी मुश्किल हो गई! एक बंदर के हाथ में तलवार पड़ गई है; कुछ न कुछ खतरा होकर रहेगा। जलालुद्दीन ने कहा, बहुत परेशान मत हो, आदमी के हाथ में तो नहीं पड़ी है न! फिर कोई फिक्र की बात नहीं है, फिर कोई चिंता की बात नहीं है। आदमी के हाथ में पड़ गई हो, तो फिर उठना पड़े। फिर कुछ उपद्रव होकर रहेगा।
जंगल में इतना संघर्ष नहीं है, जैसा हमें ख्याल है। और हम सबको ख्याल
है कि जंगल एक संघर्ष है, कांफ्लिक्ट है, हिंसा है। बड़ा सहयोग है। लेकिन आदमी ने जो जंगल बनाया है, जिसका नाम सभ्यता है, समाज है, वह बिल्कुल संघर्ष है। और दिखाई बिल्कुल नहीं पड़ता। और पूरे समय एक-दूसरे की दुश्मनी में सारा का सारा जाल फैलता चला जाता है।
क्रोपाटकिन वही कह रहा है, जो लाओत्से ने किसी दूसरे तल पर, और गहरे तल
पर कहा था। लाओत्से कहता है, सहयोग। लेकिन सहयोग वे ही लोग कर सकते हैं, जिनके भीतर संकल्प क्षीण हो। कलह वे ही लोग कर सकते हैं, जिनके भीतर संकल्प मजबूत हो। संकल्प जितना ज्यादा होगा, कलह उतनी ज्यादा होगी। संकल्प कलह का सूत्र है। संकल्प क्षीण होगा, शून्य होगा, कलह विदा हो जाएगी। लड़ने वाला तत्व ही नहीं रह जाएगा, जो लड़ सकता था।
इसे थोड़ा प्रयोग करके देखें। और लाओत्से की सारी चीजें प्रयोग करने जैसी हैं। और प्रयोग करेंगे, तो ख्याल में ज्यादा गहरा आएगा। मुझे सुन लेंगे, उतने से बात बहुत साफ नहीं होगी। मुझे सुन कर लगेगा भी कि समझ गए, तो भी समझ में नहीं आएगा। यह समझ ऐसी ही होगी, जैसे अंधेरे में थोड़ी सी बिजली कौंध जाए। एक क्षण को लगे कि सब दिखाई पड़ने लगा, और फिर क्षण भर बाद अंधेरा हो जाए। क्योंकि आपका जो अपना तर्क है, वह तर्क लंबा है। वह जन्मों-जन्मों का है। जन्मों-जन्मों का जो तर्क है, वह तो कलह का है, संघर्ष का है। इस संघर्ष के तर्क की लंबी यात्रा में जरा सी बिजली कौंध जाए कभी सहयोग की किसी की बात से, तो वह कितनी देर टिकेगी? जब तक कि आप सहयोग के लिए भी कोई प्रयोग न करें, जब तक कि आपके संघर्ष के अनुभव के विपरीत सहयोग का अनुभव भी खड़ा न हो जाए।
उसे थोड़ा प्रयोग करें। एक सात दिन का नियम। किसी भी सूत्र को समझने के लिए कम से कम सात दिन का नियम ले लें कि कल सुबह से सात दिन तक सहयोग करूंगा, चाहे कुछ भी हो जाए। जहां-जहां संघर्ष की स्थिति बनेगी, वहां-वहां सहयोग करूंगा। और इस सूत्र का राज खुल जाएगा।
इन सब सूत्रों का राज व्याख्या से नहीं, प्रतीति से खुलता है।
व्याख्या से समझ में आ जाए इतना ही कि प्रयोग करने जैसा है, उतना काफी है।
जिससे लड़े थे, उससे सहयोग कर लें। जिससे लड़े होते, उससे सहयोग कर लें। जिस परिस्थिति में अकड़ कर खड़े हो गए होते, उस परिस्थिति में लेट जाएं, बह जाएं।

और देखें, सात दिन में आप मिटे या बने? देखें, सात दिन में आप कमजोर हुए कि शक्तिशाली हुए? देखें, सात दिन में आप खो गए कि बचे? देखें, सात दिन में कि आप बीमार हैं या स्वस्थ?
और एक बिल्कुल ही नए तरह के स्वास्थ्य का गुण अनुभव में आना शुरू हो सकता है।
आज इतना ही। फिर कल बात करेंगे।

ताओ उपनिषद, भाग एक
ग्यारहवां प्रवचन

कोरे ज्ञान से इच्छा-मुक्ति व अक्रिय व्यवस्था की ओर

Chapter 3 : Sutra 3

He constantly tries to keep them without knowledge and without desire, and where there are those who have knowledge, to keep them from presuming to act (on it). When there is this abstinence from action, good order is universal.

अध्याय 3 : सूत्र 3

वे उन्हें कोरे ज्ञान और इच्छादि से मुक्त रखने का प्रयास करते हैं।
और जहां ऐसे लोग हैं, जो निपट जानकारी से भरे हैं, उन्हें ऐसी जानकारी के उपयोग से बचाने की यथाशक्य चेष्टा करते हैं। जब अक्रियता की ऐसी अवस्था उपलब्ध हो जाए, तब जो सुव्यवस्था बनती है, वह सार्वभौम होती है।

जो जानते हैं, वे लोगों को कोरे ज्ञान से मुक्त रखने का प्रयास करते हैं।
साधारणतः हम सोचते हैं कि अज्ञान बुरा है, अशुभ है; और ज्ञान अपने आप में शुभ है। लाओत्से ऐसा नहीं सोचता। न ही उपनिषद के ऋषि ऐसा सोचते हैं।
और न ही पृथ्वी पर जिन लोगों ने भी परम ज्ञान को पाया है, उनकी ऐसी धारणा है।
उपनिषदों में एक सूत्र है कि अज्ञानी तो अंधकार में भटक ही जाते हैं, ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं।
अकेला जान लेना न जानने से भी खतरनाक है। अज्ञानी विनम्र होता है। उसे कुछ पता नहीं है। और जिसे कुछ पता नहीं है, उसे अहंकार को निर्मित करने का आधार नहीं होता। उसे यह भ्रम भी नहीं होता कि मैं जानता हूं। इसलिए मैं को मजबूत करने की सुविधा भी नहीं होती। समझ लेना जरूरी है कि धन भी अहंकार को उतना मजबूत नहीं करता, पद भी नहीं करता, जितना ज्ञान करता है। यह ख्याल कि मैं जानता हूं, जितने दंभ से, जितनी ईगो से आदमी को भर जाता है, उतनी कोई और चीज नहीं भरती है।
इसलिए पंडितों से ज्यादा अहंकारी व्यक्ति खोजना कठिन है। और इसलिए यह
भी घटना घटी है कि ज्ञान के दंभ से जो भरा है, वह सड़क पर भीख मांगने को राजी हो सकता है, नंगा रहने को राजी हो सकता है, भूखा मरने को राजी हो सकता है। उसे महल नहीं चाहिए। उसे बड़े राज-सिंहासन नहीं चाहिए। लेकिन वह जो जानता है, अगर उसे प्रतिष्ठा मिलती हो, तो वह सब त्याग करने को तैयार हो सकता है। धन को छोड़ देना आसान है, पद को छोड़ देना आसान है। जानकारी को, ज्ञान को, नालेज को छोड़ देना अति कठिन है। हम सब छोड़ कर जा सकते हैं--परिवार को, प्रियजनों को--लेकिन जो हमने जाना है, उसे हम छोड़ कर नहीं हट सकते। क्योंकि वह हमारा प्राण है। जो हम जानते हैं, अगर वही हमसे हटा लिया जाए, तो हम शून्य हो जाते हैं। जानकारी ही हमारी सब कुछ संपदा है। वही है हमारा मन, हमारा माइंड, जो हम जानते हैं, उसका जोड़ है, एक्यूमुलेशन है। अगर जानते नहीं हैं कुछ, हटा दिया जाए, तो हम खाली और रिक्त और कोरे हो जाते हैं।
अभी मैं एक सूफी किताब देख रहा हूं। पहली दफा प्रकाशित हुई है। किताब
तो एक हजार साल पुरानी है। एक हजार साल में बहुत दफे सोचा गया कि उसे प्रकाशित किया जाए। लेकिन फिर प्रकाशित नहीं किया जा सका। क्योंकि कोई प्रकाशक, कोई पब्लिशर उसे छापने को राजी न हुआ। बात क्या थी कि कोई पब्लिशर उसे छापने को राजी न हुआ? बात यह है कि उस किताब में कुछ लिखा हुआ नहीं है। दो सौ पृष्ठ की किताब है कोरी! उस किताब की कहानी जरूर लंबी है। और सूफियों के हाथ में वह किताब पीढ़ी दर पीढ़ी दी जाती रही है। और कब किसने

उस किताब को पढ़ कर क्या कहा, उसका भी इतिहास निर्मित हो गया है। पढ़ने को उसमें कुछ है नहीं। लेकिन जब एक सूफी गुरु ने दूसरे को उसे दिया, तो उसने पढ़ कर जो वक्तव्य दिया, वह संगृहीत हो गया है।
अभी वह किताब प्रकाशित हुई है। पर वह पब्लिशर भी सीधी किताब छापने को राजी नहीं हुआ। उसने कहा कि पहले वे जो-जो बातें किताब के बाबत कही गई हैं, वे भी लिखी जाएं, तो कुछ छापने जैसा हो। ये दो सौ पेज खाली! तो दो सौ पेज खाली छापे हैं और नौ पन्ने आगे लिखित छापे हैं। वे किताब के हिस्से नहीं हैं। वह किताब के संबंध में लोगों ने जो कहा है वह है।
जिस व्यक्ति ने यह किताब पहली दफा दी अपने शिष्य को, उसने कहा कि ठीक
से पढ़ लेना, क्योंकि जो भी जानने योग्य है, वह सब मैंने इसमें लिख दिया है। आल दैट इ.ज वर्थ नोइंग! शिष्य ने किताब खोली, और उसमें तो कुछ भी नहीं था। उसने अपने गुरु को कहा, लेकिन इसमें तो कुछ भी नहीं है। तो उसके गुरु ने कहा कि दैट मीन्स नथिंग इ.ज वर्थ नोइंग। इसका अर्थ है कि कुछ जानने योग्य नहीं है। इसमें मैंने वह सब लिख दिया है जो जानने योग्य है। और जिस दिन तू इस किताब को पढ़ने में समर्थ हो जाएगा, उस दिन तू सब किताबों से मुक्त हो जाएगा।
इसलिए इस किताब का नाम हैः दि बुक ऑफ दि बुक्स, शास्त्रों का शास्त्र। इसमें कुछ है नहीं।
फिर जब दूसरे शिष्य को वह किताब दी गई, तो उसने किताब खोली ही नहीं। उसके गुरु ने कहा, खोल कर पढ़ भी! पर उसने कहा कि पढ़ने से कभी कुछ नहीं मिलेगा, यह मैं जानता हूं। इसे भी पढ़ने से कुछ न मिलेगा। तो उसके गुरु ने कहा कि इसीलिए तुझे मैंने योग्य समझा कि यह किताब तुझे दे दूं, क्योंकि जो पढ़ने वाले हैं, उनके यह किसी काम की नहीं है। कथा है कि उस शिष्य ने किताब जिंदगी भर नहीं खोली।
बड़ी कठिन बात है। किताब आपके हाथ में हो और जिंदगी भर न खोली हो, बड़ी कठिन बात है। मरते वक्त अपने जिस शिष्य को उसने सौंपा, उसे उसने कहा कि ध्यान रख, मैंने इसे कभी पढ़ा नहीं। और मेरे गुरु ने मुझे यह इसीलिए दी थी कि वे जानते थे कि पढ़ने में मेरी उत्सुकता नहीं, जानने में मेरी उत्सुकता है। मैं तुझे सौंपता हूं, इसी आशा में कि तू भी जानने की चेष्टा में लगेगा, पढ़ने की चेष्टा में नहीं।
पढ़ने से जो ज्ञान मिल जाएगा, वह सिर्फ ज्ञान जैसा प्रतीत होता है। धोखा होता है। सूडो नालेज होती है। दिखाई पड़ता है कि ज्ञान है; वह ज्ञान होता नहीं।
लाओत्से जो कह रहा है, यह कह रहा है कि जो जानते हैं--अब बड़ी मजेदार बात है--जो जानते हैं, वे लोगों को जानने से रोकते हैं। क्योंकि वे यह जानते हैं कि लोगों के भटकने का जो सुगमतम मार्ग है, वह जानकारी है।
हमारे ही मुल्क में यह घटना घटी है। और पृथ्वी पर इतने सघन रूप से कहीं भी नहीं घटी है। हमारे मुल्क में जितना हम जानते हैं सत्य के संबंध में, पृथ्वी पर कोई भी नहीं जानता; और जितने असत्य में हम जीते हैं, उतना भी कोई नहीं जीता। धर्म के संबंध में हमारी जितनी जानकारी है, इतनी जानकारी सारी दुनिया की भी इकट्ठी मिला दें, तो हमारा पलड़ा भारी रहेगा। लेकिन अधर्म जैसा हमें सरल है, ऐसा पृथ्वी पर किसी को भी नहीं है। बात क्या है? भूल कहां हो गई होगी? हमें तो दुनिया में सबसे ज्यादा धार्मिक लोग होना चाहिए था। और हमारे जीवन से तो सत्य का प्रकाश ही निकलता। और परमात्मा की छबि ही हमारे चारों तरफ हमें दिखाई पड़ती। वह तो हमें दिखाई नहीं पड़ती। हां, बात हम सर्वाधिक करते हैं। ईश्वर के संबंध में जितनी बात हम करते हैं, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। लेकिन ईश्वर से हमारी कोई पहचान नहीं होती। वह वही भूल हो गई है, जो लाओत्से कह रहा है, जानकारी जानने से रोक देती है। लाओत्से के शिष्य च्वांगत्से ने कहा है कि इफ यू वांट टु नो, बिवेयर ऑफ नालेज। अगर जानना चाहो, तो ज्ञान से सावधान!
ये वाक्य कंट्राडिक्टरी मालूम पड़ते हैं, स्वविरोधी मालूम पड़ते हैं। क्योंकि च्वांगत्से कहता है, जानना चाहो, तो जानने से सावधान! क्यों? जानना चाहो और जानने से सावधान! हां, कोई कहता, न जानना चाहो और जानने से सावधान, तो संगत, तर्कयुक्त बात मालूम होती।

च्वांगत्से कहता है, जानना चाहो, तो जानकारी से सावधान। क्योंकि जिसे जानकारी मिल जाती है, वह जानने से वंचित रह जाता है।
क्यों? क्योंकि जानकारी होती है उधार, किसी और ने जाना। कोई रामकृष्ण कहते हैं कि परमात्मा है, कोई रमण कहता है कि परमात्मा है। हमने सुना, माना और हमने भी कहना शुरू किया कि परमात्मा है। यह जानकारी है। हमने जाना नहीं है। किसी और ने जाना है; उधार है।
और ध्यान रहे, ज्ञान उधार नहीं हो सकता। इस जगत में सब चीजें उधार मिल सकती हैं। एक चीज उधार नहीं मिलती, वह ज्ञान है। इस जगत में सभी चीजें दूसरों से पाई जा सकती हैं, एक चीज दूसरों से नहीं पाई जा सकती, वह ज्ञान है। जानने में और जानकारी में यही फर्क है। जानना होता है स्वयं का और जानकारी होती है किसी और से। कोई और कह देता है। कबीर को सुन लेता है कोई। नानक को सुन लेता है कोई। और जो सुना, वह जानकारी बन जाती है। लेकिन जानकारी से ज्ञान का भ्रम पैदा होता है। अगर हम पुनरुक्त करते जाएं, जानकारी को बार-बार दोहराते जाएं, दोहराते जाएं, तो हम यह भूल ही जाते हैं कि यह हमारा जाना हुआ नहीं है। बार-बार दोहराने से लगता है कि मैं जानता हूं।
सुना है मैंने कि नसरुद्दीन पर एक मुकदमा चला। चोरी का मुकदमा है। और अदालत में मजिस्ट्रेट ने कहा... बड़ी मुश्किल से, मजिस्ट्रेट सख्त था बहुत, बहुत मुश्किल से ही नसरुद्दीन का वकील नसरुद्दीन को बचा पाया। जब अदालत के बाहर निकलते थे, तो वकील ने पूछा कि नसरुद्दीन, सच तो बताओ, चोरी तुमने की भी थी या नहीं? नसरुद्दीन ने कहा कि तुम्हें सुन-सुन कर महीनों तक, मुझे भी शक आने लगा है कि मैंने चोरी की थी? मुझे भी शक होने लगा है। यू हैव कनविंस्ड मी सो मच! नसरुद्दीन ने कहा, इतना तुमने मुझे भरोसा दिलवा दिया, मजिस्ट्रेट ही राजी नहीं हुआ, मैं भी राजी हो गया हूं। अब तो मुझे भी शक आता है कि सच में मैंने चोरी की थी या नहीं की थी।
एक बात बार-बार सुन कर कठिनाई हो जाती है। और दूसरे से सुन कर नहीं, जब
आप खुद ही दोहराते रहते हैं। बचपन से दोहराते रहते हैं, ईश्वर है, ईश्वर है, ईश्वर है। खून के साथ मिल जाती है बात। हड्डियों में समा जाती है। मांस-पेशियों में घुस जाती है। रोएं-रोएं से बोलने लगती है। होश नहीं था, तभी से पता चलता है कि ईश्वर है। फिर दोहराते-दोहराते-दोहराते-दोहराते याद ही नहीं रह जाता कि कोई क्षण था जब मैंने सवाल उठाया हो कि ईश्वर है? लगता है, सदा से मुझे मालूम है कि ईश्वर है।
अब यह जानकारी आत्मघाती है। अब जब हमें पता ही है कि ईश्वर है, तो खोजने क्यों जाएं? जो मालूम ही है, उसकी तलाश क्यों करें? जो पता ही है, उसके लिए श्रम क्यों उठाएं? इसलिए पूरा मुल्क अध्यात्म की चर्चा करते- करते गैर-आध्यात्मिक हो गया। अगर इस मुल्क को कभी धार्मिक बनाना हो, तो एकबारगी समस्त धर्मशास्त्रों से छुटकारा पा लेना पड़े। एक बार जानकारी से मुक्ति हो, तो शायद हम फिर तलाश पर निकल सकें, खोज पर निकल सकें।
तो लाओत्से कहता है, जो जानते हैं, वे लोगों को ज्ञान से बचाते हैं।
ज्ञान से बचाने का एक तो कारण यह है कि ज्ञान उधार होता है। लाओत्से
उस ज्ञान की बात नहीं कह रहा है, जो भीतर, अंतःस्फूर्त होता है। अगर ठीक से समझें, तो दोनों में बड़े फर्क हैं। जो भीतर से जन्मता है, जो स्वयं का होता है, वह नालेज कम और नोइंग ज्यादा होता है। ज्ञान कम और जानना ज्यादा होता है। असल में, जो ज्ञान भीतर आविर्भूत होता है, वह ज्ञान की तरह संगृहीत नहीं होता, जानने की क्षमता की तरह विकसित होता है। जो ज्ञान बाहर से इकट्ठा होता है, वह संग्रह की तरह इकट्ठा होता है, भीतर इकट्ठा होता जाता है। आप अलग होते हैं, ज्ञान का ढेर अलग लगता जाता है। आप ज्ञान के ढेर के बाहर होते हैं। वह आपको छूता भी नहीं। आप अलग खड़े रहते हैं।
जैसे आप अपने कमरे में खड़े हैं और आपके चारों तरफ रुपए का ढेर लगा दिया जाए। इतना ढेर लग जाए कि रुपए में आप बिल्कुल डूब जाएं, सब तरफ रुपए आपको घेर लें, गले तक आप दब जाएं--आकंठ। लेकिन फिर भी आप रुपया नहीं हो गए हैं। आप अभी भी अलग हैं। और एक झटका देकर आप बाहर हो सकेंगे। और नहीं हैं बाहर, तब भी बाहर हैं। आप रुपया नहीं हो गए हैं।

एक तो ज्ञान है, जो बाहर से इसी तरह इकट्ठा होता है, हमारे चारों तरफ इकट्ठा होता है। एराउंड एंड एराउंड, चारों ओर, लेकिन भीतर नहीं। जो भी बाहर से आता है, वह धूल की तरह इकट्ठा होता जाता है, वस्त्रों की तरह इकट्ठा होता जाता है।
जो भीतर से जन्मता है, वह ज्ञान संग्रह की तरह इकट्ठा नहीं होता, वह आपकी चेतना की तरह विकसित होता है। इट इ.ज मोर नोइंग एंड लेस नालेज। वह आपकी चेतना बन जाती है। ऐसा नहीं कि आप ज्यादा जानते हैं; आपके पास ज्यादा जानने की क्षमता है।
नानक या कबीर या बुद्ध या लाओत्से ज्यादा नहीं जानते हैं। और आप में
से कोई भी उनको परीक्षा में परास्त कर सकता है। उनकी जानकारी बहुत नहीं है, लेकिन जानने की क्षमता बहुत है। अगर एक ही चीज पर आप और वे, दोनों जानने में लगें, तो वे इतना जान लेंगे, जितना आप न जान सकोगे। अगर एक पत्थर बीच में रख दिया जाए, तो वे उस पत्थर से परमात्मा को भी जान लेंगे। आप पत्थर को भी न जान पाओगे। हो सकता है, पत्थर के संबंध में जानकारी आपकी ज्यादा हो, लेकिन पत्थर में गहराई आपकी ज्यादा नहीं हो सकती। जानकारी सुपरफीशियल होती है, धरातल पर होती है, और जानना अंतःस्पर्शी होता है।
ध्यान रहे, अगर आपके चारों तरफ ज्ञान है, तो आप चीजों से परिचित होते रहेंगे।
बर्ट्रेंड रसल ने दो भेद किए हैं ज्ञान के--करीब-करीब ठीक ऐसे। एक को
वह कहता है एक्वेनटेंस, परिचय; और दूसरे को वह कहता है नालेज। जो परिचय है वह हमारे पास इकट्ठा हो जाता है; और जो ज्ञान है वह हमारे पास इकट्ठा नहीं होता, वह हम को ही रूपांतरित कर जाता है। ज्ञान और ज्ञानी में फर्क नहीं होता; जानकारी में और जानने वाले में फासला होता है, डिस्टेंस होता है, स्पेस होती है, जगह होती है।
तो लाओत्से कहता है कि जो जानते हैं, वे लोगों को जानकारी से बचाएंगे। इसीलिए बचाएंगे, ताकि कभी लोग भी उस दुनिया में प्रवेश कर सकें, जहां जानने की घटना घटती है। इसलिए समस्त ज्ञानियों ने ज्ञान पर जोर नहीं दिया, ध्यान पर जोर दिया। ध्यान से क्षमता बढ़ती है जानने की, और ज्ञान से तो केवल संग्रह बढ़ता है।
यह फर्क आप ख्याल में ले लेंः संग्रह और क्षमता।
महावीर ने तो कहा कि जिस दिन परम ज्ञान होता है, उस दिन न जानने वाला बचता है, न जाने जाने वाली वस्तु बचती है, न जानकारी बचती है; बस केवल ज्ञान ही बच रहता है, सिर्फ जानना ही बच रहता है। न पीछे कोई जानने वाला होता, न आगे कुछ जानने को शेष होता; जस्ट ए नोइंग, सिर्फ जानना मात्र रह जाता है। जैसे एक दर्पण हो, जिसमें कोई प्रतिबिंब न बनता हो, क्योंकि उसके आगे कुछ भी नहीं है; दर्पण हो, उसमें कोई रिफ्लेक्शन न बनता हो, क्योंकि आगे कोई आब्जेक्ट नहीं है, कोई वस्तु नहीं है जिसका बने। फिर भी दर्पण तो दर्पण होगा। लेकिन देन इट इ.ज जस्ट ए मिरर। और भी ठीक होगा कहना, देन इट इ.ज जस्ट ए मिररिंग। कुछ भी तो नहीं बन रहा है उसमें, लेकिन अभी दर्पण तो दर्पण है।
महावीर कहते हैं, जब सच में ही आंतरिक ज्ञान का आविर्भाव होता है अपनी पूर्णता में, तो व्यक्ति सिर्फ जानने की एक क्षमता मात्र रह जाता है; जानकारी बिल्कुल नहीं बचती। और ध्यान रहे, जानकारी जहां खत्म होती है, वहीं जानने वाला भी खत्म हो जाता है।
इसलिए लाओत्से के जोर का दूसरा हिस्सा भी ख्याल में ले लें कि जानकारी जानने वाले को मजबूत करती है और ज्ञान जानने वाले को मिटा डालता है। ये फर्क हैं। आप जितना ज्यादा जानने लगेंगे, उतना आपका मैं सघन, क्रिस्टलाइज्ड हो जाएगा। आपकी चलने में अकड़ बदल जाएगी; आपके बोलने का ढंग बदल जाएगा। आपके भीतर कोई एक बिंदु निरंतर, मैं जानता हूं, खड़ा रहेगा। जानकारी जितनी बढ़ती जाएगी, उतना ही यह मैं भी मजबूत होता चला जाएगा।
इससे उलटी घटना घटती है, जब ज्ञान विकसित होता है, आविर्भाव होता है भीतर से, जानने की क्षमता का जन्म होता है, तो बड़े मजे की बात है, वह जो मैं है, एकदम शून्य होते-होते विलीन हो जाता है। जिस दिन पूरी तरह मैं विलीन

होता है, उसी दिन वह जिसे महावीर केवल ज्ञान, अकेला ज्ञान कह रहे हैं, वह फलित होता है।
पंडित और ज्ञानी में यही फर्क है।
लाओत्से के पास कनफ्यूशियस गया था। और कनफ्यूशियस ने लाओत्से से कहा था, मुझे कुछ उपदेश दें, जिससे कि मैं अपने जीवन का निर्धारण कर सकूं।
लाओत्से ने कहा कि जो दूसरे के ज्ञान से अपने जीवन का निर्धारण करता है, वह भटक जाता है। मैं तुम्हें भटकाने वाला नहीं बनूंगा।
बड़ी दूर की यात्रा करके कनफ्यूशियस आया था। और कनफ्यूशियस बुद्धिमान
से बुद्धिमान लोगों में से एक था; बहुत जानते हैं जो लोग, उनमें से एक था।
कनफ्यूशियस ने कहा, मैं बहुत दूर से आया हूं, कुछ तो ज्ञान दें।
लाओत्से ने कहा, हम ज्ञान को छीनने का काम करते हैं; देने का अपराध हम नहीं करते।
यह हमें कठिन मालूम पड़ेगा। लेकिन सच ही आध्यात्मिक जीवन में गुरु ज्ञान को छीनने का काम करता है। वह आपकी सब जानकारी झड़ा डालता है। पहले वह आपको अज्ञानी बनाता है। ताकि आप ज्ञान की तरफ जा सकें। पहले वह आपकी जानकारी गिरा डालता है और आपको वहां खड़ा कर देता है जो आपका निपट अज्ञान है।
सच में ही क्या हम जानते हैं? अगर ईमानदारी से हम पूछें, जानते हैं ईश्वर को? लेकिन कहे चले जाते हैं। न केवल कहे चले जाते हैं, लड़ सकते हैं, विवाद कर सकते हैं। है या नहीं, संघर्ष कर सकते हैं। जानते हैं हम आत्मा को? लेकिन सुबह-शाम उसकी बात किए जाते हैं। आम आदमी नहीं, राजनीतिज्ञ कहता है कि उसकी आत्मा बोल रही है। अंतरात्मा की आवाज आ रही है राजनीतिज्ञ को। कोरे शब्द! आपको छाती के भीतर किसी आत्मा का कभी भी कोई पता चलता है? कोई स्पर्श कभी हुआ है उसका जिसे आत्मा कहते हैं? कोई स्पर्श नहीं हुआ, कोई संपर्क नहीं हुआ, एक किरण भी उसकी नहीं मिली है। पर कहे चले जाते हैं।
तो गुरु पहले तो यह सारी जानकारी को झड़ा डालेगा, काट डालेगा एक-एक जगह से, कि पहले तो वहां खड़ा कर दूं जहां तुम हो। क्योंकि यात्रा वहां से हो सकती है जहां आप हैं, वहां से नहीं जहां आप समझते हैं कि आप हैं। अगर मुझे किसी यात्रा पर निकलना है और मैं इस कमरे में बैठा हूं, तो इसी कमरे से मुझे चलना पड़ेगा। लेकिन मैं सोचता हूं कि मैं आकाश में बैठा हुआ हूं। तो मैं सोचता भला रहूं, लेकिन कोई भी यात्रा उस आकाश से शुरू नहीं हो सकती। मैं जहां हूं, वहां से यात्रा का पहला कदम उठाना पड़ता है। मैं सोचता हूं जहां हूं, वहां से कोई यात्रा नहीं होती। और अगर मैं जिद्द में हूं कि मैं वहीं से यात्रा करूंगा जहां कि मैं हूं नहीं, सोचता हूं कि हूं, तो मैं कभी यात्रा पर नहीं जाने वाला हूं।
तो पहले तो गुरु ज्ञान को छीन लेता है; अज्ञानी बना देता है। बड़ी घटना है! आदमी इस जगह आ जाए कि सचाई और ईमानदारी से अपने से कह सके कि मैं अज्ञानी हूं, मैं नहीं जानता हूं; मुझे कुछ भी पता नहीं है। अगर कोई व्यक्ति पूरी सचाई से अपने समक्ष इस सत्य को उदघाटित कर ले, तो वह ज्ञान के मंदिर की पहली सीढ़ी पर खड़ा हो जाता है।
इसलिए लाओत्से कहता है, ज्ञानी, जो जानते हैं, वे लोगों को जानकारी नहीं देते, उनसे जानकारी छीन लेते हैं।
इसलिए आपको असली गुरु प्रीतिकर नहीं लगेगा। आप तो गुरु के पास भी कुछ लेने को जाते हैं। और असली गुरु तो, जो भी है आपके पास, उसको भी छीन लेगा। आप तो जाते हैं सत्संग में कि कुछ शब्द सुन लेंगे और आप उन शब्दों के संबंध में गपशप कर सकेंगे; कुछ जानकारी ले आएंगे और किसी और के सामने गुरु बनने का आनंद ले सकेंगे; किसी के सामने अकड़ कर खड़े हो जाएंगे और बता सकेंगे कि जानते हैं कुछ।
इसलिए असली गुरु बहुत अप्रीतिकर लगता है। वह आपको सब जगह से काटता है। वह जो-जो आप जानते हैं वहां-वहां से आपकी जड़ें हिलाता है। इसलिए असली गुरु के पास जाने में बड़ी घबड़ाहट होती है। क्योंकि वह आपको नग्न करेगा, वह आपके एक-एक वस्त्र को निकाल कर अलग फेंक देगा, वह आपके सब आवरण अलग कर देगा। वह आपको वहीं खड़ा कर देगा, जहां आप हैं।

बहुत दुखद है वहां खड़ा होना, जहां आप हैं; इसे वह भी जानता है। बहुत अरुचिकर है यह बात जाननी कि मुझे कुछ भी पता नहीं है; यह वह भी जानता है। लेकिन वह यह भी जानता है कि इसे जाने बिना जानने के जगत में कोई यात्रा नहीं हो सकती। इसलिए लाओत्से ठीक कहता है।
लाओत्से की यह किताब बहुत प्रचलित नहीं हो पाई; लाओत्से के ये वचन बहुत व्यापक नहीं हो पाए। क्योंकि कौन अज्ञानी बनने को राजी है? ज्ञानी बनने को हम सब राजी हैं। हमारे विश्वविद्यालय, हमारे स्कूल, हमारे कालेज, हमारे पंडित-पुरोहित, हमारे महात्मा-साधु, सब ज्ञान बांट रहे हैं। और मजा यह है कि इतना ज्ञान बंटता है, और इतना ही अज्ञान बढ़ता चला जाता है। जरूर इस ज्ञान के पीछे कहीं कोई भूल हो रही है। यह ज्ञान अज्ञान को तोड़ने वाला नहीं, बढ़ाने वाला सिद्ध हो रहा है। तो लाओत्से की बात तो कठिन मालूम पड़ेगी।
साथ ही, वह कहता है, "वे उन्हें कोरे ज्ञान और इच्छादि से मुक्त रखने
का प्रयास करते हैं।"
इच्छाओं से मुक्त करने की बात तो हम सुनते हैं। साधारण साधु-संत भी इच्छाओं से मुक्त होने की बात करते हैं। इसलिए लगेगा कि लाओत्से की इस बात में तो कोई नई बात नहीं, ठीक है।
नहीं, लाओत्से की इस बात में भी कुछ नई बात है। क्योंकि लाओत्से मानता
है कि इच्छाएं सिर्फ संसार की नहीं होतीं, मोक्ष की इच्छाएं भी इच्छाएं हैं। इसलिए ज्ञानी लोगों को इच्छाओं से मुक्त रखने की कोशिश करता है। अगर हमारा साधारण साधु कह रहा होता, तो वह कहता, सांसारिक इच्छाओं से मुक्त रखने की कोशिश करता है। यह सांसारिक विशेषण जरूर ही जुड़ा होता है। इसका मतलब है कि असांसारिक इच्छाएं भी हो सकती हैं। जब मंदिरों में बैठ कर साधु लोगों को समझाते रहते हैं कि सांसारिक इच्छाएं छोड़ो, तब उनका मतलब साफ है कि असांसारिक इच्छाएं भी हो सकती हैं। निश्चित ही, मोक्ष पाना है, परमात्मा के दर्शन करने हैं, जन्म-मरण से छुटकारा पाना है, ये तो असांसारिक इच्छाएं हैं।
लेकिन लाओत्से को अगर समझना है, तो आपको समझना पड़ेगा, लाओत्से कहता है, इच्छा संसार है। सांसारिक इच्छाएं नहीं होतीं, इच्छा में होना ही संसार में होना है। ऐसा नहीं है कि कुछ इच्छाएं ऐसी भी हैं कि उनके द्वारा कोई आदमी मुक्त हो जाए। क्योंकि लाओत्से कहता है, इच्छा ही बंधन है। वह कोई भी इच्छा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इच्छा की क्वालिटी में, गुण में कोई भेद नहीं होता।
मैं धन चाहता हूं, तो क्या होता क्या है मेरे मन के भीतर? इस मैकेनिज्म
को थोड़ा समझ लें। मैं धन चाहता हूं, तो मेरे भीतर क्या होता है? चाह होती है अभी, धन तो अभी नहीं होता। धन होगा भविष्य में--कल, परसों, कभी। अभी तो नहीं, कभी। मैं हूं अभी, धन होगा कभी। और मेरा जो अभी होना है, वह कभी जो हो सकता है धन, उसको चाहने की वजह से खिंचेगा और तनाव से भरेगा। जितने दूर होगा वह, उतना ही तनाव होगा। वर्ष भर बाद मिलेगा, तो वर्ष भर का तनाव होगा। मेरे मन को आज से वर्ष भर तक फैल जाना पड़ेगा; और वर्ष भर बाद जो धन है, उसको सपने में छूना और पकड़ना पड़ेगा। इच्छा का मतलब यह है।
मोक्ष और भी दूर है। परमात्मा और भी दूर मालूम पड़ता है। अगर मुझे परमात्मा को पाना है, तो एक जन्म काफी नहीं मालूम होगा; अनंत जन्म लेने पड़ेंगे, तब मिलेगा। तो अनंत जन्मों तक मेरी इच्छा की बांह को मुझे फैलाना पड़ेगा--परमात्मा को पकड़ने के लिए। खिंच गया मैं, तन गया। इच्छा का अर्थ है, तनाव की प्रक्रिया।
लाओत्से कहता है, ज्ञानी लोगों को इच्छादि से मुक्त करते हैं। उसका अर्थ है कि वे उनको तनाव से मुक्त करते हैं। ज्ञानी कहते हैं, अभी रहो--अभी, यहीं। कल को भूल जाओ। कल के धन को भी, कल के धर्म को भी, कल के यश को भी, कल के प्रभु को भी। क्योंकि अगर कल कुछ भी तुम्हारा है, तो इच्छा रहेगी, और तुम तने रहोगे। और तुम तने रहोगे और इच्छा बनी रहेगी, तो तुम बंधे रहोगे-- अशांत, पीड़ित, परेशान। लाओत्से कहता है, इच्छादि से। इच्छाओं में कोई विश्लेषण नहीं करता कि कौन सी इच्छाओं से।

अगर आप साधारण धर्मग्रंथ पढ़ने जाएंगे, तो तत्काल फासला किया जाता है
कि किन इच्छाओं से मुक्त हो जाओ--बुरी इच्छाओं से! अच्छी इच्छाओं से भर जाओ। सांसारिक इच्छाएं छोड़ दो; पारलौकिक इच्छाओं को निमंत्रण करो। इस जगत में पाने का इरादा छोड़ दो; यहां कुछ न मिलेगा। अगर पाना है, तो परलोक में! बल्कि ये सारे के सारे लोग जो इस तरह की बातें समझाते हुए रहते हैं, ये बड़े मजे की दलीलें देते हैं। वे कहते हैं कि यहां तुम जो भी पा रहे हो, यह क्षणिक है। और हम तुम्हें जो बता रहे हैं, वह शाश्वत है।
बड़ा मजे का प्रलोभन है। यह लोभ को उकसाना है। वे यह कह रहे हैं कि तुम नासमझ हो, धन के पीछे दौड़ रहे हो। हम समझदार हैं, हम धर्म के पीछे दौड़ रहे हैं। और देखना कि तुम धन पा भी लोगे, तो तुमसे छूट जाएगा। और हम जब धर्म को पा लेंगे, तो हमसे कोई छुड़ा न पाएगा।
तो इन दोनों आदमियों में जो फर्क है, वह होशियारी और चालाकी का है या इच्छा का है? यह जो दूसरा आदमी है, जो पारलौकिक इच्छा की बात कर रहा है, मोर कनिंग, ज्यादा चालाक मालूम होता है; मोर कैलकुलेटिंग, ज्यादा होशियार और गणित लगाने वाला मालूम होता है। वह कहता है कि इस जगत की स्त्रियों को पाकर क्या करोगे? इनका सौंदर्य अभी है और अभी नहीं हो जाएगा। स्वर्ग में अप्सराएं हैं, उन्हें पाओ! उनका सौंदर्य कभी स्खलित नहीं होता। यहां सुख पा रहे हो? क्षणभंगुर है सुख; पानी के बबूले जैसा है; हाथ छुओगे, लगाओगे कि टूट जाएगा। हम तुम्हें उस सुख का रास्ता बताते हैं, जो शाश्वत है। यह जो मन बोल रहा है, वासनाग्रस्त है। और इस बात को समझ कर जो चल पड़ेगा, वह वासना से ही चल पड़ा है।
लाओत्से बिना किसी शर्त के कहता है, इच्छादि से मुक्त। कौन सी इच्छा नहीं, इच्छा से मुक्त। कल की मांग नहीं, आज का जीवन! कल का भरोसा नहीं, आज के साथ जीवन! भविष्य में कोई सपनों का फैलाव नहीं, इसी क्षण जो है, उसी में मौजूदगी!
इच्छारहितता का अर्थ है, टु बी प्रेजेंट इन दि प्रेजेंट। वासनारहितता
का अर्थ है, अभी जो है, वहीं होना। वासनारहितता का अर्थ है, यह क्षण पर्याप्त है; मैं इस क्षण के बाहर न जाऊंगा। जो है, उसके साथ ही जीऊंगा। दुख है तो दुख के साथ; सुख है तो सुख के साथ; अंधेरा है तो अंधेरा और रोशनी है तो रोशनी; और दिन है तो दिन और रात है तो रात। जो है अभी, उसके साथ मैं जीऊंगा। इसके पार मैं अपनी इच्छाओं के सपनों में नहीं खोऊंगा। इसका अर्थ है, सत्य के साथ जीना, तथ्य के साथ जीना; जो है, उसके साथ जीना।
लाओत्से कहता है, इच्छादि से मुक्त करते हैं वे, जो जानते हैं। वे नई-
नई इच्छाओं का प्रलोभन नहीं देते। वे कहते हैं, यह इच्छा छोड़ो और दूसरी पकड़ लो, ऐसा नहीं। क्योंकि उससे क्या फर्क पड़ेगा?
लेकिन हमें बहुत कठिनाई होगी। हमें आसानी रहती है; कोई कहता है, धन छोड़ो, धर्म पकड़ लो। तकलीफ होती है थोड़ी, लेकिन फिर भी पकड़ने को हमें वह कुछ देता है। सामान बदलता है, लेकिन मुट्ठी नहीं खुलती। मुट्ठी के भीतर हमने धन पकड़ा था। वह कहता है, धन छोड़ो, इसमें कोई सार नहीं है। और उसकी बात कोई ऐसी कठिन नहीं है बहुत समझ लेनी। हम को भी समझ में आ ही जाएगी किसी न किसी दिन कि कोई सार नहीं है। धन में कोई सार नहीं है, यह मूढ़ से मूढ़ आदमी को भी एक दिन समझ में आ जाता है, बहुत बुद्धिमान होने की जरूरत नहीं है। या है? धन में सार नहीं है, यह बुद्धिहीन से बुद्धिहीन को समझ में आ जाता है।
अगर नहीं आता, तो उसका कुल कारण इतना ही होता है कि उसके पास धन नहीं होगा। और कोई कारण नहीं होता। बुद्धिहीनता बाधा नहीं डालती। धन न हो, तो समझ में आना मुश्किल होता है। क्योंकि जो है ही नहीं, वह बेकार है, यह कैसे समझ में आएगा? लेकिन धन हो, तो बुद्धू को भी समझ में आ जाता है कि बेकार है; कुछ पाया नहीं। तब खुद ही मन होने लगता है कि कुछ और पाऊं, यह तो बेकार गया। तभी कोई नई वासनाओं को जगाने वाला अगर आपसे कहता है, धन को छोड़ो, धर्म
को पकड़ो, तो तत्काल आप धन छोड़ कर धन पकड़ लेते हैं। मुट्ठी फिर कायम हो जाती है।
और ध्यान रहे, धन बेकार है, यह समझने में बहुत बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है, लेकिन धर्म बेकार है, इसे समझने में बड़ी बुद्धिमत्ता की जरूरत है। मैंने कहा कि बुद्धू से बुद्धू भी समझ लेगा एक दिन कि धन बेकार है, और

बुद्धिमान से बुद्धिमान भी नहीं समझ पाता कि धर्म भी बेकार है। असल में, बेकार का मतलब यह है कि जिस चीज पर भी मुट्ठी बांधनी पड़ती है वह बेकार है।
क्योंकि जिस चीज पर आप मुट्ठी बांधते हैं, उसी के आप गुलाम हो जाते हैं। क्लिंगिंग, वह जो मुट्ठी का बांधना है, गुलामी शुरू हो जाती है।
आप जब किसी चीज पर मुट्ठी बांधते हैं, तो आप सोचते होंगे, मालिक हो गए! क्योंकि मुट्ठी आपकी बंधी है, चीज तो अंदर है; मालिक आप हैं। लेकिन आपको पता नहीं कि वह जो चीज भीतर है, आप उसके गुलाम हो गए। वह चीज तो आपकी बिना मुट्ठी के भी रह सकती है, लेकिन अब आपकी मुट्ठी उस चीज के बिना नहीं रह सकती। अगर आप धन को छोड़ देंगे मुट्ठी से, तो वह धन यह नहीं कहेगा कि ऐसा क्यों कर रहे हो? मुझे बड़े दुख में डाल रहे हो! लेकिन आप से कोई धन छीन लेगा, छुड़ा लेगा, तो आपकी मुट्ठी रोएगी, आपके प्राण भटकेंगे और चिंतित होंगे। तो गुलाम कौन हो गया है वहां?
और हम जिस चीज पर भी मुट्ठी बांधते हैं, उसी के बंधन को स्वीकार कर लेते हैं। और जिस चीज को भी हम चाहते हैं कि वह हमें कल मिले, वह हमारे आज को नष्ट कर जाती है। और मजा यह है कि जब वह कल हमें मिलेगी, तब भी हम उसे भोगने को कल न होंगे। क्योंकि इस बीच हमारी जो निरंतर की आदत हो गई है कल की, वह कल भी साथ रहेगी। क्योंकि कल जब आएगा, तो वह आज हो जाएगा। और आज को जीने का आपने कभी कोई अनुभव नहीं किया; आज में आप कभी जीए नहीं। आपका चिरंतन अभ्यास है कल में जीने का। यह जो आज, जिसे हम आज कह रहे हैं, यह भी तो कल कल था। जैसे ही आज बनता है, आपके लिए बेकार हो गया। आपका मन कल पर चला गया।
यह तो बड़ी मजेदार बात है। जब भी कल आएगा, आज हो जाएगा। और जब भी वह आज
हो जाएगा, तभी आप उसके लिए बेखबर हो जाएंगे। और हो सकता है, वर्षों उसकी प्रतीक्षा की हो। और हो सकता है, वर्षों तड़पे हों। वर्षों चाहा हो, मांगा हो, प्रार्थना की हो। और जब वह आएगा, तब आप वहां नहीं होंगे। क्योंकि वर्षों प्रार्थना करने वाला चित्त संस्कारित हो गया। यह तो कल में ही मांग करता रहेगा। यह फिर और आगे कल की मांग करने लगेगा।
हम रोज ही ऐसा करते हैं। ऐसा लगता है कि जैसे किसी आदमी की आंख में खराबी हो और वह पास न देख पाता हो; दूर का ही दिखाई पड़ता हो उसे। उसे दूर एक हीरा पड़ा हुआ दिखाई पड़ता है, वह भागता है। लेकिन जब तक वह हीरे के पास पहुंचता है, तब तक--उसकी आंख तो दूर ही देख सकती है, उसकी आंख पास नहीं देख सकती--जब तक वह हीरे के पास पहुंचता है, तब तक हीरा ओझल हो जाता है। क्योंकि उसकी आंख फारसाइटेड है, वह फिर दूर देखने लगता है। और इस आदमी को कभी ख्याल भी नहीं आता कि हर हीरे के साथ यही किया मैंने अब तक। यह फिर दौड़ेगा, क्योंकि फिर कोई चमकदार चीज इसे दिखाई पड़ने लगी। और ऐसे यह जिंदगी भर दौड़ेगा। और कभी इसे ख्याल न आएगा कि मेरे पास जो आंख है, वह फिक्स्ड है। वह पचास फीट के पार ही देखती है। पचास फीट के भीतर मैं अंधा हो जाता हूं, ब्लाइंड स्पाट आ जाता है।
हम सब ऐसे ही ब्लाइंड स्पाट में जीते हैं। आज जो है, वह अंधेरे में हो जाता है; और कल पर हमारी रोशनी पड़ती रहती है। कल बड़ा चमकदार दिखता है, जो नहीं है। कुछ कर नहीं सकते आप, सिर्फ चमकदार होना उसका सोच सकते हैं-- स्वप्न। कुछ कर नहीं सकते, कल में कुछ भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह है ही नहीं। आदमी की इम्पोटेंसी, आदमी की जो नपुंसकता है, उसके व्यक्तित्व का जो रिक्त रूप है, वह इस कारण है। कल में कुछ किया नहीं जा सकता, और आज कुछ कर नहीं सकते हैं। आज में कुछ किया जा सकता है, लेकिन आज में आप मौजूद नहीं हैं। और कल में कुछ किया नहीं जा सकता और आप सदा कल में मौजूद हैं। तो पूरी जिंदगी रिक्त हो जाती है।
यह जो आज हर आदमी को लगता है कि एक एम्पटीनेस है, एक खालीपन है। शून्य-शून्य सब, कहीं कुछ भराव नहीं, कोई फुलफिलमेंट नहीं। जो भी पाते हैं, वही बासा सिद्ध होता है; जो भी हाथ में आता है, वही फेंकने जैसा मालूम पड़ता है।
जिसको भी खोज लेते हैं, उसकी ही सारी अर्थवत्ता खो जाती है।
लाओत्से कहता है, इच्छादि से मुक्त कर देते हैं।
ज्ञानी यह नहीं कहता कि इच्छाओं से मुक्त हो जाओ। यह भी ध्यान रखें।
क्योंकि अगर ज्ञानी आपसे यह कहे कि इच्छाओं से मुक्त हो जाओ, तो आप फौरन

पूछेंगे, किसलिए? फार व्हाट? और तब ज्ञानी को बताना पड़ेगा कि मोक्ष के लिए, शाश्वत आनंद के लिए, परमात्मा के लिए, स्वर्ग के लिए। फिर तो इच्छा का जाल शुरू हो गया। जो भी आपको कहेगा, इच्छाओं से मुक्त हो जाओ, वह आपको नई इच्छा जनमाएगा। क्योंकि आप उससे पूछेंगे, क्यों?
नहीं, लाओत्से जैसा ज्ञानी पुरुष यह नहीं कहता, इच्छाओं से मुक्त हो जाओ। वह सिर्फ इच्छा क्या है, इसे जाहिर कर देता है। बता देता है, यह रही इच्छा। दिस इ.ज दि फैक्ट, यह है तथ्य। वह बता देता है कि यह रही दीवार, इससे निकलोगे तो सिर टूट जाएगा। वह यह नहीं कहता कि सिर मत तोड़ो। क्योंकि आप पूछोगे, क्यों न तोड़ें? आप पूछेंगे, क्यों न तोड़ें? वह यह नहीं कहता कि इस दीवार से मत निकलो। क्योंकि आप पूछेंगे, क्यों न निकलें? कोई प्रलोभन है कहीं और से जाने का?
ध्यान रहे, वह आपको कोई पाजिटिव डिजायर नहीं देता कि इसलिए ऐसा मत करो; वह तो इतना ही बता देता है कि ऐसा करोगे तो ऐसा होता है।
बुद्ध के वचनों में बहुत बढ़िया एक तर्कसंगत प्रक्रिया है। बुद्ध निरंतर कहते थे, ऐसा करोगे तो ऐसा होता है। डू दिस एंड दिस फालोज। बुद्ध से कोई पूछता कि हम क्या करें? तो बुद्ध कहते हैं, यह तुम मुझसे मत पूछो। तुम मुझसे यह पूछो कि तुम क्या करना चाहते हो। मैं तुम्हें बता दूंगा कि तुम यह करोगे तो यह होगा, यह करोगे तो यह होगा; इससे ज्यादा मैं कुछ न कहूंगा। मैं तुमसे नहीं कहता कि यह करो। मैं इतना ही कहता हूं कि दीवार से निकलोगे, सिर टूट जाता है; दरवाजे से निकलोगे, बिना सिर टूटे निकल जाओगे। फिर तुम्हारी मौज! तुम दीवार से निकलो, तुम दरवाजे से निकलो! मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम दीवार से मत निकलो।
फर्क समझ रहे हैं आप? एक तो यह है कि स्पष्ट आपसे कहा जाए, यह आप करो। लेकिन जब भी आपसे कोई पाजिटिवली कहेगा, डू दिस! आप पूछेंगे, क्यों? इसलिए लाओत्से या बुद्ध या महावीर, इन सभी का चिंतन जो है, गहरे अर्थों में निगेटिव है। वे कहेंगे, ऐसा करोगे तो ऐसा होता है। इच्छाओं में पड़ोगे तो दुख फलित होता है। वे यह नहीं कहते कि इच्छाओं में नहीं पड़े तो सुख मिलेगा। क्योंकि अगर वे ऐसा आप से कहें, तो आप कहेंगे, अच्छा हमको सुख चाहिए; कैसे मिलेगा, बताओ। अब यह नई इच्छा निर्मित हो जाएगी।
यह बारीक है थोड़ा; लेकिन इसे समझ लेना चाहिए। अगर बुद्ध कहते हैं कि सुख... इसलिए बुद्ध ने तो ईश्वर, मोक्ष, इनकी बात ही नहीं उठाई। लाओत्से ने भी नहीं उठाई। लाओत्से ने भी नहीं उठाई। और लाओत्से का जब पहले दफे ख्याल पश्चिम में पहुंचा, तो लोगों ने कहा, इसको धर्मग्रंथ कहने की जरूरत क्या है? न तो इसमें मोक्ष की बात है, न ईश्वर की बात है, न पाप-पुण्य से छुटकारे की बात है। यह आदमी बातें क्या कर रहा है!
बुद्ध से लोग पूछते थे, ईश्वर है? बुद्ध चुप रह जाते। बुद्ध कहते, इतना
ही पूछो कि संसार क्या है? बुद्ध से लोग पूछते कि मोक्ष में क्या होगा? बुद्ध चुप रह जाते। फिर तो बाद में बुद्ध ने तेरह प्रश्न तैयार करवा लिए, और जिस गांव में जाते, वहां डुग्गी पिटवा देते कि ये तेरह प्रश्न कोई न पूछे, क्योंकि इनके जवाब मैं नहीं देता।
बुद्ध के जो विरोधी थे, उन्होंने तो खबरें उड़ा दीं, कि यह जवाब नहीं देता, क्योंकि इसको मालूम नहीं है। मालूम हो, तो जवाब दो; अगर मालूम है, तो जवाब दो। अगर मालूम नहीं है, तो कह दो कि मालूम नहीं है।
अब बुद्ध की तकलीफ आप समझ सकते हैं। इस जगत में ज्ञानी की तकलीफ सदा
से यही रही है। बुद्ध को मालूम है और जवाब नहीं देना है। बुद्ध यह भी नहीं कहते कि मुझे मालूम है। क्योंकि बुद्ध अगर यह कहें कि मुझे मालूम है, तो लोग पूछते, फिर बताएं! बुद्ध कहते हैं, मैं बस चुप रह जाता हूं। मैं इस संबंध में कुछ नहीं कहता; यह भी नहीं कहता कि मुझे मालूम है। क्योंकि मेरा इतना कहना भी तुम्हारे भीतर वासना को जनमाएगा कि अगर आपको मालूम है, तो हमको कैसे मालूम हो।
बुद्ध कहते हैं, मैं यह नहीं बताता कि खुला आकाश कहां है, मैं तो इतना
ही बताता हूं कि तुम्हारे हाथ में जो जंजीरें हैं, वे क्यों हैं! तुम्हारे हाथ में जंजीरें पड़ी हैं और मैं तुम्हें आकाश के, खुले आकाश के, मुक्त आकाश के विवरण दूं--तुम जंजीरों में ही पड़े मुक्त आकाश के सपने देखने शुरू कर

दोगे। वे सपने जंजीरें तोड़ने में सहयोगी नहीं, बाधा बनेंगे। और इस बात का भी डर है कि कारागृह में ही कोई आदमी इतना गहरा सपना देखने लगे कि भूल जाए कि कारागृह में है। और इस बात का भी डर है कि वह आकाश को पाने के लिए इतना उत्तेजित और परेशान और चिंतित हो जाए कि जंजीरों को तोड़ने के लिए जितनी शांति चाहिए वह उसके पास न बचे।
बुद्ध कहते थे, आकाश का मुझसे मत पूछो। मैं तुम्हें बताता हूं कि तुम्हारे हाथ में जंजीरें क्यों हैं, और क्या करो तो जंजीरें टूट जाएं। मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि तुम क्यों तोड़ो। तुम्हें तोड़ना हो, तो यह रहा मार्ग, यह रही व्यवस्था, यह है विधि। ऐसे तुम तोड़ ले सकते हो।
लाओत्से कहता है, इच्छादि से मुक्त करते हैं। ऐसा कहते नहीं फिरते कि इच्छाओं से मुक्त हो जाओ! इच्छाओं से मुक्त करने के लिए कुछ करते हैं। वह करना दो तरह का है। एक तो इच्छाओं के स्वरूप को उघाड़ कर रख देते हैं, यह रहा। और दूसरा, स्वयं इच्छारहित जीवन जीते हैं।
मैंने कहा कि कनफ्यूशियस मिलने गया। बड़ा उदास लौटा। लाओत्से उसे झोपड़े के द्वार तक छोड़ने आया था। बहुत उदास देख कर--क्योंकि वह मीलों पैदल चल कर आया था--लाओत्से ने कहा, तुम्हें उदास देख कर अच्छा नहीं लगता है। कनफ्यूशियस ने कहा, उदास तो जाऊंगा ही, क्योंकि मैं उपदेश लेने आया था। तो लाओत्से ने कहा, लौट कर एक बार मुझे और गौर से देख लो। अगर मुझे देखना उपदेश बन जाए, तो तुम खाली हाथ नहीं लौटोगे।
बुद्ध या लाओत्से जैसे व्यक्ति जीवंत उपदेश हैं।
लेकिन कनफ्यूशियस ने लौट कर देखा, लेकिन ऐसा नहीं मालूम पड़ता है कि उसे उपदेश मिला। क्योंकि उसने लौट कर अपने शिष्यों को कहा कि सिर पर से निकल गईं बातें, समझ नहीं आया। आदमी तो अदभुत मालूम होता है, सिंह की तरह। डर लगता है पास खड़े होने में उसके। लेकिन बातें सब सिर पर से निकल गईं, कुछ समझ में नहीं आया। और बहुत जोर मैंने दिया, तो उस आदमी ने इतना ही कहा कि मुझे देख लो।
तो ऐसा लगता नहीं कि कनफ्यूशियस समझ पाया। क्योंकि देखने के लिए भी आंख चाहिए। और कनफ्यूशियस ज्ञान लेने आया था--इच्छा से भरा हुआ। और लाओत्से मौजूद था--अभी, यहीं। कनफ्यूशियस था भविष्य में--कुछ मिल जाए, कुछ जिससे आगे रास्ता खुले; कोई मोक्ष मिले, कोई आनंद, कोई खजाना अनुभूति का। यह जो आदमी मौजूद था सामने निपट, इस पर उसकी नजर न थी। इस आदमी से कुछ लेना था जो भविष्य में काम पड़ जाए। इसलिए शायद ही वह लाओत्से को देख पाया हो। हम भी चूक जाते हैं। ऐसा नहीं है कि कनफ्यूशियस चूक जाता है, हम भी चूक जाते हैं। आप भी बुद्ध या लाओत्से या महावीर के पास से निकलेंगे, तो सौ में एक मौका है इस बात का कि आपको पता चले।
बहाउद्दीन एक सूफी फकीर हुआ। जिस महानगरी में वह था, उसका सबसे बड़ा धनी व्यक्ति बहाउद्दीन के पास आता था और कहता था कि तुम सूर्य हो पृथ्वी पर! अंधेरा तुम्हें देख कर दूर हट जाता है! बहाउद्दीन हंसता था। जब भी वह आता, वह इसी तरह की बातें कहता कि तुम चांद की तरह शीतल हो, तुम अमृत की भांति हो। बहाउद्दीन हंसता। एक दिन जब वह आदमी चला गया, तो बहाउद्दीन के एक शिष्य ने कहा कि हमें बड़ी अजीब सी लगती है यह बात। वह आदमी कितने आदर के वचन बोलता है और आप ऐसा हंस देते हैं, मैनरलेस; यह शिष्टता नहीं मालूम पड़ती। वह आदमी इतने शिष्टाचार से सिर रखता है पैर पर, कहता है सूर्य हो आप, और आप एकदम हंस देते हैं, जैसे कोई गलती बात कह रहा हो।
बहाउद्दीन ने उस आदमी का हाथ पकड़ा और कहा, मेरे साथ चल। वे उस धनपति की दूकान पर गए। बहाउद्दीन ने सिर्फ अपनी टोपी बदल ली थी, और कुछ न बदला था। उसकी दूकान पर गए सामान खरीदने। सामान खरीद कर लौट आए। रास्ते में बहाउद्दीन ने अपने शिष्य से कहा, देखा! उसको ख्याल भी नहीं आया है कि मैं सूरज हूं। उसी से सामान खरीद कर लौट रहे हैं। पंद्रह मिनट उससे बातचीत भी हुई। और उसने ठग भी लिया और माल भी कम दिया है। पर उसके शिष्य ने कहा, भूल हो सकती है; काम में व्यस्त था।
दूसरे दिन फिर बहाउद्दीन ने कहा कि चल। बहाउद्दीन तो अपनी तरह का आदमी था। तीन सौ पैंसठ दिन, पूरे साल... वह शिष्य घबड़ा गया, वह कहने लगा, अब बस करो, समझ गए, मान गए। पर उसने कहा कि नहीं। तीन सौ पैंसठ दिन पूरे रोज

बहाउद्दीन उसकी दूकान पर जाता किसी शक्ल में, कुछ खरीद कर लाता। और वह शिष्य को भी घसीटता। तीन सौ पैंसठ दिन! और इस बीच भी वह आदमी आता रहा दस-पांच दिन में और कहता, तुम सूरज हो! अंधेरे में रोशनी हो जाती है! तुम अमृत हो! तुम्हारी किरण मिल जाती है एक, तो मृत्यु का कहीं पता नहीं चलेगा!
तीन सौ पैंसठ दिन के बाद बहाउद्दीन ने कहा कि बंद कर बकवास! तीन सौ पैंसठ दिन रोज तेरे द्वार पर आया हूं। सूरज तो बहुत दूर, दीया भी दिखाई नहीं पड़ा। तूने इतना भी न कहा कि आप एक टिमटिमाते दीए हैं। कुछ भी तूने नहीं कहा। तू सरासर झूठ बोल रहा है। तुझे सिर्फ इतना मतलब है कि बहाउद्दीन बड़ा आदमी है।
तो अगर आपको महावीर मिल जाएं, तख्ती सहित कि मैं महावीर हूं, तब तो आप फौरन झुक कर नमस्कार कर लें कि तीर्थंकर से मिलन हुआ। और नहीं तो पुलिस को आप खबर दे दें कि यह आदमी नग्न खड़ा हुआ है। यह आदमी नग्न खड़ा हुआ है बंबई में, यह बात ठीक नहीं है।
अभी पीछे यहां संन्यासी इकट्ठे थे। तो एक संन्यासी हैं मेरे जो नग्न रहने के शौकीन हैं। फिर भी हमने उनको कहा था कि बंबई में तुम नग्न मत घूमना, तो वे बेचारे एक लंगोटी लगा कर यहां वुडलैंड में आए होंगे। तो मुश्किल हो गई, और एक व्यक्ति ने मुझे आकर शिकायत की कि यह तो बहुत अजीब सी बात है। यह ठीक बात नहीं है कि एक आदमी लंगोटी लगाए यहां चला आए। और चमत्कार तो यह है कि वह आदमी भी दिगंबर जैन हैं, जिन्होंने मुझे शिकायत की। मैंने उनसे कहा, महावीर अगर आ जाएं वुडलैंड में, तो क्या करोगे? यह तो बेचारा कम से कम लंगोटी लगाए था। वह कहने लगे, महावीर की बात और। पहचानोगे कैसे? कोई तख्ती, बोर्ड लेकर चलेंगे वे? और कितने लोग महावीर के वक्त महावीर को पहचाने?
हम भी करीब से गुजर जाते हैं बहुत बार। पर आंख हमारी बहुत और चीजों पर लगी है। वह जो निकट पड़ता है, वह दिखाई नहीं पड़ता। और कई बार तो ऐसा होता है कि निकट होता है, इसीलिए दिखाई नहीं पड़ता।
लाओत्से कहता है, इच्छादि से मुक्त कर देते हैं ज्ञानी। वह इसीलिए, ताकि जो निकटतम है, निकट से भी निकटतम है, वह जो परमात्मा है, वह दिखाई पड़ जाए। लाओत्से यह नहीं कहता कि मोक्ष नहीं है; लाओत्से कहता है, मोक्ष की इच्छा नहीं हो सकती। लाओत्से यह नहीं कहता कि परमात्मा नहीं है; लाओत्से इतना ही कहता है, परमात्मा को चाहा नहीं जा सकता। जब कोई चाह नहीं होती, तब जो शेष रह जाता है, वह परमात्मा है।
बुद्ध यह नहीं कहते कि मोक्ष नहीं है। बुद्ध इतना ही कहते हैं कि तुम चाहो मत। तुम कुछ न चाहो, मोक्ष भी मत चाहो। फिर तुम मोक्ष में हो।
इस फर्क को समझ लें। मोक्ष को आप अपनी डिजायर का आब्जेक्ट, विषय नहीं बना सकते। मोक्ष आपकी विषय-वासना का आधार नहीं बन सकता। वह आपकी चाह का बिंदु नहीं हो सकता। वह आपका निशान नहीं बन सकता, आपकी चाह का तीर लग जाए उसमें। नहीं, जब आप मय तीर-कमान सब चाह को नीचे गिरा देते हैं, तो आप पाते हैं कि मोक्ष में आप खड़े हैं। असल में, आप सदा से मोक्ष में खड़े थे, लेकिन चाह की वजह से आप दूर-दूर भटकते थे। इच्छा के कारण आप कहीं और भटकते थे। और मोक्ष है यहीं और परमात्मा है यहां निकट, और इच्छा है दूर। इसलिए इच्छा और परमात्मा का मिलन नहीं हो पाता। इच्छा है दूर और परमात्मा है पास। इच्छा है भविष्य में और परमात्मा है वर्तमान में। इच्छा है कल और परमात्मा है आज।
इसलिए लाओत्से कहता है, ज्ञान से और इच्छादि से वे मुक्त करते हैं।
"और जहां ऐसे लोग हैं, जो निपट जानकारी से भरे हैं, उन्हें ऐसी जानकारी
के उपयोग से भी बचाने की यथाशक्य चेष्टा करते हैं।"
और जो लोग जानकारी से भरे ही हैं--रोकने की कोशिश करेंगे, लेकिन लोग तो भरे ही हैं--उन जानकारी से भरे हुए लोगों के लिए वे क्या करेंगे? उनको यथाशक्य कोशिश करेंगे कि अपनी जानकारी पर न चल पाएं।
अब यह बहुत अजीब बात है। सभी साधु-संत तो यह कोशिश कर रहे हैं कि देखो,
जो हमने समझाया, उस पर चलने की कोशिश करना। साधु अपने प्रवचनों के बाद कहते हैं कि देखो, जो हमने समझाया, उसे यहीं मत छोड़ जाना। ऐसा न हो कि एक

कान से जाए और दूसरे कान से निकल जाए। सम्हाल कर रखना और आचरण करना। और कसम खाओ कि जो समझे, उस पर चलोगे।
और लाओत्से कह रहा है कि वे उनको, जानकारी पर चले न जाएं वे कहीं, इससे बचाने की कोशिश करते हैं। लाओत्से यह कह रहा है कि कोई आदमी अपनी जानकारी के अनुसार चलने न लगे। क्योंकि जानकारी है उधार। दूसरों के पंखों को लेकर जैसे कोई पक्षी उड़ने की कोशिश करे तो जो गति हो, वही गति उस आदमी की हो जाती है जो जानकारी को आचरण बनाने की कोशिश करता है।
यह बड़ा मजा है, जानकारी को आचरण बनाना पड़ता है और ज्ञान आचरण बन जाता है। यही फर्क है। ज्ञान को आचरण नहीं बनाना पड़ता। जिस क्षण आपको ज्ञान होता है, उसी क्षण आचरण शुरू हो जाता है। यू आर नॉट टु प्रैक्टिस इट। ज्ञान का भी आचरण करना पड़े, तो ज्ञान तो दो कौड़ी का हो गया।
अब मुझे पता है कि आग में हाथ डालने से हाथ जलता है। यह जानकारी हो सकती है। तो मुझे हाथ को रोकना पड़ेगा कि आग में कहीं डाल न दूं। और अगर यह ज्ञान है कि आग में डालने से हाथ जलता है, तो क्या मुझे कोई चेष्टा करनी पड़ेगी कि आग में मैं हाथ डाल न दूं? नहीं, फिर कोई चेष्टा न करनी पड़ेगी। आग में हाथ जाएगा नहीं। इसके बाबत सोचना ही नहीं पड़ेगा। यह बात समाप्त हो गई। आग और अपना मिलन अब न होगा।
मुझे पता है कि जहर पी लेने से मैं मर जाता हूं। तो क्या मंदिर में जाकर प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि अब मैं कसम खाता हूं कि जहर कभी न पीऊंगा? और अगर कोई आदमी किसी मंदिर में कसम खा रहा हो कि मैं प्रतिज्ञा लेता हूं आजीवन, जहर का कभी भी अब पान नहीं करूंगा! तो आप क्या कहेंगे उस आदमी को सुन कर? कि इस आदमी का डर है, यह कभी न कभी जहर पी लेगा। इसको पता कुछ भी नहीं है। क्योंकि पता हो, तो प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है!
जितने लोग प्रतिज्ञाएं लेते हैं, व्रत लेते हैं, कसमें खाते हैं, ऐसा करेंगे और ऐसा नहीं करेंगे, वे वे ही लोग हैं, जो जानकारी पर चलने की कोशिश कर रहे हैं। किसी ने कहा कि क्रोध बुरा है; अब आप कोशिश कर रहे हैं कि क्रोध न करें। और किसी ने कहा कि वासना बुरी है; और आप कोशिश कर रहे हैं कि वासना न करें।
लाओत्से कहता है, ज्ञानी लोगों को उनकी जानकारी पर चलने से यथाशक्य...
।
यथाशक्य ही कर सकते हैं, क्योंकि जबरदस्ती रोकने का तो कोई उपाय नहीं है। कह ही सकते हैं कि गड्ढा है, गिर जाओगे। लेकिन जिस आदमी ने कसम खाई है कि वह जानकारी पर आचरण करके रहेगा, वह आदमी धीरे-धीरे फाल्स, झूठा आदमी होता चला जाता है। और ऐसी घड़ी आ सकती है कि वह अपने ही आचरण में इतना घिर जाए कि उसे कभी पता ही न चले कि उसका सारा आचरण झूठा है, नकली सिक्के हैं। अगर एक आदमी ने तय कर लिया कि क्रोध बुरा है--पढ़ कर, सुन कर, समझ कर-- दूसरों से! जान कर नहीं, क्योंकि जान कर तय नहीं करना पड़ता कि क्रोध बुरा है। जिसने जाना कि क्रोध बुरा है, वह क्रोध के बाहर हो गया। जिस चीज को आपने जान लिया कि विषाक्त है, उससे आप बाहर हो गए। तो ज्ञानी क्या करेगा? ज्ञानी आपसे कहेगा, क्रोध करो और जानो कि क्या है। तय मत करो शास्त्र को पढ़ कर कि क्रोध बुरा है। वह यह नहीं कह रहा कि शास्त्र में जो लिखा है, वह गलत है। वह जिसने जाना होगा, उसने ठीक ही लिखा होगा। लेकिन वह जानने वाले ने लिखा है; और न जानने वाला उसको जानकारी बना कर जब चलेगा, तो सब उलटा हो जाने वाला है।
ज्ञानी कहेगा कि जो-जो है, उसे जानो, जीयो, पहचानो। और जो-जो बुरा है,
वह गिर जाएगा; और जो-जो भला है, वह बच जाएगा। अज्ञानी शिक्षक लोगों को समझाते हैं, बुरे को छोड़ो, भले को पकड़ो। ज्ञानी शिक्षक लोगों से कहते हैं, जानो क्या बुरा है और क्या भला। भले को जानना, बुरे को जानना। जो बच जाए जानने पर, उसको भला समझ लेना; और जो गिर जाए जानने पर, उसको बुरा समझ लेना। बुरा वह है, जो जानकारी में बचता है, जानने में गिर जाता है; भला वह है, जानकारी में लाने की कोशिश करनी पड़ती है, ज्ञान में आ जाता है--ज्ञान के पीछे छाया की तरह।
आपने कभी भी अगर कोई चीज जानी हो, तो आप मेरी बात समझ जाएंगे। लेकिन कठिनाई यही है कि हमने कभी कोई चीज नहीं जानी है। हमने सुना है।

अब यह कितने आश्चर्य की घटना है! एक आदमी अगर पचास साल जीया है, तो हजारों बार क्रोध कर चुका है। लेकिन अभी भी उसने क्रोध को जाना नहीं है। अभी भी वह किताब पढ़ता है, जिसमें लिखा है, क्रोध बुरा है। और किताब पढ़ कर तय करता है कि अब कसम खा लेते हैं कि अब क्रोध न करेंगे। हजार दफे जो आदमी क्रोध करके नहीं जान पाया, वह कागज पर लिखे गए दो शब्दों से, कि क्रोध बुरा है, जान लेगा? तब तो चमत्कार है।
हजार बार मैं इस मकान में आकर गया और नहीं जान पाया कि इस मकान में जाना बुरा है। एक किताब में पढ़ कर मैं जान लूंगा कि इस मकान में जाना बुरा है? और कसम खा लूंगा कि अब कभी न जाऊंगा, कसम खाता हूं! लेकिन कसम यह बताती है कि जाने का मन बाकी है। क्योंकि कसम खानी किसके खिलाफ पड़ती है? कोई तुमसे कह रहा है कि क्रोध करो? जब हम कसम लेते हैं, तो किसके खिलाफ? अपने खिलाफ। कोई तो नहीं कह रहा है कि क्रोध करो। सारी दुनिया तो कह रही है, क्रोध छोड़ो। कहीं कोई स्कूल नहीं, कोई विद्यापीठ नहीं, जहां हम लोगों को क्रोध करने की ट्रेनिंग दे रहे हों। लोग क्रोध किए चले जा रहे हैं। और मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे और चर्च, सब समझाए जा रहे हैं कि क्रोध मत करो।
सुना है मैंने कि एक चर्च में एक पादरी लोगों को समझा रहा है। लोगों
को समझा रहा है कि कैसी भी स्थिति हो, सदभाव रखना चाहिए। तभी एक मक्खी उसकी नाक पर आकर बैठ गई। उसने कहा, फॉर इग्जाम्पल, उदाहरण के लिए, यह मक्खी मेरे नाक पर बैठी है, लेकिन इसको मैं दुश्मन नहीं मानता, और इसे मैं दुश्मन की तरह हटाता भी नहीं हूं। मक्खी को भी परमात्मा ने बनाया; यह भी उसकी सुंदरतम कृति है। और तभी अचानक उसने कहा कि धत तेरे की! ऐसी की तैसी, मक्खी नहीं है, मधुमक्खी है!
सब गड़बड़ हो गया। वह मक्खी थी भी नहीं। लेकिन मधुमक्खी को भी परमात्मा
ने ही बनाया हुआ है। लेकिन वह सज्जन मक्खी के भ्रम में उपदेश दिए जा रहे थे।
सब जगह समझाया जा रहा है, क्रोध मत करो, यह मत करो, वह मत करो। और हम वही
तो कर रहे हैं। किसके खिलाफ हम कसम लेंगे फिर? कसम अपने खिलाफ है। और अपने खिलाफ कोई कसम बचेगी नहीं।
और ध्यान रखें, कसम हमेशा आपका कमजोर हिस्सा लेता है। यह भी ख्याल रख लें, जब भी आप कसम लेते हैं, आपके भीतर दो हिस्से हो गए। यू हैव डिवाइडेड योरसेल्फ। और जो हिस्सा कसम लेता है, वह कमजोर है, माइनर है। क्योंकि मजबूत हिस्से को कसम कभी लेनी नहीं पड़ती, वह बिना ही कसम के काम करता है। उसको जरूरत ही नहीं है कसम लेने की। आपको कसम लेनी पड़ती है कि क्रोध जारी रखेंगे? आपको कसम लेनी पड़ती है कि ब्रह्ममुहूर्त में कभी न उठेंगे?
कोई कसम नहीं लेनी पड़ती। वह जो मेजर हिस्सा है आपका, वह बिना कसम के चलता है। वह आपके कसम-वसम की लेने की उसको कोई जरूरत नहीं है। नब्बे- निन्यानबे प्रतिशत वह है। उसे क्या कसम लेनी? कसम जब भी आप लेते हो, तो माइनर पार्ट, कमजोर हिस्सा कसम लेता है। और कमजोर हिस्सा कितनी देर टिकेगा मजबूत हिस्से के सामने! वह ज्यादा देर टिकने वाला नहीं है। वह नई तरकीब निकाल लेगा कसम को तोड़ने की। वह कहेगा, मधुमक्खी है, मक्खी नहीं है। वह मक्खी के लिए समझा रहा था; मधुमक्खी के लिए समझा भी नहीं रहे थे।
सुना है मैंने कि एक ईसाई फकीर नियम से जीसस के वचनों का पालन करता था। एक आदमी ने उसके गाल पर एक चांटा मारा, तो उसने दूसरा गाल कर दिया।
क्योंकि जीसस ने कहा है, जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, दूसरा कर देना।
मगर वह आदमी भी जिद्दी था। उसने दूसरे गाल पर भी चांटा मारा।
यह इसने सोचा नहीं था। और जीसस ने यह कहा भी नहीं है कि वह दूसरे पर भी मारेगा। इतना ही कहा है कि तुम दूसरा कर देना, तो वह तो पिघल जाएगा, पैरों पर गिर पड़ेगा। इसने कहा, हद्द हो गई। उसने दूसरे पर भी दुगुनी ताकत से चांटा मारा। अब इसकी समझ में भी न आया, क्योंकि ईसा का कोई वचन नहीं है कि तीसरा गाल कर देना, तीसरा कोई गाल भी नहीं है। तो उसने उठा कर तीसरा चांटा उसको मारा।
पर उस आदमी ने कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं? जीसस को भूल गए?

उसने कहा, नहीं, भूले नहीं। लेकिन दो ही गाल हैं। और तीसरे के बाबत कोई इंस्ट्रक्शन नहीं है। अपनी ही बुद्धि से चलना पड़ेगा। मेरी बुद्धि यह कहती है कि अब मारो।
यह बुद्धि तब भी मौजूद थी, जब दो गाल पर चांटा मारा गया। यही असली बुद्धि है, यह इस आदमी की अपनी बुद्धि है। वक्त पर यही काम पड़ेगी, जब मुसीबत आएगी। वह जो हमारा कमजोर हिस्सा है, वह केवल शब्दों से जीता है। सुने हुए वचन, पढ़े हुए वचन मस्तिष्क में बैठ जाते हैं। फिर हम उन्हीं को आधार बना कर कसमें खाते हैं, आचरण को बनाते हैं।
लाओत्से कहता है कि वह उनको उनकी जानकारी पर चलने से रोकते हैं। वे कहते हैं, जानकारी पर मत चलो, ज्ञान को पा लो। फिर चलना तो हो जाएगा।
"जब अक्रियता की ऐसी अवस्था उपलब्ध हो जाए, तब जो सुव्यवस्था बनती है,
वह सार्वभौम है।"
अक्रियता की! नॉन-एक्शन की! ज्ञान अक्रिय है। ज्ञान कोई क्रिया नहीं है, अवस्था है। जब कोई व्यक्ति अंतर-ज्ञान को उपलब्ध होता है, तो वह एक अवस्था है, एक ज्योतिर्मय अवस्था। सब भर गया प्रकाश से, साफ-साफ दिखाई पड़ने लगा। अंधेरे हट गए, धुआं नहीं रहा आंखों में। दृष्टि स्वच्छ हो गई। चीजें पारदर्शी हो गईं, ट्रांसपैरेंट। सब साफ-साफ दिखाई पड़ने लगा। यह अवस्था है; कोई क्रिया नहीं है इसमें, यह अवस्था है। आचरण के तक के लिए कोई क्रिया नहीं, क्योंकि अब आचरण की कोई क्रिया की जरूरत न रही। अब यह जो अवस्था है प्रकाश की, यह वहीं चलाएगी, जो चलने योग्य है। अब पैर वहीं उठेंगे, जहां मंदिर है। अब पैरों को वेश्यालय से लौटाना न पड़ेगा।
सुना है मैंने कि नसरुद्दीन एक दिन कसम ले लिया कि अब मधुशाला में पैर
न रखेंगे। ताकतवर आदमी था, कसम खा ली। सांझ को निकला। मधुशाला सामने पड़ी; आंख बंद कर ली। कहा कि ऐसा नहीं हो सकता, आज ही कसम ली है सुबह ही। बिल्कुल नहीं हो सकता। आंख बंद कर ली, तेजी से दौड़ने लगा। पचास कदम के बाद उसने खड़े होकर कहा, शाबाश नसरुद्दीन, तू भी बड़े संकल्प का आदमी है! मधुशाला को पचास कदम पीछे छोड़ आया। नाउ कम बैक, आई विल ट्रीट यू। चलो वापस, मधुशाला में थोड़ा तुम्हें पिलाएं। क्योंकि इतना गजब का काम तूने किया नसरुद्दीन! बड़े संकल्प का आदमी है। हिम्मत देख तेरी, शाबाश, चल वापस!
वापस लौट कर शराब पी रहा है। लेकिन अब वह नसरुद्दीन को शराब पिला रहा है। यह सब रेशनलाइजेशन है। अब वह यह नहीं कह रहा कि मैं शराब पी रहा हूं, कि मैंने कोई वचन तोड़ा; वचन तो पूरा किया, पचास कदम आगे तक चला गया। लेकिन जिसने इतना वचन पूरा किया, उसकी कुछ सेवा-खातिर भी तो करनी चाहिए।
ज्ञान तो अक्रिय है। कोई आचरण की लहर भी उठानी नहीं पड़ती। जैसे जल बिल्कुल शांत हो, कोई लहर भी न उठती हो, नदी बहती भी न हो। सब शून्य हो, ऐसी अवस्था है ज्ञान की।
लाओत्से कहता है, जब अक्रियता की ऐसी अवस्था उपलब्ध हो जाए, तो जो सुव्यवस्था, तब जो आर्डर, तब जो अनुशासन निर्मित होता है, वह सार्वभौम है, वह यूनिवर्सल है। उसका फिर अपवाद नहीं होता।
तीन बातें हैं। एक तो ज्ञान अक्रियता की अवस्था है। करने का उतना सवाल नहीं, जितना जानने का है। डूइंग की उतनी बात नहीं, जितनी बीइंग की है। क्या करूं, ऐसा नहीं; क्या हो जाऊं! यह सवाल नहीं है कि मैं क्या करूं जिससे ज्ञान मिल जाए। यह सवाल है कि मैं कैसा हो जाऊं कि ज्ञान प्रकट हो जाए; मैं किस अवस्था में खड़ा हो जाऊं, जहां से दृष्टि सरल, सीधी और साफ और निर्मल हो। क्या करूं का सवाल नहीं है कि आचरण को बदलूं, चोरी छोडूं, बेईमानी छोडूं। नहीं, यह सवाल नहीं है छोड़ने-पकड़ने का। मैं किस भांति देखूं जीवन को! वह दृष्टि। जानकारी की फिक्र न करूं, जानकारी से बचूं। अज्ञान को स्वीकार करूं। जीवन को अनुभव करूं। इच्छाओं में कल भटकूं न। आज, अभी, यहीं जाग कर जीऊं। तो वह अक्रिय अवस्था निर्मित होने लगती है, जहां व्यक्ति एक शांत झील की तरह हो जाता है।
उस शांत झील के क्षण में जीवन से सब अव्यवस्था अपने आप गिर जाती है। उसे व्यवस्थित नहीं करना होता, वह गिर जाती है। वह जो-जो गलत था, छूट जाता है; उसे छोड़ने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता। वह जो जीवन में लगता था अशुभ है, वह अचानक पाया जाता है कि नहीं है। जैसे किसी ने अंधेरे में दीया जला

दिया हो, और अंधेरा नहीं है। उस अंधेरे को निकालना नहीं पड़ता, धकाना नहीं पड़ता, हटाना नहीं पड़ता। बस दीया जल गया, और वह अंधेरा नहीं है। यह जो सुव्यवस्था है, यह और है।
एक व्यवस्था है जो आयोजित है, कल्टीवेटेड है। एक बंदर को भी हम डंडे
के जोर से बिठा दे सकते हैं बिल्कुल कि वह मालूम पड़े कि बुद्ध की प्रतिमा बना बैठा है। बंदर को भी हाथ वगैरह लगा कर पद्मासन लगा कर बिठा दिया जा सकता है। और डंडा अगर सामने हो, और वह धीरे-धीरे आंख खोल कर देखता रहे कि डंडा है, तो वह बैठा रहेगा। मगर वह बुद्ध नहीं हो गया है। और अनेक आदमी बंदरों की तरह ही पद्मासन लगा कर बैठे रहते हैं, भीतर कहीं कुछ नहीं होता। कोई डंडे का डर--कोई नर्क, कोई पाप, मौत, दुख, चिंता, बीमारी, सब चारों तरफ घेरे हैं, सारा डर--तो उन्हें... ।
नसरुद्दीन से कोई पूछ रहा है कि रात प्रार्थना करके तो सोते हो? नसरुद्दीन ने कहा, नियमित, कभी चूक नहीं करता।
उस आदमी ने पूछा, सुबह भी प्रार्थना करते हो?
नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, क्यों? सुबह प्रार्थना की क्या जरूरत है? अंधेरे में मुझे डर लगता है, सुबह तो कोई जरूरत नहीं है। सुबह क्या जरूरत? अंधेरे में मुझे डर लगता है, आई एम स्केयर्ड ऑफ डार्कनेस। रात तो प्रार्थना नियमित करता हूं। सुबह क्या जरूरत है? सुबह हम किसी से डरते ही नहीं।
भय लगता है, प्रार्थना जन्म ले लेती है। डंडा रखा है सामने, पद्मासन
लग जाता है। आंखें बंद हो जाती हैं, माला चलने लगती है, सरकने लगती है। पूजा-पाठ शुरू हो जाते हैं। सब भय से।
नसरुद्दीन को एक दफा तैमूरलंग ने बुलाया। तैमूर तो खतरनाक आदमी था।
सुना उसने कि नसरुद्दीन की बड़ी प्रसिद्धि है, बड़ा ज्ञानी है। और अजीब ही तरह का ज्ञानी था। और ज्ञानी जब भी होते हैं, थोड़े अजीब तरह के ही होते हैं। क्योंकि ज्ञानी का कोई पैटर्न नहीं होता, कोई ढांचा नहीं होता। तैमूरलंग ने बुलाया और कहा कि मैंने सुना है नसरुद्दीन कि तुम बड़े ज्ञानी हो!
नसरुद्दीन ने सोचा कि यह तैमूरलंग, वह नंगी तलवार लिए बैठा है। नसरुद्दीन ने कहा कि अगर हां कहें, तो तुम क्या करोगे? उसने कहा, पहले पक्का तो पता चल जाए। अगर न कहें, तो तुम क्या करोगे?
तैमूरलंग ने कहा, क्या करूंगा? सारे लोग कहते हैं कि तुम ज्ञानी हो।
हो ज्ञानी कि नहीं? अगर नहीं हो, तो अब तक तुमने खंडन क्यों नहीं किया? तो तुम्हारी गर्दन कटवा देंगे। अगर हो, तो हां बोलो।
नसरुद्दीन ने कहा कि हां, हूं। उसने कहा कि गर्दन कटने का डर है।
तो तुम्हारे ज्ञान का प्रतीक क्या है? क्या सबूत कि तुम ज्ञानी हो? नसरुद्दीन ने नीचे देखा और कहा कि मुझे नर्क तक दिखाई पड़ रहा है। ऊपर देखा और कहा, मुझे स्वर्ग, सात स्वर्ग दिखाई पड़ रहे हैं।
तैमूरलंग ने पूछा, लेकिन इसके देखने का राज क्या है?
नसरुद्दीन ने कहा, ओनली फियर। कोई दिखाई-विखाई नहीं पड़ रहे हैं। यह आप तलवार लिए बैठे हो, नाहक झंझट कौन करे? सिर्फ भय! इस मेरे ज्ञान का इतना ही आधार है। ये सात नर्क और सात स्वर्ग जो मैं देख रहा हूं। तुम तलवार नीचे रखो और आदमी की तरह आदमी से बातचीत हो। नहीं तो इसमें तो आप जो कहोगे, हम वही चमत्कार बताने को राजी हो जाएंगे कि भय है, क्या है। जान तो अपनी बचानी है।
भय आपसे कुछ भी करवा लेता है। भय आपसे बहुत कुछ करवा रहा है। सारी जिंदगी भय से भरी है। नहीं, इससे जो व्यवस्था आती है, भय से, वह कोई व्यवस्था नहीं है। भीतर तो ज्वालामुखी उबलता रहता है।
लाओत्से जैसे लोग कहते हैं कि एक और व्यवस्था है, ए डिफरेंट क्वालिटी
ऑफ आर्डर। एक और ही गुण है; एक और ही नियमन है जीवन का; एक और ही अनुशासन है। और वह अनुशासन व्यवस्था से नहीं आता, थोपा नहीं जाता, आयोजित नहीं किया जाता। न किसी भय के कारण, न किसी इच्छा के कारण, न किसी प्रलोभन से; बल्कि ज्ञान की निष्क्रिय वह जो प्रकाश फैलता है, उससे अपने आप घटित हो जाता है।
और जब वैसी व्यवस्था होती है, तो सार्वभौम, यूनिवर्सल होती है।

सार्वभौम का अर्थ है कि उस नियम का, उस व्यवस्था का कहीं भी फिर खंडन नहीं है। नो एक्सेप्शन! फिर उसका कोई अपवाद नहीं है। फिर वह निरपवाद है। फिर वह हर स्थिति में है। जैसे सागर के पानी को हम कहीं से भी चखें और वह नमकीन है, ऐसा ही फिर ज्ञान से जिस व्यक्ति का जीवन निर्मित हुआ, उसको हम कहीं से भी चखें, उसका कहीं से भी स्वाद लें, उसे सोते से जगा कर पूछें, उसे किसी भी स्थिति में देखें और पहचानें, सार्वभौम है। उसकी जो व्यवस्था है वह सदा है। उसमें फिर कोई अपवाद नहीं है। उसमें नियम का कहीं कोई स्खलन नहीं है; क्योंकि नियम ही नहीं है।
इसको ठीक से समझ लें। आप सोचते होंगे, इतना मजबूत नियम है कि स्खलन नहीं है। नहीं, कितना ही मजबूत नियम हो, स्खलन हो जाता है। लाओत्से कहता है कि उसका कहीं स्खलन नहीं होता, क्योंकि वहां कोई नियम ही नहीं है। टूटेगा कैसे? उस आदमी ने कोई नियम तो बनाया नहीं; ज्ञान से आचरण आया है। कोई मर्यादा तो बनाई नहीं; ज्ञान से मर्यादा फलित हुई है। किसी प्रलोभन और लोभ के कारण तो वह सच नहीं बोला; सच बोल ही सकता है, और अब कोई उपाय नहीं है।
सच ही बोल सकता है, ऐसा कहना भी शायद ठीक नहीं। ऐसा कहना ठीक है कि जो
भी बोलता है, वह सच ही है। बोलना और सच अब दो चीजें नहीं हैं। झूठ का कोई उपाय नहीं है। इसलिए नहीं कि सच बोलने की पक्की कसम है, कि सच बोलने का उसने दृढ़ निश्चय कर लिया है। ये शब्द बड़े गलत हैं। और हमेशा कमजोर आदमी इनका उपयोग करते हैं। कहते हैं, मैंने सच बोलने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। सच बोलने का दृढ़ निश्चय? उसका मतलब है कि असत्य बोलने की बड़ी दृढ़ स्थिति भीतर होगी।
नहीं, असत्य गिर गया; सत्य ही बचा है। जो बोला जाता है, वह सत्य है; जो जीया जाता है, वह शुभ है; जो होता है, वही सुंदर है। इसलिए सार्वभौम!
आज इतना, कल आगे का सूत्र लेंगे।

ताओ उपनिषद, भाग एक
बारहवां प्रवचन

वह परम शून्य, परम उदगम, परम आधार--ताओ

Chapter 4 : Sutra 1

Character Of Tao

The Tao is like the emptiness of a vessel;
and in our employment of it we must be on
our guard against all fullness. How deep and unfathomable it is, as if it were the
Honored Ancestor of all things; (or like
the fountain head of all things.)

अध्याय 4 : सूत्र 1

ताओ का स्वरूप

ताओ घड़े की रिक्तता की भांति है।
इसके उपयोग में सभी प्रकार की पूर्णताओं से
सावधान रहना अपेक्षित है। यह कितना
गंभीर है, कितना अथाह, मानो यह सभी
पदार्थों का उदगम या उनका सम्मानित पूर्वज हो!

ताओ है शून्य, रिक्तता; घड़े की रिक्तता की भांति।
कुछ भी भरा हुआ न हो, तो ही ताओ उपलब्ध होता है। शून्य हो चित्त, तो ही धर्म की प्रतीति होती है। व्यक्ति मिट जाए इतना, कि कह पाए कि मैं नहीं हूं, तो ही जान पाता है परमात्मा को। ऐसा समझें। व्यक्ति होगा जितना पूर्ण, परमात्मा होगा उतना शून्य; व्यक्ति होगा जितना शून्य, परमात्मा अपनी पूर्णता में प्रकट होता है।
ऐसा समझें। वर्षा होती है, तो पर्वत-शिखर रिक्त ही रह जाते हैं; क्योंकि वे पहले से ही भरे हुए हैं। गड्ढे और झीलें भर जाती हैं, क्योंकि वे खाली हैं। वर्षा तो पर्वत-शिखरों पर भी होती है। वर्षा कोई भेद नहीं करती। वर्षा कोई जान कर झील के ऊपर नहीं होती। वर्षा तो पर्वत-शिखर पर भी होती है। लेकिन पर्वत-शिखर स्वयं से ही इतना भरा है कि अब उसमें और भरने के लिए कोई अवकाश नहीं है, कोई जगह नहीं है, कोई स्पेस नहीं है। सब जल झीलों की तरफ दौड़ कर पहुंच जाता है। उलटी घटना मालूम पड़ती है। जो भरा है, वह खाली रह जाता है; और जो खाली है, वह भर दिया जाता है। झील का गुण एक ही है कि वह खाली है, रिक्त है। और शिखर का दुर्गुण एक ही है कि वह बहुत भरा हुआ है। टू मच। लाओत्से कहता है, धर्म है रिक्त घड़े की भांति। ताओ यानी धर्म। धर्म है रिक्त घड़े की भांति। और जिसे धर्म को पाना हो, उसे सभी तरह की पूर्णताओं से सावधान रहना पड़ेगा।
यह बहुत अदभुत बात है--सभी तरह की पूर्णताओं से। नहीं कि घड़े में धन भर जाएगा, तो बाधा पड़ेगी। घड़े में ज्ञान भर जाएगा, तो भी बाधा पड़ेगी। घड़े में त्याग भर जाएगा, तो भी बाधा पड़ेगी। घड़े में कुछ भी होगा, तो बाधा पड़ेगी। घड़ा बस खाली ही होना चाहिए।
लेकिन हम सब तो जीवन में न मालूम किन-किन द्वारों से पूर्ण होने की कोशिश में लगे होते हैं। हमें लगता ही ऐसा है कि जीवन इसलिए है कि हम पूर्ण हो जाएं। किसी न किसी माध्यम से, किसी न किसी मार्ग से पूर्णता हमारी हो, मैं पूरा हो जाऊं। उपदेशक समझाते हैं, माता-पिता अपने बच्चों को कहते हैं, शिक्षक अपने विद्यार्थियों को कहता है, गुरु अपने शिष्यों को कहते हैं कि

क्या जीवन ऐसे ही गंवा दोगे? अधूरे आए, अधूरे ही चले जाओगे? पूरा नहीं होना है? पूर्ण नहीं बनना है? अकारथ है जीवन, अगर पूरे न बने। कुछ तो पा लो। खाली मत रह जाओ।
और लाओत्से कहता है कि जिसे धर्म को पाना है, उसे सभी तरह की पूर्णताओं से सावधान रहना पड़ेगा। नहीं, उसे पूर्ण होना ही नहीं है। उसे अपूर्ण भी नहीं रह जाना है। उसे शून्य हो जाना है।
इसे इस तरह हम देखेंगे तो आसान हो जाएगा। हम जहां भी होते हैं, अपूर्ण होते हैं। रिक्त हम कभी होते नहीं, पूर्ण हम कभी होते नहीं। हमारा होना अधूरे में है। बीच में, मध्य में है। हम जहां भी होते हैं, बीच में होते हैं, अपूर्ण होते हैं। न तो एम्पटी और न परफेक्ट, इन दोनों के बीच में--सदा, सभी।
यह किसी एक व्यक्ति के लिए बात नहीं है। अस्तित्व में जो भी हैं, वे सभी मध्य में होते हैं। एक तरफ शून्यता और एक तरफ पूर्णता, और बीच में हमारा होना है। हमारी सारी व्यवस्था इस बीच से पूर्ण की तरफ बढ़ने की है। और लाओत्से का कहना है, इस बीच से शून्य की तरफ जाना है।
हम सबकी कोशिश यह है कि अधूरे तो हम हैं, अब हम पूरे कैसे हो जाएं? भर कैसे जाएं? हमारे जीवन की पीड़ा यही है कि फुलफिलमेंट नहीं है, कुछ भराव नहीं है। प्रेम है, वह अधूरा है। ज्ञान है, वह अधूरा है। यश है, वह अधूरा है। कुछ भी पूरा नहीं है। कुछ तो पूरा मिल जाए! प्रेम ही पूरा मिल जाए, इतना भर जाऊं कि और मांग न रह जाए। कहीं से भी हम पूरे हो जाएं, तो फुलफिलमेंट हो जाए। लगे कि हम भी हैं भरे हुए!
लेकिन जितना हम पूर्ण होने की कोशिश करते हैं--यह मैं आपसे कहना चाहूंगा--जितना हम पूर्ण होने की कोशिश करते हैं, उतना हमें अपनी रिक्तता का बोध जाहिर होता है, पूर्ण हम होते नहीं। इसलिए जो सदी पूर्णता के प्रति जितनी आतुर, उत्सुक, अभीप्सु होती है, वह सदी उतनी ही एम्पटीनेस को अनुभव करती है।
पहली दफा पश्चिम पूरी तरह शिक्षित हुआ है। जमीन पर, ज्ञात इतिहास में, पश्चिम ने पहली दफे शिक्षा के मामले में बहुत विकास किया है। लेकिन साथ ही मजे की बात है कि पश्चिम का मन जितना एम्पटी अनुभव करता है, उतना कोई और मन नहीं करता। जितना खाली अनुभव करता है।
अमरीका ने पहली दफे धन के मामले में उस दूरी को छुआ है, जिसे हम पूर्णता के निकटतम कहें। निकटतम ही कह सकते हैं, पूर्ण तो कभी कुछ होता नहीं। हम अपनी पीछे की दरिद्रता को देखते हैं, तो लगता है अमरीका ने धन को छूने में बड़ी दूर तक कोशिश की है--निकटतम, एप्रॉक्सीमेटली। निकटतम का मतलब आपके ख्याल में हो जाना चाहिए। पूर्ण तो हम हो नहीं सकते, सदा बीच में ही होते हैं, कहीं भी हों। लेकिन अतीत से तुलना करें आदमियों के और समाजों की। अब जंगल में बसा आदिवासियों का एक समूह है, या बस्तर में बसा हुआ गरीबों का एक गांव है, और न्यूयार्क है। तो इस तुलना में न्यूयार्क करीब-करीब पहुंचता है।
सुना है मैंने, एक दिन एक बच्चा अपने घर आया। बहुत खुशी में स्कूल से
वह कुछ पुरस्कार लेकर आया है। और उसने अपनी मां को आकर कहा कि आज मुझे पुरस्कार मिला है, क्योंकि मैंने एक जवाब सही-सही दिया। उसकी मां ने पूछा, क्या सवाल था? उस बेटे ने कहा, सवाल यह था कि गाय के पैर कितने होते हैं? उसकी मां बहुत हैरान हुई। तुमने क्या जवाब दिया? उसने कहा, मैंने कहा तीन। उसने कहा, पागल, गाय के चार पैर होते हैं। उसने कहा, वह तो मुझे भी अब पता चल चुका है। लेकिन बाकी बच्चों ने कहा था दो। सत्य के मैं निकटतम था, इसलिए पुरस्कार मुझे मिल गया है।
बस निकटतम का इतना ही अर्थ है। अगर धन की पूर्णता के कोई निकटतम हो सकता है, तो तीन टांगें अमरीका ने पैदा कर ली हैं। वह चार टांगों के करीब-करीब है। चार टांगें कभी नहीं होंगी। वे हो नहीं सकतीं। ह्यूमन सिचुएशन में वह संभव ही नहीं है। आदमी का होना अधूरा है। इसलिए आदमी जो भी करेगा, वह पूरा नहीं होता। अधूरा करने वाला हो, तो पूरी कोई चीज कैसे हो सकती है! अगर मैं ही अधूरा हूं, तो मैं जो भी करूंगा, वह अधूरा होगा। वह एप्रॉक्सीमेटली हो सकता है, किसी और की तुलना में।

तो अमरीका, धन के भरने में करीब-करीब अमरीका का घड़ा पूरा का पूरा भर गया, तीन-चौथाई, तीन पैर भर गया। लेकिन आज अमरीका में जितनी दीनता और जितनी हेल्पलेसनेस और असहाय अवस्था मालूम पड़ती है। और आज अमरीका के जितने चिंतक हैं, वे एक ही शब्द के आस-पास चिंतन करते हैं। वह शब्द है एम्पटीनेस, मीनिंगलेसनेस। अर्थहीन है, सब खाली है, कुछ भरा हुआ नहीं है। और भराव के करीब-करीब हैं वे! बात क्या है?
पूर्ण आदमी हो नहीं सकता; अपूर्ण होना उसकी नियति है। आदमी के होने का ढंग ऐसा है कि वह अपूर्ण ही होगा, कहीं भी हो। और अपूर्ण चित्त की आकांक्षा पूरे होने की होती है। वह भी मनुष्य की नियति है, वह भी उसके भाग्य का हिस्सा है कि अपूर्णता चाहती है कि पूर्ण हो जाए। अपूर्णता में पीड़ा मालूम पड़ती है, हीनता मालूम पड़ती है, दीनता मालूम पड़ती है। लगता है, पूरे हो जाएं। तो पूरे होने की कोशिश अपूर्णता से पैदा होती है। और अपूर्णता से जो भी पैदा होगा, वह पूर्ण हो नहीं सकता। वह बाइ-प्रॉडक्ट अपूर्णता की होगी।
अब मैं ही तो पूर्ण होने की कोशिश करूंगा, जो कि अपूर्ण हूं। मेरी कोशिश अपूर्ण होगी। मैं जो फल लाऊंगा, वह अपूर्ण होगा। क्योंकि फल और प्रयास मुझसे निकलते हैं। मुझसे बड़े नहीं हो सकते मेरे कृत्य। मेरा कर्म मुझसे बड़ा नहीं हो सकता। मेरी उपलब्धि मुझसे पार नहीं जा सकती। मेरी सब उपलब्धियां मेरी सीमा के भीतर होंगी। कोई संगीतज्ञ अपने से अच्छा नहीं गा सकता। और न कोई गणितज्ञ अपने से बेहतर सवाल हल कर सकता है। या कि कर सकता है? हम जो हैं, हमारा कृत्य उससे ही निकलता है। हम अपने से बेहतर नहीं हो सकते; हालांकि हम अपने को अपने से बेहतर करने की सब चेष्टा में लगे होते हैं। इससे विषाद पैदा होता है। चेष्टा बहुत होती है, परिणाम तो कुछ आता नहीं। परिणाम में वही अपूर्णता, वही अपूर्णता खड़ी रहती है। घूम-घूम कर हमारी अपने से ही मुलाकात हो जाती है। दौड़ते हैं इस कोशिश में कि कभी कोई पूर्ण मिल जाएगा। लेकिन खोजने वाला जब अपूर्ण हो, तो जिसे वह पाएगा, वह अपूर्ण ही होने वाला है। हम अपने से ज्यादा कुछ भी नहीं पा सकते।
यह स्थिति है। मध्य में हम हैं--अपूर्ण, अधूरे। अधूरे मन की आकांक्षा
है कि भर जाऊं, पूरा हो जाऊं। अपूर्णता से वासना पैदा होती है पूर्ण होने की। यह ध्यान रहे, पूर्णता में पूर्ण होने की वासना नहीं पैदा हो सकती, क्योंकि कोई अर्थ न होगा। अपूर्णता में पूर्ण होने की वासना पैदा होती है। वासना हमेशा विपरीत होती है। जो हम होते हैं, वासना उससे विपरीत होती है। हम गरीब होते हैं, तो अमीर होने की वासना होती है। हम रुग्ण होते हैं, तो स्वस्थ होने की वासना होती है। हम अधूरे हैं, तो पूरे होने की वासना होती है।
वासना बिल्कुल ही तर्कयुक्त है, क्योंकि अधूरे मन में पूरे होने का ख्याल पैदा होगा। बिल्कुल तर्कयुक्त है वासना, लेकिन परिणति कभी नहीं होने वाली है। क्योंकि अपूर्ण कभी पूर्ण नहीं हो सकता--किसी प्रयास से, किसी चेष्टा से, कैसे ही अभ्यास से, किसी साधना से। क्योंकि सब साधनाएं, सब अभ्यास, सब प्रयास अपूर्ण से ही निकलेंगे। और अपूर्ण की छाप उन पर लगी रहेगी। और अगर अपूर्ण आदमी पूर्ण उपलब्ध को कर ले, तो वह अपूर्ण था ही नहीं। अपूर्ण होने का कोई अर्थ ही नहीं रहा।
यह स्थिति है। और मनुष्य की सारी की सारी दौड़--आयाम कोई भी हो, दिशा कोई भी हो--पूर्ण होने की है। लाओत्से कहता है, शून्य हो जाओ। और लाओत्से कहता है, पूर्ण होने के किसी भी ख्याल से बचना। क्योंकि वही जाल है; वही है उपद्रव, जिसमें नष्ट होता है आदमी। इसलिए समझा लेना अपने को, समझ जाना कि पूर्ण होने के किसी उपद्रव में मत पड़ना। शून्य हो जाओ। और मजा यह है कि जो शून्य हो जाता है, वह पूर्ण हो जाता है। क्योंकि शून्य जो है, वह इस जगत में पूर्णतम संभावना है।
ऐसा समझें, एक घड़ा भरा हो, तो क्या आप ऐसी कल्पना कर सकते हैं घड़े के भरे होने की कि एक बूंद पानी उसमें और न जा सके? न कर सकेंगे। घड़ा बिल्कुल भरा है। आप कहते हैं, पूरा भरा है। लेकिन अगर एक बूंद पानी भी मैं उसमें डाल दूं, तो कहना पड़ेगा, अधूरा था। आप घड़े के कितने ही भरे होने की कल्पना करें, वह पूर्ण नहीं होगी। उसमें एक बूंद पानी अभी बन सकता है।

नानक अपनी यात्राओं में एक गांव के बाहर ठहरे थे। और एक फकीर, जिसकी पूर्णता के संबंध में बड़ी खबर थी, वह पहाड़ी पर अपने आश्रम में जो एक किले के भीतर था, उसमें था। नानक रुके थे, लोगों ने कहा कि वह व्यक्ति पूर्णता को उपलब्ध हो गया है। नानक ने खबर भिजवाई कि मैं भी मिलना चाहूंगा और जानना चाहूंगा, कैसी पूर्णता! तो उस फकीर ने एक प्याले में पानी भर कर-- पूरा पानी भर कर, एक बूंद पानी और न जा सके--नानक को नीचे भिजवाया भेंट कि मैं इस तरह पूर्ण हो गया हूं। नानक ने एक छोटे से फूल को उसमें तैरा दिया और वापस लौटा दिया। छोटे फूल को उस प्याली में डाल दिया और वापस लौटा दिया।
वह फकीर दौड़ा हुआ आया, पैरों पर गिर पड़ा। उसने कहा, मैं तो सोचता था, पूर्ण हो गया हूं।
नानक ने कहा, आदमी पूर्ण होने की कोशिश में जो भी करे, उसमें जगह खाली
रह ही जाती है। एक फूल तो तैराया ही जा सकता है। और एक फूल कोई छोटी बात नहीं है।
अगर हम घड़े को पूरा भरे होने की भी कल्पना करें, तो भी एक बूंद पानी तो उसमें डाला ही जा सकता है। लेकिन समझें कि घड़ा बिल्कुल खाली है। क्या और खाली कर सकेंगे? नहीं; घड़ा बिल्कुल खाली है। अगर उस फकीर ने एक खाली घड़ा भेज दिया होता, तो नानक मुश्किल में पड़ जाते। क्योंकि उसको और खाली करना मुश्किल हो जाता। और भरे को और भरा जा सकता है, खाली को और खाली नहीं किया जा सकता।
इसलिए भराव में कभी पूर्णता नहीं होती, और खाली में सदा पूर्णता हो जाती है। जो एम्पटीनेस है, वह परफेक्ट हो सकती है; जो रिक्तता है, वह पूर्ण हो सकती है। इसलिए मनुष्य के अस्तित्व में एक ही पूर्णता है संभव, और वह है पूर्ण रिक्तता, पूरा खाली हो जाना।
लाओत्से कहता है, ताओ है खाली घड़े की भांति, भरे घड़े की भांति नहीं। खाली घड़े की भांति। और इसलिए जिसे भी ताओ की या धर्म की उत्सुकता है, उस यात्रा पर जो जाने को आतुर हुआ है, उसे सभी तरह की पूर्णताओं के प्रलोभन से बचना चाहिए। सभी तरह के प्रलोभन!
अहंकार पूरे होने की कोशिश करेगा। अहंकार की सारी साधना यही है कि पूर्ण कैसे हो जाऊं! और ताओ तो उसे मिलेगा, जो खाली हो जाए; जहां अहंकार बचे ही नहीं।
आदमी रिक्त हो सकता है। उसके भी कारण हैं। जो हमारे पास नहीं है, शायद उसे न पाया जा सके; लेकिन जो हमारे पास है, उसे छोड़ा जा सकता है। जो हमारे पास नहीं है, उसे शायद न पाया जा सके; क्योंकि उस पर हमारा क्या बस है! लेकिन जो हमारे पास है, उसे छोड़ा जा सकता है। उस पर हमारा बस पूरा है। मैंने कहा, आदमी है बीच में। इस तरफ शून्य है, उस तरफ पूर्ण है। आदमी
है अधूरा। कुछ उसके पास है, कुछ उसके पास नहीं है। अब दो उपाय हैं। जो उसके पास नहीं है, वह भी उसके पास हो जाए, तो वह पूर्ण हो जाए। और एक उपाय यह है कि जो उसके पास है, वह भी छोड़ दे, तो वह शून्य हो जाए। लेकिन जो हमारे पास नहीं है, वह हमारे पास हो, यह जरूरी नहीं है। यह हमारे हाथ में नहीं है। लेकिन जो हमारे पास है, वह छोड़ा जा सकता है। वह हमारे हाथ में है। उसके लिए किसी से भी पूछने जाना नहीं पड़ेगा।
अब यह बहुत मजे की बात है। अगर पूर्ण होना है, तो परमात्मा से प्रार्थना करनी पड़ेगी। तब भी नहीं हो सकते। और अगर शून्य होना है, तो किसी परमात्मा की सहायता की जरूरत न पड़ेगी। आप काफी हो। कोई मांग नहीं करनी पड़ेगी।
इसलिए जिन धर्मों ने शून्य होने की व्यवस्था की, उनमें प्रार्थना की कोई जगह नहीं है। जिन धर्मों ने शून्य होने की व्यवस्था की, जैसे बुद्ध ने या लाओत्से ने, उनमें प्रार्थना की कोई जगह नहीं है। प्रेयर का कोई मतलब ही नहीं है। क्योंकि मांगना हमें कुछ है ही नहीं, तो क्या प्रार्थना करनी है! किससे प्रार्थना करनी है! जो हमारे पास है, उसे छोड़ देंगे; और झंझट खतम हो जाती है।
जो हमारे पास नहीं है, उसे मांगना पड़ेगा। उसमें किसी के द्वार पर हाथ जोड़ कर खड़ा होना पड़ेगा। उसके लिए कुछ करना पड़ेगा।

अब इसमें और देखने जैसी बात है। जो हमारे पास नहीं है, उसे पाने में समय की जरूरत लगेगी। टाइम विल बी नीडेड। क्योंकि जो हमारे पास नहीं है, वह आज ही नहीं मिल जाएगा। कल मिलेगा, परसों मिलेगा, अगले जन्म में मिलेगा--कब मिलेगा--समय लगेगा। लेकिन जो मेरे पास है, वह इसी वक्त छोड़ा जा सकता है, इंसटैनटेनियसली। उसके लिए समय की कोई भी जरूरत नहीं है। कल छोडूंगा, परसों छोडूंगा, यह सब बेकार की बात है। क्योंकि जो मेरे पास है, उसे मैं अभी छोड़ सकता हूं। और अगर कल पर टालता हूं, तो मेरे सिवाय और कोई जिम्मेवार नहीं है। लेकिन जो मेरे पास नहीं है, अगर वह मुझे अभी न मिले, तो मैं ही जिम्मेवार नहीं हूं। क्योंकि मैं सारी कोशिश कर लूं, तब भी न मिले। क्योंकि हजार चीजों पर निर्भर होगा कि वह मुझे मिले कि न मिले।
आप तो चाह सकते हैं कि आकाश आपके आंगन में आ जाए। आप तो चाह सकते हैं
कि सूरज आपके घर में बैठे। पर आपकी चाह ही है, चाह ही सकते हैं; यह होगा कि नहीं, यह हजार बातों पर निर्भर करेगा। यह अकेले आप पर निर्भर नहीं करेगा।
इसके लिए सहारे मांगने पड़ेंगे।
लाओत्से ने प्रार्थना के लिए कोई जगह नहीं है। लाओत्से कहता है, कोई सवाल ही नहीं है; तुम्हारे पास जितना है, उतना छोड़ दो।
एक और मजे की बात है। और यह पूरा गणित समझ लेने जैसा है। मेरे पास दस रुपए हैं। समझ लें कि लाख रुपया अगर परफेक्शन मान लिया जाए, पूर्णता मान ली जाए। मेरे पास दस रुपए हैं और लाख रुपया पूर्णता का अंक है, तो मुझे बड़ी लंबी यात्रा करनी है। और आपके पास अगर नब्बे हजार रुपए हैं, तो आपको बड़ी छोटी यात्रा करनी है। और अगर आपके पास सिर्फ पांच रुपए की कमी है लाख में, तो आपकी यात्रा तो बहुत निकट है। और मेरी यात्रा उतनी ही दूर है, मेरे पास पांच रुपए हैं या दस रुपए हैं। अगर हम पूर्णता की तरफ चलें, तो हम सब एक ही जगह नहीं हैं। देन वी आर नॉट ईक्वल। किसी के पास पांच रुपए, किसी के पास दस, किसी पर दस हजार, किसी पर पचहत्तर हजार, किसी पर नब्बे हजार, किसी पर निन्यानबे हजार, किसी पर निन्यानबे हजार नौ सौ निन्यानबे। तो बड़ा फासला है। पूर्णता का अगर हम ध्येय रखें, तो आदमी समान नहीं हैं।
लेकिन आपके पास निन्यानबे हजार नौ सौ निन्यानबे रुपए हैं और मेरे पास
एक रुपया है; अगर शून्यता की तरफ जाना है, हम दोनों एक ही साथ जा सकते हैं। ईक्वलिटी पूरी है। मैं एक रुपया छोड़ दूं, आप अपने रुपए छोड़ दें। मैं शून्य हो जाऊंगा, आप शून्य हो जाएंगे। सिर्फ शून्य की तरफ जो यात्रा है, वह मनुष्य को ईक्वलिटी में खड़ा कर सकती है। अन्यथा नहीं कर सकती।
तो जो परफेक्शन ओरिएंटेड सोसायटीज हैं--सभी हैं--वे कभी समान नहीं हो सकती हैं। सिर्फ शून्य की तरफ जिन समाजों की यात्रा है, वे समान हो सकती हैं। क्योंकि शून्य के समक्ष, आपके पास पंचानबे हजार हैं, इससे फर्क न पड़ेगा। और मेरे पास पांच रुपए हैं, इससे फर्क न पड़ेगा। मैं पांच रुपए छोड़ कर वहीं पहुंच जाऊंगा, जहां आप पंचानबे हजार छोड़ कर पहुंचेंगे। कुछ ऐसा न होगा कि आपको बड़ा शून्य मिल जाएगा और मुझे छोटा मिलेगा। हमारी रिक्तता बराबर होगी। जिस घड़े में पूरा पानी भरा था, वह भी उलट कर खाली हो जाएगा। मेरे घड़े में एक ही बूंद थी, वह भी उलट कर खाली हो जाएगा। मेरे घड़े के खालीपन में और आपके घड़े के खालीपन में कोई हायरेरकी नहीं होगी। बस हम खाली होंगे।
लेकिन पूर्णता की अगर दृष्टि हो, तो समानता असंभव है। असंभव है। और फिर यात्रा अलग-अलग होगी। और कब पूरी होगी, नहीं कहा जा सकता। समय की जरूरत पड़ेगी। और जिस धर्म को पाने में समय की जरूरत पड़े, वह धर्म समय से कमजोर होता है, स्वभावतः। जिस धर्म को पाने के लिए शर्त हो यह कि इतना समय लगेगा, वह धर्म बेशर्त न रहा, अनकंडीशनल न रहा। उस धर्म की शर्त हो गई कि इतना समय लगेगा।
अगर ठीक से समझें, तो वह धर्म टाइम-प्रॉडक्ट हो गया, समय से उत्पन्न हुआ। और जो समय से उत्पन्न होता है, वह कालातीत नहीं होता। जिस चीज को समय के द्वारा पैदा किया जाता है, वह समय में ही नष्ट हो जाती है। ध्यान रखें, जो चीज समय के भीतर जन्मती है, वह समय के भीतर ही मर जाती है। जिसका एक छोर समय में है, उसका दूसरा छोर समय के बाहर नहीं हो सकता।

लेकिन शून्यता तत्क्षण हो सकती है--इसी वक्त, अभी। यह तत्क्षण कहना भी गलत है। असल में, शून्यता क्षण के बाहर घटित होती है। भराव समय के भीतर होता है; रिक्तता समय के बाहर होती है। रिक्त होते ही समय के बाहर हैं आप। और रिक्त होने के लिए समय की कोई जरूरत नहीं है।
इसलिए अगर लाओत्से के पास कोई जाकर पूछे कि मैंने बहुत पाप किए हैं, बहुत बुराइयां की हैं, मैं बहुत बुरा आदमी हूं, मेरी मुक्ति में कितनी देर लगेगी? तो लाओत्से कहता है, अभी हो सकती है, यहीं हो सकती है। लाओत्से कह सकता है, अभी हो सकती है, यहीं हो सकती है। क्योंकि वह कहता है, सवाल यह नहीं है। तुम्हें कुछ होना नहीं है; तुम जो हो, उसको भी छोड़ देना है। इसलिए लाओत्से ने कोई ख्याल नहीं दिया इस बात का कि कितने जन्म तुम्हें लगेंगे, कितना वक्त लगेगा। नहीं, लाओत्से कहता है, अभी और यहीं। इसलिए लाओत्से ने जिस निर्वाण की बात की है, वह सडन एनलाइटेनमेंट है। अभी हो सकता है। इसमें क्षण भी गंवाने की जरूरत नहीं है। हां, तुम्हीं न चाहते होओ, तो बात अलग है। और कोई बाधा नहीं है। लाओत्से कहता है, और कोई बाधा नहीं है। तुम्हीं न चाहो, तो बात अलग है। और कोई बाधा नहीं है। और सब बहाने हैं।
यह समझना बहुत कठिन होगा मन को कि मोक्ष को रोकना भी हमारा बहाना है। निर्वाण को न पाना भी हमारी तरकीब है। कोई पाप नहीं रोक रहा है। सिर्फ हम नहीं चाहते; और इसलिए हम एक्सप्लेनेशंस खोजते हैं कि किन-किन वजह से रुक रहा है मोक्ष।
लाओत्से की दृष्टि में समय का कोई व्यवधान नहीं है। अभी हो जाएं खाली; यहीं खोल दें मुट्ठी।
लाओत्से यह भी कहता है कि भराव कभी भी शांत नहीं हो सकता। आधा घड़ा भरा
है, आवाज होती है; पौना घड़ा भरा है, आवाज होती है। लाओत्से कहता है, कितना ही घड़ा भरा हो, आवाज होती ही रहेगी। सिर्फ खाली घड़ा शांत हो जाता है। क्यों?
आप कहेंगे, कभी तो ऐसा हो सकता है कि घड़ा बिल्कुल ही भरा हो और आवाज न हो।
लेकिन लाओत्से नहीं मानता। लाओत्से कहता है कि घड़ा भरा हो, तो एक बात
तय हो गई कि दो चीजें हैंः घड़ा है, और जो चीज भरी है। और जहां द्वैत है, वहां पूर्ण शांति नहीं हो सकती।
इसको ठीक से समझ लें। जहां घड़े में कुछ भरा है, वहां घड़ा है और कुछ भरा है। तो वहां द्वैत कायम रहेगा। इसलिए पूर्णता को उत्सुक आदमी द्वैत से भरा रहेगा, द्वंद्व से भरा रहेगा, कांफ्लिक्ट जारी रहेगी। सिर्फ शून्य में खड़ा हुआ आदमी कांफ्लिक्ट के बाहर होगा, क्योंकि दूसरा बचता ही नहीं है। घड़ा खाली है, आवाज कौन करेगा? कोई टकराने को भी नहीं है। घड़े में कुछ है ही नहीं; घड़ा अकेला है। ध्यान रहे, अद्वैत में ही शांति संभव है, क्योंकि टकराने को कोई नहीं है। जहां दो हैं, वहां टकराव होता ही रहेगा। अब यह बहुत मजे की बात है और इसकी अपनी तर्क-सरणी है। जब भी आप अपने को किसी चीज से भरेंगे, तो पक्का आप समझ लेना कि वह आप न होंगे जिससे आप भरेंगे, वह कुछ और होगा। वह चाहे धन हो, यश हो, ज्ञान हो, त्याग हो, भगवान हो, कुछ भी हो। ध्यान रहे, जिससे भी आप अपने को भरेंगे, वह आप न होंगे। कुछ और होगा। समथिंग एल्स। और दूसरे से भर कर कहीं शांत हो सकते हैं?
अब यह तो पक्का समझ में आता है न कि घड़ा घड़े से ही कैसे अपने को भरेगा! पानी से भरेगा, तेल से भरेगा, दूध से भरेगा, जहर से, अमृत से भर लेगा; बाकी भरेगा किसी और से। अब घड़ा घड़े से ही कैसे अपने को भरेगा? घड़े को अगर घड़ा ही होना है, तो शून्य होना ही उसका उपाय है। अगर घड़े को सिर्फ घड़े से ही भरा होना है, तो शून्य होना ही उसकी विधि है। नहीं तो घड़ा किसी और से भर जाएगा। वह नाम कुछ भी रख लेगा; नाम रखने से अंतर नहीं पड़ता। हमको धोखा जरूर होता है कि नाम रख लेने से अंतर पड़ जाता है।
लिंकन के पास एक बहुत बड़ा धर्मशास्त्री मिलने गया था। तो वह बड़ी-बड़ी बातें कर रहा था--ईश्वर, स्वर्ग, नर्क! लिंकन ने कहा कि मैं यह पूछना चाहता हूं कि ये सिर्फ नाम ही तो नहीं हैं? उसने कहा कि नहीं, नाम नहीं हैं। लिंकन ने कहा, इसे छोड़ें। मैं एक बात पूछूं, गाय के कितने पैर होते हैं?

उसने कहा कि यह भी कोई पूछने की बात है! कहां मैं मोक्ष, परमात्मा, स्वर्ग-नर्क की बात कर रहा हूं और आप गाय के पैर पूछते हैं? फिर भी लिंकन ने कहा, कृपा करके। उसने कहा कि यह कोई बात है, गाय के चार पैर होते हैं। लिंकन ने कहा, अगर हम गाय की पूंछ को भी एक पैर कहें, पैर मान लें, तो गाय के कितने पैर होते हैं? उसने कहा कि फिर पांच पैर होते हैं।
लिंकन ने कहा, यहीं तुम्हारी गलती है। तुम चाहे पूंछ को पैर कहो, तो भी पूंछ पैर नहीं हो जाती। तुम्हारे कहने से क्या होगा? तुम्हारे कहने से क्या पूंछ पैर हो जाएगी? तुम पूंछ भला कहो, तख्ती लगा दो, फिर भी पूंछ पैर नहीं हो जाती। पूंछ पूंछ ही होती है। तुम्हारे लेबल से कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि पैर सिर्फ नाम नहीं है, पैर कुछ काम है। वह पूंछ नहीं कर सकती। तुम नाम कितना ही दे दो उसको।
हम नामों के भ्रम में बहुत रहते हैं। आदमी के बड़े से बड़े भ्रम जो हैं,
वे लेबलिंग और नाम के हैं।
सूफियों की एक कहानी है कि एक गिलहरी एक वृक्ष के नीचे बैठी है और एक लोमड़ी गुजरती है। तो वह लोमड़ी गिलहरी से कहती है कि नासमझ, मुझे देख कर भी तू भाग नहीं रही है! तुझे पता है, मैं लोमड़ी हूं, तुझे अभी दो टुकड़े कर सकती हूं।
गिलहरी ने कहा कि कोई प्रमाणपत्र है? हैव यू गॉट एनी सर्टिफिकेट? तुम लोमड़ी हो, इसका कोई लिखित प्रमाणपत्र है?
लोमड़ी बड़ी हैरानी में पड़ी, क्योंकि ऐसा गिलहरियों ने कभी पूछा ही नहीं था। यह बड़ी अनहोनी घटना थी। गिलहरी भाग जाती थी लोमड़ी को देख कर। किसी गिलहरी ने कभी कोई यह जुर्रत ही नहीं की थी कि लोमड़ी से पूछे कि कोई प्रमाणपत्र है तुम्हारे पास? यह कैसे हम मानें कि तुम लोमड़ी हो, कुछ लिखित है? लोमड़ी को पसीना आ गया, यह कभी ऐसा इतिहास में नहीं हुआ था। उसने कहा, तू ठहर, मैं अभी प्रमाणपत्र लेकर आती हूं।
वह सिंह के पास गई और उसने कहा कि कृपा करो एक लिखित प्रमाणपत्र दो। इज्जत बेइज्जत हुई जाती है। एक साधारण सी गिलहरी मुझसे--यह उसके मन में चल रहा है--इज्जत बेइज्जत हुई जाती है। एक साधारण सी गिलहरी। यह उसने सिंह से नहीं कहा। उसने इतना ही कहा कि मुझे प्रमाणपत्र दे दो। मन में उसके यह चल रहा है कि हद हो गई। हद हो गई, ऐसा कभी इतिहास में भी नहीं सुना था।
सिंह ने उसे लिख कर एक प्रमाणपत्र दिया। वह लेकर वापस लौटी। गिलहरी अपनी जगह बैठी थी। उसने प्रमाणपत्र पढ़ कर सुनाया, जहां सिंह ने चर्चा की थी कि यह लोमड़ी है और बहुत खतरनाक जानवर है, और गिलहरी को इससे सावधान होना चाहिए, और इस तरह की बातें नहीं करनी चाहिए। उसने यह प्रिफेस, यह भूमिका सुन कर ही गिलहरी तो नदारद हो गई। उसने सोचा कि है तो पक्का। वह तो भाग गई। लेकिन लोमड़ी पढ़ने में इतनी तल्लीन हो गई थी और खुद की प्रशंसा पढ़ने में इतने धीरे-धीरे पढ़ रही थी कि उसने जब पूरा पढ़ पाई प्रमाणपत्र, तब देखा कि गिलहरी जा चुकी है।
वह वापस लौटी। जब वह पहुंची सिंह के पास, तो देख कर हैरान हुई कि एक हिरण वहां खड़ा हुआ था और वह सिंह से कह रहा था, कोई लिखित प्रमाणपत्र है आपके पास? हम कैसे मान लें कि आप सिंह हो? लोमड़ी ने कहा, हद हो गई! अब यह सिंह बेचारा क्या करेगा? हम तो खैर प्रमाणपत्र ले गए।
सिंह ने उस हिरण से कहा कि देख, अगर मुझे भूख लगी हो, तो तुझे प्रमाणपत्र लेने की फुर्सत भी नहीं मिलेगी। सिद्ध हो जाएगा। और अगर मुझे भूख न लगी हो, तो आई डोंट केयर। इससे कोई मतलब ही नहीं है कि तू मानता है मुझे सिंह कि नहीं मानता। अगर मुझे भूख नहीं लगी, तो मैं तेरी चिंता नहीं करता कि तू क्या मानता है। और अगर मुझे भूख लगी है, तो तुझे फुर्सत भी न मिलेगी इस बात की फिकर करने की कि मैं कौन हूं।
लोमड़ी ने कहा कि महाराज, यह मुझसे क्यों न कहा? मुझे क्यों सर्टिफिकेट
दे दिया? एक साधारण सी गिलहरी, मैं भी उसको ठीक कर देती। सिंह ने कहा, लेकिन तूने मुझे बताया ही नहीं था कि गिलहरी ने सर्टिफिकेट मांगा है। मैं तो समझा कि सम स्टुपिड ह्यूमन बीइंग, कोई मूढ़ आदमी ने मांगा होगा। इधर कुछ देर से ये जंगली जानवर भी आदमी की बेवकूफी में पड़ने लगे हैं, सर्टिफिकेट मांगते हैं।

आदमी की बुनियादी नासमझियों में से नेमिंग, लेबलिंग, नामकरण बुनियादी नासमझियों में से है। नाम देकर बड़ी सुविधा हो जाती है। आदमी कहता है, मैं परमात्मा से अपने को भर रहा हूं। तब वह भूल जाता है कि यह द्वैत है। यह भी द्वैत है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि किससे तुम भर रहे हो। एक बात तय है कि तुम घड़े हो और किसी से भरे जा रहे हो। वह संसार है, कि परमात्मा है, कि प्रेम है, कि प्रार्थना है, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। तुम नहीं हो। तुम तो भरने वाले हो, या जिसमें भरा जा रहा है, वह हो। फिर जो भी भरा जा रहा है, उसका कोई भी नाम हो--उसको संसार न कह कर मोक्ष कहने लगेंगे, तो फर्क नहीं पड़ने वाला है--द्वैत जारी रहेगा।
असल में, दूसरे से ही हम भरे जा सकते हैं। अगर अपना ही होना, शुद्ध अपने ही होने में थिर होना है, तो सिवाय शून्य होने के और कोई उपाय नहीं है।
इसलिए लाओत्से कहता है, "ताओ है रिक्त घड़े जैसा। इसके उपयोग में सभी प्रकार की पूर्णताओं से सावधान रहना अपेक्षित है।"
इसके उपयोग में, अगर धर्म का उपयोग करना है, तो पूर्णता के उपद्रव से, समस्त पूर्णताओं से सावधान रहना अपेक्षित है। यह भी थोड़ा सोचने जैसा है। उपयोग शब्द के भीतर थोड़ा उतरें तो ख्याल में आएगा।
धर्म अगर कुछ है तो जीवन का परम उपयोग है, वह जीवन की आत्यंतिक अर्थवत्ता है। अगर ताओ का या धर्म का उपयोग करना है, तो एक ही सूचन देता है लाओत्से कि समस्त तरह की पूर्णताओं से, पूर्णता की आकांक्षा से सावधान रहना। और धर्म का उपयोग शुरू हो जाएगा। क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति शून्य होता है, वैसे ही धर्म सक्रिय हो जाता है, डायनैमिक हो जाता है। और जैसे ही कोई व्यक्ति भर जाता है किन्हीं चीजों से, धर्म अक्रिय हो जाता है, बोझ से भर जाता है, दब जाता है। नष्ट तो होता नहीं धर्म।
इस कमरे में खाली जगह है, एम्पटी स्पेस है। इस कमरे में लाकर हम सामान
भर दें, इतना सामान भर दें कि कमरे में इंच भर जगह न रह जाए। इसका क्या अर्थ हुआ? क्या इसका यह अर्थ हुआ कि पहले जो खाली जगह थी, वह नष्ट हो गई? क्या हम उसे नष्ट करने में सफल हो गए? या इसका यह मतलब है कि पहले जो खाली जगह थी, वह छोड़ कर इस कमरे के बाहर हट गई और कमरा भर गया? इस कमरे के बाहर खाली जगह जा नहीं सकती। क्योंकि खाली जगह कोई चीज नहीं है कि चली जाए। और जाएगी कहां? बाहर खाली जगह पहले से ही काफी मौजूद है। इस कमरे की खाली जगह को सम्हालने के लिए कहीं भी तो कोई जगह नहीं है इस अंतरिक्ष में, जहां यह इस कमरे की इतनी खाली जगह अगर बाहर निकल जाए, तो यह कहां रुकेगी?
खाली जगह को आप नष्ट कैसे करेंगे? फिर दूसरा उपाय यह है कि नष्ट हो गई होगी; हमने सामान भर दिया, खाली जगह नष्ट हो गई। लेकिन नष्ट कोई चीज हो सकती है, खालीपन नष्ट नहीं हो सकता। वस्तु नष्ट हो सकती है, शून्य नष्ट नहीं हो सकता। शून्य का मतलब ही यह है कि जो नहीं है। उसको नष्ट कैसे करिएगा? नष्ट करने के लिए किसी चीज का होना जरूरी है।
तो आप इस कमरे को कितना ही भर दें, ठोस सीमेंट से बंद कर दें पूरा का पूरा, तो भी खाली जगह यहीं की यहीं होगी। न नष्ट हो सकती है, न बाहर जा सकती है। तो क्या फिर हमें खाली जगह किसी दिन इस कमरे में लानी हो--रहने का मन हो जाए, इस कमरे में बसना हो, बैठना हो, सोना हो--तो हम क्या करेंगे, खाली जगह कहीं बाहर से लाएंगे? खाली जगह पैदा करने के लिए कुछ मैन्युफैक्चर करेंगे? खाली जगह को पैदा करने के लिए कोई कारखाना बनाएंगे?
नहीं, सिर्फ इस कमरे में जो चीज भरी है, उसे बाहर कर देंगे। खाली जगह अपनी जगह ही रहेगी। चीज खाली जगह को सिर्फ छिपा देती है। आप हटा देंगे वस्तुओं को, खाली जगह प्रकट हो जाएगी।
हम भी ऐसे ही हैं। खालीपन हमारा स्वभाव है। वह हमारा धर्म है। वह ताओ है। हम उसमें भरते जाते हैं चीजें। इतना भर लेते हैं कि वह खाली जगह दब जाती है। दब जाती है, ऐसा कहना पड़ता है। दबा तो हम उसको नहीं सकते। लेकिन अप्रकट हो जाती है, दिखाई नहीं पड़ती, अदृश्य हो जाती है। क्या करें अब? लाओत्से कहता है, यह पूरे होने की जो आकांक्षा है, इससे सावधान रहना।
और पूरे होने की आकांक्षा छोड़ देना। तो पूरे होने के लिए जो इंतजाम तुमने घर में कर रखा है, वह तुम खुद ही उठा कर फेंक दोगे। वह तो इंतजाम है सिर्फ

पूरे होने का। और जिस दिन उसे उठा कर फेंक दोगे और भीतर रिक्तता उपलब्ध होगी, उसी दिन ताओ में स्थिति हो जाती है।
और ताओ बड़ा सक्रिय है, बहुत डायनैमिक फोर्स है शून्य। और उस शून्य का बड़ा उपयोग है। असल में, उपयोग ही शून्य का होता है। उपयोग का अर्थ है कि जैसे ही कोई व्यक्ति शून्य हो जाता। जो अधूरापन था, उसने फेंक दिया। पूर्ण होने की कोशिश न की, क्योंकि पूर्ण होने की कोशिश में चीजें बढ़ानी पड़ती थीं। उसने चीजें उठा कर फेंक दीं। उसने पूर्ण होने का, मकान बनाने का ख्याल ही छोड़ दिया। अब जब वह अपूर्ण नहीं रहा, तो उसे क्या कहिएगा? अपूर्णता का सब इंतजाम उसने उठा कर फेंक दिया, अब वह अपूर्ण नहीं रहा। अब उसे क्या कहिएगा?
शून्य तो हम सिर्फ इसलिए कहते हैं ताकि दृष्टि शून्य होने की तरफ लग जाए। जिस दिन कोई व्यक्ति अपने भीतर से सब साज-सामान फेंक देता है, पूर्ण होने की सब योजनाएं, प्लानिंग फेंक देता है, सब इंतजाम छोड़ देता है, खाली हो जाता है, उस दिन पूर्ण हो जाता है। अपूर्णता से मुक्त हो जाना पूर्ण हो जाना है।
यह अलग परिभाषा हुई। अपूर्णता को विकसित करके, छांट-छांट कर पूर्ण होने की जो कोशिश है, वह एक। और एक अपूर्णता को छोड़ कर खड़े हो जाने पर जो शेष रह जाती है स्थिति, वह दो। वह भी पूर्ण है।
और वह पूर्णता फिर आपकी नहीं है। क्योंकि आप तो, जो चीजें छोड़ीं, उसी में बह जाएंगे। वह पूर्णता फिर समष्टि की है, वह पूर्णता फिर सर्व की है। वह पूर्णता फिर परमात्मा की है। और यह परमात्मा बड़ा सक्रिय है। और इस परमात्मा से सारा सृजन है, सारी क्रिएटिविटी है। चाहे बीज में अंकुर फूटता हो और चाहे आकाश में एक तारा निर्मित होता हो और चाहे एक फूल खिलता हो और चाहे एक व्यक्ति पैदा होता हो--यह सारा विराट का जो आयोजन है, उसी परम शून्य से है। वह शून्य महासक्रियशाली है। उस शून्य में बड़ी ऊर्जा है। हम अपने ही हाथ दीन बन जाते हैं पूर्ण होने की कोशिश में। शून्य होते ही हम परम सौभाग्यशाली हो जाते हैं, परम धन के मालिक हो जाते हैं।
इसलिए लाओत्से कहता है, इसके उपयोग में सभी प्रकार की पूर्णताओं से सावधान रहना अपेक्षित है। यह कितना गंभीर है! यह शून्य! यह शून्य कितना गंभीर है! यह शून्य कितना अथाह है, मानो यह सभी पदार्थों का उदगम हो! जिससे सभी कुछ पैदा हुआ हो, जिससे सभी कुछ निकला हो, जिससे सभी कुछ जन्मा हो। जैसे यह सम्मानित पूर्वज है, सब का पिता है, सब की जननी है, सब का उदगम-स्रोत है।
लेकिन बड़े अदभुत शब्द उसने उपयोग किए हैं, जो कि कंट्राडिक्टरी मालूम पड़ेंगे, विरोधाभासी मालूम पड़ेंगे। क्योंकि पहले तो वह कहता है, रिक्त घड़ा है धर्म। और फिर कहता है, कितना अथाह है!
अब थाह तो हम हमेशा चीजों की लेते हैं। शून्य नदी को आप अथाह न कह सकेंगे। भरी हुई नदी को, बहुत भरी हुई नदी को कहेंगे, अथाह है। बहुत होगा पानी, नाप में न अटता होगा, तो कहेंगे, अथाह है। सूनी नदी को, जिसमें जल ही न हो, कोई अथाह कहेगा, तो पागल कहेंगे।
लाओत्से उसी नदी को अथाह कह रहा है, जहां जल है ही नहीं। क्यों? बहुत मजेदार है। लाओत्से कहता है कि जिसमें जल है, उसे तुम चाहे न नाप पा रहे हो, वह नापा जा सकता है। इट कैन बी मेजर्ड, मेजरेबल है। कितनी ही तकलीफ पड़े, लेकिन इम्मेजरेबल नहीं है, अथाह नहीं है। थाह तो मिल ही जाएगी। थोड़ी और दूर होगी, थोड़ी और दूर होगी, थाह तो होगी ही। क्योंकि वस्तु अथाह नहीं हो सकती। हां, वह नदी अथाह हो सकती है, जिसमें जल न हो। क्योंकि अब तुम कैसे नापोगे? जो नहीं है, उसे नापने का कोई उपाय नहीं है। जो है, वह नापा जा सकता है। इसलिए जल वाली नदी कभी अथाह नहीं हो सकती; निर्जल नदी अथाह हो जाएगी। लाओत्से कहता है, घड़ा कितना ही भरा हो, अथाह नहीं होगा; खाली घड़ा अथाह है। खाली घड़ा अथाह है, क्योंकि जो शून्य है, उसको नापने का उपाय नहीं है। उसके नापने की कोई मेजरमेंट की विधि, व्यवस्था, तराजू, कोई नाप, कोई गज, कुछ भी नहीं है। एक छोटे से शून्य को भी नहीं नापा जा सकता, और एक बड़े विराट जगत को भी नापा जा सकता है।

हिंदू दर्शन के पास एक शब्द है, माया। माया का मतलब होता है, जो मापा
जा सकता है, दैट व्हिच इ.ज मेजरेबल। माया का मतलब इल्यूजन नहीं होता, माया का मतलब भ्रम नहीं होता। माया का मतलब होता है, जो मापा जा सकता है, जो मेय है, मेजरेबल है। जो मेय है, वह माया है। और चूंकि नापा जा सकता है, इसलिए इल्यूजन है। माया का अर्थ नहीं होता भ्रम। जो नापा जा सकता है, वह सत्य नहीं है। क्योंकि सत्य अमाप है, वह इम्मेजरेबल है, वह अमेय है। उसको हम माप न सकेंगे।
लाओत्से कहता है, "कितना अथाह!"
अब इसे भी थोड़ा सोचने जैसा है। क्योंकि लाओत्से जैसे व्यक्ति रत्ती
भर शब्द भी व्यर्थ नहीं बोलते हैं; इंच भर भी वाणी अकारण नहीं होती है। क्योंकि बड़ी मुश्किल से बोलते हैं। बोलना कोई लाओत्से जैसे व्यक्ति के लिए कोई सुख नहीं है। बड़ी पीड़ा है, बड़ी कठिनाई है। क्योंकि जो कहने चलते हैं वे, वह कहने के बिल्कुल बाहर है। उसमें एक भी शब्द वे ऐसा उपयोग नहीं करते।
अब इसमें बड़ा मजेदार है। लाओत्से कहता है, कितना अथाह! कितना नहीं कहना चाहिए। कितना नहीं कहना चाहिए, क्योंकि कितने में माप शुरू हो जाता है। कितना शब्द माप की सूचना देने लगता है--कितना अथाह! फिर लाओत्से क्यों कितने का उपयोग करता होगा? अगर लाओत्से इतना कहे कि अथाह, तो तर्कयुक्त मालूम पड़ेगा। लेकिन कहता है, कितना अथाह! कितने में तो माप की शुरुआत हो जाती है।
पर लाओत्से एक शब्द अकारण नहीं बोलता। फिर से सोच लें। अगर लाओत्से कहे अथाह, तो माप हो गया। अगर लाओत्से कहे अथाह, दिस वर्ल्ड इ.ज इम्मेजरेबल। तो कोई भी कह सकता है, यू हैव मेजर्ड।
अगर मैं यह कहूं कि अथाह है यह जगत, तो इसका मतलब हुआ कि मैंने तो कम से
कम नाप-जोख कर ली; मैं तो कोने तक पहुंच गया; मैंने तो पूरा देख डाला, और लौट कर कहा, अथाह है। मैं जल में गया और मैंने लौट कर कहा, अथाह है। दो ही बातें हो सकती हैं। या तो मैं यह कहूं कि मैं थाह तक नहीं पहुंच पाया। तो मुझे अथाह कहने का हक नहीं है। मुझे इतना ही कहना चाहिए कि मैं थाह तक नहीं पहुंच पाया। क्योंकि हो सकता है, जहां तक मैं गया, उसके एक हाथ नीचे ही थाह हो। नदी के बाहर आकर मैं कहता हूं, अथाह। तो दो ही बातें हो सकती हैं। या तो मैं पहुंच नहीं पाया थाह तक। तब मुझे अथाह कहना नहीं चाहिए। मुझे इतना ही कहना चाहिए कि जहां तक मैं गया, वहां तक थाह न थी, बस। आगे हो सकती है। आगे का मैं कुछ कह नहीं सकता। और या इसका यह मतलब हुआ कि मैं आखिर तक पहुंच गया और मैंने पाया कि अथाह है। लेकिन यह एब्सर्ड है। अगर मैं आखिर तक पहुंच गया, तो मैं थाह तक पहुंच गया। और लौट कर अगर मैं कहता हूं कि मैं बिल्कुल आखिर तक देख कर आ रहा हूं, थाह नहीं है, यह तो बिल्कुल गलत बात है। क्योंकि आखिर तक तुमने देखा कैसे अगर थाह नहीं है? अगर तुम पहुंच गए आखिर तक, तो थाह है।
इसलिए लाओत्से कहता है, कितना अथाह! अथाह को भी सीधा नहीं देता है वक्तव्य। क्योंकि सीधे देने में तो लगेगा, नापा जा चुका। कम से कम लाओत्से ने तो नापा। कम से कम लाओत्से को तो पता चल गया कि अथाह है। लेकिन लाओत्से कहता है, कितना अथाह! इसमें लाओत्से इतना ही कहता है, कितना ही नापो, कितना ही नापो, नापते ही चले जाओ--कितना अथाह! तुम नापते हो, और नाप के बाहर। तुम नापते हो, और नाप के बाहर। तुम जहां तक पहुंचते हो, वहीं से आगे। तुम जहां तक पहुंच जाते हो, वहीं किनारा नहीं। जहां तक पहुंच जाते हो, वहीं थाह नहीं मिलती। अनंत-अनंत तरह से तुम जाकर देखते हो और पाते हो, कितना अथाह! अथाह को भी सीधा नहीं कह देता। सीधा कहने में तो बात नापी हुई हो जाएगी।
इस कारण बहुत से वक्तव्य कंट्राडिक्टरी टर्म्स में दिए जाते हैं, विरोधी टर्म्स में दिए जाते हैं। अथाह सीधा कह देने से थाह वाला शब्द हो जाता है; नापा-जोखा हो जाता है। कितना अथाह! और तब अथाह में भी लेयर्स हो जाती हैं। तब अथाह में भी मल्टी डायमेंशंस हो जाते हैं, बहुआयाम हो जाते हैं। अकेला अथाह कहने से वन डायमेंशनल शब्द है। कितना अथाह कहने से मल्टी डायमेंशनल हो गया।
महावीर से तुलना में ख्याल में आ सकेगा।

महावीर जब भी बोलते हैं, तब वे सिर्फ अनंत नहीं कहते सत्य को। वे कहते हैं अनंतानंत। जब भी वे कहते हैं, सत्य कैसा, तो वे यह नहीं कहते कि अनंत, इनफिनिट। वे कहते हैं, इनफिनिटली इनफिनिट, अनंत-अनंत। कोई उनसे पूछने लगा कि यह क्या बात है? अनंत कहने से काम चल जाएगा। दो-दो अनंत जोड़ने से क्या मतलब?
और गलत भी है दो-दो अनंत जोड़ना, क्योंकि अनंत तो एक ही हो सकता है। अगर
दो अनंत होंगे, तो एक-दूसरे की सीमा बना देंगे। अगर इस जगत में हम कहें कि दो अनंत हैं, तो दोनों ही अनंत न रह जाएंगे; दोनों सांत हो जाएंगे। क्योंकि दो एक-दूसरे की सीमा... । अनंत का तो मतलब यह है कि जिसका कोई अंत नहीं। लेकिन जहां से दूसरा शुरू होगा, वहां से पहले का अंत हो जाएगा। अनंत तो एक ही हो सकता है।
इसलिए महावीर के पहले तक अनंत शब्द का सीधा उपयोग चलता था। उपनिषद अनंत का उपयोग करते हैं। लेकिन अनंत वन डायमेंशनल है। और महावीर को लगा कि अनंत कहने से नाप हो जाती है, जैसे कि पता चल गया, जैसे कि जान लिया गया। जो आदमी कहता है अनंत, जैसे उसे पता हो गया, उसे मालूम है।
तो महावीर कहते हैं, अनंतानंत। इतना अनंत है कि अनंत कहने से भी चुकता नहीं। हमें उसके ऊपर और--अनंत स्क्वायर, अनंत-अनंत। इतना अनंत है कि अनंत कहने से नहीं चुकता, तो इनफिनिट स्क्वायर। तब मल्टी डायमेंशनल हो गया, बहुआयामी हो गया। और यह बहुआयामी जब भी कोई शब्द होता है, तो बड़ा जीवंत हो जाता है; और जब एक आयामी होता है, तो मुर्दा हो जाता है। लाओत्से कह सकता था, अथाह; लेकिन वह कहता है, कितना अथाह! वह अनंत-अनंत जैसे शब्द का प्रयोग कर रहा है।
वह कहता है, "कितना गंभीर!"
शून्य और गंभीर! शून्य तो बिल्कुल खाली होगा; उसमें कैसी गंभीरता? शून्य तो बिल्कुल खाली होगा; उसमें कैसी गंभीरता? नदी में बहुत जल है, तो हम कहते हैं, कैसा गंभीर प्रवाह! नदी में दो तरह के प्रवाह होते हैं। एक छिछला प्रवाह होता है; छोटी-मोटी नदियों में होता है। कंकड़-पत्थर दिखाई पड़ते रहते हैं, पर नदी शोरगुल बहुत करती है। बित्ता भर पानी होता है, लेकिन शोरगुल बहुत होता है। उसको कहते हैं छिछला प्रवाह; गंभीर नहीं। नदी शोरगुल बहुत करती है, बातचीत बहुत करती है।
फिर एक नदी है कि इतना गहरा है जल कि नीचे अगर चट्टानें भी पड़ी हों, तो उनसे भी नदी की छाती पर कोई उथल-पुथल पैदा नहीं होती। नदी बहती भी है, तो पता नहीं चलता तट पर खड़े होकर कि बह रही है। बहना भी इतना सायलेंट है। तब कहते हैं, नदी की धारा बड़ी गंभीर; आवाज भी नहीं है जरा।
लाओत्से कहता है, कितना गंभीर! वहां तो कोई जल की धारा ही नहीं है; सब शून्य है।
पर वही कारण है। लाओत्से कहेगा, कितने ही धीमे बहती हो नदी, तुम्हारे कान पकड़ पाते हों कि न पकड़ पाते हों, जहां प्रवाह होगा वहां शोर तो होगा ही। कम होगा, सूक्ष्म होगा। न सुनाई पड़े, ऐसा होगा। लेकिन जहां प्रवाह है, वहां घर्षण है। और जहां घर्षण है, वहां शोर है। तो लाओत्से कहता है, सिर्फ शून्य ही गंभीर हो सकता है, क्योंकि वहां कोई शोर नहीं होगा। वहां कोई प्रवाह ही नहीं है। वहां कोई घर्षण नहीं है। कहीं जाना नहीं है, कहीं आना नहीं है। सब चीजें अपने में थिर हैं।
तो कहता है, कितना गंभीर! कितना गहरा!
लेकिन कितना जोड़ता है। और जोड़ने का कारण है कि कोई भी शब्द उथला न हो जाए; और कोई भी शब्द ऐसी खबर न दे कि बात पूरी हो गई। इस शब्द पर बात पूरी हो गई, ऐसी खबर न दे। सब शब्द आगे की यात्रा को खोलते हों; कोई शब्द क्लोजिंग न हो, सब शब्द ओपनिंग हों। लाओत्से जैसे लोगों के सारे शब्द ओपन होते हैं। उनके हर शब्द से और कहीं द्वार खुल जाता है; आगे के लिए खुलाव मिलता है। पंडित जब बोलता है, उसके सब शब्द क्लोज्ड होते हैं; उसका कोई शब्द आगे के लिए इशारा नहीं देता। उसका शब्द चारों तरफ सीमा खींच देता है, और कहता है, यह रहा सत्य! जानकारी, तथाकथित ज्ञान कहता है, यह रहा सत्य! वास्तविक ज्ञान इशारे करता है। और ऐसे इशारे करता है जो फिक्स्ड नहीं हैं, गतिमान हैं।

इशारे भी दो तरह के हो सकते हैं। एक इशारा जो कि थिर होता है, फिक्स्ड होता है। अगर कोई चांद को बताए फिक्स्ड इशारे से, तो थोड़ी देर में चांद तो हट चुका होगा, इशारा वहीं रह जाएगा। अगर किसी को सच में ही चांद को बताए रखना है, तो अंगुली को बदलते जाना पड़ेगा, इशारे को जीवंत होना पड़ेगा, और चांद के साथ उठना पड़ेगा।
लाओत्से जैसे लोग सत्य को कोई मृत इकाई नहीं मानते, कोई डेड यूनिट नहीं मानते। डायनैमिक, लिविंग फोर्स मानते हैं। एक जीवंत प्रवाह है। तो उनके सब इशारे जीवंत हैं। उनका हाथ उठता ही चला जाता है।
कितना! इस कितने में कहीं सीमा नहीं बनती; यह कितना सब इतनों के पार चला जाता है। और एक डेप्थ और एक इशारा जो सदा ट्रांसेंड करता है शब्द को। महावीर जब कहते हैं अनंत-अनंत, तब भी उस शब्द में इतना ट्रांसेंडेंस नहीं है, जितना लाओत्से कहता है, कितना! ट्रांसेंडेंस और भी ज्यादा है, अतिक्रमण और भी ज्यादा है। क्योंकि महावीर अनंत शब्द को फिर से दोहरा देते हैंः अनंत-अनंत! लेकिन शब्द फिर फिक्स्ड सा हो जाता है। शब्द की ध्वनि भी फिक्स्ड हो जाती है; एक सीमा बन जाती है। ऐसा लगता है कि शब्द की सीमा है, परिभाषा है; समझ पाएंगे। लेकिन जब कोई कहता है, कितना अथाह! तो वह कितना जो है, उसकी कोई सीमा नहीं बनती।
लाओत्से कहता है, "कितना गंभीर, कितना अथाह, मानो यह सभी पदार्थों का उदगम हो।"
वह भी कहता है मानो, एज इफ। सत्य को जिन्हें बोलना है, उन्हें एक-एक पांव सम्हाल कर रखना होता है। वह यह नहीं कहता कि सभी पदार्थों की जननी है।
वाहिंगर ने एक किताब लिखी हैः दि फिलासफी ऑफ एज इफ। अदभुत किताब है। पश्चिम ने पिछले सौ वर्षों में जो दस-पांच कीमती किताबें पैदा कीं, उसमें वाहिंगर की किताब है, दि फिलासफी ऑफ एज इफ। वह कहता है कि जगत में जिन्होंने भी कहा, सत्य ऐसा है, उन्होंने गलत कहा। क्योंकि आदमी इतना ही कह सकता है, एज इफ। इससे ज्यादा आदमी कहे, तो सीमाओं के पार जाता है। वह आदमी की अस्मिता है और अहंकार है।
तो वाहिंगर नहीं कहता कि गॉड क्रिएटेड दि वर्ल्ड; वह कहता है, एज इफ गॉड क्रिएटेड दि वर्ल्ड। यानी दुनिया इतनी खूबसूरत है कि मानो ईश्वर ने बनाई हो। क्योंकि कौन और बनाएगा? वाहिंगर यह नहीं कहता कि ईश्वर ने बनाई यह दुनिया, मैं सिद्ध कर दूंगा। क्योंकि वाहिंगर कहता है कि यह मैं सिद्ध करूंगा, जो इस दुनिया का एक हिस्सा हूं! तो फिर कोई असिद्ध भी कर देगा। और अगर मैं हकदार हूं सिद्ध करने का, तो कोई हकदार है असिद्ध करने का। अगर इस जगत का एक हिस्सा कह सकता है ईश्वर है और प्रमाण जुटा सकता है, तो दूसरा हिस्सा कह सकता है कि नहीं है और प्रमाण जुटा सकता है। और जब कोई कहता है नहीं है, तो हमें यह नहीं कहना चाहिए कि वह सीमा के बाहर जा रहा है; क्योंकि है वाले ने यात्रा शुरू करवा दी, वह सीमा के बाहर चला गया।
इस जगत में पहले सीमा के बाहर आस्तिक चले गए। उन्होंने जो वक्तव्य दिए, वे मनुष्य की सीमा के बाहर हैं। नास्तिकों ने तो सिर्फ उनका अनुगमन किया। एक आदमी कहता है, मैं सिद्ध करता हूं कि ईश्वर है। यह बाहर हो गई बात। ईश्वर को भी तुम्हारे सिद्ध करने की जरूरत पड़ती है?
वाहिंगर कहता है कि नहीं, इतना ही कह सकता हूं मैं, जितना सोचता हूं, जितना खोजता हूं, तो पाता हूं, एज इफ गॉड क्रिएटेड दि वर्ल्ड। मानो कि... । कोई गणित का सत्य नहीं है यह; वह कहता है, यह मेरे हृदय का भाव है, ऐसा मुझे लगता है कि मानो। एक छोटे से फूल को भी देखता हूं, तो वह कहता है, मुझे ऐसा लगता है कि मानो किसी ईश्वर ने इसे निर्मित किया होगा। मेरा मन नहीं होता मानने का कि यह यों ही पत्थर के बीच जमीन से फूट आया है। इसलिए मैं कहता हूं, एज इफ।
लाओत्से कहता है, मानो वह जो अथाह, गंभीर, कितना अथाह, कितना गंभीर वह
जो शून्य है, वह जो घड़ा है रिक्त, उससे ही सब पदार्थों का जन्म हुआ हो।
यह एज इफ, यह मानो जोड़ देना बड़ा मूल्यवान है। यह लाओत्से की बहुत सेंसिटिविटी का, बहुत संवेदनशील चित्त का लक्षण है। यानी वक्तव्य इतना संवेदनशील है, यों ही नहीं बोल दिया गया है। किसी विवाद की गर्मी में नहीं

कहा गया है, कुछ सिद्ध करने की चेष्टा में नहीं कहा गया है, किसी को कनविंस करने के लिए नहीं कहा गया है। उदगार है, ऐसा लगा है। ऐसा अनुभव हुआ है, ऐसी प्रतीति बनी है, ऐसा अहसास है।
इसलिए लाओत्से ने कहीं कहा है... । उसके शिष्यों ने बहुत से वक्तव्य लाओत्से के इकट्ठे किए हैं। च्वांगत्से कहता है, लाओत्से ने कहीं कहा है कि जितना बड़ा ज्ञानी, उतना ही ज्यादा झिझकता है। अज्ञानी बिना झिझके वक्तव्य दे देते हैं--बड़े वक्तव्य, जो हमारे ओंठों पर शोभा भी न दें--कि जगत को परमात्मा ने बनाया। यह वक्तव्य परमात्मा से बड़ा कर देता है वक्तव्य देने वाले को। कि यह कृत्य पाप है। कौन सा कृत्य पाप है, कौन सा कृत्य पुण्य है, बड़ा अनिर्णीत है। और जो जानता है, वह हेजिटेट करेगा, वह झिझकेगा, वह वक्तव्य देने से बचेगा।

जीसस ने कहा है, जज यी नॉट, तुम तो निर्णय ही मत करो। जज यी नॉट दैट यी शुड नॉट बी जज्ड, तुम निर्णय ही मत लो, नहीं तुम्हारा निर्णय होगा फिर। किसी दिन तुम झंझट में पड़ोगे।
तुम निर्णय ही मत लो। क्योंकि चीजें बहुत जटिल हैं और बहुत रहस्यपूर्ण हैं। क्या है पाप? क्या है पुण्य? यहां पुण्य पाप बन जाता है; यहां पाप पुण्य बन जाते हैं। यहां जो पाप की तरह शुरू होता है, उसमें पुण्य के फूल खिल जाते हैं। यहां जो पुण्य की तरह यात्रा शुरू करता है, पाप की मंजिल पर पहुंच जाता है। यहां जो अभी उजाला है, थोड़ी देर में अंधेरा हो जाता है। अभी जो अंधेरा था, वह थोड़ी देर में उजाला हो जाता है। अभी सुबह थी, सांझ हो गई। अभी जो सुंदर था, वह कुरूप हो गया है। क्या है सुंदर? नसरुद्दीन से उसकी पत्नी पूछ रही है एक दिन कि इधर कुछ दिनों से मुझे
शक होता है कि तुमने मुझ पर प्रेम कम कर दिया है। क्या मैं तुमसे पूछ सकती हूं कि जब मैं बूढ़ी हो जाऊंगी, तब भी तुम मुझे प्रेम करोगे? नसरुद्दीन ने कहा कि पूजूंगा, तेरे चरणों की धूल सिर पर लगाऊंगा। लेकिन ठहर, तू अपनी मां जैसी तो न हो जाएगी? अगर तेरी मां जैसी हो जाए, तो हाथ जोड़ लूं। तू ऐसी ही तो रहेगी न!
किसको सौंदर्य कहेंगे हम? किसको जवानी? जवानी का हर कदम बुढ़ापे में पड़ता चला जाता है। किसको सौंदर्य कहते हैं? हर सौंदर्य की लहर थोड़ी ही देर में कुरूप हो जाती है। यहां चीजें रहस्यपूर्ण हैं, संयुक्त हैं, विभाजित नहीं हैं। जगत ऐसा नहीं है कि हम कह सकें, यह अंधेरा है और यह उजाला है; जगत ऐसा है कि सब धुंधलका है, सांझ है। न कह सकते उजाला है; न कह सकते अंधेरा है।
लाओत्से कहता है, झिझकते हैं वे, जो ज्ञानी हैं। और लाओत्से के सभी वक्तव्य झिझक से भरे हुए हैं, बहुत हेजिटेटिंग हैं। अज्ञानी पढ़ेगा, तो उसको लगेगा, शायद पता नहीं होगा लाओत्से को। नहीं तो ऐसा क्यों कहना कि मानो कि। अगर मालूम है, तो कहो; नहीं मालूम है, तो कहो। साफ बात करो। नहीं मालूम, तो कह दो कि हमें पता नहीं कि जगत कहां से पैदा हुआ; मालूम है, तो कहो कि इससे पैदा हुआ। ऐसा क्यों कहते हो, मानो कि! इससे तुम्हारे अज्ञान का पता चलता है।
असल में, अज्ञानी चीजों के रहस्य को कभी नहीं देख पाते। फिक्स्ड कंसेप्ट में आसानी पड़ती है। कह दिया कि यह आदमी पापी है, बात खतम हो गई। लेकिन पापी पुण्य कर सकते हैं। कह दिया, यह आदमी पुण्यात्मा है, बात खतम हो गई। लेकिन पुण्यात्मा पाप कर सकता है। तो क्या मतलब तुम्हारे कहने से हुआ? अगर पुण्यात्मा पाप कर सकता है और अगर पापी पुण्य कर सकता है, तो तुम्हारे लेबल लगाने खतरनाक हैं। क्यों लगाए? कोई मतलब न था उनका।
पर हमें सुविधा हो जाती है, हम निश्चिंत हो जाते हैं। कैटेगराइज कर लेते हैं; एक-एक खाने में रख दिया आदमियों को उठा कर, निश्चिंत हो गए! हालांकि हमारी वजह से कुछ रुकता नहीं; हमारी वजह से कुछ फर्क नहीं पड़ता; जिंदगी गतिमान रहती है।
लाओत्से बहुत हेजिटेटिंग है। और जगत में बहुत थोड़े से लोग हुए हैं, जो लाओत्से जैसे हेजिटेटिंग हैं। हिंदुस्तान में सिर्फ बुद्ध के पास इतना हेजिटेशन है। लेकिन वह भी इतना नहीं। क्यों? क्योंकि मैंने कल आपसे कहा कि

बुद्ध ने कह दिया, इन सवालों के मैं जवाब न दूंगा। यह भी काफी सुनिश्चित बात हो गई। एक सुनिश्चित बात तो यह है कि ये जवाब हैं; एक सुनिश्चित बात यह हो गई कि इनके जवाब ही नहीं हैं। बट दि आंसर इ.ज डेफिनिट, इनके जवाब नहीं हैं। कोई अनिश्चय नहीं है मामले में।
लाओत्से कहता है, मानो कि। हाइपोथेटिकल है, कल्पना करो कि, दौड़ाओ अपनी भावना को, शायद तुम्हें ख्याल में आ जाए, जैसे इसी शून्य से सब पैदा हुआ है।
हुआ है, इसी शून्य से पैदा हुआ है; लेकिन इसे सुनिश्चित रूप से कह देना
कि इसी शून्य से पैदा हुआ है, अतिक्रमण है, ट्रेसपासिंग है। क्योंकि तब शून्य इतना छोटा हो गया कि हमने उसको सामने रख कर देख लिया कि इसी से सब पैदा हुआ है। शून्य बहुत छोटा हो गया, विराट न रहा। अथाह न रहा, गहरा न रहा, असीम न रहा, बहुत छोटा हो गया। हमने अपने सामने रख लिया अपनी प्रयोगशाला की टेबल पर, और कहा कि इसी से सब पैदा हुआ है। यह रहा शून्य, इससे सब पैदा हुआ है। मिस्ट्री न रही, रहस्य न रहा बात में।
लाओत्से कहता है, मानो कि जैसे यही हो जननी!
लाओत्से से लोग अगर पूछें कि ईश्वर है? तो लाओत्से नहीं कोई हां-न में जवाब देता। लाओत्से जैसे लोग ईश्वर की इतनी सन्निधि में जीते हैं कि हां-न में जवाब नहीं दे सकते हैं।
नसरुद्दीन पर एक मुकदमा चला है एक अदालत में। और मजिस्ट्रेट ने कहा
है कि नसरुद्दीन, तुम लफ्फाज हो, तुम शब्दों को ऐसे टर्न देते हो कि हमें बड़ी कठिनाई होती है। तुम हां और न में जवाब दो। नहीं तो यह मुकदमा कभी खतम न होगा। तुम ऐसी गोल-मोल बातें कर देते हो कि हम उसमें घूमते हैं और कहीं पहुंचते नहीं। तुम हां और न में जवाब दो, तो ही हल हो सकता है।
नसरुद्दीन ने कहा कि लेकिन जो भी बातें जवाब देने योग्य हैं, वे हां
और न में नहीं दी जा सकती हैं। और जो बातें जवाब देने योग्य नहीं हैं, वे हां और न में दी जा सकती हैं। फिर तुमने मुझे कसम खिलाई सत्य बोलने की, वह वापस ले लो! फिर मैं हां और न में जवाब दे दूंगा। तुमने मुझे कसम दिलाई सत्य बोलने की, आई एम ऑन ओथ! और सत्य ऐसा नहीं है कि हां और न में जवाब दिया जा सके।
मजिस्ट्रेट ने कहा, अच्छा तो तुम कोई एक ऐसा उदाहरण दो, जिसका जवाब हां और न में न दिया जा सके।
नसरुद्दीन ने कहा कि मैं पूछता हूं महानुभाव, आपने अपनी पत्नी को पीटना बंद कर दिया? हैव यू स्टॉप्ड बीटिंग योर वाइफ? आप हां और न में जवाब दे दें।
मजिस्ट्रेट थोड़ी दिक्कत में पड़ा। अगर वह कहे हां, तो उसका मतलब वह पीटता था पहले; अगर वह कहे न, तो उसका मतलब वह अभी पीट रहा है।
नसरुद्दीन ने कहा, कहिए, क्या ख्याल है? मेरी ओथ हटा लें, सच बोलने की झंझट मुझ पर न हो, तो मैं हां और न में जवाब दे सकता हूं। लेकिन बहुत चीजें हैं, नसरुद्दीन ने कहा, जिनका हां और न में कोई जवाब नहीं हो सकता है।
और ईश्वर जहां आता है, वहां तो हां और न बिल्कुल बेकार हो जाते हैं। वहां नास्तिक भी मूढ़ और आस्तिक भी मूढ़ हो जाते हैं। वहां हां और न में जवाब देने वाले निपट मूढ़ हैं। वहां चीजें बहुत तरल हो जाती हैं, और एक-दूसरे में प्रवेश कर जाती हैं।
इसलिए लाओत्से बहुत-बहुत झिझकता हुआ कहता है, मानो कि इसी शून्य से सब पैदा हुआ हो।
शेष कल। दो सूत्र बचे हैं, तो दो दिन में सूत्र हो जाएंगे; और तीसरा दिन एक और हमारे पास बचेगा, तो जो भी आपके सवाल इस बीच हुए हों, वे तीसरे दिन।
तो अपने-अपने सब सवाल तैयार कर लें, जिसको भी पूछना हो।

ताओ उपनिषद, भाग एक
तेरहवां प्रवचन

अहंकार-विसर्जन और रहस्य में प्रवेश

Chapter 4 : Sutra 2

We should blunt its sharp points, and unravel its complications; We should attemper its brightness and submerge its turmoil. Yet dark like deep water it seems to remain.

अध्याय 4 : सूत्र 2

इसकी तेज नोकों को घिस दें; इसकी ग्रंथियों को सुलझा दें;
इसकी जगमगाहट मृदु हो जाए;
इसकी उद्वेलित तरंगें जलमग्न हो जाएं;
फिर भी यह अथाह जल की तरह तमोवृत्त सा रहता है।

धर्म है रिक्त चेतना की अवस्था, खाली घड़े की भांति।
लेकिन कोई खाली घड़ा कैसे हो पाए? शून्य कोई होना भी चाहे तो कैसे शून्य हो? मिटना कोई चाहे भी तो मिटने की प्रक्रिया क्या है?
कल हमने समझने की कोशिश की कि पूर्ण होने की चेष्टा से ज्यादा कोई नासमझी की बात नहीं। लेकिन पूर्ण होने का विज्ञान उपलब्ध है। एक-एक कदम पूर्ण होने की सीढ़ियां उपलब्ध हैं। पूर्ण होने का शास्त्र है। और जिन्हें पूर्ण होना है, उनके लिए विद्यापीठ हैं, जहां वे शिक्षित हो सकते हैं कि किसी दिशा में पूर्ण कैसे हों। लेकिन शून्य होने का क्या शास्त्र है? और शून्य होने का विद्यापीठ कहां? और शून्य होने के लिए शिक्षक कहां मिलेगा? और कौन सा अनुशासन है जिससे व्यक्ति शून्य हो?
कुछ भी होना हो, तो प्रक्रिया से गुजरना पड़ेगा। तो पूर्ण होने की प्रक्रियाएं तो मनुष्य ने विकसित की हैं। अहंकार को मजबूत करने के मार्ग बनाए हैं, यात्रा-पथ निर्मित किए हैं, क्रमबद्ध सोच-विचार किया है। लेकिन शून्य! शून्य होने के लिए क्या किया जा सकता है?
तो लाओत्से कुछ बातें कहता है। वह कहता है, "तेज नोकों को घिस दें।" व्यक्तित्व में तेज नोकें हैं बहुत। जहां-जहां आप किसी को चुभते हैं, वहां आप में तेज नोक होती है। लेकिन एक मजा है नोक का कि जब दूसरा आपको चुभता है, तब उसकी नोक आपको पता चलती है; लेकिन जब आप किसी दूसरे को चुभते हैं, तो आपको अपनी नोक पता नहीं चलती। अगर छुरे को मैं आपके शरीर में चुभाऊं, तो आपको पता चलता है, छुरे को पता नहीं चलता। मेरी तेज नोक किसी में गड़ती है, तो उसे पता चलता है, मुझे पता नहीं चलता। हां, किसी और की नोक मुझमें गड़ जाए, तो मुझे पता चलता है।
इससे जगत में बड़ी भ्रांति होती है, बहुत कनफ्यूजन है। जगत की सारी कलह
इस कारण ही है कि हमें दूसरे की नोक ही पता चलती है, अपनी नोक कभी पता नहीं चलती। आपको कभी अपनी नोक पता चली है? इसलिए जीवन भर हम दूसरों की नोकों को झड़ाने में लगे रहते हैं।
तो पहली बात तो यह ख्याल में ले लें कि हमें अपनी नोकों का पता नहीं चलता, दूसरे की नोकों का ही पता चलता है, क्योंकि वे हमें चुभती हैं। हमारी नोकें दूसरों को चुभती हैं, उनका हमें पता नहीं चलता। दूसरी बात, चूंकि उनका हमें पता ही नहीं चलता, इसलिए जाने-अनजाने हम उनकी जड़ों को मजबूत किए चले जाते हैं। और दूसरे की नोक हमें चुभती है, इसलिए दूसरे की नोक को तोड़ने की हम चेष्टा करते हैं।
और एक मजे की बात कि जितना हम दूसरे की नोक को तोड़ने की चेष्टा करते हैं, उतना ही हमें अपनी नोक मजबूत करनी पड़ती है। क्योंकि दूसरे की नोक तोड़नी हो, तो हमारी नोक के अलावा और कोई उपकरण नहीं है, जिससे हम उसे

तोड़ें। तो दूसरे की नोक को तोड़ने की कोशिश गहरे में अपनी नोक को बढ़ाने की, चमकाने की, धार देने की कोशिश है। दूसरा भी यही कर रहा है। तब दुष्टचक्र ख्याल में आ जाएगा, विसियस सर्किल ख्याल में आ जाएगा। प्रत्येक यही कर रहा हैः दूसरे की नोकें तोड़ने की कोशिश कर रहा है; दूसरों की नोकें तोड़ने में अपनी नोकों को धार दे रहा है। दूसरा भी यही कर रहा हैः इसकी नोकें तोड़ने की कोशिश कर रहा है; इसकी नोकें तोड़ने के लिए अपनी नोकों को जहर पिला रहा है, पाय.जन दे रहा है। हम नोकें ही नोकें रह जाते हैं। धीरे-धीरे हम में सिवाय इन नोकों के और कुछ भी नहीं बचता।
ज्यादा से ज्यादा हमारी नोकें हमें एक तरह से चुभती हैं सिर्फ। वह भी ख्याल में ले लेना जरूरी है। अपनी ही नोक हमें सिर्फ एक तरफ से चुभती है। जब हमारी नोक दूसरों को बहुत चुभने लगती है, तब वे सभी हमें नोकें चुभाने को उत्सुक हो जाते हैं। बस, इसी तरह से नोक हमें पता चलती है। तब हम ज्यादा से ज्यादा जो करते हैं, वह यह करते हैं कि अपनी नोकों के ऊपर वस्त्र पहना देते हैं--स्किन डीप। एक पर्त चमड़ी की हमारी नोकों पर हो जाती है। मृदुता और विनम्रता और शिष्टता और सज्जनता, उसका हम अपने चारों तरफ एक लेप कर लेते हैं। लेकिन वह जरा सी ही चोट से उखड़ जाता है। हम करते ही उसे इतना हैं कि जरा सी चोट लगे और हमारी नोक बाहर आ जाए।
लाओत्से कहता है, सब नोकों को झड़ा दें।
तो करना क्या होगा? पहले तो यह जानना होगा कि हम में नोकें कहां-कहां हैं? और कहीं ऐसा तो नहीं कि हम जन्मों-जन्मों की यात्रा में सिर्फ नोकें ही रह गए हैं? हमने बाकी सब हिस्से काट डाले हैं अपने और सिर्फ उन हिस्सों को बचा लिया है। और हम में नोकें हैं, तब हमें उनका कैसे पता चले?
सदा दूसरे की जगह खड़े होकर देखें, तो पता चल सकता है। जब भी आपसे कोई पीड़ित होता है, तो हमारा मन कहता है कि उसकी भूल है कि वह पीड़ित हो रहा है। और जब हम किसी से पीड़ित होते हैं, तो हमारा मन कहता है कि किसी ने हमें सताया है, इसलिए हम पीड़ित होते हैं। डबल बाइंड है। अगर आप मुझ पर क्रोधित होते हैं, तो मैं कहता हूं, आपका स्वभाव खराब है। और अगर मैं क्रोधित होता हूं, तो मैं कहता हूं, स्थिति ऐसी है; स्थिति ही ऐसी है कि मुझे क्रोध करना पड़ेगा। और दूसरा क्रोध करता है, तो मैं कहता हूं, उसके स्वभाव की विकृति है; परिस्थिति तो जरा भी न थी कि क्रोध किया जाए, लेकिन वे आदमी ही विषाक्त थे। यह हमारा तर्क है। और इस तर्क में हमारी सारी नोकें छिप जाती हैं और उनका हमें कभी पता नहीं चलता।
जीसस ने कहा है, जो तुम चाहते हो कि तुम्हारे साथ किया जाए, वही तुम दूसरे के साथ करना। लेकिन यह तो दूर की बात है। जो तुम दूसरे के साथ सोचते हो, कम से कम उतना अपने साथ सोचना। या जो तर्क तुम अपने लिए देते हो, कम से कम दूसरे के साथ भी न्याय बरतना, उतना तर्क देना। अगर मैं कहता हूं कि जब मैं क्रोधित होता हूं तो परिस्थिति ऐसी होती है, तो कम से कम इतना न्याय करूं कि जब मुझ पर कोई क्रोधित हो तो मैं कहूं कि परिस्थिति ऐसी है कि तुम्हें क्रोधित होना पड़ रहा है। डबल बाइंड जो लॉजिक है हमारा, वह तोड़ना पड़ेगा। नहीं तो नोकों का कभी पता नहीं चलेगा।
वह डबल बाइंड लॉजिक जो है, दोहरा तर्क--अपने लिए और, दूसरे के लिए और--
वह नोकों को बचाने के लिए है। उसमें हमें कभी पता ही नहीं चलता कि हम कौन हैं। हम क्या हैं, उसका हमें बोध ही नहीं हो पाता। और चीजें इस तरह आगे बढ़ती चली जाती हैं। और इसी एक तर्क के सहारे सारा जीवन नष्ट हो जाता है। इसलिए अगर समस्त धर्मों का सार किसी वचन में आ जाता हो, तो वह जीसस के
इस वचन में आ जाता हैः डू अनटू अदर्स एज यू वुड लाइक टु बी डन विद यू। बस सारे धर्म का सार इस एक सूत्र में आ जाता हैः दूसरे के साथ वही करो जो तुम चाहोगे कि दूसरे तुम्हारे साथ करें। यह एक वचन काफी है। सारे वेद और सारे शास्त्र और सारे पुराण और सारे कुरान और सारी बाइबिल, इस एक छोटे से वचन में समाहित हो जाते हैं।
इतना कोई कर ले तो और कुछ करने को बाकी नहीं रह जाता। लेकिन यह करना बहुत दुष्कर है। क्योंकि इसको करने के लिए सारी नोकें झड़ा देनी पड़ेंगी।
और नोकें हममें हैं।

तो पहले तो यह जो दोहरा तर्क है, इसके प्रति सजग हो जाना चाहिए। एक-एक
पल इसके प्रति सजग होना पड़ेगा कि मैं दूसरे को भी उतना ही मौका दूं, वही तर्क का लाभ दूं, जो मैं अपने को देता हूं। और तब आपको अपनी नोकें दिखाई पड़नी शुरू हो जाएंगी। तब बहुत मजेदार स्थिति बनती है। जिस दिन यह तर्क हम छोड़ देते हैं और दूसरे को भी वही मौका देते हैं, उस दिन स्थिति बिल्कुल बदल जाती है। अभी हम कहते हैं कि दूसरे का स्वभाव विकृत है, इसलिए वह क्रोधी है; और मेरी तो परिस्थिति ऐसी थी, इसलिए मैंने क्रोध किया। जिस दिन यह तर्क बदल जाता है, उस दिन अनूठा अनुभव होता है। उस दिन पता चलता है कि मेरा स्वभाव ऐसा है कि मैंने क्रोध किया और दूसरे की परिस्थिति ऐसी थी कि उसने क्रोध किया। जिस दिन यह तर्क बदलता है, उस दिन यह पूरी स्थिति उलटी हो जाती है।
और जब आपको यह दिखाई पड़ने लगता है कि मेरा स्वभाव ऐसा है कि मैंने क्रोध किया, मेरी आदत ऐसी है कि मैंने क्रोध किया, दूसरे की परिस्थिति ऐसी थी कि उसने क्रोध किया, तो आप दूसरे को न क्षमा करने में और अपने को क्षमा करने में असमर्थ हो जाते हैं। और जो अपने को क्षमा करने में बहुत सुगमता पाता है, वह नोकों को कभी भी न झड़ा पाएगा।
लेकिन हम बड़े कुशल हैं स्वयं को क्षमा कर देने में। स्वयं के प्रति हमारी क्षमा का कोई अंत ही नहीं है। अगर कभी मैं पूछूं या कभी हम ऐसा सोचें कि क्या आपके जैसा ही ठीक आदमी आपको साथ रहने के लिए दे दिया जाए, कितने दिन उसके साथ रह पाइएगा? जस्ट ए कॉपी ऑफ यू, ठीक आपकी ही नकल एक आदमी आपको दे दिया जाए, कितने दिन उसके साथ रह पाइएगा? चौबीस घंटे भी रहना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन आप अपने साथ तो कई जन्मों से रह रहे हैं। जरूर कोई तर्क होगा ऐसा, जिससे आप अपने को जानने से बचे रहते हैं। ख्याल ही नहीं आता कि मैं क्या हूं; पता ही नहीं चलता कि मैं क्या हूं; होश ही नहीं आता कि मैं क्या हूं।
तो पहले तो नोकों का बोध--वे जो हममें चारों तरफ भाले लगे हैं, भालों
के फलक लगे हैं। कहीं से हम निकलें, तो किसी न किसी को जरूर कुछ न कुछ चोट पहुंच जाती है। और अगर आप बिना चोट पहुंचाए निकल जाएं, तो आपको लगता है, आप निकले ही नहीं। ऐसा लगता है कि आपकी तरफ किसी ने कोई ध्यान ही नहीं दिया। ध्यान ही कोई तभी आपको देता हुआ मालूम पड़ता है, जब उसको किसी तरह आप चोट पहुंचाना शुरू करते हैं।
चोटों के बहुत ढंग हैं, उन पर हम बात करेंगे, कि हम कितनी तरह से चोटें पहुंचा सकते हैं, और हम कितने तर्क निकाल सकते हैं।
एक सुबह नसरुद्दीन की बैठक में कुछ मित्र इकट्ठे हैं। और नसरुद्दीन
ने अपने एक शिष्य से कहा कि जा, यह मिट्टी का घड़ा है, कुएं से पानी भर ला। लेकिन ध्यान रख, घड़ा मिट्टी का है, टूट न जाए। जरा मेरे पास आ। उसे पास बुला कर उसने दो चांटे रसीद किए। वह युवक तो तिलमिला गया; वे बैठे लोग भी घबड़ा गए। एक बूढ़े ने कहा भी कि मुल्ला, बेकसूर को मारना, कुछ समझ में नहीं आता। अभी तो घड़ा टूटा भी नहीं, तोड़ा भी नहीं, और सजा दे दी! नसरुद्दीन ने कहा कि मैं उन नासमझों में से नहीं हूं कि घड़ा टूट जाए, फिर चांटा मारूं। फिर फायदा क्या? फिर फायदा ही क्या है? जब घड़ा ही टूट जाएगा, तो मारने से क्या फायदा है?
नसरुद्दीन को आप जवाब न दे पाएंगे। बात तो बड़ी मतलब की कह रहा है। कि मारना है तो अभी, तो कुछ अर्थ भी है। पीछे तो कोई अर्थ भी न रह जाएगा। आदमी इतना कुशल है, कसूर के पहले भी दंड दे सकता है। नसरुद्दीन की मजाक में वही बात है। और उसके लिए भी रेशनलाइजेशन खोज सकता है; उसके लिए भी तर्क खोज सकता है। तर्क खोजने की कुशलता हम में है।
लेकिन तर्क की कुशलता से कभी भी कोई आत्म-अनुभव को उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि तर्क की सारी व्यवस्था स्वयं को छिपाने के काम आती है। तर्क से नहीं चलेगा काम, अंतर्दृष्टि से चलेगा। और अंतर्दृष्टि का अर्थ है कि अपने को दूसरे की जगह में रखने की क्षमता होनी चाहिए। रोज ऐसा होता है, लेकिन कभी हमें यह ख्याल नहीं आता। रोज हममें से हरेक को लगता है कि दूसरे ने हम पर जो क्रोध किया, वह बिल्कुल अनजस्टीफाइड था, वह बिल्कुल न्यायसंगत नहीं था। प्रत्येक को लगता है। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है--और अगर कहीं

मिल जाए, तो वह बहुत अनूठा फूल है--ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसे दिन में पच्चीसों बार ऐसा नहीं लगता कि उसके साथ अन्याय हो रहा है। उसने तो कुछ ऐसा किया ही नहीं जिस पर क्रोध हो!
हम सब की प्रतीति यह है कि हम सब अन्याय से पीड़ित हैं, विक्टिम हैं, शिकार हैं अन्याय के चौबीस घंटे। लेकिन क्या हमने कभी, जब दूसरे पर क्रोध किया है, तो ऐसा सोचा है कि वह अन्याय का शिकार तो नहीं होगा? जब हम पर क्रोध करते वक्त किसी आदमी को पता नहीं चलता कि वह हम पर अन्याय कर रहा है, तो क्या हमें यह ख्याल नहीं आ सकता कि हम भी जब दूसरे पर क्रोध करते हों, हमें पता ही न चलता हो कि हम अन्याय कर रहे हैं!
यह इनसाइट है, यह अंतर्दृष्टि है। यह तर्क नहीं है, यह एक प्रतीति है। मनुष्य का स्वभाव करीब-करीब एक जैसा है। और जो मैं सोचता हूं, करीब-करीब वैसे ही सारे लोग सोचते हैं। जैसा मैं अनुभव करता हूं, करीब-करीब सारे लोग वैसा ही अनुभव करते हैं। इसलिए बहुत कठिनाई नहीं है इस बात में कि मैं अपने को दूसरे की जगह रख कर देख लूं। इसमें भी बहुत कठिनाई नहीं है कि दूसरे को अपनी जगह रख कर देख लूं। और जो व्यक्ति दूसरे की जगह अपने को रखने में या दूसरे को अपनी जगह रखने में सफल हो जाता है, उसको अंतर्दृष्टि मिलनी शुरू होती है, उसको इनसाइट मिलनी शुरू होती है। और तब उसे दिखाई पड़ता है कि कितनी नोकें हैं! कितनी नोकें हैं!
महावीर परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए, या बुद्ध परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए, लेकिन बुद्ध सुबह प्रार्थना करते हैं, तो रोज तो वे क्षमा मांगते हैं समस्त जगत से। एक दिन बुद्ध से किसी ने पूछा कि आप परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए, आपसे अब किसी को चोट नहीं पहुंचती, पहुंच ही नहीं सकती, आप क्षमा किस बात की मांगते हैं?
बुद्ध ने कहा कि मुझे अपने अज्ञान के दिनों की याद है। कोई मुझे चोट नहीं भी पहुंचाता था, तो पहुंच जाती थी। यद्यपि मैं किसी को चोट नहीं पहुंचा रहा, लेकिन बहुतों को पहुंच रही होगी। मुझे अपने अज्ञान की अवस्था का ज्ञान है। कोई मुझे चोट नहीं पहुंचाता था, तो भी पहुंच जाती थी। तो मैं जानता हूं कि वह जो अज्ञान चारों तरफ मेरे है, वह जो अज्ञानियों का समूह है चारों तरफ, मेरे बिना पहुंचाए भी अनेकों को चोट पहुंच रही होगी। फिर मैंने पहुंचाई या नहीं पहुंचाई, इससे क्या फर्क पड़ता है? उनको तो पहुंच ही रही है। उसकी क्षमा तो मांगनी ही चाहिए।
पर जिसने पूछा था, उसने कहा, आप तो कारण नहीं हैं पहुंचाने वाले!
बुद्ध ने कहा, कारण तो नहीं, लेकिन निमित्त तो हूं। अगर मैं न रहूं, तो मुझसे तो नहीं पहुंचेगी। मेरा होना तो काफी है न, इतना तो जरूरी है, उनको चोट पहुंचे। तो मैं क्षमा मांगता रहूंगा। यह क्षमा किसी किए गए अपराध के लिए नहीं, हो गए अपराध के लिए है। और हो गए अपराध में मेरा कोई हाथ न हो, तो भी।
हमारी स्थिति ऐसी है कि लगता है कि सारी दुनिया हमें सता रही है। एक
हम इनोसेंट, निर्दोष हैं; और सारी दुनिया शरारतियों से भरी हुई है। वे सब सता रहे हैं। जैसे सारा शड्यंत्र आपके खिलाफ चल रहा है। आप अकेले और यह इतना बड़ा जाल संसार का आपको परेशान करने को चारों तरफ से खड़ा है।
यह हमारी दृष्टि है। इस दृष्टि में आपको अपनी नोकें कभी दिखाई न पड़ेंगी। इसमें आप सदा ही अपने को बचाते रहेंगे। और जो अपने को बचाएगा, वह अपने को नहीं जान पाएगा। और बचा तो पाएगा ही नहीं। क्योंकि जो अपने को जानता ही नहीं, वह बचाएगा कैसे?
तो पहली बात तो यह है कि देखें कि चौबीस घंटे में कितनी चोटें आप अपने चारों तरफ फैला रहे हैं--बोल कर, न बोल कर, उठ कर, बैठ कर, इशारे से, आंख से, मुस्कुरा कर, ओंठ से--कितनी चोटें आप अपने चारों तरफ फैला रहे हैं! अकारण भी! तब आपको लगेगा कि यह आपका स्वभाव है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रास्ते से गुजर रहा है। एक आदमी केले के छिलके
पर फिसल पड़ा और गिर पड़ा। नसरुद्दीन खिलखिला कर हंसा। हंसने में भूल गया और उसका पैर भी दूसरे छिलके पर पड़ा और वह भी गिर पड़ा। गिर कर उठ कर खड़ा हुआ और उसने कहा, परमात्मा, तेरा धन्यवाद! अगर हम पहले ही न हंस लिए होते, तो हंसने का मौका ही न मिलता। अगर हम पहले ही न हंस लिए होते, एक-दो क्षण चूक गए होते,

तो चूक गए थे। क्योंकि अब तो दूसरे हंस रहे हैं, अब तो कोई अपने हंसने की बात न रही।
हम सब जब दूसरे पर हंस रहे हैं, तब हमें ख्याल नहीं है; जब हम दूसरे पर क्रोधित हो रहे हैं, तब भी ख्याल नहीं है; जब हम दूसरे की निंदा कर रहे हैं, तब भी हमें ख्याल नहीं है कि हम क्या कर रहे हैं। थोड़ी ही देर में हम उस जगह हो जा सकते हैं। लेकिन नसरुद्दीन तो आदमी के प्राणों से बोलता है। वह यह कह रहा है कि अच्छा ही किया कि हंस लिए, नहीं तो फिर मौका ही न मिलता। वह खुश है। वह पूरी आदमियत का व्यंग्य है; वह जैसे हम सब का सार-निचोड़ है। एक-एक इशारे को जांचना पड़ेगा कि उसमें धार तो नहीं है? जहर तो नहीं है?
आप किसी को चुभते तो नहीं हैं, चुभते तो नहीं चले जाते हैं? आप दूसरे को चुभें, इसमें रस तो नहीं लेते? सुखद तो नहीं मालूम होता? डामिनेट करें किसी की, मालकियत करें किसी की, किसी के ऊपर कब्जा दिखाएं, किसी को आज्ञा दें, इसमें रस तो नहीं आता?
नसरुद्दीन अपने बेटे पर नाराज है। और वह बेटा बहुत खड़े होकर शोरगुल
कर रहा है। वह उससे कहता है, बैठ जा बदमाश! वह लड़का है नसरुद्दीन का, वह कहता है, नहीं बैठते! तो नसरुद्दीन कहता है, खड़ा रह, लेकिन आज्ञा मेरी माननी ही पड़ेगी। या तो बैठ या खड़ा रह, लेकिन आज्ञा मेरी माननी ही पड़ेगी। मेरी आज्ञा से तू नहीं बच सकता।
हमारा मन पूरे समय इस कोशिश में है कि हम किसी को दबा पाएं। क्यों? क्योंकि जब हम किसी को दबाते हैं, तभी हमको लगता है कि हम कुछ हैं। हमें पता ही नहीं चलता अपने होने का तब तक, जब तक हम किसी को दबाते नहीं हैं। तो मेरी मुट्ठी में जितने लोगों की गर्दन हो, तो उतना ही मैं बड़ा आदमी हो जाता हूं। बड़े आदमी का और कोई नापने का हिसाब नहीं है। कितने आदमियों की गर्दन उस आदमी के हाथ में है? अगर वह जोर से मुट्ठी कस दे, तो कितने लोगों की गर्दन दब जाएगी?
हम सब इस कोशिश में हैं कि कितनी गर्दनें हमारे हाथ में हो जाएं। और ऐसा नहीं कि दुश्मन ही गर्दन हाथ में डालता है; जिनको हम मित्र कहते हैं, वे भी गर्दन पर हाथ कसे रहते हैं। एक बार दुश्मन का हाथ तो दूर भी होता है, मित्र का हाथ बिल्कुल गर्दन पर होता है। जिनको हम संबंधी कहते हैं, वे भी एक-दूसरे की गर्दन पर हाथ कसे रहते हैं। वे भी जांच-पड़ताल करते रहते हैं कि गर्दन दूर तो नहीं कर रहे हो! जरा गर्दन दूर हुई तो चिंता शुरू हो जाती है कि कहीं मेरे हाथ से बाहर तो नहीं हो जाएगा! ये सब हमारी नोकें हैं। यह हमारी हिंसा है।

लाओत्से कहता है, इनकी तेज नोकों को घिस डालें। अगर शून्य की तरफ जाना है, तो ये सब नोकें घिस डालें, ये गिरा दें, ये हटा दें।
लेकिन कौन हटा पाएगा नोकों को? नोकों को वही हटा पाएगा, जो इनसिक्योरिटी में रहने को राजी है, जो असुरक्षा में रहने को राजी है। दरवाजे पर हम एक बंदूक रखे हुए आदमी को खड़ा करते हैं, इसलिए कि सुरक्षा चाहिए। वह जो बंदूक पर लगी हुई संगीन है, वह जो हाथ में तलवार लिए हुए खड़ा हुआ पहरेदार है, वह ऐसे ही नहीं खड़ा है। वह सुरक्षा के लिए है। सूक्ष्म रूप में हम अपने व्यक्तित्व के चारों तरफ नोकें रख लेते हैं।
मैं एक मित्र के घर में कोई आठ साल तक रहता था। मैं बहुत हैरान हुआ। वह आदमी बहुत भले थे। मुझे जब भी मिलते, बड़े प्रेम से मिलते। जब भी मिलते, उनके चेहरे पर मुस्कुराहट होती। लेकिन न तो मैंने उनको पत्नी के सामने उनकी मुस्कुराते देखा, न उनके बेटे के सामने मुस्कुराते देखा, न उनके नौकरों के सामने मैंने उन्हें कभी मुस्कुराते देखा। मैं थोड़े दिन में चिंतित हुआ। जब वह अपने नौकरों के सामने निकलते, तो उनकी चाल देखने जैसी होती थी। वह ऐसे जाते थे, जैसे कोई है ही नहीं आस-पास।
मैंने उनसे पूछा कि बात क्या है?
उन्होंने कहा कि सजग रहना पड़ता है। अगर नौकर के सामने मुस्कुराओ, कल
ही वह कहता है तनख्वाह बढ़ाओ; पत्नी के सामने मुस्कुराए कि झंझट में पड़े, कि वह कहती है एक साड़ी आ गई। चेहरे को सख्त रखना पड़ता है, पहरे पर रहना पड़ता है। उन्होंने कहा कि मुस्कुरा कर मैं बहुत नुकसान उठा चुका हूं। जब

मुस्कुराए, तभी झंझट खड़ी हो जाती है। बेटा भी देख ले कि बाप मुस्कुरा रहा है, तो उसका हाथ जेब में चला जाता है।
तो उन्होंने कहा, मैंने तो एक पूरा चेहरा बना रखा है सख्ती का। यह मजबूरी है, इसमें बहुत कष्ट होता है, लेकिन यह सुरक्षा है। बेटा पास आने में डरता है; कमरे में बैठे होते हैं, तो नौकर नहीं गुजरता; किसी की हिम्मत नहीं है कि उनके सामने कोई खड़ा हो जाए।
पर मैंने कहा, इस सुरक्षा से क्या बचेगा और खोएगा क्या, इसका कुछ हिसाब किया? यह सुरक्षा हो गई, मान लिया। मर जाओ बिल्कुल, फिर नौकर बिल्कुल नहीं घुसेगा कमरे में। और मर जाओ, पत्नी को कितनी ही साड़ी की जरूरत हो, तो भी नहीं कहेगी कि साड़ी चाहिए। और मर जाओ, और बेटे को कितनी ही इच्छा हो, जेब में हाथ नहीं डालेगा। आपकी लाश को घर के बाहर फेंक आएगा। जिंदा रहोगे, तो असुरक्षित रहोगे; मर जाओगे, तो सुरक्षित हो जाओगे। मुर्दे से ज्यादा सुरक्षित और कोई भी नहीं, क्योंकि अब मौत भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। बीमारियां नहीं आ सकतीं, कुछ नहीं किया जा सकता अब। अब आप उसके साथ कुछ कर ही नहीं सकते; वह आपके करने के बाहर हो गया।
जितने हम सुरक्षित होते हैं, उतनी हमें नोकें बनानी पड़ती हैं। नोकें
जो हैं, वह हमारे चारों तरफ सिक्योरिटी अरेंजमेंट है, व्यवस्था है। डर है, आक्रमण है चारों तरफ; हमलावर हैं इकट्ठे। आदमी नहीं, दुश्मन हैं चारों तरफ। उन दुश्मनों से अपने को बचाना है।
नसरुद्दीन अपनी पत्नी से बचने के लिए शराब पीने लगा। इतनी ज्यादा, कि मित्र चिंतित हो गए। मित्र इतने चिंतित हो गए कि वह आदमी अब बच नहीं सकेगा। नसरुद्दीन से जब भी उन्होंने कहा, तो उसने कहा कि लेकिन जब मैं शराब पीकर घर जाता हूं, तभी घर जा पाता हूं। दरवाजे पर मेरा पैर कंपने लगता है, अगर मैं होश में जाऊं। और ऐसे-ऐसे प्रश्नों के उत्तर मैं तैयार करने लगता हूं, जो कभी किसी ने किसी से नहीं पूछे होंगे; लेकिन मेरी पत्नी पूछ सकती है। शराब पीकर जाता हूं, तो निश्चिंत प्रवेश कर जाता हूं। यह मेरी सुरक्षा है।
पर बात इतनी बढ़ गई कि मित्रों ने कहा, कुछ करना पड़ेगा, अन्यथा यह मौत आ जाएगी। एक मित्र ने सुझाव दिया कि जब यह पत्नी से इतना डरता है और डरने की वजह से ही शराब पीता है, तो और बड़ा डर अगर लाया जाए तो शायद यह शराब छोड़ दे। अब पत्नी से बड़ा और डर क्या हो? एक मित्र ने कहा, एक काम करो कि आज रात जब यह लौटे, वह आधी रात जब घर लौटने लगे, तो झाड़ पर एक आदमी शैतान बन कर बैठ जाए, डेविल बन जाए। सींग लगा ले, काले कपड़े पहन ले, नकाब पहन ले, घबड़ाने की हालत कर दे और चिल्ला कर कूद पड़े नीचे। तो यह कंपेगा, हाथ-पैर जोड़ेगा। तो उस वक्त इससे वचन करवा ले कि शराब नहीं पीना, नहीं तो मैं तेरा पीछा करूंगा, छोडूंगा नहीं।
मित्र बाकी छिप गए। एक मित्र डेविल बन कर ऊपर झाड़ पर चढ़ गया। नसरुद्दीन बेचारा लौट रहा है कोई दो बजे रात। आहिस्ता से चला आ रहा है। ऊपर से वह आदमी कूदा। सब इंतजाम पूरा था। बड़ी चीख-पुकार बाकी मित्रों ने जो झाड़ियों में छिपे थे लगाई, जैसे भयंकर खतरा आ गया। और वह आदमी नीचे उतरा, सामने नसरुद्दीन के खड़ा हो गया, नसरुद्दीन की गर्दन पकड़ ली। नसरुद्दीन ने उसकी तरफ देखा। उस आदमी ने कहा कि वचन दो कि शराब छोड़ दोगे!
नसरुद्दीन ने कहा, पहले यह तो बताओ महानुभाव कि आप हो कौन? हू आर यू?
इसके यह पूछने से उसको थोड़ी गड़बड़ तो हो ही गई, क्योंकि यह डरा नहीं ज्यादा। उसने पूछा, हू आर यू?
उसने कहा, मैं शैतान हूं! आई एम दि डेविल!
तो नसरुद्दीन ने कहा, बड़ी खुशी हुई मिल कर, आई एम दि गाय हू हैज मैरीड योर सिस्टर। मैं वह आदमी हूं जिसने आपकी बहन से शादी की है। बड़ा अच्छा हुआ, चलिए आपकी बहन से मुलाकात करवा दें।
सब मामला खराब हो गया। सब मामला पूरा खराब हो गया। वे मित्र बाहर आ गए। उसने मित्रों से कहा कि देखिए, बहुत मुश्किल से मिले हैं, इनको मैं इनकी बहन से मिला दूं। इनकी भी हिम्मत नहीं पड़ रही है जाने की, ये भागने की कोशिश कर रहे हैं।

हमारी सारी की सारी योजना, हमारे शब्द, हमारी भाषा, हमारे सिद्धांत, हमारी शराबें, हमारे सिनेमागृह, हमारे नाचघर, हमारे मनोरंजन, बहुत गहरे में सुरक्षा के आयोजन हैं। सब तरह से। हमारे मंदिर, हमारी मस्जिदें, गुरुद्वारे, वह सब हमारे सुरक्षा के आयोजन हैं। डरे हैं, कहीं कोई इंतजाम कर लिया है। और जब भी कोई डरता है, तो उसको धारें रखनी पड़ती हैं अपने चारों तरफ कई तरह की।
इन नोकों को कौन तोड़ सकता है? इन नोकों को वही तोड़ सकता है, जो इनसिक्योरिटी में रहने को राजी है।
लाओत्से की दृष्टि को समझ कर अलेन वाट ने एक किताब लिखी है। किताब का नाम हैः विजडम ऑफ इनसिक्योरिटी, असुरक्षा की बुद्धिमत्ता। सुरक्षा बड़ी मूढ़तापूर्ण बात है। क्योंकि हम सुरक्षित कुछ नहीं कर पाते; कोशिश में खुद मर जाते हैं और मिट जाते हैं। असुरक्षित रहने की बुद्धिमत्ता! नहीं, हम कोई नोक खड़ी न करेंगे, हम कोई पहरा न बनाएंगे। और जिंदगी आक्रमण करेगी, तो हम स्वागत कर लेंगे।
और बड़ा मजा यह है कि जो आदमी इस भांति राजी हो जाता है कि जो भी आक्रमण होगा, हम पी जाएंगे, स्वीकार कर लेंगे, एक्सेप्ट कर लेंगे, राजी हो जाएंगे, कहेंगे यही नियति है, नहीं कोई उपाय करेंगे, उस आदमी पर आक्रमण होना असंभव हो जाता है। क्योंकि आक्रमण का भी अपना तर्क है।
अगर आपका पड़ोसी आपको देखता है कि आप दंड-बैठक लगा रहे हैं, तो वह डरता है। वह सोचता है, पता नहीं, क्या करे! वह भी दंड-बैठक लगाना शुरू करता है। और जब आप देखते हैं अपनी खिड़की से कि अरे, मामला पक्का है। तो आप एक तलवार ले आते हैं। और फिर ऐसा चलता है। और ऐसा नहीं कि छोटे-मोटे पड़ोसियों में चलता है। रूस और अमरीका और चीन और हिंदुस्तान और पाकिस्तान, सब में ऐसा चलता है। एक की सेनाएं सीमा पर गश्त लगाने लगती हैं, दूसरे के प्राण कंप जाते हैं। वह दुगुनी सेनाएं गश्त करने के लिए लगा देता है। और जब यह दुगुनी खड़ी करता है, तो निश्चित जो तर्क तुम्हारा है, वही पड़ोस वाले का भी है। वह भी सोचता है, कुछ गड़बड़ हो रही है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अब तक के युद्ध निन्यानबे प्रतिशत मिसइंटरप्रिटेशन से हुए हैं, सिर्फ गलत व्याख्या से कि दूसरा तैयारी कर रहा है हमें मारने की; अगर हमने तैयारी न की, तो मर जाएंगे। और जब आप तैयारी करते हैं, तो यही दूसरे का भी तर्क है कि अब तैयारी यह कर रहा है, किसलिए कर रहा होगा? अगर पाकिस्तान अमरीका से अस्त्र-शस्त्र लाता है, तो किसलिए लाता होगा? हमीं को मारने के लिए। और आप अगर एटामिक कमीशन बनाते हैं, तो किसलिए बनाते हैं? पाकिस्तान को मारने के लिए। सब की हमारी बुद्धि इस भांति चलती है कि दूसरा क्या कर रहा है, वही हम और जोर से करें। और दोनों तरफ एक जैसी बुद्धियां हैं। इस प्रतिफलन में, एक-दूसरे के बीच जो बिंब-प्रतिबिंब बनते हैं, इनका जो अंतिम परिणाम होता है, उसमें आदमी का कुछ बस ही नहीं रह जाता, ऐसा लगता है कि करीब-करीब सब यांत्रिक घटित हो रहा है। लाओत्से कहता है कि असुरक्षित हो जाओ। और ऐसे भी सुरक्षा क्या कर पाओगे? अगर यह पृथ्वी आज टूट जाए, तो कौन सा इंतजाम है? और यह सूरज आज ठंडा हो जाए, तो क्या करोगे? और यह सूरज आज दूर निकल जाए इस पृथ्वी से, तो कौन सा उपाय है इसे पास ले आने का? कभी यह पृथ्वी बिल्कुल शून्य थी, कोई आदमी न था। कभी यह फिर सूनी हो जाएगी। जिस दिन सूनी हो जाएगी, उस दिन क्या करिएगा? किससे शिकायत करने जाइएगा? अनंत-अनंत ग्रहों पर जीवन रहा है और नष्ट हो गया। यह पृथ्वी भी सदा हरी-भरी नहीं रहेगी; यह नष्ट हो जाएगी। इंतजाम क्या है आपके पास? क्या बचाव कर लेंगे?
लेकिन ऐसा ही है कि एक चींटी है और मुंह में एक शक्कर का दाना लिए वर्षा का इंतजाम करने अपने घर की तरफ लौटी चली जा रही है, और आपका पैर उसके ऊपर पड़ जाता है। आपको तो पता ही नहीं चलता। सब व्यवस्था, सब सुविधा--न मालूम कितने सपने होंगे, न मालूम क्या-क्या सोच कर चली होगी, घर न मालूम किन-किन बच्चों को वायदा कर आई होगी कि अभी आती हूं--वह सब नष्ट हो गया! अब चींटी उपाय भी क्या करेगी आपके पैर से बचने का? सोच सकते हैं कुछ उपाय, क्या करेगी?

आप क्या सोचते हैं, आपकी कोई बड़ी हैसियत है? चींटी को दबा लेते हैं, इसलिए सोचते हैं कोई बड़ी हैसियत है? इस विराट जगत में कौन सी स्थिति है मनुष्य की?
एक महासूर्य पास से गुजर जाए, सब राख हो जाए। वैज्ञानिक कहते हैं कि कोई तीन अरब वर्ष पहले कोई महासूर्य पास से निकलने का मतलब है, कई अरब मील के फासले से निकल गया--उसी वक्त, उसके धक्के में, उसके आकर्षण में चांद जमीन से टूट कर अलग हुआ। ये जो पैसिफिक और हिंद महासागर के जो गड्ढे हैं, यह चांद जो हिस्सा टूट गया जमीन से, उसकी खाली जगह हैं।
कभी भी निकल सकता है। इस विराट जगत में जहां कोई चार अरब सूर्यों का वास है, वहां सब कुछ हो रहा है। वहां कोई हम से पूछने आएगा? कोई आपकी सलाह लेगा? जरा सा कोई अंतर, और जीवन इस पृथ्वी पर विदा हो जाएगा। जीवन! आप नहीं, जीवन ही विदा हो जाएगा। करोड़ों जातियों के पशु मिले हैं, जो कभी थे और अब उनका एक भी वंशज नहीं है। कोई मनुष्य के साथ कोई विशेष नियम लागू नहीं होता।
लेकिन हम बड़ा इंतजाम करते हैं। हमारा इंतजाम चींटी जैसा इंतजाम है। मैं नहीं कहता, इंतजाम न करें। न लाओत्से कहता है, इंतजाम न करें। यह नहीं कहता कि वर्षा के लिए घर में दो दाने न रखें; जरूर रख लें। लेकिन जान लें भलीभांति कि हमारा सब इंतजाम चींटी जैसा इंतजाम है। और जिंदगी के विराट नियम का जो पहिया घूम रहा है, उस पर हमारा कोई वश नहीं है।
यह ख्याल में आ जाए, तो फिर सुरक्षा की चिंता छूट जाती है। सुरक्षा जारी रहे, सुरक्षा की चिंता टूट जाए, सुरक्षा का पागलपन छूट जाए, तो फिर नोकें गिराने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती; क्योंकि नोकें तो हैं इसलिए कि हम अपने को बचा सकें। बचाने की कोई जरूरत न रही; हम राजी हैं, जो हो जाएगा। मौत आएगी, तो मौत के लिए राजी हो जाएंगे। इस राजीपन में फिर आपको क्रोध की और हिंसा की और घृणा की और शत्रुता की और वैमनस्य की और ईर्ष्या की कोई भी जरूरत नहीं रह जाती। तो ही टूट सकती हैं नोकें।
"उसकी ग्रंथियों को सुलझा दें।"
वह जो हमारा चित्त है, वह जो हमारा व्यक्तित्व है, वह एक ग्रंथि ही हो गया है, एक कांप्लेक्स। जैसे कि धागे उलझ गए हों; और कहीं से भी खींचो, और उलझ जाते हों; ऐसी हमारी चित्त की दशा है। एक तरफ से सुलझाओ, तो दूसरी तरफ से उलझन हो जाती है, ऐसा लगता है। कितना ही सुलझाओ, लगता है, सुलझाना मुश्किल है।
लाओत्से कहता है, "इसकी ग्रंथियों को सुलझा दें।"
कैसे सुलझाएंगे इसकी ग्रंथियों को? हम सब सुलझाने की कोशिश करते हैं।
एक आदमी आता है, वह कहता है, मैं क्रोध नहीं करना चाहता, खुद नहीं चाहता करना; मुझे कोई बताएं कि मैं कैसे क्रोध न करूं।
हैरानी होती है कि अगर आप क्रोध नहीं करना चाहते, तो फिर करने का सवाल
ही क्या है? मत करें।
वह कहता है कि यह नहीं है सवाल; क्रोध नहीं करना चाहता, लेकिन क्रोध आता है।
तो इसका मतलब यह हुआ कि क्रोध तो सिर्फ एक धागा है, और भी धागे जुड़े हैं आस-पास। यह इस धागे से तो मुक्त होना चाहता है, लेकिन इसी धागे से जुड़े किसी दूसरे धागे को जोर से पकड़े हुए है। जैसे इस आदमी से कहें कि ठीक है, अगर क्रोध नहीं करना चाहते, तो अपमान में आनंद लो, सम्मान की चिंता मत करो। तो वह कहेगा, यह कैसे हो सकता है? स्वाभिमान तो होना ही चाहिए।
आदमी बड़ा कुशल है। हम अभिमान थोड़े ही करते हैं, स्वाभिमान! अभिमान दूसरे करते हैं। तो सेल्फ रिस्पेक्ट तो होनी ही चाहिए। नहीं तो आदमी क्या कीड़ा-मकोड़ा हो जाएगा! अब वह कहता है, क्रोध मुझे करना नहीं और अभिमान मुझे बचाना है। और अभिमान के साथ क्रोध का धागा सिर्फ जुड़ा ही हुआ हिस्सा है; वह अभिमान से अलग हो नहीं सकता। स्वाभिमान तो दूर, स्व को भी जो बचाएगा, उसका भी क्रोध बच जाएगा।
स्व भी खो जाए, सेल्फलेसनेस हो--सेल्फिशलेसनेस नहीं, सेल्फलेसनेस-- स्वार्थ का अभाव नहीं, स्व का ही अभाव हो, तो ही क्रोध जाता है। हमारी हालतें कुछ ऐसी हैं कि हम एक डंडे के एक छोर को बचाना चाहते हैं और दूसरे

को हटाना चाहते हैं। बड़ी मुश्किल में जिंदगी बीत जाती है; कुछ हटता नहीं।
और इस जाल को कभी हम देखते नहीं कि सब चीजें भीतर जुड़ी हैं।
अब एक आदमी कहता है कि मुझे, शत्रु तो बिल्कुल मुझे चाहिए नहीं; मैं तो सभी से मित्रता चाहता हूं।
लेकिन ध्यान रहे, मित्रता बनाने में ही शत्रुताएं पैदा होती हैं। खैर, क्रोध और अभिमान तो ख्याल में आ जाता है, लेकिन मित्रता बनाने में ही शत्रुताएं निर्मित होती हैं, यह ख्याल में नहीं आता। जो आदमी मित्रता बनाने को उत्सुक है, वह शत्रुता बना ही लेगा। क्योंकि मित्रता बनाने का जो ढंग है, जो प्रक्रिया है, उसी की बाइ-प्रॉडक्ट... । जैसे कि कोई कारखाने में बाइ-प्रॉडक्ट हो जाती है। अब आप लकड़ी जलाएंगे, तो कोयला घर में बच जाएगा, राख घर में बच जाएगी। आप कहेंगे, आग तो हम जलाना चाहते हैं, ईंधन जलाने की तो बहुत जरूरत है, लेकिन राख न बचे घर में। वह राख बाइ-प्रॉडक्ट है, वह बचेगी ही। जिससे भी मित्रता करेंगे, उससे शत्रुता निर्मित हो जाएगी। और मित्रता बनाने के लिए उत्सुक आदमी अनेक तरह की शत्रुताओं के चारों तरफ अड्डे खड़े कर देगा।
सच तो यह है कि आप मित्रता बनाना ही क्यों चाहते हैं? अगर गहरे में खोजें, तो आप मित्रता इसलिए बनाना चाहते हैं कि आप शत्रुता से भयभीत हैं। वह भी इंतजाम है। मित्र होने चाहिए।
नसरुद्दीन बहुत मुसीबत में है। उसका घाटा लगा है बड़ा। एक मित्र उसे कहता है कि दस हजार मैं तुम्हें देता हूं, ले जाओ। नसरुद्दीन सोच में पड़ जाता है, आंख बंद कर लेता है। वह मित्र कहता है, इसमें सोचने की क्या बात है! ले जाओ; जब हों, तब लौटा देना। नसरुद्दीन सोच ही रहा है। मित्र थोड़ा हैरान हुआ कि वह इतनी तकलीफ में है कि दस हजार उसके काम पड़ेंगे। नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, रहने दो। उसने कहा, लेकिन बात क्या है?
नसरुद्दीन ने कहा कि ये रुपए ले-लेकर ही मैंने बाकी मित्र खोए। तुमसे लिया कि तुम भी गए। और तुम्हीं अकेले बचे हो। और मित्रता तुम्हारी कीमती है, और दस हजार में न खोना चाहूंगा। दस हजार में न खोना चाहूंगा!
मित्र और शत्रु एक ही, एक ही चीज के छोर हैं। जो मित्र है, वह कभी भी शत्रु हो सकता है। जो शत्रु है, वह कभी भी मित्र हो सकता है। मैंने पीछे कहा कि मैक्यावेली दूसरा छोर है लाओत्से का। दोनों छोरों पर बड़ी बुद्धिमानी है। मैक्यावेली ने अपनी किताब में लिखा है, मित्रों से भी वह बात मत कहना, जो तुम शत्रुओं से न कहना चाहो। क्योंकि कोई भी मित्र कभी भी शत्रु हो सकता है। और शत्रु के खिलाफ भी वे शब्द मत बोलना, जो तुम मित्र के खिलाफ न बोलना चाहो। क्योंकि कोई भी शत्रु कभी भी मित्र हो सकता है। मैक्यावेली होशियारी की बात कह रहा है। होश से बोलना! मित्र से भी वह बात मत बताना, जो तुम शत्रु को बताने से डरते हो। क्योंकि कोई भरोसा है, मित्र कभी भी शत्रु हो सकता है। और तब मंहगा पड़ जाएगा। और शत्रु के संबंध में भी वे बातें मत कहना, जो तुम मित्र के संबंध में न कहना चाहो। क्योंकि वे कभी भी मंहगी पड़ सकती हैं; शत्रु कभी भी मित्र हो सकता है।
हम चाहते हैं, मित्र तो बहुत हों, शत्रु कोई भी न हो। बस, जाल भारी है। लाओत्से कहता है, सब ग्रंथियां सुलझा लो। लेकिन कैसे सुलझेंगी ये ग्रंथियां? जब भी हम सुलझाने चलते हैं, तो एक छोर सुलझाते हैं, दूसरा उलझ जाता है। हमें सिखाया जाता है कि क्रोध मत करो, क्षमा करो। उलझन खड़ी हो जाएगी। हमें कहा जाता है, घृणा मत करो, प्रेम करो। हमें कहा जाता है, हिंसा मत करो, अहिंसा करो। हमें कहा जाता है, झूठ मत बोलो, सच बोलो। लेकिन इन सब में ग्रंथियां उलझेंगी। एकदम दिखाई नहीं पड़ता ऊपर से सतह पर से खोजने पर कि कैसे ग्रंथियां उलझेंगी! जो आदमी सच बोलने के लिए पक्का किए हुए है, उसमें क्या ग्रंथि उलझेगी?
बहुत ग्रंथियां उलझेंगी। जिस आदमी ने तय किया कि सच बोलूंगा, उलझन शुरू हुई। एक तो उसे प्रतिपल झूठ का स्मरण करना पड़ेगा; झूठ क्या है, इसका प्रतिपल ख्याल रखना पड़ेगा। अगर झूठ का उसे ख्याल मिट जाए, तो सच को बांध कर रखना मुश्किल हो जाएगा। बच्चे इसीलिए झूठ बोल देते हैं, क्योंकि अभी उन्हें झूठ का ख्याल नहीं है। इतने सरल हैं कि अभी उन्हें डिस्टिंकशन नहीं है, क्या सच है और क्या झूठ है।

सुना है मैंने, एक छोटा बच्चा अपने घर लौटा है। और अपनी मां से कह रहा
है कि गजब हो गया, रास्ते पर इतना बड़ा कुत्ता देखा, जैसे हाथी हो! उसकी मां ने कहा, बबलू, करोड़ बार तुम से कह चुकी हूं कि अतिशयोक्ति मत किया करो; डोंट इग्जैजरेट। करोड़ बार! मां कहती है, करोड़ बार तुम से कह चुकी हूं कि अतिशयोक्ति मत किया करो। लेकिन तुम सुनते ही नहीं।
अब इसमें जो बच्चा कह रहा है, वह झूठ नहीं है। क्यों? क्योंकि हमें कभी ख्याल ही नहीं होता कि बच्चे के प्रपोरशन अलग होते हैं। बच्चे के प्रपोरशन आपके प्रपोरशन नहीं हैं। बच्चे को एक छोटा कुत्ता, जो आपको छोटा लगता है, हाथी की तरह लग सकता है। अभी उसके गणित दूसरे हैं। जो बच्चे को दिखाई पड़ता है, वह आपको दिखाई नहीं पड़ता। जो आपको दिखाई पड़ता है, वह बच्चे को नहीं दिखाई पड़ता।
किसी भी बच्चे से आदमी की तस्वीर बनवाएं, तो पेट छोड़ देगा। दो टांगें लगा देगा, दो हाथ लगा देगा, सिर लगा देगा, बीच का हिस्सा बिल्कुल छोड़ देगा। सारी दुनिया में! तो यह एक-आध बच्चे की भूल नहीं हो सकती। मनोवैज्ञानिक पीछे इसमें उत्सुक हुए कि एक-आध बच्चा यह भूल करे, लेकिन सारी दुनिया में, चाहे वह चीन में पैदा हो, और चाहे अफ्रीका में पैदा हो, और चाहे अमरीका में पैदा हो, बच्चा क्या गड़बड़ करता है? यह बीच का हिस्सा क्यों छोड़ जाता है? कुछ तो बनाए। बीच का हिस्सा छोड़ ही देता है। दो टांगें लगा देता है, दो हाथ लगा देता है, सिर बना देता है, इसमें भूल-चूक नहीं करता है।
तब अध्ययन किए गए और पता चला कि बच्चे को बीच के हिस्से का बोध ही नहीं है। उसके लिए आदमी का मतलब दो हाथ, दो पैर, सिर; बाकी बीच का हिस्सा उसके बोध में नहीं है, उसकी अवेयरनेस में नहीं है। उसमें उसका कोई ध्यान नहीं गया। उस पर उसका ध्यान ही नहीं है।
तो एक बच्चे को कुत्ता हाथी जैसा दिख सकता है। लेकिन एक मां कह रही है
कि एक करोड़ बार तुझसे कह चुकी! अब यह एक करोड़ बार अतिशयोक्ति है स्पष्ट। और यह जो अतिशयोक्ति है, यह है अतिशयोक्ति। वह बच्चा जो कह रहा है, वह नहीं है।
उसकी मां ने उसे बहुत डांटा और उससे कहा, जाओ, भगवान से प्रार्थना करके माफी मांगो कि ऐसा झूठ अब कभी नहीं बोलोगे। वह बच्चा गया, उसने भगवान से प्रार्थना की। वह थोड़ी देर बाद बाहर आया। उसकी मां ने कहा कि माफ कर दिया? उस बच्चे ने कहा, माफ क्या, भगवान ने कहा जब पहली दफे मैंने उस कुत्ते को देखा था, तो मुझे भी हाथी जैसा मालूम पड़ा था; इसमें बबलू, तेरी कोई गलती नहीं है। लुक सेकेंड टाइम, दुबारा देख जाकर, फिर वह तुझे कुत्ते जैसा दिखाई पड़ेगा।
अब यह जो बच्चा है, यह कोई झूठ नहीं गढ़ रहा है। हमें लगेगा कि यह तो बिल्कुल सरासर झूठ है। कौन भगवान इससे कहेगा? लेकिन हमें बच्चे के माइंड का कुछ पता नहीं है। क्योंकि बच्चा खुद सवाल उठा सकता है और दूसरी तरफ से जवाब भी दे सकता है। इसका हमें पता नहीं है, इसका हमें पता नहीं है कि बच्चा सवाल भी उठा सकता है और दूसरी तरफ से जवाब भी दे सकता है। उसने कहा होगा कि यह क्या मामला है, मुझे दिखाई पड़ा! और भगवान की तरफ से उसने ही जवाब दिया है कि मुझे भी ऐसा ही दिखाई पड़ा था। पहली दफे ऐसा ही होता है। मैं खुद ही भूल में पड़ गया था कि यह कुत्ता है या हाथी!
यह झूठ जरा भी नहीं बोल रहा है, क्योंकि इसे झूठ का अभी बोध ही नहीं है। यह सच भी नहीं बोल रहा है, इसे सच का भी बोध नहीं है। इसे जो हो रहा है, यह बोल रहा है। अगर ठीक से समझें, तो जो हो रहा है, वही बोलना सच है। लेकिन आपका सत्य नहीं, जिसमें कि झूठ का बोध है। इसे जो हो रहा है, वही बोल रहा है। इसे कुत्ता हाथी की तरह दिखाई पड़ा, यह वही बोल रहा है। यह कोई बना कर नहीं आ गया है कहानी बीच में से; इसको दिखाई पड़ा है। यह वही बोल रहा है, जो दिखाई पड़ा है। इसे सुनाई पड़ा कि परमात्मा ने कहा कि मुझे भी पहली बार ऐसा ही हुआ था। यह वही बोल रहा है।
सत्य का एक और आयाम है, जहां न सच रहता है, न झूठ; जहां जो है, है। लेकिन वहां असत्य का बोध भी नहीं है। और इसलिए कई बार सच और झूठ में रहने वाले लोगों को उसमें कई बातें असत्य मालूम पड़ेंगी। कई बातें! जैसे हमको मालूम पड़ेगी कि सरासर झूठ है कि हाथी के बराबर दिखाई पड़े कुत्ता। कैसे दिखाई पड़

सकता है? झूठ है! यह झूठ की हमारी व्याख्या है और हमारे बाबत खबर है; यह बच्चे के मन के बाबत कोई सूचना नहीं है इसमें। और सच पूछा जाए तो जब हम बच्चे से यह कह रहे हैं कि यह झूठ है, तब हम उसे पहली दफे झूठ सिखा रहे हैं। नसरुद्दीन के गांव में एक नया पुरोहित आया है। मस्जिद में वह बोला है पहले ही दिन। बूढ़ा नसरुद्दीन है, लौटते वक्त मस्जिद से उसने सोचा, इस बूढ़े से पूछे लें कि कैसा लगा प्रवचन। पूछा उसने कि मुल्ला, कैसा लगा प्रवचन? तो मुल्ला ने कहा, बहुत अदभुत था, वंडरफुल! वी नेवर न्यू व्हाट सिन इ.ज बिफोर यू केम! हमें पता ही नहीं था कि पाप क्या है। तुम्हारे आने के पहले हमें पता ही नहीं था कि पाप क्या है। जब से तुम आए, पाप का पता चला। पाप का पता चलने के लिए भी तो पाप की व्याख्या साफ होनी चाहिए!
नसरुद्दीन एक दिन अदालत के बाहर अपने वकील को पकड़ा है और जाकर कहा कि सुनो, तलाक का क्या नियम है? डायवोर्स कैसे किया जाए? उस वकील ने कहा, क्या मतलब नसरुद्दीन, क्या हो गया? नसरुद्दीन ने कहा, मेरी पत्नी को कोई शिष्टाचार नहीं आता; टेबल मैनर्स तो बिल्कुल ही नहीं हैं। सारे घर की बदनामी हो रही है। गांव भर में प्रतिष्ठा धूल में मिली जा रही है। तलाक लेना जरूरी है। वकील ने पूछा, शादी हुए कितने दिन हुए? नसरुद्दीन ने कहा, कोई तीस साल हुए। उस वकील ने कहा, तीस साल से... । तो तीस साल से तुम यह अशिष्टाचार सह रहे हो, तो अब क्यों परेशान हो गए? नसरुद्दीन ने कहा, तीस साल से पता नहीं था; आज ही एक किताब में पढ़ा। आज ही एक किताब में पढ़ा, एक एटीकेट की किताब हाथ में लग गई; उसमें देखा कि सब बर्बाद हो गया, पत्नी में बिल्कुल टेबल मैनर्स ही नहीं हैं।
हमें पता कब चलता है? व्याख्याएं! लाओत्से ने कहा है, ए इंच डिस्टिंक्शन, एंड हेवन एंड हेल आर सेट एपार्ट। एक इंच भर का फासला किया तुमने विचार में, और स्वर्ग और नर्क की दूरी पैदा हो जाती है। लाओत्से कहता था, डिस्टिंक्शन ही मत बनाना। लाओत्से कहता था, मत कहना कि यह ठीक है और यह गलत है। क्योंकि तुमने जैसे ही भेद किया, वैसे ही सब नष्ट हो जाता है। अभेद में जीना।
ये ग्रंथियां कैसे सुलझेंगी?
हमारा ढंग है सुलझाने का कि एक-एक ग्रंथि को बदलें, उसकी विपरीत चीज लाएं। अगर क्रोध ज्यादा है, तो क्षमा लाओ पकड़ कर। अगर हिंसा ज्यादा है, तो अहिंसा की प्रतिज्ञा ले लो। अगर लोभ ज्यादा है, तो त्याग करो, थोड़ा दान कर दो। हम इस तरह सुलझाते हैं। इस तरह कुछ भी नहीं सुलझता।
लाओत्से की दृष्टि में सुलझाव का अर्थ है, इस पूरी स्थिति को देखो। ये
सब उलझाव तुम्हारे डिस्टिंकशन से बने हैं। यह तुमने जो भेद किया है पाप और पुण्य का, यह तुमने भेद किया है सत्य और असत्य का, यह तुमने भेद किया है प्रेम और घृणा का, इससे सारे के सारे उलझाव हैं। सारा भेद छोड़ दो और सरलता में जीओ, स्वभाव में जीओ, जो हो। स्वभाव में जीओ, बहो; कोई भेद मत करो। फिर कोई उलझन नहीं है।
लाओत्से से कोई पूछे अगर कि तूने कभी किसी पाप का प्रायश्चित्त किया?
तो लाओत्से कहेगा, नहीं, क्योंकि मुझे पता नहीं पाप क्या है। यह नहीं कि मैंने पाप न किया हो। लाओत्से कहता है, मुझे पता नहीं कि पाप क्या है। कोई लाओत्से से पूछे कि तूने पुण्य किए, बहुत उसके फल पाएगा! लाओत्से कहता है कि नहीं, मुझे पता नहीं कि पुण्य क्या है; फल मिल भी सकते हैं, मुझे पता नहीं। मैंने लेखा-जोखा नहीं रखा, मैंने हिसाब नहीं रखा। जो सहज मुझसे हुआ है, वह मैंने किया है। न कभी पछताया और न कभी आत्म-प्रशंसा में अपनी पीठ ठोंकी। वे दोनों काम मैंने नहीं किए हैं।
गुत्थियां सुलझेंगी, अगर हम गुत्थियों को पैदा करने की कीमिया जो है हमारे भीतर, वह समझ जाएं। कीमिया क्या है? हर चीज को हम दो में तोड़ कर चलते हैं। पहले तोड़ते हैं, फिर कदम उठाते हैं। और तब हमारी दिक्कतें वैसी हो जाती हैं, जैसे यूनान में एक विचारक हुआ, झेनो। एक कीमती विचारक हुआ ग्रीक। और यूनान ने कुछ थोड़े से जो बहुत बुद्धिमान आदमी दिए हैं, झेनो उनमें एक है। झेनो के पैराडॉक्सेस बहुत प्रसिद्ध हैं।

झेनो कहता है, एक मील का रास्ता है; पहले तुम आधा मील चलो, और हर बार आधा-आधा चलो, तो तुम कभी एक मील का रास्ता पूरा न कर पाओगे। कभी! अनंत काल में भी!
एक मील का रास्ता कोई बड़ा रास्ता नहीं है। पंद्रह मिनट में आप पार कर जाएंगे, पैदल घसिटते हुए चलें तो भी। झेनो कहता है, पहले आधा पार करो। क्योंकि बुद्धि बांट कर चलती है; इट डिवाइड्स। पहले आधा बांटो, आधा पार करो। फिर जो बचे, उसको आधा बांटो, उसको पार करो। फिर जो बचे, उसको आधा बांटो। और हमेशा कुछ बचेगा, उसको आधा बांटते चले जाना। और हमेशा कुछ बचेगा, उसको आधा बांटते चले जाना। तुम अनंत काल में एक मील का रास्ता पार न कर पाओगे।
गणित के हिसाब से बात ठीक है। गणितज्ञ इसका जवाब नहीं दे सकता। यह पार
हो नहीं सकता।
झेनो कहता है, एक तीर तुमने अपनी प्रत्यंचा पर खींचा और चलाया। तीर के चलने के लिए जरूरी है... समझें कि बारह बजे तीर चला। तो बारह बजे अ नाम की जगह पर तीर है; बारह बज कर एक मिनट पर उसे कहां होना चाहिए? ब नाम की जगह पर होना चाहिए। बारह बज कर दो मिनट पर स नाम की जगह पर होना चाहिए। तभी तो चल पाएगा। झेनो कहता है कि बारह बजे अ नाम की जगह पर है, तो ठहरा हुआ है। बारह बजे अ नाम की जगह पर ठहरा हुआ है, बारह बज कर एक मिनट पर ब नाम की जगह पर ठहरेगा। बीच का फासला पार कैसे करेगा? अ से ब तक जाएगा कैसे? झेनो कहता है, जा नहीं सकता। झेनो कहता है, गणित के हिसाब से कोई तीर कहीं नहीं गया। झेनो चलता है, झेनो तीर भी चलाता है। झेनो से लोग पूछते हैं कि तुम चलते भी हो, पहुंच भी जाते हो, तीर भी चलाते हो। झेनो कहता है, पता नहीं; लेकिन गणित में तो कोई तीर चल नहीं सकता। क्योंकि चलने का मतलब है, उसे एक बार तो अ पर होना पड़ेगा। जब वह अ पर होगा, तब ब पर नहीं होगा। फिर ब पर होना पड़ेगा। और जब तक वह अ पर है, ब पर कैसे जाएगा? और या फिर ऐसा मानो कि उसी समय अ पर भी रहेगा और ब पर भी रहेगा, तो सब गड़बड़ हो जाएगी।
तो झेनो ने पैराडॉक्सेस लिखे हैं। और दो हजार साल लग गए, झेनो के पैराडॉक्सेस का उत्तर देने की बहुत कोशिश की गई, बहुत लोगों ने उत्तर दिए; लेकिन उत्तर नहीं हो पाते। क्योंकि उत्तर हो नहीं सकते। उत्तर हो नहीं सकते, क्योंकि बुद्धि तोड़ कर सोचती है और तीर तो बिना तोड़े चला जाता है। दिक्कत जो है, वह यह है, तीर पता ही नहीं रखता कि अ कहां है और ब कहां है! बुद्धि तोड़ कर चलती है, पैर तो बिना तोड़े चले जाते हैं। पैर तोड़ते थोड़े ही हैं कि यह आधा मील, फिर यह आधा मील, फिर यह आधा मील; पैर तो बिना तोड़े चले जाते हैं। और बुद्धि तोड़ कर जाती है। पैर और बुद्धि में तालमेल नहीं रह जाता।
बुद्धि का नियम है, तोड़ो। तोड़ने का परिणाम है, उलझो। अगर उलझाव से बचना है, तो पीछे लौटो, तोड़ो मत। तोड़ना नहीं है, तो बुद्धि को छोड़ो। और बुद्धि छूटी कि अभेद निर्मित हो जाता है और सब गुत्थियां गिर जाती हैं; सब ग्रंथियां गिर जाती हैं।
महावीर के नामों में से एक नाम है निर्ग्रंथ। उसका अर्थ है, वह आदमी जिसकी सब ग्रंथियां गिर गईं, वह आदमी जिसके सब उलझाव गिर गए।
ध्यान रहे, उलझाव के गिरने पर जोर है, सुलझाव के होने पर नहीं है जोर। मेरे हाथ में एक उलझी हुई गुत्थी है धागों की। सुलझाने का मतलब है, इन धागों को मैं सुलझा-सुलझा कर, लपेट कर एक रेखाबद्ध कर लूं। उलझाव के गिर जाने का अर्थ है, ये धागे मेरे हाथ से गिर जाएं, मैं इस उलझाव को ही भूल जाऊं। यह बात ही खतम हो गई। मेरे हाथ खाली हो गए। जोर उलझाव के गिर जाने पर है।
लाओत्से कहता है, सारे उलझावों को हटा दो। महावीर कहते हैं, निर्ग्रंथ हो जाओ, सब ग्रंथियां छोड़ दो।
अभी मनोविज्ञान ने कांप्लेक्स शब्द पर बहुत काम करना शुरू किया है। क्योंकि पूरब में तो ग्रंथि शब्द बहुत पुराना है। मन के जो उलझाव हैं, उनको हम ग्रंथि कहते रहे हैं। पश्चिम ने अभी पिछले पचास-साठ वर्षों में कांप्लेक्स शब्द का उपयोग करना शुरू किया है। उसका अर्थ है ग्रंथि। और मन में बड़े कांप्लेक्स हैं। और मनोविज्ञान बहुत कोशिश करता है कि इनसे

सुलझाव हो जाए। लेकिन अभी पचास साल की निरंतर कोशिश से यह अनुभव में आया कि चाहे वर्षों की साइको एनालिसिस कोई करवाए, तो भी कांप्लेक्स सुलझते नहीं हैं। केवल वह आदमी उनके साथ रहने को राजी हो जाता है, बस।
एक आदमी में क्रोध है। वह परेशान है कि क्रोध को कैसे हटाऊं! अगर मनोवैज्ञानिक के पास जाएगा, तो दो-तीन साल की लंबी प्रक्रिया के बाद वह इस स्थिति में आ जाएगा कि वह राजी हो जाएगा कि नहीं हटता है, रहने दो। राजी हैं, अब हटाने की भी कोशिश नहीं करते। इससे ज्यादा कहीं पहुंचते नहीं हैं वे। सुलझाने की कोशिश में आप यहीं तक पहुंच सकते हैं कि उलझी हुई ग्रंथि को ही सुलझा हुआ समझ कर, दबा कर सो जाएं। वह सुलझने वाली नहीं है। उसका स्वभाव उलझा होना है।
मन ग्रंथि है। माइंड इ.ज दि कांप्लेक्स। ऐसा नहीं है कि कुछ और कांप्लेक्स हैं जिनको हल कर दिया, तो पीछे माइंड बचेगा। वह मन ही गांठ है। उसको सुलझाने का जो उपाय लाओत्से जैसे लोग सुझाते हैं, वह यह है कि इस मन की जो आधारशिला है, भेद--अपना-पराया, अंधेरा-उजाला, मित्र-शत्रु, जीवन-मृत्यु, शरीर-आत्मा, स्वर्ग-संसार--ये जो भेद हैं, इनको गिरा दो। नसरुद्दीन एक कार से टकरा गया। उसको भारी चोट पहुंची है, जितनी पहुंच सकती है। दोनों पैर की हड्डियां टूट गई हैं, एक हाथ टूट गया है, गर्दन टूट गई है, कई पसलियां टूट गई हैं। सिर पर बहुत चोट हैं। सब पर पट्टियां बंधी हैं। वह अस्पताल में पड़ा है।
सुलतान नगर से गुजर रहा है। खबर मिली कि गांव का सबसे बूढ़ा आदमी और बड़ा जाहिर आदमी अस्पताल में है, तो वह देखने गया है। देख कर उसकी समझ में न आया, क्या कहे। क्योंकि सिर्फ नसरुद्दीन का मुंह दिखाई पड़ता है और दो आंखें दिखाई पड़ती हैं, बाकी सब पट्टियां बंधी हैं। भारी चोट पहुंची है। आदमी बचेगा भी कि नहीं बचेगा! सुलतान कुछ कहना चाहता है, लेकिन कहां से शुरू करे, यह ही समझ में नहीं आता। सहानुभूति भी क्या बताए, मामला ही बिल्कुल गड़बड़ है। सहानुभूति बताने लायक भी नहीं है। फिर भी कुछ कहना चाहिए, तो वह कहता है कि बहुत ज्यादा चोट पहुंची; पैर टूट गया, हाथ टूट गया, सिर पर चोट पहुंची, मुंह पर चोट पहुंची, पसलियां टूट गईं, बड़ी पीड़ा होती होगी नसरुद्दीन! बहुत ज्यादा दुख, बहुत ज्यादा दर्द होता होगा! नसरुद्दीन कहता है, नहीं, वैसे तो नहीं होता; होता है, व्हेन आई लाफ। उसने कहा कि जब मैं हंसता हूं, तब थोड़ा होता है, ऐसे नहीं होता।
वह सुलतान तो समझ ही नहीं सका कि ऐसी हालत में कोई आदमी हंसेगा काहे
के लिए। उसको ख्याल में ही नहीं आया, कल्पना ही के बाहर था कि यह हंसेगा। वह नसरुद्दीन बोला, नहीं, ऐसे कोई तकलीफ नहीं हो रही; जरा हंसता हूं, तो थोड़ी तकलीफ होती है। सुलतान की हिम्मत न पड़ी कि अब और कुछ आगे क्या कहे। फिर भी उसने कहा, आ ही गया हूं तो अच्छा ही हुआ, एक सवाल पूछ कर चला जाऊं। क्या नसरुद्दीन, ऐसी हालत में भी हंस पाते हो? नसरुद्दीन ने कहा, अगर ऐसी हालत में न हंस पाऊं, तो हंसना सीखा ही नहीं। यानी और हंसने का क्या मतलब हो सकता है! और हंसने का मौका क्या हो सकता है! और हंसता हूं इसलिए कि अब तक कई बार ऐसा भ्रम होता था, लेकिन पक्का पता नहीं था, सोचा बहुत बार था, अब पता चला कि नसरुद्दीन हड्डियां कितनी ही टूट जाएं, नसरुद्दीन नहीं टूटता। इधर भीतर हंस लेता हूं कि बड़ा मजा है! सब टूट गया है। जो आ रहा है, वही दया दिखला रहा है; लेकिन मुझको खुद दया नहीं आ रही है। सब टूट गया है, सब फूट गया है; अब इसमें कुछ है नहीं ज्यादा बचने वाला। हंसी आ रही है इससे। और लोग मुझसे आकर पूछते हैं, कैसे हो नसरुद्दीन? नसरुद्दीन बिल्कुल ठीक है; नसरुद्दीन बिल्कुल ठीक है।
ये जो ग्रंथियां हैं मन की, इनके बीच में अगर आप अलग दिख जाएं, तो ग्रंथियां तत्काल गिर जाती हैं। फिर आप बिल्कुल ठीक हैं। वे सारी पट्टियां बंधी रहेंगी, आपकी सब ग्रंथियां उलझी रहेंगी, चारों तरफ सब उपद्रव बना रहेगा, सब बाजार खड़ा रहेगा; आप अचानक बाहर हो जाते हैं। यू ट्रांसेंड इट। अतिक्रमण है। अतिक्रमण में ही सुलझाव है। गुत्थियां सुलझाई नहीं जा सकतीं, इन गुत्थियों के पार होने में सुलझाव है।

घाटी में रह कर अंधेरा नहीं मिटाया जा सकता, लेकिन शिखर पर चढ़ जाता है
एक आदमी, सूरज पर पहुंच जाता है; खुली रोशनी है, धूप है। घाटी में अंधेरा है; है वह घाटी में, पड़ा है। लेकिन अब यह आदमी घाटी में नहीं है।
हमारी सब की कोशिश यह है कि दीया जलाओ, आग जलाओ, घाटी को उजाला करो; मगर रहो घाटी में, वहां से हटो मत। जहां बीमारी है, वहीं रहो, वहीं उलझे रहो और वहीं सुलझाने की कोशिश करते रहो; बीमारी के पार न जाओ। लाओत्से की कीमिया, लाओत्से जैसे सभी लोगों का दर्शन पार का दर्शन है। अतीत हो जाओ, हट जाओ। जहां है उपद्रव, वहां से थोड़ा दूर हो जाओ। फासला करो बीच में, देखो जरा दूर होकर, तो हंसी आ जाती है। फिर कोई उलझाव बांधता नहीं है।
लाओत्से जब कहता है कि गुत्थियों को हटा दो, ग्रंथियों को सुलझा दो, इसकी जगमगाहट मृदु हो जाए... ।
यह जो हमारे भीतर अस्मिता है, जो अहंकार है, यह अभी एक लपट की तरह है, जलाती है। इसकी जो जगमगाहट है, वह आंखों को पीड़ा देने वाली है। आभा नहीं है इसमें, आग है।
लाओत्से कहता है, "इसकी जगमगाहट मृदु हो जाए।"
तुम जरा सुलझाओ अपनी ग्रंथियों को, तुम जरा घिस दो अपनी नोकों को, और तुम पाओगे कि तुम्हारा अहंकार अहंकार नहीं हुआ, अस्मिता हो गया। इन दो शब्दों को थोड़ा समझना अच्छा होगा।
संस्कृत के पास बड़े समृद्ध शब्द हैं। जैसे अहंकार, ईगो; लेकिन एक और शब्द है संस्कृत के पास, अस्मिता। उसके लिए अंग्रेजी में अनुवाद करना असंभव है। उसको हिंदी में भी अनुवाद करना असंभव है। अहंकार का अर्थ है ऐसा मैं, जिससे दूसरों को चोट पहुंचती है; अस्मिता का अर्थ है ऐसा मैं, जिससे किसी को चोट नहीं पहुंचती। इतना मृदु, जिसमें कोई नोक न रह गई! शब्द की ध्वनि भी चोट वाली है--अहंकार! अस्मिता। अस्मिता में एक भाव है, कोई तूफान शांत हो गया, लहरें गिर गईं। झील अब भी है। लेकिन तूफानों का, आंधियों का, लहरों का विक्षिप्त रूप नहीं है। झील अब भी है। झील में वे ही लहरें अब भी सो रही हैं, जो कल उठ गई थीं और तूफान में नाचने लगी थीं और विकराल हो गई थीं। और जिन्हें देख कर प्राण कंप जाते, और नौकाएं डगमगातीं और डूब जातीं। तट कंपते, घबड़ाते। वह अब नहीं है। लेकिन वही लहरें अभी भी हैं, सो गई हैं, शांत हो गई हैं।
अस्मिता का अर्थ है ऐसा अहंकार, जिसमें से दंश चला गया, जिसमें ज्वाला
न रही, आभा रह गई। आभा! सुबह सूरज निकलता है, उसके पहले जो प्रकाश होता है, वह आभा है। सूरज निकल आया, फिर तो ज्वाला शुरू हो जाती है। सूरज नहीं निकला अभी, क्षितिज के नीचे पड़ा है। सुबह हो गई, रात अब नहीं है, दिन अभी नहीं आया। बीच का क्षण है। वह बीच की संधि में आभा फैल गई है, जिसको हम भोर कहते हैं। अभी सूरज उपस्थित नहीं है।
अहंकार जब ढल जाता है, तो मैं की वह जो आंखों को चुभने वाली ज्वाला है,
वह मिट जाती है, अहंकार डूब जाता है। तब एक आभा रह जाती है भीतर--होने की। तब भी मैं होता हूं; ऐसा नहीं कि मैं नहीं होता हूं। तब भी मैं होता हूं; लेकिन उसमें मैं-पन कहीं नहीं होता। तब भी मैं होता हूं; लेकिन बस होता हूं, उसमें आई का, मैं का कोई तूफान नहीं होता। कहीं कोई शोरगुल नहीं होता, कहीं कोई घोषणा नहीं होती। कोई मुझसे पूछेगा, तो कहूंगा, मैं हूं; लेकिन कोई अगर न पूछेगा, तो मुझे पता ही नहीं चलेगा कि मैं हूं। यह मैं किसी के प्रश्न का उत्तर होगा। यह किसी ने पूछा होगा, तो यह मैं शब्द काम में आएगा। अन्यथा कोई नहीं पूछेगा, तो यह मैं कहीं नहीं बनेगा।
लेकिन आपने देखा, अहंकार, कोई पूछे या न पूछे, कोई हो या न हो, होता है।
आप अकेले में खड़े हैं, तो भी अहंकार होता है। कोई नहीं है, तो भी होता है। सुना है मैंने कि एक जहाज डूब गया। और उस पर एक बहुत बड़ा समृद्ध व्यापारी था, वह किसी तरह एक निर्जन द्वीप पर लग गया। वह न केवल बड़ा व्यापारी था, एक बड़ा मूर्तिकार, एक बड़ा आर्किटेक्ट, एक बड़ा स्थापत्य का जानकार भी था। अकेला क्या करेगा? तो उसने मूर्तियां बनानी शुरू कीं; उसने मकान बनाने शुरू किए। लकड़ियां काटीं, पत्थर जमाए; उसने अपने को व्यस्त कर लिया। वर्षों पर वर्ष बीतने लगे, उसकी बस्ती बसने लगी। अकेला था। पत्थरों पर पत्थर जमा कर, लकड़ियां काट कर, वृक्षों को काट कर रास्ते बनाए। करीब-
222

करीब बिल्कुल गैर-जरूरी, लेकिन जो-जो उसकी जरूरत की चीजें थीं, सब उसने बनाईं--गैर-जरूरी।
उसने वह दूकान बनाई जो उसके गांव में थी, जिससे वह सामान खरीदा करता था। उसने वह होटल बनाई, जिसमें वह भोजन किया करता था। उसने वह स्टेशन बनाया, जहां से वह ट्रेन पकड़ा करता था। हालांकि यहां कोई ट्रेन न थी; और यहां कोई, इस होटल में कोई चलाने वाला न था; और इस दूकान पर कोई दूकानदार न था और न कोई चीजें बिकने को थीं। लेकिन सुबह वह निकलता और दूकानदार को नमस्कार करता, कभी-कभी जाकर होटल में विश्राम करता। वह अकेला ही था। उसने मंदिर बनाया। उसने सारा इंतजाम किया।
कोई बीस वर्ष बाद एक जहाज आकर लगा। और जहाज के लोगों ने उससे उतर कर कहा कि हम तो सोचते थे तुम समाप्त हो गए, लेकिन तुम हो तो चलो। पर उसने कहा, इसके पहले कि मैं चलूं, मैं तुम्हें अपनी बस्ती बता दूं। यह जो बस्ती मैंने इन बीस सालों में बना ली। उसने बताया कि देखो यह दूकान है, जहां से मैं सामान वगैरह खरीदता था। यह होटल है, जहां कभी-कभी थक जाता, तो विश्राम के लिए जाता था। वह जो दूर तुम्हें दिखाई पड़ता है शिखर, वह मेरे चर्च का है, जिसमें मैं जाता था।
पर उन लोगों ने कहा कि लेकिन चर्च दो दिखाई पड़ते हैं; एक उसके सामने भी है।
उसने कहा, हां, वह वह चर्च है, जिसमें मैं नहीं जाता था। गांव में दो चर्च थे; एक में मैं जाता था और एक में नहीं जाता था। यानी एक मेरा चर्च था और एक दुश्मन का चर्च था। यह मेरा चर्च है, जिसमें मैं जाता हूं; और वह वह चर्च है, जिसमें मैं नहीं जाता हूं।
यह तो कुछ समझ में नहीं आया कि तुमने वह चर्च किसलिए बनाया? जिसमें तुम्हें जाना ही नहीं है, जिस चर्च में तुम जाते ही नहीं हो, वह तुमने किसलिए बनाया?
उसने कहा कि उसके बिना अपने चर्च का कोई मजा ही न था। यानी उसको होना चाहिए। वह उसके कंट्रास्ट में ही तो... । और देखते हो अपने चर्च की शान और उसकी हालत! देखते हो अपने चर्च की शान! और उसकी हालत देखते हो, वर्षों से रंग-रोगन भी नहीं हुआ है! और मैंने तो कभी नहीं देखा कि कोई वहां जाता हो। अक्सर लोग इसी में जाते हैं।
वह अकेला ही है। अहंकार अकेला भी होगा, तो अपने पास एक दुनिया निर्मित करेगा। वह उस चर्च को भी बना लेगा, जिसमें नहीं जाता। अहंकार अकेला नहीं हो सकता; उसके लिए दूसरे की जरूरत है। वह अदर ओरिएंटेड है। दूसरे के बिना उसका कोई मतलब नहीं है। अस्मिता अकेली ही है; उसे दूसरे का कोई लेना-देना नहीं है। वह मेरा होना है, माई बीइंग। अहंकार आपके खिलाफ मेरी लड़ाई है। अस्मिता मेरा अस्तित्व है; आपसे कुछ लेना-देना नहीं है। और जब अहंकार मजबूत होता है, तो अस्मिता भीतर दब जाती है। और जब अहंकार विदा हो जाता है, तो अस्मिता प्रकट हो जाती है। अहंकार में जलन है, क्योंकि वह दूसरे को जलाने की ही उत्सुकता में पैदा होता है। अस्मिता मृदु है।
तो लाओत्से कहता है, जगमगाहट को मृदु हो जाए ऐसा कुछ करो; कि यह तुम्हारे जो मैं की जगमगाहट है, यह तुम्हारे होने का जो तीव्र और कटु और विषाक्त रूप है, यह हलका हो जाए, मृदु हो जाए, शांत हो जाए। आभा रह जाए, प्रकाश मात्र रह जाए; कहीं कोई आग न बचे।
ध्यान रहे, आग और प्रकाश एक ही चीज हैं; लेकिन आग जलाती है, प्रकाश जलाता नहीं। एक ही चीज हैं; आग जलाती है, प्रकाश जलाता नहीं। आग मौत को ला सकती है; प्रकाश जीवन को लाता है। और एक ही चीज हैं। आग में एक जलन है, एक त्वरा है, और प्रकाश में एक मृदुता है। हौले-हौले, पगध्वनि भी नहीं सुनाई पड़ती है प्रकाश की।
"इसकी उद्वेलित तरंगें जलमग्न हो जाएं।"
यह जो विक्षिप्त अहंकार है, यह जो पूर्ण होने की विक्षिप्त आकांक्षा है, इसकी उद्वेलित तरंगें, इसकी विक्षिप्त तरंगें, इसकी पागल हो गई लहरें जलमग्न हो जाएं! झील में सो जाएं!
"और फिर भी यह अथाह जल की तरह तमोवृत्त सा रहता है।"

और जब यह सब हो जाएगा, तब भी सब एक रहस्य है। तब भी सब हल हो जाएगा, यह
मत समझना। तब भी सब उत्तर मिल जाएंगे... यह बहुत कीमती है, अंतिम जो पंक्ति है।
"फिर भी यह अथाह जल की तरह तमोवृत्त सा रहता है।"
जैसे अथाह हो जल! जल जितना कम हो, उतना शुभ्र मालूम होता है; जितना ज्यादा हो जाए, उतना नीलवर्ण का हो जाता है। और अथाह हो जाए, तो काला हो जाता है। अगर ठीक से समझें, तो डार्कनेस जो है, वह रहस्य का सिंबल है। ध्यान रहे, प्रकाश में रहस्य नहीं है, रहस्य तो अंधकार में है। प्रकाश एक अर्थ में छिछला है। अंधेरे में बड़ी गहराई है, बड़ी डेप्थ है, एबिसिमल डेप्थ है, ओर-छोर नहीं है। पूरी पृथ्वी प्रकाश से भरी हो, तो भी प्रकाश का दायरा छोटा है; और एक छोटा सा कमरा भी अंधकार से भरा हो, तो अनंत है।
इसको थोड़ा ख्याल में ले लें। यह पूरी पृथ्वी प्रकाश से भरी हो, तो भी सीमित है। सीमा बनाता है प्रकाश। यह छोटा सा कमरा अंधकार से भरा हो, तो कमरे की कोई सीमा नहीं है; असीम है। छोटा सा अंधकार भी असीम है; बड़े से बड़ा प्रकाश भी असीम नहीं है।
लाओत्से कहता है, यह सब हो जाएगा, फिर भी यह अथाह जल की तरह तमोवृत्त
सा रहता है।
यह जो अस्तित्व है, यह अथाह जल जैसे अंधकार में डूबा हो, असीम, रहस्य
से आवृत, कहीं ओर-छोर का कोई पता न चलता हो।
ईसाई फकीर हुए हैं। और सिर्फ दुनिया में ईसाई फकीरों ने ही परमात्मा
को डार्कनेस, अंधकार का प्रतीक दिया है, एक खास ईसाइयों के फिरके ने। ईसा से भी पुराना वह फिरका है। ईसा से भी पहले इजिप्त में इसेन फकीरों का एक समूह था, जिसके बीच ईसा ने शिक्षा ली।
इसेन फकीर कहते हैं, हे परमात्मा, तू परम अंधकार है! दि एब्सोल्यूट डार्कनेस! दुनिया में बहुत लोगों ने परमात्मा के लिए प्रतीक खोजे हैं। और प्रकाश के प्रतीक तो आम हैं। वेद कहते हैं, उपनिषद कहते हैं, कुरान कहती है, परमात्मा प्रकाश है। लेकिन बड़े अदभुत लोग रहे होंगे इसेन फकीर! कहते हैं, परमात्मा, तू परम अंधकार है। और प्रयोजन केवल इतना है कि अंधकार असीम है। प्रकाश की कितनी ही कल्पना करो, सीमा आ जाती है।
और एक मजा है कि प्रकाश को जलाओ, बुझाओ, प्रकाश क्षणभंगुर है। अंधेरा शाश्वत है। न जलाओ, न बुझाओ। आपके करने का कोई प्रयोजन नहीं है। आप आओ, जाओ, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दीया जले, बुझे; सूरज निकले, डूबे; अंधकार अपनी जगह है--अछूता, अस्पर्शित, कुंवारा। प्रकाश को गंदा किया जा सकता है; अंधेरे को गंदा नहीं किया जा सकता। उसको छुआ ही नहीं जा सकता।
लाओत्से कहता है, अथाह जल, अंधकार में डूबा हो, रहस्य में डूबा हो!
रहस्य का अर्थ है, जिसे हम जानते भी हों और जानते हों कि नहीं जानते हैं। रहस्य का अर्थ है--ख्याल ले लें--रहस्य का इतना ही अर्थ नहीं है कि जिसे हम न जानते हों। जिसे हम न जानते हों, वह अज्ञान है, रहस्य नहीं। जिसे हम जानते हों, वह ज्ञान है। ज्ञान में भी कोई रहस्य नहीं है; अज्ञान में भी कोई रहस्य नहीं है। अज्ञानी कहता है, मैं नहीं जानता। रहस्य जैसा कुछ भी नहीं है, न जानना बिल्कुल साफ है। ज्ञानी कहता है, मैं जानता हूं। रहस्य कुछ भी नहीं बचता, जानना बिल्कुल साफ है।
रहस्य का अर्थ है, जानता हूं कि नहीं जानता। जानता भी हूं किसी अर्थ में और किसी अर्थ में कह भी नहीं सकता कि जानता हूं। कोई अर्थ में लगता है मुझे, प्रतीत होता है, कि पहचाना, जाना, निकट आया। और तत्काल लगता है कि जितना निकट आता हूं, उतना दूर हुआ जाता हूं। जितना हाथ रखता हूं, लगता है, हाथ में आ गई बात, उतना ही पाता हूं कि हाथ ही उस बात में चला गया। सागर में कूद पड़ता हूं; लगता है, मिल गया सागर, पा लिया; लेकिन जब गौर करता हूं, तो पाता हूं, सागर के एक क्षुद्र से किनारे पर हूं। अनंत पड़ा है सागर, अनजाना, अछूता; उसे कभी पा न सकूंगा।
अज्ञानी स्पष्ट है, नहीं जानता है। ज्ञानी स्पष्ट है कि जानता है। इसलिए ज्ञानी और अज्ञानी में एक कॉमन एलीमेंट है--स्पष्टता का। रहस्यवादी अलग; न वह ज्ञानी से मेल खाता, न अज्ञानी से, या वह दोनों से एक साथ मेल खाता है। वह कहता है, किसी अर्थ में जानता भी हूं और किसी अर्थ में नहीं भी

जानता। मेरे ज्ञान ने मेरे अज्ञान को प्रकट किया है। जितना मैंने जाना, उतना मैंने पाया कि जानने को बाकी है।
लाओत्से कहता है, सब हल हो जाएगा, उसी दिन तुम पाओगे कि कुछ भी हल नहीं हुआ। सब तमोवृत्त, गहन अथाह जल है अंधकार में डूबा हुआ!
इस बात से, जो चिंतक तरह के लोग हैं, सोच-विचार वाले लोग हैं, उनको अड़चन होती है। उनको अड़चन होती है, इतना श्रम शून्य होने का, इतना श्रम ग्रंथियां काट डालने का, इतना श्रम सब! और अंत में, अंत में कुछ स्पष्ट बात हाथ न लगे, तो बेकार गई मेहनत। लेकिन उन्हें पता नहीं है कि जब भी स्पष्ट बात हाथ में लगती है, तभी यात्रा बेकार जाती है। क्योंकि जब भी आप सुनिश्चित होकर कुछ पा लेते हैं, तभी वह बेकार हो जाता है। दैट व्हिच इ.ज एचीव्ड कंप्लीटली एंड टोटली बिकम्स यूजलेस, मीनिंगलेस।
जब आप पाकर भी पाते हैं कि नहीं पाया जा सका, जब पहुंच कर भी पाते हैं
कि मंजिल शेष है, जब डूब कर भी पाते हैं कि अभी ऊपर ही हैं, सतह पर ही हैं, जब तलहटी में भी बैठ कर पाते हैं कि अभी तो यात्रा शुरू हुई, तब किसी ऐसी जगह पहुंचे हैं, जहां से अर्थ कभी भी रिक्त न होगा, जहां से अर्थ कभी खोएगा न, जहां का काव्य कभी समाप्त न होगा, और जहां का रोमांस शाश्वत है।
तो रिलीजन जो है, धर्म जो है, वह शाश्वत रोमांस है, इटरनल रोमांस। हम जितने ही उस प्रेमी के पास पहुंचते हैं, उतने ही हम पाते हैं कि पर्दों पर पर्दे हैं, द्वार पर द्वार हैं। जितने पास जाते हैं, पाते हैं, और द्वार हैं। अंतहीन मालूम होते हैं द्वार। और इसलिए यह यात्रा अनंत रूप से सार्थक है। और यात्रा के हर कदम पर रहस्य और विस्मय है। और यात्रा के हर कदम को मंजिल भी माना जा सकता है और यात्रा की हर मंजिल को नया यात्रा का कदम और पड़ाव भी माना जा सकता है।
इसलिए लाओत्से कहता है, यह सब हो जाए, फिर भी--यह फिर भी बहुत अर्थपूर्ण है--फिर भी ऐसा नहीं कि मंजिल आ ही जाती है और कोई कह देता है कि बस पहुंच गए।
सिर्फ उथले लोग पहुंचते हैं। नहीं पहुंचते, वही पहुंचने की बात करते हुए मालूम पड़ते हैं। यह जीवन इतना गहन है कि कोई कह न पाएगा कि पहुंच गए। उपनिषदों में कथा है कि एक पिता ने अपने पांच बेटों को भेजा सत्य की खोज पर। वे गए। वर्षों बाद वे लौटे। पिता मरणासन्न है। वह पूछता है अपने बेटों से, सत्य मिल गया? ले आए? जान लिया?
पहला बेटा जवाब देता है, वेद की ऋचाएं दोहराता है। दूसरा बेटा जवाब देता है, उपनिषद के सूत्र बोलता है। तीसरा बेटा जवाब देता है, वेदांत की गहन बातें कहता है। चौथा बेटा बोलता है, जो भी सारभूत धर्मों ने पाया है, सब कहता है।
लेकिन जैसे-जैसे बेटे जवाब देते हैं, वैसे-वैसे बाप उदास होता चला जाता है। चौथे के जवाब देते-देते वह वापस बिस्तर पर लेट जाता है। लेकिन पांचवां चुप ही रह गया। बाप फिर उठ आया है। और उसने पूछा कि तूने जवाब नहीं दिया? शायद सोचा हो कि मैं लेट गया, थक गया। तेरा जवाब और दे दे; क्योंकि मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा में जी रहा हूं। वह बेटा फिर चुप है। बाप कहता है, तू बोल। वह बेटा फिर चुप है। उसने आंख बंद कर ली हैं। वह बाप कहता है, तो मैं फिर निश्चिंतता से मर सकता हूं। कम से कम एक जान कर लौटा है, जो चुप है। बोधिधर्म वापस लौटता है--चीन दस वर्ष काम करके। अपने शिष्यों को इकट्ठा करता है और पूछता है, मुझे बताओ, धर्म का राज क्या है? रहस्य क्या है? संदेश क्या है बुद्ध का? मैंने तुम्हें क्या दिया?
वह जांच कर लेना चाहता है जाने के पहले।
एक शिष्य उत्तर देता है कि संसार और निर्वाण एक हैं, सब अद्वैत है। बोधिधर्म उसकी तरफ देखता है और कहता है, तेरे पास मेरी चमड़ी है।
वह युवक बहुत हैरान हो जाता है, चमड़ी? अद्वैत की बात, और कहता है चमड़ी! बात जब सिर्फ अद्वैत की होती है, बात ही जब अद्वैत की होती है, तो चमड़ी ही होती है, कुछ और नहीं होता। बात तो उसने बड़ी ऊंची कही थी, पूरे अद्वैत की, कि संसार और ब्रह्म एक, संसार और मोक्ष एक, द्वैत है ही नहीं।
दूसरे से पूछता है। वह दूसरा कहता है, कठिन है कहना, अनिर्वचनीय है।
बहुत मुश्किल है।

बोधिधर्म कहता है, तेरे पास मेरी हड्डियां हैं।
पूछता है युवक, सिर्फ हड्डियां?
बोधिधर्म कहता है, हां! क्योंकि तू कहता तो है अनिर्वचनीय, लेकिन कहता जरूर है। तू कहता है अनिर्वचनीय, नहीं कहा जा सकता, फिर भी कहता है।
हड्डियां ही तेरे पास हैं।
और तीसरा युवक कहता है, न तो कहा जा सकता अनिर्वचनीय उसे, न कहा जा सकता अद्वैत उसे, शब्द नहीं वहां काम करते, वहां तो मौन ही सार्थक है। बोधिधर्म कहता है, तेरे पास मेरी मज्जा है। मस्तिष्क में खोपड़ी को घेरे हुए जो है, वह तेरे पास है।
पर और इससे गहरी क्या बात होगी?
वह चौथे युवक की तरफ देखता है। वह चौथा युवक उसके पैरों में गिर पड़ता
है और सिर उसके पैरों में रख देता है। वह उसे उठाता है। उसकी आंखें शून्य हैं, उसकी आंखों में जैसे कोई प्रतिबिंब नहीं दौड़ता; जैसे आकाश में कभी कोई बादल न चलता हो, ऐसा खाली।
वह उसे हिलाता है कि तूने मेरा प्रश्न सुना या नहीं? मैं तुझसे कुछ पूछता हूं, तुझ तक पहुंचा या नहीं?
शून्य आंखें शून्य ही बनी रहती हैं, बंद ओंठ बंद ही बने रहते हैं, वह दुबारा झुक कर सिर चरणों पर बोधिधर्म के रख देता है। वह उसे फिर उठाता है; वह कहता है, मुझे तू बोल!
नहीं बोलता, वह चुप है।
और बोधिधर्म कहता है, तेरे पास मैं हूं; अब मैं जाता हूं। वह वापस लौट आता है। तेरे पास मैं हूं!
रहस्य का अर्थ है, उसे कभी पाया हुआ नहीं कहा जा सकता, जाना हुआ नहीं कहा जा सकता; न जाना हुआ भी नहीं कहा जा सकता। ज्ञात नहीं, अज्ञात नहीं। इतना बड़ा है सब कि हमारा कुछ भी कहना सार्थक नहीं होता।
इसलिए लाओत्से कहता है, फिर भी, स्टिल, तुम सब हल कर लोगे, तुम सब राज खोल लोगे, तुम सब ग्रंथियां सुलझा लोगे, तुम्हारी सब बीमारियां गिर जाएंगी, फिर भी जगत का रहस्य नहीं खुल जाएगा। रहस्य और सघन हो जाएगा, जैसे अथाह जल तमोवृत्त सा!
अगला सूत्र कल बात करेंगे।

ताओ उपनिषद, भाग एक
चोदहवां प्रवचन

प्रतिबिंब उसका, जो कि परमात्मा के भी पहले था

Chapter 4 : Sutra 3

I do not know whose son it is, may be an image of what existed before God.

अध्याय 4 : सूत्र 3

नहीं जानता मैं कि किसका पुत्र है यह, शायद यह प्रतिबिंब है उसका, जो
कि परमात्मा के भी पहले था।

शून्य हो जाने पर, घड़े की भांति रिक्त हो जाने पर--चित्त की सारी नोकें
झड़ जाएं, सारी ग्रंथियां सुलझ जाएं, व्यक्ति स्वयं को पूरा उघाड़ ले और जान ले--फिर भी, जो आधारभूत है, आत्यंतिक है, अल्टिमेट है, वह अनजाना ही रह जाता है। वह रहस्य में ही छिपा रह जाता है।
इस अंतिम सूत्र में लाओत्से उसकी तरफ इशारा करता है और कहता है, "नहीं जानता मैं, किसका पुत्र है यह।"
यह जो सब जान लेने पर भी अनजाना ही रह जाता है, यह जो सब उघड़ जाने पर भी अनउघड़ा ही रह जाता है, यह जो सब आवरण हट जाने पर भी आवृत ही रह जाता है, ढंका हुआ ही रह जाता है, ज्ञान भी जिसके रहस्य को नष्ट नहीं कर पाता, यह कौन है? "नहीं जानता मैं, किसका पुत्र है यह।"
यह किससे जन्मा? और कहां से आया? कौन से मूल स्रोत से इसका उदगम है?
"शायद यह बिंब है उसका, जो कि परमात्मा के भी पहले था।"
यह जो शून्य उदघाटित होता है, यह जो रहस्य साक्षात होता है, यह शायद बिंब है उसका, जो कि परमात्मा के भी पहले था।
बहुत सी बातें इस सूत्र में समझने जैसी हैं।
पहली तो बात लाओत्से कहता है, "नहीं जानता मैं।"
कल मैंने कहा, अस्मिता और अहंकार। अहंकार जब तक है, तब तक ज्ञान का उदय नहीं होता; अहंकार जब तक है, तक तक अज्ञान ही होता है। रहस्यवादियों ने अज्ञान को और अहंकार को पर्यायवाची कहा है। टु बी ईगो-सेंटरिक एंड टु बी इग्नोरेंट आर दि सेम। ये दो बातें नहीं हैं। अहंकार-केंद्रित होना और अज्ञानी होना एक ही बात है। अज्ञान और अहंकार एक ही स्थिति के दो नाम हैं। अहंकार जब गिर जाता है, अज्ञान जब गिर जाता है, तब अस्मिता का बोध शुरू होता है। अस्मिता और ज्ञान एक ही बात है। जैसा मैंने कहा, अहंकार और अज्ञान एक ही बात है, ऐसा अस्मिता और ज्ञान एक ही बात है। अहंकार के साथ होता है बाहर अज्ञान, अस्मिता के साथ होता है बाहर ज्ञान। अस्मि का अर्थ होता है, जस्ट टु बी। अस्मिता का अर्थ होगा, जस्ट टु बी नेस! बस होना मात्र! विशेषणरहित, आकाररहित, मात्र होना, शुद्ध अस्तित्व! यह जो अस्मिता रह जाएगी, इसके साथ होगा ज्ञान।
यहां जब लाओत्से कहता है, नहीं जानता मैं, तो यह मैं अस्मिता का सूचक है। अहंकार तो मिट गया; अब कोई ऐसा भाव नहीं रहा कि मैं जगत का केंद्र हूं। अब ऐसा कोई भाव नहीं रहा कि जगत मेरे लिए है। अब ऐसा भी कोई भाव नहीं रहा कि मैं बचूं ही। ये सब भाव चले गए; फिर भी मैं हूं। इस मैं में सारे के सारे रहस्य खुल गए। लेकिन इस मैं को भी कोई पता नहीं कि यह जो शून्य है, यह कहां से जन्मता है। अज्ञान को तो कोई पता ही नहीं है कि जगत कहां से जन्मता है; ज्ञान को भी कोई पता नहीं है कि जगत कहां से जन्मता है। अज्ञान तो बता ही न सकेगा कि जीवन का रहस्य कहां से उदभूत होता है, कहां है वह गंगोत्री जहां से अस्तित्व की गंगा निकलती है; अज्ञान तो बता ही न सकेगा, ज्ञान भी नहीं बता सकता है।

लाओत्से यहां जो कह रहा है, नहीं जानता हूं मैं, वह यह कह रहा है कि सब जान कर भी, स्वयं को सब भांति पहचान कर भी--अब कोई ग्रंथियां न रहीं, अब कोई अंधकार न रहा, प्रकाश पूरा है--फिर भी मैं नहीं जानता कि यह जो शून्य है, यह जो उदघाटित हुआ मेरे आंखों के सामने, यह कौन है? यह शून्य कहां से आता है? इसका क्या यात्रा-पथ है? यह क्यों है? इस ज्ञान से भरी अस्मिता को भी कोई पता नहीं है।
लाओत्से का मैं ज्ञानी का मैं है; उसे भी पता नहीं है। अज्ञानी के मैं
को तो कुछ भी पता नहीं, ज्ञानी के मैं को भी कुछ पता नहीं है। यह फासला ख्याल में ले लेने की जरूरत है। और इसके पार नहीं जाया जा सकता। अस्मिता तक जाया जा सकता है। जहां अस्मिता भी खो जाती है, उसके पार तो आप शून्य के साथ एक हो जाते हैं। फिर तो शून्य को अलग से खड़े होकर जानने का कोई उपाय नहीं रह जाता।
सागर के तट पर खड़ा है; वह अज्ञानी है। सागर में कूद पड़ा, सागर में डूब गया; वह ज्ञानी है। लेकिन अभी भी सागर से पृथक है। सागर ही हो गया; वह फिर ज्ञान के भी पार चला गया। लेकिन अज्ञानी नहीं जान पाता, क्योंकि वह तट पर खड़ा है, सागर से दूर है। ज्ञानी सागर में डूबा है बिल्कुल, फिर भी नहीं जान पाता, क्योंकि सागर में डूब कर भी सागर से एक नहीं हो गया है। ज्ञानी के भी पार जो दशा है, वहां तो सागर के साथ एक हो गया है; लेकिन तब जानने वाला नहीं बचता कोई।
जानने वाला सबसे ज्यादा होता है अज्ञान में। इतना ज्यादा होता है दि नोअर, इतना घना होता है कि जो नोन है, जिसे जानना है, वह होता ही नहीं। दि नोअर इ.ज टू मच। इसलिए जिसे जानना है, वह होता ही नहीं। अस्मिता में नोअर और नोन बिल्कुल बराबर हो जाते हैं; जानने वाला और जिसे जानना है, वे दोनों समतुल हो जाते हैं। तराजू बिल्कुल ठहर जाता है। लेकिन अभी भी एक रेखा दूर करती है--ज्ञान की, जानने की। इसके आगे फिर जो अवस्था है, उसे हम चाहें तो कहें परम अज्ञान, चाहें तो परम ज्ञान; उसे हम कोई भी नाम दे सकते हैं। उस अवस्था में जानने वाला बचता ही नहीं। वह शून्य ही हो जाता है।
अज्ञान में जानने वाला बहुत होता है। परम ज्ञान में जानने वाला होता
ही नहीं। ज्ञान में दोनों बराबर होते हैं।
लाओत्से जहां से बोल रहा है अभी, नहीं जानता मैं, यह ज्ञान की अवस्था है, जहां अस्मिता बाकी है। इसलिए लाओत्से कहता है, मैं नहीं जानता, किसका पुत्र है यह। यह शून्य कहां से जन्मा? शायद यह बिंब है उसका, जो कि परमात्मा के भी पहले था। परमात्मा के पहले!
आदमी की जो कल्पना है, चिंतन है, वह परमात्मा तक गया है। परमात्मा के पार आदमी का चिंतन नहीं गया। आदमी के चिंतन की सीमा-रेखा है परमात्मा। अब तक जो बड़ी से बड़ी उड़ान ली गई है विचार की, वह परमात्मा तक जाती है। और लाओत्से कहता है कि यह जो है, यह बिंब मालूम पड़ता है, रिफ्लेक्शन मालूम पड़ता है उसका, जो कि परमात्मा के भी पहले था।
यहां लाओत्से दो-तीन बातों की सूचना देता है।
एक तो यह कि चिंतन की जो सीमा है, अंतिम, वह सत्य की पहली सीमा भी नहीं है। चिंतन की जो अंतिम रेखा है, वह सत्य का पहला कदम भी नहीं है। दर्शन जहां तक पहुंचाता है, परमात्मा तक, वहां तक सागर शुरू भी नहीं हुआ है। इसलिए शंकर ने--शंकर से यहां लाओत्से को समझना आसान पड़ेगा--शंकर ने ईश्वर को भी माया का हिस्सा कहा है। ईश्वर को भी माया का हिस्सा कहा है, ब्रह्म का हिस्सा नहीं कहा। क्योंकि ईश्वर की जो धारणा है, वह हमारे मन की आखिरी धारणा है। और जहां तक मन जाता है, वहां तक माया चली जाती है। माया का अर्थ है मन का ही फैलाव। तो अगर आदमी ने ईश्वर को खोज लिया, तो आदमी के मन की खोज है वह। और आदमी का मन जो भी खोज लेगा, वह माया की सीमा होगी।
इसलिए शंकर ने बहुत हिम्मत की बात कही है कि ईश्वर भी माया का ही हिस्सा है। ब्रह्म तो माया के भी पार है, ईश्वर के भी पार है।
वही लाओत्से कह रहा है। वह कह रहा है, परमात्मा के भी पहले जो था; सृष्टि के तो पहले था ही जो, स्रष्टा के भी पहले जो था; जो बना हुआ दिखाई पड़ रहा है, उसके तो पहले था ही, जिसने बनाया है--ऐसा जैसा हम सोचते हैं कि इसने

बनाया है--उस बनाने वाले के भी पहले जो था। लेकिन वह यह नहीं कहता कि यह वही है। यहीं उसकी कला है।
लाओत्से कहता है, उसका यह प्रतिबिंब--मानो, जैसे कि यह उसका प्रतिबिंब है।
यह नहीं कहता, वही है। क्योंकि मन उसे नहीं जान पाएगा। अहंकार तो जान
ही नहीं पाएगा, अस्मिता भी नहीं जान पाएगी। अस्मिता भी ज्यादा से ज्यादा रिफ्लेक्शन को जान सकती है।
रिफ्लेक्शन का मतलब यह हुआ कि नदी के किनारे एक वृक्ष खड़ा है और नदी में उस वृक्ष की छाया बन रही है। एक मछली नदी में तैर रही है। उस मछली को तट पर खड़ा वृक्ष तो दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन पानी में बनने वाला प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। ऐसा समझ लें कि उस मछली को पानी में बनने वाले वृक्ष का प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। वृक्ष के पास से उड़ते हुए पक्षियों की कतार दिखाई पड़ती है--प्रतिबिंब। वृक्ष के पास उगे हुए चांद की छाया बनती है, वह दिखाई पड़ता है। चांद के ऊपर तैरती हुई बदलियां दिखाई पड़ती हैं। रिफ्लेक्शन में, जल के दर्पण में बन गई ये तस्वीरें उस मछली को दिखाई पड़ती हैं।
मन, अस्मिता वाला मन भी ज्यादा से ज्यादा रिफ्लेक्शन को जानने का सामर्थ्य कर सकता है।
इसलिए लाओत्से नहीं कहता कि यह वही है, जो परमात्मा के पहले था। लाओत्से कहता है, शायद यह उसका प्रतिबिंब है, जो परमात्मा के भी पहले था। असल में, आदमी जो भी जान सकता है--आदमी ही क्यों, जो भी जाना जा सकता है--वह प्रतिबिंब ही होगा। क्योंकि सत्य को हम तभी जानते हैं, जब हम सत्य के साथ एक हो गए होते हैं, जानने वाला अलग नहीं बचता। जब पतंगा उड़ कर जल जाता है दीए के साथ, तभी दीए को जानता है। जब नमक की डली गल जाती है सागर में, तभी सागर को जानती है। लेकिन तब वह बचती नहीं। और तब वह किसी को कहना चाहे लौट कर, तो कहने का उपाय नहीं, क्योंकि वह बची नहीं। जब तक जानना है, तब तक हम ज्यादा से ज्यादा जो श्रेष्ठतम जान सकते हैं, वह प्रतिबिंब होगा। और निश्चित ही, प्रतिबिंब के साथ परहेप्स, शायद लगा रहना चाहिए।
यहां महावीर से थोड़ी सी कल्पना लाओत्से को समझने में आसान होगी। महावीर ने परहेप्स का जितना उपयोग किया है इस पृथ्वी पर, दूसरे आदमी ने नहीं किया है। महावीर कुछ भी बोलते थे, तो उसमें स्यात लगा कर ही बोलते थे। वे कहते थे, शायद! वे कभी नहीं कहते थे, ऐसा ही। इसलिए महावीर के चिंतन का नाम हैः स्यातवाद, परहेप्स-इज्म। महावीर से कुछ भी पूछिएगा, तो वे कहेंगे परहेप्स, शायद। जो बिल्कुल सुनिश्चित तथ्य है, महावीर जिसे बहुत निश्चित रूप से जानते हैं, उसको भी वे कहेंगे स्यात। क्यों? अगर महावीर को ठीक-ठीक पता है, अगर बिल्कुल सही पता है, तो उन्हें साफ कहना चाहिए, ऐसा ही है। लेकिन महावीर कहते हैं, जब भी कोई ऐसा दावा करता है, ऐसा ही है, तभी असत्य हो जाता है। महावीर कहते हैं, मन इतना ही कर सकता है, ऐसा भी है। ऐसा ही है, ऐसा नहीं; ऐसा भी हो सकता है। जब हम कहते हैं, ऐसा ही है, तो हम और सारे सत्य की संभावनाओं को नष्ट कर देते हैं। दावा हमारा पूर्ण हो जाता है और अंधा हो जाता है। जब हम कहते हैं कि ऐसा भी हो सकता है, तो इसके विपरीत भी होने की हम संभावनाओं को कायम रखते हैं। और अगर चित्त में बनने वाली सारी स्थितियां प्रतिबिंब हैं... ।
इसे और एक तरह से समझ लें तो और आसानी पड़ जाएगी; तो फिर स्यात बहुत स्पष्ट हो जाएगा। मैं आपको दिखाई पड़ रहा हूं। आपको कभी ख्याल न आया होगा कि आप ने मुझे कभी भी नहीं देखा है, और न देखने का कोई उपाय है। आप सिर्फ मेरे प्रतिबिंब को देखते हैं। आपकी आंख पर बनती है मेरी तस्वीर, और उस तस्वीर की खबर पहुंचती है आपके मस्तिष्क को। आप जो देखते हैं, वह आपकी आंख पर बनी हुई तस्वीर है; मुझे आप नहीं देखते। मुझे देखने का कोई उपाय नहीं है; क्योंकि बिना आंख के आप मुझे नहीं देख सकते हैं। और आंख का मतलब यह है कि प्रतिबिंब बनाने वाली व्यवस्था। वह बाहर जो है, उसका रिफ्लेक्शन बना देती है, उसका प्रतिबिंब बना देती है। और पीछे जो मन है, उस प्रतिबिंब को देखता है।

जब आप मुझे सुनते हैं, तो जो मैं बोल रहा हूं, वह आप नहीं सुनते; उस बोलने की जो भनक आपके कानों में पड़ती है, उस भनक को आप सुनते हैं। आपके और मेरे बीच में आपका कान रिफ्लेक्शन का काम करता है। जब मैं आपका हाथ छूता हूं, तब भी मेरा हाथ आपको छू रहा है, ऐसा आप कभी नहीं जानते। जब मैं आपका हाथ छूता हूं, तो आपकी चमड़ी पर स्पर्श बनता है और उस स्पर्श को आप जानते हैं। आपके और मेरे बीच में एक पर्दा सदा ही खड़ा रहता है।
इसलिए इमेनुअल कांट, जर्मनी के एक बहुत अदभुत विचारक ने, इस आधार पर
यह कहा कि वस्तु जैसी स्वयं में है, थिंग इन इटसेल्फ, वह अननोएबल है, वह जानी नहीं जा सकती। कोई वस्तु जैसी अपने में है, नहीं जानी जा सकती। हम सिर्फ उसके प्रतिबिंब ही जानते हैं।
और अगर हम प्रतिबिंब ही जानते हैं, तो ध्यान रहे, जो हम जानते हैं, उसमें हमारी प्रतिबिंब बनाने की क्षमता सम्मिलित हो जाती है। इसलिए पीलिया का एक मरीज वहां पीला रंग देख सकता है, जहां पीला रंग नहीं है। कलर ब्लाइंड आदमी होते हैं, उन्हें कोई रंग नहीं दिखाई पड़ता तो नहीं दिखाई पड़ता। थोड़े नहीं, काफी लोग होते हैं। दस में करीब-करीब एक आदमी किसी न किसी कलर के मामले में थोड़ा ब्लाइंड होता है--दस में एक! हम यहां अगर सौ आदमी हैं, तो इनमें कम से कम दस आदमी, ठीक से जांच-पड़ताल की जाए, तो किसी न किसी छोटे-मोटे रंग के प्रति अंधे होंगे।
बर्नार्ड शॉ साठ साल की उम्र तक उसे पता ही नहीं था कि उसे पीला रंग दिखाई नहीं पड़ता। उसे हरे और पीले में कोई फर्क नहीं मालूम होता था। साठ वर्ष तक पता नहीं चला। पता चले भी कैसे? साठवीं वर्षगांठ पर किसी ने उसे एक वस्त्र उपहार में भेजे हैं; वे हरे रंग के हैं। तो टाई लेने बाजार गया। टाई उसने नहीं भेजी है। तो वह पीले रंग की टाई खरीद लाया। उसकी जो सेक्रेटरी थी, उसने कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं! यह बहुत बेहूदी लगेगी। अगर मेल ही मिलाना है, तो हरे रंग की ही खरीद लें। पर बर्नार्ड शॉ ने कहा कि कौन कहता है यह हरा रंग नहीं है! यह हरा रंग है।
तब पहली दफे पता चला कि वह कलर ब्लाइंड है! उसे पीले रंग और हरे रंग में कोई फर्क नहीं दिखाई पड़ता। वे दोनों उसे एक से दिखाई पड़ते हैं। लेकिन साठ साल तक उसे कोई पता नहीं चला।
तो जो हमें दिखाई पड़ता है, उसमें हमारे देखने की क्षमता सम्मिलित हो जाती है।
अब एक मछली पानी में तैर रही है। और अगर पानी नीले रंग का है, तो जो चांद उसको प्रतिबिंब पानी में बना हुआ दिखाई पड़ेगा, वह नीले रंग का दिखाई पड़ेगा। और कोई उसके पास जानने का उपाय नहीं है कि जिस चांद का यह प्रतिबिंब है, वह नीला नहीं होगा।
महावीर कहते हैं कि जो भी हम जानते हैं, हमें निरंतर ही उसमें स्यात लगा कर बोलना चाहिए। उससे इस बात की खबर मिलती है कि हम सत्य के पूर्ण होने का दावा नहीं करते, सिर्फ प्रतिबिंब होने का दावा करते हैं। हम कहते हैं कि ऐसा मुझे दिखाई पड़ता है। ऐसा है, ऐसा हम नहीं कहते; ऐसा मुझे दिखाई पड़ता है। यह गलत भी हो सकता है, इससे भिन्न भी हो सकता है। इससे विपरीत दिखाई पड़ने वाले में भी सत्य हो सकता है।
लाओत्से कहता है, शायद यह जो शून्य प्रकट हुआ है, यह प्रतिफलन है उसका, प्रतिबिंब है उसका, वह जो परमात्मा के भी पहले था; जहां से परमात्मा भी पैदा हुआ होगा।
ताओइस्ट परंपरा में ओरिजिनल फेस के बाबत बहुत काम हुआ है। साधक से कहा जाता है कि तुम्हारा मूल चेहरा क्या है, व्हाट इ.ज योर ओरिजिनल फेस, उसका पता लगाओ।
आप कहेंगे कि मेरा जो चेहरा है, वही मेरा ओरिजिनल फेस है। लेकिन अगर
आप अपने दस साल के चित्र उठा कर देखें, तो आपको पता चल जाएगा कि आपका चेहरा दस दफे बदल गया है।
स्टेनबैक की पत्नी--एक जर्मन लेखक, उसकी पत्नी अपने बेटे को, छोटे बेटे को अपने पति के बचपन से लेकर अभी तक के चित्र दिखा रही है। जब उसका विवाह हुआ अपने पति से, तब वह तीस साल का जवान था। घुंघराले उसके बाल थे; सुंदर उसका चेहरा था। तो वह छोटा बेटा, स्टेनबैक का बेटा, अपनी मां से

पूछने लगा कि यह घुंघराले बालों वाला सुंदर जवान कौन है? तो उसकी मां ने कहा, पागल, तू पहचान नहीं पा रहा! ये तेरे पिता हैं। तो उस लड़के ने कहा, अगर ये मेरे पिता हैं, तो वह गंजे सिर का जो आदमी अपने घर में रहता है, वह कौन है? अब तो साठ साल का है स्टेनबैक। तो वह कौन है, वह जो गंजे सिर का आदमी अपने घर में रहता है, अगर ये मेरे पिता हैं तो! मैं तो उन्हीं को अभी तक पिता समझ रहा था। अब उस बच्चे को समझाना जरूर बहुत मुश्किल पड़ा होगा।
कौन सा चेहरा ओरिजिनल है? वह कौन सा चेहरा आपका है? वह जो तीस साल में प्रकट होता है? वह जो तीन महीने में प्रकट होता है? वह जो मां के पेट में, गर्भ में प्रकट होता है? वह जो मरते वक्त, वह जो बुढ़ापे में? कौन सा चेहरा आपका है, आथेंटिक, जिसको आप कह सकें, यह मेरा चेहरा है।
ताओ परंपरा में साधक को वे कहते हैं, ध्यान करो और पता लगाओ, तुम्हारा मूल चेहरा क्या है। साधक थोड़े दिन में परेशान हो जाते हैं और आकर गुरु को पूछते हैं कि मूल से मतलब क्या? तो वे कहते हैं कि जब तुम नहीं पैदा हुए थे, तब तुम्हारा जो चेहरा था, उसका पता लगाओ। या जब तुम मर जाओगे, और तब भी तुम्हारा जो चेहरा होगा, उसका पता लगाओ। प्रकट होने के पहले भी जो तुम्हारे साथ था, अप्रकट हो जाने पर भी जो तुम्हारे साथ होगा, वही आथेंटिक है। बाकी तो बीच के वस्त्र हैं, जो लिए गए, दिए गए, ओढ़े गए, अलग किए गए। लाओत्से कहता है, परमात्मा के भी पहले जो था! वही ओरिजिनल फेस है सत्य का, जो परमात्मा के भी पहले है। जब कुछ भी न था प्रकट, सब अप्रकट था। उपनिषदों ने या वेद ने तीन अवस्थाएं मानी हैं अस्तित्व की। एक अवस्था, जब अस्तित्व मैनिफेस्टेशन में अभिव्यक्त हुआ। फूल खिल रहे हैं, पक्षी उड़ रहे हैं, लोग जमीन पर हैं, तारे हैं, सूरज है, जगत है--अभिव्यक्त! प्रकट! प्रकट होता जा रहा है, फैलता जा रहा है। दूसरी अवस्था, उपनिषद कहते हैं, प्रलय की। जब जगत सिकुड़ रहा है, नष्ट हो रहा है। फूल झड़ गए, पक्षी मर गए, वाणियां खो गईं, तारे फीके पड़ गए, सूरज बुझ गए; सब सिकुड़ रहा है। एक, जब अस्तित्व सृजन हो रहा है, युवा हो रहा है; और एक, जब अस्तित्व बूढ़ा हो रहा है, समाप्त हो रहा है।
तो सृजन और प्रलय, जैसे कि श्वास बाहर जाए और भीतर आए, भीतर आए और बाहर जाए, ऐसा हिंदू तत्वचिंतन ने कहा है कि अस्तित्व का सृजन परमात्मा की भीतर आती श्वास है, और अस्तित्व का विनाश परमात्मा की बाहर जाती श्वास है, आउटगोइंग ब्रेथ। और ब्रह्मा की एक श्वास--वह माइथोलॉजी है, पर समझने जैसी है--ब्रह्मा की एक श्वास सृजन है और दूसरी श्वास प्रलय है।
लेकिन इन दोनों के पार भी कोई अवस्था है, जब न श्वास भीतर आती है और न बाहर जाती है। वह तीसरी अवस्था है--न प्रलय है, न सृष्टि है। कुछ तो ऐसा होना ही चाहिए, जो प्रलय में नष्ट होता है, सृजन में बनता है और दोनों के पार है। वह ओरिजिनल फेस, वह मूल चेहरा होगा।
लाओत्से कहता है, परमात्मा के भी पहले जो था, उसका प्रतिबिंब।
लेकिन बहुत... लाओत्से की अभिव्यक्ति इतनी कदम-कदम विचारणीय है कि वह
यह नहीं कहता कि वही। वह कहता है, प्रतिबिंब। क्योंकि जहां देखने वाला है, जहां बोलने वाला है, जहां मैं हूं--अहंकार नहीं, अस्मिता ही भले--जहां मैं हूं, वहां प्रतिबिंब ही होगा। पर इतना क्या कम है, सत्य हमें दर्पण में भी दिखाई पड़ जाए! सत्य हमें दर्पण में भी दिखाई पड़ जाए, इतना भी क्या कम है! लेकिन लाओत्से ख्याल रखता है कि वह कहे कि यह दर्पण में देखा गया सत्य है। देखा गया सत्य, दर्पण में देखा गया सत्य ही होगा।
और दूसरी बात वह कहता है, शायद।
यह अनाग्रह की बात है। यह बहुत विचारणीय है कि जितना ज्यादा असत्य हमारे मन पर होता है, उतने हमारे वक्तव्य आग्रहपूर्ण होते हैं। जितना अहंकार होता है, वक्तव्य में उतना आग्रह होता है। हमारे जो विवाद जगत में चलते हैं, वे विवाद सत्य के लिए नहीं होते, आग्रह के लिए होते हैं। जब मैं कहता हूं कि यही ठीक है, तो असली सवाल यह नहीं होता कि यही ठीक है या नहीं, असली सवाल यह होता है कि मैं ठीक हूं और तुम गलत हो। जो विवाद है, कभी प्रकट ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि मैं ठीक हूं और तुम गलत हो; विवाद ऐसा मालूम पड़ता है कि सत्य के लिए चल रहा है। पीछे अगर गौर करेंगे, तो हर सत्य, तथाकथित सत्य के पीछे मैं खड़ा रहता है। मेरा सत्य ठीक होना चाहिए! क्योंकि मेरे

सत्य के ठीक होते मैं ठीक होता हूं; मेरे सत्य के गलत होते मैं गलत हो जाता हूं। और मैं ठीक हूं।
यह मेरे ठीक होने का जो आग्रह है, वह अहंकार के साथ ही विलीन हो जाता है। इसलिए जहां-जहां अस्मिता से सत्य पैदा हुए हैं, जैसे बुद्ध या महावीर या कृष्ण या क्राइस्ट या मोहम्मद या लाओत्से--ये सब अस्मिता से निकले हुए वक्तव्य हैं, अहंकार से निकले हुए नहीं--ये सब अनाग्रहपूर्ण हैं। बड़ा अनाग्रह है! कह देने पर जैसे इति है। कोई माने, कोई राजी किया जाए, कोई न माने तो उसे मनवाया जाए, ऐसा कोई भाव नहीं है। जैसे बात कह दी और समाप्त हो गई।
फिर भी सोच-विचार कर, कंसीडर्डली, शायद लगा देना बहुत हिम्मत की बात है। क्योंकि जो मुझे सत्य जैसा लगता हो, उसमें शायद लगाने का स्मरण भी नहीं रहता। हम तो असत्य में भी शायद नहीं लगाते। हम तो असत्य में भी शायद नहीं लगाते, और लाओत्से जैसे लोग सत्य में भी शायद लगाते हैं।
हम असत्य में शायद लगा भी नहीं सकते, क्योंकि असत्य के प्राण ही निकल जाएंगे शायद लगाने से। अगर अदालत में पूछा जाए कि क्या आपने चोरी की है? और आप कहें, शायद। असत्य के लिए तो आग्रहपूर्ण होना पड़ेगा कि नहीं की है। सब गवाहियां जुटानी पड़ेंगी, प्रमाण जुटाने पड़ेंगे। दावा! और जितनी मजबूती से दावा किया जा सके, उतना ही! क्योंकि असत्य में अपने कोई प्राण नहीं होते; कितने आप आग्रह से उसमें प्राण डालते हैं, उतने ही होते हैं। असत्य अपने पैरों पर खड़ा नहीं होता, आपके आग्रह की शक्ति पर ही खड़ा होता है। लेकिन सत्य तो बिना आपके आग्रह के खड़ा हो सकता है। इसलिए लाओत्से या महावीर जैसे लोग शायद भी लगा सकते हैं। शायद! अगर महावीर से पूछें कि आत्मा है? तो महावीर कहेंगे, शायद। अब महावीर से ज्यादा सुनिश्चित कौन जानता होगा कि आत्मा है! इतना सुनिश्चित जानने वाला आदमी इतना अनिश्चय से कहेगा, शायद! और उसका कारण यह है कि महावीर मानते हैं कि आत्मा का होना इतना स्वयं-सिद्ध है, सेल्फ-इवीडेंट है, कि मेरे आग्रह की कोई जरूरत नहीं है। मैं अपने को अलग काट सकता हूं, तो भी आत्मा है।
जब वे कह रहे हैं शायद, तो उनका मतलब यह है कि मुझ पर भरोसा मत करना; मेरे बिना भी आत्मा है। मैं अपने पर शायद लगा रहा हूं; मेरा जानना गलत भी हो सकता है। मैं गलत भी हो सकता हूं।
हम असत्य में भी शायद नहीं लगा सकते; लाओत्से जैसे लोग सत्य में भी शायद लगा कर ही बोलते हैं। कारण? हमारे आग्रह में ही सब कुछ है! हम जो बोल रहे हैं, उसमें कोई प्राण नहीं है।
एक बड़े वकील, डाक्टर हरि सिंह गौड़ ने, जिन्होंने वकालत से इतना पैसा कमाया कि हिंदुस्तान में शायद ही किसी आदमी ने कमाया। सागर विश्वविद्यालय उनकी वकालत से कमाए गए पैसे से खड़ा हुआ। उन्होंने अपने संस्मरण में लिखा है कि जब मैं अपने गुरु को छोड़ने लगा, जिनसे मैंने वकालत की शिक्षा पाई और कला सीखी, तो उन्होंने मुझसे आखिरी जो मुझे सलाह दी, वह यह थी कि यदि सत्य तुम्हारे पक्ष में हो, देन हैमर ऑन दि फैक्ट्स; अगर अदालत में सत्य तुम्हारे पक्ष में हो, तो हथौड़े की चोट पर तथ्यों पर चोट करो। अगर सत्य तुम्हारे पक्ष में न हो, देन हैमर ऑन दि लाज; अगर सत्य तुम्हारे पक्ष में न हो, तो कानून पर हथौड़े की चोट करो।
और डाक्टर हरि सिंह ने लिखा है, मैंने उनसे पूछा कि न सत्य का पता हो, न तथ्य का पता हो, और न कानून साफ-साफ समझ में आ रहा हो, तो? तो उसके गुरु ने कहा, देन हैमर ऑन दि टेबल; तब जोर से टेबल पर घूंसेबाजी करो। लेकिन घूंसेबाजी करो। हैमरिंग असली चीज है। तुमने कितने जोर से हिला दिया अदालत को, उतना ही पता लगेगा कि तुम जो कह रहे हो, वह सत्य है।
ये बिल्कुल नॉन-हैमरिंग लोग हैं--लाओत्से, महावीर! ये हथौड़ी लेकर चोट नहीं करते कि यही सत्य है। ये जो बिल्कुल सत्य है, उसको भी कहते हैं, यह भी हो सकता है। इनसे विपरीत आदमी आकर कह दे, तो उसको भी सुनते हैं और कहते हैं, यह भी हो सकता है।
महावीर ने सत्य को वक्तव्य देने की जो प्रक्रिया की है तैयार, उसमें सात स्यात हैं, एक नहीं। इसलिए महावीर का वक्तव्य बहुत जटिल हो जाता था। छोटा सा वक्तव्य महावीर को देना हो, तो वे सात वचनों में देंगे। अगर आपने

पूछा कि यह घड़ा है? तो महावीर कहेंगे, स्यात है; परहेप्स इट इ.ज। घड़ा, आप कहेंगे, यह सामने रखा हुआ है। लेकिन महावीर कहते हैं कि कोई यह भी कह सकता है कि यह मिट्टी है, घड़ा नहीं है। तो झगड़ा क्या करोगे! तो महावीर कहेंगे कि एक वक्तव्य तो मैं यह देता हूं कि शायद घड़ा है। दूसरा वक्तव्य तत्काल देता हूं, ताकि कोई भूल-चूक न हो जाए, कि शायद घड़ा नहीं है, मिट्टी है।
लेकिन इस बात की भी संभावना है कि कोई दोनों को इनकार कर दे और कोई तीसरी बात कहे। तो महावीर कहते हैं, मैं तीसरा वक्तव्य यह देता हूं कि शायद घड़ा है भी और शायद घड़ा नहीं भी है। क्योंकि घड़ा मिट्टी भी है और घड़ा घड़ा भी है; और मिट्टी मिट्टी भी है और मिट्टी घड़ा नहीं भी है। तो मैं तीसरा वक्तव्य यह देता हूं।
और महावीर कहते थे, लेकिन और भी अगर कोई वक्तव्य देने वाला हो, तो वह
यह भी कह सकता है कि जिस चीज के मामले में साफ नहीं कि यह घड़ा है, कि मिट्टी है, कि दोनों है, कि दोनों नहीं है, जिस चीज के मामले में बहुत साफ नहीं, तो कहना चाहिए, अनिर्वचनीय है। तो महावीर कहते हैं, मैं चौथा वक्तव्य यह देता हूं कि शायद जो है, वह अनिर्वचनीय है, नहीं कहा जा सकता है।
फिर और तीन उनके और जटिल हो जाते हैं। सात! और सात कुल कांबिनेशंस होते हैं। सात से ज्यादा कांबिनेशंस नहीं होते। एक चीज के संबंध में ज्यादा से ज्यादा सात वक्तव्य हो सकते हैं। इसलिए महावीर ने पूरे सात दे दिए। मतलब, आठवां तो होता ही नहीं; सात में सब पूरे हो जाते हैं। एक चीज के संबंध में, हम सोचते हैं, दो ही वक्तव्य होते हैं। वह गलत ख्याल है। आपको पूरे तर्क का ख्याल नहीं है। हम सोचते हैं, ईश्वर है और ईश्वर नहीं है, वक्तव्य पूरे हो गए। नहीं, महावीर कहते हैंः ईश्वर है शायद; शायद ईश्वर नहीं है; शायद ईश्वर है भी और नहीं भी है; और शायद ईश्वर अनिर्वचनीय है; शायद ईश्वर है और अनिर्वचनीय है; शायद ईश्वर नहीं है और अनिर्वचनीय है; और शायद ईश्वर है, नहीं भी है, और अनिर्वचनीय है। ये सात वक्तव्य हुए।
और महावीर कहते हैं कि सात पर लॉजिक पूरा हो जाता है। आठवां वक्तव्य नहीं होता, लॉजिकली आठवां वक्तव्य संभव नहीं है। जितना कहा जा सकता है, वह सात में पूरा हो जाता है।
इसलिए महावीर का जो न्याय है, वह सप्तभंगी न्याय है। सेवन-फोल्ड लॉजिक! सात उसकी पर्त हैं।
यह जो लाओत्से कह रहा है शायद, यह यह कह रहा है कि मैं आग्रह नहीं करता, मैं दावा नहीं करता, मैं कहता नहीं कि मान ही लो, मैं यह भी नहीं कहता कि जो मैंने जाना, वह सत्य होगा ही, मैं इतना ही कहता हूं कि ऐसी मेरी प्रतीति है। और मुझ साधारणजन की प्रतीति का क्या मूल्य है! इसलिए शायद लगाता हूं। क्या मूल्य मेरी प्रतीति का? इस विराट सत्य के समक्ष, इस महाशून्य के समक्ष, इस छोटे से शून्य घड़े का क्या मूल्य है? इसलिए मैं कहता हूं शायद। यह सब गलत भी हो सकता है। यह सब जो मैं कह रहा हूं, मेरी कल्पना भी हो सकती है। यह सब मैं जान रहा हूं, स्वप्न भी हो सकता है। हम तो अपने स्वप्न को भी सत्य कहने का आग्रह रखते हैं, और लाओत्से अपने सत्य को भी स्वप्न कहने का साहस रखता है। बड़ा मजा यह है कि यह साहस आता ही तब है, जब सत्य आता है। जब सत्य आता है, तभी यह साहस आता है। जब तक सत्य नहीं होता, तब तक यह साहस नहीं होता। जरा भी हमें डर होता है कि जो हम कह रहे हैं वह सत्य है या नहीं, तो हम बहुत जोर से कहते हैं। उस जोर के द्वारा हम सत्य की कमी को पूरा करते हैं। वह सब्स्टीट्यूट है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक गांव में ठहरा है, जहां की वह भाषा नहीं समझता।
और लैटिन में उस गांव के पंडितों का समाज जुड़ता है और बातें करता है। मुल्ला भी रोज सुनने जाता है। लोग बड़े चिंतित हुए हैं कि वह समझता क्या खाक होगा! मगर वह नियमित सबसे पहला पहुंचने वाला और सबसे बाद में उठने वाला! आखिर लोगों की बेचैनी बढ़ गई और उन्होंने पूछा कि मुल्ला, तुम लैटिन समझते नहीं हो, एक शब्द तुम्हें आता नहीं, तुम ऐसी तल्लीनता से सुनते हो; क्या तुम समझ पाते होगे!
मुल्ला ने कहा, और तो मैं कुछ नहीं समझता, लेकिन यह मैं समझ जाता हूं
कि कौन आदमी कितने जोर से चिल्ला रहा है, वह जरूर असत्य बोल रहा होगा। कौन

आदमी बोलने में क्रोध में आ रहा है, मैं समझ जाता हूं कि वह असत्य बोल रहा होगा। कौन आदमी शांति से बोल रहा है, कौन आदमी बोलने में आग्रहहीन है।
तो मुल्ला ने कहा कि अगर मैं भाषा समझता होता, तो मुझे यह समझना इतना आसान न पड़ता। मैं भाषा में उलझ जाता। मैं भाषा समझता ही नहीं हूं, तो मैं चेहरा, आंखें, और सब चीजें देखता हूं, भाषा को छोड़ कर। और मुझे बड़ा आनंद आ रहा है। मुझे बड़ा आनंद आ रहा है। यह मैं बिल्कुल नहीं समझ पाता, क्या कहा जा रहा है, लेकिन यह मैं समझता हूं कि कहने वाला कहां से कह रहा है--जान कर कह रहा है, बिना जाने कह रहा है।
हम जो भी कहते हैं, हमारा गेस्चर, हमारे कहने की एंफेसिस, जोर, हमारा आग्रह, सब बताता है। और ध्यान रहे, जितना हम असत्य कहते हैं, उतने आग्रह से कहते हैं; जितना सत्य कहते हैं, उतना आग्रहशून्य हो जाता है। सत्य अपने आप में पर्याप्त है। मेरे आग्रह की कोई भी जरूरत नहीं है; मेरे बिना भी वह खड़ा हो सकता है।
एक यहूदी विचारक है, सादेह। सादेह से बहुत दफे कहा गया कि तुम अपना जीवन प्रकाशित करो, अपने जीवन के बाबत कुछ कहो, ताकि हमें आसानी हो समझने में कि तुम जो कहते हो, वह क्या है! तो सादेह ने कभी अपना जीवन नहीं लिखवाया, न यह बताया कि उसके जीवन में कोई घटना भी घटी है। सादेह कहता था कि जो मैं कह रहा हूं, अगर वह सत्य है, तो मेरे बिना सत्य रहेगा। मेरे जीवन को जानने की क्या जरूरत है?
जब उस पर बहुत जोर डाला गया, तो उसने एक वक्तव्य में कहा कि अगर जीसस
का हम जीवन देखें और फिर बाइबिल पढ़ें, तो बाइबिल कोई पढ़ेगा ही नहीं। पहले अगर जीवन देखें! तो जीसस का जीवन क्या है? एक घुड़साल में वह पैदा हुए। गांव भर में कहीं जगह न मिली जीसस की मां को, पिता को, तो एक जहां घोड़े बंधते थे, उस घुड़साल में वह पैदा हुए।
कथाएं कहती हैं कि वह कुंआरी मरियम से पैदा हुए। यह संदिग्ध बात है, क्योंकि कुंआरी स्त्री से कोई पैदा हो सकता है? तो सादेह कहता है कि साफ बात तो यह है कि जीसस के पिता के बाबत संदेह है कि कौन पिता था। किस स्कूल में पढ़े, इसका कुछ पता नहीं है। पढ़े, इसका भी पता नहीं है। शराबियों, वेश्याओं के घरों में ठहरते रहे, इसका पता है। निम्न वर्ग के लोगों से दोस्ती बांधी, इसका पता है। उनके घरों में रुकते थे, मेहमान बनते थे, जिनके घरों में कोई सज्जन आदमी कदम न रख सके।
तैंतीस साल की उम्र में सूली पर चढ़ाए गए। जिस दिन सूली पर चढ़ाए गए, उस दिन दो चोरों के बीच में सूली लगाई गई। तीन लोगों को सूली दी गई, दो तरफ चोर थे, बीच में जीसस थे। जिन लोगों ने सूली लगाई, उन लोगों ने यह समझ कर कि या तो यह आदमी पागल है, या शरारती है, सूली लगाई।
जिसके बाप का पता नहीं, जिसकी शिक्षा का कोई हिसाब नहीं, जिसके खून का कुछ पक्का नहीं कि वह किस कुलीन घर से आता है कि नहीं आता, घुड़साल में जो पैदा हुआ हो, वेश्याओं के घर में टिका हो, शराबखोरों के बीच में रहा हो, जुआरियों के घर में रात सोता हो, और तैंतीस साल की उम्र में जिस आदमी को दो चोरों के बीच में फांसी की सजा लगा दी जाए, क्या इसका यह जीवन जान कर कोई बाइबिल पढ़ने को राजी होगा? और यह जीवन जान कर क्या बाइबिल पढ़ने जैसी लगेगी?
नहीं लगेगी। वह तो हम पहले उलटा करते हैं। पहले बाइबिल पढ़ लेते हैं;
तो फिर इस जीवन में दिक्कत नहीं मालूम पड़ती। अगर इसको ही पढ़ कर--यह इंट्रोडक्शन में लिखा हो और फिर किसी से कहा जाए अब पढ़ो, आगे इस महापुरुष के वचन संगृहीत हैं, फिर कोई नहीं पढ़ेगा।
तो सादेह ने कहा कि मेरे जीवन को छोड़ो। इससे क्या फर्क पड़ता है कि सादेह सिगरेट पीता है कि नहीं पीता, कि सादेह शराब पीता है कि नहीं पीता। और जो सादेह कहता है, अगर वह सच है, तो सादेह की सिगरेट पीना उसके सच को झूठ न कर पाएगी। और सादेह जो कहता है, वह अगर झूठ है, तो वह अगर सिर्फ शुद्ध पानी ही पीता हो और कुछ न पीता हो, तो भी वह सच न हो पाएगा। तो उसने कहा, मुझे छोड़ो। मेरे बीच में आने की कोई जरूरत नहीं है। जो कहा है, उसे सीधा देख लो।

यह शायद स्वयं को हटाने की प्रक्रिया है। यह शायद लगा कर यह आदमी यह
कह रहा है कि मुझे अब छोड़ा जा सकता है। मैं कोई आग्रह नहीं करता, इसलिए विवाद में मैं नहीं हूं। यह सीधा सत्य रख देता हूं सामने, मैं हट जाता हूं। जब मैं कहता हूं, यही सत्य है, तो मैं विवाद में खड़ा रहूंगा। क्योंकि अगर किसी ने कहा नहीं है, तो यह जिम्मा मुझ पर होगा कि मैं सिद्ध करूं कि है। मैं कहता हूं, शायद यह सत्य है। मैं विवाद से बाहर हो गया। अब यह सत्य अकेला रहेगा। यह अगर राजी कर ले, तो काफी है। और अगर न राजी कर पाए, अगर सत्य ही राजी न कर पाए, तो फिर और कौन राजी कर पाएगा?
इसलिए लाओत्से जैसे लोग शायद से उस सत्य को कहते हैं जो उनके लिए पूरी तरह है, जिसके लिए वे पूरी तरह आश्वस्त हैं। यह बड़ी उलटी बात है। झूठ बोलने वाले शायद से कभी शुरू नहीं करते; सत्य बोलने वाले अक्सर शायद से शुरू करते हैं। झूठ बोलने वाले बहुत आग्रहपूर्ण होते हैं; सत्य बोलने वाले का कोई आग्रह नहीं होता।
जीसस सूली पर लटकाए जा रहे हैं। तब पाइलट ने, जिसने उन्हें सूली की सजा दी, उसने उनसे पूछा है कि मरने के पहले युवक, एक बात मुझे बता दोः व्हाट इ.ज ट्रुथ? यह सत्य क्या है, जिसके लिए तुम परेशान हुए और जिसके लिए लोग तुम्हें सूली दे रहे हैं? जीसस ने कोई जवाब नहीं दिया; चुप रह गए। पाइलट ने दुबारा पूछा। जीसस ने आंखें उठा कर देखा, लेकिन कोई जवाब नहीं दिया। दो हजार साल हो गए। दो हजार साल में नहीं तो दो हजार लोगों ने सवाल उठाया होगा कि जीसस को अगर पता था, तो पाइलट को कहना चाहिए था। या कि जीसस को पता नहीं था? पाइलट ने क्या सोचा होगा, इस युवक को पता है?
नहीं सोचा होगा। क्योंकि एक कथा है--प्रमाणित तो नहीं, लेकिन प्रचलित है--एक कथा है कि तीस साल बाद जब पाइलट रिटायर हो गया, क्योंकि पाइलट गवर्नर था, रोमन गवर्नर था। उन दिनों जीसस जिस इलाके में पैदा हुए, वह रोमन साम्राज्य में था। पाइलट तो वाइसराय था। तीस साल बाद जब वह सब काम से मुक्त हो गया, रिटायर हो गया, तीस साल बाद बूढ़े पाइलट से किसी ने पूछा कि तुम्हें ख्याल है कि तीस साल पहले तुमने एक आदमी को सूली की सजा दी थी, जीसस नाम के युवक को? पाइलट ने सिर पे हाथ लगाया और उसने कहा कि कुछ याद नहीं पड़ता, क्योंकि हजारों लोगों को सजाएं दी हैं। कौन था यह जीसस? यह कौन आदमी था?
जिस जीसस के नाम के पीछे किसी दिन आधी दुनिया पागल हो गई, उसको सूली देने वाला तीस साल बाद भूल गया था। उसको पता भी नहीं था कि यह कौन आदमी था। तो यह समझना आसान है कि पाइलट ने समझा होगा, इसको क्या पता, कुछ पता नहीं है। छोकरा है, दिमाग खराब हो गया, फिजूल की बातें कहता रहा, मुश्किल में पड़ गया। दया-भाव से देखा होगा।
लेकिन जीसस का कोई जवाब न देना बड़ा विचारणीय है।
ऐसा भी नहीं है कि जीसस जवाब देने में कमजोर थे। क्योंकि इसके पहले उन्होंने बहुत जवाब दिए हैं और बड़े कीमती जवाब दिए हैं। वह उतने कीमती जवाब तो दे ही सकते थे। पर बिल्कुल चुप रह गए! थोड़ा सा तो... यह तो मौका भी था। यह तो बहुत बड़ा मौका था कि अगर जीसस का जवाब पाइलट को जंच जाए, तो शायद अभी सूली भी बच जाए। इस मौके पर तो जवाब देना ही था। सब कुछ बदल सकता था। अगर पाइलट को समझ में आ जाए कि जीसस ठीक कहते हैं, तो मुक्त हो सकते थे। शायद इसीलिए जीसस ने जवाब नहीं दिया। क्योंकि सत्य की ओट में अपने को बचाने की कोई संभावना उचित नहीं है। कहीं इस कारण ही बात न बदल जाए! नहीं तो सदा लोग यही कहेंगे कि जीसस ने जवाब दिया, पाइलट को समझा लिया, सूली से बच गए। क्योंकि यह जीसस से सड़क पर लोग रोक कर पूछ लेते थे, यह जवाब देता था। आधी रात में लोग जवाब लेने आ जाते थे और जवाब देता था। इसने कभी जवाब देने से मना नहीं किया। यह पहला ही मौका है कि सूली पर इससे पूछा गया, सत्य क्या है? और यही तो इसकी जिंदगी भर की देशना थी कि सत्य क्या है! यह तो उसे बोल ही देना था। कुछ तो बोल ही देना था। यह चुप रह जाना बहुत हैरानी का है। लेकिन जो लोग जीसस को समझ सकते हैं, जो जीसस को भीतर से समझ सकते हैं,
वे कहेंगे, इस मौके पर जीसस का चुप रह जाना केवल इसी कारण से है कि इस वक्त कुछ भी सत्य के लिए बोलना व्यक्ति को बचाने की बात होती। उसमें आग्रह हो

जाता; वह सत्य अनाग्रह नहीं हो सकता था। उसमें ऐसा हो जाता कि शायद मैं अपने को बचा लूं इसकी ओट में। इसलिए वह चुप रह गए हैं।
लाओत्से कहता है, शायद यह उसका प्रतिबिंब मात्र है।
प्रतिबिंब कहने में बड़ी दूर-दृष्टि है। प्रतिबिंब कहने की दूर-दृष्टि यह है कि अगर कुछ भी भूल-चूक हो तो वह लाओत्से की हो जाएगी, सत्य की नहीं होगी। और जब हम कहते हैं, यही सत्य है, तो फिर कुछ भी भूल-चूक हो तो वह सत्य की हो जाएगी। सदा से जानने वालों का यह ढंग रहा कहने का कि जो भी भूल-चूक हो, वह हमारी। अगर सत्य को समझने में आप कहीं विकृत कोई व्याख्या कर लें, तो सत्य को समझाने वाला कहेगा, वह भूल-चूक मेरी है। मेरे कहने में ही कहीं कोई भूल हो गई होगी। मेरे समझाने में ही कहीं कोई भूल हो गई होगी। सत्य में तो भूल नहीं होती, भूल मेरी हो सकती है। लाओत्से यह कह कर कि यह प्रतिबिंब है, प्रतिफलन है, सत्य को मैंने ऐसे देखा जैसे दर्पण में किसी की तस्वीर को हम देखें, उसमें भूल-चूक हो सकती है।
दर्पण तस्वीर को लंबा करके बता सकता है, छोटा करके बता सकता है। आपने दर्पण देखे होंगे, जिनमें आप बहुत बड़े हो गए। दर्पण देखे होंगे, जिसमें बहुत छोटे हो गए। और एक बात तो पक्की है कि आपकी बाईं आंख दाईं तरफ दिखती है और दाईं आंख बाईं तरफ दिखती है दर्पण में। चीजें वैसी ही नहीं दिखतीं जैसी हैं, उससे उलटी हो जाती हैं। वह तो आपको ख्याल में नहीं आता, क्योंकि आपको खुद ही पक्का पता नहीं, कौन सी आपकी बाईं आंख है और कौन सी आपकी दाईं आंख है। इसलिए दर्पण में आपको कभी खड़े होकर ख्याल नहीं आता कि उलटे दिखाई पड़ रहे होंगे। तो किताब का पन्ना दर्पण के सामने करिएगा, तब आपको पता चलेगा कि अरे ये सब अक्षर उलटे हो गए! आप भी हो गए हैं। पर आपको अपने सीधे होने का पता ही नहीं है, तो उलटे होने का कैसे पता चल सकता है? एक किताब को दर्पण के सामने करिएगा, तब आपको पता चलेगा कि क्या गड़बड़ हुई जा रही है। ये तो सब अक्षर उलटे हो गए। आप भी इतने ही उलटे हो जाते हैं।
अभी एक लोगों के चेहरों पर काम करने वाले वैज्ञानिक ने खोज-बीन की है,
और सही है बहुत दूर तक, कि आपके चेहरे के दोनों हिस्से एक जैसे नहीं होते हैं। अगर आपकी नाक की बिल्कुल सीध में रेखा खींच कर दो हिस्से कर दिए जाएं... । उस वैज्ञानिक ने जो प्रयोग किए हैं, वे ये हैं कि आपकी एक तस्वीर लेगा, उसको ठीक बीच से काट कर दो टुकड़े कर देगा। आपकी एक दूसरी तस्वीर लेगा, ठीक वैसी पहली जैसी। उसको भी काट कर दो टुकड़े कर देगा। फिर इसका बायां टुकड़ा उसके बाएं टुकड़े से जोड़ देगा, इसका दायां टुकड़ा उसके दाएं टुकड़े से जोड़ देगा।
और आप हैरान होंगे कि दो अलग आदमियों की तस्वीरें बन जाएंगी, एक आदमी
की नहीं। क्योंकि आपका आधा हिस्सा बिल्कुल अलग होता है, दूसरा आधा हिस्सा बिल्कुल अलग होता है। अगर आपके इस आधे हिस्से को इस आधे हिस्से से अलग कर दिया जाए और इसी जैसा आधा हिस्सा इसमें जोड़ दिया जाए, तो बिल्कुल दूसरी, दूसरे आदमी की शक्ल बनती है। और अगर ये दोनों की शक्लें आपके पास रख दी जाएं, तो आप कभी न कहेंगे कि यह एक ही आदमी का चेहरा है। आप कहेंगे, ये दो आदमी हैं।
इतना रूपांतरण हो जाता है आईने में! लेकिन आपको पता नहीं चलता।
लेकिन प्रतिबिंब कहने का अर्थ यह है कि सत्य जिस माध्यम में प्रतिफलित होगा, वह माध्यम बहुत कुछ कर जाएगा; उसकी जिम्मेवारी सत्य की नहीं है। लेकिन हम माध्यम में ही सत्य को जान सकते हैं।
एक माध्यम है अहंकार। अहंकार अंधेरे जैसा माध्यम है। जैसे अंधेरे में कोई सत्य को जाने, कुछ जान नहीं पाता, टटोल भी नहीं पाता; ग्रोपिंग इन दि डार्क--अंधेरे में। फिर भी हम अंधेरे में भी सत्य के बाबत बातें तय कर लेते हैं। कुछ पता नहीं होता, फिर भी हम तय कर लेते हैं। लोग बातें कर रहे हैंः आत्मा है, ईश्वर है, नर्क है, मोक्ष है, स्वर्ग है। वे सब अंधेरे में बातें कर रहे हैं। उन्हें कुछ पता नहीं है।
नसरुद्दीन एक मस्जिद में बैठा हुआ है। और पुरोहित ने कहा है--बहुत समझाने के बाद स्वर्ग के बाबत कि लोग एकदम आतुर हो गए हैं स्वर्ग जाने के लिए--पुरोहित ने जोर से चिल्ला कर कहा कि जिनको स्वर्ग जाना हो, वे खड़े हो जाएं! सारे लोग खड़े हो गए, एक मुल्ला नसरुद्दीन को छोड़ कर।

पुरोहित थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा कि मुल्ला, क्या तुम्हारे इरादे स्वर्ग जाने के नहीं हैं?
मुल्ला ने कहा कि जो बात बहुत साफ न हो, उसके लिए खड़े होने की झंझट भी
हम नहीं करते। अभी हमें बैठना साफ है। और फिर मुल्ला ने कहा कि जिस स्वर्ग में खड़े होकर जाना पड़े, हम न जाएंगे। क्या बैठे-बैठे नहीं जाया जा सकता? एक तो साफ नहीं पक्का कि कहां जा रहे हैं, कोई है जगह जाने की कि नहीं है जगह। अकारण खड़े हो गए हैं ये लोग। और मुल्ला ने कहा कि देखता हूं कि अगर ये खड़े होने वाले पहुंच गए, तो मैं बैठा-बैठा पहुंच जाऊंगा। तो कौन जाता है, देखते हैं।
स्वर्ग कितना महत्वपूर्ण मालूम पड़ने लगता है मन को! मोक्ष की बड़ी आकांक्षा होने लगती है। सत्य को पाने की बड़ी वासनाएं जगने लगती हैं। बिना कुछ साफ हुए कि किस चीज को... सब अंधेरे में हैं। अंधेरे में आंख बंद करके सपना देखने लगते हैं। अहंकार अंधेरे जैसा है। उसमें जो सत्य हम बनाते हैं, वे बिल्कुल मनोकल्पित हैं। अपने ही भीतर निर्मित हैं, उनका सत्य से कुछ लेना-देना नहीं है।
अस्मिता प्रकाश जैसी है। लेकिन अस्मिता के प्रकाश में भी जो सत्य दिखाई पड़ते हैं, वे भी प्रतिफलन से ज्यादा नहीं हैं। वे भी रिफ्लेक्शंस हैं। जहां न अहंकार रह जाता और न अस्मिता, जहां मैं बचता ही नहीं हूं, वहीं वह जाना जाता है, जो प्रतिबिंब नहीं है, स्वयं है। लेकिन तब कहने वाला नहीं होता।
लाओत्से आखिरी सीमा से कह रहा है, सीमांत से। आखिरी सीमा से, जहां अस्मिता भी खो जाएगी। जहां अहंकार खो गया, अब जहां मैं का आखिरी, शुद्धतम रूप बचा है, वह भी बुझ जाएगा, वहां से वह कह रहा हैः नहीं जानता मैं, कहां से जन्मा यह सब, कौन है इसका जन्मदाता, किसका है यह पुत्र, शायद यह प्रतिबिंब है उसका जो कि परमात्मा के भी पहले था। ये आखिरी वक्तव्य हैं, जो सीमाओं पर दिए जाते हैं--सीमांत वक्तव्य। इसके पार आदमी खो जाता है।
फिजिकली भी लाओत्से के बाबत सच है कि इस किताब को लिखने के बाद लाओत्से खो गया--फिजिकली भी! मैं तो मेटाफिजिकली कह रहा हूं कि इस सीमांत के बाद आदमी खो जाता है, लेकिन लाओत्से के तो फिर शरीर का भी पता नहीं चला इस किताब लिखने के बाद। लाओत्से कहां गया? लाओत्से बचा कि मरा? किसी खाई-खड्ड में गिरा? लाओत्से की कब्र कहां? लाओत्से को किसने दफनाया? वह किस क्षण, किस घड़ी, किस वर्ष में समाप्त हुआ, इस पृथ्वी को छोड़ा, फिर कुछ भी पता नहीं है। यह किताब आखिरी है और यह किताब पहली है।
मुल्ला नसरुद्दीन को किसी मित्र ने कहा है, जो कि नया-नया पायलट हो गया है, हवाई जहाज उड़ाना सीख गया है, उसने मुल्ला को कहा कि तुम बैठो, तुम्हें मैं जरा घुमा दूं। मुल्ला को उसने घुमाया और जब वापस उतारा, तो मुल्ला ने कहा, थैंक यू फॉर योर टू ट्रिप्स! तुम्हारी दो ट्रिप्स के लिए धन्यवाद! उसने कहा कि दो? एक ही थी। मुल्ला ने कहा, माई फर्स्ट एंड लास्ट। उसने कहा, दो--मेरी पहली और आखिरी। नमस्कार!
यह लाओत्से की पहली और आखिरी किताब है। यह पहला और आखिरी वक्तव्य है। इसके पहले उसने कुछ लिखा नहीं। इसके बाद उसका पता नहीं कि वह आदमी कहां गया। यह सीमांत वक्तव्य है। यह उसने उस जगह से, जहां जीवन फिर बादलों में खो जाता है, अस्मिता भी जहां शून्य में लीन हो जाती है, आखिरी क्षण, जहां से उस खाई में छलांग लग जाती है, फिर जहां से कोई लौटना नहीं है, जहां से फिर कोई आवाज भी चिल्लाए, चीखे-पुकारे, तो हम तक नहीं पहुंचती है, यह आखिरी बार्डरलैंड से कही गई बात है। शारीरिक रूप से भी, आध्यात्मिक रूप से भी। और शायद शारीरिक रूप से लाओत्से का तिरोहित हो जाना इसी बात की खबर देने के लिए है कि इस सीमा के बाद फिर रुकने का कोई मतलब नहीं है। शारीरिक रूप से भी तिरोहित हो जाना इसी बात की सूचना के लिए है कि इसके बाद बचने का कोई अर्थ ही नहीं होता। इस किताब को सौंप कर लाओत्से जो विदा हुआ, फिर किसी को दिखाई नहीं पड़ा।
मैंने आपको कहा था, यह चीन की सीमा पर एक चुंगी चौकी पर बैठ कर लिखी गई किताब है--आखिरी सीमा पर। चुंगी चौकी के अफसर को तीन दिन में यह किताब लिख कर, सौंप कर लाओत्से जो बाहर गया... । वह चुंगी चौकी का आफिसर जब तक किताब

देख रहा था कि क्या लिखा है--बड़ी किताब नहीं है यह, बहुत छोटी सी किताब है, तीन दिन में ही लिखी है--जब तक वह इस किताब के पन्ने उलटा रहा था और बाहर लौट कर आकर उसने पूछा कि कहां गया वह आदमी? किसी ने, कोई बता नहीं सका कि किसी ने उसको देखा भी कमरे से निकलते हुए। जो दो-चार लोग थे, उन्होंने कहा, हमें पता नहीं कौन कमरे से बाहर निकला और कौन कहां गया। चरण-चिह्न खोजे गए, वे कहीं मिले नहीं। आदमी दौड़ाए गए कि वह कहां गया लाओत्से? यह बहुत अदभुत किताब रख गया है लिख कर! इस आदमी को पकड़ो!
पर इस आदमी का फिर कोई पता नहीं लग सका। चीन के सम्राट ने बड़ी खोज-बीन करवाई कि लाओत्से का कुछ पता लगे। क्योंकि वह जो दे गया है, हमें पता ही नहीं था। यह आदमी अस्सी साल तक वहां था, हमें पता ही नहीं था। क्योंकि हम आदमी को नहीं पहचानते, हम शब्दों को पहचानते हैं। फिर इसकी बहुत खोज-बीन की गई, लेकिन इस आदमी का कोई पता न लगा।
शायद वह इसी सूचना के लिए है। क्योंकि ऐसे जो व्यक्ति हैं, वे कहते हैं जो, सिर्फ कहते ही नहीं, वैसा अपने जीवन, अपने व्यक्तित्व से भी इशारा कर देते हैं। इसका तिरोहित हो जाना इस बात की खबर है कि अस्मिता भी जहां से शून्य हो जाती है, वहां दिए गए वक्तव्य हैं। और वहां भी वह कह रहा है, प्रतिबिंब से ज्यादा नहीं।
काश, हम पहचान पाएं कि क्या स्वप्न हैं, तो आसान हो जाता है पहचानना कि सत्य क्या है! काश, हम पहचान पाएं कि क्या प्रतिबिंब है, तो आसान हो जाता है पहचानना कि मूल क्या है! लेकिन हम अगर प्रतिबिंब को ही सत्य समझें और स्वप्न को ही यथार्थ समझें, तो फिर पहचानना बहुत मुश्किल हो जाता है। लेकिन हम तो ऐसे गहरे स्वप्न में खोए होते हैं, ऐसे गहरे प्रतिबिंबों में खोए होते हैं कि हमें तथ्यों का ही पता नहीं होता, सत्यों की तो बात बहुत दूर है।
आज दोपहर एक मित्र आए थे। वह एक रूसी पद्धति है फिल्म डायरेक्शन की, उसके विशेषज्ञ हैं। ध्यान के संबंध में वह मुझ से बात करते थे। तो वह कहने लगे कि आप ध्यान के लिए जो कहते हैं, करीब-करीब हमारी जो पद्धति है फिल्म डायरेक्शन की, उसमें बड़ा तालमेल है। वह कहने लगे कि यह जो पद्धति है, रूसी पद्धति है, अभिनेताओं को तैयार करने की, वह ऐसी है कि अभिनेता की सेंसिटिविटी जो है, संवेदनशीलता जो है, वह इतनी प्रखर हो जानी चाहिए कि अगर अभिनेता कागज का फूल हाथ में रख कर कह रहा है कि यह गुलाब का फूल है, तो उसे सुगंध गुलाब की आनी चाहिए। अगर उसे सुगंध साथ में न आ जाए, अगर वह इतना तल्लीन न हो जाए कि इस कागज के फूल से उसे गुलाब की सुगंध न आने लगे, तो उसके चेहरे पर वे भाव नहीं आ सकते जो कि गुलाब के पास आने चाहिए थे। और अगर उसके चेहरे पर वे भाव लाने हैं जो कि गुलाब के पास आते हैं, तो उसमें इतनी संवेदना होनी चाहिए कि वह इस कागज के फूल को गुलाब का फूल जान ले, स्वीकार कर ले। यह गुलाब का फूल हो जाए, तो उसके नासापुट कंपने लगें, उसकी आंखें गुलाब की सुर्खी लेने लगें, उसके गालों पर गुलाब का रंग दौड़ जाए! वह गुलाब जीवित हो जाए, तो ही वह एक्ट कर पाएगा, अभिनय कर पाएगा।
तो मैंने उनसे कहा कि ध्यान इसके बिल्कुल विपरीत है। यह जो रूसी पद्धति है, यह ध्यान की पद्धति नहीं है। अगर ठीक समझें, तो इसकी जो प्रक्रिया और प्रशिक्षण है, वह ट्रेनिंग फॉर इमेजिनेशन है, कल्पना की प्रशिक्षा है। अगर एक व्यक्ति अपनी कल्पना को इतना प्रगाढ़ कर ले कि कागज का फूल उसे गुलाब का असली फूल मालूम होने लगे, तो भी गुलाब का फूल नहीं हो जाता वहां, कागज का ही फूल रहता है। पर इसे कैसे मालूम होता है?
यह इतना प्रोजेक्ट करता है, यह अपने मन के गुलाब के फूल को इस कागज के फूल पर ऐसा आरोपित करता है कि कागज का फूल तो विदा हो जाता है और कल्पना का स्वप्न-फूल प्रकट हो जाता है। उससे ही इसे सुगंध आ सकती है, कागज के फूल से तो आ नहीं सकती। इसकी कल्पना इतनी स्थापित हो जाए इस फूल में कि यह गुलाब का फूल बन जाए! मगर यह इमेजिनेशन है, मेडिटेशन नहीं है। यह कल्पना है, ध्यान नहीं है।
ध्यान का तो अर्थ यह है कि प्रक्षेपण बिल्कुल न हो। अगर यह कागज का फूल है, तो जिस कागज का फूल है, उसकी ही गंध आनी चाहिए। जिस कागज का फूल, क्योंकि कागजों में गंध होती है। अगर आप रूसी कागज की किताब देखें, तो

आपको गंध अलग मिलेगी। क्योंकि रूस का वृक्ष और चीड़, जिनसे वह कागज बनता है, अलग हैं। अगर आप जापानी किताब देखें, उसमें गंध अलग होती है। मैं तो किताबों को देखते-देखते ऐसा हैरान हुआ कि अगर आंख बंद करके मेरी नाक के पास किताब लाई जाए, तो मैं कह सकता हूं किस देश की है। उनकी गंध अलग है। क्योंकि हर मुल्क की लकड़ी की गंध अलग है, जिससे वे बनते हैं कागज, वे सब के भिन्न हैं।
तो कागज का फूल किस कागज का बना है, इसकी गंध अगर आ जाए, तो मैं कहूंगा
वह आदमी ध्यान में है। तथ्य को वैसा ही जान लेना जैसा वह है, उसमें कुछ अपनी तरफ से न जोड़ना।
लेकिन हम सब जोड़ते हैं। यह कोई अभिनेता ही जोड़ता है, ऐसा नहीं। हम सब जोड़ते हैं। हम सब वह देखते हैं, जो नहीं है। हम सब कागज के फूलों में गुलाब के फूल देखने में कुशल हैं--हम सब!
जब कोई व्यक्ति किसी के प्रेम में पड़ जाता है, तो जो देखता है, वह है नहीं कहीं। जब कोई व्यक्ति किसी की घृणा में पड़ जाता है, तो जो वह देखता है, वह है नहीं कहीं। और तटस्थ तो हममें से कोई कभी होता नहीं। कुछ न कुछ में हम पड़े होते हैं, या तो प्रेम में, या घृणा में। या तो इधर, या उधर। हम कोई पक्ष लिए होते हैं। इसीलिए तो यह दुर्घटना घटती है कि जितने बड़े प्रेम से विवाह हो, उतनी ही जल्दी असफल हो जाता है। उसका कारण है। क्योंकि इतना बड़ा गुलाब का फूल देखा जाता है, फिर वह पाया नहीं जाता। भारतीय विवाह कभी असफल नहीं हो सकता, क्योंकि हम कोई कल्पना ही नहीं करते! हम कोई प्रेम ही नहीं करते! हम तो कागज के फूल से ही शुरू करते हैं। अब इससे ज्यादा और क्या होगा? इससे बदतर क्या होने वाला है? इससे बदतर कुछ हो नहीं सकता।
प्रेम का अर्थ है रूमानी आंख। वह कुछ ऐसी चीजें देख लेती है, जो कहीं
भी नहीं हैं। फिर धीरे-धीरे जो नहीं है, उसके साथ जैसे-जैसे रहिएगा, वह विदा होता जाएगा; और जो है, वह प्रकट होने लगेगा। और जब वह प्रकट होगा, तब आपको लगेगा कि कोई चीटिंग हो गई, कोई धोखा हो गया। बाकी धोखा कुछ नहीं हुआ है। आपने कुछ प्रोजेक्ट किया था, आपने कुछ डाला था, जो था नहीं वस्तुओं में।
हम एक अर्थ में, यह जो डालने की कला है, उससे ही जी रहे हैं। हर चीज में
हम वह देखते हैं, जो वहां नहीं है। और तब हम एक ऐसी दुनिया अपने आस-पास निर्मित कर लेते हैं, जो बिल्कुल सपनों की है। इसलिए रोज रोना पड़ता है, क्योंकि सपने जरा ही टकरा जाते हैं कहीं और कांच की तरह चकनाचूर हो जाते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन घर आ रहा है बहुत से कांच के सामान लेकर। कुछ ख्याल में थे, सब गिर पड़ा, चकनाचूर हो गया। रास्ते पर टुकड़े बिखर गए। मुल्ला खड़े होकर देख रहा है उनको। भीड़ लग गई। लोग भी सकते में हैं कि वह कुछ बोल भी नहीं रहा। कुछ कहता भी नहीं। सब चीजें टूट-फूट कर पड़ी हैं।
फिर मुल्ला ने ऊपर नजर उठाई और उसने कहा, व्हाट इ.ज दि मैटर? क्यों यहां खड़े हो? यू ईडियट्स, यहां किसलिए खड़े हो? हैव नॉट यू सीन एनी फूल बिफोर? मुल्ला ने कहा, क्या तुमने किसी मूरख को पहले नहीं देखा? हम एक मूरख हैं कि हम ये सब चीजें तोड़ कर खड़े हैं; आप किसलिए खड़े हैं? क्या तुमने कोई मूरख पहले नहीं देखा?
घर मुल्ला लौटा है खाली हाथ। पत्नी ने कहा कि वह सब सामान? मुल्ला ने कहा, कांच का था, जितनी दूर चला, उतना ही काफी है। घर तक आने का क्या भरोसा की बात कर रही है? जितनी दूर चला, उतना काफी है। सामान ही कांच का था।
हम सब जिंदगी के आखिरी पड़ाव में ऐसा ही पाते हैं। रोज चीजें टूटती चली जाती हैं, रोज चीजें टूटती चली जाती हैं। आज एक टूटती है, कल दूसरी टूटती है, परसों तीसरी टूटती है। फिर भी हमें ख्याल नहीं आता कि जो सामान हम लेकर चल रहे हैं, वह कांच का है। सपने, प्रोजेक्शंस, ख्याल--वे टूटते हैं रोज। घर बनाते हैं ताश के पत्तों के, बिखर जाते हैं। जरा सा हवा का झोंका। और कैसे अजीब हैं हम लोग कि हवा के झोंके पर नाराज होते हैं! और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि औरों के महलों पर चलाओ ये हवाएं, कम से कम हमारे महल को तो बचाओ! कितनी प्रार्थनाएं कर रहे हैं! लेकिन कोई प्रार्थना कागज के बनाए गए मकानों को नहीं बचा सकती है और कोई परमात्मा नहीं बचा सकता।

नावें बना लेते हैं कागज की और यात्रा पर निकल जाते हैं अनंत सागर की खोज में। हैरानी यह नहीं है कि आप कभी पहुंचते नहीं, हैरानी यह है कि दो- चार कदम भी आपकी नाव चल जाती है। मिरेकल है! वही तो मुल्ला ने कहा कि इतनी दूर चला, इट इ.ज इनफ! वही मैं चकित हुआ, मुल्ला ने कहा, कि इतनी दूर तक कैसे आ गया! कांच का सामान है।
लाओत्से कह रहा है कि सत्य की प्रतीति उसे जो हो रही है, वह भी एक स्वप्न है। दैट टू इ.ज ए ड्रीम। वह भी स्वप्न में देखा गया। वह भी वह नहीं कह रहा कि सत्य है। वह कह रहा है कि जब तक मैं बचा हूं, थोड़ा सा भी मैं बचा हूं, तो मैं स्वप्न देख ही लूंगा। मेरा होना स्वप्न के देखने की क्षमता है। मैं बचा हूं, तो मैं प्रतिबिंब बना लूंगा। मैं उसे न देख पाऊंगा, जो है। क्योंकि जो है, उसे देख कर हालत वही होती है, जो पतंगे की होती है। दौड़ता है और लौ में जल जाता है और नष्ट हो जाता है। लौ ही हो जाता है।
बड़े से बड़ा सत्य भी प्रतिबिंब है। इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसा कोई सत्य नहीं है, जो प्रतिबिंब के बाहर हो। ऐसा सत्य है। उसी की खोज में ये सारे वक्तव्य हैं! लेकिन प्रतिबिंब मिटेंगे आपके मिटने के साथ।
ऐसा समझें, एक फिल्म चल रही है पर्दे पर। आप सब आकर्षित होकर पर्दे पर देखते रहते हैं। भूल ही जाते हैं कि पर्दे पर कुछ भी नहीं है; प्रोजेक्टर, वह जो पीछे है। प्रोजेक्टर तो पीछे है। उसे तो कोई देखता भी नहीं लौट कर। लौट कर कभी आप धन्यवाद भी नहीं देते कि धन्यवाद प्रोजेक्टर! बहुत बढ़िया फिल्म थी! प्रोजेक्टर की कोई बात ही नहीं करता। लेकिन आपको पता होना चाहिए कि पर्दा बिल्कुल खाली है; सब खेल प्रोजेक्टर का है। और प्रोजेक्टर पीछे है, उसकी तरफ पीठ किए बैठे रहते हैं। और जिस तरफ आंख किए बैठे हैं, वहां कुछ भी नहीं है।
लाओत्से जैसे लोगों का जानना है कि वह जो हमारा अहंकार है, अस्मिता है, वह जो हमारा मैं है--कितना ही शुद्ध हो--वह प्रोजेक्टर है। वह ड्रीम्स पैदा करता है, वह स्वप्न पैदा करता है। वह चीजों को वैसा दिखा देता है, जैसा हम देखना चाहते हैं।
लेकिन यह तो बहुत दूर की बात है। मैं देखता हूं, कोई ध्यान करे। कोई दो दिन ध्यान करता है, वह आकर कहता है कि क्या ख्याल हैं आपके, मुझको लाल रंग दिखाई पड़ रहा है! यह ठीक है न? गति तो ठीक हो रही है? इनको लाल रंग दिखाई पड़ रहा है; गति ठीक हो रही है? कि मुझे एक सफेद बिंदु दिखाई पड़ रहा है प्रकाश का; उपलब्धि बड़ी है कि छोटी? कि मुझे जरा रीढ़ में थोड़ी सी सरसराहट मालूम पड़ती है; कुंडलिनी जाग रही है कि नहीं? रोज दो घंटे एक आदमी बैठ जाता है आंख बंद करके--उसमें भी कई दफे बीच-बीच में खोल कर देख लेता है--सोचता है कि सत्य बिल्कुल हाथ में आ गया; क्योंकि रीढ़ में थोड़ी सी सरसराहट मालूम होती है।
और एक लाओत्से है! वह कह रहा है कि शून्य सामने खड़ा है, सब खो गया, फिर
भी यह नहीं कहता कि यह सत्य है; कहता है, प्रतिबिंब है शायद। शायद जो परमात्मा के भी पहले था, उसका प्रतिफलन है, सिर्फ एक उसकी छवि है, एक छाया है।
यह इतना ही आर्डुअस है मार्ग! इतना ही तपश्चर्यापूर्ण है! इतने ही सजग होने की बात है।
मन लुभाने की बहुत बातें करता है। वह कहता है, जरा सा कुछ चिंदी मिल जाए, तो ऐसा लगता है कि पूरी कपड़े की मिल हाथ लग गई। और मन मानने का करता है। और अगर ऐसे आदमी से कह दो कि यह कुछ नहीं, तो फिर दुबारा नहीं आता। वह आप पर नाराज हो जाता है। वह मैंने करके देखा। फिर मैंने कहा, वह बेकार है; वह आता ही नहीं फिर दुबारा। वह नाराज ही हो जाता है। वह कहता है कि क्या! इतना ऊंचा सत्य लेकर गए कि हमने कहा कि भीतर हमको लाल रंग दिखाई पड़ रहा है, आकाश में बादल चलते दिखाई पड़ते हैं, और आपने कह दिया यह कुछ भी नहीं है! वह दूसरे गुरु की तलाश में गया, जो कहेगा कि यह कुछ है।
मैंने यह अनुभव किया वर्षों कि अगर किसी को कह दो कि यह कुछ भी नहीं है, तो फिर वह आता ही नहीं। वह इसलिए नहीं आया था कि उसे कुछ खोजना है; वह इसलिए आया था कि आप गवाह बन जाएं कि यह कुछ है। क्षुद्रतम मन की कल्पनाएं भारी मालूम पड़ती हैं।

अदभुत लोग हैं लाओत्से जैसे लोग!
बुद्ध ने कहा है, जब तक मुझे कुछ भी दिखाई पड़ता रहेगा, तब तक मैं मानूंगा कि अभी सत्य तक नहीं पहुंचा। जब तक कुछ भी दिखाई पड़ता रहेगा, तब तक मैं मानूंगा, अभी तक मैं सत्य तक नहीं पहुंचा। जहां तक दृश्य होगा, वहां तक नहीं ठहरूंगा। मुझे वह जगह चाहिए, जहां दृश्य न रह जाए, जहां कुछ भी दिखाई न पड़े, जहां कुछ भी न बचे, जहां निखालिस खाली होना मात्र बचे, उसके पहले नहीं।
इसलिए बुद्ध छह साल तक भटके। जिस गुरु के पास जाते... कोई गुरु उनको प्रकाश का दर्शन करा देता। बुद्ध कहते, हो गया प्रकाश का दर्शन, लेकिन अब? इसके आगे?
अब और आगे क्या है! प्रकाश का दर्शन हो गया, बहुत हो गया।
पर बुद्ध कहते, प्रकाश का दर्शन हो गया, लेकिन कुछ भी तो नहीं हुआ। हुआ क्या? ठीक है, प्रकाश का दर्शन हो गया। अब? मैं तो वहीं के वहीं खड़ा हूं। तो गुरु उनको हाथ जोड़ने लगे। उनसे कहने लगे, अब तुम किसी और के पास जाओ। हम तो जो जानते थे, वह हमने करवा दिया।
छह साल बुद्ध एक-एक गुरु, जो बिहार में उपलब्ध था उस वक्त, उसके पास गए। जो उसने कहा, वह किया। करके बताया कि यह हो गया। अब? अभी कोई सत्य तो दिखाई नहीं पड़ता।
हरे, पीले, लाल रंग दिखाई पड़ने से कोई सत्य दिखाई पड़ जाएगा? कि आपके भीतर एक दीए की ज्योति दिखाई पड़ने लगी, तो आप समझे... । पर लोग मुझे पत्र लिखते हैं कि नदी-नाले दिखाई पड़ रहे हैं, पहाड़ दिखाई पड़ रहे हैं; प्रगति ठीक हो रही है?
अब नदी-नालों और पहाड़ों ने आपका क्या बिगाड़ा है? और सत्य से उनका क्या लेना-देना है?
लेकिन वे जो हमारे भीतर छिपे हुए कल्पना के जाल हैं, वे प्रोजेक्टर का काम करना शुरू कर देते हैं। जब आप खाली बैठते हैं, खाली बैठे नहीं कि वह मन जो दिन-रात ताने-बाने बुनता रहता है, वह शुरू कर देता है, वह शुरू कर देता है अपना बुनाव। वह अपना बुनाव शुरू कर देता है--किसी को जरा संगीत में रुचि है, तो उन्हें कुछ गीत की कड़ियां दोहरने लगती हैं; किन्हीं को अगर रंगों में थोड़ा रस है, तो रंग फैलने लगते हैं--वह सब शुरू हो जाता है।
लाओत्से की हिम्मत देखने जैसी है! आखिरी क्षण में भी वह कहता है, प्रतिबिंब ही होगा यह; क्योंकि अभी मैं बाकी हूं। सत्य तो वहां है, जहां मैं भी नहीं हूं।
ये सूत्र इस अध्याय के पूरे हो जाते हैं।
कल की बैठक, आपके जो भी सवाल हों इन छह दिनों में, लाओत्से ने जो बातें कही हैं, उनके संबंध में जो भी सवाल हों, वे सभी अपने सवाल लिख लाएं या सोच लाएं। कल सवालों पर बात करेंगे।

ताओ उपनिषद, भाग एक
पंदरहवां प्रवचन

समझ, शून्यता, समर्पण व पुरुषार्थ

प्रश्नः लाओत्से कहते हैं कि समझ, अंडरस्टैंडिंग, काफी है; समझ के साथ
ही क्रांति घटित हो जाती है। हमें ऐसा लगता है कि कोई बात पूरी समझ में आती तो है, लेकिन कोई क्रांति उससे घटित नहीं होती। इसका कारण क्या है, कृपया समझाइए!

लाओत्से कहता है, बात समझ में आ जाए, तो करने को कुछ बाकी नहीं रह जाता। समझ ही फिर करवा देती है, जो करने योग्य है। और जो करने योग्य नहीं है, वह गिर जाता है, झड़ जाता है, जैसे सूखे पत्ते वृक्ष से गिर जाएं। जो न करने योग्य है, उसे रोकने के लिए कुछ नहीं करना पड़ता; जो करने योग्य है, उसे करने के लिए कुछ नहीं करना पड़ता। जो करने योग्य है, वह होने लगता है; जो न करने योग्य है, वह नहीं होना शुरू हो जाता है।
यह समझ क्या चीज है? क्योंकि पूछते हैं कि समझ में आता हुआ मालूम पड़ता है, लेकिन जिस क्रांति की बात कहता है लाओत्से, वह तो घटित नहीं होती। तो इससे दो ही मतलब हो सकते हैंः या तो लाओत्से जो कहता है, वह गलत कहता है; और या फिर जिसे हम समझ समझ लेते हैं, वह समझ नहीं है।
लाओत्से तो गलत नहीं कहता। लाओत्से तो इसलिए गलत नहीं कहता कि उसने
जो कहा है, वह अकेले उसने ही नहीं कहा है; इस पृथ्वी पर जितने भी जानने वाले लोग हुए हैं, उन सबने वही कहा है। जिन्हें लाओत्से का पता भी नहीं है--चाहे यूनान में सुकरात कहता हो, तो यही कहता है; चाहे बुद्ध कहते हों भारत में, यही कहते हैं--जहां भी कभी कोई जानने वाले ने कुछ कहा है, उसने यही कहा है कि समझ काफी है।
इसमें कई बातें हैं, वे ख्याल में ले लें। और तब यह समझ में आ सकेगा कि अगर क्रांति घटित नहीं होती, तो जिसे हम समझ समझ रहे हैं, वह समझ नहीं है। पहली बात तो यह है कि जो गलत है, वह हमसे क्यों होता है? जो सही है, वह हमसे क्यों नहीं होता? इसके पीछे कारण नासमझी है या कोई और? अगर नासमझी ही कारण है, तो समझ से मिट जाएगा। अगर नासमझी से भी अलग कोई कारण है, तो समझ से नहीं मिटेगा। असली सवाल यही है कि जो हमसे होता है, उसमें हमारा अज्ञान ही कारण है, तब तो ज्ञान से मिट जाएगा।
इस कमरे में से मैं निकलता हूं और दीवार में मेरा सिर टकराता है। इसका कारण कमरे में अंधेरे का होना ही अगर है, तो प्रकाश होते से ही यह सिर का टकराना रुक जाएगा। रुक ही जाना चाहिए। अगर प्रकाश हो जाने पर भी मैं वैसा ही टकराता हूं दीवार से, जैसा अंधेरे में टकराता था, तो उसके मतलब दो ही हुए। उसका या तो मतलब यह हुआ कि प्रकाश हुआ नहीं है; मैंने समझा है, है नहीं। और या उसका यह अर्थ हुआ कि दीवार से टकराने का कोई संबंध अंधेरे से न था। कोई और ही बात थी, अंधेरे और प्रकाश से कोई लेना-देना न था।
अगर और कोई बात है, जो ज्ञान से भी नहीं मिटती, तो फिर तो कभी नहीं मिटेगी। जो चीज ज्ञान से नहीं मिट सकती है, फिर वह किस चीज से मिटेगी? फिर उसे कौन मिटाएगा? क्योंकि ज्ञान से ऊपर हमारे भीतर कुछ भी नहीं है। ज्ञान से श्रेष्ठ हमारे भीतर कुछ भी नहीं है। अगर ज्ञान से भी नहीं मिटता है कुछ, तो हम कहते हैं, कर्म से मिटेगा। तो कर्म कौन करेगा? वह तो अज्ञानी करेगा कर्म। अगर ज्ञान से नहीं मिटता है, तो अज्ञानी के कर्म से कैसे मिटेगा? लेकिन यह सवाल ठीक है। क्योंकि समझ, हमें लगती है कि हो गई पूरी; और फिर भी क्रांति घटित नहीं होती। वह ट्रांसफार्मेशन, वह रूपांतरण नहीं होता।
तो अब यह समझना पड़ेगा कि समझ भी दो तरह की हो सकती है। एक समझ, जो सिर्फ प्रतीत होती है, एपरेंटली मालूम पड़ती है कि समझ है। हमारे पास समझ का एक यंत्र है--बुद्धि। बुद्धि के द्वारा हम किसी भी चीज को तर्कयुक्त रूप से समझ सकते हैं। अगर ठीक तर्कबद्ध विचार प्रस्तुत किया जाए, उसमें कोई तर्क की भूल न हो, तो बुद्धि समझ लेती है कि ठीक है, समझ में आ गया। लेकिन बुद्धि

की समझ से रूपांतरण नहीं होता, क्रांति नहीं होती। क्योंकि बुद्धि बहुत छोटा सा हिस्सा है व्यक्तित्व का; और व्यक्तित्व बहुत बड़ी बात है। और बुद्धि जिसे समझ लेती है, उसका यह अर्थ नहीं है कि आपका व्यक्तित्व, आपका प्राण, आप उसे समझ गए।
इस सदी के पहले तक पश्चिम को यह ख्याल नहीं था साफ-साफ कि जिसे हम मनुष्य की बुद्धि कहते हैं, उससे नौ गुनी ताकत का अचेतन मन, अनकांशस माइंड भीतर बैठा हुआ है। आपको मैंने समझाया कि क्रोध बुरा है, आपकी समझ में आ गया। लेकिन जिस बुद्धि की समझ में आया, उसने कभी क्रोध किया ही नहीं है। उस बुद्धि के पीछे जो नौ हिस्से पर्त हैं अचेतन के, अनकांशस के, क्रोध वहां से आता है।
ऐसा समझ लें कि मैं एक मकान में रहता हूं। दरवाजे पर एक पहरेदार खड़ा है। उस बेचारे ने कभी क्रोध किया नहीं है। और जब भी दरवाजे पर कोई उपद्रव होता है, तो वह घर के भीतर जो मालिक रहता है, वह बंदूक लेकर दरवाजे पर आकर उपद्रव करता है। और जब भी कोई उपदेशक समझाने आता है, तो उस पहरेदार को पकड़ कर समझाता है कि क्रोध बहुत बुरी चीज है, झगड़ा वगैरह नहीं करना चाहिए। वह कहता है कि मेरी भी समझ में आता है। मैं भी देखता हूं कि जब उपद्रव होता है, वह मालिक भीतर से आता है, तो भारी खून-खराबा हो जाता है। मैं बिल्कुल समझता हूं; मेरी समझ में बिल्कुल आता है।
मगर यह उपदेशक को पता नहीं है कि जिसको वह समझा रहा है, उसने कभी उपद्रव किया नहीं; और जिसने उपद्रव किया है, इस पहरेदार से उसका कोई कम्युनिकेशन नहीं है। इससे कभी उसकी मुलाकात ही नहीं होती। और जब वह मालिक बंदूक लेकर आता है, तब यह पहरेदार हाथ-पैर जोड़ कर, सिर झुका कर उसके चरणों में पड़ जाता है, क्योंकि वह मालिक है। और जब वह चला जाता है, तब पहरेदार अपनी कुर्सी पर बैठ कर झपकी खाता रहता है और सोचता है कि बहुत बुरी बात है, क्रोध होना नहीं चाहिए।
आप जिस बुद्धि से समझ रहे हैं, अगर हम आपके मन के दस खंड कर दें, तो एक खंड समझ का है और नौ खंड अंधेरे में पड़े हैं। जीवन का सारा उपद्रव अंधेरे खंडों से आता है। जब आपके भीतर कामवासना पैदा होती है, तो आपके उन नौ हिस्सों से आती है। और जब ब्रह्मचर्य की आप किताब पढ़ते हैं, तो वह एक हिस्सा पढ़ता है--पहरेदार। आप ब्रह्मचर्य की किताब पढ़ कर रख देते हैं, बिल्कुल जंच जाती है कि बात बिल्कुल ठीक है। लेकिन उस जंचने से कुछ नहीं होता। जब वे भीतर के नौ हिस्से कामवासना से भरते हैं, तब इस एक हिस्से की कोई ताकत नहीं है। वे इसको एक तरफ हटा कर बाहर आ जाते हैं।
इसके जिम्मे एक ही काम है कि जब वक्त मिले, तो समझने का काम करे; और जब फिर वक्त मिले, तो पश्चात्ताप करे। यह जो एक हिस्सा मन है, इसकी कोई सुनवाई नहीं है।
ध्यान रहे कि मन में जितना गहरा हिस्सा होता है, उतना ताकतवर होता है। परिधि पर, सर्कमफरेंस पर ताकत नहीं होती; ताकत सेंटर में होती है। जिसको हम बुद्धि कहते हैं, वह हमारी सर्कमफरेंस है, परिधि है, घर के बाहर का परकोटा है; वहां कोई खजाने नहीं रखता। खजाने तो उस तिजोरी में दबे होते हैं, जो घर का भीतरी से भीतरी अंतरंग है। तो हमारे जीवन की ऊर्जा तो अंतरंग में छिपी है। और बुद्धि हमारे दरवाजे पर खड़ी है। इसी बुद्धि से पढ़ते हैं, इसी बुद्धि से सुनते हैं, इसी बुद्धि से समझते हैं।
तो लाओत्से जब कहता है, समझ में आ जाए तो रूपांतरण हो जाता है, तो वह कह रहा है, उस सेंटर की समझ में आ जाए--वह जो आपके भीतर, अंतरस्थ बैठा हुआ, अंतिम, मालिक है, उसकी समझ में आ जाए--तो क्रांति हो जाती है।
अब हमारी कठिनाई भी स्वाभाविक है, वास्तविक है, कि हमें लगता है समझ में आ गया, फिर क्रांति तो होती नहीं। हम वहीं के वहीं खड़े रह जाते हैं। और इस तथाकथित समझ से और एक उपद्रव शुरू होता है। वह उपद्रव यह होता है कि अब हम द्वैत में बंट जाते हैं। मन भीतर से कुछ करवाता है, हम कुछ करना चाहते हैं। वह कभी होता नहीं। होता वही है, जो भीतर से आता है। और फिर आखिर में पश्चात्ताप और दीनता और हीनता मन को पकड़ती है। और अपनी ही आंखों में आदमी गिरता चला जाता है। उसे लगता है कि मैं कुछ भी नहीं हूं, किसी कीमत का नहीं हूं।

तो यह जो समझ है हमारी, लाओत्से इसके संबंध में नहीं कह रहा है। यह इंटलेक्चुअल जो अंडरस्टैंडिंग है, यह धोखा है समझ का। यह ऐसा ही है, जैसे कोई कहे कि अगर वृक्ष को जल मिल जाए, तो उसमें फूल आ जाते हैं। हम जाकर वृक्ष के पत्तों पर जल छिड़क आएं। फिर फूल न आएं, तो हम कहें कि हमने तो जल छिड़का, फूल नहीं आए; जाहिर है कि जिसने कहा था, गलत था। और या फिर हमने जो जल छिड़का, वह जल न था। स्वभावतः हमारे सामने सवाल उठेगा, फूल तो नहीं आए। लेकिन जिसने कहा था, वृक्ष को जल मिल जाए तो फूल आ जाते हैं, उसने कहा
था वृक्ष की जड़ों को, रूट्स को। यह मजे की बात है कि वृक्ष के पत्ते को आप जल दें, तो जड़ों तक नहीं पहुंचता; जड़ों को जल दें, तो पत्ते तक पहुंच जाता है। क्योंकि पत्तों के पास कोई यंत्र नहीं है कि जल को रूट्स तक पहुंचा दे, जड़ों तक पहुंचा दे जल को। जड़ों के पास यंत्र है। जड़ें केंद्र हैं वृक्ष की, पत्ते तो परिधि हैं। इसलिए पत्ते रहें कि गिर जाएं, नॉन-एसेंशियल हैं। दूसरे पत्ते आ जाएंगे। लेकिन जड़ें चली जाएं, तो दूसरी जड़ें लाना बहुत मुश्किल है, असंभव है।
तो दो बात समझ लें। एक तो यह कि जिसको आप समझ कहते हैं, वह केवल तार्किक, शाब्दिक, बौद्धिक है; आंतरिक नहीं, आत्मिक नहीं, समग्र नहीं। आपके प्राणों तक वह जाती नहीं। और इसलिए रूपांतरण नहीं होता। बात बिल्कुल समझ में आ जाती है, और आप वहीं के वहीं खड़े रह जाते हैं, कहीं कोई फर्क नहीं पड़ता।
तो अब क्या करें? वह समझ हम कैसे लाएं जो समझ जड़ों तक जाए?
हमारी सारी शिक्षा और दीक्षा एक ही समझ की है, यह तथाकथित जो समझ है। गणित सीखते हैं इसी बुद्धि से; भाषा सीखते हैं इसी बुद्धि से। काम चल जाता है। काम इसलिए चल जाता है कि आपके भीतर के केंद्र का कोई विपरीत गणित नहीं है; नहीं तो काम नहीं चलता। आपके इनरमोस्ट सेंटर का अपना अगर कोई मैथेमेटिक्स होती, तो आपके स्कूल-कालेज सब दो कौड़ी हो जाते। लेकिन उसके पास कोई मैथेमेटिक्स नहीं है। इसलिए आप स्कूल में गणित सीख लेते हैं; भीतर से कोई विरोध नहीं होता। आप दो और दो चार जोड़ते रहें, जोड़ते रहें; भीतर कोई कहने वाला नहीं कि दो और दो पांच होते हैं। अगर भीतर का मन कहने को होता कि दो और दो पांच होते हैं, तो सारी यूनिवर्सिटीज कचरे में पड़ जातीं, आप दो और दो चार नहीं जोड़ पाते। जब भी जोड़ने जाते, पांच लिखते।
इसलिए विश्वविद्यालय सफल है कामचलाऊ दुनिया के लिए। क्योंकि गणित हमारी ईजाद है, भाषा हमारी ईजाद है; जो भी हम सिखा रहे हैं स्कूल में, वह आदमी की ईजाद है। अगर हम आदमी को न सिखाएं, तो वह आदमी में होगा ही नहीं। अगर हम एक बच्चे को भाषा न सिखाएं, तो वह बच्चा अपने आप भाषा नहीं बोल पाएगा। लेकिन एक बच्चे को क्रोध सिखाने की जरूरत नहीं है; वह अपने आप क्रोध सीख लेगा। अगर हम एक बच्चे को गणित न सिखाएं, तो दुनिया में कोई उपाय नहीं है कि वह गणित सीख ले। लेकिन सेक्स या कामवासना सिखाने के लिए किसी विद्यापीठ की जरूरत नहीं पड़ेगी। उसे जंगल में डाल दो, खड्ड में, वहां भी वह सीख लेगा। सीख लेने का सवाल नहीं है; वह भीतर से आएगा।
तो इसका मतलब यह हुआ कि जीवन में जो चीज भी भीतर से आती है, उसी के मामले में अड़चन में पड़ते हैं आप। जो भीतर से नहीं आती, बाहर की है, उसमें अड़चन में नहीं पड़ते। आप कोई भी भाषा सीख लेते हैं। वह ऊपर का काम है, भीतर का मन उसके विरोध में नहीं है। चल जाता है। तो स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय आपको जो शिक्षा देते हैं, मन का ऊपरी हिस्सा ट्रेंड कर देते हैं वे। कठिनाई तब शुरू होती है, जब आप जिंदगी को भीतर से बदलना चाहते हैं, तब भी इसी ऊपरी हिस्से का उपयोग करते हैं। बस वहीं अड़चन हो जाती है। सोचते हैं, क्रोध न करूं। यह आप उसी हिस्से से सीखते हैं, जिससे गणित सीखा था। यह क्रोध का मामला बहुत दूसरा है, गणित का मामला बहुत दूसरा है। गणित आदमी की ईजाद है, क्रोध अगर किसी की ईजाद है तो वह प्रकृति की है, आदमी की नहीं। इसी से हम समझ का काम लाते हैं, तब अड़चन हो जाती है और काम नहीं होता। अब उस भीतर तक समझ को ले जाना हो, तो उसकी प्रक्रिया है। प्रक्रिया का अर्थ यह हुआ कि आपको यह समझ भी कैसे मिली है? यह भी एक प्रशिक्षण है आपको। यह आपको एक बीस-पच्चीस साल के प्रशिक्षण के द्वारा यह संभव हुआ है कि दो और दो चार होते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अचानक अपने रास्तों पर देखा गया कि बहुत शानदार कपड़े पहने हुए है, हाथ में हीरे की अंगूठी लगाई हुई है। लोग चकित हुए। लोगों ने घेर लिया कि मुल्ला, क्या हुआ? उसने कहा कि एक लाटरी हाथ लग गई। पर कैसे लगी? मुल्ला ने कहा कि तीन रात तक लगातार सपना देखा, जिसमें मुझे सात का आंकड़ा दिखाई पड़ता था। तीन रात! तो मैंने सोचा, सात तिया अट्ठाइस। मैंने नंबर लगा दिया। पर लोगों ने कहा, अरे मुल्ला, क्या कह रहे हो, सात तिया अट्ठाइस! सात तिया इक्कीस होते हैं। मुल्ला ने कहा, होते होंगे, लेकिन लाटरी अट्ठाइस पर मिली। यानी इससे कोई... लाटरी मिल गई अट्ठाइस पर।
दो और दो चार की भी ट्रेनिंग है। दो और दो चार ऐसी कोई बात नहीं है कि आपके भीतर से आ गई है। उसकी ट्रेनिंग है। सीखना पड़ता है, सीख कर हल हो जाता है। अब यह जो अंतरस्थ मन है, इस तक समझ को पहुंचाने के लिए भी प्रक्रियाओं से गुजरना पड़े।
लाओत्से ने जब ये बातें कही हैं, तब आदमी बहुत सरल था। अब बहुत से फर्क
पड़ गए हैं, जो मैं आपको ख्याल दिला दूं, जिससे अड़चन है। लाओत्से ने जब ये बातें कही हैं, आदमी बहुत सरल था। उसकी इंटलेक्चुअल ट्रेनिंग नहीं थी, उसकी कोई बौद्धिक पर्त नहीं थी। लाओत्से बोल रहा था गांव के ग्रामीण जनों से। वे सीधे-सादे लोग थे। उनके पास कोई बौद्धिक खजाना नहीं था। प्रकृति के सीधे करीब थे, निर्दोष थे। लाओत्से उनसे बोल रहा था। लाओत्से अगर आपसे बोले, तो सबसे पहला सवाल यही होगा, जो विजय ने पूछा है। यही सवाल होगा कि समझ में तो हमारे आपकी बात आ गई... । लाओत्से जिनसे बोल रहा था, वे यह सवाल कभी नहीं उठाए। लाओत्से और च्वांगत्से के हजारों संस्मरणों में यह सवाल एक आदमी ने नहीं उठाया है कि हमारी समझ में तो आ गया, लेकिन जिंदगी नहीं बदलती। हां, यह सवाल बहुत लोगों ने उठाया है कि हमारी समझ में नहीं आता। समझाएं!
फर्क समझ रहे हैं? यह सवाल उठाते हैं बहुत लोग कि हमारी समझ में नहीं आया, आप फिर से समझा दें! तो लाओत्से फिर से समझाएगा। एक बार ऐसा हुआ कि एक आदमी रोज सुबह आया, इक्कीस दिन तक आया। और रोज सुबह आकर वह कहता लाओत्से से कि तुमने जो कहा था, वह मैं भूल गया। तुमने जो कल कहा था, फिर से समझा दो। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन। फिर लाओत्से के एक शिष्य मातसु को हैरानी हुई। उसने उस आदमी को जब पांचवें दिन फिर आते देखा, तो उसने उसको झोपड़े के बाहर रोका और कहा कि क्या मामला है?
उसने कहा, वह मैं भूल गया। वह जो कल समझाया था, मैं फिर समझने आया हूं।
तो उसने कहा, तू भाग जा, अब तू भीतर मत जा। क्योंकि एक पागल तू है, और दूसरा पागल हमारे पास लाओत्से है। तू अगर जिंदगी भर भी आता रहा, तो वह समझाता रहेगा। पांच दिन से, चार दिन से मैं भी देख रहा हूं कि तू वही का वही सवाल ले आता है और वह वही का वही सवाल समझाने बैठ जाता है।
जब यह बात ही चल रही थी मातसु के साथ, तभी लाओत्से बाहर आ गया। और उसने कहा, आ गया भाई! अंदर आ जा। भूल गया, फिर से सुन ले!
वह इक्कीस दिन रोज आ रहा है। बाईसवें दिन नहीं आया। तो कहानी कहती है
कि लाओत्से उसके घर पहुंच गया। कहा, क्या तबीयत खराब है? क्या हुआ? उस आदमी ने कहा, समझ में आ गया। और कुछ? उसने कहा कि कुछ नहीं; मैं दूसरा आदमी हो गया।
लेकिन फर्क आप समझ रहे हैं? अगर हम इक्कीस दफा जाते लाओत्से के घर पर,
तो हम समझने न जाते। हम कहते, समझ में तो पहले दिन ही आ गया, जिंदगी नहीं बदली। वह आदमी यह कहता ही नहीं है कि जिंदगी नहीं बदली। क्योंकि वह आदमी यह कहता है कि आप कहते हो, समझ में आ जाएगा तो जिंदगी बदल ही जाएगी, वह बात खतम हो गई। अब समझ में ही आ जाए।
बुद्ध जब भी बोलते थे--तो अभी जब बुद्ध के ग्रंथों को संपादित किया गया है, तो बड़ी हैरानी हुई, क्योंकि बुद्ध एक-एक पंक्ति को तीन बार से कम दोहराते नहीं थे। तीन बार कहेंगे। अब तीन बार छापो, तो नाहक तीन गुनी किताब हो जाती है। और पढ़ने वाले को भी कठिनाई होती है। तो राहुल सांकृत्यायन ने जब पहली दफा हिंदी में विनय पिटक का पूरा संग्रह किया, तो हर पंक्ति के बाद निशान लगाए उन्होंने। और निशान बाहर सूची बना दी, फिर से

वही, उसका निशान है; फिर से वही, उसका निशान है; फिर से वही, डिट्टो। पूरी किताब निशान से भरी हुई है। क्या, बात क्या थी? बुद्ध क्यों इतना दोहरा रहे हैं?
अगर समझाना हो, तो तर्क देना पड़ता है। और अगर भीतर तक पहुंचाना हो, तो
उस पुराने जमाने में लोग इतने सरल थे कि उसे केवल बार-बार दोहराने से वह मंत्र बन जाता, वह सजेस्टेबल हो जाता, और भीतर प्रवेश कर जाता था। सिर्फ बार-बार दोहराना काफी था। जितनी बार दोहराया जाए, उतना भीतर प्रवेश करने लगता है।
लेकिन बुद्धि तो एक ही दफे में समझ जाती है, इसलिए दुबारा दोहराने की जरूरत नहीं रह जाती। अगर दुबारा दुहराओ, तो वह आदमी कहेगा, आप क्यों हमारा समय जाया कर रहे हैं! समझ गए, अब दूसरी बात करिए।
आज भी जो लोग अनकांशस माइंड के साथ काम करते हैं, वे सिवाय दोहराने के
और कुछ नहीं करते। जैसे कि अभी पेरिस में कुछ वर्षों पहले एमाइल कुए नाम का एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक था, जिसने लाखों लोगों को ठीक किया। पर वह एक ही बात दोहराता था कि तुम बीमार नहीं हो! अब वह घंटे भर लिटाए है उस आदमी को और दोहरा रहा है कि तुम बीमार नहीं हो! तुम बीमार नहीं हो!
वह आदमी कह सकता है कि समझ गए एक दफा, अब इसको बार-बार कहने का क्या प्रयोजन है? पर एमाइल कुए कहता है कि तुमसे मुझे मतलब नहीं है। तुम तो समझ गए, तुम तो पहले ही समझ रहे हो। तुम्हारे जो भीतर, गहरे और गहरे में, वहां तक! वह दोहराए चला जाएगा। थोड़ी देर में यह ऊपर की जो बुद्धि है--जो यह ऊपर की बुद्धि है, यह नए में रस लेती है, पुराने में रस नहीं लेती--यह थोड़ी देर में कहेगी कि ठीक है, सुन लिया, सुन लिया, सुन लिया। यह सो जाएगी। हिप्नोसिस का कुल इतना ही मतलब है; यह सो जाएगी। यह ऊपर की जो बुद्धि है, ऊब जाएगी। यह परेशान हो जाएगी कि क्या कहे चले जा रहे हो कि तुम बीमार नहीं हो! यह थोड़ी देर में सो जाएगी।
लेकिन कुए कहता चला जाएगा। और जब यह सो जाएगी, तो इसके पीछे की जो पर्त है, वह सुनने लगेगी। थोड़ी देर में वह भी ऊब जाएगी, वह भी सो जाएगी। तो उसके पीछे की जो पर्त है, वह सुनने लगेगी। और यह कुए दोहराए चला जाएगा। यह तब तक दोहराए चला जाएगा, जब तक आपके भीतरी केंद्र तक यह खबर न पहुंचा दे कि तुम बीमार नहीं हो। और अगर यह भीतरी केंद्र तक खबर पहुंच जाए, वह केंद्र अगर मान ले कि मैं बीमार नहीं हूं, तो बीमारी समाप्त हो गई।
अब इसके लिए मंत्रों का, ध्यान का, तंत्र का, न मालूम कितना-कितना आयोजन करना पड़ा! बाद में करना पड़ा, जब कि लोग ज्यादा सोफिस्टीकेटेड हो गए। लाओत्से के वक्त में कोई जरूरत न थी। लाओत्से के वक्त तक कोई जरूरत न थी। लोग सरल थे। और उनके अंतरस्थ मन का द्वार इतना खुला था और बुद्धि का कोई पहरेदार न था कि कोई भी बात लाओत्से जैसा आदमी कहता, तो वह भीतर प्रवेश कर जाती। इस सब का इंतजाम था। लाओत्से के पास जाता ही कोई तब था, जब वह श्रद्धा करने को राजी हो। लाओत्से के पास अगर कोई जाता और तर्क करने को उत्सुक होता, तो लाओत्से कहता कि अभी तू फलां गुरु के पास जा, थोड़े दिन वहां रह!
अभी मैं एक सूफी फकीर का जीवन पढ़ता था। अजनबी, एक सूफी फकीर था। गांव
का एक बहुत बड़ा पंडित, एक बड़ा व्याकरण का ज्ञाता अजनबी को सुनने आया, तो उसने देखा कि वह व्याकरण वगैरह जानता नहीं, ठीक से भाषा उसे आती नहीं। तो उस पंडित ने कहा कि पहले तो लोगों को, जिनको आप समझा रहे हैं, ठीक से भाषा समझाइए, व्याकरण समझाइए। प्रारंभ से ही प्रारंभ करिए। यह आप क्या कर रहे हैं? आप इतनी ऊंची बातें कर रहे हैं! लेकिन न भाषा का ठिकाना, न व्याकरण का।
तो उस सूफी फकीर ने कहा कि तू रुक जा यहां। उस फकीर के चमत्कारों की बड़ी कथाएं थीं। वह पंडित रुक गया। सूफी ने उससे कहा कि बाहर झोपड़े के जो कुत्ते और बिल्लियां सांझ को इकट्ठे होते हैं, तू उनको व्याकरण सिखाना शुरू कर दे।
उसे लगा तो कि यह पागलपन की बात है; लेकिन यह फकीर कह रहा है। और यह चमत्कारी है, शायद कोई राज होगा। शायद ये कुत्ते और बिल्लियां साधारण न हों, कुछ खूबी के हों। या फिर इसका कोई मतलब होगा। शायद इन्हें सिखाते-

सिखाते मुझे कुछ सीखने को मिल जाए। बात तो कुछ होगी ही, रहस्य इसमें कुछ होगा ही। उसने बेचारे ने सिखाना शुरू कर दिया।
सरल से सरल पाठ सिखाता था, लेकिन कुत्ते-बिल्ली थे कि नहीं सीखते थे।
छह महीने बीत गए, वह भी थक गया। फकीर कई बार पूछा कि कोई प्रगति? कोई प्रगति तो नहीं हो रही है। फकीर ने कहा, बिल्कुल प्रारंभ से ही प्रारंभ किया है न? बिल्कुल प्रारंभ से ही प्रारंभ किया है! इससे और आगे प्रारंभ भी नहीं होता कुछ। कुछ भी सिखा पाए? उसने कहा कि एक कदम ही नहीं उठ रहा आगे। उस फकीर ने कहा, क्या, कठिनाई क्या है? उस पंडित ने कहा, वे भाषा ही नहीं जानते हैं, बोलना ही नहीं जानते। बोलना जानते हों, तो मैं व्याकरण भी सिखा दूं।
वह फकीर कहने लगा कि मैं जिस दुनिया की बातें कर रहा हूं, तुझे उस दुनिया की न भाषा का पता है और न व्याकरण का पता है। तुझे उसका पता हो, तो मैं भी शुरू कर सकता हूं। तेरे साथ भी शुरू कर सकता हूं।
पुराने युगों में यह नियमित व्यवस्था थी कि गुरु अगर देखता कि कोई तर्क करने आ गया, तो उसे उस जगह भेज देता, जहां तर्क ही चलता था। ताकि वह तर्क से थक जाए, परेशान हो जाए। और इतना ऊब जाए कि एक दिन आकर वह कहे कि तर्क बहुत कर लिया, कुछ मिला नहीं; अब कोई ऐसी बात कहें, जिससे कुछ हो जाए। तब लाओत्से जैसे आदमी बोलते हैं।
एक सूफी फकीर के बाबत... । दो फकीर सामने रहते हैं। एक फकीर का शिष्य है, वह अपने गुरु को आकर कहता है कि सामने वाला जो सूफी है, यह आपके बाबत बहुत गलत-सलत बातें प्रचारित करता है। यह कुछ गंदी-गंदी बातें भी आपके संबंध में गढ़ता है, अफवाहें उड़ाता है। आप इसे ठीक क्यों नहीं कर देते? कुछ बोलते क्यों नहीं? तो उस फकीर ने कहा, तू ऐसा कर, तू उसी से जाकर पूछ कि राज क्या है! पर ऐसे जल्दी मत पूछना, क्योंकि कीमती बातें अजनबियों को नहीं बताई जाती हैं। और राहगीर चलते आकर कुछ पूछ लें, तो उनको उत्तर जो दिए जाते हैं, वे रास्ते की ही कीमत के होते हैं। तो उसने कहा, मैं क्या करूं? कहा कि साल भर उसकी सेवा कर; निकट पहुंच। और जब आंतरिकता बन जाए, तब किसी दिन क्षण का ख्याल रख कर, समय का बोध रख कर, अवसर खोज कर उससे पूछना।
तो साल भर उसने सेवा की। बहुत निकटस्थ हो गया, आत्मीय हो गया। एक दिन पैर दाब रहा था रात, तब उसने अपने गुरु को पूछा कि आप गालियां देते हैं, सामने वाले गुरु के खिलाफ सब कुछ कहते हैं, इसका राज क्या है? तो उसने कहा, तू पूछता है, किसी को बताना मत। मैं उसका शिष्य हूं। और राज बताने की मनाही है, तू जाकर उसी से पूछ ले। पर ये बातें अजनबियों को नहीं बताई जाती हैं, राह चलतों को नहीं बताई जाती हैं। जरा निकट हो जाना।
उसने कहा, अच्छी मुसीबत में पड़े! हम तुम्हें दुश्मन समझ कर साल भर मेहनत किए, तुम शिष्य निकले! उसके ही शिष्य हो! वहीं वापस जाना पड़ेगा।
दो साल गुरु की पुनः सेवा की लौट कर। एक क्षण सुबह स्नान कराते वक्त-- कोई नहीं था, गुरु को वह स्नान करा रहा था--पूछा कि आज मुझे बता दें, यह राज क्या है?
तो उसके गुरु ने कहा कि वह मेरा ही शिष्य है। और उसे वहां इसलिए रख छोड़ा है कि वह मेरे संबंध में गलत बातें उड़ाता रहे। जिनको उन गलत बातों पर भरोसा आ जाए, वे ताकि मेरे पास न आ सकें, वे गलत लोग हैं। उनके साथ मेरा समय नष्ट न हो। मेरा समय कीमती है। मैं उन्हीं पर खर्च करना चाहता हूं, जो सत्य की तलाश में आए हैं। और जो अफवाहों से लौट सकते हैं, उनकी कोई तलाश नहीं है। वह आदमी अपना है। और उसने इतनी सेवा की है मेरी इन बीस वर्षों में, जिसका हिसाब नहीं है। सैकड़ों फिजूल के लोगों से उसने मुझे बचाया है।
यह नियमित व्यवस्था थी। और जब कोई श्रद्धा से भर जाए--श्रद्धा से भरने
का अर्थ है, जब कोई हृदय को सीधा खोलने को तैयार है।
अभी साइकोलॉजिस्ट या साइकोएनालिस्ट क्या कर रहे हैं? वे इतना ही कर रहे हैं। एक मरीज पर तीन साल तक साइकोएनालिसिस चलती है। कोच पर लिटाया है मरीज को; घंटों, हजारों घंटों, उससे चर्चा होती है। मरीज कहता जाता है, चिकित्सक सुनता जाता है। किसलिए? वह सिर्फ इसलिए कि कहते-कहते, कहते-कहते मरीज, बुद्धि की ऊपरी बातें थोड़े दिन में चुक जाएंगी, तब वह भीतर की बातें कहना शुरू कर देता है। फिर वे भी चुक जाती हैं, तो और आंतरिक बातें कहने

लगता है। ओपनिंग हो जाती है। वर्ष भर निरंतर चिकित्सक के पास कहते-कहते, कहते-कहते वह आंतरिक चीजों को बाहर निकालने लगता है। और जब चिकित्सक देखता है कि अब वे चीजें बाहर निकलने लगीं जो बहुत गहरी हैं, तब वक्त आया, यह आदमी सजेस्टेबल हुआ, इसको अब कोई सुझाव डाला जा सकता है। अब इसके भीतर का दरवाजा खुल गया, अब इसके भीतर कोई बीज डाल दिया जाए, तो वृक्ष बन जाएगा। समझ का अर्थ है, आपके भीतरी तल तक पहुंच जाए कोई बात। लेकिन तर्क कभी न पहुंचने देगा। और हम तर्क से ही समझना चाहते हैं। और तर्क ही उपद्रव है; वही पहरेदार है। वह कहता है, पहले मुझे समझाओ। अगर मुझे समझाओ, तो मैं मालिक से मिला दूं। और अगर मुझे ही नहीं समझा पाते हो, तो मैं मालिक से क्या मिलाऊं? और फिर कठिनाई यह है कि जब वह समझ जाता है, तो वह समझता है, समझ गए, मालिक हो गए।
फिर वह देखता है, समझ तो हो गई, लेकिन कुछ हल नहीं होता। क्योंकि कोई, जिसको हम बुद्धि कहते हैं, उसके पास कोई भी शक्ति नहीं है। जिसको हम कहें कोई भी फोर्स टु एक्ट, बुद्धि के पास नहीं है। और फोर्स टु एक्ट जो है, शक्ति काम करने की, वह बुद्धि के पीछे किसी और छिपे तल में है। इसलिए यह व्यवधान पड़ता है।
तो अगर उस तक पहुंचना है, तो फिर अगर नहीं पहुंचता सीधा--किसी को पहुंच जाता हो, तब तो कोई सवाल नहीं--अगर नहीं पहुंचता सीधा, तो पहले इस बुद्धि के पहरे को तोड़ने के लिए उपाय करने पड़ते हैं। कुछ ध्यान करना पड़े; इस बुद्धि के पहरे को तोड़ना पड़े। और ध्यान की कोई ऐसी प्रक्रिया उपयोग में लानी पड़े, जो आपको निर्बुद्धि बना दे, इररेशनल बना दे।
जैसे मैं जो ध्यान का प्रयोग करता हूं, वह बिल्कुल बुद्धिहीन है। तो बुद्धिमान उसको देख कर ही भाग जाएगा। वह कहेगा, यह क्या हो रहा है कि लोग नाच रहे हैं, चिल्ला रहे हैं, कूद रहे हैं। पागल हैं! लेकिन जो आदमी नाच रहा है, कूद रहा है, वह बुद्धि के तल से नीचे उतर गया। क्योंकि बुद्धि तो सेंसस का काम करती है। वह कहती है, क्यों हंस रहे हो? अभी कोई हंसने की बात ही नहीं। पहले हंसने की बात तो होने दो, फिर हंसना। कहती है, क्यों रो रहे हो? अभी कोई रोने की बात ही नहीं। क्यों कूद रहे हो? कोई जमीन में आंच लगी है, आग लगी है कि तुम कूद रहे हो! ये क्यों घूंसे तान रहे हो हवा में? पहले किसी को गाली देने दो, फिर घूंसा उठाना।
बुद्धि पूरे समय यह कह रही है कि जो तुम कर रहे हो, वह तर्कयुक्त हो। लेकिन जिंदगी में कभी भी कुछ तर्कयुक्त किया है? जब किसी से प्रेम हो जाएगा, तब बुद्धि कहां होगी? और जब किसी से क्रोध हो जाएगा, तब बुद्धि कहां होगी? और जब किसी को मारने का मन हो जाएगा या मरने का मन हो जाएगा, तब बुद्धि कहां होगी? तो जिंदगी की जहां असली जरूरतें हैं, वहां तो बुद्धि होगी नहीं। और उन गहरे बिंदुओं तक आप कभी उतर न पाएंगे, बुद्धि की बात मान कर चलेंगे तो।
ध्यान के सब प्रयोग आपकी बुद्धि की पर्त को तोड़ने के प्रयोग हैं! वह आपकी एक दफा पर्त टूट जाए, तो आप एकदम सरल हो जाते हैं। और जब आप सरल हो जाते हैं, तो आपके पास एक अंतर्दृष्टि होती है, जहां से चीजें साफ दिखाई पड़ती हैं। तब यह सवाल कभी नहीं उठता कि मेरी समझ में आ गया और क्रांति नहीं हुई। समझ में आ जाना ही क्रांति है। टु नो इ.ज टु बी ट्रांसफार्म्ड। नालेज इ.ज ट्रांसफार्मेशन। यह सवाल फिर नहीं उठता।
लेकिन यह उठता है। और मैं यह नहीं कहता कि गलत उठता है। हम जैसे हैं आज, उसमें यह सवाल उठेगा। हम दो हिस्सों में बंटे हुए हैं। जिस हिस्से से समझते हैं, उसका कोई संबंध नहीं है उस हिस्से से, जिससे करते हैं। करने का हिस्सा अलग, समझने का हिस्सा अलग। घर डिवाइडेड है, दो टुकड़ों में बंटा हुआ है। जिसके हाथ में ताकत है करने की, वह समझने नहीं आता; जिसके हाथ में करने की कोई ताकत नहीं है, वह समझने आता है। इन दोनों के बीच कभी कोई मेल नहीं होता। अब इसमें क्या किया जाए?
इसमें एक ही उपाय है कि आप इस समझने की जो पर्त है, इसको तोड़ कर थोड़ा नासमझी की दुनिया में उतरें; और थोड़ा नासमझ होकर देखें। तो आपके इन दोनों विभाजनों के बीच की दीवार धीरे-धीरे गिरेगी और आप दोनों में आना-जाना आपका शुरू हो जाएगा। और तब आप इंटिग्रेटेड होंगे, इकट्ठे होंगे, एक होंगे। और

वह जो एक आदमी है, वह जो भी समझ लेता है, वही उसकी जिंदगी में फलित हो जाता है।
हम दो हैं। और इसलिए हमारा जो सवाल है, वह जिंदगी-जिंदगी तक उलझता चला जाता है। और हर जिंदगी के बाद ज्यादा उलझ जाएगा, क्योंकि विभाजन बढ़ता ही चला जाता है। इस विभाजन को कहीं से तोड़ें।
पिछले आबू के शिविर में एक मित्र--पढ़े-लिखे, बड़े सरकारी एक पद पर--वे देखने आए थे। दो दिन तो वे देख रहे थे। मुझ से आकर कहा कि यह तो मैं न कर पाऊंगा। यह जो लोग कर रहे हैं, यह मैं न कर पाऊंगा। तो मैंने कहा कि यह आप कैसे कहते हैं कि न कर पाएंगे? करके देख कर कह रहे हैं, बिना करे कह रहे हैं? या सिर्फ इस भय से कह रहे हैं कि भीतर डर है कि हो तो यह भी मुझसे जाएगा? किस वजह से कह रहे हैं?
वे कुछ थोड़े डरे। पत्नी उनके साथ थी, उसकी तरफ देखा। मैंने उनकी पत्नी
को कहा कि तुम जाओ। तुम्हारे सामने शायद वे अपनी बुद्धिमानी न छोड़ पाएं। तुम हटो। वे कहने लगे, डर से ही कह रहा हूं। मुझे भी ऐसा लगता है कि अगर मैं भी कूद पडूं, तो बहुत उपद्रव मचाऊंगा।
फिर मैंने कहा, उसे मचाओ। एक दफे उसे मचा कर देखो। तुम अपनी नई ही सूरत
से परिचित होओगे। वही तुम्हारी असली सूरत है। वक्त-बेवक्त पर वह निकल कर बाहर आ जाती है। लेकिन तब तुम उसके मालिक नहीं हो सकते। क्योंकि वह क्षण भर को आती है, फिर छिप जाती है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, क्रोध जो है, वह टेम्प्रेरी मैडनेस है-- टेम्प्रेरी! है तो मैडनेस पूरी, टेम्प्रेरी है। थोड़ी देर रहती है, इसलिए आपको पता नहीं चलता। फिर निकल गई। परमानेंट हो जाए, आप पागल हो गए। लेकिन जो टेम्प्रेरी है, वह कभी भी परमानेंट हो सकता है।
मैंने उनसे कहा, आप करें।
उन्होंने कहा, हिम्मत जुटाऊं, कोशिश करूं।
मैंने कहा, कोशिश-हिम्मत की बात नहीं है। आप तो आंख पर पट्टी बांध कर
और खड़े हो जाएं। और जब आने लगे, तब भूल जाएं कि आप बड़े अधिकारी हैं और बड़े पढ़े-लिखे हैं और समझदार हैं।
तीसरे दिन वे कूद रहे थे। वह दूसरा ही व्यक्तित्व था। लौट कर उन्होंने मुझे कहा कि मैं इतना हलका हो गया हूं कि उड़ जाऊं। इतना हलका हो गया हूं! भीतर से न मालूम कितनी बीमारी बाहर निकल गई है। और अब मैं आपकी बात ज्यादा ठीक से समझ सकूंगा कि आप क्या कह रहे हैं।
तो हमारे दिमाग पर जो बैठा हुआ एक पहरा है तथाकथित समझदारी का, उसे तोड़ना पड़े तो आपके भीतर वह समझ आ सकेगी। तो पहले यह तथाकथित समझ को तोड़ने के लिए कुछ करें।
जुन्नैद नाम का सूफी फकीर था। उसके पास कोई साधक आता, तो पहले उससे वह कोई पागलपन करवाता। कोई पागलपन करवाता! उससे कहता कि जाओ बाजार में, सड़क पर खड़े हो जाओ और लोगों से कहो कि जो मुझे एक जूता मारेगा, उसको मैं एक आशीर्वाद दूंगा! और जो जूता मुझे नहीं मारेगा, सम्हल कर जाए, एक अभिशाप! वह आदमी कहता, आप यह क्या कह रहे हैं? पर वह कहता, पहले तुम एक बस्ती का चक्कर लगाओ; फिर हमारी-तुम्हारी बात हो सकेगी। तुमसे हमारा मामला नहीं चलेगा। तुम जरा दो-चार-दस जूते खाकर आओ। फिर--इसको गिर जाने दो, जो तुम्हारे ऊपर बैठा है--फिर जरा हम भीतर से सीधी-सीधी बात हो सकेगी।
समझ की भीतरी गहराई के लिए कहता है लाओत्से। वह ठीक कहता है कि डालो कांटा समझ का, तो क्रांति की मछली पकड़ में आएगी। लेकिन आप अपने घर की बालटी में बैठे हैं कांटा डाले। उसमें नहीं आएगी। आपको खुद ही पता है कि इस बालटी में कोई मछली ही नहीं है। आप जिस बुद्धि में पकड़ने चल रहे हैं क्रांति को, वहां कोई क्रांति नहीं है। जिसको आप बुद्धि कहते हैं, वह सब से ज्यादा कन्फरमिस्ट हिस्सा है, सब से ज्यादा आर्थोडाक्स हिस्सा है आपके व्यक्तित्व का। वहां कुछ पकड़ में नहीं आएगा।
उससे गहरे में, जहां जीवन की धारा बहती है, जहां तरलता है, जहां चीजें जन्म लेती हैं, अराजकता है जहां, जहां केऑस है अस्तित्व का; भीतर गहरे में, जहां हृदय में, जहां सारी ऊर्जा उठती है; जहां से काम आता है, क्रोध आता है, प्रेम आता है, घृणा आती है, दया, करुणा आती है--वहां। यह गणित और भाषा जहां

चलती है, वहां से नहीं; यह भूगोल और इतिहास जहां पढ़ा जाता है, वहां से नहीं; केमिस्ट्री और फिजिक्स की जानकारी जहां से होती है, वहां से नहीं। जहां से प्रेम पैदा होता है, जहां से घृणा पैदा होती है, जहां जीवन के मूल स्रोत बहते हैं, वहां जब कांटा डलता है समझ का, तो क्रांति की मछली पकड़ में आती है। उसके बिना नहीं आती है।
अब अगर कभी हजार में कोई एकाध ऐसा सरल आदमी होता है, तो तत्काल हो जाता है। आज तो वह हालत कम होती चली जाएगी। आज तो हमें कुछ उपाय, कुछ डिवाइस करनी पड़ेगी, जिससे तोड़ें। पहले तोड़ें, फिर भीतर प्रवेश हो सकता है। और तब, तब समझ और क्रांति दो चीजों के नाम नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

दूसरा सवाल पूछा है कि लाओत्से अगर कहता है, कुछ न करो, तो पुरुषार्थ
का क्या होगा?

क्या तुम समझते हो, कुछ न करना कोई छोटा-मोटा पुरुषार्थ है?
कुछ न करना इस जगत में सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। न करने की ताकत इस जगत में सबसे बड़ी मालकियत है। करना तो बच्चे भी कर लेते हैं। करने में कोई बड़ा पुरुषार्थ नहीं है। करना तो बिल्कुल सहज, साधारण सी घटना है। जानवर भी कर रहे हैं। न करना तो बहुत बड़ी बात है। तो यह मत सोचना कि लाओत्से जब कहता है कि न करो, इन-एक्टिविटी, तो इससे तो पुरुषार्थ खतम हो जाएगा।
समर्पण जो है, वह सबसे बड़ा संकल्प है। अब यह बहुत उलटा, ख्याल में आता नहीं है न हमें। हमें लगता है कि समर्पण, किसी के चरणों में सिर रख दिया, तो हम तो मिट गए। लेकिन पता है कि किसी के चरणों में सिर रखना साधारण आदमी की हैसियत की बात नहीं है! और किसी के चरणों में सचमुच सिर रख देना, पूरी तरह अपने को छोड़ देना, उसकी ही सामर्थ्य की बात है जो पूरी तरह अपना मालिक हो। छोड़ोगे कैसे? सिर पैर पर रख देने से थोड़े ही रख जाता है! इतनी मालकियत भीतर हो कि कह पाएं कि ठीक, छोड़ते हैं पूरा। लेकिन छोड़ेगा कौन? आप छोड़ सकते हैं? जो क्रोध नहीं छोड़ सकता, जो सिगरेट पीना नहीं छोड़ सकता, वह पूरा छोड़ देगा स्वयं को?
एक आदमी सिगरेट पीना छोड़ता है, तो वह कहता है, हम बड़ा पुरुषार्थ कर रहे हैं। वह भी छूटती नहीं। तो पूरा अपने को समर्पित करना! वह छोटा पुरुषार्थ नहीं है; बड़े से बड़ा पुरुषार्थ है। अंतिम पुरुषार्थ है। उसके आगे और कोई पुरुषार्थ नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि कोई चीज पूर्ण नहीं हो सकती। तो फिर शून्य की पूर्णता भी कैसे मिलेगी?

शून्य की पूर्णता आपको अगर पानी होती, तब तो वह भी न मिल सकती। वह है!
वह है! आप सिर्फ भरने का उपाय न करें, आप अचानक पाएंगे कि आप शून्य हैं। पूर्णता तो इस जगत में कोई भी नहीं हो सकती। आदमी के किए कुछ भी नहीं हो सकती।
मुल्ला नसरुद्दीन पर एक दफा सुलतान, जिसके घर वह काम करता था, नाराज
हो गया। और उसने कहा, यू आर ए परफेक्ट डोप; तुम बिल्कुल पूर्ण गधे हो। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, डोंट फ्लैटर मी, नोबडी इ.ज परफेक्ट! खुशामद
मत करो, कोई है ही नहीं पूर्ण। पूर्ण गधा भी कैसे हो सकता हूं! खुशामद मत करो मेरी बेकार, कोई पूर्ण है ही नहीं।
पूर्णता तो कोई भी नहीं हो सकती। लेकिन शून्यता अगर आपको लानी होती,
तो वह भी पूर्ण नहीं हो सकती थी। लेकिन शून्यता आपका स्वभाव है। वह आपको लानी नहीं है, वह है। हां, आप चाहें तो इतना कर सकते हैं कि जो है, उसको ढांक सकते हैं, छिपा सकते हैं, भूल सकते हैं। फारगेटफुलनेस हो सकती है, बस। मिटा तो नहीं सकते, भूल सकते हैं। विस्मरण कर सकते हैं। शून्यता की पूर्णता आपको पानी नहीं है। आपको सिर्फ पूर्ण होने के सब प्रयास छोड़ देने हैं। और आप पाएंगे कि शून्य हो गए।

उन्हीं मित्र ने पूछा है कि घड़ा शून्य होगा, तो घड़ा भी मिट जाएगा न!

अब इसमें समझने जैसा है कि लाओत्से किसको घड़ा कहता है और आप किसको घड़ा कहते हैं। हम दोनों की भाषा में फर्क है। हम कहते हैं मिट्टी की दीवार को घड़ा। और जब हम बाजार से खरीद कर लाते हैं, तो हम वह जो चार पैसे चुका कर आते हैं, वह जो मिट्टी की दीवार कुम्हार ने बनाई है, उसके ही चुका कर आते हैं। घड़े का हमारे लिए मतलब है, वह जो मिट्टी की दीवार है। और लाओत्से का मतलब है, वह जो मिट्टी की दीवार के भीतर खालीपन है, वह है घड़ा। और लाओत्से कहता है कि हम तो वह घड़ा खरीद कर लाते हैं। यह मिट्टी की दीवार तो केवल सीमा है; वह जो भीतर शून्य है, वह है घड़ा। घड़ा तो वही है। उस शून्य की यह सिर्फ सीमा- रेखा है।
और यह सीमा-रेखा भी इसीलिए रखनी पड़ती है हमें, क्योंकि हमें घड़े को भरना है। अगर खाली ही रखना हो, तो इस सीमा-रेखा की कोई जरूरत नहीं है। ख्याल करें, इस सीमा-रेखा को हमें क्यों बनाना पड़ता है? यह कुम्हार इस शून्य के चारों तरफ यह मिट्टी का एक गोल घेरा क्यों बनाता है? ताकि हम कुछ भर सकें। क्योंकि शून्य में तो कुछ न भरा जा सकेगा। तो शून्य को चारों तरफ से घेर देते हैं पदार्थ से, ताकि फिर भरा जाए। भरा तो जाएगा शून्य में ही, लेकिन फिर उसमें तलहटी बनानी पड़ेगी। नहीं तो वह गिर जाएगा। इसलिए घड़े की दीवार बनाते हैं, क्योंकि भरना है।
लेकिन अगर खाली ही करना है, तो आप बाजार में घड़ा खरीदने जाएंगे? क्योंकि हमें घड़ा खाली करना है! खाली घड़ा कोई खरीदने जाएगा? खाली घड़े को कोई सम्हाल कर रखेगा?
अगर भरना नहीं है, तो दीवार बेकार हो गई। उसका कोई प्रयोजन, उसका प्रयोजन ही भरने के लिए था। तो जैसे ही कोई व्यक्ति सूना रहने के लिए राजी हो गया, रिक्त रहने के लिए राजी हो गया, शरीर की जो दीवार है, वह छूट जाती है। उसी को हम पुनः देह का निर्मित न होना कहते हैं। इसे ऐसा समझ लें कि हमारे भीतर एक शून्य है, जो हमारी आत्मा है। और हमारा शरीर एक घड़ा है-- दीवार मिट्टी की। जब तक हमें भरना है अपने को, किन्हीं इच्छाओं को पूरा करना है, कहीं पहुंचना है, कुछ पाना है, कोई यात्रा करनी है, कोई लक्ष्य है, कोई वासना है, कोई इच्छा है, तब तक बार-बार कुम्हार हमारे घड़े को बनाता चला जाएगा।
बुद्ध को जिस दिन ज्ञान हुआ, बुद्ध ने कहा, हे मेरे मन के कुम्हार, अब तुझे घड़ा बनाने की जरूरत न पड़ेगी। यह आखिरी बार। और तुझे धन्यवाद देता हूं, तूने मेरे लिए बहुत घड़े बनाए। हे राज, अब तुझे मेरे लिए घर न बनाना पड़ेगा। क्योंकि अब तो रहने वाले की मर्जी ही रहने की न रही। अब मेरे लिए किसी घर की कोई जरूरत न पड़ेगी।
हर बार, हमारी वासना जो भरने की है, उसी की वजह से हम शरीर निर्मित करते हैं। और जिस दिन हम शून्य होने को राजी हो जाएंगे, उसी दिन फिर इस शरीर को बनाने की कोई जरूरत न रह जाएगी।
लेकिन जो भूल हम घड़े के साथ करते हैं, वही भूल अपने साथ करते हैं। घड़े
की दीवार को समझते हैं घड़ा है, अपनी दीवार को समझते हैं मैं हूं। न भीतर के शून्य को हम कभी पहचानते कि कौन है और न घड़े के भीतर के शून्य को पहचानते कि कौन है। वह जो घड़े के भीतर आकाश है, वही है मूल्यवान। क्योंकि उसी में चीजें समाएंगी। आप जब बाजार से खरीद कर लाते हैं, तो असली में उसी शून्य के लिए खरीद कर लाते हैं। लेकिन चूंकि भरने की आतुरता है, इसलिए दीवार अनिवार्य होती है। इसलिए कुम्हार आपकी सेवा करके दीवार बना देता है।
यह जो शून्य होने का समर्पण हो जाए, तो फिर कोई दीवार न बचेगी, कोई घड़ा
न बचेगा। और घड़े के गिर जाने से और तो कुछ नहीं होने वाला है। भीतर का जो आकाश था घड़े का, वह बाहर के आकाश से एक हो जाएगा। बीच में कोई व्यवधान नहीं है, कोई बैरियर नहीं है, कोई बाधा नहीं है। वह जो छोटी सी आत्मा है घिरी हुई घड़े के भीतर, वह परमात्मा के साथ एक हो जाएगी। उसे हम मोक्ष कहें, निर्वाण कहें, या कुछ और कहना चाहें तो कहें। फिर घड़े की कोई जरूरत नहीं है। घड़े की जरूरत भरने के लिए है। इसलिए जब आपको कुछ भरना होता है, तब आप घड़ा खरीद कर लाते हैं; भरना ही नहीं होता, तो कोई घड़ा नहीं खरीदता। जब भरना होता है कुछ,

तो हम शरीर की मांग करते हैं; और जब भरना ही नहीं होता, तो शरीर का कोई सवाल ही नहीं है।
लाओत्से कह रहा है कि वह शून्य आपको पैदा नहीं करना है। आप तो सिर्फ घड़ा ही पैदा करते हैं। कुम्हार भीतर के शून्य का निर्माण नहीं करता; सिर्फ शून्य के चारों तरफ एक दीवार का निर्माण करता है। इसलिए फिर चार पैसे में मिल जाता है। नहीं तो उतना शून्य तो आप सारी मनुष्य-जाति की संपत्ति लगा दें, तो भी नहीं मिल सकता। वह जो घड़े के भीतर जो खाली आकाश है, सारी मनुष्य-जाति की सब संपत्ति और सब प्राण लग जाएं, तो भी हम उतना सा खाली आकाश पैदा नहीं कर सकते हैं। वह तो है ही। कुम्हार उसको पैदा नहीं करता, कुम्हार तो एक सिर्फ घड़े की दीवार निर्मित करता है; मिट्टी का एक घेरा बना देता है। आप मिट्टी के घड़े को उठा कर जहां भी ले जाइए, आप इस भ्रम में मत रहना कि वही आकाश उसके भीतर रहता है, जो कुम्हार के घर था। आप घड़े को लेकर चलते हैं, आकाश बदलता चलता है। आपके घड़े का आकाश साथ थोड़े ही चला आता है। सिर्फ घड़ा आप कहीं भी ले जाइए, इतना पक्का है कि इतना आकाश उसमें कहीं भी होगा। कहीं भी घड़े को फोड़ दें, वह आकाश परम आकाश में लीन हो जाता है।
इसलिए बुद्ध ने एक बहुत कीमती बात कही, जो नहीं समझी जा सकी। और कीमती बातें नहीं समझी जा सकती हैं। बुद्ध ने कहा, तुम यह भी मत सोचना कि तुम्हारे भीतर वही आत्मा चलती है। इसलिए बुद्ध को नहीं समझा जा सका। जैसे मैंने कहा कि कुम्हार ने घड़ा बनाया; घड़े को आप बाजार से लेकर चले; आप एक इंच हटते हैं कि दूसरा आकाश उस घड़े के भीतर प्रवेश करता है; आप घर आते हैं, तब दूसरा आकाश, आपके घर का आकाश उसमें प्रवेश करता है। आप वही आकाश लेकर नहीं आते। लेकिन आपको मतलब भी नहीं है आकाश से, आपको भरने से मतलब है। कौन सा आकाश, कोई भी आकाश काम देगा।
बुद्ध ने जब यह बात कही, तो बहुत कठिन हो गई। क्योंकि हम सब को ख्याल रहा है कि एक आत्मा हमारे भीतर बैठी है, वही आत्मा। बुद्ध कहते हैं, नहीं, वह तो तुम यात्रा करते जाते हो और आत्मा बदलती चली जाती है। तुम तो घड़े हो, यात्रा करते हुए; आत्मा तो भरा हुआ आकाश है।

इसलिए बुद्ध ने कहा कि जैसे दीया सांझ हम जलाते हैं, सुबह बुझाते हैं,
तो कहते हैं, वही दीया बुझा दो जो सांझ जलाया था। कहने में ठीक है। लेकिन सांझ जो ज्योति जलाई थी, वह कभी की बुझ चुकी। प्रतिपल दूसरी ज्योति उसकी जगह आती चली जाती है। इसीलिए तो धुआं बनता है। पिछली ज्योति धुआं होकर उड़ जाती है, दूसरी ज्योति उसके पीछे चली आती है। मगर इतनी तेजी से आती है पिछली ज्योति और पहली ज्योति के जाने और दूसरे के आने में इतना कम अंतराल है कि हमें दिखाई नहीं पड़ता कि एक ज्योति चली गई और दूसरी आ गई। मगर सुबह जब आप बुझाते हैं, तो बुद्ध कहते हैं, अगर ठीक कहना हो तो इतना ही कहो कि उस ज्योति को बुझा दो, जो हमने सांझ जलाई थी उसकी जगह जो अब जल रही हो। संतति हो उसकी, उसकी धारा में बह रही हो। वही ज्योति तो अब नहीं बुझाई जा सकती, वह तो बुझ गई कई दफा।
मगर फिर भी यह ज्योति उसीशृंखला में बह रही है। तो बुद्ध कहते हैं, आत्मा एकशृंखला है। ए सिरीज ऑफ एक्झिस्टेंसेस, यूनिट ऑफ एक्झिस्टेंस नहीं। इकाई नहीं। एकशृंखला। आप पिछले जन्म में जो आत्मा आपके पास थी, ठीक वही आत्मा आपके पास नहीं है, सिर्फ उसी धारा में है। निश्चित ही, मेरे पास और आपके पास जो आत्मा है, वे अलग हैं। लेकिन भेद दो सीरीज का है।
इसको समझ लें। दो दीए हमने जलाए। रात भर दीए जलते रहे। दोनों की ज्योति बुझती चली गईं। सुबह जब हम एक दीए को बुझाते हैं, अ को, तो ब नहीं बुझ जाएगा। और अ और ब के बीच फासला है, फर्क है। फिर भी अ वही नहीं है, जो सांझ हमने जलाया था। और तब भी अ ब नहीं है। ध्यान रहे, अ वही नहीं है जो हमने सांझ जलाया था। अगर हम सांझ जलाने वाली ज्योति को कहें अ एक, तो सुबह जिस दीए को बुझा रहे हैं, वह है अ एक हजार। अगर हम ब को कहें ब एक, तो सुबह जिस दीए को बुझा रहे हैं, वह है ब एक हजार। ब कीशृंखला अपनी है, अ कीशृंखला अपनी है।
हमारे जन्म की धाराशृंखला है। बुद्ध ने पहली दफा इस जगत को जीवंत, प्रवाहमान आत्मा का भाव दिया--डायनैमिक, रिवर-लाइक, सरित-प्रवाह जैसी। जिस

दिन भी घड़ा टूटेगा, उस दिन वही आत्मा मुक्त नहीं होगी, जिसने मुक्ति चाही थी। उसीशृंखला में कोई चेतना की धारा मुक्त होगी।शृंखला एक है। इकाई नहीं है, प्रवाह है। और अब जब कि वैज्ञानिक पदार्थ के जगत में भी इस सत्य के करीब पहुंच रहे हैं। क्योंकि वे कहते हैं, अब एटम कहना ठीक नहीं, ईवेंट कहना ठीक है। अब! अब यह कहना कि अणु है, गलत है। घटना, अणु नहीं। और अब यह कहना कि वस्तु है, ठीक नहीं है--वस्तु-प्रवाह, बहाव, क्वांटम!
लाओत्से कहता है, शून्य हो जाओ। तो जैसे ही शून्य होने की घटना घटेगी, वैसे ही घड़ा व्यर्थ हो जाएगा। फिर भी घड़ा थोड़े दिन जी सकता है, क्योंकि घड़े के अपने नियम हैं। आप एक घर में घड़ा ले आए, भरने लाए थे, लेकिन घर लाते-लाते आप बदल गए और अब आप नहीं भरना चाहते। तो आपके नहीं भरने भर से घड़ा नहीं फूट जाएगा। घड़े का अपना अस्तित्व है। घड़े को आप रख दें, खाली वह रखा रहेगा, रखा रहेगा, जीर्ण-शीर्ण होगा, टूटेगा। दस वर्ष लगेंगे, गिरेगा। जिस दिन आपने तय किया कि अब घड़े में कुछ नहीं भरना है, एक बात पक्की हो गई कि अब दुबारा आप घड़ा खरीद कर न लाएंगे। लेकिन यह घड़ा जो आप खरीद कर ले आए हैं, यह घड़ा आपके निर्वासना होने से ही नहीं टूट जाएगा। इसकी अपनी धारा रहेगी; इसका मोमेंटम अपना है।
इसलिए बुद्ध को ज्ञान हुआ चालीस वर्ष की उम्र में, मरे तो वे अस्सी वर्ष की उम्र में। चालीस साल घड़ा तो था। महावीर को ज्ञान हुआ कोई बयालीस साल की उम्र में, मरे तो वे भी कोई चालीस साल बाद। तो चालीस साल तक घड़ा तो था। लेकिन अब घड़ा गैर-भरा था। और अब सिर्फ प्रतीक्षा थी कि घड़ा अपने ही नियम से बिखर जाए, टूट जाए।
कोई पूछ सकता है, हम घड़े को फोड़ तो सकते हैं! जब भरना ही नहीं है, तो फोड़
कर फेंक दें। कोई पूछ सकता है। और ठीक सवाल है कि एक घड़े को मैं खरीद कर लाया; अब भरना ही नहीं है, तो फोड़ कर फेंक दूं। तो बुद्ध या महावीर फिर चालीस साल क्यों जीते हैं? जब कि शून्य हो गया सब, अब कुछ वासना न रही, अब ये चालीस साल क्यों जीते हैं?
अगर हम बुद्ध और महावीर से पूछें, तो वे कहेंगे कि फोड़ना भी एक वासना है। इतनी भी वासना न रही कि अब घड़े को भी फोड़ दें। अब जो हो रहा है, होगा। वह भी वासना है, क्योंकि कुछ करना पड़ेगा न। घड़े को फोड़ने के लिए कुछ करना पड़ेगा। वह करना भी, घड़े के प्रति अभी किसी तरह का लगाव बाकी रह गया है, इसकी खबर है। अभी घड़े से संबंध जारी है। यू आर इन रिलेशनशिप! अभी तुम घड़े को फोड़ते हो; अभी तुम घड़े को मानते हो। अभी घड़े से कोई संबंध, लेन-देन जारी है। नहीं, तो बुद्ध या महावीर कहते हैं कि ठीक है, हम खाली हो गए, अब घड़ा आयु-कर्म से, जो उसकी आयु है, जैसा हमने मांगा था पिछले जन्म में कि ऐसा घड़ा मिल जाए कि अस्सी साल रहे। बाजार खरीदने गए थे, कुम्हार से कहा था, ऐसा घड़ा दो कि दस साल चल जाए। चुकाए दाम, दस साल चलने वाला घड़ा ले आए। लेकिन पांच साल में ज्ञान हुआ और लगा कि कुछ नहीं भरना है। पर यह घड़े का अभी आयु-कर्म पांच साल का शेष है। हमने ही चुकाया था उसके लिए। इसको फोड़ेंगे भी नहीं। इसको चलने देंगे। इससे कोई दुश्मनी भी नहीं है। यह जब गिर जाएगा अपने आप, तो गिर जाएगा। इसको बचाने की भी कोई चेष्टा नहीं होगी।
इसलिए बुद्ध को दिया गया है भोजन, वह विषाक्त है, वे चुपचाप कर गए। मुंह में कड़वा मालूम पड़ा, जहर था बिल्कुल। पीछे लोगों ने कहा कि आपने कैसा पागलपन किया! आप जैसा बुद्धिमान, आप जैसा सजग पुरुष, कि जो रात सोते में भी जागता है, उसे पता न पड़ा हो जहर पीते वक्त, यह हम नहीं मान सकते हैं। बुद्ध ने कहा, पूरा पता पड़ रहा था। पहला कौर मुंह में रखा था, तभी जाहिर हो गया था। विषाक्त था, जहर था।
तो थूक क्यों न दिया? मना क्यों न किया? और कौर क्यों ले लिए?
बुद्ध ने कहा, वह जिसने खाना बनाया था, उसे पीड़ा होती। उसे अकारण पीड़ा होती; उसे अकारण दुख होता। वह बहुत दीन और गरीब था। उसकी हंडी में सब्जी भी इतनी ही थी, मेरे लायक। और वह इतना आनंदित था कि उसके आनंद को विषाक्त करने का कोई भी तो कारण नहीं था।
पर लोगों ने कहा, आप यह क्या कह रहे हैं! आपकी मृत्यु घटित हो सकती है।
तो बुद्ध ने कहा, मैं तो उसी दिन मर गया अपनी तरफ से, जिस दिन वासना क्षीण हुई, जिस दिन तृष्णा समाप्त हुई। आयु-कर्म है। वह घड़ा जब तक चल जाए!

तो अगर इस घर में रखे घड़े को कोई आकर डंडे से फोड़ता होगा, तो भी नहीं रोकेगा। फोड़ने भी नहीं जाएगा; इसे कोई डंडे से फोड़ता होगा, तो भी नहीं रोकेगा। पर यह आखिरी है, क्योंकि अब दुबारा घड़ा खरीदने इस तरह की चेतना नहीं जाती। दुबारा उसका जन्म नहीं है। जन्म-मरण से मुक्ति का इतना ही अर्थ है कि जिसने शून्य होने का तय कर लिया, अब उसे पुनः घड़ों को खरीदने का प्रयोजन नहीं रह गया है।
एक सवाल और ले लें।

कोई पूछता है, मन ही एक बाधा है, उसके कारण ही स्वयं का साक्षात्कार नहीं हो पाता। इस मन को कैसे खाली किया जाए?

सदा ही हम ऐसा सवाल पूछते हैं। सवाल गलत है। और गलत होने की वजह से जो
भी उत्तर मिलते हैं, वे हमारे काम नहीं पड़ते। ठीक सवाल पूछना बड़ी मुश्किल बात है। ठीक जवाब पाने से ज्यादा मुश्किल है! क्योंकि ठीक सवाल उठ जाए, तो ठीक जवाब बहुत दूर नहीं होता।
हम सदा यही पूछते हैं कि मन को कैसे रोका जाए? कैसे शून्य किया जाए?
नहीं, हमें पूछना सिर्फ इतना ही चाहिए कि मन को कैसे न भरा जाए? हाऊ नॉट टु फिल इट! हम पूछते हैं, हाऊ टु एम्पटी इट? उसे कैसे खाली करें? पूछना चाहिए कि कैसे हम इसे न भरें? क्योंकि खाली तो वह है ही। जिसको आप खाली करने के लिए पूछ रहे हैं, वह खाली है। खाली आपको करना ही नहीं है। आपकी इतनी कृपा काफी होगी कि आप न भरें।
लेकिन हम सदा पूछते हैं, कैसे खाली करें? और तब हम ऐसी विधियां खोज लाते हैं, जो और भरने वाली सिद्ध होती हैं। क्योंकि आप कुछ भी करेंगे, पूछते हैं, कैसे खाली करें? तो आप कुछ और साज-सामान ले आएंगे खाली करने का; उसको भी इसी में भर लेंगे। नहीं, पूछें कि कैसे हम न भरें?
हम चौबीस घंटे भर रहे हैं। और मजा यह है कि यह भराव करीब-करीब ऐसा है
कि अगर हम दस मिनट भी न भरें, तो हजारों साल हमने जो भरा है, वह खाली हो जाए। यह मामला ऐसा है कि जिसमें हम भर रहे हैं, वह शून्य है। चूंकि हम सतत भरते हैं, इसलिए भरे होने का भ्रम बना रहता है। अगर हम दस मिनट को भी रुक जाएं और न भरें, तो वह जो जन्मों-जन्मों का भरा है, वह नीचे गिर जाए और घड़ा खाली हो जाए अभी। क्योंकि नीचे बॉटमलेस है। आपका जो मन है, उसमें नीचे कोई तलहटी नहीं है।
मगर सतत भरते रहते हैं। वह करीब-करीब ऐसा है, जैसा कि आटे की चक्की वाला ऊपर से गेहूं डालता जाता है और नीचे से आटा गिरता चला जाता है। अब वह कहता है, इस आटे को कैसे रोकें? वह यह नहीं पूछता कि वह गेहूं को डालना कैसे बंद करें? वह गेहूं डालता चला जाता है उधर से और इधर से कहता है, इसको कैसे रोकें! अब वह इसको रोकने की कोशिश करता है, तो और झंझट होती है। क्योंकि वह गेहूं पीछे से डाला जा रहा है। तो एक पांच मिनट रोक दो, तुम्हें इस आटे को रोकने के लिए कुछ न करना पड़ेगा। यह चक्की अपने से खाली हो जाएगी। असली सवाल यह है कि हम कैसे भर रहे हैं, उसे जरा देख लें। चौबीस घंटे
भर रहे हैं। एक दिन ऐसा नहीं जाता जिस दिन हम नई वासनाएं निर्मित न करते हों। अगर आप पुरानी वासनाओं के साथ ही रुक जाएं एक दिन, तो उसी दिन आप पाएं कि खाली हो गए। कल आपने जो-जो वासनाएं की थीं, कृपा करके चौबीस घंटे उतने पर रुक जाइए। यह कोई बहुत बड़ा मामला नहीं है कि कल जितना किया था वासना, उतने पर ही रुकूंगा। कल अगर दस रुपए चाहे थे, तो दस रुपए आज ही चाहूंगा। आज भी दस ही चाहूंगा, कल पर रुक जाता हूं।
तो ये चौबीस घंटे में आप मुश्किल में पड़ जाएंगे; और पाएंगे, खाली होने लगे। अगर आपको दस रुपए की चाह बचानी है, तो आज आपको बीस चाहने पड़ेंगे, तो बचेगी। आपको आज चाह जारी रखनी पड़ेगी, उसको पोषण देना पड़ेगा, उसे बढ़ाते रहना पड़ेगा, उकसाते रहना पड़ेगा। उसको भोजन और खाद और पानी देते रहना पड़ेगा।
अगर आप एक क्षण भी रुके, तो यह करीब-करीब मामला ऐसा है, जैसे कोई साइकिल चलाता है, पैडल रोके कि गिरे। पिछले पैडल पर ही रुक जाएं, ज्यादा देर साइकिल चलने वाली नहीं है। चढ़ाव पर हुए, तो उसी वक्त गिर जाएगी; उतार

पर हुए, तो थोड़ी दूर चल सकती है। मगर गिरेगी। कांसटेंट पैडलिंग जरूरी है साइकिल चलाने के लिए। करीब-करीब मन के चक्र को चलाने के लिए भी कांसटेंट पैडलिंग। उसमें एक क्षण की भी रुकावट खतरनाक है, साइकिल गिर जाएगी।
रोज हम नई वासना निर्मित करते हैं, रोज। किसी का कपड़ा दिखाई पड़ा, वासना निर्मित हुई। कोई मकान दिखाई पड़ा, वासना निर्मित हुई। किसी का चेहरा दिखाई पड़ा, वासना निर्मित हुई। हिलते-डुलते भी नहीं जरा, जरा हिले- डुले कि वासना निर्मित हुई। उठे-बैठे कि वासना निर्मित हुई।
इस पर सजग हों। भरने के मामले में सजग हों। खाली की फिक्र छोड़ दें। खाली आपसे न हो सकेगा। खाली कभी किसी से नहीं हुआ। भरने की भर फिक्र छोड़ें। और एक दिन आप अचानक पाएंगे कि भरना बंद है और नीचे से आटा आना चक्की से बंद हो गया है, वह खाली पड़ी है। भरने का ख्याल रखें, कहां-कहां से भर रहे हैं! पहले सजग हों; जल्दी न करें रोकने की; पहले सजग हों कि कहां-कहां से भरते हैं! किस-किस भांति भरते हैं! और आदमी ऐसा है कि आखिरी दम तक भरे जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन को एक पागल कुत्ते ने काट लिया। दो-चार दिन उन्होंने कोई फिक्र ही न की। लोगों ने कहा भी कि पागल कुत्ते का मामला है, जाकर डाक्टर को दिखा लो। जब दिखाया, तब तक जहर फैल चुका था। चिकित्सकों ने बैठक की और उन्होंने कहा कि नसरुद्दीन को सीधा-सीधा कह देना जरूरी है। कह दिया कि हाइड्रोफोबिया हो गया। अब सीमा के बाहर है। पागल होकर आप रहोगे। बहुत देर कर दी आने में।
सोचा था, नसरुद्दीन घबड़ा जाएगा। नसरुद्दीन ने कहा, कोई हर्ज नहीं। एक कलम-कागज ले आओ। कलम-कागज! सोचा डाक्टर ने कि शायद वसीयत लिखता होगा; या सोचा कि शायद मित्रों को, पत्नियों को चिट्ठी-पत्री लिखता होगा। लेकिन चेहरे पर कोई चिंता नहीं है, कोई घबड़ाहट नहीं है। कागज-कलम दे दिया। नसरुद्दीन जब लिखने लगा, तो घंटे भर तक सिर न उठाया। डाक्टर भी हैरान हुआ कि कितना लिख रहा है! जब लिख कर सिर उठाया, डाक्टर ने पूछा, क्या वसीयत लिख रहे हैं इतनी बड़ी? या पत्र लिख रहे हैं घर?
नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, मैं उन लोगों के नाम लिख रहा हूं, जिनको काटूंगा। पागल हो जाऊंगा न! लिस्ट बना रहा हूं। एक दफा पागल हो गए, फिर लिस्ट न बना पाए। जब पागल होने ही जा रहे हैं! और उसने डाक्टर से कहा, डोंट फील जेलस, यू विल नॉट बी डिप्राइव्ड। तुम्हारा नाम इसमें मैंने रखा है। पहला नंबर तुम्हारा ही रखा है।
यह जो नसरुद्दीन है, यह आदमी के भीतर की बड़ा ठीक खबर देने वाला आदमी है। अगर पागल कुत्ता काट जाए, तो पहले यही ख्याल आएगा कि किसको काटें। अब जो हो गया, हो गया। किसको काटें? मरते दम तक वासना निर्मित होती चली जाती है। क्या कर लेना है अब? उसकी योजना बना लो; वह लिस्ट तैयार कर रहा है। वक्त रहते लिस्ट तो तैयार कर लो।
भरने की तरफ ख्याल रखें कि हम प्रतिपल भर रहे हैं। और जितना सजग हो जाएंगे भरने के प्रति, उतना ही धीरे-धीरे पाएंगे कि भरना बिल्कुल फिजूल है। जिंदगी भर भर कर तो भर नहीं पाए! अनेक जन्मों भर कर नहीं भर पाए! इधर से भरते हैं, इधर से सब निकल जाता है। लेकिन भरने का भ्रम कभी छूटता नहीं, क्योंकि भरने पर हम ध्यान ही नहीं देते।
नसरुद्दीन की एक कहानी और। फिर मैं बात पूरी करूं। एक युवक उसके पास आया है और उसने कहा कि कैसे कहते हो नसरुद्दीन कि मन को खाली करें? कैसे? नसरुद्दीन ने कहा कि अभी तो मैं कुएं पर पानी भरने जा रहा हूं, तू मेरे पीछे आ, और बीच में सवाल मत पूछना। अगर सवाल पूछा, तो भगा दूंगा। लौट कर जवाब दूंगा।
नसरुद्दीन ने दो बालटियां उठाईं और भागा कुएं पर। वह युवक साथ-साथ गया। नसरुद्दीन ने एक बालटी तो रखी कुएं के पाट पर। युवक थोड़ा हैरान हुआ, जब उसने बालटी को रखा जाते देखा। देखा कि उसमें कोई नीचे तलहटी थी ही नहीं। खाली ड्रम था। दोनों तरफ कुछ न था। पर उसने कहा कि इस मूरख ने कहा है कि बीच में सवाल न पूछना। फंस गए! यह तो कभी भरने वाली नहीं है। अब बुरे फंस गए। और जब तक, यह बोलता है, भर न जाए, घर न लौटूं, तब तक सवाल-जवाब कुछ होगा

नहीं। और यह कब भरेगी? यह भर ही नहीं सकती। मगर उसने सोचा, थोड़ा तो साहस रखो। एक मिनट, दो मिनट देखो तो, यह करता क्या है।
नसरुद्दीन ने नीचे बालटी डाली। पानी खींच कर उस खाली ड्रम में डाला।
जब तक उन्होंने डाला, तब तक वह निकल गया। उन्होंने दूसरी बालटी नीचे डाली।
दो-तीन बालटी निकल चुकीं।
उस युवक ने कहा कि ठहरो महानुभाव, अब मुझे पूछना भी नहीं है। अगर आप जवाब भी देते हों लौट कर, हमको पूछना नहीं है। लेकिन एक सलाह आपको दे दें। नसरुद्दीन ने कहा कि चुप! अक्सर मैं देखता हूं कि जो लोग सीखने आते हैं, वे जल्दी से सिखाना शुरू कर देते हैं। यू केम एज ए डिसाइपल एंड नाऊ यू हैव बिकम मास्टर। अब तुम हमको एडवाइस दे रहे हो। गुस्ताख, इस तरह की बात दुबारा नहीं करना। खड़ा रह अपनी जगह पर!
उस आदमी ने कहा कि लेकिन यह भरेगी कब, जरा ख्याल तो करिए! आप तीन बालटियां डाल चुके हैं। कुछ भी पानी एक बूंद नहीं बचा है।
नसरुद्दीन ने कहा कि दुनिया में जब कोई भी ख्याल नहीं कर रहा है, तो मैंने ही ठेका लिया है गलत बातों का ख्याल करने का? जन्म-जन्म से भर रहे हैं लोग, और नहीं भरा। और ख्याल नहीं कर रहे हैं। तो हमने तो अभी तीन ही बालटी डाली हैं। ऐसा तो कुछ... । तू चुप रह!
वह थोड़ी देर और खड़ा रहा। नसरुद्दीन ने और दस-पांच बालटियां डालीं। उसने कहा कि थोड़ा तो ख्याल करिए। एक सीमा होती है। जरा ऊपर नजर तो डालिए। नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे इससे प्रयोजन नहीं है कि बालटी भरती है या नहीं भरती है। मैं अपना पुरुषार्थ पूरा करके रहूंगा। हम भर कर रहेंगे। हम बालटी से पूछने नहीं जाएंगे। हम तो भर कर रहेंगे। हमारा काम भरना है। बालटी न भरेगी? देखें, कैसे नहीं भरती है!
उस युवक ने कहा, मैं जाता हूं, नमस्कार! वह चला गया।
लेकिन रात उसे नींद न आई कि यह आदमी! क्या मतलब रहा होगा इसका? बार-बार जितना सोचा, उतना उसे लगा कि भूल हो गई। थोड़ा रुकना था। पता नहीं, वह अभी भी भर रहा है या क्या कर रहा है? वह तो जैसे ही वह आदमी गया था, नसरुद्दीन अपने घर अपनी बालटी लेकर चले गए थे। वह आधी रात उठ कर कुएं पर पहुंचा, देखा कि जा चुका है। नसरुद्दीन के घर पहुंचा, देखा कि वह सो रहा है। उसे उठाया और कहा कि क्या हुआ? वह बालटी भरी कि नहीं?
नसरुद्दीन ने कहा, पागल, वह तेरे लिए रखी थी।
हम अपने मन को भर रहे हैं जन्मों-जन्मों से। और जन्मों को छोड़ दें, क्योंकि इतना पुराना है, वह हमें भूल गया। इस जन्म में भी हम भर रहे हैं। कभी ख्याल किया कि जिस चीज से आपने भरा है, उसमें से रत्ती भर भी भीतर बचा है? कितनी बार क्रोध किया, कितना बचा है? कितनी बार भोग किया, कितना बचा है? क्या-क्या किया, उसमें से बचा क्या है? आपकी संपदा क्या है उसमें से? बालटी खाली है। और हम पूछते हैं कि बालटी को खाली कैसे करें? मजा यह है कि बालटी खाली है। वह भरी ही नहीं है। आपको खाली करने की जरूरत नहीं है। कृपा करके आप उसे भरने की जो पागलपन में लगे हैं, देख ही नहीं रहे हैं खाली बालटी की तरफ, कुएं में डाल रहे हैं, भर रहे हैं, डाल रहे हैं... ।
जैसे नसरुद्दीन किसी से पूछे कि यह जो ड्रम रखा है कुएं के पाट पर, इसको खाली कैसे करें, वैसे ही हमारा पूछना है। मन भरा कहां है? किसको खाली करने की बात है? मन खाली है। लेकिन इतने जोर से हम भरते चले जाते हैं कि पता ही नहीं चलता कि यह मन खाली है।
इस भरने पर थोड़ा ध्यान रखें। और जो-जो भरा हो अब तक और कुछ भी न भर पाया हो, उससे थोड़े सजग हों। एक चौबीस घंटे के लिए कोई राजी हो जाए कि नहीं भरूंगा! वह पाएगा, यह मन सदा से खाली है, इसमें कभी कुछ भरा ही नहीं जा सका है।
तो उलटा मत पूछें। गलत सवाल न उठाएं। गलत सवाल गलत जवाबों में ले जाते हैं। ठीक सवाल ठीक जवाब में ले जाता है। ठीक सवाल यह है कि हम जो भर रहे हैं, यह कैसे न भरें?
और कैसे न भरें का इतना ही मतलब है, थोड़ा सजग हो जाएं। अगर आपको पता चल जाए कि यह ड्रम दोनों तरफ से टूटा है, तो फिर आप भरेंगे? हाथ से बालटी छूट जाएगी; हंसेंगे और घर लौट जाएंगे।

उस शून्य को लाना नहीं है, वह शून्य हमारे भीतर है। चमत्कार तो यह है
कि हमने उस शून्य को भी भरा हुआ जैसा बना रखा है। ऐसा लगता है कि सब भरा हुआ है। इस भ्रम के प्रति जागना पर्याप्त है।
कुछ और सवाल रह गए हैं। अगली बार जब बैठक होगी तब उनको चर्चा कर लेंगे।

ताओ उपनिषद, भाग एक
सोलहवां प्रवचन

निष्पक्ष हैं तीनों--स्वर्ग, पृथ्वी और संत

Chapter 5 : Sutra 1

Nature

Heaven and Earth do not act from (the impulse of) any wish to be benevolent;
They deal with all things as the dogs of grass are dealt with.
The sage does not act from (any wish to be) benevolent;
They deal with the people as the dogs of grass are dealt with.

अध्याय 5 : सूत्र 1

प्रकृति

स्वर्ग और पृथ्वी को सदय होने की
कामना उत्प्रेरित नहीं करती;
वे सभी प्राणियों के साथ वैसा ही
व्यवहार करते हैं, जैसे कोई घास-निर्मित कुत्तों
से व्यवहार करता है।
तत्वविद (संत) भी सदय नहीं होते।
वे सभी मनुष्यों के साथ वैसा ही व्यवहार
करते हैं, जैसा घास-निर्मित कुत्तों से किया जाता है।

पृथ्वी पर जितने जानने वाले लोग हुए हैं, उन सब में लाओत्से बहुत अद्वितीय है।
कृष्ण की गीता में कोई साधारण बुद्धि का व्यक्ति भी कुछ जोड़ना चाहे
तो जोड़ सकता है। महावीर के वचनों में या बुद्ध और क्राइस्ट के वक्तव्यों में कुछ भी मिश्रित किया जा सकता है। और पता लगाना बहुत कठिन होगा। क्योंकि उनके वक्तव्य ऐसे हैं कि साधारण मनुष्य की नीति और समझ के प्रतिकूल नहीं पड़ते। और इसलिए दुनिया के सभी शास्त्र प्रक्षिप्त हो जाते हैं; इंटरपोलेशन हो जाता है। दूसरी पीढ़ियां उनमें बहुत कुछ जोड़ देती हैं। उन शास्त्रों को शुद्ध रखना असंभव है।
लेकिन लाओत्से की किताब जमीन पर बचने वाली उन थोड़ी सी किताबों में से
एक है, जो पूरी तरह शुद्ध है। इसमें कुछ जोड़ा नहीं जा सकता। न जोड़ने का कारण यह है कि जो लाओत्से कहता है, लाओत्से की हैसियत का व्यक्ति ही उसमें कुछ जोड़ सकता है। क्योंकि लाओत्से जो कहता है, वह साधारण समझ से इतनी प्रतिकूल बातें हैं, सो मच अपोज्ड टु दि कामन सेंस, कि साधारण आदमी उसमें कुछ भी जोड़ नहीं सकता। किसी को कुछ जोड़ना हो, तो लाओत्से होना पड़े। और लाओत्से होकर जोड़ने में फिर कोई हर्ज नहीं है।
यह वक्तव्य भी ऐसा ही वक्तव्य है। यह आपने कभी भी न सुना होगा कि संत दयावान नहीं होते हैं। संतों के संबंध में जो भी आपने सुना होगा, जरूर ही जाना होगा कि वे परम दयालु होते हैं। और लाओत्से कहता है कि संत सदय नहीं होते। इस वक्तव्य में जोड़ना बहुत मुश्किल है। लाओत्से कहता है कि जैसे घास-निर्मित कुत्तों के साथ हम व्यवहार करते हैं, संत ऐसा ही व्यवहार हमारे साथ करते हैं। बहुत अजीब सी बात मालूम पड़ती है; इसलिए समझने जैसी भी है। और लाओत्से जितनी भलीभांति संतों को जानता है, शायद ही कोई और जानता

हो। असल में, हम संतों के संबंध में जो कहते हैं, वह हमारी समझ है। और लाओत्से जो संतों के संबंध में कह रहा है, वह संतों की समझ है।
इस सूत्र को शुरू से समझें।
"स्वर्ग और पृथ्वी को सदय होने की कामना उत्प्रेरित नहीं करती।"
प्रकृति बिल्कुल ही दया-शून्य है। चाहे वह प्रकृति पृथ्वी पर प्रकट होती हो और चाहे स्वर्ग-आकाश में, चाहे वह शरीर के तल पर प्रकट होती हो और चाहे आत्मा के तल पर, प्रकृति सदय नहीं है। इसका यह अर्थ आप न लेना कि प्रकृति कठोर है। साधारणतः ऐसा ही समझ में आएगा कि जो दयावान नहीं है, वह क्रूर होगा, कठोर होगा।
नहीं, जो कठोर हो सकता है, वह दयावान भी हो सकता है। जो दयावान होता है,
वह कठोर भी हो सकता है। लेकिन प्रकृति दोनों नहीं है। न तो वह किसी पर दया करती है और न किसी पर कठोर होती है। असल में, प्रकृति आपकी चिंता ही नहीं लेती। आप हैं भी, आपका अस्तित्व भी है, प्रकृति को इससे भी प्रयोजन नहीं है। कल आप नहीं होंगे, तो आकाश रोएगा नहीं और पृथ्वी आंसू नहीं गिराएगी। और कल आप नहीं थे, तो पृथ्वी को आपके न होने का कोई पता नहीं था। और आज आप हैं, तो प्रकृति को आपके होने का कोई पता नहीं है।
आपके होने और न होने से कोई भी फर्क नहीं पड़ता है। वर्षा इसी तरह होती रहेगी, सूरज इसी तरह निकलता रहेगा, फूल ऐसे ही खिलेंगे। जिस दिन आप मरे होंगे, उस दिन भी फूल ऐसे ही खिलेंगे, जैसे वे सदा खिलते रहे हैं। चांद ऐसे ही निकलेगा और उसकी चांदनी की शीतलता में जरा भी कमी न होगी। और आकाश में दौड़ती हुई बदलियां वैसी ही दौड़ती रहेंगी; उनकी उत्फुल्लता में कोई अंतर न पड़ेगा। आपका होना और न होना इररेलेवेंट है, असंगत है। प्रकृति को पता ही नहीं कि आप हैं।
लेकिन हम ऐसी प्रकृति को नहीं जानते। हम तो जिस प्रकृति को जानते हैं,
वह भी हमारा ख्याल है। अगर मैं दुखी हूं, तो चांदनी मुझे उदास मालूम पड़ने लगती है। चांदनी उदास नहीं होती; क्योंकि उसी रात में कोई अपने प्रेमी को मिल गया होगा और गीत गा रहा होगा। वही चांदनी किसी के लिए आनंद होगी और वही चांदनी मेरे लिए उदास है। हो सकता है, दीवार के इस तरफ चांदनी में मुझे आंसू मालूम पड़ते हैं और दीवार के ठीक उस पार चांदनी में फूल खिलते हों। लेकिन चांदनी में न फूल खिलते हैं और न चांदनी उदास होती है। चांदनी
को न मेरा पता है, न किसी और का पता है। हम न भी होते, तो भी चांदनी ऐसी ही होती। हम नहीं होंगे, तब भी ऐसी ही होगी।
जब लाओत्से कहता है कि प्रकृति सदय नहीं है, तो वह यह कह रहा है कि व्यर्थ दया की भीख मांगने मत जाना। न जमीन पर दया मिल सकती है और न आकाश में। हाथ मत जोड़ना किसी मंदिर और मस्जिद के सामने। किसी परमात्मा की प्रार्थना इसलिए मत करना कि प्रार्थना से कुछ भेद पड़ जाएगा। नहीं, प्रशंसा से कोई भेद न पड़ेगा परमात्मा की तरफ से; स्तुति कुछ फर्क न ला सकेगी, क्योंकि गालियां भी कोई अंतर नहीं लाती हैं। स्तुति वहीं सार्थक होती है, जहां गालियां भी सार्थक हो सकती हैं। अगर परमात्मा को दी गई मेरी गाली बेचैन करती हो, तो मेरी स्तुति भी सार्थक हो सकती है। और परमात्मा, अगर मैं प्रार्थना न करूं, और नाराज और कठोर हो जाए, तो मेरी स्तुति उसे पिघला सकती है, परसुएड कर सकती है, फुसला सकती है और राजी कर सकती है। अगर परमात्मा को मैं दयावान होने के लिए राजी कर सकता हूं, तो फिर परमात्मा को कठोर होने के लिए भी राजी किया जा सकता है। उस हालत में परमात्मा परमात्मा नहीं रह जाता, हमारे हाथ की कठपुतली हो जाता है।
लाओत्से कहता है, उलटी है बात; हम उसके हाथ की कठपुतलियां हैं, वह हमारे हाथ की कठपुतली नहीं है। अगर वह सदय हो, तो हम उसके साथ भी खेल कर सकते हैं। इसलिए लाओत्से कहता है, प्रकृति सदय नहीं है। कठोर है, ऐसा नहीं कहता। कठोर से कठोर आदमी भी दयावान होता है। कितना ही कठोर आदमी हो, चाहे वह तैमूर हो, चाहे वह चंगेज हो, चाहे वह हिटलर हो, कठोर से कठोर आदमी भी दयावान होता है। उसके हृदय के भी कमजोर कोने होते हैं। किसी को वह प्यार भी करता है और किसी की पीड़ा से दुखी भी होता है। मात्रा के फर्क होंगे। कठोर आदमी की दया की सीमा छोटी होगी, कठोरता की ज्यादा होगी। और दयावान आदमी की दया की सीमा बड़ी होगी और कठोरता की छोटी होगी। लेकिन दयावान से

दयावान आदमी भी कठोर होता है। उसकी भी कठोरता की सीमा होती है। इसलिए बड़े से बड़े दयालु आदमी के पास जाकर भी आप पाएंगे कि कुछ हिस्सा बहुत कठोर है; कहीं, कहीं पत्थर भी है हृदय में!
यह अनिवार्य है। क्योंकि इस जीवन में जो भी हम जानते हैं, वह द्वंद्व है, डुएल है, दोहरे में बंटा हुआ है। जो आदमी प्रेम करेगा, वह घृणा भी करेगा ही। और जो आदमी क्रोध करेगा, वह क्षमा भी करेगा ही। और जैसे सुबह होती है और सांझ होती है, ठीक ऐसे ही आदमी के मन पर द्वंद्व का आना और जाना होता है। लाओत्से कहता है, प्रकृति निर्द्वंद्व है। लाओत्से यह कहता है कि वहां एक-रस नियम है। उस एक-रस नियम में कोई फर्क नहीं पड़ सकता। न तो वह दया करेगा, और न वह कठोर होगा। न तो वह बुरे के लिए गर्दन काट देगा और न भले के लिए सिंहासन का इंतजाम करेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जो भी हम करते हैं और जो भी हम पाते हैं, वह अपना ही किया हुआ और अपना ही पाया हुआ है। उसमें प्रकृति कोई हाथ नहीं बंटाती।
अगर मेरे पैर में कांटे गड़ जाते हैं, तो इसलिए नहीं कि प्रकृति मेरे पैर में कांटे गड़ाने को उत्सुक है; बल्कि इसलिए कि मैं उन रास्तों पर चलने के लिए उत्सुक हूं, जहां कांटे हैं। और अगर मेरे सिर पर फूलों की वर्षा हो जाती है, तो इसलिए नहीं कि आकाश के देवता मेरे ऊपर फूल बरसाने को आतुर हैं, बल्कि सिर्फ इसलिए कि मैं उन वृक्षों की खोज कर लिया हूं, जिनके नीचे बैठने से फूल बरस जाते हैं। यह संयोग है। यह मेरी ही खोज है, चाहे वह कांटे की हो और चाहे फूल की, और चाहे मुझे गालियां मिलें और चाहे मुझे प्रेम मिले, और चाहे मैं नर्क में सडूं और चाहे स्वर्ग का संगीत मेरे चारों ओर गूंजने लगे, यह मेरी ही खोज है।
लेकिन प्रकृति निरपेक्ष है। नहीं, प्रकृति जरा भी उत्सुक नहीं है। होनी भी नहीं चाहिए; क्योंकि अगर प्रकृति इसमें उत्सुक हो, तो अव्यवस्था हो जाए।
लाओत्से कहता है, यही प्रकृति की व्यवस्था है कि वह आप में बिल्कुल उत्सुक नहीं है। आप में उत्सुकता हो, तो आप प्रकृति के नियमों का दुरुपयोग शुरू कर दें। आप में उत्सुकता हो, तो आप प्रकृति को आदमी के हाथ के भीतर रख दें।
लेकिन प्रकृति आप में उत्सुक नहीं है; इसलिए सदा आपके हाथ के बाहर है।
और कभी अगर आपकी प्रार्थनाएं पूरी हो जाती हैं, तो इसलिए नहीं कि किसी ने उन्हें सुना, बल्कि इसलिए कि आपने उन प्रार्थनाओं को पूरा करने के लिए कुछ और भी किया। अगर आपकी प्रार्थनाएं पूरी नहीं होतीं, तो इसलिए नहीं कि परमात्मा नाराज है, बल्कि इसलिए कि आप बिल्कुल कोरी प्रार्थनाएं कर रहे हैं और उनके पीछे कुछ भी नहीं है। अगर प्रार्थनाओं से बल भी आता है, तो आप में ही आता है और आपका ही आता है। अगर मंदिर के सामने हाथ जोड़ कर आपने प्रार्थना की है और लौटते वक्त पाया है कि प्राणों में ताकत ज्यादा है, संकल्प ज्यादा सजग है, पैर ज्यादा मजबूत हैं, तो यह कहीं और से आ गई ताकत नहीं है; यह मंदिर के सामने खड़े होकर प्रार्थना करने के ख्याल का परिणाम है। यह आपका अपना है। और ऐसे मंदिर के बाहर भी हो सकता है, जहां मंदिर में कुछ भी न हो।
और इसलिए कई बार ऐसा हो जाता है कि पत्थर भी आपकी प्रार्थनाओं को पूरा करने में सफल हो जाते हैं। और कई बार ऐसा हो जाता है कि बुद्ध और महावीर और लाओत्से की हैसियत का आदमी सामने खड़ा हो और आपकी प्रार्थना अधूरी की अधूरी रह जाती है।
नहीं, दूसरी तरफ बात नहीं है, आपकी ही तरफ बात है। इसको साफ करने के लिए लाओत्से कहता है, प्रकृति सदय नहीं है।
एक लिहाज से यह बहुत कठोर है बात, क्योंकि हम बेसहारा हो जाते हैं।
हमारे हाथ की सारी की सारी क्षमता टूट जाती है, अगर कोई कह दे कि प्रकृति सदय नहीं है। अगर मैं गड्ढे में गिर रहा होऊंगा, तो प्रकृति से कोई आवाज न आएगी कि रुक जाओ। यह कठोर लगती है बात और मन को धक्का भी लगता है।
इस धक्के की वजह से ही लाओत्से बहुत अधिक लोगों की समझ के बाहर पड़ा।
क्योंकि उसने आपकी किसी कमजोरी को पूरा करने का कोई वचन नहीं दिया है।
लाओत्से के पीछे धर्म बनाना बहुत मुश्किल है। क्योंकि धर्म तो तभी बनता

है, जब आपकी कमजोरी का शोषण किया जा सके। जो आप चाहते हैं वही कहा जाए कि परमात्मा भी चाहता है, जो आप पाना चाहते हैं वही देने को परमात्मा भी राजी हो, तो धर्म निर्मित होते हैं।
लाओत्से के पीछे कोई धर्म निर्मित नहीं हो सका। लाओत्से की हैसियत का आदमी वह अकेला है, जिसके पीछे कोई धर्म निर्मित नहीं हो सका, कोई चर्च नहीं खड़ा हो सका। कैसे खड़ा होगा? क्योंकि लाओत्से कहता है, प्रकृति सदय नहीं है। प्रार्थना कट गई, स्तुति कट गई, परमात्मा कट गया; आप अकेले रह गए। और अकेले रहने में हमें इतना डर लगता है कि झूठा भी साथ मिल जाए, तो मन को राहत होती है। नहीं हो कोई साथ, मेरी नाव बिल्कुल खाली है और मैं हूं; आंख बंद करके भी सपना देख लूं कि कोई साथ है नाव पर, अकेला नहीं हूं, तो भी राहत मिलती है। शायद इसीलिए आदमी सपने देखता है। और सपने सोकर ही देखता हो, ऐसा नहीं; जाग कर भी देखता है।
जिन्हें हम धर्म कहते हैं, वे हमारे फैलाए गए बड़े-बड़े स्वप्न हैं। जिनमें हमने वही देख लिया है, जो हम चाहते हैं। और बड़े सस्ते में देख लिया है। चूंकि एक आदमी एक बार भोजन करता है, या एक आदमी एक लंगोटी पहनता है, या एक आदमी नग्न खड़ा हो जाता है, या एक आदमी रोज मंदिर की घंटियां बजा देता है, तो वह सोचता है, मोक्ष सुनिश्चित हुआ, निश्चित हुआ स्वर्ग।
नहीं, प्रकृति सदय नहीं है।
लेकिन दया की भीख कौन मांगते हैं? दया की भीख सदा ही गलत लोग मांगते हैं। ठीक आदमी दया की भीख नहीं मांगेगा। मिलती भी हो, तो इनकार करेगा।
क्योंकि जो दया करके पाया जाता है, वह कभी पाया ही नहीं जाता। जो दया से मिलता है, वह कभी मिल ही नहीं पाता, वह हमारे प्राणों का कभी हिस्सा नहीं हो पाता। जो हमारे श्रम से ही आविर्भूत होता है, वही केवल हमारी संपदा है। लाओत्से कहता है, प्रकृति सदय नहीं है। कठोर है? कठोर भी नहीं है। प्रकृति सिर्फ आपके प्रति निरपेक्ष है। आपके प्रति प्रकृति का कोई भाव नहीं है, निर्भावी है। पक्ष-विपक्ष नहीं है। हम सदा तोड़ कर सोचते हैं, प्रकृति मित्र है या शत्रु है। नहीं प्रकृति मित्र है, नहीं प्रकृति शत्रु है। प्रकृति आपका कोई लेखा-जोखा नहीं रखती। आप एकाउंटेबल ही नहीं हैं। आपका कोई हिसाब नहीं रखा जाता है। आप न होते, तो कुछ कमी नहीं होती। आप होते हैं, तो कुछ बढ़ नहीं जाता है। पानी पर खींची गई लकीरों जैसा हमारा होना है; पानी को कोई अंतर नहीं पड़ता। लकीर खिंच भी नहीं पाती कि मिट जाती है और बुझ जाती है। सदय नहीं है, इसका अर्थ? इसका अर्थ है, आपके प्रति कोई भाव नहीं है।
यह एक दृष्टि से कठोर, दूसरी दृष्टि से बहुत ही आनंदपूर्ण बात है। क्योंकि अगर प्रकृति भी भाव रखती हो, तो वहां भी पक्षपात हो ही जाएगा। फिर कोई वहां भी धोखा देने में समर्थ हो जाएगा। फिर वहां कोई पाप भी करेगा और स्वर्ग भी पहुंच जाएगा, और कोई पुण्य भी करेगा और नर्क में सड़ेगा। अगर कोई भी भाव है अस्तित्व के पास, तो चुनाव शुरू हो जाएगा।
इसलिए सारे दुनिया के धर्म, जो कि चुनाव पर ही खड़े हैं और प्रकृति के सदय होने की धारणा पर खड़े हैं, निर्णय करते हैं। अगर हम मुसलमान से पूछें कि गैर-मुसलमान का क्या होगा? तो मुसलमान को लगता है, भटकेगा दोजख में, कोई उपाय नहीं है गैर-मुसलमान के लिए। ईसाई से पूछें, गैर-ईसाई का क्या होगा? तो जो ईसा के पीछे नहीं है, वह अंधेरे में भटक जाएगा! परमात्मा ने तो अपना बेटा भेज दिया। अब जो उसके बेटे के साथ हो जाएंगे, वे बच जाएंगे। जो उसके बेटे के साथ नहीं होंगे, वे मिट जाएंगे।
अगर परमात्मा का कोई बेटा है, तो उपद्रव होगा। और अगर परमात्मा के बेटे के पक्ष में होने की सुविधा है और अस्तित्व भी उसके पक्ष में हो जाएगा, तो फिर कठिनाई है।
नहीं, लाओत्से कहता है, प्रकृति का कोई बेटा नहीं। प्रकृति का कोई अपना नहीं, क्योंकि प्रकृति का कोई पराया नहीं है। प्रकृति किसी को स्वीकार नहीं करती, क्योंकि प्रकृति किसी को इनकार नहीं करती है। प्रकृति का कोई पक्ष नहीं है; प्रकृति पक्षधर नहीं है।
यह आनंद की बात है एक अर्थ में। इसलिए जिसकी जितनी सामर्थ्य और जिसका जितना बल, वही हो जाएगा। कोई पक्षपात नहीं होगा। अगर नर्क होगा, तो मेरा

अर्जन। और अगर स्वर्ग होगा, तो मेरा अर्जन। न मैं किसी को दोषी ठहरा पाऊंगा और न किसी को उत्तरदायी। न मैं किसी को धन्यवाद दे पाऊंगा और न किसी को गालियां दे पाऊंगा कि तुम्हारी वजह से सब गड़बड़ हो गई है।
लाओत्से के इस वचन का अर्थ है, अल्टीमेटली आई एम दि रिस्पांसिबल; अल्टीमेट रिस्पांसिबिलिटी इ.ज विद मी। आत्यंतिक रूप से मैं ही दायित्व का भागीदार हूं, कोई और नहीं।
इसलिए लाओत्से का दूसरा वचन और भी कठोर मालूम पड़ता है। कहता है, "स्वर्ग और पृथ्वी को सदय होने की कामना उत्प्रेरित नहीं करती। वे सभी प्राणियों के साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं, जैसे कोई घास-निर्मित कुत्तों से व्यवहार करे।"
घास-निर्मित कुत्ते से आप कैसा व्यवहार करेंगे? अगर घास-निर्मित कुत्ता पूंछ हिलाने लगे, तो आप प्रसन्न होंगे? आप कहेंगे, घास का कुत्ता है। अगर घास-निर्मित कुत्ता भौंकने लगे, तो आप भयभीत होंगे, भागेंगे? आप कहेंगे, घास का कुत्ता है। घास का कुत्ता आपको किसी भी दिशा में उत्प्रेरित न कर सकेगा। न तो आप भागेंगे और न आप प्रसन्न होंगे।
लेकिन अगर ख्याल भी आ जाए कि घास का कुत्ता असली है, तो आप उत्प्रेरित
हो जाएंगे। झूठा भी, घास का ही हो कुत्ता, लेकिन आपको पता न हो और समझें कि असली है, तो उसकी हिलती पूंछ आपके भीतर भी कुछ हिला जाएगी। कुछ भीतर प्रसन्न हो जाएगा, गदगद!
कुत्ता आदमी इसीलिए पालता है, क्योंकि आदमी खोजना मंहगा काम है जो आपके पीछे पूंछ हिलाए। सभी एफोर्ड नहीं भी कर सकते हैं, मंहगा है। जो कर सकते हैं, वे कर लेते हैं। एक आदमी एक कुत्ते को पाल लेता है। घर लौटता है आदमी थका हुआ, पत्नी का तो कोई भरोसा नहीं कि पूंछ हिलाएगी। पत्नी होने के बाद बिल्कुल ही भरोसा नहीं; पहले हो भी सकता था। लेकिन एक कुत्ता दरवाजे पर रहेगा।
मुल्ला नसरुद्दीन के एक मित्र ने उससे एक दिन कहा है, बड़ी मुश्किल में
पड़ गया हूं। शादी जब तक नहीं की थी, घर लौटता था, तो कुत्ता भौंकता था, पत्नी चप्पल उठा कर लाती थी। अब हालत बिल्कुल बदल गई है। पत्नी भौंकती है, कुत्ता चप्पल उठा कर लाता है। नसरुद्दीन ने कहा, लेकिन मैं कोई फर्क नहीं देखता। दि सेम सर्विसेज! परेशान क्यों हो? काम पूरा हो रहा है; वही काम पूरा हो रहा है; करने वाले बदल गए हैं, इससे तुम परेशान क्यों हो? चप्पल भी मिल जाती है; भौंकना भी मिल जाता है।
आदमी कुत्ते की पूंछ से भी प्रसन्न होता है। उसके भौंकने से भयभीत भी होता है। घास के कुत्ते से भी यही हो सकता है, अगर पता न हो। क्योंकि हम असलियत से नहीं जीते, हम अपनी धारणाओं से जीते हैं। मेरी धारणा ही मेरे असलियत का जगत है।
लाओत्से कहता है, प्रकृति ऐसा व्यवहार करती है, जैसे हम सब घास के कुत्ते हों। वह हमसे उत्प्रेरित नहीं होती। इसमें बड़ी गहराई है, बड़ी गहरी अंतर्दृष्टि है। प्रकृति के लिए हम घास के कुत्ते हैं ही। मेटाफोरिकली ही नहीं, प्रतीकात्मक ही नहीं, वस्तुतः। प्रकृति के लिए हम घास के कुत्ते से ज्यादा होंगे भी क्या?
जहां तक हमारा संबंध है, वहां तक हम घास के भरे हुए पुतले ही हैं। आप में से घास निकाल लिया जाए, पीछे कुछ भी नहीं बचता फिर। शरीर हमारा सिर्फ घास है। भोजन है, पानी है, हड्डी-मांस-मज्जा है। वह सब हमारा शरीर का जोड़ है। और हमें तो जरा भी पता नहीं है कि शरीर से ज्यादा भी हमारे भीतर कुछ है। शरीर ही हम हैं। इस शरीर को खोल कर देखें, तो सिवाय घास के और कुछ भी न मिलेगा।
वैज्ञानिक कहते हैं, कोई चार-पांच रुपए का सामान है आदमी के भीतर। कुछ एल्युमिनियम है, कुछ तांबा है, कुछ लोहा है, कुछ फासफोरस है। ज्यादा तो पानी है, कोई अस्सी प्रतिशत से ऊपर। फिर मिट्टी है। और यह सब घास से ही बना है। जिसे हम जीवन कहते हैं आज, अगर हम वैज्ञानिक से पूछें, तो वह कहता है, यह सब घास का ही विकास है, वेजिटेबल। यह उसका ही विकास है। और आज भी हम उसी पर जीते हैं। एक आदमी साल भर में एक टन घास शरीर में डालता है, तब जी पाता है। चौबीस घंटे घास डालनी पड़ती है। अपनी-अपनी घास अलग-अलग हो सकती है।

उससे हम जीते हैं। वही हमारा ईंधन है। वही हमारा अस्तित्व और हमारा शरीर है।
तो लाओत्से अगर कहता है, प्रकृति हमें घास के कुत्तों से ज्यादा नहीं जानती, तो नाराज होने की जरूरत नहीं है। हम भी नहीं जानते हैं कि हम इससे ज्यादा हैं। प्रकृति ऐसा ही जाने, यह उचित है; लेकिन हम भी ऐसा ही जानें, यह उचित नहीं है। पर हमें कोई पता नहीं हैः हमारे भीतर के शरीर के अलावा भी कुछ हम में है? कुछ मिट्टी को छोड़ कर भी? सुनते हैं आत्मा की बात, समझ तो नहीं पाते हैं। क्योंकि समझ हम वही पा सकते हैं, जो हमारा जानना बन जाए! लेकिन और अर्थों में भी हम घास के जैसे ही हैं। कभी आपने देखा, खेत में झूठा आदमी बना कर खड़ा कर देते हैं। घास भर देते हैं और हंडी सिर पर टांग देते हैं। जानवरों को भगाने के काम आ जाता है। जानवरों को सच्चा ही मालूम पड़ता है, इसीलिए उत्प्रेरित हो जाते हैं, डर जाते हैं, भयभीत हो जाते हैं। कभी रात अंधेरी हो और अपरिचित जगह हो, तो आपको भी डरा सकता है घास का पुतला खेत में खड़ा हुआ। आपकी भावना ही प्रोजेक्ट होती है, उस घास के पुतले पर सवार हो जाती है। घास के पुतले को देख कर हम उत्प्रेरित हो सकते हैं।
अभी भी हम जो उत्प्रेरित होते हैं, वह घास के पुतले को देख कर ही उत्प्रेरित होते हैं। अगर एक सुंदर शरीर मुझे आकर्षित कर लेता है, तो क्या मैंने कभी सोचा है कि घास मुझे उत्प्रेरित कर रहा है? अगर एक आदमी के शरीर की हत्या करने को मैं आतुर हो जाता हूं, तो क्या कभी मैंने सोचा है कि मैं घास को काटने के लिए, घास में छुरा भोंकने के लिए आतुर हो रहा हूं? किसी का होना मुझे खुशी देता है और किसी का न होना मुझे दुख से भर जाता है, तो क्या मैंने कभी सोचा है कि घास के पुतले की इतनी मौजूदगी, गैर-मौजूदगी इतना अंतर मुझमें डाल देती है?
लाओत्से कहता है, प्रकृति को प्रयोजन नहीं है। वह आपको घास के कुत्तों जैसा जानती है। आप नहीं हैं, सिर्फ ताश का घर हैं।
लेकिन प्रकृति के संबंध में हम समझने को राजी भी हो जाएं, लाओत्से और
भी कठिन बात कहता है। वह कहता है, तत्वविद भी सदय नहीं होते। वे जो जानते हैं संत, वे भी सदय नहीं होते।
संत तो सदा ही सदय होते हैं। हम तो कहते हैं, वे महा दयावान हैं। महावीर के भक्त कहते हैं, वे परम क्षमावान हैं। बुद्ध के भक्त कहते हैं, वे परम कारुणिक हैं। जीसस के भक्त कहते हैं कि उनका आना ही इसलिए हुआ कि लोगों को दया करके वे उनके दुख से छुटकारा दिला दें। कृष्ण के भक्त कहते हैं कि जब भी दुख होगा तब वे दया करके आएंगे और लोगों को मुक्त कर लेंगे। हम तो यही जानते रहे हैं अब तक कि संत सदय होते हैं।
लेकिन लाओत्से कहता है, संत भी सदय नहीं होते। क्योंकि संत वही है, जिसने प्रकृति के आंतरिक तत्व के साथ अपनी एकता साध ली है। नहीं तो वह संत नहीं है। अगर प्रकृति ऐसी है, अगर अस्तित्व ऐसा है कि सदय नहीं है, तो संत कैसे सदय हो सकते हैं! संत का अर्थ ही है, जो अस्तित्व के सत्य को उपलब्ध हो गया, जिसने सत्य के साथ एकता साध ली। अगर सत्य ही सदय नहीं है, तो संत कैसे सदय हो सकते हैं! क्योंकि संत का अर्थ ही यह है कि जो सत्य के साथ एक हो गया।
संत सदय नहीं होते! तत्काल हमारे मन में द्वंद्व खड़ा हो जाता है, कठोर होते होंगे।
नहीं, कठोर भी नहीं होते। न कठोर होते हैं, न विनम्र होते हैं; द्वंद्व
के बाहर होते हैं। वे जो करते हैं, इसलिए नहीं कि आपके ऊपर कठोर हैं; इसलिए भी नहीं कि आपके ऊपर उनकी दया है; वे वही करते हैं, जो उनकी प्रकृति उनसे चुपचाप कराए चली जाती है--स्पांटेनियस और सहज। अगर आप एक संत के चरणों में जाकर सिर रख देते हैं और वह आपके सिर पर हाथ रखता है, तो इसलिए नहीं कि उसको दया है आप पर। ऐसा भी हो सकता है कि वह सिर पर हाथ न रखे, धक्का मार दे और हटा दे। तो भी जरूरी नहीं कि वह कठोर है आपके प्रति।
रिंझाई जब सबसे पहले अपने गुरु के पास गया, तो उसका गुरु बहुत ही कठोर आदमी था, ऐसी लोगों में खबर थी। लोगों की खबरें आमतौर से गलत होती हैं। न उन्हें इसका पता है कि संत सदय होते हैं या कठोर होते हैं। उन्हें संत का ही पता नहीं है। रिंझाई जब जाने लगा, तो गांव के लोगों ने कहा कि मत जाना उस

बूढ़े के पास, वह आदमी कठोर है। रिंझाई ने कहा, लोगों ने मुझसे कहा फलां संत बहुत दयावान है, मैं उनके पास भी जाकर देखा। मैंने पाया, उनमें कोई दया नहीं। अब तुम कहते हो, यह आदमी कठोर है; इसके पास भी जाकर देखूं। बहुत संभावना यही है कि तुम भी गलत होओगे। तुम सदा ही गलत होते हो। उस आदमी ने हंस कर कहा, लौट कर तुम खुद ही कहोगे। यह तुम पहले आदमी नहीं हो, जिसको मैंने यह खबर दी है। और जिनको भी मैंने खबर दी, उन्होंने लौट कर कहा कि ठीक कहते थे, अच्छा होता हम न गए होते।
रिंझाई गया। उसका गुरु द्वार पर बैठा था हाथ में एक डंडा लिए। झेन फकीर एक डंडा अपने हाथ में रखते रहे हैं सदा से। पता नहीं, शंकर ने अपने संन्यासियों को डंडा क्यों दिया? कम से कम हिंदुस्तान को तो पता नहीं है। शायद उसका ठीक-ठीक डंडे का कभी उपयोग शंकर के संन्यासी ने किया नहीं।
क्योंकि हिंदुस्तान में संन्यासी के बाबत हमारी धारणा सदय होने की है। वह दंडीधारी संन्यासी तो कहलाता है, लेकिन उस डंडे का उपयोग सिर्फ एक फकीरों के वर्ग ने किया है जापान में, झेन फकीरों ने। गुरु डंडा लिए बैठा था।
रिंझाई उसके सामने जाकर झुकता था।
गुरु ने कहा, रुक! मैं सभी को पैर नहीं छूने देता। पहले मेरी बात का जवाब दे दे, फिर तू पैर छू सकता है।
रिंझाई ने कहा, क्या है सवाल?
उसके गुरु ने कहा, सवाल पीछे बताऊंगा, पहले तुझे यह बता दूं कि तू हां में जवाब दे, तो भी यह डंडा तेरे सिर पर पड़ेगा; तू न में जवाब दे, तो भी यह डंडा तेरे सिर पर पड़ेगा। असल में, तू कोई भी जवाब दे, डंडा तो पड़ेगा ही। तू पहले सोच ले।
रिंझाई ने कहा, तो मैं पहले पैर पड़ लूं और आप डंडा मार लें; जवाब-सवाल पीछे हो जाएगा। जब डंडा पड़ना ही है, तो इसकी चिंता को निपटा देना उचित है। इसे पहले निपटा लें, पीछे हम बात कर लेंगे। उसने सिर चरणों में रखा और गुरु को कहा, वह डंडा मार लें, ताकि यह डंडे का काम समाप्त हो जाए। फिर आप पूछ लें।
उसके गुरु ने डंडा नीचे रख दिया और उसने कहा, तो शायद तुझे मारने की जरूरत मुझे नहीं पड़ेगी।
रिंझाई ने पूछा, बात क्या है?
उसके गुरु ने कहा, जो भी मेरे पास दया की भीख मांगते आते हैं, मेरा अस्तित्व उनके प्रति कठोर हो जाता है। मैं नहीं होता, बस ऐसा हो जाता है। उस तरफ भीख, और इधर मैं कठोर हो जाता हूं! उस तरफ मालकियत, इधर मैं सदय हो जाता हूं! लेकिन असली बात यह है, उस बूढ़े फकीर ने कहा कि मैं दोनों के बाहर हो गया हूं। अपनी तरफ से कुछ भी नहीं होता। जो हो जाता है, उसके लिए मैं राजी हो जाता हूं। अगर मेरा हाथ डंडा उठा लेता है, तो मैं डंडा मारता हूं। अभी हाथ ने डंडा छोड़ दिया, तो मैंने डंडा छोड़ दिया है।
असल में, संत सहज होते हैं। सहज का अर्थ आप समझ लें। अकारण, जो भीतर से उनका अस्तित्व करता है, वे उसी के साथ बहते हैं। च्वाइसलेस फ्लोइंग! कोई चुनाव उनका नहीं है। सदय वे नहीं हो सकते, दया वे नहीं कर सकते। कठोर भी वे नहीं हो सकते। लेकिन कभी वे दयावान मालूम होते हैं, वह हमारी समझ है। और कभी वे कठोर मालूम होते हैं, वह भी हमारी समझ है। और हमारी समझ पागल की समझ है। हम जो समझते हैं, वैसा शायद ही कभी होता है।
एक मित्र दो महीने पहले मेरे पास आए। कोई पांच वर्ष से आते हैं। सदा आकर वह मुझे कहते हैं कि आपको दो-चार दिन नहीं देख पाता, आपके दर्शन नहीं कर पाता, तो मन बड़ा बेचैन हो जाता है। ऐसा उन्होंने इतनी बार कहा है कि मुझे मान लेना चाहिए कि वे ठीक कहते होंगे। आपके दर्शन नहीं कर पाता हूं दो-चार दिन, तो मन बड़ा बेचैन हो जाता है, यह उन्होंने इतनी बार कहा है कि कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता कि इससे भिन्न कोई बात होगी। बहुत बार उनसे कहना चाहा, लेकिन मैंने नहीं कहा। इस बार दो महीने पहले आए थे, तो मैंने उनसे कहा कि एक बात पूछूं, इतने दिन से आप आते हैं, कहते हैं, आपका दर्शन न करूं तो मन बड़ा बेचैन हो जाता है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि आप मुझे दर्शन नहीं दे पाते दो-चार दिन तो मन बेचैन हो जाता हो?

उन्होंने कहा, आप कैसी बात कर रहे हैं? कभी नहीं, ऐसा ख्याल ही मुझे कभी नहीं उठा।
ख्याल न भी उठा हो; ख्याल का उठना जरूरी नहीं है। हम अपने को धोखा देने में इतने कुशल हैं!
मैंने कहा, फिर भी सोचना।
उन्होंने कहा, सोचने का कोई सवाल ही नहीं है। आपको नहीं देख पाता, आपकी चर्चा नहीं कर पाता, आपका प्रवचन नहीं सुन पाता, आपकी किताब नहीं पढ़ पाता जिस दिन, उस दिन मन बड़ा बेचैन हो जाता है।
पंद्रह दिन बाद वे फिर आए। चार मित्रों के साथ आए थे। मैंने तीन को देखा, उनको नहीं देखा। तीन से बात की, उनसे बात नहीं की। तीन को माना कि वे कमरे में हैं, उनको नहीं माना कि वे कमरे में हैं। उन्होंने पैर छुए, मेरी तरफ देखा। मैंने ऐसे देखा, जैसे वहां कोई नहीं है। बेचैन हो गए। एक कोने में बैठ गए। मैंने देखा कि वे आज दूसरे आदमी हैं। सब बदल गया है। मुझे पूछना चाहिए था, पत्नी कैसी है? बेटी कैसी है? बेटा कैसा है? तो वे समझते थे कि मेरा दर्शन करने आए हैं। दर्शन तो आज भी मेरा हुआ, लेकिन उनका दर्शन मैंने नहीं किया। जाते वक्त पैर छूकर वे नहीं गए। जाते वक्त उन्होंने जब दरवाजा लगाया, तो मैं समझा कि यह दरवाजा सदा के लिए लगा गए हैं, अब इस दरवाजे के भीतर नहीं आएंगे।
नहीं आए। किताबें मेरी फेंक दी हैं, किसी ने मुझे खबर दी। अब मेरे बिना काम मजे से चल रहा है। इतना ही नहीं, अब जब तक वे दिन में दो-तीन घंटे लोगों के पास जाकर मुझे गालियां नहीं दे लेते, तब तक उनको चैन नहीं पड़ती है। क्या हो गया? वे वर्षों से कहते थे कि आपके दर्शन के बिना चैन नहीं पड़ती। मैं जानता था कि मेरा दर्शन नहीं है असली बात।
लेकिन ऐसा मैं न कहूंगा कि वे जान कर ऐसा कर रहे थे। नहीं, उन्हें पता
ही नहीं था। हम इतने धोखेबाज हैं, खुद को भी पता नहीं होने देना चाहते हैं। खुद को भी पता नहीं होने देते हैं कि हमारे भीतर क्या है। उस दिन जब मैंने उनको दस मिनट तक ध्यान ही नहीं दिया, तब कितना कचरा और कितना घास उसी वक्त उसी कमरे में उनसे गिर गया, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। उनके जाने के बाद कमरा बोझिल और भारी हो गया।
अभी एक घटना घटी है। एक महिला मुझसे मिलने आई। दस मिनट--उसके मन में बहुत कुछ था, किसी के प्रति क्रोध, ईर्ष्या, वैमनस्य--वह सब उसने निकाला। वह तो हलकी होकर चली गई। ठीक उसके पीछे एक युवक प्रवेश किया। उस युवक ने कमरे के भीतर आकर बेचैनी से देखा और उसने कहा कि आई फील वेरी स्ट्रेंज, बात क्या है? मैंने उससे कहा, तू घबड़ा मत, थोड़ी देर बैठ। अभी एक महिला थोड़ी सा घास यहां गिरा गई है; थोड़ी हवा भारी है। अभी उसका रोग चारों तरफ प्रतिध्वनित है। एक पांच मिनट बिखर जाने दे, फिर ठीक हो जाएगा।
कचरा हमारे शरीर में ही नहीं है, मन में और भी ज्यादा है। और शरीर से
ही मल-मूत्र का त्याग होता हो, ऐसी भूल में मत पड़ना, मन से भी मल-मूत्र का दिन-रात त्याग करना पड़ता है। इसलिए आप किसी के प्रति चौबीस घंटे प्रेम से भरे नहीं रह सकते। नहीं तो मल-मूत्र का त्याग कहां करिएगा? उसके प्रति घृणा आपको बतानी पड़ेगी। जैसे हर घर में हमें गुसलखाने का इंतजाम करना पड़ता है, हर मन में घृणा का भी इंतजाम करना पड़ता है। वहां कचरा इकट्ठा हो जाता है; फिर वह कहां निकलेगा?
इसलिए पति और पत्नी में ही डायवोर्स नहीं होते, गुरु और शिष्य में भी डायवोर्स चलते हैं। कोई ख्याल नहीं लेता उसका, लेकिन चलते हैं। चलेंगे ही। मित्र और मित्र में भी चलते हैं। बाप और बेटे में चलते हैं। चलेंगे ही। क्योंकि जिसके प्रति हमने प्रेम दिखाया, हम उसके लिए बिना गुसलखाने के हो गए। हमारा पूरा घर बैठकखाना हो गया उसके लिए। गुसलखाना कहां जाएगा? उसे हमें छिपा कर रखना पड़ेगा। धीरे-धीरे बैठकखाना छोटा होता जाएगा, गुसलखाना बड़ा होगा; क्योंकि बढ़ता जाएगा, बढ़ता जाएगा। एक दिन बैठकखाना बिल्कुल सिकुड़ जाएगा और सारे घर में मल-मूत्र फैल जाएगा। यह होगा, यह मन के द्वंद्व के साथ अनिवार्य है।
लाओत्से कहता है, वे संत द्वंद्व में नहीं जीते। वे न किसी को प्रेम करते हैं, और इसलिए ही वे किसी को घृणा नहीं करते।

इसे ठीक से समझ लें। हमारा तर्क और है। हम कहते हैं, चूंकि मैं आपको प्रेम करता हूं, इसलिए आपको घृणा नहीं करता। यह तर्क बिल्कुल ही गलत है। जब भी कोई आपसे कहे कि मैं आपको प्रेम करता हूं, तब दूसरा हिस्सा जो वह छोड़ रहा है वह यह कि इसलिए मैं आपको घृणा करूंगा। वह दूसरा हिस्सा अनिवार्य तर्क है। लेकिन उसे हम छिपा जाते हैं। फिर उसका फल भोगना पड़ता है। लाओत्से कहता है, वे किसी को प्रेम नहीं करते, क्योंकि वे किसी को घृणा नहीं करते। वे किसी पर दया नहीं करते, क्योंकि वे किसी के प्रति क्रूर और कठोर नहीं हैं। वे किसी को कभी क्षमा नहीं करते, क्योंकि वे कभी क्रोध नहीं करते हैं। इस द्वंद्व को ठीक से समझ लें। ये एक ही सिक्के के दो पहलू साथ ही साथ चलते हैं, चाहे आप एक पहलू को छिपा लें। कितनी देर छिपाइएगा? फिर बोरडम पैदा होती है। जिसको छिपाते हैं, उसे देखने की जिज्ञासा जगती है। और जिसे बहुत देखते हैं, उससे हटने का मन होता है। फिर पहलू बदलना पड़ता है। प्रेमी का अनिवार्य परिणाम यही है कि वह घृणा से भर जाए। और मित्रता अगर पक्की है, तो शत्रुता पैदा होगी। पक्की है तो। कच्ची है, तो चल सकती है।
इसलिए मेरे पास बहुत लोग आते हैं, वे कहते हैं, फलां व्यक्ति आपको इतना प्रेम करता था, इतनी श्रद्धा करता था, वह आपके खिलाफ क्यों हो गया? मैं कहता हूं, इसीलिए। यह उनके ख्याल में नहीं आता इसीलिए; क्योंकि वे तो यह ख्याल लेकर आए हैं कि जो इतना प्रेम करता था, उसे तो खिलाफ होना ही नहीं चाहिए। और मैं तो इतना प्रेम आपको नहीं भी करता हूं, वह मुझे कहता है, मैं खिलाफ नहीं हुआ। तो मैं कहता हूं, इसीलिए।
यह इसीलिए को ठीक से देख लें तो लाओत्से समझ में आ जाएगा। वह कहता है, संत द्वंद्व के बाहर हैं। इसलिए अगर आप समझते हैं कि महावीर आप पर दया करते हैं, यह आपकी ही समझ है। इसमें महावीर कहीं भी जिम्मेवार नहीं हैं। और अगर आप समझते हैं, महावीर की आंख आप पर तेज है और कठोर है, यह आपकी ही समझ, आपका इंटरप्रिटेशन, आपकी व्याख्या है; महावीर का इससे कुछ लेना-देना नहीं है। संत द्वंद्व में अपने को विभाजित नहीं करता।
लेकिन यह लाओत्से कहता है, "वे भी सभी मनुष्यों के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं, जैसे घास-निर्मित कुत्तों के साथ किया जाता है।"
संत और लोगों के साथ ऐसा व्यवहार, जैसे घास-निर्मित कुत्तों के साथ! संत तो सब के भीतर परमात्मा देखता है। संत और किसी के भीतर घास-निर्मित कुत्ते को देखेगा! घास-निर्मित कुत्ते में भी उसको घास-निर्मित कुत्ता नहीं देखना चाहिए। कुत्ते में भी उसको परमात्मा ही दिखाई पड़ता है, ऐसा हमने सुना है। लाओत्से क्या कह रहा है? यह बिल्कुल उलटी बात कह रहा है। लेकिन यह उलटी बात नहीं है। यह उसी बात का दूसरा हिस्सा है। जो आदमी
सब में परमात्मा देखता है, वह आप में घास-निर्मित कुत्ता देखेगा। इसे थोड़ा समझ लें। आप में--जो आदमी सब में परमात्मा देखता है, वह आप में घास-निर्मित कुत्ता देखेगा--आप में कह रहा हूं। अस्तित्व में तो उसे परमात्मा ही दिखाई पड़ता है। लेकिन आप अस्तित्व नहीं हो, सिर्फ घास-निर्मित एक गठरी, एक गांठ, एक कांप्लेक्शन हो! आप आदमी नहीं हो। आप सिर्फ एक गांठ हो बीमारियों की। और आदमी तो गांठ के पीछे छिपा है।
जब संत कहते हैं उन्हें सब में परमात्मा दिखाई पड़ता है, तो वे गांठ को बाद देकर कह रहे हैं, आपको हटा कर कह रहे हैं। आपसे नहीं कह रहे हैं। आपके पार जो बैठा है, जिससे आपकी कोई मुलाकात नहीं हुई कभी, उससे कह रहे हैं। सुनते हो आप; समझते हो, आपसे कही गई बात। आप सिर्फ गांठ हो बीमारियों की; एक ग्रंथि! उस ग्रंथि को संत घास-निर्मित कुत्ते की तरह ही देखते हैं। वह ग्रंथि है हमारा अहंकार। वही हम हैं। उसी से लगता है, मैं हूं। उसे वे इससे ज्यादा मूल्य नहीं देते। लेकिन वह अहंकार बड़े रास्ते खोजता है कि कहीं से मूल्य मिल जाए। वह संतों के चरणों में जा सकता है और बाहर अकड़ कर निकल सकता है कि संत के चरणों तक पहुंचने का मुझे मौका मिला--मुझे! जब दूसरे पीछे खड़े रह गए थे, तब भी मैं चरणों तक पहुंच गया! और जब संत ने दूसरों की तरफ देखा भी नहीं, तब मेरी तरफ देखे कैसी उनकी प्यार से भरी आंख थी!
यह आंख किसी भी दिन पत्थर की हो जाएगी। यह आंख आपका निर्माण है।

इसलिए लाओत्से जैसे लोग बहुत बड़ी भीड़ को प्रभावित नहीं कर पाते। क्योंकि भीड़ तो उनसे प्रभावित होती है, जो उनके अहंकार को फुसलाने की कला जानते हों। सेल्समैनशिप, आदमी के साथ सारा काम कला का है। अमरीका में हजारों किताबें लिखी जाती हैं इधर इन बीस वर्षों में, जो लोगों को सिखाती हैं कि हाऊ टु इनफ्लुएंस पीपुल, हाऊ टु विन फ्रेंड्स! कैसे जीतें लोगों का दिल, पतियों को कैसे पकड़ें, पत्नियों को कैसे फंसाएं, ग्राहक को कैसे माल बेचें! हजार-हजार रास्ते समझाती हैं। सब रास्तों का सार एक है कि दूसरे आदमी के अहंकार को कैसे फुसलाएं।
अगर एक कुरूप से कुरूप स्त्री भी आपके अहंकार को फुसलाने में समर्थ
हो जाए, तो मुमताज और नूरजहां दो कौड़ी की हो जाती हैं। सौंदर्य स्त्री के शरीर में कम, उसके परसुएशन में है। इसलिए कई दफा कुरूप स्त्रियां चमत्कार पैदा कर देती हैं और सुंदर स्त्रियां पीछे क्यू में खड़ी रह जाती हैं। कई बार साधारण बुद्धि का आदमी प्रभावशाली नेता हो जाता है और असाधारण बुद्धि के आदमी को कोई पूछने वाला नहीं मिलता। राज क्या है? वह जानता है कि दूसरे के अहंकार को कैसे फुसलाएं।
इस जगत में कोई चीज नहीं बिकती और न कोई चीज कब्जा की जा सकती है, जब तक
आप दूसरे के अहंकार पर तरकीबें न सीख लें। और दूसरे के अहंकार को फुसलाने से आसान क्या है! बहुत आसान है। क्योंकि दूसरा फिसलने को राजी ही है। सदा तैयार है, इसी उत्सुकता में है कि आप फिसलाओ। आप एक कदम सरकाओ, वह दस कदम गिरने को तैयार है!
लाओत्से जैसा आदमी प्रभावी नहीं हो सकता, क्योंकि वह कहता है, तुम्हारा अहंकार सिवाय घास-निर्मित कुत्ते के और कुछ भी नहीं। कनफ्यूशियस लाओत्से को मिलने आया, तो वहां कोई बैठने की जगह न थी, कोई कुर्सी न थी, कोई ऊंचा आसन न था। कनफ्यूशियस तो बहुत नियमविद आदमी था। उसने चारों तरफ कमरे के देखा बैठने के पहले, कहां बैठे। लाओत्से ने कहा, कहीं भी बैठ जाओ, कमरे को तुम्हारी कोई भी फिक्र नहीं है। कमरा कोई चिंता न लेगा; कहीं भी बैठ जाओ। मैं यहां बहुत देर से बैठा हूं; कमरे ने मेरी तरफ देखा ही नहीं।
कनफ्यूशियस बैठ तो गया। लेकिन बेचैन हो गया। कभी ऐसा जमीन पर नहीं बैठा था। लाओत्से ने कहा, शरीर तो बैठ गया है; तुम भी बैठ जाओ। वह अहंकार अभी पीछे खड़ा था। लाओत्से ने कहा, जब बैठ ही गए हो, तो अब तुम भी बैठ जाओ। शरीर तो बैठ ही गया है।
बैठ तो गया, लेकिन कनफ्यूशियस सुन नहीं पाया कि लाओत्से ने क्या कहा। अगर आपसे सौ शब्द बोले जाएं, तो निन्यानबे नहीं सुने जाते हैं। नेपोलियन हिल, अमरीका के एक कुशल विचारक ने कहा है कि अगर दूसरे आदमी के भीतर प्रवेश करना हो, तो सबसे पहले उसके अहंकार को थोड़ी सी खुशामद दो। तब वह सुनने को राजी होता है। नहीं तो वह सुनता भी नहीं। सुनता भी नहीं!
आप यहां आए। अगर आते ही मैं आपसे पूछता कि आपके मन में कौन सा विचार चल रहा है? तो आप सब अगर ईमानदारी से अपने विचार बताएं, तो सबके मन में कुछ न कुछ चल रहा होगा। अगर मुझे आपसे बात करनी है, तो मुझे आपके भीतर की अंतर्धारा तोड़नी पड़ेगी। तो ही मेरी बात प्रवेश करेगी; अन्यथा आपके कान मुझे सुनते रहेंगे, आंखें मुझे देखती रहेंगी, भीतर की अंतर्धारा जारी रहेगी।
वह नेपोलियन हिल कहता है, अगर दूसरे की अंतर्धारा तोड़नी है, तो पहले उसके अहंकार को फुसलाओ। तब वह सुनने को एकदम राजी हो जाता है। उसने अपना एक संस्मरण लिखा है। उसका ख्याल है कि आदमी चार चीजों के आस-पास, इर्द-गिर्द घूमता हैः यश, धन, वासना, जीवेषणा। इनके इर्द-गिर्द घूमता रहता है। ये सब अहंकार के ही हिस्से हैं। उनको चार, आठ कितना ही कोई कहे। अगर किसी आदमी को आपको राजी करना है, तो हिल जैसे लोग कहते हैं कि इन चार में से कहीं से प्रवेश करो।
वह एक बस में चढ़ा है। बस तेजी से भागी जा रही है। जोर की वर्षा है। और उसको पचपन नंबर के स्टैंड पर उतर जाना है। ड्राइवर से उसने कहा कि ख्याल रखना, मुझे पचपन नंबर के स्टैंड पर याद दिला देना कि पचपन नंबर आ गया। कहीं

ऐसा न हो कि मैं आगे-पीछे चला जाऊं। रात अंधेरी है और वर्षा बहुत हो रही है।
ड्राइवर ने कहा, मैं किस-किस को याद दिलाऊंगा! और वर्षा की वजह से मुझे खुद भी ठीक दिखाई नहीं पड़ रहा है कि कौन सा नंबर निकला जा रहा है। अपना ख्याल रखना। और भी लोगों ने मुझसे कहा है। फिर मैं ट्रैफिक पर ध्यान रखूं कि नंबरों का ख्याल रखूं?
दूसरा आदमी होता, चुपचाप पीछे चला जाता। नेपोलियन हिल ने सोचा, प्रयोग करना उचित है। उसने कहा कि और इसलिए और भी कह रहा हूं कि पचपन नंबर के स्टैंड के पास जमीन में गड्ढा खुदा है, सड़क खोदी जा रही है; जरा होश से चलाना!
वह पीछे जाकर खड़ा हो गया। और सबके नंबर भूल गए ड्राइवर को, पचपन नंबर नहीं भूला। पचपन नंबर पर गाड़ी धीमी करके उसने कहा, लेकिन वह गड्ढा कहां है? नेपोलियन हिल ने उससे कहा, गड्ढा वगैरह कोई भी नहीं है; लेकिन तुम्हारे भीतर जो अंतर्धारा है, उसको तोड़ कर पचपन नंबर डालना जरूरी है। अगर मौत का ख्याल आ जाए, तो अहंकार को धक्का लग जाता है। धन का ख्याल आ जाए, तो धक्का लग जाता है। वासना का ख्याल आ जाए, तो धक्का लग जाता है। यश का ख्याल आ जाए, तो धक्का लग जाता है। धारा टूट जाती है; ओपनिंग हो जाती है। वहां से भीतर प्रवेश किया जा सकता है।
लाओत्से जैसे लोग कैसे प्रवेश करें आपके भीतर? क्योंकि न वे धन की बात करेंगे, न यश की बात करेंगे, न पद की बात करेंगे, न वासना की बात करेंगे। वे कोई बात न करेंगे। वे आपसे कह रहे हैं, तुम कुत्ते हो घास-निर्मित। इनकी कोई सुनेगा? कनफ्यूशियस ने लौट कर अपने शिष्यों से क्या कहा, आपको पता है? उसने कहा, उस बूढ़े के पास कोई मत जाना कभी। वह आदमी क्या है, सिंह मालूम पड़ता है, किसी को खा जाएगा। इतना कठोर आदमी मैंने नहीं देखा। मैं उसके सामने एकदम घबड़ा गया। उसने जो भी कहा, मुझे पता नहीं, क्या कहा। मैंने सुना भी ठीक से नहीं, मैं सुन भी नहीं सका। उस आदमी की तरफ आंख उठाना बहुत कठिन है।
लाओत्से सदय भी नहीं है, कठोर भी नहीं है। लेकिन कनफ्यूशियस को कठोर लगा होगा। क्योंकि कनफ्यूशियस जैसा महा विचारक, प्रतिष्ठा थी उसकी लाओत्से से ज्यादा। लाओत्से को कम लोग जानते थे, कनफ्यूशियस को ज्यादा। और ढाई हजार साल में लाओत्से ने नहीं चीन के मन को निर्मित किया, कनफ्यूशियस ने निर्मित किया। तो कनफ्यूशियस ज्यादा प्रतिष्ठित था। सम्राट उसको सम्मान देते थे। सम्राट उठ कर उसको बैठने को कहते थे। और एक बूढ़े फकीर ने उससे कहा, बैठ भी जा, कमरे को तेरी कोई फिक्र नहीं है। उसका मन और बंद हो गया होगा।
संत सदय नहीं हैं। संत इतने एकात्म को उपलब्ध हो गए हैं अस्तित्व से
कि अस्तित्व ही उनके भीतर से बोलता, अस्तित्व ही उनके भीतर से व्यवहार करता, अस्तित्व ही उनके भीतर से चलता-उठता है; संत नहीं। यह स्मरण रहे, तो लाओत्से का यह बहुत अजीब सा दिखने वाला सूत्र आसान हो जाएगा। और काश, हम संतों को इस भांति देख सकें, तो संतों के संबंध में हमारी सारी दृष्टि और हो जाएगी। हम और ढंग से देख पाएंगे, सोच पाएंगे।
लेकिन संत के पास भी हम अपनी दृष्टि लेकर जाते हैं। हम संत को समझने नहीं जाते, हम अपनी दृष्टि का आंकलन करने जाते हैं। यदि हम सुनते भी हैं संत को, तो हम इस हिसाब से सुनते हैं कि कौन सी बात इसमें सही है। सही का मतलब क्या होता है? आपसे कौन सी बात मेल खाती है। सत्य का क्या मतलब होता है? जिसको आप सत्य मानते हैं, वह अगर मेल खाता हो, तो आदमी ठीक है। अगर वह मेल न खाता हो, तो आदमी गलत है। आप अपने को मापदंड बना कर घूम रहे हैं। आपका संत से मिलना भी नहीं हो सकेगा कभी।
लाओत्से जिस संत की बात कर रहा है, वह आपको न मिलेगा। हां, कोई रेवड़ी बांटने वाला संत आपको मिल सकता है। आपकी जीभ पर एक रेवड़ी रख देगा, बहुत खुशी होगी। वह घास का जो कुत्ता है, बहुत प्रसन्न होगा; और कहेगा, बिल्कुल ठीक! सिर पर पानी छिड़क देगा और कहेगा कि आशीर्वाद! जा, सभी में सफलता मिलेगी! तंत्र-मंत्र दे देगा कुछ, अदालत में मुकदमा जीतो, हारा हुआ प्रेम

बाजी बदल दो, कहीं किसी लाटरी में नंबर लगा दो! वे आदमी आपको मिल जाएंगे। लाओत्से का संत आपको नहीं मिलेगा।
नहीं मिलेगा इसलिए कि आप उसको तभी खोज सकते हैं, जब आप अपने को घास का कुत्ता जानने को राजी हों। तभी आप उसको खोज सकते हैं। और जो आदमी अपने को घास का कुत्ता जानने को राजी हो जाए, उस आदमी को उसके दरवाजे पर वैसा संत आकर मिल जाएगा, उसे जाने की भी शायद जरूरत न पड़े। क्योंकि जैसी हमारी तैयारी है, वैसे ही अस्तित्व प्रकट करने लगता है अपने राज, अपने रहस्य! हमारी तैयारी पर सब कुछ निर्भर होता है।
हमारी तैयारी का सब से अनिवार्य अंग जो है, उसके लिए लाओत्से इशारा कर रहा है। यह इशारा केवल मेटाफिजिकल नहीं है, यह कोई दार्शनिक तत्वज्ञ मात्र की बात नहीं है। लाओत्से इशारा इसलिए कर रहा है, ताकि हम समझ सकें कि अगर संत को खोजना हो, तो हमें क्या करना पड़ेगा। हमें अपने संबंध में साफ हो जाना पड़ेगा कि हम क्या हैं। यदि स्पष्ट मुझे बोध हो जाए कि मैं क्या हूं, तो वह जो गांठ हमारे ऊपर लदी हुई है, उसके टूट जाने में जरा भी देर नहीं लगती, उसके गिर जाने में भी जरा देर नहीं लगती। लेकिन हमें स्मरण ही नहीं होता।
अभी एक मां मेरे पास आई हुई थी अपनी बेटी को लेकर, दूर न्यूयार्क से। क्योंकि मां और बेटी में बड़ी कलह थी। और मां का ख्याल है कि अपनी बेटी को बहुत प्रेम करती है। दो महीने पहले भी आई थी। और तब उसने कहा कि मैं अपने बच्चों को इतना प्रेम करती हूं कि मैं उनके लिए जान दे सकती हूं। मैंने उससे कहा कि तू फिर एक दफा सोच, क्योंकि यह स्वाभाविक नहीं है। उसने कहा, मैं अपनी लड़कियों को इतना प्रेम--तीन लड़कियां ही हैं उसकी--इतना प्रेम करती हूं कि आप भरोसा नहीं कर सकते। मैंने उससे कहा कि तू फिर एक दफा सोचना।
तो वह रोने लगी, चीखने लगी, छाती पीटने लगी। और उसने मुझसे कहा कि आप बहुत कठोर हैं, आप अपने शब्द वापस ले लें, मैं अपने बच्चों को सच में ही प्रेम करती हूं।
वह जितनी ही चीखने लगी, उतना ही मैंने उससे कहा, यह चीख मार कर तू किसको समझाने की कोशिश कर रही है--मुझे या स्वयं को? अगर करती है प्रेम, तो खतम हो गई बात। इसमें चीख मारना और रोना और छाती पीटने की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन तू इतनी चीख मारती है, छाती पीटती है, रोती है, तो मैं तुझसे कहता हूं कि तू अपने को समझाने की कोशिश कर रही है। तेरे रोने से मुझ पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लेकिन शायद तुझे स्वयं पर पड़ेगा कि मैं इतनी रोई, इतनी छाती पीटी, देखो कितना प्रेम करती हूं!
प्रेम करना हो, तो छाती पीटना और रोना जरूर आना चाहिए। नहीं तो आपका पता ही नहीं चलेगा किसी को कि आप प्रेम भी करते हैं। ज्यादा जोर से छाती पीटना और रोना आता हो, तो आप प्रेम करते हैं। इसलिए स्त्रियां बहुत जल्दी सिद्ध कर देती हैं कि वे प्रेम करती हैं। पुरुष सिद्ध नहीं कर पाते कि वे प्रेम करते हैं। सिद्ध करने का उपाय ही नहीं हाथ में लाते।
मैंने उसे कहा कि नहीं, इस सब से कुछ मेरे सामने नहीं होगा।
तो इस बार वह अपनी लड़की को लेकर आई है, अपनी बड़ी लड़की को लेकर आई है। और उसने कहा कि अब आप देखें। और मैंने देखा। और पंद्रह दिन में, इस जमीन पर जितनी दुश्मनी हो सकती है किन्हीं दो व्यक्तियों में, उतनी उन दोनों के बीच दुश्मनी पूरी प्रकट हो गई है।
मां और बेटी के बीच होती है दुश्मनी। समाज छिपाता है, परिवार छिपवाता है। लड़की जैसे-जैसे जवान होने लगती है, मां दुश्मन होने लगती है। वह बिल्कुल स्वाभाविक है। वह हमारा एनीमल हेरिटेज है; वह जो जानवरों से हमें मिला है, वह है। बेटा जैसे जवान होने लगता है, बाप ईर्ष्या से भरने लगता है। मगर ये बातें कहने की नहीं हैं। सब बाप जानते हैं, सब बेटे जानते हैं। बेटा जैसे जवान होने लगता है, बाप को हटाने और सरकाने की कोशिश करने लगता है। निश्चित ही, जगह बनानी पड़ती है। जवान लड़की को देख कर मां को याद आना शुरू हो जाता है, वह भी कभी जवान थी। और यह भी याद आना शुरू हो जाता है, इन बच्चों के कारण उसकी जवानी खो गई। किसी के कारण खोती नहीं, बिना बच्चों के भी खो जाती है। लेकिन यह ख्याल आने लगता है। और अब घर में कोई भी आदमी

प्रवेश करता है, तो पहले जवान लड़की पर उसका ध्यान जाता है, पीछे बूढ़ी मां पर। पीड़ा भारी हो जाती है।
अगर लड़कियों को विवाह के बाद उनके पतियों के घर भेजने की योजना किसी
की होगी, तो वह माताओं की है। और चूंकि माताएं सदा जीत जाती हैं, इसलिए बाप हार गया। बेटे को घर में रखने के लिए उसको राजी होना पड़ा; बेटियों को बाहर करना पड़ा। अगर बाप भी अपनी बेटी के प्रति ज्यादा उत्सुकता ले, जो कि बिल्कुल स्वाभाविक है वह लेगा, तो मां को तकलीफ और ईर्ष्या हो जाती है। फिर बेटी बेटी नहीं दिखाई पड़ती, धीरे-धीरे निपट स्त्री दिखाई पड़ने लगती है।
मैंने पंद्रह दिन उन दोनों की सारी बीमारियों को उभारने की पूरी कोशिश की, दोनों को उकसाया। उन दोनों की बीमारियां इतनी बढ़ गईं कि एक-दूसरे की गर्दन घोंट डालें। और जब मैंने उनको सामने बिठा कर दोनों को कहा कि अब तुम अपना दिल खोल दो, जो-जो तुम्हारे भीतर है! तो जो रोग बाहर दिखाई पड़े, वह कोई मां कल्पना नहीं करती, कोई बेटी कल्पना नहीं करती; लेकिन हर बेटी और हर मां के भीतर होते हैं। पर हम दबाए चले जाते हैं, छिपाए चले जाते हैं। उनके ऊपर और अच्छी पर्तें, मुलम्मे लगाए चले जाते हैं। फूल की कतार सजा लेते हैं और भीतर गंदगी को छिपा देते हैं।
लाओत्से कहता है, तुम यही जोड़ हो--इसी सब छिपी हुई गंदगी का। इसे हम घास के कुत्ते से ज्यादा नहीं मानते। और न हम इस पर दया करते हैं, न इसकी क्षमा करते हैं, न हम इस पर कठोर हैं। हम सिर्फ इतना कहते हैं, यह बिल्कुल व्यर्थ है, इररेलेवेंट है, असंगत है। इसका कोई मूल्य नहीं है। और जब तक यह गांठ न फिंक जाए, तब तक वह जो मूल्यवान है, उसका आविर्भाव नहीं होता। और जब तक यह कचरा न हट जाए, तब तक भीतर वह जो स्वर्ण छिपा है, वह कभी निखरता नहीं। यह हैरानी होगी जान कर कि पंद्रह दिन इन मां और बेटी ने एक-दूसरे के साथ इतनी ईर्ष्या, इतनी घृणा और इतनी गालियां दीं कि कभी-कभी तो मैं भी दिक्कत में पड़ा और मुझे लगा कि कहीं यह हल न हो पाया--क्योंकि उन्हें जल्दी वापस लौटना है--तो उपद्रव हो जाएगा। फिर मुझे सामने बिठा कर उनके घृणा के निकालने के प्रयोग करवाने पड़े। एक ही प्रयोग में, जो किसी लड़की ने अपनी मां को कभी नहीं कहा होगा, किसी मां ने अपनी कभी लड़की को नहीं कहा होगा-- लेकिन दोनों ने सदा-सदा सोचा है काल-काल, युग-युग में--वह उन दोनों ने कहा। कल्पना के बाहर! मां कह सकी अपनी बेटी से कि तू मेरी दुश्मन है और मेरे साथ जो भी किसी का प्रेम बनता है, तू उसे छीनने की कोशिश करती है। और लड़की कह सकी अपनी मां से कि तू सिर्फ एक वेश्या है। और जब मां ने पूछा कि तू मुझे घृणा करती है? तो उसने कहा कि हां, मैं तुझे सिर्फ घृणा करती हूं, एट लीस्ट राइट दिस मोमेंट, मैं तुझे घृणा करती हूं। मां कह सकी, तू मेरी कोई भी नहीं है; मैं तुझे देखना भी बर्दाश्त नहीं कर सकती।
और यह सारी गाली घंटे भर जब निकल गई, और मैंने उन दोनों से कहा, अब आंख बंद करके तुम चुप हो जाओ। पांच मिनट वे चुप बैठ कर रोती रहीं; फिर एक-दूसरे के गले लग गईं। रात वे एक ही बिस्तर में सोईं। और दूसरे दिन मां ने मुझसे कहा कि हमारी हनीमून की रात थी! वर्षों के बाद मैं इस लड़की को फिर से प्रेम कर पाई। लेकिन मैंने उसे कहा कि ध्यान रखना, यह प्रेम फिर घृणा को इकट्ठा करने लगेगा।
द्वंद्व जहां है, वहां हम विपरीत को इकट्ठा कर लेते हैं।
लाओत्से कहता है, संत विपरीत के पार हैं, दोनों के बाहर हैं। वे न कठोर, न वे सदय।
आज इतना ही। कल हम दूसरा सूत्र लेंगे।

ताओ उपनिषद, भाग एक
सतरहवां प्रवचन

विरोधों में एकता और शून्य में प्रतिष्ठा

Chapter 5 : Sutra 2

May not the space between Heaven and
Earth be compared to a bellows.
It is emptied, Yet it loses not its power;
It is moved again, and sends forth air the more.
Much speech to swift exhaustion lead we see;
Your inner being guard, and keep it free.

अध्याय 5 : सूत्र 2

स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का आकाश कैसा धौंकनी की तरह है!
इसे रिक्त कर दो, फिर भी इसकी शक्ति अखंडित रहती है;
इसे जितना ही चलाओ, उतनी ही हवा निकलती है।
शब्द-बाहुल्य से बुद्धि निःशेष होती है।
इसलिए अपने केंद्र में स्थापित होना ही श्रेयस्कर है।

जीवन बहुत से विरोधी आधारों पर निर्मित होता है। जैसा दिखाई पड़ता है, वैसा ही नहीं; दिखाई पड़ने वाले तत्वों के पीछे न दिखाई पड़ने वाले तत्व होते हैं, जो बिल्कुल ही विपरीत होते हैं।
विपरीत का हमें स्मरण भी नहीं आता। यदि हम जन्म देखते हैं, तो मृत्यु
की हमें कोई सूचना नहीं मिलती। और अगर जन्म के क्षण में कोई मृत्यु का ख्याल करे, तो हम उसे पागल कहेंगे। लेकिन जन्म के पीछे मृत्यु छिपी रहती है। और जो जानता है, वह जन्म में मृत्यु को तत्क्षण देख लेता है। ऐसा ही जब कोई मर रहा हो, तो उसकी मरणशय्या के पास खड़े होकर हमें उसके जन्म का कोई भी ख्याल नहीं आता।
लेकिन हर मृत्यु के पीछे जन्म की यात्रा शुरू हो जाती है। और जब कोई सुंदर होता है, तो हमने कभी नहीं सोचा कि कुरूप हो जाएगा। और जब कोई युवा होता है, तो हमने युवा के सौंदर्य में वार्धक्य के पदचाप नहीं सुने। और जब कोई सफल होता है, तो असफलता निकट है, यह हमारे स्मरण में नहीं आता। और जब कोई राज-सिंहासनों पर प्रतिष्ठित होता है, तो पृथ्वी पर गिर जाने की और धूल-धूसरित हो जाने की घड़ी बहुत निकट है, इसका हमें कोई स्मरण नहीं होता है।
जीवन विपरीत को अपने में छिपाए हुए है। इसलिए ज्ञानी वह है जो प्रतिपल विपरीत को भी देखने में समर्थ है। जो जीवन में मृत्यु को देख लेता है और अंधकार में प्रकाश को और सफलता में असफलता को और सौंदर्य में कुरूप को और जो प्रेम में घृणा के बीज देख लेता है और जो प्रशंसा में निंदा की यात्रा देख लेता है, वही ज्ञानी है।
लाओत्से इस सूत्र में इस विरोध की तरफ सबसे गहरी खबर देता है। इस विरोध का सबसे गहरा तल क्या है? कभी आपने लुहार की दुकान पर धौंकनी देखी है? लाओत्से उसका उदाहरण लेता है। वह कहता है, जब धौंकनी बिल्कुल खाली हो जाती है, रिक्त, तब ऐसा मत समझना कि वह शक्तिहीन हो गई। सच तो यह है कि खाली धौंकनी में ही शक्ति होती है, भरी धौंकनी में शक्ति नहीं होती। लुहार धौंकनी को खाली इसीलिए करता है, ताकि वह शक्तिशाली हो जाए। फिर उसी शक्ति, उस खालीपन की शक्ति से, पावर ऑफ एम्पटीनेस से और हवा भीतर खींची जाती है। भरी हुई धौंकनी हवा को भीतर नहीं खींच सकती। भरी हुई धौंकनी इतनी भरी हुई है कि अब उसमें और कुछ भरा नहीं जा सकता। भरी हुई धौंकनी भरे होने की आखिरी सीमा पर है। उसमें अब और शक्ति नहीं बचती। वह निर्वीर्य हो गई, वह निःशक्त

हो गई। अब उससे कुछ काम नहीं लिया जा सकता। लेकिन जब लुहार की धौंकनी खाली होती है, तब शक्तिशाली होती है। अब उसे फिर भरा जा सकता है।
मृत्यु के क्षण में आदमी की धौंकनी दब गई, खाली हो गई। अब फिर जीवन प्रकट हो सकता है। मृत्यु के क्षण में, जो हवा थी आपके भीतर, निकल गई। अब आप फिर जीवन की हवाओं को भीतर भर सकेंगे। कभी आपने सोचा कि जब आपकी श्वास बाहर जाती है, तभी आप जीवन को भीतर अपशोषित करने में समर्थ हो पाते हैं! जब श्वास आपके बाहर होती है, तब आप शक्तिशाली होते हैं, खाली नहीं। श्वास से खाली होते हैं, लेकिन जीवन को खींचने की क्षमता आपकी प्रगाढ़ हो जाती है। लाओत्से कहता है कि धौंकनी जब खाली हो लुहार की, तो ऐसा मत समझना कि शक्तिहीन हो गई। खींचेगी वायु को भीतर, फेंकेगी वायु को बाहर। वह जो खालीपन है, वह भरे होने की तरफ एक कदम है। लेकिन हमें खालीपन में सिर्फ खालीपन दिखाई पड़ता है, और भरेपन में सिर्फ भरापन दिखाई पड़ता है।
लाओत्से कहता है, खालीपन भरेपन की तरफ एक कदम है और भरापन खाली होने
की पुनः तैयारी है। और जीवन के ये दाएं और बाएं पैर हैं। एक पैर से जीवन नहीं चलता। श्वास भीतर आती है, वह भी जीवन का एक पैर है। और श्वास बाहर जाती है, वह भी जीवन का एक पैर है। अगर दो श्वास को देखें, तो ख्याल में आ जाएगा कि बाहर जाती श्वास मौत जैसी है, भीतर आती श्वास जन्म जैसी है। जो लोग श्वास के विज्ञान को गहराई से जानते हैं, वे कहते हैं, हर श्वास पर हम मरते हैं और पुनर्जीवित होते हैं।
लेकिन मृत्यु का अर्थ शक्तिहीन हो जाना नहीं है। मृत्यु का अर्थ केवल इतना ही है कि हम पुनः शक्तिशाली होने के लिए तैयार हो गए; हमने पुराने को फेंक दिया और नए को भरने की हमारी क्षमता फिर स्पष्ट हो गई है।
लाओत्से कहता है कि स्वर्ग और पृथ्वी के बीच भी अस्तित्व धौंकनी की भांति चलता है। स्वर्ग और पृथ्वी के बीच भी अस्तित्व धौंकनी की भांति चलता है। पूरे जगत को हम जाती और आती हुई श्वास की व्यवस्था में समझ सकते हैं--पूरे जगत को! अगर सुबह सूरज का निकलना भरती हुई श्वास है, तो सांझ सूरज का डूब जाना फिर रिक्त होती श्वास है। पूरा जगत श्वास से स्पंदित है-- धौंकनी की भांति।
और अभी--लाओत्से को तो ख्याल में भी नहीं हो सकता था--अभी आइंस्टीन और उसके साथियों की सतत खोज का जो परिणाम है, वह यह है कि एक नवीनतम ख्याल फिजिक्स ने जगत को दिया। और वह है एक्सपैंडिंग यूनिवर्स का। अब तक हम सोचते थे कि जगत थिर है। लेकिन अब वैज्ञानिक कहते हैं, जगत एक्सपैंडिंग है, विस्तार होता हुआ है। जैसे कि कोई बच्चा अपने रबर के गुब्बारे में हवा भर रहा हो और गुब्बारा बड़ा होता जाए, ऐसा जगत रोज बड़ा हो रहा है। जितनी देर हम यहां बोलेंगे, उस बीच जगत बहुत बड़ा हो चुका होगा। प्रति सेकेंड लाखों मील की रफ्तार से जगत बड़ा हो रहा है। उसकी जो बाहरी परिधि है, वह आगे फैलती जा रही है। तारे एक-दूसरे से दूर होते जा रहे हैं। जैसे कि एक छोटा रबर का फुग्गा है। उसको हम फुलाएंगे, तो उसकी परिधि पर दो बिंदु अगर बने हों, तो जैसे-जैसे फुग्गा फूलता जाएगा, दोनों बिंदु दूर होते जाएंगे। फुग्गा बड़ा होता जाएगा, बिंदु दूर होते जाएंगे। सब तारे एक-दूसरे से दूर होते जा रहे हैं; केंद्र से परिधि दूर होती जा रही है।
लेकिन एक बड़ी कठिनाई में आइंस्टीन ने पश्चिम के विज्ञान को डाल दिया।
और वह यह कि इसका अंत क्या होगा? और यह कहां होगा समाप्त? यह एक्सपैंशन कहां जाकर बंद होगा? और बंद होगा, तो इसके बंद होने के कारण क्या होंगे? अभी तक पश्चिम के पास दूसरी बात का ख्याल नहीं है। लाओत्से से मिल सकता है, उपनिषदों से मिल सकता है। वह दूसरा ख्याल यह है कि यह जगत का फैलाव भरती हुई श्वास है। लेकिन जो चीज फैलती है, फिर वह सिकुड़ती है। फिर लौटती हुई श्वास भी होगी। पश्चिम का विज्ञान अभी फैलती हुई श्वास के ख्याल पर पहुंच गया है; अभी लौटती हुई श्वास का ख्याल और आना जरूरी है।
पूरब के मनीषी कहते रहे हैं कि उस फैलते हुए एक्सपैंशन को हम कहते हैं सृष्टि, और जब सिकुड़ती है सृष्टि, श्वास जब बाहर जाने लगती है, तो हम उसे कहते हैं प्रलय। जब जगत पूरा फैल जाता है, तो अनिवार्यतया वापस लौटना शुरू हो जाता है। जैसे आपने श्वास भर ली और आपके फेफड़े फैल गए; और फिर श्वास निकलनी शुरू होगी और फेफड़े सिकुड़ जाएंगे।

भारत ने तो बहुत अदभुत बात कही है। उसने तो एक सृष्टि के काल को ब्रह्मा की एक श्वास कहा है। उसे हम यूं कह सकते हैं, अस्तित्व की एक श्वास। जब ब्रह्मा श्वास लेता है, तो जगत खिल जाता है, फैल जाता है। और जब ब्रह्मा श्वास छोड़ता है, तो सब सिकुड़ कर अपने बीज में चला जाता है। लाओत्से कहता है, पृथ्वी और स्वर्ग के बीच में ऐसी ही धौंकनी के श्वास
का खेल है। और पृथ्वी और स्वर्ग के बीच में जितनी वस्तुएं हैं, सभी इस द्वंद्व से घिरी रहती हैं--फैलना, सिकुड़ना।
लाओत्से यह क्यों कहना चाहता होगा? लाओत्से इसलिए कहना चाहता है कि अगर आप फैलने के लिए बहुत आतुर हैं, तो सिकुड़ने की तैयारी रखना। अगर आप जीवन को पाने के लिए बहुत उत्सुक हैं, तो मरने की तैयारी रखना। अगर सुंदर होने की बहुत चाह है, तो कुरूप होने के आप बीज बो रहे हैं। अगर सफल आप होना चाहते हैं, तो असफलता की सीढ़ियां आप निर्मित कर रहे हैं।
लाओत्से से किसी ने कहा है जाकर एक दिन सुबह कि लाओत्से, तुमने कभी दुख जाना? तो लाओत्से हंसने लगा। उसने कहा, नहीं जाना; क्योंकि मैंने सुख को जानने की कभी कामना नहीं की।
दुख तो हम भी चाहते हैं कि न जानें। लेकिन हम इसीलिए चाहते हैं कि दुख
न जानें, ताकि सुख को जानते रहें। हम भी चाहते हैं, दुख न हो; लेकिन इसीलिए ताकि सुख बना रहे। लाओत्से कहता है, मैंने दुख नहीं जाना, क्योंकि मैंने सुख को जानने की कोई आकांक्षा नहीं की।
हम दुख जानते ही रहेंगे, क्योंकि सुख को बोते समय ही दुख के बीज बो दिए जाते हैं। सुख की चाह से ही दुख का जन्म होता है। भीतर आती श्वास ही बाहर जाती श्वास बन जाती है। फैलाव ही सिकुड़ने का रास्ता है। और प्रकाश ही अंधेरे का द्वार बन जाता है। वह विपरीत हमारे ख्याल में नहीं है। और पूरे समय लुहार की धौंकनी की तरह जीवन अपने विपरीत के बीच डोलता रहता है। लाओत्से को हराया नहीं जा सकता, क्योंकि लाओत्से कहता है, मैंने कभी जीतना नहीं चाहा। और लाओत्से कहता था कि मेरा कभी अपमान कोई नहीं कर पाया, क्योंकि मैंने कभी कोई सम्मान की व्यवस्था नहीं की। और जब मैं कभी सभाओं में गया, तो मैं वहां बैठा जहां लोग जूते उतारते थे, क्योंकि वहां से और पीछे हटाए जाने का कोई उपाय न था। लाओत्से कहता था, मैं सदा नंबर एक रहा, क्योंकि नंबर दो मुझे कोई भी नहीं रख सकता। क्योंकि मैं आखिरी नंबर पर ही खड़ा रहा हूं। मैं कतार में सबसे पीछे ही खड़ा था। उससे पीछे करने का कोई उपाय न था। इसलिए मुझे कभी कोई पीछे करने में समर्थ नहीं हो सका।
यह बड़ी उलटी बात लगती है। लेकिन ठीक यही है। जो पीछे ही खड़ा है, उसे पीछे करने का कोई उपाय नहीं हो सकता। लेकिन जो आगे खड़ा है, उसके आगे खड़े होने में ही उसने वह सब व्यवस्था कर रखी है, जो उसे पीछे कर देगी। असल में, आगे खड़े होने के लिए जिन सीढ़ियों का उसने उपयोग किया है, उन्हीं सीढ़ियों का उपयोग उसे पीछे करने के लिए कोई और करेगा।
मुल्ला नसरुद्दीन सुबह एक नदी के किनारे मछलियां पकड़ रहा है। उसने कुछ केंकड़े भी पकड़ लिए हैं। एक छोटी सी बालटी में उसने चार-छह केंकड़े भी डाल दिए हैं। गांव के तीन-चार बड़े राजनीतिज्ञ सुबह-सुबह घूमने निकले हैं। उन्होंने नसरुद्दीन को मछलियां पकड़ते बैठे देखा और उसकी टोकरी में, बालटी में केकड़ों को चलते देखा। तो उनमें से एक ने कहा, मुल्ला, अपनी बालटी को ढांक दो तो अच्छा; अन्यथा ये केंकड़े निकल भागेंगे। नसरुद्दीन ने कहा, ढांकने की कोई जरूरत न पड़ेगी। दीज क्रैब्स आर बॉर्न पोलिटीशियंस। ये जो केंकड़े हैं, जन्मजात राजनीतिज्ञ हैं। एक चढ़ता है, तो दूसरे उसे खींच कर नीचे गिरा लेते हैं; ये भाग नहीं सकते। चढ़ जाते हैं, भाग नहीं पाते। क्योंकि वे तीन इनके पीछे पड़े हैं पूरे समय। जब उन तीन में से कोई चढ़ता है, तो बाकी तीन हमेशा खींचने को पीछे हैं। मुल्ला ने कहा, पहले मैं भी टोकरी को ढांकता था। लेकिन फिर मैंने पाया, बेकार है। ये तो जन्मजात राजनीतिज्ञ हैं; इन्हें ढांकने की कोई भी जरूरत नहीं है।
असल में, जब भी आप चढ़ने लगते हैं ऊपर, तब आप न मालूम कितने लोगों को आपको पीछे खींच लेने के लिए उत्सुक कर देते हैं। आपके चढ़ने में ही वह कीमिया छिपा है। असल में, चढ़ने का मजा ही तब है, जब कोई आपको खींचने को उत्सुक हो जाए। इसे थोड़ा समझ लें। अगर कोई खींचने को उत्सुक न हो, तो आपको

चढ़ने में कोई मजा न आए। या आए? आप एक सिंहासन पर बैठ जाएं और कोई आपको नीचे उतारने को उत्सुक न हो, तो सिंहासन बेकार हो जाए।
सिंहासन का मूल्य यही है कि जब उस पर कोई चढ़ेगा, तो लाखों लोग उतारने को, धकाने को, उसकी जगह बैठने को आतुर हो जाएंगे। नहीं तो उसे कौन सिंहासन कहेगा? जिस पर बैठे हुए आदमी को कोई उतारने को उत्सुक नहीं है। आप बैठते ही इसलिए हैं कि वह जगह ऐसी है, जहां न मालूम कितने लोग बैठना चाहते हैं। आपके बैठने में जो रस है, वही रस दूसरों को आपको नीचे उतार लेने का रस है। वह साथ-साथ, संयुक्त है।
और लाओत्से कहता है, तुम हमें नीचे न उतार पाओगे, क्योंकि हम वहां बैठे हैं, जिसके नीचे और कोई जगह ही नहीं होती। हमारा सिंहासन सुरक्षित है।
यह लाओत्से उलटी बात को जानता है। और उलटी बात को जान लेना इस जगत में परम ज्ञान का सूत्र है। अगर हम प्रथम होना चाहते हैं, तो हम प्रथम ही होना चाहते हैं। यह उलटी बात का हमें कोई पता नहीं कि अंतिम ही प्रथम हो सकता है। और अगर हम भरना चाहते हैं, तो हम भरना ही चाहते हैं। हमें उलटी बात का कोई भी पता नहीं कि जो शून्य है, खाली है, वही केवल भरा जाता है। अगर हम सम्मान पाना चाहते हैं, तो हम सीधे ही सम्मान पाने चल पड़ते हैं। हमें पता ही नहीं है कि यह अपमान को पाने का इंतजाम है। लेकिन विपरीत को देख लेना तो बड़ी कुशलता की बात है, विपरीत हमें दिखाई नहीं पड़ता।
मुल्ला नसरुद्दीन से मिलने कोई आया है उसके घर। जैसे ही भीतर आया, नसरुद्दीन ने उससे कहा, बैठें! कुर्सी ले लें! लेकिन वह आदमी नाराज हो गया, क्योंकि वह कोई साधारण आदमी न था। वह बहुत बड़ा धनपति था। और ऐसे साधारण भाव से कहा जाना कि बैठें, कुर्सी ले लें, उसे पीड़ादायी हुआ। उसने कहा, नसरुद्दीन, तुम जानते हो, मैं कौन हूं? हम सभी बताने को उत्सुक हैं कि मैं कौन हूं! नसरुद्दीन ने कहा, बड़ी कृपा होगी, बताएं। उस आदमी ने कहा कि तुम्हें पता है कि इस नगर में मुझसे बड़ा धनशाली कोई भी नहीं? नसरुद्दीन ने कहा, क्षमा करें, मुझे पता नहीं था; देन यू कैन टेक टू चेयर्स। तब आप दो कुर्सियों पर बैठ जाएं। और मैं क्या कर सकता हूं!
दो कुर्सियों पर तो बैठा भी नहीं जा सकता, चाहे आप कितने ही बड़े आदमी हों। लेकिन दो कुर्सी पर बैठने का मन होता है। तब एक तरकीब है। कुर्सी के ऊपर कुर्सी रख कर बैठा जा सकता है।
उस आदमी ने कहा, तुम पागल तो नहीं हो नसरुद्दीन! दो कुर्सी पर मैं कैसे बैठूंगा? नसरुद्दीन ने कहा, मैं तरकीब भी बताता हूं। आप एक कुर्सी के ऊपर दूसरी कुर्सी रख लें, उस पर चढ़ कर बैठ जाएं।
सिंहासन कई कुर्सियां हैं एक के ऊपर एक। बहुत कुर्सियों पर बैठना हो,
इस हॉल में जितनी कुर्सियां हैं, सब पर बैठना हो, तो बहुत मुश्किल है। फिर एक के ऊपर एक कुर्सी रखी जा सकती हैं--वर्टिकल। सिंहासन का मतलब है, हजारों कुर्सियां जिसके नीचे हैं, लाखों कुर्सियां जिसके नीचे हैं।
लेकिन जितने लोग उन कुर्सियों पर दब जाएंगे, वे आपकी ऊपर की कुर्सी को फेंकने की कोशिश में लगे ही रहेंगे। खाली कुर्सियों पर बैठने में कोई भी मजा नहीं है। आदमी, असल में, आदमी के ऊपर बैठना चाहता है। खाली कुर्सी पर बैठने से क्या फायदा होगा! आदमी आदमी के ऊपर बैठना चाहता है।
लेकिन जितनी आपकी कुर्सी ऊपर होती जाती है, उतने आप खतरे में पड़ते जाते हैं। क्योंकि उतने ही लोग आपके नीचे दबते चले जाते हैं। वे आपको फेंक कर रहेंगे। इसलिए दुनिया में पहली कुर्सी सुरक्षित नहीं है, सबसे ज्यादा असुरक्षित जगह है।
लाओत्से कहता है, लेकिन हमारा सबका मन चीजों को सीधे पाने का होता है, क्योंकि हमें विपरीत का कोई भी पता नहीं है। अगर विपरीत का पता हो, तो हम उस महान कला को जान जाते हैं, जिसका नाम धर्म है।
धर्म कहता है, अगर तुम परम जीवन पाना चाहते हो, तो तुम परम मृत्यु के लिए राजी हो जाओ। डाई दिस वेरी मोमेंट, इसी क्षण मर जाओ, और परम जीवन तुम्हारा है! और धर्म कहता है, अगर तुम्हें ऐसा धन पाना है जिसे चोर न चुरा सकें, तो तुम बिल्कुल निर्धन होने को ही अपना धन मान लो। और अगर तुम्हें

ऐसी प्रतिष्ठा चाहिए जिसके विपरीत कोई उपाय नहीं है, तो तुम अपने ही हाथ से अप्रतिष्ठित हो जाओ।
जापान में एक फकीर हुआ है, लिंची। जब वह मरा, तब वर्षों बाद लोगों को पता चला कि उसने अपने ही बाबत बहुत सी गलत खबरें जाहिर कर रखी थीं। लोगों को उसने राजी कर रखा था कि उसके संबंध में गलत खबरें उड़ाते रहें। लिंची बिल्कुल अप्रतिष्ठित मरा। मरते वक्त जो मित्र उसके पास थे, उनसे उसने कहा कि तुम्हारी कृपा कि तुमने मेरे संबंध में बहुत सी खबरें उड़ा दीं; मैं भीड़-भाड़ के पागलपन से बच गया। मैं निश्चिंत मर रहा हूं। मैं इतना अप्रतिष्ठित हो गया कि मेरी प्रतिष्ठा को हिलाने के लिए भी कोई नहीं आता। अप्रतिष्ठित को कौन हिलाने आता है? लेकिन प्रतिष्ठित को लोग हिलाने पहुंच जाते हैं। उसकी प्रतिष्ठा ही आकर्षण बन जाती है कि हिलाने को आओ। लाओत्से कहता है, इस अस्तित्व में विरोधी श्वास चल रही है, जैसे धौंकनी चलती हो लुहार की। इसमें वह एक बात पर जोर देता है कि जब धौंकनी खाली हो--इसे रिक्त कर दो, फिर भी इसकी शक्ति अखंडित रहती है--जब धौंकनी बिल्कुल रिक्त होती है, तब यह मत समझना कि उसकी शक्ति टूट गई; उसकी शक्ति अखंडित होती है, पूर्ण होती है। शून्य के पास पूर्ण की शक्ति होती है। शून्य के पास पूर्ण की शक्ति?
फिजिक्स कहती है कि हम जब एटम को तोड़ते हैं, तब कुछ भी नहीं बचता, शून्य रह जाता है। लेकिन इस जगत में शक्ति का सब से बड़ा स्रोत अणु के विस्फोट से होता है। हिमालय उतना बड़ा शक्तिशाली नहीं है, जितना एक छोटा सा--इतना छोटा कि आंख से दिखाई न पड़े! अगर हम एक लाख अणुओं को एक के ऊपर एक रखें, तो आदमी के बाल की मोटाई के बराबर होते हैं। एक लाख अणुओं को एक के ऊपर एक राशि लगा दें, तब एक बाल की मोटाई होती है। बाल का लाखवां हिस्सा अगर हम कर सकें, बारीक, तो अणु होगा। बाल की खाल निकालने की बात हमने सुनी है; लेकिन इसको तो बाल की खाल की खाल की, ऐसा कई बार कहना पड़े, तब खाल आएगी। मुझे एक घटना याद आती है। नसरुद्दीन का एक मित्र गांव से आया है, देहात से। और एक बतख भेंट कर गया है। बतख आई घर में, तो नसरुद्दीन ने उसका शोरबा बनाया, मित्र को खिलाया। फिर पंद्रह दिन बाद एक आदमी आया, नसरुद्दीन ने उसे बिठाया। और उसने कहा कि मैं उस मित्र का मित्र हूं जो बतख लाया था। नसरुद्दीन ने उसे भी शोरबा पिलाया।
मगर मेहमान आते ही चले गए। फिर मित्र का मित्र का मित्र आया, फिर मित्र का मित्र का मित्र का मित्र आया; ऐसी कतार बढ़ती चली गई। छह महीने में नसरुद्दीन घबड़ा गया। और जो भी आया, उसने कहा कि मैं उस आदमी के मित्र का मित्र का मित्र का मित्र का मित्र हूं जो बतख लाया था। नसरुद्दीन के भी सामर्थ्य की सीमा आ गई। वह गरम पानी भीतर से लाया और उसने कहा, शोरबा पीएं। उस आदमी ने कहा कि यह शोरबा है? गरम पानी है!
नसरुद्दीन ने कहा कि वह जो बतख लाया था, उस बतख के शोरबे के शोरबे का शोरबा का शोरबा है। छह महीने हो गए बतख आए हुए; अब तुम अगर बतख का शोरबा चाहते हो, तो बड़ी गलती बात है। जितनी यात्रा मित्र से तुम्हारी हो गई, उतनी ही बतख से इस शोरबे की हो गई है। अगली बार आओगे, ठंडा पानी मिलेगा, गरम भी नहीं रह जाएगा; क्योंकि यात्रा लंबी होती जा रही है।
अगर हम अणु को सोचें, तो वह बाल की खाल भी नहीं है। बहुत लंबी यात्रा है। एक लाख बार हम बाल को छीलते चले जाएं, तब जो बचेगा! बचेगा कुछ? अब तक अणु को देखा नहीं जा सका है। नहीं, खाली आंख से ही नहीं, यंत्र की आंख से भी अणु को देखा नहीं जा सका है। और वैज्ञानिक कहते हैं कि अणु के संबंध में हम जो कुछ कहते हैं, वह ठीक वैसा ही है, जैसा पुराने धार्मिक लोग ईश्वर के संबंध में कहते थे। हमने देखा नहीं है, लेकिन कुछ बातें ऐसी हैं, जो कि अणु को मानने से हल हो जाती हैं। इसलिए हम मानते हैं।
ऐसा ही धार्मिक लोग कहते थे। ईश्वर को देखा नहीं है, लेकिन उसके बिना बहुत सी बातों के सवाल मिलने मुश्किल हो जाते हैं। उसको मान लेते हैं, तो सवाल मिल जाते हैं। एजम्शन है। या ऐसा कह सकते हैं कि ईश्वर तो दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन उसके परिणाम दिखाई पड़ते हैं।
ऐसा ही वैज्ञानिक कहते हैं कि अणु तो हमने नहीं देखा, लेकिन विस्फोट दिखाई पड़ता है। हिरोशिमा राख हो जाता है; एक लाख आदमी राख हो जाते हैं। यह

परिणाम है। इस परिणाम को झुठलाया नहीं जा सकता, यह सत्य है। यह दिखाई पड़ता है। लेकिन जिसके भीतर से यह परिणाम होता है, वह बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता। हम सिर्फ कल्पना करते हैं कि कोई चीज टूट गई है, जिसके परिणाम में इतनी ऊर्जा का जन्म हुआ है। उस कल्पित चीज का नाम अणु है। लेकिन अणु जैसी कल्पित और छोटी चीज, अति सूक्ष्म, अति विराट की जन्मदात्री है!
धर्म निरंतर यह कहता रहा है कि अगर विराट को पाना है, तो सूक्ष्म को पाना पड़ेगा। धर्म सदा उलटी बात बोलता रहा है। अब विज्ञान ने भी थोड़ी समझ शुरू की है। धर्म कहता है, विराट को पाना है, तो सूक्ष्म पाना पड़ेगा। परमात्मा को पाना है, तो भीतर जो आत्मा का अणु छिपा है, उसे पाना पड़ेगा। जो आदमी परमात्मा को सीधे खोजने जाएगा, वह कभी नहीं खोज पाएगा। अपने को खो दे भला, परमात्मा को कभी नहीं खोज पाएगा। जिस आदमी को परमात्मा को खोजना है, उसे परमात्मा को तो भूल ही जाना चाहिए; स्वयं के भीतर वह जो छोटा सा अणु छिपा है जीवन का, उसे खोज लेना चाहिए। उसे खोजते ही परमात्मा मिल जाता है। अणु को पकड़ लेना विराट को पकड़ लेना है।
लेकिन उलटा हमें दिखाई नहीं पड़ता। और अणु तो बिल्कुल शून्य है; कहें,
न के बराबर है। उस शून्य में इतनी ऊर्जा! लेकिन वह भी पूर्ण शून्य नहीं है। लाओत्से जिस शून्य की बात कर रहा है, वह पूर्ण शून्य है। अगर अणु, जो कि पूर्ण शून्य नहीं है, उससे इतनी ऊर्जा पैदा होती है, तो पूर्ण शून्य में कितनी ऊर्जा होगी?
ऋषि सदा कहते रहे हैं, इस जगत का जन्म शून्य से हुआ है। तभी इतने विराट
का फैलाव हो सकता है! इतने चांद-तारे, अरबों-अरबों चांद-तारे शून्य से ही पैदा हो सकते हैं।
हमारा गणित उलटा है। हम सोचते हैं, कोई भी चीज पैदा होगी तो वहीं से पैदा होगी, जहां पहले से मौजूद हो। हम सोचते हैं, भरी हुई स्थिति से ही कुछ निकल सकता है। शून्य से क्या निकलेगा? क्योंकि हमें विरोधी गणित का कोई अंदाज नहीं है। लाओत्से उसी विरोधी गणित का जगत में सबसे बड़ा प्रस्तोता है। वह कहता है, वह शून्य की जो स्थिति है, अखंड शक्ति उसमें छिपी है।
यह वह क्यों कहने को उत्सुक है? वह इसलिए कहने को उत्सुक है कि अगर तुम्हें भी अखंड शक्ति के मालिक हो जाना है, तो शून्य हो जाना पड़ेगा--उस धौंकनी की भांति, जिसमें हवा बिल्कुल नहीं रह गई, जिसमें भीतर कुछ भी न बचा, वैक्यूम हो गया। जैसे ही भीतर वैक्यूम हो जाता है, शून्य हो जाता है, धौंकनी बिल्कुल खाली हो जाती है, परम जीवन का आविर्भाव हो जाता है। उसी शून्य में परम अखंडित शक्ति के दर्शन शुरू हो जाते हैं।
लेकिन हम अपने को भरने की कोशिश करते हैं। जैसे कोई पागल लुहार अपनी धौंकनी में चीजें भर ले, फिर धौंकनी काम न आए, ऐसे हम सब पागल लुहार हैं। हम अपने जीवन की धौंकनी को भर लेते हैं। उसकी रिक्तता को भर देते हैं-- क्षुद्र चीजों से, व्यर्थ की चीजों से। कभी धन से, कभी पद से, कभी मकान से, कभी फर्नीचर से, कभी मित्रों से, पत्नी से, पति से, बच्चों से, भर देते हैं। शून्य भीतर का भर जाता है। फिर हम एक कबाड़ी की दुकान की तरह हो जाते हैं। हिलना-डुलना भी भीतर मुश्किल होता है। जरा हिले कि फर्नीचर से टकरा जाते हैं। फिर अपने को सम्हाल कर किसी तरह जी लेते हैं। अखंड ऊर्जा हमारे पास नहीं होती।
महावीर कहते हैं, जो व्यक्ति शून्य हो जाए, वह अनंत ऊर्जा का मालिक हो जाता है। अनंत, इनफिनिट इनर्जी का मालिक हो जाता है!
लेकिन यह शून्य कैसे हम हो सकें, इसे लाओत्से आगे कहेगा। अभी वह इतना
ही कहता है कि शून्य की महिमा को समझ लेना जरूरी है; भरने के पागलपन को समझ लेना जरूरी है। शून्य की महिमा को समझ लेना जरूरी है। जगत में जितनी भी गहरी प्रक्रियाएं पैदा हुई हैं--चाहे उन्हें कोई योग कहे, चाहे ध्यान कहे, चाहे तंत्र कहे, चाहे प्रार्थना कहे, पूजा कहे--वे सभी पद्धतियां आदमी को रिक्त करने की पद्धतियां हैं। आदमी खाली कैसे हो जाए! और आदमी बहुत छोटी चीजों से भर जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन की सम्राट से दोस्ती थी अपने देश के। नसरुद्दीन की ज्ञानियों में गिनती थी। सुलतान ने उससे एक दिन पूछा, मुल्ला, तुम जब प्रार्थना करते हो, तो मन शून्य हो पाता है या नहीं? मुल्ला ने कहा,

बिल्कुल हो जाता है। सम्राट को भरोसा न आया। उसने कहा, सच! तो इस शुक्रवार तुम नमाज करके सीधे मस्जिद से मेरे पास आ जाना। और तुम्हारे ईमान का भरोसा करूंगा। सच-सच मुझे बता देना। अगर तुमने सच-सच बता दिया, तो तुम्हें--वह अपने गधे पर बैठ कर आया था--तुम्हें फिर आगे से गधे की सवारी न करनी पड़ेगी। मेरे अस्तबल का जो सबसे शानदार जानवर है, सबसे शानदार घोड़ा है, वह मैं तुम्हें भेंट कर दूंगा।
नसरुद्दीन ने कहा, जरा देख सकते हैं उस घोड़े को? नसरुद्दीन ने घोड़े को देखा। तबीयत उसकी लार-लार हो गई। उसने कहा कि बड़ी मुश्किल में डाल दिया। खैर, शुक्रवार हाजिर हो जाऊंगा।
प्रार्थना करके नसरुद्दीन आया। दरवाजे पर सम्राट ने घोड़ा बांध रखा था। और नसरुद्दीन से कहा, ईमानदारी से कहो, प्रार्थना में कोई विचार तो नहीं आए? खाली थे तुम? नसरुद्दीन ने कहा, बिल्कुल खाली था। आखिर-आखिर में जरा एक झंझट आई। सम्राट ने पूछा, वह झंझट क्या थी?
नसरुद्दीन ने कहा, वह यह थी कि घोड़ा तो दोगे सही, कोड़ा भी दोगे कि नहीं? साथ में कोड़ा भी दोगे कि नहीं? बस इस कोड़े ने मुझे परेशान कर दिया। लाख उपाय किया अल्लाह को याद करने का, लेकिन कोड़े के सिवाय कुछ याद न आया। बस एक ही बात पकड़े रही कि घोड़ा तो दे दोगे, लेकिन घर तक जाने के लिए कोड़े की भी जरूरत पड़ेगी, वह दोगे कि नहीं?
एक छोटा सा कोड़ा भीतर परमात्मा को हटा सकता है। कोड़ा कोई बहुत बड़ी चीज नहीं है। लेकिन एक छोटे से कोड़े का ख्याल परमात्मा को भीतर से हटा सकता है। यह कुछ ऐसा है कि एक छोटा सा तिनका आंख में पड़ जाए, तो सारी दुनिया अंधेरी हो जाती है। और अगर हिमालय दिखाई पड़ता था, तो एक छोटे से तिनके के आंख में पड़ जाने से हिमालय फिर दिखाई नहीं पड़ता। एक छोटे से तिनके की आड़ में पूरा पर्वत छिप जाता है। छोटा सा विचार भीतर से शून्य को खाली कर देता है। शून्य को भरने के लिए क्षुद्रतम चीज भी काफी है।
और हम सब भीतर भरे हुए हैं। वह हमारा भीतर भरा होना ही हमारे दरिद्र
और भिखारी होने का कारण है। भीतर जो शून्य हो जाता है, वह सम्राट हो जाता है। सम्राट होने का एक ही उपाय है कि भीतर हम शून्य हो जाएं, खाली, रिक्त आकाश की तरह स्पेस रह जाए। और जितना बड़ा भीतर आकाश होता है, उतनी ही महान ऊर्जा का जन्म होता है। इस जगत में जो भी महान घटनाएं घटती हैं, वे शून्य से घटती हैं।
मैडम क्यूरी को कोई पूछता था कि तुमने--वह पहली महिला थी जिसने नोबल प्राइज पाई--तुम्हें नोबल प्राइज मिल सकी, तुमने इसके लिए क्या किया? तो क्यूरी ने कहा, जब तक मैंने कुछ किया, तब तक नोबल प्राइज तो दूर, मुझे कुछ भी नहीं मिल पाया। और जो नोबल प्राइज मुझे मिली है, वह मेरे करने से नहीं मिली; मेरे भीतर शून्य में से कुछ हुआ। मैडम क्यूरी को जिस गणित के आधार पर नोबल प्राइज मिली, वह उसने रात आधी नींद में उठ कर कागज पर लिखा था। वह वर्षों से मेहनत कर रही थी और सफल नहीं हो पाई थी। थक गई थी; उस सांझ उसने तय किया कि अब यह बात ही छोड़ देनी चाहिए। और आधी रात उसकी नींद टूट गई, वह नींद में उठी, उसने टेबल पर कुछ लिखा, वापस सो गई। सुबह उसे याद भी नहीं था कि वह रात कब उठी! उसने क्या लिखा! लेकिन सुबह जब टेबल पर उसने सवाल का हल पाया, तो चकित रह गई। वह नहीं कह पाई जीवन में कि यह मेरे द्वारा किया गया है। यह भीतर के शून्य से आया है।
आइंस्टीन ने मरने के पहले अपने वक्तव्यों में बार-बार कहा है कि जो भी मैंने जाना, वह जब तक मैंने जानने की कोशिश की, मैं नहीं जान पाया। जब मैंने कोशिश छोड़ दी, तो पता नहीं, भीतर के स्पेस से, भीतर के आकाश में वह आविर्भूत हुआ।
जिस व्यक्ति ने नोबल प्राइज पाई अणुओं कीशृंखला के ऊपर, वहशृंखला उसे रात सपने में प्रकट हुई। उसे भरोसा भी नहीं आया कि सपने में अणुओं कीशृंखला की कड़ी दिखाई पड़ सकती है। वह उसे सपने में ही दिखाई पड़ी। इस जगत में आज तक जो भी श्रेष्ठतम घटित हुआ है, वह शून्य से घटित हुआ है--चाहे बुद्ध में, चाहे महावीर में, चाहे लाओत्से में, या चाहे आइंस्टीन में। निजिंस्की कहा करता था कि जब मैं नाचता हूं, जब तक मैं नाचता हूं, तब
तक नाचना साधारण होता है, और जब मेरे भीतर का शून्य नृत्य को पकड़ लेता है,

तब नाचना असाधारण हो जाता है। एक दिन घर लौट कर उसकी पत्नी ने निजिंस्की को कहा कि आज तुम ऐसे नाचे हो कि मैं रो रही हूं अपने मन में कि तुम ही एक अभागे आदमी हो कि तुमने भर निजिंस्की का नाच नहीं देखा! आज तुम ऐसे नाचे हो कि तुम अकेले अभागे आदमी हो।
निजिंस्की ने कहा, तू गलती में है। मैंने भी देखा।
उसकी पत्नी ने कहा, मैं कैसे मानूं, तुम कैसे देख सकोगे?
निजिंस्की ने कहा कि जब तक मैं नाचता हूं, शुरू के थोड़े क्षणों में, तब
तक मैं नहीं देख पाता। लेकिन फिर भीतर का शून्य नृत्य को पकड़ लेता है, तब तो मैं दूर खड़े होकर आब्जर्वर हो जाता हूं; फिर तो मैं देख पाता हूं। निजिंस्की दुनिया का अकेला नर्तक था, जिसको--ऐसा लोगों का ख्याल है-- ग्रेविटेशन का असर नहीं पड़ता था। जब वह नाचता था, तो अनेक बार हवा में उछल जाता था। और वह अकेला नर्तक था जो जमीन तक लौटने में बड़े आहिस्ते आता था, जैसे कोई पंख गिर रहा हो, कोई पक्षी का पंख गिर रहा हो। आदमी की तरह नहीं गिरता था, पक्षी के पंख की तरह! चकित थे लोग और निजिंस्की से पूछते थे कि यह असंभव है बात, क्योंकि शरीर पर तो ग्रेविटेशन काम करता है। शरीर तो किसी का हो, जमीन खींचेगी।
निजिंस्की कहता था, जब तक मैं होता हूं, तब तक काम करता है। लेकिन जब शून्य पकड़ लेता है, तब ग्रेविटेशन का मुझे पता नहीं चलता। मैं जमीन पर ऐसे उतरने लगता हूं, जैसे हलका हो गया हूं, वेटलेस।
भीतर एक शून्य है। जब भी कोई महान नृत्य पैदा हुआ है, तो उससे; कोई महान काव्य पैदा हुआ है, तो उससे; कोई महान अंतर्दृष्टि उपलब्ध हुई है, तो उससे। विज्ञान जन्मता है उस शून्य से, धर्म जन्मता है उस शून्य से, कला पैदा होती है उस शून्य से।
लेकिन हम अहंकार से भरे लोग उस महान के निकट कभी भी नहीं पहुंच पाते, किसी भी द्वार से नहीं। क्योंकि हम कभी शून्य ही नहीं हो पाते। हम कभी आकाश में उड़ नहीं पाते, क्योंकि हम इतने पत्थर से भरे हैं अपने ही भीतर कि वह पत्थरों का वजन हमें जमीन पर कसे रखता है।
लाओत्से कहता है, शून्य अखंड ऊर्जा है।
लाओत्से निरंतर एक कहानी कहा करता था। वह कहा करता था कि मैंने उस संगीतज्ञ का नाम सुना, जिसने वर्षों से कोई गीत नहीं गाया। तो मैं उस संगीतज्ञ की खोज में गया, क्योंकि ऐसे आदमी को लोग संगीतज्ञ क्यों कहते हैं जिसने वर्षों से कोई गीत नहीं गाया! और जब मैं उस संगीतज्ञ के पास पहुंचा, तो न तो उसके पास कोई साज था, न कोई सामान था। वह एक वृक्ष के नीचे बैठा था। और मैंने उस संगीतज्ञ से पूछा, सुना है मैंने कि तुम बहुत बड़े संगीतज्ञ हो, लेकिन कोई साज-सामान नहीं दिखाई पड़ता?
उस संगीतज्ञ ने कहा, साज-सामान की तभी तक जरूरत थी, जब तक संगीत खुद पैदा न होता था और मुझे पैदा करना पड़ता था। अब संगीत खुद ही पैदा होता है। गाता था तब तक, जब तक गीत स्वयं न आते थे। अब गीत स्वयं आ जाते हैं। लाओत्से ने कहा, लेकिन मुझे सुनाई नहीं पड़ता! संगीतज्ञ ने कहा, रुकना पड़ेगा। मेरे पास रुको, धीरे-धीरे सुनाई पड़ने लगेगा।
और लाओत्से संगीतज्ञ के पास रुका। और संगीत सुन कर लौटा। जब उसके शिष्यों ने पूछा कि सुना संगीत? कैसा था संगीत? लाओत्से ने कहा, वह संगीत शून्य का था। वहां शब्द नहीं थे। वहां शून्य का सन्नाटा था। और आज मैं तुमसे कहता हूं कि जिस संगीत में शब्द होते हैं, वह संगीत नहीं, केवल शोरगुल है; संगीत तो वह है जहां शब्द शून्य हो जाते हैं, मौन सन्नाटा ही रह जाता है। शोरगुल है जहां, शब्द है वहां।
पर आपको ख्याल में न होगा। संगीत... अभी आप सितार सुनते थे। अगर आप समझते हों कि जब सितार पर एक ध्वनि उठती है, तब संगीत होता है, तो आप गलती में हैं। जब सितार पर एक ध्वनि उठती है और दूसरी ध्वनि उठती है, और तीसरी ध्वनि उठती है, उनके बीच जो गैप होते हैं, संगीत वहीं है। वे जो खाली जगह होती हैं। इसलिए जो ध्वनियों को सुनता है, वह संगीत नहीं सुनता; वह केवल स्वर सुन रहा है। जो दो स्वरों के बीच में खाली जगह को सुनता है, वह संगीत को सुनता है। जितना महान संगीत होता है, उतना खाली जगह पर निर्भर होता है।

सुबर्ट के संबंध में मैंने सुना है कि वह अपना वायलिन बजा रहा था। सुबर्ट जब भी बजाता था, तो बीच में लंबे इंटरवल होते थे। एक संगीत का शिक्षक--शिक्षक जैसे दयनीय होते हैं, वैसा ही। शिक्षकों को सब कुछ पता होता है, जो बेकार है वह। नियम उन्हें पूरे पता होते हैं; नियम के बाहर जो सार्थक है, उसका उन्हें कोई पता नहीं होता। शिक्षक सामने ही बैठा था। सुबर्ट ने बजाना शुरू किया। फिर सुबर्ट रुक गया। हाथ उसके ठहर गए और तार मौन हो गए। क्षण, दो क्षण, तीन क्षण! उस शिक्षक को लगा कि शायद यह आदमी भूल गया, अटक गया। उसने कहा, जो आता हो, वह बजाओ। शिक्षक ने कहा, जो आता हो, वह बजाओ। छोड़ो जो न आता हो।
सुबर्ट ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि पहली दफे मुझे पता चला कि मैं किन लोगों के सामने बजा रहा हूं। क्योंकि जो मैं बजा रहा था, वह तो केवल द्वार था। जब मैं रुक गया था, तब संगीत था। लेकिन वह शिक्षक बोला, अगर न आती हो यह--यह गीत, यह लय न आती हो--तो दूसरा शुरू करो। कहते हैं, सुबर्ट ने उस दिन वहीं अपना साज पटक दिया और घर लौट गया। और दुबारा उसने साज हाथ में नहीं लिया। लाखों लोगों ने प्रार्थना की। उसने कहा कि नहीं, किनके सामने बजाता हूं! इन्हें संगीत का कोई पता ही नहीं है। ये समझते हैं स्वरों के शोरगुल को संगीत। वह तो केवल प्रारंभ है। वह तो केवल आपको जगाने के लिए है कि आप सो न जाएं। फिर जब आप जाग गए, तब वह चुप हो जाना चाहिए, फिर मौन में सरक जाना चाहिए।
बुद्ध कहते थे कि जो मैं कह सकता था, वह मैंने कहा; लेकिन वह असली बात नहीं है। जो मैं नहीं कह सकता था, वह मैंने नहीं कहा है; वही असली बात है। इसलिए जो मेरे कहने को सुनते रहे हैं, वे मुझे नहीं समझ पाएंगे; जिन्होंने मेरे न कहने को भी सुना है, वही मुझे समझ सकते हैं।
न कहने को जिन्होंने सुना है! न कहना भी सुना जा सकता है?
निश्चित सुना जा सकता है। असल में, कहने की सार्थकता यही है कि दोनों तरफ कहने का किनारा बन जाए और बीच में न कहने की नदी बह सके। स्वर का उपयोग यही है कि दोनों तरफ तट बन जाएं और बीच में संगीत की गंगा बह सके। वह तट बनाने के लिए है। लेकिन तट को जिसने गंगा समझा, वह गंगा को नहीं समझ पाएगा। वह गंगा तक कभी पहुंच भी नहीं पाएगा।
लाओत्से कहता है, पृथ्वी और स्वर्ग के बीच धौंकनी की तरह शून्य आकाश है, और वही अखंड ऊर्जा है। इसे जितना ही चलाओ, इस शून्य को जितना ही चलाओ, उतनी ही ऊर्जा पैदा होती है। शून्य को चलाओ जितना ही, उतना ही प्राण जन्मता है। लेकिन हम शून्य को चलाना नहीं जानते। हम शून्य होना भी नहीं जानते।
इस शून्य को होना और शून्य को चलाने का उपाय लाओत्से कहता है, "शब्द-बाहुल्य से बुद्धि निःशेष होती है।"
जितने ज्यादा शब्द भीतर, उतनी बुद्धि क्षीण हो जाती है। उतनी बुद्धि
पर जंग लग जाती है।
लेकिन शब्द ही तो हमारी बुद्धि है। शब्द का जोड़ ही तो हमारी संपत्ति है। पश्चिम में तो हर चीज स्टैटिस्टिक्स हो गई है। तो पश्चिम के अंकविद कहते हैं कि जितना बड़ा सफल आदमी है, उसके पास उतनी ही शब्द की संपदा होती है। वे कहते हैं कि आदमी के पास कितनी शब्द की संपदा है, उससे हम पता लगा सकते हैं कि जीवन में उसने सफलता के कितने सोपान पार किए होंगे। वह कितनी पायरियां सफलता की चढ़ गया होगा, उसके शब्द की सामर्थ्य पर तय होता है।
वे ठीक कहते हैं एक लिहाज से। राजनीतिज्ञ की सामर्थ्य क्या है? राजनीतिज्ञ की सामर्थ्य है कि वह कुछ शब्दों से खेल सकता है। धर्मगुरु की सामर्थ्य क्या है? कि वह कुछ और शब्दों से खेल सकता है। साहित्यकार की सामर्थ्य क्या है? कि वह कुछ और शब्दों से खेल सकता है। हम जिन्हें सफल कहते हैं, वे कौन लोग हैं? राजनीतिज्ञ हैं, धर्मगुरु हैं, साहित्यकार हैं। कौन लोग हैं? शब्द! शब्द पर जो जितना ज्यादा बाहुल्य, शक्ति रखता है, वह हमारी दुनिया में उतना सफल हो जाता है। इसलिए हम शब्द को सिखाने के लिए पागल होते हैं। और हमारी सारी शिक्षा शब्द को सिखाने की शिक्षा है। जितना ज्यादा शब्द आ जाए आदमी को, उतनी आशा है कि वह सफलता पा लेगा।

लेकिन लाओत्से कहता है, शब्द-बाहुल्य बुद्धि को क्षीण करता है। जितने शब्द भीतर बढ़ जाते हैं, उतनी ज्यादा बुद्धि कमजोर हो जाती है।
उलटी बात कहता है। हमारी सारी चेष्टा यही होती है कि शब्द कैसे बढ़ जाएं। एक भाषा आदमी जानता हो, तो दूसरी सीखता है, तीसरी सीखता है, चौथी सीखता है। हम बड़ी प्रशंसा में कहते हैं कि फलां आदमी दस भाषाएं जानता है। एक आदमी पंडित है, हम कहते हैं, उसे वेद कंठस्थ हैं, उपनिषद मुखाग्र हैं, गीता पूरी दोहरा सकता है। क्यों? शब्द की संपत्ति है उसके पास।
लेकिन शब्द का कोई मूल्य है बड़ा? शब्द का कोई अर्थ है बड़ा? शब्द में कुछ सब्सटेंस है, शब्द में कुछ सार है? इतना ही सार है, जैसे प्यास लगी हो और शब्द पानी से कोई प्यास को बुझाने की कोशिश करे। इतना ही सार है कि भूख लगी हो और शब्द भोजन से कोई पेट को भरने की कोशिश करे। इतना सार है। थोड़ी- बहुत देर अपने को भुलावा लेकिन दिया जा सकता है। अगर आपको प्यास लगी है और मैं इतना भी कहूं कि बैठिए पानी आता है, तो थोड़ी सी प्यास को राहत मिलती है। ऐसा नहीं कि नहीं मिलती। पानी का भरोसा भी काफी राहत लाता है। भूख लगी है। मकान के भीतर किचन में बर्तनों की आवाज आने लगती है, तो भी पेट को कुछ सहारा मिलता है। रात सपने में भूख लगी है, तो सपने में भोजन कर लेता है आदमी तो कम से कम नींद नहीं टूटती। सुबह तक गुजर जाता है समय।
शब्द सहारे देते हैं। धोखा भी देते हैं। अगर यहां जोर से अभी कोई आवाज लगा दे कि आग लग गई, तो हम पर परिणाम वही होगा, जो आग लगने पर होता है। शब्द! जल नहीं सकेंगे; भाग सकेंगे, दौड़ सकेंगे। गिर सकते हैं, चोट खा सकते हैं। आग लग गई है, इस शब्द का वही परिणाम होगा, जो आग लग गई होती तो होता--भागने, दौड़ने, चिल्लाने-चीखने में। जल नहीं सकेंगे, क्योंकि शब्द आग आग नहीं है। लेकिन एक बात तय है कि आदमी पर शब्द का प्रभाव भारी है। और अगर दस-पांच दफे इस तरह चिल्लाया जाए कि आग लग गई, आग लग गई, और फिर आग लग जाए और कोई चिल्लाए आग लग गई, तो हम पर फिर असर नहीं होगा।
एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक बहुत धन कमा लिया, तो सोचा उसने कि अब विश्राम करें। तो एक छोटे गांव में उसने जमीन ले ली--शौकिया। खेती-बाड़ी करके कुछ कमाने का सवाल न था। कमाई पूरी हो चुकी थी। जरूरत से ज्यादा हो चुकी थी। इस समय सबसे बड़ी कमाई उनकी ही हो सकती है, जो लोगों के पागलपन को राहत देते हैं। क्योंकि जमीन पर आज सर्वाधिक पागल लोग हैं। इस वक्त सबसे बड़ी कमाई की जो संभावना है, वह हीरे की खदानों में नहीं है, आदमी की खोपड़ी में है। आदमी पागल हुआ जा रहा है। और मनोवैज्ञानिक कुछ पागलों को ठीक कर पाते हों, ऐसा प्रमाण अब तक मिला नहीं। हां, इतना हो पाता है कि पागल को आश्वस्त कर पाते हैं। अगर दो साल किसी साइकियाट्रिस्ट के पास कोई पागल जाए, तो ऐसा नहीं कि दो साल बाद वह ठीक हो जाता है, बल्कि ऐसा कि दो साल बाद वह कहने लगता है, यह पागलपन स्वाभाविक है।
काफी धन कमा लिया था। अब कमाने की कोई जरूरत न थी। फसल बोने का मौका आ गया था। जमीन लेकर उसने फसल बोनी शुरू की। खड़े होकर जमीन पर उसने जमीन खुदवा डाली, बक्खर चलवा दिए, दाने फेंके। लेकिन सारे गांव के कौवे आकर उसके खेत के दाने चुनने लगे। एक दिन दाने फेंके, कौवे चुन गए। दूसरे दिन दाने फेंके, कौवे चुन गए। तीसरे दिन दाने फेंके... । फिर उस मनोवैज्ञानिक को संकोच भी लगा, किसी से पूछे; संकोच भी लगा, साधारण बुद्धिहीन किसान, उनसे पूछे कि क्या है राज! कोई उपाय न देख कर पड़ोस के एक किसान से, जो रोज उसको देखता था और हंसता था, उसने पूछा कि बात क्या है?
वह किसान आया। उसने दाने फेंकने का इशारा किया। जैसे दाने फेंके, ऐसे उसने हाथ घुमाए; लेकिन फेंका कुछ नहीं। कौवे आए, बड़े नाराज हुए। चीखे- चिल्लाए, वापस उड़ गए। दूसरे दिन उसने फिर मुद्रा की दाने फेंकने की। कौवे फिर आए, आज थोड़े कम आए। नाराज हुए, आज थोड़े कम नाराज हुए। चले गए। तीसरे दिन उसने फिर वही किया। चौथे दिन उसने दाने फेंके। कौवे नहीं आए। उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, अदभुत! राज क्या है? उस किसान ने कहा, जस्ट प्लेन साइकोलॉजी। एवर हर्ड? छोटा सा मनोविज्ञान। कभी सुना है नाम मनोविज्ञान का? खाली हाथ तीन दिन, कौवे भी समझ गए कि खाली हाथ है।
लेकिन आदमी बहुत अदभुत है। जन्म-जन्म तक शब्दों में जीता है। जस्ट प्लेन साइकोलॉजी, कि शब्द खाली हैं, समझ में नहीं आता। शब्द के भीतर कुछ भी

नहीं है, समझ में नहीं आता। कोई आपसे कह देता है, नमस्कार! मन मान लेता है कि श्रद्धा मिली है।
श्रद्धा इतनी आसान चीज नहीं है, नमस्कारों से मिल जाए। अक्सर तो यह होता है कि श्रद्धा को छिपाने का ढंग है नमस्कार। कहीं चेहरे का असली भाव पता न चल जाए, आदमी हाथ जोड़ कर नमस्कार कर लेता है। या हाथ जोड़ने में वह दूसरा आदमी चूक जाता है असली आदमी को देखने से कि असली आदमी क्या सोच रहा था। मन में सोच रहा था, इस दुष्ट की शक्ल सुबह-सुबह कहां दिखाई पड़ गई! नमस्कार करने में उस आदमी को धोखा हो जाता है, नमस्कार देख कर अपने रास्ते पर चला जाता है।
आप रास्ते पर रोज निकलते हैं और एक आदमी आपको प्रीतिकर लगता है। जब भी
आप कहते हैं हलो, वह भी जोर से हलो करके जवाब देता है। आज सुबह उसने जवाब नहीं दिया। पता है, आपको क्या होगा? आपका सब रुख बदल जाएगा। आपने कहा हलो, उस आदमी ने कोई जवाब नहीं दिया; वह चला गया। आप उस आदमी का इतिहास फिर से लिखेंगे अपने भीतर कि अच्छा, तो एक मकान खरीद लिया तो अकड़ आ गई! यह मकान बहुत पहले खरीद चुका है। इसका आपको कभी ख्याल न आया था। गाड़ी खरीद ली, तो पर लग गए! मरते वक्त कीड़ियों को पर आ जाते हैं। अब इस आदमी को आप, फिर से इसका जीवन-चरित्र आप निर्मित करेंगे। आपको उसका पुराना जीवन-चरित्र हटाना पड़ेगा। वह एक हलो कह देता, तो पुराना जीवन-चरित्र चलता, काम देता। एक छोटा सा हलो इतना फर्क लाता है! शब्द इतना मूल्यवान है आदमी को!
हम शब्द से ही जीते हैं, शब्द ही खाते हैं, शब्द में ही सोते हैं। इसको पश्चिम में लोग समझ गए हैं। तो वे कहते हैं कि चाहे उचित हो या न उचित हो, आदमी कुछ करे या न करे, तुम थैंक यू तो उसे कह ही देना। यह कोई सवाल नहीं है। हम अपने मुल्क में अभी शब्द के बाबत इतने समझदार नहीं हैं। अगर पत्नी पति के लिए चाय ले आती है, तो पति धन्यवाद या शुक्रिया नहीं करता। करना चाहिए। क्योंकि सब इतिहास बदल जाता है भीतर शुक्रिया से। बिल्कुल करना चाहिए। बिना शक्कर की चाय मीठी मालूम पड़ती है शुक्रिया से। कड़वी हो जाती है, शक्कर कितनी ही पड़ी हो, शुक्रिया पीछे न हुआ एकदम कड़वी हो जाती है। सब बात ही बदल जाती है।
आप सोचते होंगे, पत्नी तीस साल से मेरे साथ है, इसे भी क्या शुक्रिया
की जरूरत है? आप गलती में हैं, इसे ज्यादा जरूरत है। यह तीस साल में आपको इतना जान चुकी है कि इसे ज्यादा जरूरत है, हालांकि यह कहेगी कि क्या जरूरत है! नहीं, मत कहिए, शुक्रिया की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन आप इस पर भरोसा मत कर लेना। यह सिर्फ इसीलिए कहा जा रहा है कि आप दुबारा भी कहो। यह सुखद है, यह सुखद है।
शब्द हमारा जीवन बन गया है। वही कोई कह देता है, बहुत प्रेम करता हूं आपको। सब कुछ बदल जाता है भीतर! अंधेरी रात एकदम पूर्णमासी हो जाती है। किसी ने कह दिया, बहुत प्रेम करता हूं आपको! और हो सकता है, वे किसी फिल्म का डायलाग ही दोहराते हों!
क्या, शब्द के साथ हमारा इतना अंतर्संबंध क्यों है? हमारा अंतर्संबंध इसीलिए है कि हमारे पास शब्द के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। हमारे पास सत्व जैसा कुछ भी नहीं है। हम बिल्कुल खाली हैं। खाली लाओत्से के अर्थों में नहीं, शून्य के अर्थों में नहीं, खाली दरिद्र और दीन के अर्थों में। खाली उस अखंड शक्ति के अर्थों में नहीं, खाली उस अर्थों में, जिनके हाथ में कुछ भी नहीं है, शून्य भी जिनके हाथ में नहीं है। इस तरह हम खाली हैं, शब्द से ही जीते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक सड़क पर गिर पड़ा है। धूप है तेज। भीड़ इकट्ठी हो गई। नसरुद्दीन दम साधे पड़ा है। किसी ने कहा कि भागो, दौड़ो, एक प्याली अगर शराब मिल जाए तो काम हो जाए। नसरुद्दीन ने एक आंख खोली और कहा, एक प्याली! कम से कम दो प्याली तो कर दो। पर लोगों ने कहा, मत जाओ, कोई जरूरत नहीं, नसरुद्दीन होश में आ गया है। शराब शब्द ने ही काम कर दिया है, शराब नहीं लानी पड़ी।
नसरुद्दीन को अनुभव था यह। फर्स्ट एड की ट्रेनिंग ले रहा था। तो जब ट्रेनिंग उसकी पूरी हो गई तो उसके शिक्षक ने पूछा कि अगर रास्ते पर कोई अचानक गिर जाए तो तुम क्या करोगे? तो उसने कहा, एक प्याली शराब बुलाऊंगा।

लेकिन उस अधिकारी ने पूछा कि अगर शराब न मिल सके, तो तुम क्या करोगे? तो उसने कहा, मैं कान में, आई विल प्रामिस, उसके कान में प्रामिस करूंगा कि पीछे पिलाऊंगा, फिलहाल उठ आ। क्योंकि ऐसा एक दफे मेरे साथ हो चुका है। सिर्फ शब्द सुन कर मुझे होश आ गया था।
शब्द से हम जी रहे हैं। इन शब्दों को कहता है लाओत्से कि केवल हमारी बुद्धि क्षीण होती है। यद्यपि लाओत्से को भी कहना पड़ता है, तो शब्दों से ही कहना पड़ता है। लाओत्से भी बोलता है, तो शब्द से ही बोलता है। इससे एक बड़ी भ्रांति होती है। वह भ्रांति यह होती है कि लाओत्से भी तो शब्द से ही बोलता है और शब्द के खिलाफ बोलता है।
निश्चित ही, अगर हमें दूसरे से कुछ कहना है, तो शब्द का उपयोग है। लेकिन हम इतने पागल हो गए हैं कि हमें अपने से भी कुछ कहना है, तो भी हम शब्द का ही उपयोग करते हैं। अपने से कहने के लिए तो शब्द की कोई भी जरूरत नहीं है। हम भीतर अपने से ही बोलते रहते हैं। चौबीस घंटे आदमी बोल रहा है। जब दूसरे से बोल रहा है, तब तो बोल ही रहा है; जब किसी से नहीं बोल रहा है, तो अपने से ही बोल रहा है। अपने को ही बांट कर बोलता रहता है। यह चौबीस घंटे बोलना भीतर जंग पैदा कर देता है। और चौबीस घंटे बोलते-बोलते, बोलते-बोलते शब्द इतने इकट्ठे हो जाते हैं कि शब्दों के बीच में वह जो आत्मा में छिपा हुआ शून्य है, उसकी हमें कोई खबर नहीं रह जाती। शब्द की इस ऊपरी पर्त को हटाना पड़े, तो ही हम भीतर के शून्य से परिचित होते हैं।
लाओत्से कहता है, "शब्द-बाहुल्य से बुद्धि निःशेष होती है। इसलिए अपने केंद्र में स्थापित होना ही श्रेयस्कर है।"
अपने केंद्र में! क्योंकि केंद्र शून्य है। शब्द केवल परिधि है। जैसे नदी की ऊपर सतह पर पत्ते छा गए हों और नदी ढंक गई हो, काई छा गई हो और नदी का पानी दिखाई न पड़ता हो, ऐसे ही हमारे ऊपर शब्दों का बाहुल्य है। भीतर शून्य छिप गया है। उस शून्य को लाओत्से केंद्र कहता है। वह कहता है, वही है हमारे प्राण का केंद्र। लेकिन हम परिधि पर भटकते रहते हैं। और परिधि हमें इतने जोर से पकड़ लेती है कि हम कभी भीतर पहुंच नहीं पाते। परिधि--एक शब्द दूसरे शब्द को पकड़ा देता है, दूसरा तीसरे को पकड़ा देता है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हम एसोसिएशन से जीते हैं। अगर आपको हम एक शब्द दे दें, दे दें कुत्ता, और आपसे कह दें बस चल पड़िए, तो आप भीतर चल पड़ेंगे। कुत्ता स्टार्ट करवा देगा। भीतर आपकी बंदूक का घोड़ा खींच दिया गया। अब आप कुत्ते से यात्रा शुरू कर देंगे। भीतर शब्द आ जाएंगे। तत्काल कुत्ते के पीछे क्यू खड़ा हो जाएगा। कोई कुत्ता आपको पसंद है; कोई कुत्ता आपको नहीं पसंद है। किसी कुत्ते का क्या नाम है; किसी कुत्ते का क्या नाम नहीं है। यात्रा शुरू हो गई। किस मित्र के पास कुत्ता है; और अब आप बढ़ चले। और उस मित्र की पत्नी कैसी है। और पत्नी आपको देख कर प्रीतिकर लगती है, अप्रीतिकर लगती है। आप चल पड़े। एक कुत्ते ने सिर्फ यात्रा शुरू की, पता नहीं आप किस रोमांस में यात्रा का अंत करें। कुछ कहा नहीं जा सकता।
एक छोटा सा शब्द, और आपके भीतर तत्काल यात्रा शुरू हो जाती है। आप भीतर तैयार बैठे हैं। शब्द मिल जाए, और आप जुगाली करने लगेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि आपको समझने की फुर्सत कभी न मिलेगी। शब्द मिला कि आप चल पड़ते हैं! समझ तो वह सकता है, जो शब्द के साथ शून्य होकर खड़ा हो जाता है।
मैंने कोई बात कही, आप तभी समझ पाएंगे, जब आपके सामने शून्य खड़ा हो। मैं एक बात कहूं और आपके भीतर शून्य उसका सामना करे, जैसे दर्पण के सामने मैं आ जाऊं, तो दर्पण मेरी तस्वीर को देख ले। अगर आपका हृदय शून्य हो, तो जो मैं कहूं, वह भी आपको सुनाई पड़ जाए; और जो मैंने नहीं कहा, वह भी सुनाई पड़ जाए। जो मैं दिखाई पड़ता हूं, वह भी दिखाई पड़ जाए; और जो मैं दिखाई नहीं पड़ता हूं, वह भी दिखाई पड़ जाए। लेकिन आपके भीतर इतने शब्द भरे हैं कि जब भी मैं कुछ कहूंगा, आप मुझे सुनने को नहीं रुकेंगे। आपने सुना भी नहीं कि आप जा चुके यात्रा पर। आपके भीतर शब्दों की कतारबंध यात्रा शुरू हो गई। आप सोचने लगे, गीता में भी यही कहा है, कुरान में भी यही कहा है। यह तो मेरे धर्म के खिलाफ हो गया; यह बात मैं नहीं मान सकता हूं।
एक दिन एक छोटी सभा में मैं बोल रहा था। एक ही आदमी मुसलमान था, वह मेरे सामने ही बैठा था। थोड़े ही लोग थे, कोई पचास लोग थे। मैं जो भी बोलता

था, वे मुसलमान मित्र बिल्कुल सिर हिलाते थे कि बिल्कुल ठीक! वे मेरे सामने ही बैठे थे। बिल्कुल ठीक! जो भी मैं बोलता था, वे सिर हिलाते, बिल्कुल ठीक! मैंने कहा कि क्या ऐसी भी कोई बात कह सकता हूं, जिसमें कि इनका सिर न हिले। मैंने सिर्फ उनका सिर देखने के लिए कहा कि कुरान किताब तो अदभुत है, लेकिन बहुत ग्रामीण है, जैसे कि गांव के लोगों ने लिखी हो। उनका सिर बिल्कुल हिलने लगा कि नहीं। वे बोल नहीं रहे, अपनी कुर्सी पर बैठे हैं। उनसे मेरा कोई लेना-देना नहीं। लेकिन मैं जो कहता हूं, हां और न वे उसमें करते जाते हैं। जैसे ही मैंने कहा कि ग्रामीण, उन्होंने कहा कि बिल्कुल नहीं। और इसके बाद वे अकड़ गए। फिर कुर्सी पकड़ कर बैठे रहे। फिर उनसे मेरा संबंध टूट गया। वह एक शब्द ग्रामीण, मेरा संबंध उनसे टूट गया! फिर सारे लोग उस कमरे में थे, वे एक मित्र उस कमरे में नहीं रह गए। एक छोटा शब्द, ग्रामीण; उनके मन में, पता नहीं, उठा होगा गंवार या क्या! मैंने कहा ग्रामीण, उनके मन में आया होगा गंवार कह रहा हूं। उनके भीतर एक यात्रा शुरू हो गई। वे सख्त हो गए। बाद उनके दरवाजे बंद हो गए।
असल में, जब मैं कह रहा था, तब पूरे समय भीतर वे एक चर्चा चला रहे थे; हां और न कर रहे थे। हमारी बॉडी लैंग्वेज होती है। बहुत कुछ जो हम मुंह से नहीं कहते, अपने शरीर से कह देते हैं। अभी पश्चिम में एक नया विज्ञान खड़ा हो रहा है बॉडी लैंग्वेज पर कि आदमी के शरीर को समझा जाए कि वह क्या कहता है!
अगर आप किसी स्त्री से मिलते हैं और वह आपको पसंद नहीं करती, तो वह पीछे की तरफ गिरती हुई हालत में खड़ी रहती है। पूरे वक्त डरी है कि कहीं आप और आगे न बढ़ आएं। उसका जो एंगल है, वह पीछे की तरफ झुका रहता है। अगर एक क्लबघर में पचास जोड़े बात कर रहे हैं, तो बराबर बताया जा सकता है कि इनमें से कितने जोड़े एक-दूसरे के प्रेम में गिर जाएंगे--सिर्फ इनकी बॉडी लैंग्वेज को देख कर। और कितने जोड़े सिर्फ बचने की कोशिश कर रहे हैं, एक-दूसरे से भागने की कोशिश कर रहे हैं। अगर स्त्री आपको प्रेम करती है, तो आपके पास और ढंग से बैठेगी; अगर प्रेम नहीं करती है, तो और ढंग से बैठेगी। अगर आप किसी को प्रेम करते हैं, तो उसके पास जब आप बैठते हैं तो आप रिलैक्स्ड बैठते हैं। उससे कोई खतरा नहीं है। अगर आप उससे प्रेम नहीं करते, तो आप सजग बैठते हैं; उससे खतरा है। स्ट्रैंजर, अजनबी आदमी है। अजनबी आदमी के पास आप और ढंग से बैठते हैं। अगर मेरी बात आपको ठीक लग रही है, तो आप और ढंग से बैठते हैं। अगर ठीक नहीं लग रही है, आपकी बॉडी लैंग्वेज फौरन बदल जाती है। अगर आपको मेरी बात में जिज्ञासा है, तो आपकी रीढ़ आगे झुक आती है। अगर आपको जिज्ञासा नहीं है, आप अपनी कुर्सी से टिक जाते हैं। कुर्सी से टिक कर आप यह कह रहे हैं कि ठीक, हम सो चुके, हमसे अब कुछ लेना-देना नहीं, बात समाप्त हो गई।
आदमी बाहर से भी अपने भीतर चलने वाले शब्दों की खबर देता रहता है। बाहर से भी! आपका चेहरा कहता है कि आप हां कह रहे हैं भीतर, कि न कह रहे हैं भीतर। दूकान पर सेल्समैन आपके चेहरे को देखता रहता है। अगर आप टाई खरीद रहे हैं, पच्चीस टाई आपके सामने खड़ी हैं, तो जो सेल्समैन समझदार है वह टाई नहीं देखता--टाई तो आपको देखने देता है--वह आपका चेहरा देखता है। किस टाई पर ज्यादा देर आपकी आंख रुकती है, उसकी कीमत बढ़ जाती है। बढ़ जानी चाहिए। आपकी आंख हर जगह ज्यादा देर नहीं रुकती। आंख के रुकने की सीमाएं हैं। अगर आप किसी आदमी को जरा ही ज्यादा देर घूर कर देखें, तो झगड़ा शुरू हो जाएगा। क्योंकि इस आंख की सीमा है। जब आप सिर्फ देखते हैं, जस्ट लुकिंग, एक फिंकती हुई नजर, उसका कोई मतलब नहीं होता। लेकिन जब आप रुक कर देखते हैं, उसका मतलब होता है, पसंदगी शुरू हो गई। दूसरा आदमी बेचैन हो जाता है।
आप जब भीतर बोल रहे हैं, आपके भीतर जब यंत्र चल रहा है शब्दों का, तब बाहर भी आपके शरीर, आपकी आंख, सब तरफ से प्रकट होता रहता है। लेकिन जब आप भीतर शून्य हो जाते हैं, तो बाहर शरीर भी शून्य हो जाता है। बुद्ध की प्रतिमा देखी या महावीर की प्रतिमा देखी? यह प्रतिमा बाहर से बिल्कुल शून्य है। यह बाहर से इसीलिए शून्य है कि भीतर सब शून्य हो गया है। इसमें कोई हलन-चलन नहीं है। सब ठहर गया है। जैसे पानी बिना तरंग के हो गया हो!

जैसे हवा न चलती हो कमरे में और दीए की लौ ठहर जाए! ऐसे जब आप शून्य होते हैं, तब केंद्र पर पहुंचते हैं।
और लाओत्से कहता है, अपने केंद्र में स्थापित होना ही श्रेयस्कर है।
शब्दों में भटकना नहीं, शून्य में ठहर जाना ही श्रेयस्कर है।
आज इतना ही। शेष हम कल। लेकिन अभी जाएंगे नहीं। एक पांच मिनट, कीर्तन शायद आपको शून्य में पहुंचा दे। शायद आपको परिधि से धका दे और अपने केंद्र पर पहुंचा दे।

ताओ उपनिषद, भाग एक
अठारहवां प्रवचन

घाटी-सदृश, स्त्रैण व रहस्यमयी परम सत्ता

Chapter 6 : Sutra 1 & 2

The Spirit Of The Valley

1. The Valley Spirit dies not, ever the same.
The Female Mystery thus do we name.
It"s gate, from which at first they issued forth,
Is called the root from which grew Heaven and Earth.
2. Long and unbroken does its power remain, Use gently and without the touch of pain.

अध्याय 6 : सूत्र 1 व 2

घाटी की आत्मा

1. घाटी की आत्मा कभी नहीं मरती, नित्य है। इसे हम स्त्रैण रहस्य, ऐसा नाम देते हैं। इस स्त्रैण रहस्यमयी का द्वार
स्वर्ग और पृथ्वी का मूल स्रोत है।
2. यह सर्वथा अविच्छिन्न है;
इसकी शक्ति अखंड है;
इसका उपयोग करो,
और इसकी सेवा सहज उपलब्ध होती है।

जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु भी होगी। जो प्रारंभ होगा, वह अंत भी होगा। वही केवल मृत्यु के पार हो सकता है, जिसका जन्म न हो। और वही केवल अनंत हो सकता है, जो अनादि हो।
प्रकाश जन्मता है, मिट जाता है। अंधकार सदा है। शायद इस भांति कभी न सोचा हो। सूर्य निकलता है, सांझ ढल जाता है। दीया जलता है, बाती चुक जाती है, बुझ जाती है। जब दीया नहीं जला था, तब भी अंधकार था। जब दीया जला, अंधकार हमें दिखाई नहीं पड़ा। दीया बुझ गया, अंधकार अपनी जगह है। अंधकार का बाल भी बांका नहीं होता। और अंधकार कभी बुझता नहीं। और अंधकार का कभी अंत नहीं आता, क्योंकि अंधकार का कभी प्रारंभ नहीं होता। प्रकाश का प्रारंभ होता है, इसलिए प्रकाश का अंत होता है।
और भी मजे की बात है, प्रकाश को हम पैदा कर सकते हैं, इसलिए प्रकाश को
हम मिटा भी सकते हैं। अंधकार को हम पैदा नहीं कर सकते, इसलिए अंधकार को हम मिटा भी नहीं सकते। अंधकार की शक्ति अनंत है। प्रकाश की शक्ति अनंत नहीं है।
लाओत्से कहता है, घाटी की आत्मा अमर है। दि वैली स्पिरिट डाइज नॉट। नहीं, कभी घाटी की आत्मा नहीं मरती। एवर दि सेम, वही बनी रहती है। जैसी है, वैसी ही बनी रहती है।
यह घाटी की आत्मा क्या है?
जहां भी पर्वत-शिखर होंगे, वहां घाटी भी होगी। लेकिन पर्वत पैदा होते हैं और मिट जाते हैं; घाटी न पैदा होती, न मिटती। घाटी का अर्थ है, दि निगेटिव, वह जो निषेधात्मक है, अंधकार। पहाड़ का अर्थ है, पाजिटिव, विधायक, जो है। ठीक से समझें तो घाटी क्या है? घाटी किसी चीज का अभाव है। पहाड़ किसी

चीज का भाव है, किसी चीज का होना है। प्रकाश किसी चीज का होना है। अंधकार अभाव है, एब्सेंस है, अनुपस्थिति है।
मैं इस कमरे में हूं, तो मुझे बाहर निकाला जा सकता है। जब मैं इस कमरे में नहीं हूं, तो मेरी अनुपस्थिति, माई एब्सेंस इस कमरे में होगी। उसे आप बाहर नहीं निकाल सकते। अनुपस्थिति को छूने का कोई उपाय नहीं है। अगर मैं जिंदा हूं, तो मेरी हत्या की जा सकती है। लेकिन अगर मैं मर गया, तो मेरी मृत्यु के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। जो नहीं है, उसके साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। जो है, उसके साथ कुछ किया जा सकता है। इसलिए अंधेरे को हम बना भी नहीं सकते और मिटा भी नहीं सकते।
घाटी की आत्मा लाओत्से का पारिभाषिक शब्द है--दि वैली स्पिरिट। क्या
है घाटी की आत्मा? घाटी होती नहीं, दो पर्वतों के बीच में दिखाई पड़ती है। पर्वत खो जाते हैं, घाटी तो बनी रहती है। घाटी कहीं जाती नहीं, लेकिन दिखाई नहीं पड़ती पर्वत के खो जाने पर। जब दो पर्वत खड़े होते हैं, घाटी फिर दिखाई पड़ने लगती है। अंधेरा कहीं जाता नहीं; जब आप दीया जलाते हैं, तब सिर्फ छिप जाता है। प्रकाश की वजह से दिखाई नहीं पड़ता। प्रकाश चला जाता है, अंधेरा अपनी जगह है। शायद अंधेरे को पता भी नहीं है कि बीच में प्रकाश जला और मिट गया।
लाओत्से का समस्त चिंतन, लाओत्से का समस्त दर्शन निगेटिव पर खड़ा है, नकारात्मक पर खड़ा है; शून्य पर खड़ा है। और इसलिए लाओत्से ने कहा है, "दि फीमेल मिस्ट्री दस डू वी नेम; हम इसे स्त्रैण रहस्य का नाम देते हैं।"
इसे समझ लेना जरूरी है। और इसमें थोड़ा गहरे उतरना पड़ेगा। क्योंकि यह लाओत्से के तंत्र का मूल आधार है। फेमिनिन मिस्ट्री, स्त्री का रहस्य क्या है? वही घाटी का रहस्य है। और जो स्त्री का रहस्य है, वही अंधकार का रहस्य है। और जो स्त्री का रहस्य है, वह अस्तित्व में बहुत गहरा है। इसलिए दुनिया के जो प्राचीनतम धर्म हैं, वे परमात्मा को पुरुष के रूप में नहीं मानते थे, स्त्री के रूप में मानते थे। और उनकी समझ परमात्मा को फादर या पिता मानने वाले लोगों से ज्यादा गहरी थी। लेकिन पुरुष का प्रभाव भारी हुआ और तब हमने ईश्वर की जगह भी पुरुष को बिठाना शुरू किया। लेकिन ईश्वर की जगह गॉड दि फादर बहुत नई बात है, गॉड दि मदर बहुत पुरानी बात है। सच तो यह है, फादर ही नई बात है, मदर पुरानी बात है। पिता को जन्मे हुए पांच-छह हजार वर्ष से ज्यादा नहीं हुआ। पिता से पुराना तो काका या चाचा या अंकल है। शब्द भी अंकल पुराना है फादर से, पिता से। पशुओं में, पक्षियों में पिता का तो कोई पता नहीं चलता, लेकिन मां सुनिश्चित है। इसलिए पिता की जो संस्था है, वह मनुष्य की ईजाद है। बहुत पुरानी भी नहीं है। पांच हजार साल से ज्यादा पुरानी नहीं है। लेकिन जब हमने मनुष्य में पिता को बना लिया, तो हमने बहुत शीघ्र परमात्मा के सिंहासन से भी स्त्री को हटा कर पुरुष को बिठाने की जल्दी की। और तब जिन धर्मों ने परमात्मा की जगह पिता को रखा, उनके हाथ से फेमिनिन मिस्ट्री के सूत्र खो गए; वह जो स्त्रैण रहस्य है, उसका सारा राज खो गया।
और लाओत्से उस समय की बात कर रहा है, जब कि गॉड दि फादर का कोई ख्याल ही नहीं था दुनिया में। और यह बहुत अर्थों में सोच लेने जैसी बात है। इसे कई तरफ से देखना पड़ेगा, तभी आपके ख्याल में आ सके।
एक बच्चे का जन्म होता है। पिता बच्चे के जन्म में बहुत एक्सीडेंटल है, उसका कोई बहुत गहरा भाग नहीं है। और अब वैज्ञानिक कहते हैं कि पिता के बिना भी चल जाएगा, बहुत ज्यादा दिन जरूरत नहीं रहेगी। पिता का हिस्सा बहुत ही न के बराबर है। जन्म तो मां से ही मिलता है। तो जीवन को पैदा करने की जो कुंजी है और रहस्य है, वह तो मां के शरीर में छिपा है। पिता के शरीर में वह कुंजी और रहस्य नहीं छिपा हुआ है। इसलिए पिता को कभी भी गैर-जरूरी सिद्ध किया जा सकता है। उसका काम एक इंजेक्शन भी कर देगा।
और अगर मैं आज से दस हजार साल बाद किसी बच्चे का पिता बनना चाहूं, तो
बन सकता हूं। लेकिन कोई मां अगर आज तय करे, तो दस हजार साल बाद मां नहीं बन सकती है। क्योंकि मां की मौजूदगी अभी जरूरी होगी, मेरी मौजूदगी जरूरी नहीं है। मेरे वीर्य-कण को संरक्षित रखा जा सकता है, डीप फ्रीज किया जा सकता है। दस हजार साल बाद इंजेक्शन से किसी भी स्त्री में वह जन्म का

सूत्र बन सकता है। मेरा होना आवश्यक नहीं है। इसलिए बहुत जल्दी पोस्थुमस चाइल्ड पैदा होंगे। पिता मरे दस हजार साल हो गए, उसका बच्चा कभी भी पैदा हो सकता है। क्योंकि पिता का काम प्रकृति बहुत गहरा नहीं ले रही थी। गहरा काम तो मां का था। सृजनात्मक काम तो मां का ही था।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, इसीलिए स्त्रियां दुनिया में कोई क्रिएटिव काम नहीं कर पाती हैं। क्योंकि वे इतना बड़ा क्रिएटिव काम कर लेती हैं कि और कोई सब्स्टीट्यूट खोजने की जरूरत नहीं रह जाती है--एक जीवित बच्चे को जन्म देना! लेकिन पुरुष ने दुनिया में बहुत सी चीजें पैदा की हैं, स्त्री ने नहीं पैदा की हैं। पुरुष चित्र बनाता है, मूर्तियां बनाता है, विज्ञान की खोज करता है, गीत लिखता है, संगीत बनाता है। यह जान कर आप हैरान होंगे कि स्त्रियां सारी दुनिया में खाना बनाती हैं, लेकिन अच्छे खाने की खोज सदा ही पुरुष करता है। नए खाने की खोज पुरुष करता है। और दुनिया का कोई भी बड़ा होटल या कोई बड़ा सम्राट स्त्री-रसोइए को रखने को राजी नहीं है, पुरुष-रसोइए को रखना पड़ता है। चाहे चित्र बनता हो दुनिया में, चाहे कविता पैदा होती हो, चाहे एक उपन्यास लिखा जाता हो, चाहे एक नई मूर्ति गढ़ी जाती हो, वह सब काम पुरुष करता है। बात क्या है?
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पुरुष ईर्ष्या अनुभव करता है; स्त्री के समक्ष हीनता भी अनुभव करता है। वह भी कुछ पैदा करके दिखाना चाहता है, जो स्त्री के समक्ष सामने खड़ा हो जाए और कहा जा सके, हमने भी कुछ बनाया है, हमने भी कुछ पैदा किया है। और स्त्री कुछ पैदा नहीं करती, क्योंकि वह इतनी बड़ी चीज पैदा करती है कि उसके मन में फिर और पैदा करने की कोई कामना नहीं रह जाती। और एक स्त्री अगर मां बन गई है, तो कितना ही अच्छा चित्र बनाए, वह उसके बेटे या उसकी बेटी के सामने सदा फीका और निर्जीव होगा। इसलिए बांझ स्त्रियां जरूर कुछ-कुछ कोशिश करती हैं पुरुषों जैसी। वे जरूर पुरुष के साथ कुछ निर्माण करने की प्रतियोगिता में उतरती हैं। लेकिन एक स्त्री अगर सच में मां बन जाए, तो उसका जीवन बहुत आंतरिक गहराइयों तक तृप्त हो जाता है। स्त्री को प्रकृति ने सृजन का स्रोत चुना है।
निश्चित ही, स्त्री के शरीर में, वह जिसे लाओत्से कह रहा है स्त्रैण रहस्य, उसे हमें समझना पड़ेगा, तो ही हम अस्तित्व में स्त्रैण रहस्य को समझ पाएंगे। और हमारी कठिनाई ज्यादा बढ़ जाती है, क्योंकि सारी कोशिश जीवन को समझने की पुरुष ने की है। और सारी फिलासफीज, सारे दर्शन पुरुष ने निर्मित किए हैं। अब तक एक भी धर्म किसी स्त्री पैगंबर, स्त्री तीर्थंकर के आस-पास निर्मित नहीं हुआ है। सब शास्त्र पुरुषों के हैं। इसलिए लाओत्से को साथी खोजना मुश्किल हो गया, क्योंकि उसने स्त्रैण रहस्य की तारीफ की।
पुरुष जो भी सोचेगा और जो भी करेगा, उसमें पुरुष जहां खड़ा है, वहीं से सोचता है। और पुरुष को स्त्री कभी समझ में नहीं आ पाती है। इसलिए पुरुष निरंतर अनुभव करता है कि स्त्री बेबूझ है, समथिंग मिस्टीरियस। कुछ है जो छूट जाता है। वह क्या है जो छूट जाता है? निश्चित ही, पुरुष और स्त्री साथ-साथ जीते हैं। पुरुष स्त्री से पैदा होता है, स्त्री के साथ जीता है, प्रेम करता है, जन्म, पूरा जीवन बिताता है। फिर भी क्या है जो स्त्री के भीतर पुरुष के लिए अनजान और अपरिचित रह जाता है? वही अनजान और अपरिचित तत्व का नाम लाओत्से कह रहा है, फेमिनिन मिस्ट्री। घाटी का रहस्य, अंधकार का रहस्य, निषेध की खूबी। क्या है स्त्री के भीतर?
अगर एक स्त्री आपके प्रेम में पड़ जाए, तो भी आक्रमण नहीं करती है। प्रेम में भी आक्रमण नहीं करती है। प्रेम में भी प्रतीक्षा करती है। आक्रमण का मौका आपको ही देती है। आप कभी किसी स्त्री से ऐसा न कह सकेंगे कि तूने मुझे प्रेम में उलझा दिया, कि तूने मुझे विवाह में डाल दिया। स्त्रियां ही डालती हैं। लेकिन कभी आप किसी स्त्री से ऐसा न कह सकेंगे कि तूने मुझे प्रेम में उलझा दिया। क्योंकि इनीशिएटिव वे कभी नहीं लेतीं, पहल वे कभी नहीं करतीं। वही उनका रहस्य हैः खींचना बिना किसी क्रिया के, बिना किसी कर्म के आकर्षित करना, सिर्फ होने मात्र से आकर्षित करना। जिसको कृष्ण ने गीता में इन-एक्शन कहा है, अकर्म कहा है, स्त्री का रहस्य वही है।

वह अगर प्रेम में भी गिर जाए, तो उसकी तरफ से इशारा भी नहीं मिलता कि
वह आपके प्रेम में गिर गई है। उसकी मौजूदगी आपको खींचती है, खींचती है। आप ही पहली दफा कहते हैं कि मैं प्रेम में पड़ गया हूं। स्त्री कभी किसी से नहीं कहती कि मैं तुम्हारे प्रेम में पड़ गई हूं। पहल कभी नहीं करती, क्योंकि पहल आक्रामक है, एग्रेसिव है, पाजिटिव है। जब मैं किसी से कहता हूं कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, मैं अपने से बाहर गया। मैंने कहीं जाकर आक्रमण किया। मैंने ट्रेसपासिंग शुरू की। मैं दूसरे की सीमा में प्रवेश कर रहा हूं। स्त्री कभी किसी की सीमा में प्रवेश नहीं करती। फिर भी स्त्री आकर्षक है। उसका रहस्य क्या है?
निश्चित ही, उसका आकर्षण इन-एक्टिव है, एक्टिव नहीं है। पुकारती है, लेकिन आवाज नहीं होती उस पुकार में; हाथ फैलाती है, लेकिन उसके हाथ दिखाई नहीं पड़ते; निमंत्रण दिया जाता है, लेकिन निमंत्रण की कोई भी रूप-रेखा नहीं होती। कर्म पुरुष को करना पड़ता है। कदम उसे उठाना पड़ता है। जाना उसे पड़ता है। प्रार्थना उसे करनी पड़ती है। और फिर भी स्त्री इनकार किए चली जाती है। और जब भी कोई स्त्री किसी के प्रेम में जल्दी हां भर देती है, तब समझना चाहिए, उस स्त्री को भी स्त्रैण रहस्य का कोई पता नहीं है। क्योंकि जैसे ही स्त्री हां भरती है, वैसे ही व्यर्थ हो जाती है। उसका निषेध, उसका इनकार, उसका इनकार किए चले जाना ही उसका अनंत रस का रहस्य है। लेकिन उसकी नहीं कुछ ऐसी है, जैसी नहीं पुरुष कभी नहीं बोल सकता। क्योंकि जब पुरुष बोलता है नहीं, कहता है नो, इट मीन्स नो! और जब स्त्री कहती है नो, इट मीन्स यस। अगर स्त्री को नो ही कहना है, तो वह नो भी नहीं कहेगी। क्योंकि उतना कहना भी बहुत ज्यादा कहना है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक युवती के प्रेम में पड़ गया है। बहुत परेशान है।
घर आकर अपने पिता को कहा है... । चिंतित, उदास है। तो पिता ने पूछा है, इतना चिंतित क्यों है नसरुद्दीन? नसरुद्दीन ने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। जिस स्त्री के पीछे मैं नौ महीने से चक्कर लगा रहा हूं, आज उसने सब बात ही तोड़ दी। पिता ने कहा, तू नासमझ है! स्त्री जब कहे नहीं, तो उसका अर्थ नहीं नहीं होता। नसरुद्दीन ने कहा, वह तो मैं भी जानता हूं। लेकिन उसने नहीं नहीं कहा, उसने कहा कि तू कुत्ता! नहीं उसने कहा ही नहीं। अगर वह नहीं कहती, तो अभी मैं और नौ वर्ष चक्कर लगा सकता था। उसने नहीं भी नहीं कहा है। उतना भी रास्ता नहीं छोड़ा है।
स्त्री जब हां करती है, तब वह पुरुष की भाषा बोल रही है। इसलिए स्त्री
के मुंह से हां बहुत ही छोछा, उथला और गहरे अर्थों में अनैतिक मालूम पड़ता है। उतना भी आक्रमण है। स्त्री का सारा रहस्य और राज तो इसमें है, उसकी मिस्ट्री इसमें है कि वह नहीं कहती है और बुलाती है। नहीं बुलाती और निमंत्रण जाता है। अपनी ओर से कभी कोई कमिटमेंट स्त्री नहीं करती। सब कमिटमेंट पुरुष करता है। सब प्रतिबद्धताएं पुरुष की हैं।
और इस भ्रांति में कोई पुरुष न रहे कि स्त्री ने कुछ भी नहीं किया है। स्त्री ने बहुत कुछ किया है। लेकिन उसके करने का ढंग निषेधात्मक है, घाटी की तरह है, अंधेरे की तरह है। निषेध ही उसकी तरकीब है। दूर हटना ही पास आने का निमंत्रण है। उसकी बचने की कोशिश ही बुलावा है। यह फेमिनिन मिस्ट्री है। और इसमें और गहरे उतरेंगे, तो बहुत सी बातें ख्याल में आएंगी। स्त्री संभोग की दृष्टि से भी निषेधात्मक है, पैसिव है। इसलिए दुनिया में स्त्रियों के ऊपर कोई बलात्कार का जुर्म नहीं रखा जा सकता। किसी स्त्री ने लाखों वर्ष के इतिहास में किसी पर बलात्कार नहीं किया है। स्त्री के व्यक्तित्व में बलात्कार असंभव है।
पुरुष बलात्कार कर सकता है, करता है। और सौ में नब्बे मौके पर पुरुष
जो भी करता है, वह बलात्कार ही होता है। सौ में नब्बे मौके पर! उन मौकों पर नहीं, जो अदालत में पकड़े जाते हैं; पति अपनी पत्नी के साथ भी जो संबंध निर्मित करता है, उसमें नब्बे मौके पर बलात्कार होता है। क्योंकि स्त्री चुप है। उसकी चुप्पी हां समझी जा सकती है। और जो हमने व्यवस्था की है समाज की, पति के प्रति हमने उसका कर्तव्य बांधा हुआ है। पति उससे प्रेम मांगे, तो वह चुप होकर दे देती है। लेकिन अगर उसके भीतर उस क्षण प्रेम नहीं था, तो

पति का यह प्रेम बलात्कार होगा। लेकिन पुरुष बलात्कार कर सकता है, क्योंकि पुरुष का पूरा व्यक्तित्व आक्रामक, एग्रेसिव है, हमलावर है। स्त्री का व्यक्तित्व रिसेप्टिव, ग्राहक है। यह न केवल व्यक्तित्व है, बल्कि शरीर की संरचना भी प्रकृति ने ऐसी ही की है कि स्त्री का शरीर केवल ग्राहक है। पुरुष का शरीर आक्रामक है। लेकिन सृजन होता है स्त्री से, जन्म होता है स्त्री से। आक्रमण करता है पुरुष, जो कि बिल्कुल सांयोगिक है, जिसके बिना चल सकता है। और जन्म होता है स्त्री से, जो केवल ग्राहक है। वैज्ञानिक कहते हैं, जब भी कहीं जन्म होता है, तो अंधेरे में; बीज फूटता है, तो जमीन के अंधेरे में। रोशनी में ले आओ, और बीज फूटना बंद कर देता है। एक व्यक्ति जन्मता है, तो मां के गर्भ के अंधकार में, निपट गहन अंधकार में। प्रकाश में ले आओ, जन्म मृत्यु बन जाती है। जीवन में जो भी पैदा होता है सूत्र रहस्य का, वह सदा अंधकार में, गुप्त और छिपे हुए जगत में होता है। और गुप्त वही हो सकता है, जो एग्रेसिव न हो, आक्रामक न हो। जो आक्रामक है, वह गुप्त कभी नहीं हो सकता।
इसलिए पुरुष के व्यक्तित्व में सतह बहुत होती है, गहराई नहीं होती उतनी। स्त्री के व्यक्तित्व में सतह बहुत कम होती है, गहराई बहुत ज्यादा होती है। और यही कारण है कि पुरुष जल्दी थक जाता है और स्त्री जल्दी नहीं थकती। आक्रमण थका देगा। इसलिए पुरुष-वेश्याएं नहीं हो सकीं, क्योंकि कोई पुरुष वेश्या नहीं हो सकता। एक संभोग, थक जाएगा। स्त्री वेश्या हो सकी; क्योंकि पचास संभोग भी उसे नहीं थका सकते। वह सिर्फ रिसेप्टिव है, वह कुछ करती ही नहीं। इसलिए एक अनोखी घटना घटी कि पुरुष वेश्याएं नहीं हो सके, स्त्रियां वेश्याएं हो सकीं। पुरुष बलात्कारी हो सके, स्त्रियां बलात्कारी नहीं हो सकीं। पुरुष गुंडे हो सके, स्त्रियां गुंडे नहीं हो सकीं। लेकिन स्त्रियां वेश्याएं हो सकीं, पुरुष वेश्याएं नहीं हो सके। और कारण कुल इतना है कि पुरुष का सारा व्यक्तित्व आक्रामक है। जो आक्रमण करेगा, वह थक जाएगा।
यह जान कर आप हैरान होंगे कि जब बच्चे पैदा होते हैं, तो सौ लड़कियां पैदा होती हैं तो एक सौ सोलह लड़के पैदा होते हैं। प्रकृति संतुलन को कायम रखती है। क्योंकि पुरुष कमजोर है। हम सब यही सोचते हैं कि पुरुष बहुत शक्तिशाली है। वह सिर्फ पुरुष का ख्याल है। पुरुष कमजोर है। इसलिए एक सौ सोलह लड़के पैदा करने पड़ते हैं और सौ लड़कियां। क्योंकि चौदह वर्ष के होते- होते सोलह लड़के मर जाते हैं, और लड़के और लड़कियों का अनुपात बराबर हो जाता है। सोलह लड़के एक्सट्रा, अतिरिक्त, स्पेयर प्रकृति को पैदा करने पड़ते हैं। क्योंकि पता है कि सोलह लड़के सौ में से चौदह वर्ष की उम्र पाते-पाते मर जाएंगे।
स्त्रियों की औसत उम्र पुरुषों से ज्यादा है पांच वर्ष। अगर पुरुष सत्तर साल जीता है, तो स्त्रियां पचहत्तर साल जीती हैं। और स्त्रियां जितना श्रम उठाती हैं शरीर से! क्योंकि एक बच्चे को जन्म देने में जितना श्रम है, उतना एक एटम बम को जन्म देने में भी नहीं है। एक स्त्री बीस बच्चों को जन्म दे और फिर भी पुरुष से पांच साल ज्यादा जीती है। स्त्रियां कम बीमार पड़ती हैं। और जो बीमारियां स्त्रियों को हैं, वे स्त्रियों की नहीं, पुरुषों ने जो समाज निर्मित किया है, उसकी परेशानी की वजह से हैं। स्त्रियां कम बीमार पड़ती हैं। फिर भी जितनी बीमार पड़ती हैं, उसमें भी कोई सत्तर प्रतिशत कारण, पुरुषों ने जो व्यवस्था की है वह है, स्त्रियां नहीं। क्योंकि सारी व्यवस्था पुरुष की है, मैन-डामिनेटेड है। और पुरुष अपने ढंग से व्यवस्था करता है। उसमें स्त्री को एडजस्ट होना पड़ता है। वह उसकी बीमारी का कारण है।
हिस्टीरिया पुरुषों के समाज में स्त्रियों को एडजस्ट होने का परिणाम है। अगर स्त्रियों का समाज हो और पुरुषों को उसमें एडजस्ट होना पड़े, तो हिस्टीरिया इससे पांच गुना ज्यादा होगा। करीब-करीब सारे पुरुष पागल हो जाएंगे। वह स्त्रियों का रेसिस्टेंस है, प्रतिरोधक शक्ति है कि वे सब पागल नहीं हो गई हैं। फिर भी स्त्रियां आपको क्रोधी दिखाई पड़ती हैं, ईर्ष्यालु दिखाई पड़ती हैं, उपद्रव-कलह चौबीस घंटे वे जारी रखती हैं। उसका कुल कारण इतना है कि वे जो होने को पैदा हुई हैं, समाज उनको वह नहीं होने

देता और कुछ और करवाने की कोशिश करता है। उससे उनकी सृजनात्मक शक्ति विध्वंस की तरफ, परवर्शन की तरफ, विकृति की तरफ चली जाती है।
और पुरुषों ने स्त्रियों को इतना दबाया और इतना सताया, तो आमतौर से लोग समझते हैं--स्त्रियां भी यही समझती हैं--कि स्त्रियां कमजोर थीं, इसलिए पुरुषों ने इतना सताया।
मैं आपसे कहना चाहता हूं, जो जानते हैं वे कुछ और जानते हैं। वे यह जानते हैं कि स्त्रियां इतनी शक्तिशाली थीं कि अगर न दबाई गई होतीं, तो पुरुषों को उन्होंने कभी का दबा डाला होता। उनको बचपन से ही दबाने की जरूरत है; नहीं वे खतरनाक सिद्ध हो सकती हैं। स्त्रियों को सारी दुनिया में दबाए जाने का जो असली कारण है, वह असली कारण यह है कि वे इतनी शक्तिशाली सिद्ध हो सकती हैं, अगर बिना दबाई छोड़ दी जाएं, कि पुरुष बहुत मुश्किल में पड़ जाएगा। इसलिए उन्हें सब तरफ से रोक देना जरूरी है। और बचपन से रोक देना जरूरी है।
और रुकावट करीब-करीब वैसी है, जैसे चीन में हम स्त्रियों को लोहे के जूते पहना देते थे। फिर उनका पैर बड़ा नहीं हो पाता था। फिर वे स्त्रियां दौड़ नहीं सकती थीं, चल नहीं सकती थीं ठीक से, भाग नहीं सकती थीं। सच तो यह है, उन्हें सदा ही पुरुष के कंधे के सहारे की जरूरत थी। और फिर पुरुष उनसे कहता थाः नाजुक, डेलिकेट। और नाजुक होने को पुरुष ने एक मूल्य बना दिया, एक वैल्यू बना दिया। क्योंकि स्त्री नाजुक हो, तो ही उस पर काबू किया जा सकता है।
स्त्री पुरुष से ज्यादा मजबूत सिद्ध हो सकती है, अगर उसको पूरा विकसित होने दिया जाए। क्योंकि प्रकृति ने उसे जन्म की शक्ति दी है। और जन्म की शक्ति सदा उसके पास होती है, जो ज्यादा शक्तिशाली है। अन्यथा गर्भ को खींच लेना असंभव हो जाएगा।
लाओत्से कहता है, इस स्त्रैण रहस्य को ठीक से समझ लें। यह घाटी की जो आत्मा है, इसे ठीक से समझ लें। यह घाटी की आत्मा कभी थकती नहीं। यह कभी मरती नहीं। यह जो निषेध है, यह जो न करने के द्वारा करने की कला है, यह जो बिना आक्रमण के आक्रमण कर देना है, यह बिना बुलाए बुला लेने का जो राज है, इसे ठीक से समझ लें। क्योंकि लाओत्से कहता है, इस राज को समझ कर ही कोई जीवन के परम सत्य को उपलब्ध कर सकता है। हम पुरुष की तरह परम सत्य को कभी नहीं पा सकते, क्योंकि परम सत्य पर कोई आक्रमण नहीं किया जा सकता। कोई हम बंदूकें और तलवारें लेकर परमात्मा के मकान पर कब्जा नहीं कर लेंगे। परमात्मा को केवल वे ही पा सकते हैं, जो स्त्रैण रहस्य को समझ गए, जिन्होंने अपने को इतना समर्पित किया, इतना छोड़ा, लेट गो, कि परमात्मा उनमें उतर सके। ठीक वैसे ही, जैसे स्त्री पुरुष के प्रेम में अपने को छोड़ देती है; कुछ करती नहीं, बस छोड़ देती है; और पुरुष उसमें उतर पाता है।
एक बहुत अनूठी बात जो इधर दस वर्षों में ख्याल में आनी शुरू हुई। क्योंकि वास्तविक स्त्री खो गई है दुनिया से। और जो स्त्री है, वह बिल्कुल सूडो है, वह पुरुष के द्वारा बनाई गई है, वह बिल्कुल बनावटी है। जिसको हम आज स्त्री कह कर जानते हैं, वह पुरुष के द्वारा बनाई गई गुड़िया से ज्यादा नहीं है। वह स्वाभाविक स्त्री नहीं है, जैसी होनी चाहिए।
अभी पश्चिम में एक छोटा सा वैज्ञानिकों का प्रयोग चलता है, जिसमें वे
यह कोशिश करते हैं कि क्या यह संभव है! और तंत्र ने इस पर बहुत पहले काम किया है--बहुत पहले, कोई दो हजार साल पहले--और यह अनुभव किया है कि यह हो सकता है। स्त्री और पुरुष के संभोग में चूंकि पुरुष सक्रिय होता है। अगर पुरुष सक्रिय न हो पाए, तो संभोग असंभव है। अगर पुरुष कमजोर हो जाए, वृद्ध हो जाए, उसके जनन-यंत्र शिथिल हो जाएं, तो संभोग असंभव है। लेकिन अभी पश्चिम में दस वर्षों में कुछ प्रयोग हुए हैं गहरे, जिनमें वे कहते हैं कि अगर पुरुष की जननेंद्रिय बिल्कुल शिथिल और क्षीण, शक्तिहीन हो जाए, तो भी फिक्र नहीं। स्त्री अगर उस पुरुष को प्रेम करती है, तो सिर्फ स्त्री- जननेंद्रिय के पास पहुंच जाने पर स्त्री की जननेंद्रिय पुरुष की जननेंद्रिय को चुपचाप अपने भीतर खींच लेती है। पुरुष को प्रवेश की भी जरूरत नहीं है। अगर स्त्री का प्रेम भारी है, तो उसका शरीर ऐसे खींच लेता है, जैसे खाली जगह में हवा खिंच कर आ जाए।

यह बहुत हैरानी का तथ्य है। और अगर ऐसा नहीं होता, तो उसका कुल कारण इतना है कि स्त्री प्रेम नहीं करती है उस पुरुष को। इसलिए उसका शरीर उसे खींचता नहीं। और इसलिए पुरुष जो भी कर रहा है, वह बलात्कार है। अगर स्त्री प्रेम करती है, तो खींच लेगी। उसका पूरा बायोलॉजिकल, उसका जैविक यंत्र ऐसा है कि वह व्यक्ति को अपने भीतर खींच लेगी।
लाओत्से कहता है, यह स्त्री का रहस्य है कि बिना कुछ किए वह कुछ कर सकती है। बिना कुछ किए! पुरुष को कुछ भी करना हो, तो करना पड़ेगा। धर्म का रहस्य भी स्त्रैण है। अगर कोई परमात्मा को पाने जाए, तो कभी न पा सकेगा। और कोई केवल अपने हृदय के द्वार को खोल कर ठहर जाए, तो परमात्मा यहीं और अभी प्रवेश कर जाता है। दूर-दूर खोजे कोई, अनंत की यात्रा करे कोई, भटके जन्मों-जन्मों तक, तो भी परमात्मा को नहीं पा सकेगा। क्योंकि परमात्मा को पाने का राज ही यही है कि हम रिसेप्टिव हो जाएं, एग्रेसिव नहीं। हम अपने को खुला छोड़ दें। हम सिर्फ राजी हो जाएं कि वह आता हो तो हमारे द्वार-दरवाजे बंद न पाए। हमारा प्रेम इतना ही करे कि वह एक पैसिव अवेटिंग, एक निष्क्रिय प्रतीक्षा बन जाए।
स्त्री जन्म-जन्म तक अपने प्रेमी की प्रतीक्षा कर सकती है; पुरुष नहीं कर सकता। पुरुष प्रतीक्षा जानता ही नहीं है। पुरुष के मन की जो व्यवस्था है, उसमें प्रतीक्षा नहीं है। उसमें अभी और यहीं, इंसटैंट सब चाहिए। इंसटैंट काफी भी, इंसटैंट सेक्स भी। अभी! इसलिए पुरुष ने विवाह ईजाद किया। क्योंकि विवाह के बिना इंसटैंट सेक्स, अभी, संभव नहीं है। पुरुष प्रतीक्षा बिल्कुल नहीं कर सकता। आतुर है, व्यग्र है, तनावग्रस्त है। लेकिन स्त्री प्रतीक्षा कर सकती है, अनंत प्रतीक्षा कर सकती है। इसलिए जब इस मुल्क में हिंदुओं ने पुरुषों को विधुर रखने की व्यवस्था नहीं की और स्त्रियों को विधवा रखने की व्यवस्था की, तो यह सिर्फ स्त्रियों पर ज्यादती ही नहीं थी, यह स्त्रियों की प्रतीक्षा के तत्व की समझ भी इसमें थी। एक स्त्री अपने प्रेमी के लिए पूरे जन्म, अगले जन्म तक के लिए प्रतीक्षा कर सकती है। यह भरोसा किया जा सकता है। लेकिन पुरुष पर यह भरोसा नहीं किया जा सकता।
इसलिए भारत ने अगर स्त्रियों को विधवा रखने की व्यवस्था दी और पुरुषों को नहीं दी, तो सिर्फ इसलिए नहीं कि यह व्यवस्था पुरुष के पक्ष में थी। जहां तक मैं समझ पाता हूं, यह पुरुष का बहुत बड़ा अपमान था, यह स्त्री का गहनतम सम्मान था। क्योंकि इस बात की सूचना थी कि हम स्त्री पर भरोसा कर सकते हैं कि वह प्रतीक्षा कर सकती है। लेकिन पुरुष पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। पुरुष पर भरोसा नहीं किया जा सकता, इसलिए विधुर को रखने के लिए आग्रह नहीं रहा। कोई रहना चाहे, वह उसकी मर्जी! लेकिन स्त्री पर आग्रह था।
और आग्रह इसलिए था कि उसकी प्रतीक्षा में ही उसका वह जो स्त्रैण तत्व
है, वह ज्यादा प्रकट होगा। उसे जितना अवसर मिले निष्क्रिय प्रतीक्षा का, उसके भीतर की गहराइयां उतनी ही गहन और गहरी हो जाती हैं। और उसके आंतरिक रहस्य मधुर और सुगंधित हो जाते हैं।
एक बहुत हैरानी की बात मैं कभी-कभी पढ़ता रहा हूं। कभी मेरे ख्याल में नहीं आती थी कि बात क्या होगी। कैथोलिक प्रीस्ट के सामने लोग अपने पापों की स्वीकृतियां करते हैं, कन्फेशन करते हैं। अनेक कैथोलिक पुरोहितों का यह अनुभव है कि जब स्त्रियां उनके सामने अपने पापों की स्वीकृति करती हैं, तो स्वभावतः वे भी मनुष्य हैं और केवल ट्रेंड प्रीस्ट हैं।
ईसाइयत ने एक दुनिया को बड़े से बड़ी जो बुरी बात दी है, वह यह, प्रशिक्षित पुरोहित दिए। कोई प्रशिक्षित पुरोहित नहीं हो सकता। प्रशिक्षित डाक्टर हो सकते हैं, प्रशिक्षित वकील हो सकते हैं, लेकिन प्रशिक्षित पुरोहित नहीं हो सकता; उसी तरह, जैसे प्रशिक्षित पोएट, कवि नहीं हो सकता। और अगर आप कविता को सिखा दें और ट्रेनिंग दे दें और सर्टिफिकेट दे दें कि यह आदमी ट्रेंड है कविता में, तो वह सिर्फ तुकबंदी करेगा। कविता उससे पैदा नहीं हो सकती। पुरोहित भी जन्मजात क्षमता है, साधना का फल है। उसे कोई प्रशिक्षित नहीं कर सकता। लेकिन ईसाइयत ने प्रशिक्षित किए। ट्रेंड पुरोहित हैं, उनके पास डिग्रियां हैं, उनमें कोई

डीड़ी. है, डाक्टर ऑफ डिविनिटी है। डाक्टर ऑफ डिविनिटी कोई नहीं होता, क्योंकि सर्टिफिकेट पर जो डिविनिटी तय हो जाएगी, वह डिविनिटी नहीं हो सकती है। वह क्या दिव्यता होगी जो एक स्कूल-सर्टिफिकेट देने से तय हो जाती हो!
तो पुरोहित के पास जब स्त्रियां अपने पापों का कन्फेशन करती हैं, तो
यह कन्फेशन बहुत टेंपटिंग हो जाता है। स्वाभाविक! जब कोई स्त्री अपने पाप का स्वीकार करती है, और एकांत में करती है, तो पुरोहित के लिए बड़ी बेचैनी हो जाती है। स्त्री तो हलकी हो जाती है, पुरोहित भारी हो जाता है। लेकिन कैथोलिक पुरोहितों का एक वक्तव्य मुझे सदा हैरान करता था, वह यह कि विधवा स्त्रियां ज्यादा आकर्षक और टेंपटिंग सिद्ध होती हैं। मैं बहुत हैरान था कि यह क्या कारण होगा?
असल में, विधवा अगर सच में विधवा हो, तो उसके सौंदर्य में बहुत बढ़ती हो जाती है। क्योंकि प्रतीक्षा उसके स्त्रैण रहस्य को गहन कर देती है। कुंवारी लड़की में जो रहस्य होता है, वह प्रतीक्षा का है। इसलिए सारी दुनिया में जो समझदार कौमें थीं, उन्होंने तय किया कि कुंवारी लड़की से ही विवाह करना। क्योंकि सच तो यह है कि जो लड़की कुंवारी नहीं है, उससे विवाह करने का मतलब है कि आपको स्त्री के रहस्य को जानने का मौका ही नहीं मिलेगा। वह रहस्य पहले ही खंडित हो चुका। वह स्त्री छिछली हो गई। उसने प्रतीक्षा ही नहीं की है इतनी, जितनी प्रतीक्षा पर वह भीतर का पूरा का पूरा रहस्यमय फूल खिलता है।
इसलिए जिन समाजों ने स्त्री के कुंवारे रहने पर और विवाह पर जोर दिया, उन्होंने पुरुष के कुंवारेपन की बहुत फिक्र नहीं की है। उसका कारण है कि पुरुष के कुंवारेपन या न कुंवारेपन से कोई फर्क नहीं पड़ता है। लेकिन स्त्री के कुंवारेपन से फर्क पड़ता है। कुंवारी स्त्री में एक सौंदर्य है जो विवाह के बाद उसमें खो जाता है।
वह सौंदर्य उसमें फिर से जन्मता है, जब वह मां बनना शुरू होती है। क्योंकि अब वह एक और बड़े रहस्य के द्वार पर, और एक और बड़ी प्रतीक्षा के द्वार पर खड़ी हो जाती है। उसे गर्भवती देख कर पति चिंतित हो सकता है। और पति चिंतित होते हैं। और उनकी चिंता स्वाभाविक है। क्योंकि उनके लिए प्रतीक्षा नहीं, केवल एक और इकोनॉमिक, एक आर्थिक उपद्रव उनके ऊपर आने को है। लेकिन मां मधुर हो जाती है। असल में, मां का गर्भ जैसे बढ़ने लगता है, उसकी आंखों की गहराई बढ़ने लगती है; उसके शरीर में नए कोमल तत्वों का आविर्भाव होता है। गर्भिणी स्त्री का सौंदर्य स्त्रैण रहस्य से बहुत भारी हो जाता है। यह क्या होगा रहस्य?
यह पैसिविटी इ.ज दि सीक्रेट। अब मां बनने के लिए कुछ उसे करना तो पड़ता नहीं। बेटा उसके पेट में बड़ा होने लगता है; उसे सिर्फ प्रतीक्षा करनी होती है। उसे कुछ भी नहीं करना होता। असल में, उसे सब करना छोड़ देना होता है; सिर्फ प्रतीक्षा ही करनी होती है। जैसे-जैसे उसके बेटे का या उसकी बेटी का, उसके गर्भ का विकास होने लगता है, वैसे-वैसे सब काम उसे छोड़ देना पड़ता है। वह सिर्फ प्रतीक्षा में रह जाती है, वह सिर्फ स्वप्न देखने लगती है। इसलिए अगर सारा काम स्त्री छोड़ दे बच्चे के जन्म के करीब, तो वह वे स्वप्न देख सकती है, जो उसके बच्चे के भविष्य की सूचनाएं होंगे। इसलिए महावीर या बुद्ध की मां के स्वप्न बड़े मूल्यवान हो गए। महावीर या बुद्ध के संबंध में कहा जाता है कि जब वे पैदा हुए, तो उनकी मां ने स्वप्न देखे। वे स्वप्न रोज मां के सामने प्रकट होते गए। उन स्वप्नों में बुद्ध या महावीर के जीवन की सारी रूप-रेखा प्रकट हो गई।
अगर मां सच में ही मां हो और आने वाले भविष्य में जो जन्म लेने वाला प्राण है उससे, उसके साथ पूरी पैसिविटी में हो, तो वह अपने बच्चे की जन्मकुंडली खुद ही लिख जा सकती है। किसी पुरोहित, किसी पंडित को दिखाने की जरूरत नहीं है। और मां जिसकी जन्मकुंडली न लिख सके, उसकी कोई पुरोहित और पंडित न लिख सकेगा। क्योंकि इतना तादात्म्य, इतना एकात्म फिर कभी किसी दूसरे से नहीं होता है। पति से भी नहीं होता है इतना तादात्म्य पत्नी का, जितना अपने बेटे से होता है। बेटा उसका ही एक्सटेंशन है, उसका ही फैलाव है।

लेकिन मां बनने के लिए कुछ भी करना नहीं पड़ता; पिता बनने के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है। मां बनने के लिए कुछ भी नहीं करना होता। मां बनने के लिए केवल मौन प्रतीक्षा करनी होती है। इस मौन प्रतीक्षा में दो चीजों का जन्म होता हैः एक तो बेटे का जन्म होता है और एक मां का भी जन्म होता है।
इसलिए पूरब के मुल्क, जिन्होंने फेमिनिन मिस्ट्री को समझा, उन्होंने स्त्री को जो चरम आदर दिया है, वह मां का, पत्नी का नहीं। यह बहुत हैरानी की बात है।
मुझसे लोग पूछते थे कि आप संन्यासियों को स्वामी कहते हैं, लेकिन संन्यासिनियों को मां क्यों कहते हैं, जब कि अभी उनका विवाह भी नहीं हुआ? उनका बच्चा भी नहीं हुआ?
असल में, मां का संबंध स्त्री की चरम गरिमा से है। वह अपनी चरम गरिमा
पर सिर्फ मां के क्षण में होती है। उसका जो पीक एक्सपीरिएंस है, वह पत्नी होना नहीं है, प्रेयसी होना नहीं है--प्रेयसी और पत्नी होना केवल चढ़ाई की शुरुआत है--उसका जो पीक एक्सपीरिएंस है, जो शिखर-अनुभव है, वह उसका मां होना है।
इसलिए जिन समाजों में भी स्त्रियों ने तय कर लिया है कि पत्नी होना उनका शिखर है, उन समाजों में स्त्रियां बहुत दुखी हो जाएंगी; क्योंकि वह उनका शिखर है नहीं। यद्यपि पुरुष राजी है कि वे पत्नी होने को ही अपना शिखर समझें। क्योंकि पुरुष को पति होने पर शिखर उपलब्ध हो जाता है। पिता होने पर उसे शिखर उपलब्ध नहीं होता। उसे प्रेमी होने पर शिखर उपलब्ध हो जाता है। लेकिन स्त्री को उपलब्ध नहीं होता।
स्त्री का यह जो मातृत्व का राज है, इसे लाओत्से कहता है, यह अंधेरे जैसा है।
इसमें और बहुत सी बातें ख्याल में लेने जैसी हैं। जब पुरुष पैदा होता है, जब एक बच्चा पैदा होता है, लड़का पैदा होता है, तो उसके पास अभी सेक्स हारमोन होते नहीं, बाद में पैदा होने शुरू होते हैं। उसका वीर्य बाद में निर्मित होना शुरू होता है। लेकिन यह जान कर आप हैरान होंगे कि जब लड़की पैदा होती है, तो वह अपने सब अंडे साथ लेकर पैदा होती है। उसके जीवन भर में जितने अंडे प्रति माह उसके मासिक धर्म में निकलेंगे, उतने अंडे वह लेकर ही पैदा होती है। स्त्री पूरी पैदा होती है। उसके पास पूरा कोश होता है उसके एग्स का। फिर उनमें से एक-एक अंडा समय पर बाहर आने लगेगा। लेकिन वह सब अंडे लेकर आती है। पुरुष अधूरा पैदा होता है।
और अधूरे पैदा होने की वजह से लड़के बेचैन होते हैं और लड़कियां शांत होती हैं। एक अनइजीनेस लड़के में जन्म से होती है। लड़की में एक एटईजनेस जन्म से होती है। लड़की के शरीर का, उसके व्यक्तित्व का जो सौंदर्य है, वह उसकी शांति से बहुत ज्यादा संबंधित है। अगर लड़की को बेचैन करना हो, तो उपाय करने पड़ते हैं। और लड़के को अगर शांत करना हो, तो उपाय करने पड़ते हैं; अशांत होना स्वाभाविक है।
बायोलॉजिस्ट कहते हैं कि उसका कारण है कि स्त्री जिस अंडे से बनती है, उसमें जो अणु होते हैं, वे एक्स-एक्स होते हैं। दोनों एक से होते हैं। और पुरुष जिस क्रोमोसोम से बनता है, उसमें एक्स-वाई होता है; उसमें एक एक्स होता है, एक वाई होता है; वे समान नहीं होते। स्त्री में जो तत्व होते हैं, वे एक्स-एक्स होते हैं, दोनों समान होते हैं। इसलिए स्त्री सुडौल होती है, पुरुष सुडौल नहीं हो पाता। स्त्री के शरीर में जो कर्व्स का सौंदर्य है, वह उसके एक्स-एक्स दोनों संतुलित अंडों के कारण है। और पुरुष के शरीर में वैसा संतुलन नहीं हो सकता, क्योंकि एक्स-वाई, उसके एक और दूसरे में समानता नहीं है। स्त्री के व्यक्तित्व को बनाने वाले अड़तालीस अणु हैं; वे पूरे हैं चौबीस-चौबीस। पुरुष को बनाने वाले सैंतालीस हैं। और बायोलॉजिस्ट कहते हैं कि वह जो एक अणु की कमी है, वही पुरुष को जीवन भर दौड़ाती है--इस दुकान से उस दुकान, जमीन से चांद--दौड़ाती रहती है। वह जो एक कम है, उसकी खोज है। वह पूरा होना चाहता है।
यह जो स्त्री का संतुलित, शांत, प्रतीक्षारत व्यक्तित्व है, लाओत्से कहता है, यह जीवन का बड़ा गहरा रहस्य है। परमात्मा स्त्री के ढंग से अस्तित्व में है; पुरुष के ढंग से नहीं। इसलिए परमात्मा को हम देख नहीं

पाते हैं। उसे हम पकड़ भी नहीं पाते हैं। वह मौजूद है जरूर; लेकिन उसकी प्रेजेंस स्त्रैण है, न होने जैसा है। उसे हम पकड़ने जाएंगे, उतना ही वह हमसे छूट जाएगा, उतना ही हट जाएगा। उतनी ही उसकी खोज मुश्किल हो जाएगी। अस्तित्व स्त्रैण है। इसका अर्थ यह है कि अस्तित्व में जो भी प्रकट होता है, अस्तित्व में पहले से छिपा है--एक। जैसा मैंने कहा, स्त्री में जो भी पैदा होगा, वह सब पहले से ही छिपा है। वह अपने जन्म के साथ लेकर आती है सब। उसमें कुछ नया एडीशन नहीं होता। वह पूरी पैदा होती है। उसमें ग्रोथ होती है, लेकिन एडीशन नहीं होता। उसमें विकास होता है, लेकिन कुछ नई चीज जुड़ती नहीं। यही वजह है कि वह बड़ी तृप्त जीती है। स्त्रियों की तृप्ति आश्चर्यजनक है। अन्यथा इतने दिन तक उनको गुलाम नहीं रखा जा सकता था। उनकी तृप्ति आश्चर्यजनक है; गुलामी में भी वे राजी हो जाती हैं। कैसी भी स्थिति हो, वे राजी हो जाती हैं। अतृप्ति उनमें बड़ी मुश्किल से पैदा की जा सकती है; बड़ी कठिन है। और तभी पैदा की जा सकती है, जब कुछ बायोलॉजिकल कठिनाई उनके भीतर पैदा हो जाए। जैसा पश्चिम में लग रहा है कि कठिनाई पैदा हुई है। तो उनमें पैदा की जा सकती है बेचैनी।
और जिस दिन स्त्री बेचैन होती है, उस दिन उसको चैन में लाना फिर बहुत मुश्किल है। क्योंकि वह बिल्कुल अप्राकृतिक है उसका बेचैन होना। इसलिए स्त्री बेचैन नहीं होती, सीधी पागल होती है। यह आप जान कर हैरान होंगे कि स्त्री या तो शांत होती है या पागल हो जाती है; बीच में नहीं ठहरती, ग्रेडेशंस नहीं हैं। पुरुष न तो शांत होता है इतना, न इतना पागल होता है; बीच में काफी डिग्रीज हैं उसके पास। अशांति की डिग्रीज में वह डोलता रहता है। बड़ी से बड़ी अशांति में भी वह पागल नहीं हो जाता; और बड़ी से बड़ी शांति में भी वह बिल्कुल शांत नहीं हो जाता।
नीत्शे ने बहुत विचार की बात कही है। उसने कहा है कि जहां तक मैं समझता हूं, बुद्ध जैसे व्यक्ति में स्त्रैण तत्व ज्यादा रहे होंगे। बुद्ध को वूमेनिश कहा है नीत्शे ने। और मैं मानता हूं कि इसमें एक गहरी समझ है। सच यह है कि जब कोई पुरुष भी पूरी तरह शांत होता है, तो स्त्रैण हो जाता है। हो ही जाएगा। हो जाएगा इसलिए कि इतना शांत हो जाएगा कि वह जो पुरुष की अनिवार्य बेचैनी थी, वह जो अनिवार्य अशांति थी, अनिवार्य तनाव था, वह जो टेंशन था पुरुष के अस्तित्व का, वह खो जाएगा।
यही वजह है कि हमने भारत में प्रतीकात्मक रूप से कृष्ण की, बुद्ध की, महावीर की दाढ़ी-मूंछ नहीं बनाई। ऐसा नहीं कि नहीं थी; थी। लेकिन नहीं बनाई; क्योंकि वह सांकेतिक नहीं रह गई। सांकेतिक नहीं रह गई। वह बुद्ध के भीतर की खबर नहीं देती, इसलिए उसे हटा दिया। सिर्फ एक मूर्ति पर बुद्ध की दाढ़ी है, इसलिए लोग उस मूर्ति को कहते हैं वह झूठ है, वह ठीक नहीं है। क्योंकि किसी मूर्ति पर दाढ़ी नहीं है। महावीर की एक मूर्ति पर मूंछ है, तो लोग कहते हैं कि वह कुछ किसी जादूगर ने उन पर मूंछ उगा दी है। तो उस पूरे मंदिर का नाम मुछाला महावीर है, मूंछ वाले महावीर। क्योंकि महावीर तो मूंछ वाले थे नहीं।
लेकिन महावीर में मूंछ न हो, बुद्ध में मूंछ न हो, कभी एकाध दफा ऐसी घटना घट सकती है; क्योंकि कुछ पुरुष होते हैं, जिनमें हारमोन्स की कमी की वजह से दाढ़ी-मूंछ नहीं होती। लेकिन जैनों के चौबीस तीर्थंकर और किसी को दाढ़ी न हो, जरा कठिन है! इतना बड़ा संयोग मुश्किल है।
लेकिन वह प्रतीकात्मक है। वह इस बात की खबर है कि हमने यह स्वीकार कर लिया था कि यह व्यक्ति अब स्त्रैण रहस्य में प्रवेश कर गया, दि फेमिनिन मिस्ट्री में।
ध्यान रहे, जब मैं स्त्रैण रहस्य कह रहा हूं, तो कोई ऐसा न समझे कि मेरा मतलब स्त्री से ही है। स्त्री भी, हो सकती है, स्त्रैण रहस्य में प्रवेश न करे; और पुरुष भी प्रवेश कर सकता है। स्त्रैण रहस्य तो जीवन का एक सूत्र है।
लाओत्से इसलिए कहता है कि दि फीमेल मिस्ट्री दस डू वी नेम। हम इस तरह नाम देते हैं। नाम देने का कारण है। क्योंकि यह नाम अर्थपूर्ण मालूम पड़ता है। हम उस रहस्य को पुरुष जैसा नाम नहीं दे सकते; क्योंकि वह रहस्य परम

शांत है। वह इतना शांत है कि उसकी उपस्थिति की भी खबर नहीं मिलती। क्योंकि उपस्थिति की भी खबर तभी मिलती है, जब कोई खबर दे।
इसलिए सच्ची प्रेयसी वह नहीं है जो अपने प्रेमी को अपने होने की खबर चौबीस घंटे करवाती रहती है। करवाते रहते हैं लोग। अगर पति घर आया है, तो पत्नी हजार उपाय करती है। बर्तन जोर से छूटने लगते हैं हाथ से। खबर करवाती है कि मैं हूं, इसे स्मरण रखना; मैं यहीं आस-पास हूं। पति भी पूरे उपाय करता है कि तुम नहीं हो। अखबार फैला कर, जिसे वह दस बार पढ़ चुका है, फिर पढ़ने लगता है। वह अखबार दीवार है, जिसके पार बजाओ कितने ही बर्तन, कितनी ही करो आवाज, बच्चों को पीटो, शोरगुल मचाओ, रेडियो जोर से बजाओ, नहीं सुनेंगे। हम अखबार पढ़ते हैं!
लेकिन प्रेयसी सच में वही है, जिस स्त्री को स्त्रैण रहस्य का पता चल गया। वह अपने प्रेमी के पास अपनी उपस्थिति को पता भी नहीं चलने देगी।
एक बहुत अदभुत घटना मैं आपसे कहता हूं। वाचस्पति मिश्र का विवाह हुआ। पिता ने आग्रह किया, वाचस्पति की कुछ समझ में न आया; इसलिए उन्होंने हां भर दी। सोचा, पिता जो कहते होंगे, ठीक ही कहते होंगे। वाचस्पति लगा था परमात्मा की खोज में। उसे कुछ और समझ में ही न आता था। कोई कुछ भी बोले, वह परमात्मा की ही बात समझता था। पिता ने वाचस्पति को पूछा, विवाह करोगे? उसने कहा, हां।
उसने शायद सुना होगा, परमात्मा से मिलोगे? जैसा कि हम सब के साथ होता है। जो धन की खोज में लगा है, उससे कहो, धर्म खोजोगे? वह समझता है, शायद कह रहे हैं, धन खोजोगे? उसने कहा, हां। हमारी जो भीतर खोज होती है, वही हम सुन पाते हैं। वाचस्पति ने शायद सुना; हां भर दी।
फिर जब घोड़े पर बैठ कर ले जाया जाने लगा, तब उसने पूछा, कहां ले जा रहे हैं? उसके पिता ने कहा, पागल, तूने हां भरा था। विवाह करने चल रहे हैं। तो फिर उसने न करना उचित न समझा; क्योंकि जब हां भर दी थी और बिना जाने भर दी थी, तो परमात्मा की मर्जी होगी।
वह विवाह करके लौट आया। लेकिन पत्नी घर में आ गई, और वाचस्पति को ख्याल ही न रहा। रहता भी क्या! न उसने विवाह किया था, न हां भरी थी। वह अपने काम में ही लगा रहा। वह ब्रह्मसूत्र पर एक टीका लिखता था। वह बारह वर्ष में टीका पूरी हुई। बारह वर्ष तक उसकी पत्नी रोज सांझ दीया जला जाती, रोज सुबह उसके पैरों के पास फूल रख जाती, दोपहर उसकी थाली सरका देती। जब वह भोजन कर लेता, तो चुपचाप पीछे से थाली हटा ले जाती। बारह वर्ष तक उसकी पत्नी का वाचस्पति को पता नहीं चला कि वह है। पत्नी ने कोई उपाय नहीं किया कि पता चल जाए; बल्कि सब उपाय किए कि कहीं भूल-चूक से पता न चल जाए, क्योंकि उनके काम में बाधा न पड़े।
बारह वर्ष जिस पूर्णिमा की रात वाचस्पति का काम आधी रात पूरा हुआ और वाचस्पति उठने लगे, तो उनकी पत्नी ने दीया उठाया--उनको राह दिखाने के लिए उनके बिस्तर तक। पहली दफा बारह वर्ष में, कथा कहती है, वाचस्पति ने अपनी पत्नी का हाथ देखा। क्योंकि बारह वर्ष में पहली दफा काम समाप्त हुआ था। अब मन बंधा नहीं था किसी काम से। हाथ देखा, चूड़ियां देखीं, चूड़ियों की आवाज सुनी। लौट कर पीछे देखा और कहा, स्त्री, इस आधी रात अकेले में तू कौन है? कहां से आई? द्वार मकान के बंद हैं, कहां पहुंचना है तुझे, मैं पहुंचा दूं! उसकी पत्नी ने कहा, आप शायद भूल गए होंगे, बहुत काम था। बारह वर्ष आप काम में थे। याद आपको रहे, संभव भी नहीं है। बारह वर्ष पहले, ख्याल अगर आपको आता हो, तो आप मुझे पत्नी की तरह घर ले आए थे। तब से मैं यहीं हूं। वाचस्पति रोने लगा। उसने कहा, यह तो बहुत देर हो गई। क्योंकि मैंने तो प्रतिज्ञा कर रखी है कि जिस दिन यह ग्रंथ पूरा हो जाएगा, उसी दिन घर का त्याग कर दूंगा। तो यह तो मेरे जाने का वक्त हो गया। भोर होने के करीब है; तो मैं जा रहा हूं। पागल, तूने पहले क्यों न कहा? थोड़ा भी तू इशारा कर सकती थी। लेकिन अब बहुत देर हो गई।
वाचस्पति की आंखों में आंसू देख कर पत्नी ने उसके चरणों में सिर रखा
और उसने कहा, जो भी मुझे मिल सकता था, वह इन आंसुओं में मिल गया। अब मुझे कुछ और चाहिए भी नहीं है। आप निश्चिंत जाएं। और मैं क्या पा सकती थी इससे

ज्यादा कि वाचस्पति की आंख में मेरे लिए आंसू हैं! बस, बहुत मुझे मिल गया है।
वाचस्पति ने अपने ब्रह्मसूत्र की टीका का नाम भामति रखा है। भामति का कोई संबंध टीका से नहीं है। ब्रह्मसूत्र से कोई लेना-देना नहीं है। यह उसकी पत्नी का नाम है। यह कह कर कि अब मैं कुछ और तेरे लिए नहीं कर सकता, लेकिन मुझे चाहे लोग भूल जाएं, तुझे न भूलें, इसलिए भामति नाम देता हूं अपने ग्रंथ को। वाचस्पति को बहुत लोग भूल गए हैं; भामति को भूलना मुश्किल है। भामति लोग पढ़ते हैं। अदभुत टीका है ब्रह्मसूत्र की। वैसी दूसरी टीका नहीं है। उस पर नाम भामति है।
फेमिनिन मिस्ट्री इस स्त्री के पास होगी। और मैं मानता हूं कि उस क्षण में इसने वाचस्पति को जितना पा लिया होगा, उतना हजार वर्ष भी चेष्टा करके कोई स्त्री किसी पुरुष को नहीं पा सकती। उस क्षण में, उस क्षण में वाचस्पति जिस भांति एक हो गया होगा इस स्त्री के हृदय से, वैसा कोई पुरुष को कोई स्त्री कभी नहीं पा सकती। क्योंकि फेमिनिन मिस्ट्री, वह जो रहस्य है, वह अनुपस्थित होने का है।
छुआ क्या प्राण को वाचस्पति के? कि बारह वर्ष! और उस स्त्री ने पता भी
न चलने दिया कि मैं यहीं हूं। और वह रोज दीया उठाती रही और भोजन कराती रही। और वाचस्पति ने कहा, तो रोज जो थाली खींच लेता था, वह तू ही है? और रोज सुबह जो फूल रख जाता था, वह कौन है? और जिसने रोज दीया जलाया, वह तू ही थी? पर तेरा हाथ मुझे दिखाई नहीं पड़ा!
भामति ने कहा, मेरा हाथ दिखाई पड़ जाता, तो मेरे प्रेम में कमी साबित होती। मैं प्रतीक्षा कर सकती हूं।
तो जरूरी नहीं कि कोई स्त्री स्त्रैण रहस्य को उपलब्ध ही हो। यह तो लाओत्से ने नाम दिया, क्योंकि यह नाम सूचक है और समझा सकता है। पुरुष भी हो सकता है। असल में, अस्तित्व के साथ तादात्म्य उन्हीं का होता है, जो इस भांति प्रार्थनापूर्ण प्रतीक्षा को उपलब्ध होते हैं।
"इस स्त्रैण रहस्यमयी का द्वार स्वर्ग और पृथ्वी का मूल स्रोत है।"
चाहे पदार्थ का हो जन्म और चाहे चेतना का, और चाहे पृथ्वी जन्मे और चाहे स्वर्ग, इस अस्तित्व की गहराई में जो रहस्य छिपा हुआ है, उससे ही सबका जन्म होता है। इसलिए मैंने कहा, जिन्होंने परमात्मा को मदर, मां की तरह देखा, दुर्गा या अंबा की तरह देखा, उनकी समझ परमात्मा को पिता की तरह देखने से ज्यादा गहरी है। अगर परमात्मा कहीं भी है, तो वह स्त्रैण होगा। क्योंकि इतने बड़े जगत को जन्म देने की क्षमता पुरुष में नहीं है। इतने विराट चांद-तारे जिससे पैदा होते हों, उसके पास गर्भ चाहिए। बिना गर्भ के यह संभव नहीं है।
इसलिए खासकर यहूदी परंपराएं, ज्यूविश परंपराएं--यहूदी, ईसाई और इसलाम, तीनों ही ज्यूविश परंपराओं का फैलाव हैं--उन्होंने जगत को एक बड़ी भ्रांत धारणा दी, गॉड दि फादर। वह धारणा बड़ी खतरनाक है। पुरुष के मन को तृप्त करती है, क्योंकि पुरुष अपने को प्रतिष्ठित पाता है परमात्मा के रूप में। लेकिन जीवन के सत्य से उस बात का संबंध नहीं है। ज्यादा उचित एक जागतिक मां की धारणा है। पर वह तभी ख्याल में आ सकेगी, जब स्त्रैण रहस्य को आप समझ लें, लाओत्से को समझ लें। अन्यथा समझ में न आ सकेगी।
कभी आपने देखा है काली की मूर्ति को? वह मां है और विकराल! मां है और हाथ में खप्पर लिए है आदमी की खोपड़ी का! मां है, उसकी आंखों में सारे मातृत्व का सागर। और नीचे? नीचे वह किसी की छाती पर खड़ी है। पैरों के नीचे कोई दबा है। क्योंकि जो सृजनात्मक है, वही विध्वंसात्मक होगा। क्रिएटिविटी का दूसरा हिस्सा डिस्ट्रक्शन है। इसलिए बड़ी खूबी के लोग थे, जिन्होंने यह सोचा! बड़ी इमेजिनेशन के, बड़ी कल्पना के लोग थे। बड़ी संभावनाओं को देखते थे। मां को खड़ा किया है, नीचे लाश की छाती पर खड़ी है। हाथ में खोपड़ी है आदमी की, मुर्दा। खप्पर है, लहू टपकता है। गले में माला है खोपड़ियों की। और मां की आंखें हैं और मां का हृदय है, जिनसे दूध बहे। और वहां खोपड़ियों की माला टंगी है!
असल में, जहां से सृष्टि पैदा होती है, वहीं प्रलय होता है। सर्किल पूरा वहीं होता है। इसलिए मां जन्म दे सकती है। लेकिन मां अगर विकराल हो

जाए, तो मृत्यु भी दे सकती है। और स्त्री अगर विकराल हो, तो बहुत खतरनाक हो जाती है। शक्ति उसमें बहुत है। शक्ति तो वही है, वह चाहे क्रिएशन बने और चाहे डिस्ट्रक्शन बने। शक्ति तो वही है, चाहे सृजन हो, चाहे विनाश हो। जिन लोगों ने मां की धारणा के साथ सृष्टि और विनाश, दोनों को एक साथ सोचा था, उनकी दूरगामी कल्पना है। लेकिन बड़ी गहन और सत्य के बड़े निकट!
लाओत्से कहता है, स्वर्ग और पृथ्वी का मूल स्रोत वहीं है। वहीं से सब पैदा होता है। लेकिन ध्यान रहे, जो मूल स्रोत होता है, वहीं सब चीजें लीन हो जाती हैं। वह अंतिम स्रोत भी वही होता है।
"यह सर्वथा अविच्छिन्न है।"
यह जो स्त्रैण अस्तित्व है, यह जो पैसिव अस्तित्व है, यह जो प्रतीक्षा करता हुआ शून्य अस्तित्व है, इसमें कभी कोई खंड नहीं पड़ते। अविच्छिन्न है, कंटीन्युअस है, इसमें कोई डिसकंटीन्यूटी नहीं होती। जैसा मैंने कहा, दीया जलता है, बुझ जाता है; अंधेरा अविच्छिन्न है। जन्म आता है, जीवन दिखता है; मृत्यु अविच्छिन्न है। वह चलती चली जाती है। पहाड़ बनते हैं, मिट जाते हैं; घाटियां अविच्छिन्न हैं। पहाड़ होते हैं, तो वे दिखाई पड़ती हैं; पहाड़ नहीं होते, तो वे दिखाई नहीं पड़तीं। लेकिन उनका होना अविच्छिन्न है।
"सर्वथा अविच्छिन्न है। इसकी शक्ति अखंड है।"
कितनी ही शक्ति इस शून्य से निकाली जाए, वह चुकती नहीं है, वह समाप्त नहीं होती है। पुरुष चुक जाता है, स्त्री चुकती नहीं है। पुरुष क्षीण हो जाता है, स्त्री क्षीण नहीं होती।
साधारणतया जिसे हम स्त्री कहते हैं, वह भी पुरुष से कम क्षीण होती है।
और अगर किसी स्त्री को स्त्रैण होने का पूरा राज मिल जाए, तो वह अपने वार्धक्य तक अपरिसीम सौंदर्य में प्रतिष्ठित रह सकती है। पुरुष का रहना बहुत मुश्किल है। पुरुष तूफान की तरह आता है और विदा हो जाता है। स्त्री को अगर उसका ठीक मातृत्व मिल जाए, तो वह अंतिम क्षण तक सुंदर हो सकती है। और पुरुष भी अंतिम क्षण तक तभी सुंदर हो पाता है, जब वह स्त्रैण रहस्य में प्रवेश कर जाता है। कभी! कभी-कभी ऐसा होता है।
इसलिए मैं एक दूसरा प्रतीक आपसे कहूं। हमने बुद्ध, राम, कृष्ण या महावीर के बुढ़ापे के कोई भी चित्र नहीं बनाए हैं। सब चित्र युवा हैं।
यह बात एकदम झूठ है। क्योंकि महावीर अस्सी वर्ष के होकर मरते हैं; बुद्ध अस्सी वर्ष के होकर मरते हैं; राम भी बूढ़े होते हैं, कृष्ण भी बूढ़े होते हैं। लेकिन चित्र हमारे पास युवा हैं। कोई बूढ़ा चित्र हमारे पास नहीं है। वह जान कर; वह प्रतीकात्मक है।
असल में, जो व्यक्ति इतना लीन हो गया अस्तित्व के साथ, हम मानते हैं,
अब वह सदा ही यंग और फ्रेश, ताजा और युवा बना रहेगा। भीतर उसके युवा होने का सतत सूत्र मिल गया। अब वह अविच्छिन्न रूप से, अखंड रूप से अपनी शक्ति में ठहरा रहेगा।
"इसका उपयोग करो।"
लाओत्से कहता है, इस अखंड शक्ति का उपयोग करो। इस स्त्रैण रहस्य का उपयोग करो।
"और इसकी सहज सेवा उपलब्ध होती है।"
तुम्हें पता भर होना चाहिए, हाऊ टु यूज इट; एंड यू गेट इट। सिर्फ पता होना चाहिए, कैसे उपयोग करो; और सहज सेवा उपलब्ध होती है। क्योंकि यह द्वार जो है स्त्रैण, यह तैयार ही है अपने को देने को; तुम भर लेने को राजी हो जाओ।
"यूज जेंटली एंड विदाउट दि टच ऑफ पेन, लांग एंड अनब्रोकेन डज इट्स पावर रिमेन।"
थोड़ी भद्रता से, यूज जेंटली, थोड़े भद्र रूप से इसका उपयोग करो।
ध्यान रहे, जितने आप भद्र होंगे, उतने आप स्त्रैण हो जाएंगे। जितने आप पुरुष होंगे, उतने अभद्र हो जाएंगे। इसलिए अगर पुरुष बहुत भद्र होने की कोशिश करेगा, तो उसमें पुरुष का तत्व कम होने लगेगा। इसलिए एक बड़ी अदभुत बात घटती है; जैसे अमरीका में आज हुआ है। आज अमरीका में नीग्रो, काली चमड़ी वाले आदमी से सफेद चमड़ी वाले आदमी को जो भय है, वह भय सिर्फ आर्थिक नहीं है, वह भय सेक्सुअल और भी ज्यादा है। सफेद चमड़ी का आदमी इतना भद्र हो गया है कि

वह जानता है कि अब सेक्सुअली अगर नीग्रो और उसके सामने चुनाव हो, तो उसकी पत्नी नीग्रो को चुनेगी। जो घबड़ाहट पैदा हो गई है, वह घबड़ाहट यह है। क्योंकि वह नीग्रो ज्यादा पोटेंशियली सेक्सुअल मालूम पड़ता है। वह अभद्र है, जंगली है। जंगली पुरुष में एक तरह का आकर्षण होता है पुरुष का। वाइल्ड, तो एक रोमांटिक, एक रोमांचकारी बात हो जाती है। बिल्कुल भद्र पुरुष को... बिल्कुल भद्र पुरुष स्त्रैण हो जाता है।
अगर बुद्ध के आस-पास एक प्रेम की फिल्म-कथा बनानी हो, तो बड़ी मुश्किल पड़े, बड़ी मुश्किल पड़ जाए। प्रेम की कथा के लिए एक अभद्र नायक चाहिए। और जितना अभद्र हो, उतना रोचक, उतना पुरुष मालूम पड़ेगा। इसलिए अगर पश्चिम का डायरेक्टर, फिल्म का डायरेक्टर किसी अभिनेता को चुनता है, तो देखता है, छाती पर बाल हैं या नहीं! हाथों पर बाल हैं या नहीं! स्त्री को देखता है, तो बाल बिल्कुल नहीं होने चाहिए। थोड़ा जंगली दिखाई पड़े, रॉ, थोड़ा कच्चा दिखाई पड़े, तो एक सेक्सुअल अट्रैक्शन, एक कामुक आकर्षण है।
नीग्रो से भय पैदा हो गया है। वह भय आर्थिक कम, मानसिक ज्यादा है। जैसे ही कोई पुरुष भद्र होगा, जितना भद्र होगा, उतना स्त्रैण हो जाएगा, उतना कोमल हो जाएगा। और बड़े मजे की बात है, जितना कोमल हो जाएगा, उतना कम कामुक हो जाएगा। जितना पुरुष कोमल होता जाता है, उतना कम कामुक होता चला जाता है। और यह उसकी जो कम कामुकता है, उसे जीवन के परम रहस्य की तरफ ले जाने के लिए मार्ग बन जाती है।
लाओत्से कहता है, यूज जेंटली, भद्ररूपेण अगर उपयोग किया। एंड विदाउट
दि टच ऑफ पेन।
ध्यान रहे, यह थोड़ा समझने जैसा है। पुरुष जब भी स्त्री को छूता है, तो बहुत तरह के दर्द उसको देना चाहता है, बहुत तरह के पेन। असल में, पुरुष का जो प्रेम है, मेथडोलॉजिकली--विधि की दृष्टि से--स्त्री को सताने जैसा है। अगर वह ज्यादा प्रेम करेगा, तो ज्यादा जोर से हाथ दबाएगा। अगर चुंबन ज्यादा प्रेमपूर्ण होगा, तो वह काटना शुरू कर देगा। नाखून गड़ाएगा। पुराने कामशास्त्र के जो ग्रंथ हैं, उनमें नखदंश की बड़ी प्रशंसा है, कि वह पुरुष ही क्या जो अपनी स्त्री के शरीर में नख गड़ा-गड़ा कर लहू न निकाल दे! प्रेमी का लक्षण है, नखदंश। फिर प्रेमी अगर बहुत कुशल हो, जैसा कि मार्कस-डी सादे था। तो नाखून काम नहीं करते, तो वह साथ में छुरी-कांटे रखता था। जब किसी को प्रेम करे, तो थोड़ी देर नाखून; और फिर नाखून जब काम न करे, तो छुरी-कांटे! पुरुष का जो प्रेम का ढंग है, उसमें हिंसा है। इसलिए वह जितना ज्यादा प्रेम में पड़ेगा, उतना हिंसक होने लगेगा। इस बात की संभावना है कि अगर पुरुष अपने पूरे प्रेम में आ जाए, तो वह स्त्री की हत्या कर सकता है--प्रेम के कारण। ऐसी हत्याएं हुई हैं। और अदालतें बड़ी मुश्किल में पड़ गईं, क्योंकि उन हत्याओं में कोई भी दुश्मनी न थी। अति प्रेम कारण था। इतने प्रेम से भर गया वह, इतने प्रेम से भर गया कि दबाते-दबाते कब उसने अपनी प्रेयसी की गर्दन दबा दी, वह उसे पता नहीं रहा।
लाओत्से कहता है, यूज जेंटली। यह परम सत्य के संबंध में वह कहता है कि बहुत भद्रता से व्यवहार करना। एंड विदाउट दि टच ऑफ पेन। और तुम्हारे द्वारा अस्तित्व को जरा सी भी पीड़ा न पहुंचे। तो ही तुम, तो ही तुम स्त्रैण रहस्य को समझ पाओगे।
स्त्री अगर पुरुष को प्रेम भी करती है, अगर स्त्री पुरुष के कंधे पर
भी हाथ रखती है, तो वह ऐसे रखती है कि कंधा छू न जाए। और वही स्त्री का राज है। और जितना उसका हाथ कम छूता हुआ छूता है, उतना प्रेमपूर्ण हो जाता है। और जब स्त्री भी पुरुष के कंधे को दबाती है, तो वह खबर दे रही है कि उस स्त्रैण जगत से वह हट गई है और पुरुष की नकल कर रही है। वह सिर्फ अपने को छोड़ देती है, जस्ट फ्लोटिंग, पुरुष के प्रेम में छोड़ देती है। वह सिर्फ राजी होती है, कुछ करती नहीं। वह पुरुष को छूती भी नहीं इतने जोर से कि स्पर्श भी अभद्र न हो जाए!
लेकिन अभी पश्चिम में उपद्रव चला है। अभी पश्चिम की बुद्धिमान स्त्रियां--उन्हें अगर बुद्धिमान कहा जा सके तो--वे यह कह रही हैं कि स्त्रियों को ठीक पुरुष जैसा एग्रेसिव होना चाहिए। ठीक पुरुष जैसा प्रेम करता है, स्त्रियों को करना चाहिए। उतना ही आक्रामक।

निश्चित ही, उतना आक्रामक होकर वे पुरुष जैसी हो जाएंगी। लेकिन उस फेमिनिन मिस्ट्री को खो देंगी, लाओत्से जिसकी बात करता है। और लाओत्से ज्यादा बुद्धिमान है। और लाओत्से की बुद्धिमत्ता बहुत पराबुद्धिमत्ता है। वह जहां विजडम के भी पार एक विजडम शुरू होती है, जहां सब बुद्धिमानी चुक जाती है और प्रज्ञा का जन्म होता है, वहां की बात है।
पर यह पुरुष-स्त्री दोनों के लिए लागू है, अंत में इतना आपको कह दूं।
यह मत सोचना, स्त्रियां प्रसन्न होकर न जाएं, क्योंकि उनमें बहुत कम स्त्रियां हैं। स्त्री होना बड़ा कठिन है। स्त्री होना परम अनुभव है। पुरुष परेशान होकर न जाएं, क्योंकि उनमें और स्त्रियों में बहुत भेद नहीं है। दोनों को यात्रा करनी है। समझ लें इतना कि हम सत्य को जानने में उतने ही समर्थ हो जाएंगे, जितने अनाक्रामक, नॉन-एग्रेसिव, जितने प्रतीक्षारत, अवेटिंग, जितने निष्क्रिय, पैसिव, घाटी की आत्मा जैसे! शिखर की तरह अहंकार से भरे हुए पहाड़ की अस्मिता नहीं; घाटी की तरह विनम्र, घाटी की तरह गर्भ जैसे, मौन, चुप, प्रतीक्षा में रत!
तो उस पैसिविटी में, उस परम निष्क्रियता में अखंड और अविच्छिन्न शक्ति का वास है। वहीं से जन्मता है सब, और वहीं सब लीन हो जाता है।
आज इतना ही। फिर हम कल बात करें। लेकिन अभी जाएं न। अभी हम कीर्तन में चलेंगे, हो सकता है यह कीर्तन स्त्रैण रहस्य को समझने का द्वार बन जाए।
सम्मिलित हों।

ताओ उपनिषद, भाग एक
उन्नीसवां प्रवचन

स्त्रैण-चित्त के अन्य आयामः श्रद्धा, स्वीकार और समर्पण

प्रश्नः ओशो, कल आपने अस्तित्व के स्त्रैण रहस्य पर चर्चा की है। इस विषय में कुछ और विस्तार से प्रकाश डालने की कृपा करें।

अस्तित्व के सभी आयाम स्त्रैण और पुरुष में बांटे जा सकते हैं।
स्त्री और पुरुष का विभाजन केवल यौन-विभाजन, सेक्स डिवीजन नहीं है।
लाओत्से के हिसाब से स्त्री और पुरुष का विभाजन जीवन की डाइलेक्टिक्स है, जीवन का जो द्वंद्वात्मक विकास है, जो डाइलेक्टिकल एवोल्यूशन है, उसका अनिवार्य हिस्सा है।
शरीर के तल पर ही नहीं, स्त्री और पुरुष मन के तल पर भी भिन्न हैं। अस्तित्व जिन-जिन अभिव्यक्तियों में प्रकट होता है, वहां-वहां स्त्री और पुरुष का भेद होगा। लेकिन जो बात ध्यान रखने जैसी है लाओत्से को समझते समय, वह यह है कि पुरुष अस्तित्व का क्षणिक रूप है और स्त्री अस्तित्व का शाश्वत रूप है। जैसे सागर में लहर उठती है। लहर का उठना क्षणिक है। लहर नहीं थी, तब भी सागर था; और लहर नहीं होगी, तब भी सागर होगा। स्त्रैणता अस्तित्व का सागर है। पुरुष का अस्तित्व क्षणिक है।
इसलिए यहूदी परंपराओं ने जो मनुष्य के विकास की कथा लिखी है, वह लाओत्से के हिसाब से बिल्कुल ही गलत है। यहूदी धारणा है कि परमात्मा ने पुरुष को पहले बनाया और फिर पुरुष की ही हड्डी को निकाल कर स्त्री का निर्माण किया। लाओत्से इससे बिल्कुल ही उलटा सोचता है। लाओत्से मानता है, स्त्रैण अस्तित्व प्राथमिक है। पुरुष उससे जन्मता है और उसी में खो जाता है। और लाओत्से की बात में गहराई मालूम पड़ती है।
पहली बात, स्त्री बिना पुरुष के संभव है। उसकी बेचैनी पुरुष के लिए इतनी प्रगाढ़ नहीं है। इसलिए कोई स्त्री चाहे तो जीवन भर कुंवारी रह सकती है; कुंवारापन भारी नहीं पड़ेगा। लेकिन पुरुष को कुंवारा रखना करीब-करीब असंभव जैसा है। और पुरुष को कुंवारा रखना बहुत आयोजना से हो सकता है। सरल बात नहीं है, सुगम बात नहीं है।
इधर मैं देख कर हैरान हुआ हूं। साधु मुझे मिलते हैं, तो साधुओं की आंतरिक परेशानी कामवासना है; लेकिन साध्वियां मुझे मिलती हैं, तो उनकी आंतरिक परेशानी कामवासना नहीं है। सैकड़ों साध्वियों से मिल कर मुझे हैरानी का ख्याल हुआ कि जो स्त्रियां साधना के जगत में प्रवेश करती हैं, उनकी परेशानी कामवासना नहीं है; लेकिन जो पुरुष साधना के जगत में प्रवेश करते हैं, उनकी परेशानी कामवासना है। असल में, पुरुष की कामवासना इतनी सक्रिय, इतनी क्षणिक है कि प्रतिपल उसे पीड़ित करती है और परेशान करती है। स्त्री की कामवासना इतनी क्षणिक नहीं है, बहुत थिर और बहुत स्थायी है।
यह जान कर आपको आश्चर्य होगा कि सारे पशुओं की कामवासना पीरियाडिकल है, वर्ष के किन्हीं महीनों में पशुओं को कामवासना परेशान करती है; बाकी समय में पशु कामवासना को भूल जाते हैं, जैसे वह थी ही नहीं। सिर्फ मनुष्य अकेला प्राणी है, जिसकी कामवासना चौबीस घंटे और वर्ष भर मौजूद होती है। उसका कोई पीरियड नहीं होता। लेकिन अगर मनुष्य में भी हम स्त्री और पुरुष का ख्याल करें, तो बहुत हैरानी होती है। स्त्री की वासना, मनुष्य में भी, पीरियाडिकल होती है। महीने के सभी दिनों में उसमें कामवासना नहीं होती। लेकिन पुरुष को सभी दिनों में होती है। अगर स्त्री पर हम छोड़ दें, तो स्त्री फिर भी पीरियाडिकल है। एक क्षण है, तब उसके मन में कामवासना होती है; बाकी उसके मन में कामवासना नहीं होती। और उस क्षण में भी, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, अगर पुरुष स्त्री की कामवासना को न जगाए, तो स्त्री बिना कामवासना के जी सकती है। उसका अस्तित्व ज्यादा थिर है। पुरुष का अस्तित्व ज्यादा बेचैन है।
और इसलिए पुरुष, किसी गहरे अर्थ में, स्त्री के आस-पास ही घूमता रहता है। चाहे वह कितने ही प्रयास करे यह दिखलाने के कि स्त्री उसके आस-पास घूम

रही है, पुरुष ही स्त्री के आस-पास घूमता रहता है। वह चाहे बचपन में अपनी मां के पास भटक रहा हो और चाहे युवावस्था में अपनी पत्नी के आस-पास भटक रहा हो; उसका भटकाव स्त्री के आस-पास है। स्त्री के बिना पुरुष एकदम अधूरा है। स्त्री में एक तरह की पूर्णता है। यह मैं उदाहरण के लिए कह रहा हूं, ताकि स्त्रैण अस्तित्व को समझा जा सके। स्त्रैण अस्तित्व बहुत पूर्ण है, सुडौल है। वर्तुल पूरा है।
लाओत्से कहता है, जितनी ज्यादा पूर्णता हो, उतनी स्थायी होती है। और जितनी ज्यादा अपूर्णता हो, उतनी अस्थायी होती है। इसलिए वह कहता है कि हम जीवन के परम रहस्य को स्त्रैण रहस्य का नाम देते हैं।
मन के संबंध में भी, जैसे शरीर के संबंध में स्त्री और पुरुष के बुनियादी भेद हैं, वैसे ही मन के संबंध में भी हैं। पुरुष के चिंतन का ढंग तर्क है। इसे ठीक से समझ लेना जरूरी होगा, क्योंकि लाओत्से के सारे विचार का आधार इस पर है। पुरुष के सोचने का ढंग तर्क है, उसका मेथड तर्क है। स्त्री के सोचने का ढंग तर्क नहीं है। उसके सोचने का ढंग बहुत इल्लॉजिकल है, बहुत अतार्किक है। उसे हम अंतर्दृष्टि कहें, इंट्यूशन कहें, कोई और नाम दें, लेकिन स्त्री के सोचने के ढंग को तर्क नहीं कहा जा सकता। तर्क की अपनी व्यवस्था है। इसलिए जहां भी पुरुष सोचेगा, वहां गणित, तर्क और नियम होगा। और जहां भी स्त्री सोचेगी, वहां न गणित होगा, न तर्क होगा; सीधे निष्कर्ष होंगे, कनक्लूजंस होंगे। इसलिए स्त्री और पुरुष के बीच बातचीत नहीं हो पाती।
और सभी पुरुषों को यह अनुभव होता है कि स्त्री से बातचीत करनी मुश्किल है, क्योंकि वह इल्लॉजिकल है। जब वह तर्क देता है, तब वह सीधे निष्कर्ष देती है। अभी वह तर्क भी नहीं दे पाया होता है और वह कनक्लूजंस पर पहुंच जाती है। स्त्री-पुरुष के बीच कम्युनिकेशन नहीं हो पाता, संवाद नहीं हो पाता। हर पति को यह ख्याल है कि स्त्री से बात करनी बेकार है; क्योंकि आखिरी निर्णय उसके ही हाथ में हो जाने को है। और वह कितने ही तर्क दे, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता; क्योंकि स्त्री तर्क सुनती ही नहीं। इसलिए कई बार पुरुष को बहुत परेशानी भी होती है कि वह बात ठीक कह रहा है, तर्कयुक्त कह रहा है, फिर भी स्त्री उसकी सुनने को राजी नहीं है। उसे क्रोध भी आता है। लेकिन स्त्री के सोचने का ढंग ही तर्क नहीं है। इसमें स्त्री का कोई कसूर नहीं है।
दो तरह से सोची जाती है; जगत में कोई भी बात दो ढंग से सोची जा सकती है।
या तो हम एक-एक कदम विधिपूर्वक सोचें और फिर विधि के माध्यम से निष्कर्ष को निकालें। और या हम एकदम से छलांग लें और निष्कर्ष पर पहुंच जाएं; कोई बीच की सीढ़ियां न हों। अंतर्दृष्टि, इंट्यूशन का ढंग सीधी छलांग लेने का है।
हम सब में भी किन्हीं क्षणों में अंतर्दृष्टि होती है। एक आदमी आपको दिखाई पड़ता है, और अचानक आपके मन में निष्कर्ष आ जाता है कि इस आदमी से बच कर रहना ही ठीक है। आपके पास कोई तर्क नहीं होता। आपके पास कोई कारण नहीं होता। अभी इस आदमी से आपका परिचय भी नहीं हुआ है। लेकिन इस आदमी को देखते ही आपकी चेतना एक निष्कर्ष लेती है। यह निष्कर्ष बिल्कुल सडन फ्लैश लाइट, जैसे बिजली कौंध गई हो, ऐसा है।
और अगर अब ठीक से ख्याल करेंगे, तो अक्सर सौ में निन्यानबे मौके पर यह
जो बिना विचारा, सीधा निष्कर्ष आपमें कौंध जाता है, सही होता है। जो लोग अंतर्दृष्टि पर काम करते हैं, वे कहते हैं कि अगर अंतर्दृष्टि शुद्ध हो, तो सदा ही सही होती है। तर्क गलत भी हो सकता है; अंतर्दृष्टि गलत नहीं होती।
इसलिए पुरुष की और परेशानी होती है। क्योंकि वह तर्क भी देता है, ठीक बात भी कहता है, लेकिन फिर भी वह अचानक पाता है कि स्त्री बिना तर्क के जो कह रही है, वह भी ठीक है। इससे क्रोध और भारी हो जाता है। जिन लोगों ने भी स्त्री के संबंध में चिंतन किया है और लिखा है, उन सब को एक भारी क्रोध है। और वह क्रोध यह है कि वह न तर्क देती, न वह व्यवस्था से विचार करना जानती; फिर भी वह जो निष्कर्ष लेती है, वे अक्सर सही होते हैं।

उसके निष्कर्ष इंट्यूटिव हैं, उसके पूरे अस्तित्व से निकलते हैं।
पुरुष के जो निष्कर्ष हैं, वे उसकी बुद्धि से निकलते हैं, पूरे अस्तित्व से नहीं निकलते। पुरुष सोच कर बोलता है। जो सोच कर बोला जाता है, वह गलत भी हो सकता है। इंट्यूशन को थोड़ा समझ लेंगे, तो ख्याल में आ जाएगा।
जापान में एक साधारण सी चिड़िया होती है, घरों के बाहर, आम गांव में। भूकंप आता है, तो चौबीस घंटे पहले वह चिड़िया गांव को खाली कर देती है। अभी तक वैज्ञानिकों ने भूकंप को पकड़ने के लिए जो यंत्र तैयार किए हैं, वे भी छह मिनट से पहले भूकंप की खबर नहीं देते। और छह मिनट पहले मिली हुई खबर का कोई उपयोग नहीं हो सकता। लेकिन जापान की वह साधारण सी चिड़िया चौबीस घंटे पहले किसी न किसी तरह जान लेती है कि भूकंप आ रहा है। जापान में हजारों साल से उस चिड़िया पर ही अंदाज रखा जाता है। जब वह चिड़िया गांव में नहीं दिखाई पड़ती--और बहुत कामन है, बहुत ज्यादा संख्या में है--जैसे ही गांव में चिड़िया दिखाई नहीं पड़ती, गांव को लोग खाली करना शुरू कर देते हैं। क्योंकि चौबीस घंटे के भीतर भूकंप अनिवार्य है।
लेकिन उस चिड़िया को भूकंप का पता कैसे चलता है? क्योंकि उसके पास कोई तर्क की व्यवस्था नहीं हो सकती। उसके पास कोई गणित नहीं है। और कोई अरिस्टोटल और कोई प्लेटो उसे पढ़ाने के लिए नहीं हैं। कोई विश्वविद्यालय नहीं है, जहां वह तर्कशास्त्र को पढ़ पाए। लेकिन उसे कुछ प्रतीति तो होती है। उस प्रतीति के आधार पर वह व्यवहार करती है। सारे जगत में पशु इंट्यूटिव हैं। पशु बहुत से काम करते हैं, जो बिल्कुल ही इंट्यूशन से चलते हैं, अंतर्दृष्टि से चलते हैं, जिसमें कोई तर्क नहीं होता। लेकिन सारा पशु-जगत अंतर्दृष्टि से काम करता है और ठीक काम करता है। यह अंतर्दृष्टि क्या है? अस्तित्व से हमारा जुड़ा होना। अगर वह चिड़िया अपने आस-पास के सारे वातावरण से एक है, तो उस वातावरण में आते हुए सूक्ष्मतम कंपन भी उसको एहसास होंगे। वह प्रतीति बौद्धिक नहीं है। उसका पूरा अस्तित्व ही उन कंपनों को अनुभव करता है।
जब पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करता है, तो उसका प्रेम भी बौद्धिक होता है। वह उसे भी सोचता-विचारता है। उसके प्रेम में भी गणित होता है। स्त्री जब किसी को प्रेम करती है, तो वह प्रेम बिल्कुल अंधा होता है। उसमें गणित बिल्कुल नहीं होता। इसलिए स्त्री और पुरुष के प्रेम में फर्क पाया जाता है। पुरुष का प्रेम आज होगा, कल खो सकता है। स्त्री का प्रेम खोना बहुत मुश्किल है।
और इसलिए स्त्री-पुरुष के बीच कभी तालमेल नहीं बैठ पाता। क्योंकि आज लगता है प्रेम करने जैसा, कल बुद्धि को लग सकता है न करने जैसा। और आज जो कारण थे, कल नहीं रह जाएंगे। कारण रोज बदल जाएंगे। आज जो स्त्री सुंदर मालूम पड़ती थी, इसलिए प्रेम मालूम पड़ता था; कल निरंतर परिचय के बाद वह सुंदर नहीं मालूम पड़ेगी। क्योंकि सभी तरह का परिचय सौंदर्य को कम कर देता है। अपरिचित में एक आकर्षण है। लेकिन स्त्री कल भी इतना ही प्रेम करेगी, क्योंकि उसके प्रेम में कोई कारण न था। वह उसके पूरे अस्तित्व की पुकार थी। इसलिए स्त्री बहुत फिक्र नहीं करती कि पुरुष सुंदर है या नहीं। इसलिए पुरुष सौंदर्य की चिंता नहीं करता।
यह जान कर आप हैरान होंगे। हम सबको ख्याल में आता है कि स्त्रियां इतना सौंदर्य की क्यों चिंता करती है? इतने वस्त्रों की, इतनी फैशन की, इतने गहने, इतने जवाहरातों की? तो शायद आप सोचते होंगे, यह कोई स्त्री- चित्त में कोई बात है। बात उलटी है। उलटी बात है; उलटी ऐसी है कि स्त्री- चित्त यह सारा इंतजाम इसीलिए करता है, क्योंकि पुरुष इससे ही प्रभावित होता है। पुरुष का कोई और अस्तित्वगत आकर्षण नहीं है। इसलिए स्त्री को पूरे वक्त इंतजाम करना पड़ता है। और पुरुष एक से ही कपड़े जिंदगी भर पहनता रहता है। उसे चिंता नहीं आती, क्योंकि स्त्री कपड़ों के कारण प्रेम नहीं करती। और पुरुष हीरे-जवाहरात न पहने, तो कोई अंतर नहीं पड़ता है। स्त्री हीरे-जवाहरात देखती ही नहीं। पुरुष सुंदर है या नहीं, इसकी भी स्त्री फिक्र नहीं करती। उसका प्रेम है, तो सब है। और उसका प्रेम नहीं है, तो कुछ भी नहीं है। फिर बाकी चीजें बिल्कुल मूल्य की नहीं हैं।

लेकिन पुरुष के लिए बाकी चीजें बहुत मूल्य की हैं। सच तो यह है कि जिस स्त्री को पुरुष प्रेम करता है, अगर उसका सब आवरण और सब सजावट अलग कर ली जाए, तो नब्बे प्रतिशत स्त्री तो विदा हो जाएगी। और इसलिए अपनी पत्नी को प्रेम करना रोज-रोज कठिन होता चला जाता है, क्योंकि अपनी पत्नी बिना सजावट के दिखाई पड़ने लगती है। नब्बे प्रतिशत तो मेकअप है, वह विदा हो जाता है, जैसे ही हम परिचित होना शुरू होते हैं।
स्त्री ने कोई मांग नहीं की है पुरुष से। उसका पुरुष होना पर्याप्त है। और स्त्री का प्रेम है, तो यह काफी कारण है। उसका प्रेम भी इंट्यूटिव है; इंटलेक्चुअल नहीं है, बौद्धिक नहीं है।
और दूसरी बात, उसके प्रेम के इंट्यूटिव होने के साथ-साथ उसका प्रेम पूरा है। पूरे का अर्थ है, उसके पूरे शरीर से उसका प्रेम जन्मता है। पुरुष के पूरे शरीर से प्रेम नहीं जन्मता; उसका प्रेम बहुत कुछ जेनिटल है। इसलिए जैसे ही पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करता है, प्रेम बहुत जल्दी कामवासना की मांग शुरू कर देता है। स्त्री वर्षों प्रेम कर सकती है बिना कामवासना की मांग किए। सच तो यह है कि जब स्त्री बहुत गहरा प्रेम करती है, तो उस बीच पुरुष की कामवासना की मांग उसको धक्का ही देती है, शॉक ही पहुंचाती है। उसे एकदम ख्याल भी नहीं आता कि इतने गहरे प्रेम में और कामवासना की मांग की जा सकती है!
मैं सैकड़ों स्त्रियों को, उनके निकट, उनकी आंतरिक परेशानियों से परिचित हूं। अब तक मैंने एक स्त्री ऐसी नहीं पाई, जिसकी परेशानी यह न हो कि पुरुष उससे निरंतर कामवासना की मांग किए चले जाते हैं। और हर स्त्री परेशान हो जाती है। क्योंकि जहां उसे प्रेम का आकर्षण होता है, वहां पुरुष को सिर्फ काम का आकर्षण होता है। और पुरुष की जैसे ही काम की तृप्ति हुई, पुरुष स्त्री को भूल जाता है। और स्त्री को निरंतर यह अनुभव होता है कि उसका उपयोग किया गया है--शी हैज बीन यूज्ड। प्रेम नहीं किया गया, उसका उपयोग किया गया है। पुरुष को कुछ उत्तेजना अपनी फेंक देनी है। उसके लिए स्त्री का एक बर्तन की तरह उपयोग किया गया है। और उपयोग के बाद ही स्त्री व्यर्थ मालूम होती है। लेकिन स्त्री का प्रेम गहन है, वह पूरे शरीर से है, रोएं-रोएं से है। वह जेनिटल नहीं है, वह टोटल है।
कोई भी चीज पूर्ण तभी होती है, जब वह बौद्धिक न हो। क्योंकि बुद्धि सिर्फ एक खंड है मनुष्य के व्यक्तित्व का, पूरा नहीं है वह। इसलिए स्त्री असल में अपने बेटे को जिस भांति प्रेम कर पाती है, उस भांति प्रेम का अनुभव उसे पति के साथ कभी नहीं हो पाता। पुराने ऋषियों ने तो एक बहुत हैरानी की बात कही है। उपनिषद के ऋषियों ने आशीर्वाद दिया है नवविवाहित वधुओं को और कहा है कि तुम अपने पति को इतना प्रेम करना, इतना प्रेम करना, कि अंत में दस तुम्हारे पुत्र हों और ग्यारहवां पुत्र तुम्हारा पति हो जाए।
उपनिषद के ऋषि यह कहते हैं कि स्त्री का पूरा प्रेम उसी दिन होता है,
जब वह अपने पति को भी अपने पुत्र की तरह अनुभव करने लगती है। असल में, स्त्री अपने पुत्र को पूरा प्रेम कर पाती है; उसमें कोई फिर बौद्धिकता नहीं होती। और अपने बेटे के पूरे शरीर को प्रेम कर पाती है; उसमें कोई चुनाव नहीं होता। और अपने बेटे से उसे कामवासना का कोई रूप नहीं दिखाई पड़ता, इसलिए प्रेम उसका परम शुद्ध हो पाता है। जब तक पति भी बेटे की तरह न दिखाई पड़ने लगे, तब तक स्त्री पूर्ण तृप्त नहीं हो पाती है।
लेकिन पुरुष की स्थिति उलटी है। अगर पत्नी उसे मां की तरह दिखाई पड़ने लगे, तो वह दूसरी पत्नी की तलाश पर निकल जाएगा। पुरुष मां नहीं चाहता, पत्नी चाहता है। और भी ठीक से समझें, तो पत्नी भी नहीं चाहता, प्रेयसी चाहता है। क्योंकि पत्नी भी स्थायी हो जाती है। प्रेयसी में एक अस्थायित्व है और बदलने की सुविधा है। पत्नी में वह सुविधा भी खो जाती है। स्त्री का चित्त समग्र है, इंटिग्रेटेड है। स्त्रियों का नहीं कह रहा हूं। जब भी मैं स्त्री शब्द का उपयोग कर रहा हूं, तो स्त्रैण अस्तित्व की बात कर रहा हूं, लाओत्से जिसे स्त्रैण रहस्य कह रहा है। स्त्रियां ऐसी हैं, यह मैं नहीं कह रहा हूं। स्त्रियां ऐसी हों, तो ही स्त्रियां हो पाती हैं। पुरुष भी ऐसा हो जाए, तो जीवन की परम गहराइयों से उसके संबंध स्थापित हो जाते हैं।

अब तक इस जगत में जितने परम ज्ञान की बातों का जन्म हुआ है, वे कोई भी बातें तर्क से पैदा नहीं हुईं; वे सभी बातें अंतर्दृष्टि से पैदा हुई हैं। चाहे आर्किमिडीज अपने टब में बैठ कर स्नान कर रहा हो; और अचानक, बिना किसी कारण के, उसको ख्याल आ गया उस बात का, जो वह खोज रहा था! वह इतना आंदोलित हो उठा खुशी से कि अपने टब से नग्न ही दौड़ता हुआ सड़क पर आ गया और चिल्लाने लगाः यूरेका! यूरेका! मिल गया!
लोगों ने उसे पकड़ा और कहा कि पागल हो गए हो! वह भागा राजमहल की तरफ नग्न ही, क्योंकि राजा ने उसे एक सवाल दिया था हल करने को। वह हल नहीं कर पा रहा था। उसने सारी गणित की कोशिश कर ली थी, वह हल नहीं होता था। लेकिन टब में बैठा हुआ था, विश्राम कर रहा था, तब सोच भी नहीं रहा था; अचानक इंट्यूटिव, जैसे बिजली कौंध गई, सवाल हल हो गया। आर्किमिडीज ने वह सवाल हल नहीं किया। वह सवाल जैसे भीतर से हल होकर उसके सामने आ गया। उसमें कोई तर्क की विधि उपयोग में नहीं लाई गई थी, सोच-विचार नहीं था; सीधे अस्तित्व में ही साक्षात हुआ था।
अब तक विज्ञान की विगत दो हजार वर्षों में जो भी खोज-बीन है, बड़े से बड़े वैज्ञानिक का कहना यही है कि जब मैं शिथिल होता हूं, रिलैक्स्ड होता हूं, तब न मालूम कैसे निष्कर्ष आ जाते हैं। कभी-कभी आपको भी अनुभव होता है। कोई नाम खो गया, स्मरण नहीं आता है। बहुत कोशिश करते हैं, नहीं आता है। फिर छोड़ देते हैं, कुर्सी पर लेट जाते हैं, सिगरेट पीने लगते हैं, अखबार पढ़ने लगते हैं, या रेडियो खोल लेते हैं, या बगीचे में निकल कर जमीन खोदने लगते हैं। और अचानक जैसे भीतर से वह नाम, जो इतनी परेशानी से खोजते थे और याद नहीं आता था, भीतर से आ जाता है। यह बुद्धि का काम नहीं है। बुद्धि ने कोशिश कर ली थी; यह नहीं आ सका था।
अमरीका में एक आदमी था, कायसी। वह बेहोश हो जाता था। और किसी भी मरीज
को उसके पास बिठा दिया जाए, तो वह बेहोशी में उसकी बीमारी का निदान कर देता था। न तो वह चिकित्सक था, न उसने कोई मेडिकल अध्ययन किया था। और होश में वह किसी तरह की बात नहीं कर सकता था दवा या इलाज के बाबत। लेकिन उसने अपने जीवन में चालीस हजार मरीजों का निदान किया, डायग्नोसिस की। बस वह आंख बंद करके ध्यानस्थ हो जाता था। मरीज को बिठा दें, फिर वह बोलना शुरू कर देता था कि इसे क्या बीमारी है। और न केवल यह, वह बोलना शुरू करता था, कौन सी दवा से यह आदमी ठीक होगा। उन दवाओं का उसे होश में पता भी नहीं था। और उसका निदान सदा ही सही निकला। होश में आने पर वह खुद भी कहता था कि मैं नहीं जानता कि इस दवा से फायदा होगा कि नहीं; मैंने इस दवा का नाम कभी सुना नहीं।
कई बार तो ऐसा हुआ कि... एक बार तो उसने एक दवा का नाम एक मरीज के लिए कहा। वह पूरे अमरीका में खोजी गई, वह दवा नहीं मिली। एक वर्ष बाद वह दवा मिल सकी, क्योंकि तब दवा कारखाने में बनाई जा रही थी, अभी बाजार में आई ही नहीं थी। और उसका नाम भी अभी तक तय नहीं हुआ था। और कायसी ने उसका नाम पहले ले दिया था--साल भर पहले। साल भर बाद वह दवा मिली और तभी वह मरीज ठीक हो सका।
एक दवा के लिए सारी दुनिया में खोज की गई, वह कहीं भी नहीं मिल सकी। तब सारे दुनिया के अखबारों में विज्ञापन दिए गए कि इस नाम की दवा दुनिया के किसी भी कोने में उपलब्ध हो, तो एक मरीज बिल्कुल मरणासन्न है और कायसी कहता है, इसी दवा से ठीक हो सकेगा। स्वीडन से एक आदमी ने पत्र लिखा कि ऐसी दवा मौजूद नहीं है, लेकिन मेरे पिता ने छब्बीस साल पहले इस तरह की दवा पेटेंट कराई थी। यद्यपि कभी बनाई नहीं और बाजार में वह कभी गई नहीं; लेकिन फार्मूला मेरे पास है। वह फार्मूला मैं भेज सकता हूं, आप चाहें तो बना लें। वह दवा बनाई गई और वह मरीज ठीक हुआ।
कायसी को जो प्रतीति होती थी, वह इंट्यूटिव है; यह स्त्रैण-चित्त का लक्षण है। सोच-विचार से नहीं, निर्विचार में निष्कर्ष का प्रकट हो जाना! समस्त ध्यान की प्रक्रियाएं इसी दिशा में ले जाती हैं।
लाओत्से कहता है, सोचोगे तो भटक जाओगे। मत सोचो, और निष्कर्ष आ जाएगा। सोचना छोड़ दो और प्रतीक्षा करो, और निष्कर्ष आ जाएगा। तुम सिर्फ प्रतीक्षा करो; प्रश्न तुम्हारे भीतर हो और तुम प्रतीक्षा करो; उत्तर मिल जाएगा। सोचो मत। क्योंकि जब तुम सोचोगे, तुम क्या पा सकोगे? तुम्हारी

सामर्थ्य कितनी है? जैसे कोई एक लहर सोचने लगे जगत की समस्याओं को, क्या सोच पाएगी? अच्छा है कि सागर पर छोड़ दे और प्रतीक्षा करे कि सागर ही उत्तर दे दे।

स्त्रैण-चित्त का लाओत्से से प्रयोजन है, छोड़ दो तुम और अस्तित्व को ही उत्तर देने दो। तुम अपने को बीच में मत लाओ। क्योंकि तुम जो भी लाओगे, उसके गलत होने की संभावना है। अस्तित्व जो देगा, वह गलत नहीं होगा।

लुकमान के संबंध में कहा जाता है कि वह--जैसा मैंने कहा कायसी के बाबत कि वह मरीज के पास बेहोश हो जाता था और दवा बता देता था--लुकमान पौधों के पास जाकर ध्यान लगा कर बैठ जाता था और कह देता था पौधों से कि तुम किस काम में, किस बीमारी के काम में आ सकते हो, वह तुम मुझे बता दो! लुकमान ने कोई एक लाख पौधों के संबंध में वक्तव्य दिया है। कोई बड़ी प्रयोगशाला नहीं थी, जिसमें लुकमान जांच-पड़ताल कर सके।

आयुर्वेद के ग्रंथों को भी जब निर्माण किए गए, तब भी कोई बड़ी प्रयोगशालाएं नहीं थीं कि जिनके माध्यम से इतने बड़े निर्णय लिए जा सकें। लेकिन निर्णय आज भी सही हैं। वे निर्णय इंट्यूटिव हैं। वे निर्णय किसी व्यक्ति के ध्यान में लिए गए निर्णय हैं। सर्पगंधा आयुर्वेद की एक पुरानी जड़ी है। कोई पांच हजार वर्षों से आयुर्वेद का साधक सर्पगंधा का उपयोग करता रहा है नींद लाने के लिए। अभी पश्चिम को प्रयोगशालाओं में सिद्ध हुआ कि सर्पगंधा से बेहतर नींद लाने के लिए कोई ट्रैंक्वेलाइजर नहीं हो सकता है। अब जो पश्चिम में सर्पेन्टिना नाम से चीज उपलब्ध है, वह सर्पगंधा का ही अर्क है। लेकिन अब तो हमारे पास बहुत सूक्ष्म साधन हैं, जिनसे हम जान सकें। लेकिन जिस दिन सर्पगंधा खोजी गई थी, इतने सूक्ष्म साधन नहीं मालूम पड़ते हैं कि थे। उसकी खोज का रास्ता कुछ और रहा होगा।

वह खोज का रास्ता स्त्रैण-चित्त का ढंग था। और अब जो हम प्रयोगशाला में खोज कर रहे हैं, वह पुरुष-चित्त का ढंग है। लाओत्से ने कहा है कि स्त्रैण-चित्त का अलग विज्ञान होता है और पुरुष-चित्त का अलग विज्ञान होता है। हमारा जो विज्ञान है, आज पश्चिम में जो विज्ञान हमने विकसित किया है, वह पुरुष-चित्त की खोज है। तर्क, काटना-पीटना, डिसेक्शन, तोड़ना-फोड़ना, विश्लेषण, उसकी विधि है। तोड़ो चीजों को, काटो चीजों को, तर्क करो, विचार करो, गणित से हिसाब लगाओ और निष्कर्ष लो!

लेकिन वे निष्कर्ष रोज बदलने पड़ते हैं। विज्ञान का कोई भी निष्कर्ष छह महीने भी टिक जाए तो सौभाग्य की बात है। क्योंकि छह महीने में काटने-पीटने के साधन और बढ़ गए होते हैं। तर्क की नई व्यवस्थाएं आ गई होती हैं। गणित में और सूक्ष्म उतरने के उपाय मिल गए होते हैं। पुराना हिसाब गलत हो जाता है। आज पश्चिम में वैज्ञानिक कहते हैं कि कोई बड़ी किताब लिखनी कठिन हो गई है। क्योंकि बड़ी किताब जब तक लिखो, तब तक जो तुम उसमें लिख रहे हो, वह गलत हो चुका होता है। तो विज्ञान पर छोटी-छोटी किताबें लिखी जाती हैं! किताब ही बंद हुई जा रही हैं, विज्ञान पर पीरियाडिकल्स होते हैं, मैगजीन्स होती हैं। उनमें अपना वक्तव्य दे दो; तुम्हारा वक्तव्य छप जाए, इसके पहले कि गलत हो जाए! क्योंकि छह महीने प्रतीक्षा, साल भर प्रतीक्षा संभव नहीं है।

लेकिन इंट्यूशन से, अंतर-अनुभूति से जो निष्कर्ष पाए गए हैं, उन्हें हजारों साल में भी बदलने की कोई जरूरत नहीं पड़ी। उपनिषद के सत्य आज भी वैसे ही सत्य हैं। और ऐसी कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती कि कभी भी भविष्य में ऐसा कोई समय होगा, जिस दिन उपनिषद के सत्यों को बदलने की जरूरत पड़ेगी। क्या बात है आखिर? उपनिषद के सत्य में ऐसी क्या बात है कि उसको बदलने की कोई जरूरत नहीं है?

लाओत्से जो कह रहा है, यह कितने ही दूरी पर कल्पना की जाए, तो भी सही रहेगा। इसमें भेद पड़ने वाला नहीं है। तो लाओत्से के पाने की पद्धति जरूर कुछ और रही होगी। क्योंकि हम तो जो भी पाते हैं, वह दूसरे दिन गलत हो जाता है। पुरुष के द्वारा जो भी खोज की जाती है, वह चूंकि तर्क-निर्भर है; वह साक्षात प्रतीति नहीं है, केवल मन का अनुमान है; इसलिए अनुमान तो कल बदलने पड़ेंगे, क्योंकि अनुमान सत्य नहीं होते। इसलिए विज्ञान कहता है कि हम जो

भी कहते हैं, वह एप्रॉक्सीमेटली ट्रू, सत्य के करीब-करीब है; सत्य बिल्कुल नहीं है।
अगर आप उपनिषद पढ़ें, तो बहुत और तरह की दुनिया है वहां। लाओत्से को पढ़ें, लाओत्से कोई तर्क नहीं देता। वह कहता है, दि वैली स्पिरिट डाइज नॉट, एवर दि सेम। दिस इ.ज ए मियर स्टेटमेंट, विदाउट एनी रीजनिंग। वह यह नहीं कह रहा है कि क्यों घाटी की आत्मा नहीं मरती है! वह कहता है, घाटी की आत्मा नहीं मरती है, वह हमेशा वैसी ही रहती है। यह तो सीधा वक्तव्य है। इसमें कोई तर्क नहीं है। उसको बताना चाहिए, क्यों नहीं मरती? क्या कारण है? पक्ष में दलीलें दो, गवाह उपस्थित करो। लेकिन लाओत्से कहता है, गवाह केवल वे ही उपस्थित करते हैं, जिन्हें अनुभूति नहीं होती। गवाह की जरूरत नहीं है। कहते हैं, मुल्ला नसरुद्दीन पर एक मुकदमा चला है। और अदालत में नसरुद्दीन ने कहा कि मेरी पत्नी ने कैंची उठा कर मेरे चेहरे पर हमला कर दिया और मेरे चेहरे को ऐसा काट डाला, जैसे कोई कपड़े के टुकड़े-टुकड़े कर दे। मजिस्ट्रेट बहुत हैरान हुआ; क्योंकि चेहरे पर कोई निशान ही नहीं मालूम पड़ते! मजिस्ट्रेट ने पूछा, यह कब की बात है? नसरुद्दीन ने कहा, यह कल ही रात की बात है। मजिस्ट्रेट और अचंभे में पड़ा। उसने कहा, नसरुद्दीन, कुछ सोच कर कहो। तुम्हारे चेहरे पर जरा सा भी निशान नहीं है चोट का और तुम कहते हो, कैंची से इसने टुकड़े-टुकड़े कर दिए तुम्हारे चेहरे की चमड़ी के! नसरुद्दीन ने कहा कि चेहरे पर निशान की कोई जरूरत नहीं है। मैं बीस गवाह मौजूद किए हुआ हूं। चेहरे पर निशान की कोई जरूरत ही नहीं है। आई हैव गॉट दि विटनेसेस, ये बीस आदमी खड़े हैं। ये कहते हैं कि जो मैं कहता हूं, ऐसा हुआ है।
असल में, विटनेस को हम खोजने तभी जाते हैं, जब स्वयं पर भरोसा नहीं होता। जब स्वयं पर भरोसा होता है, तो तर्क को भी विटनेस की तरह खड़े करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।
उपनिषद के ऋषि कहते हैं, ब्रह्म है। वे यह नहीं कहते, क्यों है। वे यह नहीं कहते कि जो कहते हैं नहीं है, वे गलत कहते हैं। उसके लिए भी कोई दलील नहीं देते। सीधे वक्तव्य हैं कि ब्रह्म है। अगर उपनिषद के ऋषि से आप पूछें कि दलील क्या है? तो वे कहते हैं, कोई दलील नहीं है, हम जानते हैं! और अगर तुम जानना चाहो, तो हम रास्ता बता सकते हैं; दलील हम नहीं बताते। लाओत्से कहता है कि हम रास्ता बता सकते हैं कि वह घाटी की आत्मा अमर है, इसका क्या अर्थ है! वह स्त्रैण रहस्य क्या है, हम तुम्हें उसमें उतार सकते हैं। लेकिन हम कोई दलील नहीं देते; हम कोई तर्क नहीं देते। क्योंकि हम जानते ही हैं।
जिन लोगों ने भी तर्क दिए हैं कि ईश्वर है, उन लोगों को ईश्वर के होने
का कोई पता नहीं है। इसलिए जिन लोगों ने ईश्वर के होने के तर्क दिए हैं, उन्होंने केवल नास्तिकों के हाथ मजबूत किए हैं। क्योंकि तर्कों का खंडन किया जा सकता है। ऐसा कोई भी तर्क नहीं है, जिसका खंडन न किया जा सके। सभी तर्कों का खंडन किया जा सकता है।
नसरुद्दीन अपने बेटे को कह रहा था कि तू यूनिवर्सिटी जा रहा है, तो तर्कशास्त्र जरूर पढ़ लेना। पर उसके बेटे ने कहा कि जरूरत क्या है तर्कशास्त्र को पढ़ने की? तर्कशास्त्र सिखा क्या सकता है? नसरुद्दीन ने कहा, तर्कशास्त्र में बड़ी खूबियां हैं; वह तुझे आत्यंतिक रूप से बेईमान बना सकता है। और अगर बेईमान होना हो, तो तर्क जानना बिल्कुल जरूरी है। ईमानदारी बिना तर्क के हो सकती है; बेईमानी बिना तर्क के नहीं हो सकती है। उसके बेटे ने कहा, मुझे कुछ समझाएं; क्योंकि मुझे तर्क का कुछ भी पता नहीं। तो नसरुद्दीन ने कहा कि समझ, एक मकान में किचेन की चिमनी से दो आदमी बाहर निकलते हैं। एक आदमी के कपड़े बिल्कुल शुभ्र, सफेद हैं। उन पर जरा भी दाग नहीं लगा है। और दूसरा आदमी बिल्कुल गंदा हो गया है, काला पड़ गया है। सारे कपड़े और चेहरे पर चिमनी की कालिख लग गई है। मैं तुझसे पूछता हूं कि उन दोनों में से कौन स्नान करेगा?
स्वभावतः, उसके बेटे ने कहा कि जो गंदा और काला हो गया, वह स्नान करेगा। नसरुद्दीन ने कहा, गलत। यही तो तर्क जानने की जरूरत है। क्योंकि जो आदमी गंदा है, उसे अपनी गंदगी नहीं दिखाई पड़ेगी, उसे दूसरे आदमी के सफेद कपड़े पहले दिखाई पड़ेंगे। और जब वह सोचेगा कि दूसरे आदमी के सफेद कपड़े हैं,

तो मेरे भी सफेद होंगे। लड़के ने कहा, मैं समझा आपकी बात, मैं समझ गया। जिस आदमी के सफेद कपड़े हैं, वह स्नान पहले करेगा। क्योंकि वह गंदे आदमी को देखेगा; वह सोचेगा, जब यह इतना गंदा हो गया, तो मैं कितना गंदा नहीं हो गया होऊंगा। एक ही चिमनी से दोनों निकले हैं। मैं समझ गया। नसरुद्दीन के बेटे ने कहा, मैं समझ गया, पिताजी, आपकी बात! पहले वह आदमी स्नान करेगा, जो बिल्कुल सफेद कपड़े पहने हुए है। नसरुद्दीन ने कहा, गलत! उसके बेटे ने कहा, हद हो गई, दोनों बातें गलत! नसरुद्दीन ने कहा, गलत! क्योंकि जो तर्क जानता है, वह यह कहेगा कि जब एक ही चिमनी से दोनों निकले, तो एक सफेद और एक गंदा कैसे निकल सकता है? नसरुद्दीन ने कहा कि अगर दुनिया में सबको गलत सिद्ध करना हो, तो तर्क जानना जरूरी है।
हां, तर्क से, क्या सही है, यह कभी सिद्ध नहीं होता; लेकिन क्या गलत है,
यह सिद्ध किया जा सकता है। तर्क से, क्या गलत है, यह सिद्ध किया जा सकता है; लेकिन तर्क से यह कभी पता नहीं चलता कि क्या सही है। सही का अनुभव करना पड़ता है। और जब सही का तर्क से पता ही नहीं चलता, तो तर्क से जिसे हम गलत सिद्ध करते हैं, वह भी पूरी तरह गलत सिद्ध हो नहीं सकता है। क्योंकि जब हमें सही का पता ही नहीं है, तो वह सिर्फ सिद्ध करने का खेल है।
पश्चिम में जो विज्ञान विकसित हुआ है, वह लॉजिक, तर्क से विकसित हुआ है। अरस्तू उसका पिता है। और जहां तर्क होता है, वहां काट-पीट होती है। क्योंकि तर्क टुकड़ों में तोड़ता है। तर्क की विधि एनालिसिस है, तोड़ो-काटो। इसीलिए विज्ञान की विधि एनालिसिस है, एनालिटिकल है, विश्लेषण करो। इसलिए वे अणु पर पहुंच गए तोड़ते-तोड़ते, आखिरी टुकड़े पर पहुंच गए।
स्त्रैण-चित्त सिंथेटिकल है। वह तोड़ता नहीं, जोड़ता है। वह कहता है, जोड़ते जाओ! और जब जोड़ने को कुछ न बचे तो जो हाथ में आए, वही सत्य है। इसलिए स्त्रैण-चित्त ने जो निर्णय लिए हैं, वे विराट के हैं, अणु के नहीं। उसने कहा, सारा जगत एक ही ब्रह्म है। वैज्ञानिक कहता है, सारा जगत अणुओं का एक ढेर है; और प्रत्येक अणु अलग है, दूसरे अणु से उसका कोई जोड़ नहीं है। जुड़ भी नहीं सकता, चाहे तो भी नहीं जुड़ सकता। दो अणुओं के बीच गहरी खाई है, कोई अणु जुड़ नहीं सकता। सारा जगत, जैसे रेत के टुकड़ों का ढेर लगा हो, ऐसा सारा जगत अणुओं का ढेर है।
जगत अणुओं का ढेर है? या विज्ञान की पद्धति ऐसी है कि अणुओं का ढेर मालूम पड़ता है?
स्त्रैण-चित्त, अनुभूति से चलने वाला व्यक्ति कहता है, जगत में दो ही नहीं हैं। अनेक की तो बात ही अलग; दो भी नहीं हैं, द्वैत भी नहीं है। जगत एक ही विराट है। वह जोड़ कर सोचता है। जोड़ता चला जाता है। जब जोड़ने को कुछ नहीं बचता, और सारा जगत जुड़ जाता है।
स्त्री जोड़ने की भाषा में सोचती है। पुरुष तोड़ने की भाषा में सोचता है--यह पुरुष-चित्त! स्त्री-चित्त जोड़ने की भाषा में सोचता है। और जहां जोड़ना है, वहां नतीजे दूसरे होंगे। और जहां तोड़ना है, वहां नतीजे दूसरे होंगे। ध्यान रहे, जहां तोड़ना है, वहां आक्रमण होगा। इसलिए पश्चिम के वैज्ञानिक कहते हैं, वी आर कांकरिंग नेचर, हम प्रकृति को जीत रहे हैं। लेकिन पूरब में लाओत्से जैसे लोग कभी नहीं कहते कि हम प्रकृति को जीत रहे हैं। क्योंकि वे कहते हैं, हम प्रकृति के बेटे, हम प्रकृति को जीत कैसे सकेंगे? यह तो मां के ऊपर बलात्कार है!
लाओत्से कहता है, प्रकृति को हम जीत कैसे सकेंगे? यह तो पागलपन है। हम केवल प्रकृति के साथ सहयोगी हो जाएं, हम केवल प्रकृति के कृपापात्र हो जाएं, हमें केवल प्रकृति की ग्रेस और प्रसाद मिल सके, तो पर्याप्त है। प्रकृति का वरदान हमारे ऊपर हो तो काफी है।
इसलिए लाओत्से ने जो बात कही है, उस पर अभी पश्चिम में फिर से पुनर्विचार शुरू हुआ है। पश्चिम में अभी एक अदभुत किताब लिखी गई है, वह पहली किताब है इस तरह की, दि ताओ ऑफ साइंस। और अभी पश्चिम के कुछ वैज्ञानिकों ने यह खबर दी है, जोर से चर्चा चलाई है कि पश्चिम का जो अरिस्टोटेलियन विज्ञान है, अरस्तू के आधार पर बना जो विज्ञान है, उसे हटा देना चाहिए; और हमें लाओत्से के आधार पर नए विज्ञान की इमारत खड़ी करनी चाहिए। क्यों? क्योंकि यह हारने और जीतने की भाषा हिंसा की भाषा है। और

प्रकृति को जीता नहीं जा सकता। और प्रकृति को जीतने की कोशिश वैसा ही पागलपन है, जैसा मेरे हाथ की एक अंगुली मेरे पूरे शरीर को जीतने की कोशिश करे। वह कभी जीत नहीं पाएगी। हां, लड़ने में और परेशान होगी। जीत तो कभी नहीं सकती है। और आदमी बहुत परेशान हो गया है। और जब आदमी प्रकृति से जीतने की भाषा में सोचता है, तो आदमी और आदमी भी लड़ने की भाषा में सोचते हैं, लड़ना उनके चिंतन का ढंग हो जाता है।
लाओत्से के हिसाब से जब तक दुनिया में स्त्रैण-चित्त प्रभावी नहीं होता, तब तक दुनिया से युद्ध समाप्त नहीं किए जा सकते हैं। और यह बात थोड़ी सच मालूम पड़ती है। स्त्रियां युद्ध में बिल्कुल भी उत्सुक नहीं हैं। कभी नहीं रहीं। अगर पुरुष ने उन्हें समझा-बुझा कर भी युद्ध पर जाते वक्त टीका लगवाने को राजी कर लिया, तो उनकी जो मुस्कुराहट थी टीका लगाते वक्त, वह झूठी थी। और उनकी मुस्कुराहट के पीछे सिवाय आंसुओं के और कुछ भी नहीं था। और पुरुष को विदा करके सिवाय स्त्रियों ने रोने के और कुछ भी नहीं किया है। क्योंकि युद्ध में कोई भी हारे और कोई भी जीते, स्त्री तो अनिवार्य रूप से हारती ही है। युद्ध में कोई भी जीते, कोई भी हारे, स्त्री तो हारती ही है। युद्ध में कोई भी मरे और कोई भी बचे, स्त्री तो हारती ही है। या उसका बेटा मरता है, या उसका पति मरता है, या उसका प्रेमी मरता है, कोई न कोई उसका मरता है--इधर या उधर, कहीं भी स्त्री अनिवार्य रूप से हारती है। युद्ध पुरुष को भला कितनी ही उत्तेजना ले आता हो, लेकिन स्त्री को जीवन में घातक संघात पहुंचा जाता है। स्त्रियां सदा युद्ध के विपरीत रही हैं। लेकिन स्त्रियों का कोई प्रभाव नहीं है; स्त्रैण-चित्त का कोई प्रभाव नहीं है। और जब तक पुरुष-चित्त प्रभावी है, दुनिया से युद्ध नहीं मिटाए जा सकते। पुरुष के सोचने का ढंग ऐसा है कि अगर उसे युद्ध के खिलाफ भी आंदोलन चलाना हो, तो भी उसका ढंग युद्ध का ही होता है। अगर वह शांति का आंदोलन भी चलाता है, तो भी उसकी मुट्ठियां भिंची होती हैं और डंडे उसके हाथ में होते हैं। वे कहते हैं, शांति लेकर रहेंगे! शांति स्थापित करके रहेंगे! लेकिन उसका जो ढंग है, वह शांति स्थापित करने भी जाए, जुझारू ही बना रहता है।
मुल्ला नसरुद्दीन पर एक और मुकदमा है। दो व्यक्तियों में झगड़ा हो गया
और उन दोनों ने एक-दूसरे के सिर तोड़ दिए हैं कुर्सियों से। नसरुद्दीन वहां मौजूद था। उसे गवाह की तरह अदालत में बुलाया गया। और मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा कि नसरुद्दीन, तुम खड़े देखते रहे, तुम्हें शर्म नहीं आई! ये तुम्हारे दोनों मित्र हैं, तुमने बचाव क्यों न किया? नसरुद्दीन ने कहा, तीसरी कुर्सी ही वहां नहीं थी। दो कुर्सियां थीं, इन दोनों ने ले लीं। अगर तीसरी कुर्सी होती, तो बचाव करके दिखा देता। लेकिन कोई उपाय ही नहीं था। मुझे खड़े रहना पड़ा।
वह जिसको बचाव करना है बीच में, उसके हाथ में भी बंदूक तो चाहिए ही। आदमी बिना बंदूक के सोच नहीं सकता। आप चकित होंगे जान कर, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी ने जो भी अस्त्र-शस्त्र विकसित किए हैं, वे बहुत कुछ उसकी जननेंद्रियों का विकास हैं। चाहे बंदूक हो, चाहे तलवार हो, चाहे छुरी हो; वह दूसरे में भोंक देने का उपाय है। वह सब फैलिक है, वह लैंगिक है--मनुष्य के सारे शस्त्र।
स्त्रियों ने कोई शस्त्र विकसित नहीं किए हैं। लड़ने का ख्याल ही स्त्री के लिए बेमानी है। युद्ध अर्थहीन है। जीतने की बात ही प्रयोजन की नहीं है। स्त्रैण-चित्त असल में जीतने की भाषा में नहीं सोचता, समर्पण की भाषा में सोचता है। इसे ठीक से समझ लें। स्त्री के चित्त का जो केंद्र है, वह समर्पण, सरेंडर है। पुरुष के चित्त का जो केंद्र है, वह संकल्प, संघर्ष, विजय, इस तरह की बातें है। अगर पुरुष ईश्वर को भी पाने जाता है, तो वह ऐसे ही जाता है जैसे आक्रमण कर रहा है। ईश्वर को पाकर रहेगा! उसका जो ढंग होता है। वह सत्य को खोजने भी निकलता है, तो ऐसे ही जैसे दुश्मन को खोजने निकला है। खोज कर ही रहेगा! वह प्रार्थना नहीं है मन में वहां, वहां कब्जे का सवाल है।
आगे जब हम लाओत्से को समझेंगे, तब हमारे ख्याल में आएगा कि वह कहता है,
जो समर्पण कर सकता है, छोड़ सकता है, सरेंडर कर सकता है, वही विराट सत्य को पाने के लिए अपने भीतर जगह बना सकता है। तर्क पुरुष का लक्षण है, संघर्ष

उसका लक्षण है। समर्पण और तर्कहीन आस्था, या कहें श्रद्धा, स्त्रैण-चित्त का लक्षण है। वह जो अंतर्दृष्टि है, इंट्यूशन है, वह श्रद्धा के बीच पैदा होती है; भरोसे के, ट्रस्ट के बीच पैदा होती है। अगर पुरुष को श्रद्धा भी करनी पड़े, तो वह करनी पड़ती है, वह उसके लिए सहज नहीं है। वह कहता है कि अच्छा, बिना श्रद्धा के नहीं हो सकेगा, तो मैं श्रद्धा किए लेता हूं। लेकिन की गई श्रद्धा का कोई मूल्य नहीं है। और जब कोई श्रद्धा करता है, तो भीतर संदेह बना ही रहता है। की गई श्रद्धा का अर्थ ही यह होता है कि संदेह भीतर मौजूद है। गहरे में संदेह होगा, ऊपर श्रद्धा होगी।
नसरुद्दीन अपने बेटे को जीवन की शिक्षा दे रहा है। वह उससे कहता है कि
इस ऊपर की सीढ़ी पर चढ़ जा! वह बेटा पूछता है, कारण? क्या जरूरत है? नसरुद्दीन कहता है, ज्यादा बातचीत नहीं, श्रद्धापूर्वक ऊपर चढ़! वह लड़का बेचैनी से ऊपर चढ़ता है। ऊपर जब वह पहुंच जाता है सीढ़ी पर, तो नसरुद्दीन कहता है, ये मेरी बांहें फैली हैं, तू कूद जा! वह कहता है, लेकिन मतलब, जरूरत? नसरुद्दीन कहता है, श्रद्धा रख, घबड़ा मत! मैं तेरा बाप हूं, हाथ फैलाए खड़ा हूं! कूद जा! लड़का कूद जाता है। नसरुद्दीन जगह छोड़ कर खड़ा हो जाता है। लड़का जमीन पर गिरता है; दोनों पैरों में चोट लगती है। वह रोता है। नसरुद्दीन कहता है, देख, जिंदगी के लिए तुझे एक शिक्षा देता हूंः किसी का भरोसा मत करना। अपने बाप का भी मत करना। अगर जिंदगी में जीतना है, भरोसा मत करना। भरोसा किया कि हारा।
पुरुष की सारी शिक्षा यही है। न मालूम कितने रूपों से अपने चारों तरफ
वह जो दुनिया बनाता है, वह गैर-भरोसे की दुनिया है। उसमें संघर्ष है। उसमें हर एक दुश्मन है और प्रतियोगी है। स्त्रैण-चित्त के लिए भरोसा बहुत सहज है। लेकिन स्त्री की भी शिक्षा हम पुरुष के द्वारा दिलवाते हैं। और स्त्री को भी जो सूत्र सिखाए जाते हैं, वे पुरुषों की पाठशाला में सिखाए जाते हैं। इसलिए स्त्री को भी पता नहीं कि स्त्रैण-चित्त क्या है।
और इसलिए कई बार जब स्त्री पुरुष की शिक्षा में शिक्षित हो जाती है,
तो पुरुष से भी ज्यादा संदेहशील हो जाती है। नया मुसलमान जैसा मस्जिद की तरफ ज्यादा जाता है, वैसे ही स्त्री जो पुरुष की शिक्षा में दीक्षित हो जाती है, वह पुरुष से भी ज्यादा संदेहशील हो जाती है। अन्यथा संदेह स्त्री का स्वभाव नहीं है। सहज स्वीकार उसका स्वभाव है। ऐसा उसे करना नहीं पड़ता, ऐसी उसकी प्रकृति है। ऐसा भरोसे में जीना उसका ढंग ही है, उसके जीवन का ढंग ही है। दि वेरी वे ऑफ लाइफ! उसके खून और उसकी हड्डी और मांस-मज्जा में भरोसा है।
स्त्रैण रहस्य में ये बातें ख्याल रखनी जरूरी हैं कि लाओत्से जिस तरफ इशारा कर रहा है, वह श्रद्धा का जगत है। समर्पण का, संघर्षहीन, प्रकृति के साथ सहयोग का, विरोध का नहीं। प्रकृति के साथ बह जाने का, प्रकृति के साथ संघर्ष का नहीं। नदी में तैरने जैसा नहीं, नदी में बह जाने जैसा है; कि कोई आदमी ने भरोसा कर लिया हो नदी पर और बह गया। तैरता भी नहीं है; किसी किनारे पर पहुंचने की आकांक्षा भी नहीं है। नदी जहां पहुंचा दे, वही मंजिल है। ऐसे भरोसे से भरा हुआ बहा जाता है।
लाओत्से कहता था, जब तक मैंने सत्य को खोजा, तब तक पाया नहीं। जब मैंने खोज बंद कर दी और बहना शुरू कर दिया, उसी दिन मैंने पाया कि सत्य सदा मेरे पास था। मैं खोजने में अटका था; इसलिए दिखाई नहीं पड़ता था। लाओत्से कहता था, मैं एक सूखे पत्ते की तरह हो गया। हवा जहां ले जाती, वहीं जाने लगा। बस उसी दिन से मेरे अहंकार को कोई जगह न रही। उसी दिन से मैंने जान लिया, परम सत्य क्या है। उस दिन के बाद कोई अशांति नहीं है। सब अशांति खोजने की अशांति है। सब अशांति कहीं पहुंचने की अशांति है। सब अशांति कुछ होने की अशांति है। श्रद्धावान, जो है, उससे राजी है; जहां है, उससे राजी है; जैसा है, उससे राजी है।
ऐसा नहीं कि उसकी यात्रा नहीं होती, यात्रा उसकी भी होती है। लेकिन वह यात्रा सारे अस्तित्व के साथ है, अस्तित्व के विरोध में नहीं है। नदी में बहता हुआ तिनका भी सागर पहुंच जाता है। जरूरी नहीं है कि नाव लेकर ही नदी में सागर की तरफ यात्रा की जाए। वह बहता हुआ तिनका भी सागर पहुंच जाता है।

लेकिन नदी पहुंचाती है उसे, वह खुद नहीं पहुंचता। और पहुंचने की व्यर्थ झंझट से बच जाता है।
लाओत्से कहता है, यदि हम छोड़ सकें अपने को, जैसा स्त्री छोड़ देती है प्रेम में, ऐसा ही अगर हम जगत अस्तित्व के प्रति, परमात्मा के प्रति, ताओ के प्रति अपने को छोड़ दें, जैसे हम उसके आलिंगन में छूट गए हों, तो हम जीवन के सत्य के निकट सरलता से पहुंच जा सकते हैं।
एक-दो बातें और। जैसा मैंने कहा, पुरुष की बुद्धि और स्त्री की बुद्धि में फर्क है; ऐसे ही पुरुष के जीने का जो डायमेंशन है, वह टाइम है, समय है। पुरुष समय में जीता है। दो डायमेंशन हैं अस्तित्व केः एक टाइम और एक स्पेस; स्थान और काल। पुरुष काल में जीता है। वह पीछे का हिसाब रखता है, आगे का हिसाब रखता है। समय में उसकी दौड़ चलती रहती है। घड़ी के कांटे की तरह जीता है। जैसा मैंने कहा कि पश्चिम में विज्ञान जिस दिन से सफल हुआ, उसी दिन से घड़ी सफल हुई। पूरब में घड़ी नहीं बन सकी। नहीं बनने का कारण था; क्योंकि पूरब ने कभी पुरुष के चित्त के ढंग से सोचा नहीं। पूरब ने कभी समय का हिसाब नहीं रखा।
हमारे पास कोई तारीख नहीं है, राम कब पैदा हुए, कब मरे। कृष्ण कब जनमे,
कब मरे, हमारे पास कोई तारीख नहीं है, कोई हिसाब नहीं है। लाओत्से कब पैदा होता है, कब मरता है, कोई हिसाब नहीं है। यह भी पक्का करना मुश्किल होता है कि कौन पहले हुआ, कौन पीछे हुआ। हमने कोई टाइम क्रॉनिकल हिसाब नहीं रखा कभी। असल में, समय का जो बोध है, टाइम कांशसनेस है, वह पूरब को नहीं रही कभी। कोई बोध ही नहीं रहा समय का। क्यों? क्योंकि समय के बोध के लिए पुरुष-चित्त चाहिए। समय का बोध बढ़ता है तनाव के साथ। जितना तनाव बढ़ता है, समय का बोध बढ़ता है। तो जितनी एंग्जायटी बढ़ती है, उतनी टाइम कांशसनेस बढ़ती है। पश्चिम में आज टाइम कांशसनेस इतनी ज्यादा है, एक सेकेंड का हिसाब है।
और वह हिसाब कई दफे बिल्कुल पागलपन में ले जाता है। एक आदमी जाएगा भागा हुआ हवाई जहाज से इसलिए कि घंटा भर बच जाए। घंटा बच जाएगा; लेकिन उसने कभी यह सोचा ही नहीं, उस घंटे को बचा कर करना क्या है! उस घंटे को वह दूसरे घंटे बचाने में उपयोग में लाएगा। और उन घंटों को और घंटे बचाने में उपयोग में लाएगा। और आखिर में मर जाएगा बचाते-बचाते, उपयोग उनका कभी भी नहीं कर पाएगा। क्योंकि उपयोग करने के लिए तनाव नहीं चाहिए। और समय में तनाव है, तीव्र तनाव है। कल बहुत महत्वपूर्ण है; आज महत्वपूर्ण नहीं है। स्त्रियों के लिए आज बहुत महत्वपूर्ण है--अभी और यहीं। इसलिए बहुत मजे की बात है कि स्त्रियां उन चीजों में ज्यादा रस लेती हैं जो अभी और यहीं घटित होती हैं। आप जान कर हैरान होंगे कि स्त्रियों को कोई लंबी फिक्र नहीं होती। कोई स्त्री इसकी फिक्र नहीं करती कि सन दो हजार में क्या होगा। कोई फिक्र नहीं करती। कोई स्त्री चिंता नहीं करती कि तीसरा महायुद्ध होगा कि नहीं होगा, कि वियतनाम में क्या होगा, कि बंगाल में क्या होगा। इसकी चिंता नहीं करती। टाइम के लिए उसके मन में कोई जगह नहीं है बहुत।
दूर की भी चिंता नहीं करती कि चीन में क्या हो रहा है, और पेकिंग में क्या हो रहा है, और वाशिंगटन में क्या हो रहा है। पड़ोसी के घर में क्या हो रहा है, यह स्त्री के लिए महत्वपूर्ण है। वाशिंगटन में क्या हो रहा है, यह बिल्कुल बेकार बात है। हो रहा होगा! लेकिन पड़ोसी के घर में क्या हो रहा है, वह दीवार में कान लगा कर सुन रही है। इमीजिएट कांशसनेस है। दूर से मतलब नहीं है--अभी और यहां! क्षुद्र सी कोई बात हो रही होगी। क्योंकि जो वाशिंगटन में हो रहा, वह तो पड़ोसी के घर में नहीं हो रहा होगा। वियतनाम में जो हो रहा, वह तो पड़ोसी के घर में नहीं हो रहा होगा। पति-पत्नी की कोई कलह हो रही होगी, कुछ मां बेटे को डांट रही होगी, कुछ हो रहा होगा, क्षुद्र होगा। लेकिन वह निकट है--अभी। स्त्री के लिए क्षुद्रतम भी मूल्यवान है, अगर वह अभी है। और पुरुष के लिए बहुमूल्य से बहुमूल्य भी मूल्यवान नहीं है, अगर वह अभी है। वह दूर हो जितना, उतना उसके चित्त को फैलाव का मौका मिलता है। असल में, जितना दूर हो, उतना ही चिंतन की सुविधा है। जितना निकट हो, चिंतन की कोई जरूरत नहीं है। जितना पास हो, तो सोचना क्या है? जितना

दूर हो, उतना सोचने के लिए उपाय है, तर्क के लिए उपाय है, योजनाएं बनाने के लिए उपाय है।
तो पुरुष दूर में बहुत उत्सुक है, दि डिस्टेंट। स्त्री निकट में बहुत उत्सुक है। और निकट में उत्सुक होना, सत्य की खोज के लिए, दूर में उत्सुक होने से ज्यादा मूल्यवान है। यह नहीं कह रहा हूं कि पड़ोसी के घर में क्या हो रहा है, इसमें उत्सुक बने रहें। निकट की उत्सुकता मूल्यवान है; क्योंकि निकट ही है जीवन। दूर तो सिवाय सपनों के और कल्पनाओं के कुछ भी नहीं है। निकट ही है जीवन। जितना निकट अस्तित्व की प्रतीति हो, उतनी ताजी और जिंदा होगी। दूर सब बासा और पुराना पड़ जाता है। धूल रह जाती है या भविष्य की कल्पनाएं और सपने रह जाते हैं।
पुरुष समय में जीता है। स्त्री स्थान में, स्पेस में जीती है। यह संयोग आपको ख्याल में शायद न आया हो कि घर पुरुष ने नहीं बनाया, स्त्री ने बनाया। अगर पुरुष का वश चले, तो घर को कभी न बनने दे। क्योंकि घर के साथ पुरुष सदा ही बंधा हुआ अनुभव करता है निकट से। दूर की यात्रा कमजोर हो जाती है। पुरुष जन्मजात खानाबदोश है, आवारा है। जितना दूर भटक सके! इसलिए पुरुष के मन में भटकने की बड़ी तीव्र आकांक्षा है।
अब स्त्रियों की समझ में नहीं आता कि चांद पर जाकर क्या करिएगा! न वहां कोई शॉपिंग सेंटर है; शॉपिंग भी नहीं की जा सकती, चांद पर जा किसलिए रहे हैं? क्या आपको पता है कि आज अमरीका में जो एस्ट्रोनॉट्स हैं, अंतरिक्ष यात्री हैं, वे सर्वाधिक प्रतिष्ठित लोग हैं; लेकिन आपको पता भी नहीं होगा, ख्याल में भी नहीं आया होगा कि एस्ट्रोनॉट्स की पत्नियों का डायवोर्स रेट डबल है आम नागरिक से अमरीका में। आम नागरिक जितना डायवोर्स करता है, उससे दुगुना डायवोर्स एस्ट्रोनॉट्स की पत्नियां कर रही हैं। क्यों? क्योंकि जो इतने दूर में उत्सुक हैं, वे पत्नियों में उत्सुक नहीं रह जाते। जिनकी उत्सुकता चांद में है... ।
पत्नी को अखबार तक से पीड़ा होती है कि तुम अखबार पढ़ रहे हो उसकी मौजूदगी में! दूर चले गए। पत्नियां किताबों की दुश्मन हो जाती हैं। पत्नियां खेलों की दुश्मन हो जाती हैं कि पति ने उठाया बल्ला और चल पड़ा मैदान की तरफ! भारी पीड़ा होती है। निकट पत्नी मौजूद है और वह दूर। लेकिन चांद पर कोई चला जा रहा है! स्त्री उसमें उत्सुक नहीं रह जाएगी। और लौट कर वह आएगा भी, तो भी वह स्त्री में बहुत उत्सुक नहीं दिखाई देगा। इतने बड़ी दूर की उसने उत्सुकता पैदा कर ली है कि इतने निकट उसकी उत्सुकता नहीं होगी।
पुरुष सदा यात्रा पर है। घर स्त्रियों ने बनाए। इसलिए घरवाली वही कहलाती है, चाहे पैसा आप खर्च करते हों; उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। घर की मालकिन वही है। घर उसने बनाया; खूंटी उसने गाड़ी। आप सिर्फ उसमें बंधे हुए अनुभव करते हैं।
मैं अभी एक व्यक्ति का आत्म-चरित पढ़ता हूं। उसने लिखा है कि मेरी बड़ी मुसीबत है। मैं तय नहीं कर पाता था, विवाह करूं या न करूं। क्योंकि विवाह करूं, तो बंध जाता हूं; फिर वहां से हिल नहीं सकता। विवाह न करूं, तो यात्रा जारी रह सकती है; लेकिन फिर ठहरने का कहीं उपाय नहीं, फिर कहीं विश्राम की कोई सुविधा नहीं।
पुरुष का बस चले तो भटकता रहे, भटकता रहे। जो खानाबदोश कौमें होती हैं, उस तरह भटकता रहे। इसलिए आपने कभी ख्याल किया कि खानाबदोश कौमों की जो स्त्रियां हैं, वे करीब-करीब पुरुषों से भी ज्यादा पुरुष हो जाती हैं। बलूची स्त्रियों पर आपने ख्याल किया? क्योंकि उनको पुरुष के साथ भटकना पड़ता है। और भटकने की जो अनिवार्यता है, उन पर भी फलित हो जाती है। क्योंकि स्त्री का स्वभाव भटकना नहीं है। अगर वह भटकेगी, तो उसको पुरुष जैसा स्वभाव निर्मित करना पड़ेगा। इसलिए बलूची स्त्री पुरुष से भी ज्यादा पुरुष हो जाती है। वह छुरा भोंक सकती है आपकी छाती में। उससे छेड़छाड़ नहीं कर सकते हैं आप। वह आपका हाथ पकड़ ले, तो छुड़ाना मुश्किल हो जाएगा।
अगर बलूची की स्त्री पुरुष जैसी हो जाती है, तो हमारा पुरुष स्त्री जैसा हो जाता है, यह ख्याल रखना। क्योंकि घर में बंधा-बंधा उसको स्त्री के गुण के साथ जीना पड़ता है। इसलिए सर्वाधिक क्रोध उसे स्त्री पर आता है,

क्योंकि वह उसकी जंजीर बन गई मालूम पड़ती है। यह प्रणय-बंधन में लोग बंधते हैं, वह शब्द बहुत अच्छा है। लोग निमंत्रण-पत्रिकाएं छपवाते हैं कि मेरे पुत्र और पुत्री विवाह-बंधन में बंधने जा रहे हैं। बिल्कुल ठीक जा रहे हैं! विवाह बंधन ही है पुरुष के लिए। वह वहां बंध कर, जड़ें जमा कर बैठ जाता है। वहीं से उसकी कुंठा शुरू हो जाती है।
मुल्ला नसरुद्दीन को सुबह-सुबह घर के बाहर निकलते ही डाक्टर मिल गया।
और डाक्टर ने पूछा नसरुद्दीन से कि नसरुद्दीन, पत्नी की तबीयत अब कैसी है? नींद आई?
नसरुद्दीन ने कहा, क्या गजब की दवा दी आपने! बहुत अच्छी नींद आई और बड़ी तबीयत ठीक है।
डाक्टर ने पूछा, और कुछ तो नहीं पूछना?
नसरुद्दीन ने कहा, यही पूछना है कि नींद कब खुलेगी? क्योंकि पांच दिन
हो गए हैं; बड़ी शांति है, और बड़ी स्वतंत्रता है, पत्नी बिल्कुल सो रही है। डाक्टर ने कहा, पांच दिन हो गए हैं! पागल, तूने खबर क्यों न की? क्या दवा ज्यादा दे दी?
नसरुद्दीन ने कहा, ज्यादा बिल्कुल नहीं दी। आपने कहा था, चवन्नी पर रख
कर देना। घर में चवन्नी न थी, चार इकन्नियां थीं; उन पर रख कर दे दी। बड़ी शांति है, और बड़ी स्वतंत्रता है। कहीं आओ-जाओ, सब सन्नाटा है। विवाह के बाद ऐसी शांति और स्वतंत्रता मैंने नहीं जानी। पत्नी सो रही है।
पुरुष को लगता है बंधा होना। और वहां से भागे तो अशांति पैदा होती है,
न भागे तो बंधा हुआ मालूम पड़ता है। पुरुष का चित्त दूर में उत्सुक है। और ऐसा नहीं कि वह वहां पहुंच जाएगा तो फिर और दूर में उत्सुक नहीं होगा। वहां पहुंच कर तत्काल और दूर में उत्सुक हो जाएगा। चांद पर हम उतरे भी नहीं थे कि हमारे वैज्ञानिकों ने मंगल पर उतरने की योजनाएं बनानी शुरू कर दीं। चांद बेकार हो गया। जैसे यह बात पूरी हो गई कि चांद पर उतर गए, बात समाप्त हो गई। अब मंगल पर उतरना जरूरी है--बिना यह पूछे कि क्यों? लाओत्से या उपनिषद के लोग, भारत में या पूरब के मुल्कों में, बिल्कुल
ही टाइम कांशसनेस से मुक्त थे। उन्हें समय की कोई धारणा न थी। न दूर की कोई धारणा थी। लाओत्से ने कहा है कि मेरे गांव के पार, सुना है मैंने अपने बुजुर्गों से कि नदी के उस तरफ गांव था। कुत्तों की आवाज सुनाई पड़ती थी कभी रात के सन्नाटे में। कभी सांझ को उस गांव के मकानों पर उठता हुआ धुआं भी हमें दिखाई पड़ता था। लेकिन हमारे गांव में से कभी कोई उत्सुक नहीं हुआ जाकर देखने को कि उस तरफ कौन रहता है।
एक कैथोलिक संन्यासी का जीवन मैं पढ़ता था। ट्रैपिस्ट, ईसाइयों का एक संप्रदाय है संन्यासियों का। शायद दुनिया में सबसे ज्यादा कठोर संन्यास की व्यवस्था ट्रैपिस्ट संन्यासियों की है। एक नया संन्यासी दीक्षित हुआ। ट्रैपिस्ट मोनास्ट्री में, उनके आश्रम में आदमी प्रवेश करता है, तो आमतौर से जीवन भर बाहर नहीं निकलता; जब तक गुरु उसे बाहर ही न निकाल दे। दरवाजा बंद होता है, तो अक्सर सदा के लिए बंद हो जाता है। और आदमी मर जाता है तभी बाहर निकलता है।
एक नया संन्यासी दीक्षित हुआ। गुरु ने उससे कहा कि यह दरवाजा सदा के लिए बंद हो रहा है। उसको कोठरी दे दी गई। और ट्रैपिस्ट उस मोनास्ट्री का नियम यह था कि संन्यासी सात साल में एक ही बार बोल सकते हैं। इसको कोठरी दे दी गई। इसको साधना के नियम बता दिए गए। फिर सात साल तक बात समाप्त हो गई। सात साल बाद वह संन्यासी अपने गुरु के पास आया और उसने कहा, और सब तो ठीक है; लेकिन जो कोठरी आपने दी है, उसका कांच टूटा हुआ है। और सात साल में मैं एक दिन नहीं सो पाया। वर्षा अंदर चली आती है, कीड़े-मकोड़े अंदर घुस जाते हैं, मच्छर अंदर आ जाते हैं। पर सात साल में एक ही दफे की आज्ञा थी; इसलिए निवेदन करता हूं, वह कांच ठीक कर दिया जाए। गुरु ने कहा, ठीक! वह कांच ठीक करने लोग भेज दिए गए।
सात साल बाद फिर--यानी चौदह साल बाद--वह संन्यासी गुरु के चरणों में आया और उसने कहा, और सब तो ठीक है, कांच तो आपने ठीक करवा दिया; लेकिन सात साल की वर्षा की वजह से, जो चटाई मुझे आपने सोने को दी थी, वह अकड़ कर

बिल्कुल लक्कड़ हो गई है। सात साल से सो नहीं पाया। तो कृपा करके वह चटाई बदलवा दें। गुरु ने कहा, ठीक है! वह फिर चला गया।
फिर सात साल बाद, यानी इक्कीस साल बाद वह वापस आया। गुरु ने उससे पूछा
कि सब ठीक है? उसने कहा, और सब तो ठीक है; लेकिन वह चटाई बदलने जो लोग भेजे थे आपने, जब वे पुरानी उस सूख गई चटाई को लेकर निकलने लगे, तो वह कांच फिर टूट गया। सात साल से सो नहीं पाया। पानी अंदर आ रहा है। गुरु ने कहा कि निकल, तू दरवाजे के बाहर हो जा! इक्कीस साल में सिवाय शिकायत के तूने कुछ भी नहीं किया। दरवाजे से बाहर! ऐसे आदमी को हम संन्यास नहीं देते। इक्कीस साल में सिवाय शिकायतों के तेरा कोई काम ही नहीं।
ये एक दूसरी दुनिया के लोग हैं! इक्कीस मिनट सहना हमें मुश्किल हो जाता, इक्कीस साल तो बहुत बड़ी बात है। सात साल में बेचारा एक शिकायत लेकर आता है; वह भी कहता है गुरु बहुत ज्यादा है। सात साल वह प्रतीक्षा करता रहता है कि ठीक सात साल बाद दिन आएगा। टाइम कांशसनेस बिल्कुल नहीं होगी। नहीं तो सात मिनट मुश्किल हो जाते।
समय की चेतना बढ़ती है पुरुष-चित्त के साथ; स्त्रियों को समय की कोई धारणा नहीं है। इसलिए रोज आप हर घर के सामने झगड़ा देखते हैं। वह झगड़ा स्त्रैण और पुरुष चित्त का है। पुरुष बजा रहा है हॉर्न दरवाजे पर खड़ा हुआ और पत्नी अपनी सजावट किए चली जा रही है। गाड़ी चूक गए हैं, या फिल्म में पहुंचे देर से हैं, हॉल बंद हो गया! और वह पति चिल्ला रहा है कि इतनी देर लगाने की क्या जरूरत थी? असल में, स्त्री को टाइम कांशसनेस नहीं है। उसमें कसूर नहीं है। यह कोई फर्क ही नहीं पड़ता। आधा घंटे, घंटे से क्या फर्क पड़ता है? ऐसा क्यों परेशान हो रहे हो? काहे के लिए हॉर्न बजाए जा रहे हो?
मैंने सुना है, एक स्त्री की सड़क पर कार रुक गई है और वह उसे स्टार्ट नहीं कर पा रही है। पीछे का आदमी आकर हॉर्न बजा रहा है। तो वह स्त्री बाहर निकली, उसने उस आदमी से जाकर कहा, महानुभाव, गाड़ी मेरी स्टार्ट नहीं होती; आप जरा स्टार्ट करिए; हॉर्न बजाने का काम मैं किए देती हूं।
जल्दबाजी नहीं है; व्यक्तित्व में नहीं है।
लाओत्से कहता है, स्त्रैण-चित्त का यह जो रहस्य है--यह गैर-जल्दबाजी, अधैर्य बिल्कुल नहीं, समय का बिल्कुल बोध नहीं--ये सत्य की दिशा में बड़े सहयोगी कदम हैं। ध्यान इतना ही रखना कि जब भी मैं स्त्रैण-चित्त की बात कर रहा हूं, तो स्त्रैण-चित्त की बात कर रहा हूं, स्त्री की नहीं। स्त्रैण-चित्त पुरुष के पास हो सकता है। जैसे बुद्ध जैसे आदमी के पास स्त्रैण-चित्त है; समय का कोई बोध नहीं है।
बुद्ध जब मरे, चालीस साल हो चुके थे उन्हें ज्ञान उपलब्ध हुए। किसी ने उनसे मरने के दिन कहा है कि अपरंपार थी तुम्हारी कृपा, अनुकंपा तुम्हारी अपार थी! तुम्हें जीने की कोई भी जरूरत न थी ज्ञान हो जाने के बाद। तुम दीए की तरह बुझ जा सकते थे अनंत में, निर्वाण को उपलब्ध हो सकते थे। हम पर कृपा करके तुम चालीस साल जीए! बुद्ध ने कहा, चालीस साल? आनंद, पास में बैठे भिक्षु से कहा, क्या इतना समय व्यतीत हो गया? समय का कोई बोध नहीं है। चालीस साल? बुद्ध ने कहा, क्या इतना समय व्यतीत हो गया मुझे ज्ञान उपलब्ध हुए? कोई हिसाब नहीं है।
स्पेस में जीती है स्त्री। उसका चित्त जो है, वह स्थान में जीता है। स्थान अभी और यहीं फैला हुआ है। समय भविष्य और अतीत में फैला हुआ है।
स्थान वर्तमान में फैला हुआ है, अभी और यहीं! इसलिए स्थान का स्त्री को बहुत बोध है। और स्त्री ने जो कुछ भी थोड़ा-बहुत काम किया है, वह सब स्थान में है। चाहे वह घर बनाए, चाहे फर्नीचर सजाए, चाहे कमरे की सजावट करे, चाहे शरीर पर कपड़ा डाले, चाहे गहने पहने--यह सब स्पेसियल है, यह सब स्थान में है। इनका रूप-आकार स्थान में है। समय में इनकी कोई स्थिति नहीं है।
पुरुष इन बातों में बहुत रस नहीं ले पाता। ये उसे ट्रिवियल, क्षुद्र बातें मालूम पड़ती हैं। उसका रस समय में है। वह सोचता है, कम्युनिज्म कैसे आए! अब मार्क्स सौ साल पहले बैठ कर ब्रिटिश म्यूजियम की लाइब्रेरी में अपना पूरा जीवन नष्ट कर देता है--इस ख्याल में कि कभी कम्युनिज्म कैसे आए! मार्क्स उसे देखने को नहीं बचेगा। कोई कारण नहीं है उसके बचने का। लेकिन वह योजना बनाता है कि कम्युनिज्म कैसे आए! कोई और लाएगा, कोई और देखेगा;

आएगा, नहीं आएगा; इससे मतलब नहीं है। लेकिन मार्क्स इतनी मेहनत करता है, कोई स्त्री नहीं कर सकती।
मार्क्स ब्रिटिश म्यूजियम से तब हटता था, जब बेहोश हो जाता था पढ़ते- पढ़ते और लिखते-लिखते। अक्सर उसे बेहोश घर ले जाया गया है। और उसकी पत्नी हैरान होती थी कि तुम पागल हो! तुम कर क्या रहे हो? इसे लिख कर होगा क्या? उसकी किताब भी कोई छापने को तैयार नहीं था। स्त्री सोच ही नहीं सकती थी, इससे फायदा क्या है! यह किताब बिक भी नहीं सकती। उलटे मंहगा पड़ रहा था। मार्क्स ने कैपिटल लिखी, तो जितने में उसकी किताब बिकी, उससे ज्यादा की तो वह सिगरेट पी चुका था उसे लिखने में। तो मंहगा पड़ रहा था। और बेहोश घर उठा कर लाया जाता। लाइब्रेरी से धक्के देकर निकाला जाता; क्योंकि लाइब्रेरी बंद हो गई और वह हटता ही नहीं है, वह अपनी कुर्सी पकड़े हुए बैठा है। चपरासी कह रहे हैं, हटिए! और वह कह रहा है, थोड़ा और लिख लेने दो।
यह किसलिए? यह भविष्य की कोई कल्पना है कि कहीं किसी दिन साम्यवाद आएगा! इसमें कोई स्पेसियल बोध नहीं है, स्थान का कोई बोध नहीं है। कोई स्त्री यह नहीं कर सकती। अभी और यहीं! यहीं कुछ हो सकता हो, तो! उसके अंतर में ही समय की प्रतीति नहीं है।
लाओत्से मानता है कि समय की प्रतीति खो जाए, तो आप स्त्रैण-चित्त के
हो जाएंगे।
इसलिए दुनिया के समस्त साधकों ने यह कहा है कि जब समय मिट जाएगा, तभी ध्यान उपलब्ध होगा। व्हेन देयर इ.ज नो टाइम। जीसस से किसी ने पूछा है कि तुम्हारे स्वर्ग में खास बात क्या होगी? तो उन्होंने कहा, देयर शैल बी टाइम नो लांगर। खास बात जीसस ने बताई कि वहां समय नहीं होगा। समय होगा ही नहीं। और सब कुछ होगा, समय नहीं होगा। क्योंकि समय के साथ ही चिंताएं आती हैं। समय के साथ ही दौड़ आती है। समय के साथ ही वासना आती है। समय के साथ ही इच्छा का जन्म होता है। समय के साथ ही फल की आकांक्षा पैदा होती है। समय के साथ ही यहां नहीं, कहीं और हमारे सुख का साम्राज्य निर्मित हो जाता है। इसलिए स्त्रैण-चित्त के ये गुण भी ख्याल में रखेंगे, तो अगले सूत्र को
कल समझना हमें आसान हो सकेगा।
आज इतना ही। कीर्तन में पांच मिनट सम्मिलित हों। जो लोग वहां कीर्तन में सम्मिलित होना चाहें, भयभीत न हों। पास-पड़ोस के लोगों को भूल जाएं और कीर्तन में डूबें।

बीसवां प्रवचन

धन्य हैं वे जो अंतिम होने को राजी हैं

Chapter 7 : Sutra 1 & 2

Living For Others

1. Heaven is long enduring and Earth continues long.
The reason why heaven and earth are
able to endure and continue thus long is:
Because they do not live of, or for, themselves.
This is how they are able to continue and endure.

2. Therefore the sage puts his person last and
yet it is found in the foremost place; He treats
his person as if it were foreign to him and yet
that person is preserved.
Is it not because he has no private and
personal ends; that therefore such ends
are realized.

अध्याय 7 : सूत्र 1 व 2

सर्व -मंगल हेतु जीना

1. स्वर्ग और पृथ्वी दोनों ही नित्य हैं।
इनकी नित्यता का कारण है
कि ये स्वार्थ -सिद्धि के निमित्त नहीं जीते ;
इसलिए इनका सातत्य संभव होता है।
2. इसलिए तत्वविद (संत) अपने व्यक्तित्व
को पीछे रखते हैं ;
फिर भी वे सबसे आगे पाए जाते हैं।
वे निज की सत्ता की उपेक्षा करते हैं ,
फिर भी उनकी सत्ता सुरक्षित रहती है।
चूंकि उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता ,
इसलिए उनके लक्ष्यों की पूर्ति होती है।

जीवन दो प्रकार का हो सकता है। एक , इस भांति जीना , जैसे मैं ही सारे जगत का केंद्र हूं। इस भांति , जैसे सारा जगत मेरे निमित्त ही बनाया गया है। इस भांति कि जैसे मैं परमात्मा हूं और सारा जगत मेरा सेवक है। एक जीने का ढंग यह है। एक जीने का ढंग इससे बिल्कुल विपरीत है। ऐसे जीना , जैसे मैं कभी भी जगत का केंद्र नहीं हूं , जगत की परिधि हूं। ऐसे जीना , जैसे जगत परमात्मा है और मैं केवल उसका एक सेवक हूं।

ये दो ढंग के जीवन ही अधार्मिक और धार्मिक आदमी का फर्क हैं। अधार्मिक आदमी स्वयं को परमात्मा मान कर जीता है , सारे जगत को सेवक। और जैसे सारा जगत उसके लिए ही बनाया गया है , उसके शोषण के लिए ही। और धार्मिक आदमी इससे प्रतिकूल जीता है ; जैसे वह है ही नहीं। जगत है , वह नहीं है।

इन दोनों तरह के जीवन का अलग -अलग परिणाम होगा।

लाओत्से कहता है , स्वर्ग और पृथ्वी दोनों ही नित्य हैं , शाश्वत। बहुत लंबी उनकी आयु है। क्या है कारण उनके इतने लंबे होने का ? उनके नित्य होने का क्या कारण है ? क्योंकि वे स्वयं के लिए नहीं जीते हैं !

जो जितना ही स्वयं के लिए जीएगा; उतना ही उसका जीवन तनावग्रस्त, चिंता
से भरा हुआ, बेचैन और परेशानी का जीवन हो जाएगा। जो जितना ही अपने लिए जीएगा, उतनी ही परेशानी में जीएगा, उतनी ही जल्दी उसका जीवन क्षीण हो जाता है। चिंता जीवन को क्षीण कर जाती है। जो जितना ही अपने लिए कम जीएगा, उतना ही मुक्त, उतना ही निर्भार, उतना ही तनाव से शून्य, उतना ही विश्राम को उपलब्ध जीएगा।
कुछ बातें हम समझें तो ख्याल में आ सके।
मां के पेट में बच्चा होता है, तो नौ महीने तक सोया रहता है। पैदा होता है, तो फिर तेईस घंटे सोता है; एक घंटा जागता है। फिर बाईस घंटे सोता है; दो घंटे जागता है। फिर बीस घंटे सोता है। फिर धीरे-धीरे उसकी नींद कम होती जाती है और जागरण बड़ा होता जाता है। मध्य वय में आठ घंटे सोता है। फिर छह घंटे सोता है, फिर चार घंटे। फिर बुढ़ापे में दो घंटे की ही नींद रह जाती है। शायद आपने कभी न सोचा होगा कि बच्चे को सोने की ज्यादा जरूरत क्यों है? और बूढ़े को नींद की जरूरत क्यों कम हो जाती है?
जब जीवन निर्माण करता है, तो स्वयं का बिल्कुल ही स्मरण नहीं चाहिए। स्वयं का स्मरण जीवन के विकास में बाधा बनता है। बच्चा निर्मित हो रहा है, तो उसे चौबीस घंटे सुलाए रखती है प्रकृति; ताकि बच्चे को मेरे होने का ख्याल न आ पाए, वह ईगो-कांशसनेस न आ पाए। जैसे ही बच्चे को ख्याल आया कि मैं हूं, वैसे ही उसके विकास में बाधा पड़नी शुरू हो जाती है। वह मैं जो है, वह जीवन के ऊपर बोझ बन जाता है। जैसे-जैसे मैं बड़ा होगा, वैसे-वैसे नींद कम होती जाएगी। और बुढ़ापे में नींद बिल्कुल ही विदा हो जाएगी; क्योंकि फिर मृत्यु करीब आ रही है। अब जीवन को निर्मित होने की कोई जरूरत नहीं है, अब जीवन विसर्जित होने के करीब है। अब बूढ़ा आदमी पूरे समय जाग सकता है। अब जागने की कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन बच्चा नहीं जाग सकता।
चिकित्सक कहेंगे कि अगर कोई आदमी बीमार है और साथ ही उसकी नींद भी खो जाए, तो उसकी बीमारी को ठीक करना मुश्किल हो जाता है। इसलिए पहली फिक्र चिकित्सक करेगा कि बीमारी की हम पहले चिंता न करेंगे, पहले उसकी नींद की चिंता करेंगे। पहले उसे नींद आ जाए, तो बीमारी को दूर करना बहुत कठिन नहीं होगा। क्यों? क्योंकि नींद में वह मैं को भूल जाएगा और जितनी देर मैं को भूल जाए, उतनी ही देर के लिए जीवन निर्भार हो जाता है। और उसी बीच जीवन की सारी क्रियाएं अपना पूरा काम कर पाती हैं। अगर बीमार आदमी न सो सके, तो बीमारी से भी ज्यादा खतरनाक उसका जागना हो जाएगा। क्योंकि चिंता चौबीस घंटे उसके सिर पर बनी रहेगी।
आप रात आठ घंटा सोने के बाद सुबह ताजा अनुभव करते हैं अपने को, प्रसन्न अनुभव करते हैं। उसका कोई और कारण नहीं है। क्योंकि छह घंटे के लिए अहंकार से छुटकारा हुआ था। अगर मनुष्य-जाति हजारों-हजारों साल से शराब में, बेहोशी की और मादक द्रव्यों में रस लेती रही है, तो उसका एक ही कारण है। क्योंकि आदमी इतना चिंता और इतने अहंकार से भरा हुआ है कि उसका जीना मुश्किल हो जाता है, अगर वह अपने को न भूल पाए। इस पृथ्वी से शराब अलग न हो सकेगी, जब तक पूरी पृथ्वी ध्यान में डूबने को तैयार न हो। तब तक शराब को दूर करने का कोई भी उपाय नहीं है। क्योंकि दो ही उपाय हैं अहंकार से मुक्त होने केः या तो आप इतने ध्यान में उतर जाएं, जैसा लाओत्से कहता है कि आप अपने लिए जीना ही बंद कर दें; और या दूसरा उपाय यह है कि जबरदस्ती केमिकल ड्रग से अपने को बेहोश कर लें। मैं मिटेगा नहीं शराब से, लेकिन भूल जाएगा। और जितनी देर भूल जाएगा, उतनी देर अच्छा लगेगा। लेकिन जब होश आएगा वापस, तो वही मैं दुगुनी ताकत इकट्ठी करके खड़ा हो जाएगा। इतनी देर दबा रहा; उसका भी बदला, उसका भी रिवेंज लेगा।
जैसे-जैसे मनुष्य का अहंकार बढ़ा है, वैसे-वैसे दुनिया में बेहोश होने
की व्यवस्था में बढ़ती करनी पड़ी है। जितना सभ्य मुल्क, उतनी ज्यादा शराब! और अब हमें और नई चीजें खोजनी पड़ी हैं। मारिजुआना है, मेस्कलीन है, एल एस डी है। आदमी किसी तरह अपने को भूल पाए।
आखिर आदमी अपने को याद इतना रख कर क्यों परेशानी में पड़ता है?

लाओत्से कहता है, यह प्रकृति इतनी शाश्वत है इसीलिए कि इसे पता ही नहीं है कि मैं हूं। यह आकाश इतना नित्य है इसीलिए कि यह अपने लिए नहीं है, दूसरों के लिए है।
हम सब अपने लिए हैं। और जो आदमी जितना ज्यादा अपने लिए है, उतना परेशान होगा, विक्षिप्त हो जाएगा, पागल हो जाएगा। जितना हमारा बड़ा घेरा होता है जीने का, उतनी ही विक्षिप्तता कम हो जाती है। जो जितने ज्यादा लोगों के लिए जी सकता है, उतना ही हलका हो जाता है। उसमें पंख लग जाते हैं, वह आकाश में उड़ सकता है। और अगर कोई व्यक्ति अपने मैं को बिल्कुल ही भूल जाए, तो उसके जीवन पर किसी तरह के ग्रेविटेशन का, किसी तरह की कशिश का कोई प्रभाव नहीं रह जाता। उसकी जमीन में कोई जड़ें नहीं रह जातीं; वह आकाश में उड़ सकता है मुक्त होकर। पूरब ने इसी तरह के व्यक्तियों को मुक्त व्यक्ति कहा है, जिनका जीवन मैं-केंद्रित, ईगो-सेंट्रिक नहीं है।
यह मैंने आपसे कहा कि नींद आपको हलका कर जाती है इसीलिए कि उतनी देर
के लिए आप अपने मैं को भूल जाते हैं। मैंने आपसे कहा कि बुढ़ापे में नींद की जरूरत कम हो जाती है, क्योंकि मैं इतना सघन हो जाता है कि नींद को आने भी नहीं देता। वह इतना भारग्रस्त हो जाता है मन कि नींद के लिए जो शिथिलता और रिलैक्सेशन चाहिए, वह असंभव हो जाता है।
लेकिन एक और तरह के आदमी के बाबत हम जानते हैं, जिसकी नींद की भीतरी जरूरत समाप्त हो जाती है। कृष्ण ने गीता में कहा है कि वैसा जागा हुआ पुरुष नींद में भी जागता है। बुद्ध ने भी कहा है कि अब मैं सोता हूं जरूर, लेकिन वह नींद मेरे शरीर की ही नींद है, मेरी नहीं। महावीर ने कहा है, जब तक नींद जारी रहे, तब तक जानना कि तुम्हारे भीतर आत्मा का अनुभव शुरू नहीं हुआ है।
एक और जागरण भी है, जब कि भीतर किसी नींद की कोई जरूरत नहीं रह जाती, क्योंकि कोई अहंकार नहीं रह जाता, जिसे उतारने के लिए नींद की, बेहोशी की आवश्यकता हो। कोई भीतर अहंकार नहीं रह जाता, तो कोई तनाव नहीं रह जाता। तनाव नहीं रह जाता, तो नींद की कोई जरूरत नहीं रह जाती। शरीर थकेगा, सो लेगा; लेकिन भीतर चेतना जागती ही रहेगी। भीतर चेतना देखती रहेगी कि अब नींद आई; और अब नींद शरीर पर छा गई; और अब नींद समाप्त हो गई; और शरीर नींद के बाहर हो गया। भीतर कोई सतत जाग कर इसे भी देखता रहेगा।
कभी आपने सोचा न होगा, कभी आपने अपनी नींद को आते हुए देखा है या कभी जाते हुए देखा है? अगर देखा हो, तो आप एक धार्मिक आदमी हैं। और अगर न देखा हो, तो आप एक धार्मिक आदमी नहीं हैं। आप कितने मंदिर जाते हैं, इससे कोई संबंध नहीं है। और कितनी गीता और कुरान पढ़ते हैं, इससे भी कोई संबंध नहीं है। जांच की विधि और है। और वह यह है कि क्या आपने अपनी नींद को आते देखा है? क्योंकि नींद को आते वही देख सकता है, जो भीतर नींद के आने पर भी जागा रहे। अन्यथा कैसे देख सकेगा? नींद आएगी, आप सो चुके होंगे। नींद जाएगी, तब आप जागेंगे। इसलिए आपने अपनी नींद को कभी नहीं देखा है। जब नींद आ गई होती है, तब आप मौजूद नहीं रह जाते। देखेगा कौन? और जब नींद जाती है, तब आप सोए होते हैं। देखेगा कौन? नींद और आपका मिलन कभी नहीं होता। उसका अर्थ यह हुआ कि आप ही नींद बन जाते हैं। जब नींद आती है, तो आप इतने बेहोश हो जाते हैं कि भीतर का कोई कोना अलग खड़े होकर देख नहीं सकता कि नींद आ रही है।
और जिस व्यक्ति ने अपने भीतर आती नींद नहीं देखी, वह व्यक्ति अपने भीतर आते क्रोध को भी नहीं देख पाएगा। क्योंकि क्रोध के पहले भी निद्रा की स्थिति शरीर में फैल जाती है। वह जरूर देख पाएगा पीछे, बाद में, जब क्रोध जा चुका होगा, या क्रोध अपना काम कर चुका होगा। तब वह पछताएगा और कहेगा, बुरा हुआ, क्रोध नहीं करना था। लेकिन जब क्रोध आएगा, उस पहले चरण में वह नहीं देख पाएगा। और जो व्यक्ति क्रोध को पहले चरण में देख ले, वह क्रोध से मुक्त हो जाता है। कामवासना, सेक्स भीतर उठेगा, तो पहले चरण में नहीं दिखाई पड़ेगा। जो व्यक्ति पहले चरण में देख ले, वह वासना से मुक्त हो जाता है। क्योंकि जीवन की सारी व्यवस्था, जैसे जीवन में हम हैं, वह मूर्च्छा से चलती है। और हमारी मूर्च्छा का जो केंद्र है, ओरिजिनल सोर्स है, वह हमारा अहंकार है।

लाओत्से कहता है, यह नित्य है प्रकृति, क्योंकि यह अपने लिए नहीं जीती।
अपने लिए वही नहीं जीएगा, जिसको अपना ख्याल ही नहीं है। हम सब अपने लिए ही जीते हैं। उपनिषद में एक बहुत अदभुत वचन है कि पति पत्नी को प्रेम नहीं करता; पत्नी के द्वारा अपने को ही प्रेम करता है। बाप बेटे को प्रेम नहीं करता; बेटे के द्वारा अपने को ही प्रेम करता है। मां बेटे को प्रेम नहीं करती; बेटे के द्वारा अपने को ही प्रेम करती है। उपनिषद का यह वचन कहता है कि हम जब कहते भी हैं कि हम दूसरे को प्रेम करते हैं, तब भी हम केवल उसके माध्यम से अपने को ही प्रेम करते हैं। हम अगर कहते भी हैं कि हम दूसरे के लिए जीते हैं, तो भी वह हमारा कहना वास्तविक नहीं है, उसमें भ्रांति है। क्योंकि जिसके लिए हम कहते हैं कि तुम्हारे लिए जीते हैं, कल हम उसी की हत्या करने को भी तैयार हो सकते हैं।
अगर मैं कहता हूं कि मैं अपने बेटे के लिए जीता हूं; और बेटा कल अगर मुझे नाराज कर दे और मेरी इच्छाओं के प्रतिकूल चला जाए, तो मैं उसी बेटे के लिए सब तरह की बाधाएं, उसके जीवन में सब तरह की मुसीबतें खड़ी कर सकता हूं। और मैं कहता था, मैं उसी के लिए जीता हूं! जब तक वह मेरा बेटा था, मेरे अनुकूल चलता था, मेरी छाया था, मेरे अहंकार की तृप्ति करता था, मेरे ही अहंकार का विस्तार और एक्सटेंशन था, तब तक मैं उसके लिए कहता था कि मैं जीता हूं। मैं उस पत्नी को कह सकता हूं कि तेरे लिए जीता हूं, जो मेरी तृप्ति का साधन हो, मेरी वासनाओं की पूर्ति बने, जो मेरे लिए चारों तरफ छाया बन कर जीए। उससे मैं कह सकता हूं कि मैं तेरे लिए जीता हूं। लेकिन इससे कोई भ्रांति पैदा न हो। यह मैं तभी तक जीता हूं, जब तक उसकी उपयोगिता है। जिस दिन मेरे लिए उपयोगिता नहीं, मेरे अहंकार के लिए वह व्यर्थ है, उसे मैं वैसे ही उठा कर फेंक दूंगा, जैसे घर में काम आ गई चीज को हम व्यर्थ समझ कर वापस बाहर फेंक देते हैं। वह सब कचरा होकर बाहर फिंक जाता है।
हम लेकिन दावा करते हैं कि हम दूसरे के लिए जीते हैं। दूसरे के लिए हम
तब तक नहीं जी सकते, जब तक हमारा अहंकार भीतर शेष है। तब तक हम कितना ही कहें, हम अपने लिए ही जीएंगे।
एक आदमी कहता है कि मैं देश के लिए जीता हूं और देश के लिए मरता हूं।
वह भी कोई आदमी देश के लिए न जीता और न देश के लिए मरता है। मेरे देश के लिए मरता है और उस मरने में भी मेरे अहंकार की तृप्ति है। अगर मैं हिंदू हूं, तो मैं हिंदू जाति के लिए मर सकता हूं। लेकिन मैं आखिरी क्षण में, मरने फांसी की सजा पर खड़ा हूं, और फांसी के तख्ते पर चढ़ गया हूं, और मुझे कोई आकर बता दे कि तुम भ्रांति में रहे कि तुम हिंदू हो, थे तो तुम मुसलमान ही, लेकिन तुम्हारे मां-बाप ने तुम्हें हिंदू के घर में केवल बड़ा किया था! उसी क्षण मुझे पता चलेगा कि सब फांसी व्यर्थ हो गई, उसी क्षण मेरा सारा का सारा रूप बदल जाएगा। मैं हिंदू के लिए नहीं मर रहा था। मैं हिंदू था, मेरा अहंकार हिंदू था और हिंदू के लिए मरने में भी मेरे अहंकार की तृप्ति थी, तो मर रहा था। आज तृप्ति नहीं है, तो बात समाप्त हो जाएगी। आज मैं पछताऊंगा कि यह मैंने क्या पागलपन किया है!
जब तक अहंकार है, तब तक हम जो भी करेंगे, अहंकार ही उनका मालिक रहेगा। इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है। क्योंकि हम बहुत से काम करते हैं यह सोच कर कि इससे अहंकार का कोई संबंध नहीं है। लेकिन हम जो भी करेंगे, जब तक भीतर अहंकार है, वह उससे ही संबंधित होगा। हम विनम्रता भी आरोपित कर सकते हैं अपने ऊपर; वह भी हमारे अहंकार का ही आभूषण बन कर समाप्त हो जाएगी। मैं आपके चरणों में भी गिर सकता हूं, धूल हो सकता हूं चरणों की, लेकिन फिर भी मेरा अहंकार घोषणा करता रहेगा कि मुझसे ज्यादा विनम्र और कोई भी नहीं है। मैं चरणों की धूल हूं! वह मेरा मैं इस विनम्रता का भी शोषण करेगा और इस विनम्रता से भी मजबूत होगा। अहंकार त्याग भी कर सकता है, सब छोड़ सकता है, लेकिन स्वयं बच जाता है। उसका कोई अंत नहीं होता।
तो जब लाओत्से जैसा व्यक्ति कहता है कि तभी शाश्वत और नित्य जीवन उपलब्ध होगा, जब दूसरों के लिए जीना शुरू हो... । लेकिन दूसरों के लिए मैं तभी जी सकता हूं, जब मेरा भीतर मैं न रह जाए, या मेरा मैं ही दूसरों के भीतर मुझे दिखाई पड़ने लगे। ये दोनों एक ही बात हैं। मेरा मैं ही मुझे सबके भीतर

दिखाई पड़ने लगे, तो भी एक ही घटना घट जाती है। या मेरे भीतर मैं शून्य हो जाए, तो भी वही घटना घट जाती है।
दूसरे के लिए मैं तभी जी सकता हूं--यह वाक्य मेरा पैराडाक्सिकल मालूम पड़ेगा, लेकिन इसे जोर से मैं दोहराना चाहता हूं--दूसरे के लिए मैं तभी जी सकता हूं, जब दूसरा मेरे लिए दूसरा न रह जाए। जब तक दूसरा मेरे लिए दूसरा है, तब तक मैं दूसरे के लिए नहीं जी सकता। तब तक मैं अपने लिए ही जीए चला जाऊंगा। अगर मुझे इतनी भी प्रतीति होती है कि दूसरा दूसरा है, तो वह प्रतीति मेरे अहंकार की प्रतीति है। अन्यथा मैं कैसे जानूंगा कि दूसरा दूसरा है! दूसरा मुझे दूसरा मालूम न पड़े, तो ही मैं दूसरे के लिए जी सकता हूं।
इसे हम ऐसा भी कह सकते हैं कि मैं इतना फैल जाऊं कि सभी मुझे मेरे ही रूप मालूम पड़ने लगें। तो मैं जी सकता हूं। और ऐसा जीवन निश्चिंत जीवन है। और ऐसा जीवन निर्भार जीवन है। और ऐसा जीवन परम स्वातंष्य का जीवन है। और ऐसे जीवन के साथ ही शाश्वत के साथ संबंध जुड़ने शुरू होते हैं। अन्यथा हमारे जो संबंध हैं, वे सामयिक के साथ हैं, शाश्वत के साथ नहीं। हमारे जो संबंध हैं, वे क्षणभंगुर के साथ हैं। क्योंकि अहंकार से ज्यादा क्षणभंगुर और कोई चीज नहीं है। तो अहंकार केवल क्षणभंगुर से ही संबंधित हो सकता है। अहंकार करीब-करीब ऐसा है। अगर हम बुद्ध के प्रतीक को लें, तो समझ में आ सके। क्योंकि बुद्ध ने अहंकार और आत्मा का एक ही अर्थ किया है। बुद्ध कहते थे, आत्मा या अहंकार ऐसा है जैसे सांझ हम दीया जलाते हैं और सुबह हम दीया बुझाते हैं, तो हम यही समझते हैं कि जो दीया हमने सांझ जलाया था, वही सुबह हमने बुझाया। वह गलत है। क्योंकि दीए की ज्योति तो प्रतिपल बुझती जाती है और नई होती चली जाती है। हम देख नहीं पाते गैप। एक ज्योति धुआं होकर आकाश में चली जाती है; उसकी जगह दूसरी ज्योति स्थापित हो जाती है। दोनों के बीच का जो अंतराल है, वह इतनी तीव्रता से भरता है कि हमारी आंखें उसे पकड़ नहीं पातीं। अगर हम किसी तरह स्लो मोशन कर सकें, ज्योति को धीमे चला सकें या हमारी आंख की गति को बढ़ा सकें, तो हम बराबर देख सकेंगे कि एक ज्योति बुझ गई और दूसरी ज्योति आ गई, दूसरी बुझ गई और तीसरी आ गई। रात भर ज्योतियों की एक सीरीज, एकशृंखला जलती-बुझती है। जो ज्योति हमने सांझ को जलाई, वह सुबह हम नहीं बुझाते। सुबह हम उसीशृंखला में एक ज्योति को बुझाते हैं, जो सांझ बिल्कुल नहीं थी।
बुद्ध कहते थे, अहंकार एक सीरीज है। एक वस्तु नहीं है, एकशृंखला है। लेकिन इतनी तीव्रता सेशृंखला चलती है कि हमें लगता है कि मैं एक अहंकार हूं। जोर से। कभी आपने फिल्म में अगर पीछे प्रोजेक्टर धीमा चल रहा हो और फिल्म धीमी चलने लगी हो, तो आपको ख्याल में आया होगा, स्लो मोशन हो जाता है। एक आदमी अगर फिल्म की तस्वीर पर अपने हाथ को नीचे से ऊपर तक उठाता है, तो इतना हाथ उठाने के लिए हजार तस्वीरों की जरूरत पड़ती है। हजार पोजीशंस में तस्वीरें उठानी पड़ती हैं। थोड़ी नीचे, फिर थोड़ी ऊपर, फिर थोड़ी ऊपर। और वे हजार तस्वीरें एक तेजी से घूमती हैं इसलिए हाथ आपको ऊपर उठता हुआ मालूम पड़ता है।
अभी भी मोशन पिक्चर हम नहीं लेते। अभी भी पिक्चर तो हम सब लेते हैं, वह स्टेटिक है। अभी भी जो चित्र हम लेते हैं फिल्म में, वह कोई मूवी नहीं है। अभी भी सब चित्र थिर हैं, ठहरे हुए हैं। लेकिन ठहरे हुए चित्रों को हम इतनी तेजी से घुमाते हैं, एक-दूसरे के ऊपर इतने जोर से प्रोजेक्ट करते हैं, बीच की खाली जगह हम को दिखाई नहीं पड़ती, हाथ हमें उठता हुआ मालूम पड़ता है। इसलिए आपने अगर फिल्म की टुकड़न देखी हो, तो आप हैरान हुए होंगे--एक से चित्र हजारों मालूम पड़ते हैं। जरा-जरा सा फर्क होता है। अगर हम एक आदमी को सीढ़ी से उतरते वक्त उसका पूरा मोशन का पिक्चर ले लें, जैसा कि अगर आप में से किसी ने पिकासो के चित्र देखें हों--जैसे सीढ़ी से उतरते हुए एक आदमी का चित्र है पिकासो का--तो आप पहचान भी नहीं पाएंगे कि आदमी कहां है। हजारों पैर सीढ़ी से उतर रहे हैं, हजारों हाथ सीढ़ी से उतर रहे हैं, हजारों सिर। वे सब मिश्रित हो गए हैं। अगर हम इतनी तेजी से देख सकें, तो आदमी हम को नहीं दिखाई पड़ेगा, सिर्फ मूवमेंट्स दिखाई पड़ेंगे। अगर मेरा हाथ नीचे से ऊपर तक उठता है, अगर आप पूरी गति को देख सकें, तो आपको हाथ तो दिखाई ही नहीं पड़ेगा,

अनेक आकृतियां नीचे से ऊपर तक दिखाई पड़ेंगी, जिनमें कुछ भी तय करना मुश्किल हो जाएगा। हम बीच के अंतराल को नहीं देख पाते, इसलिए हाथ दिखाई पड़ता है।
अहंकार तीव्रता से घूमती हुई फिल्म है। और प्रतिपल अहंकार पैदा होता है, जैसे प्रतिपल दीए की ज्योति पैदा होती है। इसलिए आपके पास एक ही अहंकार नहीं होता, चौबीस घंटे में हजार दफे बदल गया होता है। और उसके हजार रूप होते हैं। अगर आप थोड़ा ख्याल करें और अपने माइंड के प्रोजेक्टर को थोड़ा स्लो मूवमेंट दें, थोड़ी धीमी गति दें, तो आप पहचान पाएंगे।
आप कमरे में बैठे हैं; आपका मालिक कमरे के भीतर आता है। तब जरा ख्याल करें, आपके अहंकार की क्या वही स्थिति है, जैसा सुबह जब नौकर आपके कमरे में आया था! जब नौकर आपके कमरे में आता है, तब आपके अहंकार की स्थिति और होती है। सच तो यह है कि नौकर दिखाई ही नहीं पड़ता कि कमरे में कब आया और गया। नया हो तो दिखाई भला पड़ जाए; अगर पुराना नौकर है और एडजस्टमेंट हो गया है, तो नौकर का पता ही नहीं चलता, कमरे में कब आया और कब गया। और एक लिहाज से अच्छा है, क्योंकि नौकर का बार-बार आना पता चले तो तकलीफदेह होगा। नौकर आता है, बुहारी लगाता है, चला जाता है, आपको पता ही नहीं चलता। आप जैसे कुर्सी पर बैठे थे, वैसे ही बैठे रहते हैं। आपके गेस्चर में, आपकी मुद्रा में कोई फर्क नहीं पड़ता। नौकर न आता तो जैसे आप होते, वैसे ही आप हैं।
लेकिन आपका मालिक भीतर आ जाता है, सब कुछ बदल जाता है। आप वही आदमी नहीं होते। उठ कर खड़े हो जाते हैं, स्वागत की तैयारी करते हैं। मुद्रा बदल जाती है; उदास थे, तो हंसने लगते हैं।
आपका अहंकार दूसरा रूप लेता है मालिक के साथ। नौकर के साथ दूसरा रूप लेता है। मित्र के साथ तीसरा रूप लेता है। शत्रु के साथ चौथा रूप लेता है। अजनबी के साथ और रूप लेता है। चौबीस घंटे आपके अहंकार को बदलना पड़ रहा है। लेकिन वह इतनी तेजी से बदल रहा है कि आपको भी कभी ख्याल नहीं आता कि बदलाहट इतनी तीव्रता से हो रही है। क्षण भर में बदल जाता है।
अहंकार कोई वस्तु नहीं है। अहंकार प्रतिपल संबंधों के बीच पैदा होने वाली एक घटना है--ईवेंट, नॉट ए थिंग। अहंकार एक घटना है, वस्तु नहीं। और इसलिए अगर आपको जंगल में अकेला छोड़ दिया जाए, तो आपके पास वही अहंकार नहीं रह जाता जो शहर में था। क्योंकि उस अहंकार को पैदा करने वाली स्थिति नहीं रह जाती। अगर आपको जंगल में बिल्कुल अकेला छोड़ दिया जाए, तो आप वही आदमी नहीं रह जाते जो आप बस्ती में थे। क्योंकि बस्ती में जो स्थिति थी, जो अहंकार पैदा होता था, वह जंगल में पैदा नहीं हो सकता।
इसलिए अनेक लोगों को जंगल में जाकर लगता है, बड़ी राहत मिलती है, शांति मिलती है। वह शांति जंगल की नहीं है। वह आपके भीतर अहंकार पैदा होने की जगह वहां नहीं है इसलिए है। जंगल शांति नहीं देता। जो आदमी अहंकार से बचने की व्यवस्था बंबई में कर ले सकता है, वह बंबई की चौपाटी पर भी अहंकार के बाहर हो जाएगा। लेकिन आपको जंगल जाना पड़ता है या हिमालय जाना पड़ता है, क्योंकि वहां आप इस सारी व्यवस्था से टूट जाते हैं। यह जो तेल आपको मिलता था अहंकार को, वहां नहीं मिलता।
लेकिन कितनी देर नहीं मिलेगा? आप पुराने आदी हैं। अहंकार की आदत है।
आप नए अहंकार पैदा कर लेंगे। जेलखाने में जो कैदी बहुत दिन तक रह जाते हैं, वे अपने से ही बातचीत शुरू कर देते हैं। वे अपने को ही दो हिस्सों में बांट लेते हैं। ऐसे कैदियों के बाबत खबर है कि जो छिपकलियों से बात करने लगते हैं, मकड़ियों से बात करने लगते हैं। उनका नाम भी रख लेते हैं। उनकी तरफ से जवाब भी देते हैं।
आपको हंसी आएगी। लेकिन आपको पता नहीं, आप भी यही करेंगे। क्योंकि अकेले में अहंकार को बचाना मुश्किल हो जाएगा। एक मकड़ी की भी सहायता ली जा सकती है। महल की ही सहायता से अहंकार खड़ा होता हो, ऐसा नहीं; लंगोटी का तेल भी अहंकार की ज्योति को जला सकता है। जरूरत पड़ जाए, तो लंगोटी से भी काम ले लेगा। और मेरी लंगोटी में उतना ही मजा आ जाएगा, जितना मेरे साम्राज्य में आता था; कोई अंतर नहीं पड़ेगा। क्वालिटेटिव कोई अंतर नहीं पड़ेगा; क्वांटिटेटिव अंतर तो पड़ता है। लेकिन गुणात्मक कोई अंतर नहीं पड़ेगा।

सुना है मैंने कि अकबर यमुना के दर्शन के लिए आया था। यमुना के तट पर
जो आदमी उसे दर्शन कराने ले गया था, वह उस तट का बड़ा पुजारी, पुरोहित था। निश्चित ही, गांव के लोगों में सभी को प्रतिस्पर्धा थी कि कौन अकबर को यमुना के तीर्थ का दर्शन कराए। जो भी कराएगा, न मालूम अकबर कितना पुरस्कार उसे देगा! जो आदमी चुना गया, वह धन्यभागी था। और सारे लोग ईर्ष्या से भर गए थे। भारी भीड़ इकट्ठी हो गई थी।
अकबर जब दर्शन कर चुका और सारी बात समझ चुका, तो उसने सड़क पर पड़ी हुई
एक फूटी कौड़ी उठा कर पुरस्कार दिया उस ब्राह्मण को, जिसने यह सब दर्शन कराया था। उस ब्राह्मण ने सिर से लगाया, मुट्ठी बंद कर ली। कोई देख नहीं पाया। अकबर ने जाना कि फूटी कौड़ी है और उस ब्राह्मण ने जाना कि फूटी कौड़ी है। उसने मुट्ठी बंद कर ली, सिर झुका कर नमस्कार किया, धन्यवाद दिया, आशीर्वाद दिया।
सारे गांव में मुसीबत हो गई कि पता नहीं, अकबर क्या भेंट कर गया है। जरूर कोई बहुत बड़ी चीज भेंट कर गया है। और जो भी उस ब्राह्मण से पूछने लगा, उसने कहा कि अकबर ऐसी चीज भेंट कर गया है कि जन्मों-जन्मों तक मेरे घर के लोग खर्च करें, तो भी खर्च न कर पाएंगे।
फूटी कौड़ी को खर्च किया भी नहीं जा सकता। खबर उड़ते-उड़ते अकबर के महल
तक पहुंच गई। और अकबर से जाकर लोगों ने कहा कि आपने क्या भेंट दी है? दरबारी भी ईर्ष्या से भर गए। क्योंकि ब्राह्मण कहता है कि जन्मों-जन्मों तक अब कोई जरूरत ही नहीं है; यह खर्च हो ही नहीं सकती। जो अकबर दे गया है, वह ऐसी चीज दे गया है, जो खर्च हो नहीं सकती।
अकबर भी बेचैन हुआ। क्योंकि वह तो जानता था कि फूटी कौड़ी उठा कर दी है। उसको भी शक पकड़ने लगा कि कुछ गड़बड़ तो नहीं है। उस फूटी कौड़ी में कुछ छिपा तो नहीं है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैंने सड़क से उठा कर दे दी; उसके भीतर कुछ हो! बेचैनी अकबर को भी सताने लगी। एक दिन उसकी रात की नींद भी खराब हो गई। क्योंकि सभी दरबारी एक ही बात में उत्सुक थे कि उस आदमी को दिया क्या है? उसकी पत्नियां भी आतुर हो गईं कि ऐसी चीज हमें भी तुमने कभी नहीं दी है। उस ब्राह्मण को तुमने दिया क्या है?
वह ब्राह्मण निश्चित ही कुशल आदमी था। आखिर अकबर को उस ब्राह्मण को बुलाना पड़ा।
वह ब्राह्मण बड़े आनंद से आया। उसने कहा कि धन्य मेरे भाग्य, ऐसी चीज आपने दे दी है कि कभी खर्च होना असंभव है। जन्मों-जन्मों तक हम खर्च करें, तो भी खर्च नहीं होगी। अकबर ने कहा कि मेरे साथ जरा अकेले में चल, भीतर चल! अकबर ने पूछा, बात क्या है? उसने कहा, बात कुछ भी नहीं है। आपकी बड़ी अनुकंपा है! अकबर कोशिश करने लगा तरकीब से निकालने की; लेकिन उस ब्राह्मण से निकालना मुश्किल था जो आधी कौड़ी पर इतना उपद्रव मचा दिया था। वह कहता कि आपकी अनुकंपा है, धन्य हमारे भाग्य! सम्राट बहुत हुए होंगे, लेकिन ऐसा दान कभी किसी ने नहीं दिया है। और ब्राह्मण भी बहुत हुए दान लेने वाले, लेकिन जो मेरे हाथ में आया है, वह कभी किसी ब्राह्मण के हाथ में नहीं आया होगा। यह तो घटना ऐतिहासिक है।
आखिर अकबर ने कहा, हाथ जोड़ता हूं तेरे, अब तू सच-सच बता दे, बात क्या है? तुझे मिला क्या है? मैंने तुझे फूटी कौड़ी दी थी! उस ब्राह्मण ने कहा, अगर अहंकार कुशल हो, तो फूटी कौड़ी पर भी साम्राज्य खड़े कर सकता है। हमने फूटी कौड़ी पर ही साम्राज्य खड़ा कर लिया। तुम्हारे मन में तक ईर्ष्या पैदा हो गई कि पता नहीं, क्या मिल गया है! और तुम भलीभांति जानते हो कि फूटी कौड़ी ही थी।
अहंकार कुशल है। हो ऐसा नहीं; है ही। और अहंकार फूटी कौड़ी पर भी साम्राज्य खड़े कर लेता है। हम सबके पास अहंकार के नाम पर कुछ भी नहीं है; फूटी का.ैडी भी शायद नहीं है। पर साम्राज्य हम खड़ा कर लेते हैं।
अगर हम हट जाएं अपने रिलेशनशिप्स के जगत से, वह जो हमारे अंतर्संबंधों का जगत है, तो दो-चार दिन के लिए खालीपन रहेगा। पहाड़ पर यही होता है; एकांत में यही होता है। लेकिन दो-चार दिन के बाद ही हमारा मन नए इंतजाम कर लेगा, नए संबंध बना लेगा, नया तेल जुटा लेगा, बाती फिर जलने लगेगी।

लेकिन एक बात ध्यान रख लेनी जरूरी है कि अहंकार हमें चौबीस घंटे पैदा करना पड़ता है। वह कोई ऐसी चीज नहीं है, जो है। वह करीब-करीब ऐसा है, जैसे कोई आदमी साइकिल चलाता है। पैडल मारता रहे, तो साइकिल चलती है; पैडल बंद कर दे, साइकिल बंद हो जाती है। कोई इस भ्रम में न रहे कि पैडल बंद रहेंगे और साइकिल चलती रहेगी। थोड़ी देर चल भी सकती है पुराने मोमेंटम से। या उतार हो, तो थोड़ी-बहुत देर चल सकती है। लेकिन चल नहीं पाएगी, गिर ही जाएगी। अहंकार भी ठीक चौबीस घंटे चलाइए, तो चलता है। मिटाने की कोई भी जरूरत नहीं है अहंकार को, सिर्फ चलाना बंद कर देना पर्याप्त है। लेकिन आमतौर से लोग पूछते हैं, अहंकार को कैसे मिटाएं? अगर आपने कैसे मिटाया, तो आप मिटाने के लिए पैडल चलाने लगते हैं। उससे मिटता नहीं। अगर आपने मिटाने का पूछा, तो आप समझे ही नहीं। लेकिन शिक्षक समझाए जाते हैं लोगों को कि अहंकार को मिटाओ, क्योंकि लाओत्से जैसे लोगों को पढ़ लेते हैं। पढ़ लेना बहुत आसान है; उन्हें समझना बहुत मुश्किल है। पढ़ लेते हैं, तो एक ही ख्याल आता है कि अहंकार को कैसे मिटाएं! क्योंकि लाओत्से कहता है, अहंकार मिट जाए तो जीवन शाश्वत हो जाए, अमृत को उपलब्ध हो जाए। हमारे मन में भी लोभ पकड़ता है--लोभ, ज्ञान नहीं--लोभ पकड़ता है कि हम भी अमृत को कैसे उपलब्ध हो जाएं! कैसे वह जीवन हमें मिल जाए, जहां कोई मृत्यु नहीं है, कोई अंधकार नहीं है! कैसे हम शाश्वत चेतना को पा जाएं! लोभ हमारे मन को पकड़ता है-- ग्रीड! और वह लोभ हमसे कहता है कि लाओत्से कहता है, अहंकार न रहे तो। तो वह लोभ हमसे कहता है, अहंकार कैसे मिट जाए!
फिर हम मिटाने की कोशिश में लग जाते हैं। कोई घर छोड़ता है, कोई पत्नी
को छोड़ता है, कोई धन छोड़ता है, कोई वस्त्र छोड़ता है, कोई गांव छोड़ कर भागता है। फिर हम छोड़ कर भागने में लगते हैं कि शायद यह छोड़ने से मिट जाए। छोड़ने की भ्रांति इसलिए पैदा होती है कि लगता है, जिससे हमारा अहंकार बड़ा हो रहा है, उसे छोड़ दें। महल है आपके पास, तो लगता है महल की वजह से मेरा अहंकार बड़ा है। और जब मैं झोपड़ी वाले के सामने से निकलता हूं, तो मेरा अहंकार मजबूत होता है, क्योंकि मेरे पास महल है।
इसलिए अहंकार कम करने वाले जो नासमझ हैं--मैं दोहराता हूं, अहंकार कम करने वाले जो नासमझ हैं--वे कहेंगे कि महल छोड़ दो, तो अहंकार छूट जाएगा। लेकिन आपको पता नहीं कि महल को छोड़ कर जब कोई झोपड़ी के सामने से निकलता है, तब उसके पास महल वाले अहंकार से भी बड़ा अहंकार होता है। तब वह झोपड़ी में रहने वाले को ऐसा देखता है, जैसे पापी! सड़ेगा नर्क में! झोपड़ी भी नहीं छोड़ पा रहा और मैं महल छोड़ चुका हूं! वह महल छोड़ कर चला हुआ आदमी नया तेल जुटा लेता है। वह उस तेल से फिर अपनी बाती को जगा लेता है। अंतर नहीं पड़ता।
महल से किसी का अहंकार नहीं है। हां, अहंकार से महल खड़े होते हैं। लेकिन महलों से कोई अहंकार खड़ा नहीं होता। अहंकार किसी भी चीज का सहारा लेकर खड़ा हो जाता है। इसलिए असली सवाल यह है कि अहंकार प्रतिपल जो पैदा होता है, वह कैसे पैदा न हो। कोई अहंकार की संपदा नहीं है, जिसे नष्ट करना है। अहंकार प्रतिपल पैदा होता है। उसमें हम रोज तेल डालते हैं, पानी सींचते हैं, उसकी जड़ों को गहरा करते हैं। उसमें रोज पत्ते आते चले जाते हैं। वह हमारी रोज की मेहनत है।
इसलिए नींद में हम सो जाते हैं, तो सुबह हलकापन लगता है। क्योंकि रात
भर कम से कम हम अहंकार को पोषित नहीं कर पाते। पैडल छूट जाते हैं रात भर के लिए; सुबह हम हलके उठते हैं। सुबह आदमी अलग होता है। इसलिए सुबह आदमी की शक्ल अलग मालूम पड़ती है। अगर आदमी से कोई भले काम की आशा हो, तो सुबह ही उससे प्रार्थना कर लेनी चाहिए। दोपहर तक तो सब गड़बड़ हो गया होता है। इसलिए भिखारी सुबह भीख मांगने आते हैं, शाम को नहीं आते। वे जानते हैं आपको भलीभांति कि सुबह शायद नींद आई हो आदमी को अच्छी तो थोड़ा अपने को भूल जाए, तो दो पैसे इससे छूट सकें। सांझ को कोई आशा नहीं है आपसे; क्योंकि सांझ तक, दिन भर आपने इतना पैडल मारे हैं कि अहंकार काफी मजबूत होगा। रात्रि अक्सर आदमी लड़ते-लड़ते सोते हैं, चाहे वे अपनी पत्नियों से लड़ रहे हों या चाहे किसी और से लड़ रहे हों। अक्सर रात सोते-सोते जो आखिरी घटना है, वह लड़ाई है, वह किसी तरह का वैमनस्य है। क्योंकि दिन भर अहंकार मजबूत

होता है; बहुत धुआं इकट्ठा हो जाता है उसके आस-पास। अगर यह बहुत ज्यादा हो जाए, तो रात नींद भी नहीं आ सकती; क्योंकि इसका तनाव रात भर पकड़े रहेगा। इसका तनाव भीतर प्रवेश कर जाएगा। स्नायु शिथिल नहीं हो पाएंगे, उनमें खून दौड़ता ही रहेगा। जैसे-जैसे आदमी सभ्य होता है, उतना-उतना अहंकार और उतनी- उतनी ही निद्रा क्षीण होती चली जाती है।
अहंकार वस्तु नहीं है। लाओत्से के हिसाब से अहंकार एक घटना है। और घटना भी कहना ठीक नहीं, ज्यादा ठीक होगाः ए सीरीज ऑफ ईवेंट्स, घटनाओं का एक क्रम। कहीं से भी क्रम तोड़ दिया जाए, तो घटना अभी टूट सकती है। सच बात यह है कि हम उसे नई गति और नई शक्ति न दें।
हम उसे शक्ति और गति देते कैसे हैं? हमारी व्यवस्था क्या है?
हमारी व्यवस्था यह है कि हम चौबीस घंटे इसी कोशिश में रहते हैं, कैसे अहंकार को ज्यादा तेल मिल जाए। तेल देने के कई रास्ते हैं। जो बड़े से बड़ा रास्ता है, वह यह है कि लोगों का ध्यान मेरी तरफ आकर्षित हो। अहंकार के लिए जो बड़े से बड़ा तेल है, वह है लोगों का ध्यान मेरी तरफ आकर्षित हो, लोग मेरी तरफ देखें। इसलिए राजनीति इतनी प्रभावी हो जाती है। और दुनिया इतनी धीरे- धीरे राजनैतिक होती चली जाती है। उसका कारण है कि राजनीति जितने जोर से चित्त को लोगों को आकर्षित करवा लेती है, उतनी और कोई चीज आकर्षित नहीं करवा पाती।
ढेर लोग अदालतों में बयान दिए हैं कि उन्होंने सिर्फ इसलिए हत्या की
कि अखबारों में पहले नंबर पर उनका नाम छप जाए बड़े हेडिंग में। और कोई आकर्षण न था। कोई आदमी हत्या कर सकता है इसलिए कि अखबार में सुर्खी उसके नाम की हो! अखबार में चित्र तो एक दफा छप जाए उसका! सारी दुनिया उसे देख ले! लोगों के देखने में ऐसा क्या रस होता होगा? जब हजार आंखें आपको देखती हैं, तो आपके अहंकार को बड़ा तेल मिलता है। दूसरों का ध्यान आपके अहंकार का तेल बनता है। बहुत सटल, बहुत सूक्ष्म मादकता है दूसरों की आंखों में। वे अगर आपको देखते हैं, तो उससे आपके अहंकार को रस उपलब्ध होता है, गति उपलब्ध होती है।
अगर अहंकार को विसर्जित करना है, तो दूसरा उपाय हैः दूसरे पर ध्यान दें। इसलिए जब भी आप कभी दूसरे पर ध्यान देते हैं, तो आपको बहुत हलकापन लगता है। जिसको हम प्रेम कहते हैं, वह कुछ और नहीं है, वह दूसरे पर ध्यान देना है। जब आप किसी के प्रेम में होते हैं, तो मन बहुत हलका मालूम पड़ता है। जिसको आप प्रेम करते हैं, वह आपके पास होता है, तो आप बिल्कुल निर्भार हो गए होते हैं। पंख लग जाते हैं, आकाश में उड़ जाएं, फैल जाएं। क्यों? क्योंकि जिसे आप प्रेम करते हैं, उसको आप ध्यान देते हैं। स्थिति बदल जाती है। आप ध्यान देते हैं। एक नए तरह की केयरिंग, एक दूसरे की तरफ ध्यान देने की चिंता पैदा होती है।
मां जब अपने बेटे पर ध्यान दे रही होती है, तब अपने को बिल्कुल भूल गई होती है। क्योंकि ध्यान जो है, वह वन वे ट्रैफिक है। या तो आप अपने पर ध्यान दे सकते हैं, या दूसरे पर ध्यान दे सकते हैं। जब आप दूसरे पर देते हैं, तो आप भूल गए होते हैं। जब अपने पर दे रहे होते हैं, तो दूसरा भूल गया होता है।
और हम सब इस कोशिश में रहते हैं कि लोग हम पर ध्यान दें। हम हजार तरह
के उपाय करते हैं इस बात के लिए कि लोग ध्यान दें। कोई आदमी सम्राट होना चाहता है इसलिए कि लोग ध्यान दें। कोई आदमी राष्ट्रपति होना चाहता है इसलिए कि लोग ध्यान दें। अगर ये उपाय उपलब्ध न हों, तो आदमी बुरा भी हो जाता है। अगर भला मार्ग न मिले, तो आदमी बुरा भी हो जाता है। हत्यारा हो जाता है, गुंडा हो जाता है कि लोग ध्यान दें। स्कूल में विद्यार्थी शैतानी करने लगते हैं कि लोग ध्यान दें; मिसचीवियस हो जाते हैं कि लोग ध्यान दें। इसलिए शिक्षकों के हाथ की एक पुरानी तरकीब है कि जो विद्यार्थी ज्यादा से ज्यादा उपद्रव कर रहा हो, उसे अगर कैप्टन बना दिया जाए, तो उपद्रव करना बंद कर देता है। कोई और कारण नहीं है; क्योंकि जिस वजह से वह उपद्रव कर रहा था, वह कैप्टन बनाने से पूरी हो जाती है। वह ध्यान आकर्षित कर रहा था। वह कह रहा था, मैं भी यहां हूं। मैं ऐसा निगलेक्टेड नहीं जी सकता हूं। इस कमरे में मेरी प्रतीति सबको एहसास होनी चाहिए कि मैं यहां

हूं। मेरा होना सबको पता होना चाहिए। वह ठीक मार्ग भी चुन सकता है, अगर मार्ग उपलब्ध हों। अगर मार्ग उपलब्ध न हों, तो वह गलत मार्ग भी चुन सकता है।
अमरीका में आज हिप्पी हैं, बीटल और पच्चीस तरह के नए उपद्रव हैं। उन उपद्रवों का सबसे महत्वपूर्ण कारण यही है कि अमरीका में जो हायरेरकी खड़ी हो गई है पद की, धन की, व्यवस्था की, नए युवकों को कोई भी आशा नहीं है कि वे इस हायरेरकी पर चढ़ सकेंगे। नए युवक को कोई भरोसा नहीं बैठता कि वह निक्सन की जगह पहुंच पाएगा, या फोर्ड हो सकेगा, या मार्गन, या राकफेलर हो सकेगा। कोई फिक्र नहीं। लेकिन वह सड़क पर उलटे-सीधे कपड़े पहन कर तो खड़ा हो ही सकता है। बिना स्नान किए गंदगी में जी तो सकता है। और तब निक्सन को भी उस पर ध्यान देना पड़ता है। तब मजबूरी हो जाती है, उस पर ध्यान देना ही पड़ेगा। लेकिन वह जो भी कर रहा है, वह केवल ध्यान आकर्षित करने की व्यवस्था और कोशिश है। अहंकार ध्यान मांगता है। ठीक न मिले, गलत ढंग से मांगता है। लेकिन इतना समझ लेना जरूरी है कि जब भी आप ध्यान मांगते हैं, तब आप अपने अहंकार को पैडल दे रहे हैं। यह आपको स्मरण रख लेना जरूरी है, जब भी आप ध्यान मांगते हैं! आप घर के भीतर प्रवेश किए हैं और आपके बेटे ने उठ कर नमस्कार नहीं किया। आपके मन में जो पीड़ा होती है, वह पीड़ा इसलिए नहीं है कि बेटा असंस्कृत हो गया है, अशिष्ट हो गया है। यह सब रेशनलाइजेशन है। पीड़ा यह है कि बेटा भी ध्यान नहीं दे रहा है, अब कौन ध्यान देगा! सारा जगत गिरता हुआ मालूम पड़ता है; क्योंकि बेटा तक ध्यान नहीं दे रहा है!
हिंदुस्तान में माता-पिता बड़े तृप्त रहे हैं सदा। क्योंकि उन्होंने बड़ा अच्छा इंतजाम कर लिया था। बेटा उठ कर सुबह से ही उनके पैर पड़ लेता था। दिन भर के लिए उनके हृदय की शांति हो जाती थी। अच्छा था। टेक्निकल था। व्यवस्था में आ जाता था, रूटीन हो जाती थी। न बेटे को उससे कोई तकलीफ होती थी, न कोई करना पड़ता था खास; लेकिन पिता दिन भर के लिए शांत हो जाता था। पश्चिम के पिता को कुछ न कुछ रास्ता खोजना पड़ेगा। क्योंकि पश्चिम में आदर प्रकट करने के लिए कोई ठीक इंतजाम नहीं किया उन्होंने। और आदर की मांग तो है ही। और आदर प्रकट करने के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। तो अड़चन होती है। आदर की मांग तो है ही। बाप चाहता है, जब वह घर में प्रविष्ट हो, तो बेटा उसे स्वीकार करे कि बाप घर में आ रहा है, घर का मालिक भीतर आ रहा है। मां भी यही चाहती है। बेटा भी यही चाहता है। सब यही चाहते हैं। छोटे से छोटे एक बच्चे का भी अहंकार यही चाहता है।
सुना है मैंने कि नसरुद्दीन छोटा है और एक रास्ते पर बैठ कर सिगरेट पी रहा है। एक बूढ़ी औरत, भली, भद्र औरत रुकी और उसने नसरुद्दीन से कहा कि बेटे, तुम्हारी मां को पता है कि तुम सिगरेट पीते हो? नसरुद्दीन ने सिगरेट के धुएं का एक छल्ला छोड़ते हुए कहा, और तुम्हारे पति को पता है कि तुम सड़क पर रुक कर अजनबी आदमियों से बातचीत करती हो? अजनबी आदमी, स्ट्रेंज मैन! तुम्हारे पति को पता है कि एकांत में, निर्जन स्थान में, सड़क पर अजनबी आदमी से रुक कर बातचीत करती हो?
छोटे से छोटे बच्चे में भी आकांक्षा है कि सब उसकी तरफ देखें। इसलिए माताएं सदा परेशान रहती हैं कि घर में मेहमान नहीं होते, तो बच्चे बड़े शांत रहते हैं; लेकिन घर में कोई मेहमान प्रवेश किया कि बच्चों ने उपद्रव शुरू किया। वह क्या वजह होगी? क्योंकि घर में मेहमान न हों तब बच्चे ऊधम करें, तो मां को भी चिंता नहीं है। लेकिन घर में कोई न हो, तो बच्चे शांत अपने काम में लगे रहते हैं। घर में कोई आए कि बच्चे गड़बड़ शुरू कर देते हैं। असल में, घर में किसी के आते ही से बच्चे भी कहते हैं, हम पर भी ध्यान दो, हम भी यहां हैं। मैं भी यहां हूं, इसकी घोषणा बच्चे कैसे करें? वे चीजें पटक कर कर देते हैं। शोरगुल कर देते हैं, रोने लगते हैं, खाने की मांग करने लगते हैं। अभी घड़ी भर पहले उनकी मां कह रही थी कि कुछ खा लो; वे कहते थे, कोई जरूरत नहीं है। और अभी बस एक आदमी घर में प्रवेश किया, और उन्हें भूख लग आई। वह भूख नहीं लगी है। उनका अहंकार अभी से पैडलिंग सीख रहा है। वे कोशिश में लगे हैं कि कोई देख ले कि हम यहां हैं। मैं यहां हूं। बच्चे से लेकर बूढ़े तक यही बचपना है। इसका स्मरण रखें, तो लाओत्से का सूत्र ख्याल में आ सके। दूसरे से ध्यान न मांगें। जो दूसरे से ध्यान

मांगेगा, वह क्षणिक अहंकार को पैदा कर लेगा। लेकिन उसका क्षणभंगुर ही जीवन है। वह शाश्वत की निधि उसकी कभी भी अपनी न हो सकेगी।
दूसरे पर ध्यान दें। जब लाओत्से कहता है कि सर्वमंगल के हेतु जीएं, लिविंग फॉर अदर्स, जब लाओत्से कहता है, तो उसका मतलब यह है कि ध्यान दूसरे पर दें। और जैसे ही आप दूसरे पर ध्यान देते हैं, आपकी जिंदगी में क्रांति शुरू हो जाती है। क्योंकि तब आप हंस सकते हैं, दूसरे की नासमझियां आपको दिखाई पड़नी शुरू हो जाती हैं। क्योंकि आपके ध्यान देते ही से आप देखते हैं, उसका अहंकार कैसा प्रज्वलित होकर जलने लगा। यही कल तक आपके साथ हो रहा था। लेकिन अब आप दया कर सकते हैं।
दूसरे पर ध्यान देते ही आपको पता चलता है कि जितना ही आप गहरा ध्यान देते हैं दूसरे पर, उतने ही आप मिट गए होते हैं। और जब भीतर बिल्कुल शून्य होता है--जैसे ही ध्यान दूसरे पर गया, भीतर शून्य हो जाता है--तब आपके जीवन में पहली दफा पता चलता है कि गैर-तनाव की स्थिति क्या है।
फ्रायड से किसी ने पूछा, जब वह काफी बूढ़ा हो गया, उससे किसी ने पूछा कि तुम इतने लोगों की मानसिक बीमारियों का अध्ययन करते हो, सुबह से सांझ तक इतने पागलों से तुम्हारा वास्ता पड़ता है, तुम्हारा दिमाग खराब नहीं हो गया?
फ्रायड ने कहा, अपने पर ध्यान देने की सुविधा ही न मिली। अपने पर ध्यान दिए बिना पागल होना बहुत मुश्किल है। सुबह से लग जाता हूं दूसरे की चिंता में, रात दूसरे की चिंता करते सो जाता हूं। अपने पर ध्यान देने का अवसर न मिला।
इसलिए बड़े वैज्ञानिक अक्सर शांत हो जाते हैं; क्योंकि सारा ध्यान देते हैं किसी और चीज पर। प्रयोगशाला में किसी परखनली पर, टेस्ट ट्यूब पर उनका सारा ध्यान लगा रहता है। आइंस्टीन के साथ दिक्कत थी। आइंस्टीन को अपना स्मरण नहीं रह जाता था। तो कभी-कभी वह छह-छह घंटे अपने बाथरूम में टब में बैठा रह जाता था, छह-छह घंटे! पत्नी दस-पच्चीस दफा आकर दस्तक दे जाती। लेकिन उसकी भी हिम्मत न पड़ती जोर से दस्तक देने की कि पता नहीं, वह किस ख्याल में खोया हो!
डाक्टर राम मनोहर लोहिया मिलने गए थे। तो उनकी पत्नी ने लोहिया को कहा कि आपको मैं समय तो दे देती हूं; लेकिन इस समय पर मिलना हो सकेगा, नहीं हो सकेगा, यह कुछ नहीं कहा जा सकता। पर लोहिया ने कहा कि मेरे पास ज्यादा समय नहीं है, मैं मुश्किल से घंटे भर का समय निकाल कर आऊंगा। अगर मिलना न हो सका, तो बड़ी अड़चन होगी। उसकी पत्नी ने कहा, हम कोशिश करेंगे; लेकिन आइंस्टीन भरोसे के नहीं हैं।
और वही हुआ। जब लोहिया पहुंचा, तो पत्नी ने कहा, आप बैठें, अब मैं कोशिश करती हूं। दरवाजे पर दस्तक दे रही हूं, वे अपने बाथरूम में चले गए हैं। कब निकलेंगे, कहना मुश्किल है। वे पांच घंटे बाद ही निकले। पूछा लोहिया ने कि इतनी देर आप करते क्या थे? आइंस्टीन ने कहा, एक सवाल में उलझ गया।
तो सवाल पर ध्यान अगर बहुत चला जाए, तो आइंस्टीन भी मिट गए, वह बाथरूम
भी मिट गया। वे कहां हैं, यह बात भी समाप्त हो गई। ध्यान किसी भी चीज पर चला जाए, तो यहां भीतर अहंकार तत्काल कट जाता है। इसलिए बड़े वैज्ञानिक अक्सर निरहंकारी हो जाते हैं, बड़े चित्रकार निरहंकारी हो जाते हैं, बड़े नर्तक निरहंकारी हो जाते हैं। और बड़े त्यागी कभी-कभी नहीं हो पाते; क्योंकि त्यागी पूरा ध्यान अपने पर देता है। यह न खाऊं, यह न पीऊं, यह न पहनूं, यह पहनूं, इस जगह सोऊं, उस जगह उठूं! कहने को वह त्यागी होता है; लेकिन टू मच ईगो कांशस पूरे वक्त--मैं यह करूं और न करूं--सारा ध्यान मैं पर होता है। इसलिए अक्सर यह दुर्घटना घटती है कि त्यागी अहंकार से मुक्त नहीं हो पाते और कभी-कभी साधारण, जिनको हम भोगी कहें, वे अहंकार से मुक्त हो जाते हैं। लेकिन सीक्रेट, राज एक ही है। आपका ध्यान आप पर कम जाए, तो आपके अहंकार को तेल नहीं मिलता। आपका ध्यान आपसे बाहर जाए! कितने अपने ध्यान को आप बाहर पहुंचा सकें, वही आपके निरहंकार होने की यात्रा है।

तो लाओत्से का यह वचन, "स्वर्ग और पृथ्वी दोनों ही नित्य हैं। इनकी नित्यता का कारण है कि ये स्वार्थ-सिद्धि के निमित्त नहीं जीते। इसलिए इनका सातत्य संभव है।"
इसलिए ये सदा रह सकते हैं, इनके मिटने की कोई जरूरत नहीं है। मिटता केवल अहंकार है। इस जगत में मिटने वाली चीज केवल अहंकार है। केवल एक ही चीज है, जो मॉर्टल है। इसे थोड़ा कठिन होगा ख्याल में लेना।
इस जगत में न तो पदार्थ मिटता कभी, न आत्मा मिटती कभी, सिर्फ मिटता है अहंकार। शरीर कभी नहीं मिटता। मेरा यह शरीर, मैं नहीं था, तब भी था। इसका एक-एक कण मौजूद था। इसमें कुछ नया नहीं है। इस शरीर में जो कुछ भी है, वह सब मौजूद था। जब मैं नहीं था, तब भी। जब मैं नहीं रहूंगा, तब भी मेरे शरीर का एक कण भी मरेगा नहीं, सब मौजूद रहेगा। शरीर तो शाश्वत है, कुछ मरने वाला नहीं है उसमें।
वैज्ञानिक कहते हैं कि हम एक छोटे से कण को भी नष्ट नहीं कर सकते। कुछ
भी नष्ट नहीं किया जा सकता। शरीर में सब कुछ जो है, वह शाश्वत है। जल जल में मिल जाएगा; आग आग में खो जाएगी; आकाश आकाश से एक हो जाएगा। लेकिन सब शाश्वत है। आकार खो जाएगा; लेकिन जो भी उस आकार में छिपा है, वह सब मौजूद रहेगा। मेरी आत्मा भी नहीं मरती। फिर मरता कौन है? मरना घटता तो है! मृत्यु होती तो है!
सिर्फ मेरे शरीर और आत्मा का संबंध टूटता है। और उसी संबंध के बीच में
वह जो एक अहंकार है, दोनों के मेल से जो रोज-रोज मैं पैदा कर रहा हूं, वह अहंकार टूटता है। लेकिन अगर मैं जान लूं कि वह अहंकार नहीं है, तो मेरे भीतर मरने वाला फिर कुछ भी नहीं है। और जब तक मैं जानता हूं, मैं अहंकार हूं, तब तक मेरे भीतर अमृत का मुझे कोई भी पता नहीं है। न हो सकता है पता। कोई उपाय भी नहीं है। आइडेंटिफाइड विद दि ईगो, पूरे हम एक हैं मैं के साथ, तो मृत्यु के सिवाय कुछ और होने वाला नहीं है। क्योंकि जिस चीज के साथ हमने अपने को जोड़ा है, वह अकेली चीज इस जगत में मरणधर्मा है।
यह बहुत हैरानी का वक्तव्य मालूम पड़ेगा। इस पूरे जगत में एक ही चीज मरने वाली है, वह अहंकार है। बाकी कोई चीज मरती नहीं। क्योंकि एक ही चीज पैदा होती है, वह अहंकार है। बाकी कोई चीज पैदा होती नहीं। बाकी सब चीजें हैं। सिर्फ अहंकार पैदा होता है, वह बाई-फिनामिना है। जैसे मैं रास्ते पर चलता हूं, सूरज था। मैं जब नहीं चल रहा था रास्ते पर, सूरज था। भरी दोपहर है, सूरज ऊपर है, रास्ता है। मैं अपने घर में बैठा हूं; मैं भी हूं, सूरज भी है। फिर मैं सूरज की रोशनी में आया, तब एक नई चीज पैदा होती है, वह मेरी छाया है। वह नहीं थी। जब मैं घर के भीतर था, वह नहीं थी। जब मैं घर के भीतर था, तब वह सूरज के नीचे भी नहीं थी। वह घर के भीतर भी नहीं थी, सूरज के नीचे भी नहीं थी। मैं सूरज के प्रकाश में आया, तो मेरे और सूरज के संबंध से पैदा हुई एक बाइ-प्रॉडक्ट है। वह मेरे पीछे बन गई छाया है। वह छाया मरणधर्मा है। जैसे ही मैं हट जाऊंगा या सूरज हट जाएगा, वह छाया खो जाएगी। अभी भी वह है नहीं। और अगर मैं समझ लूं कि मैं छाया हूं, तो मैं मुश्किल में पडूंगा; उसी मुश्किल में पडूंगा, जैसा मैंने सुना है कि एक लोमड़ी पड़ गई थी।
सुबह निकली थी। सूरज निकल रहा था। देखी उसने छाया, बड़ी लंबी थी! सोचा,
आज भोजन के लिए कम से कम एक ऊंट की जरूरत पड़ेगी। क्योंकि अपनी छाया को देख कर ही तो पता चलता है कि कितने बड़े हम हैं। और तो कोई उपाय भी नहीं है। लोमड़ी को पता भी कैसे चले कि कितनी बड़ी है। छाया! जब उसने देखा, इतनी बड़ी मेरी छाया है, तो मेरे बड़े होने में संदेह क्या! सोचा, एक ऊंट से कम में आज पेट न भरेगा। खोज पर निकली भोजन की। दोपहर होने आ गई। खोजती रही; ऊंट तो मिला नहीं। मिल भी जाता तो किसी प्रयोजन का न था। भूख बहुत बढ़ गई, भोजन मिला नहीं। दोबारा उसने झांक कर देखा कि छाया की क्या हालत है। सूरज सिर पर आ गया था। छाया सिकुड़ कर बहुत छोटी हो गई थी। उसने सोचा, अब तो, अब तो छोटा-मोटा एक खरगोश भी मिल जाए, तो काम चल सकता है। अब तो छोटे-मोटे खरगोश से भी काम चल सकता है।
छाया से जो जीएगा, वह ऐसी ही मुश्किल में पड़ता है। कभी छाया बहुत बड़ी मालूम पड़ती है, संयोग की बात है। जवानी में सभी को छाया बड़ी मालूम पड़ती है।
तब सूरज निकल रहा होता है।

नसरुद्दीन कहता था कि मैं जब जवान था, मैंने तय किया था कि करोड़पति होकर रहूंगा। यह मेरा पक्का संकल्प था। लेकिन जब वह कह रहा था, तब वह एक भिखारी से कह रहा था, मित्र से। दोनों भीख मांगते थे। यह मेरा संकल्प था जवानी में कि करोड़पति होकर ही मरूंगा। उसके मित्र भिखारी ने गौर से देखा। उसने कहा, फिर क्या हुआ तुम्हारे संकल्प का? नसरुद्दीन ने कहा, बाद में मैंने पाया, करोड़पति होने की बजाय संकल्प को बदल लेना ज्यादा आसान है। संकल्प बदल लिया।
बाद में सभी ऐसा पाते हैं। उसका कारण यह नहीं है। छाया छोटी हो गई होती है। खरगोश से भी काम चल जाता है। बूढ़े होते-होते-होते-होते-होते आदमी पाता है कि ठीक है। जवानी में छाया बड़ी मालूम पड़ती है, वह सांयोगिक है। बुढ़ापे में सब सिकुड़ जाता है, छोटा हो जाता है। लेकिन जो जानते हैं, वे जवानी में भी जानते हैं कि छाया छाया है, वह मैं नहीं हूं।
ठीक ऐसी ही एक अंतर-छाया है, जिसका नाम अहंकार है। उसे हम कहें, इनर शैडो। जीवन के संबंधों से एक भीतर भी छाया निर्मित होती है, जो मेरा अहंकार है; जिससे मैं तौलता हूं कि मैं कौन हूं। और वह रोज हमें बदलना पड़ता है; क्योंकि वह भी संयोग पर निर्भर करता है।
एक आदमी सुबह आता है और कहता है कि आप! आप जैसा आदमी जमीन पर कभी पैदा
ही नहीं हुआ! एकदम छाया बड़ी हो जाती है भीतर। आखिर खुशामद का सारा रहस्य इसी पर है। और बड़े मजे की बात यह है कि कभी कोई नहीं पहचान पाता कि यह खुशामद है। कभी कोई नहीं पहचान पाता कि यह खुशामद है। यह आदमी खुशामद कर रहा है, कोई नहीं पहचान पाता। नहीं पहचान पाएगा; क्योंकि खुशामद बड़ी सुखद है, छाया को बड़ी करती है। जिसको हम मेहनत से भी बड़ा नहीं कर पाते, खुशामद उसे एकदम फुला देती है।
कहते हैं कि नसरुद्दीन को हिंदुस्तान भेजा गया था; उसके सुलतान ने भेजा था। बड़ी मुश्किल में पड़ गया नसरुद्दीन। हिंदुस्तान आया; सम्राट की तरफ से आया था, सम्राट के दरबार में आया था।
हिंदुस्तान के सम्राट के पास जाकर उसने कहा कि धन्य हैं आप, हे पूर्णमासी के चांद!
जो राजदूत था, जिस मुल्क से नसरुद्दीन आया था, उसने फौरन अपने सम्राट
को खबर की कि यह आदमी आपने कैसा भेजा है? इसने यहां के सम्राट को पूर्णमासी का चांद कहा है। आपकी बेइज्जती हो गई।
जब नसरुद्दीन पहुंचा, तो सम्राट बहुत नाराज था। उसने कहा कि मैंने सुना है, तुमने कहा कि पूर्णमासी का चांद! मुझे छोड़ कर और भी कोई पूर्णमासी का चांद है?
नसरुद्दीन ने कहा, आप? आप दूज के चांद हैं। लेकिन पूर्णमासी के बाद अमावस ही आती है। आपका अभी बहुत विकास संभव है। आप समझे नहीं, नसरुद्दीन ने कहा कि मैंने क्यों पूर्णमासी का चांद कहा। अब मौत करीब है उस आदमी की, मरेगा। आप दूज के चांद हैं!
वह यहां से भी सम्मान लेकर गया, पुरस्कार लेकर गया; उसने वहां भी सम्मान और पुरस्कार लिया। यहां उसने पूर्णिमा का चांद कह कर अहंकार को फुसला दिया; वहां उसने दूज का चांद कह कर अहंकार को फुसला दिया। और आदमी ऐसा कमजोर है कि दूज के चांद से भी फुसल जाता है और पूर्णमासी के चांद से भी फुसल जाता है। हम तैयार ही बैठे हैं कि कोई कहे। साधारण सी स्त्री को कोई कह देता है कि तुझसे सुंदर कोई भी नहीं है! फिर वह आईने में अपनी शक्ल ही नहीं देखती, वह भरोसा ही कर लेती है।
नसरुद्दीन अपनी प्रेयसी के पास बैठा है समुद्र के किनारे। उसकी प्रेयसी कहती है कि समुद्र और तुममें बड़ी समानता है। जब भी मैं समुद्र को देखती हूं, तुम्हारी याद आती है; और जब भी तुमको देखती हूं, समुद्र की याद आती है। नसरुद्दीन फूल गया। नसरुद्दीन ने कहा, निश्चित ही! निश्चित ही समानता इसीलिए मालूम पड़ती होगी, बिकाज दि सी इ.ज आल्सो सो वास्ट, सो रॉ, सो वाइल्ड, सो रोमांटिक! जैसा कि मैं हूं, ऐसा ही विस्तार यह सागर का, ऐसा ही जंगली इसका रुख, ऐसी ही कच्ची इसकी आवाजें और ऐसा ही रूमानी है! जरूर इसीलिए तुम्हें मेरी और इसके साथ याद आती होगी।

उसकी प्रेयसी ने कहा, क्षमा करो, यू बोथ मेक मी सिक! और कोई बात नहीं है। तुम दोनों ही को देख कर मुझे मितली आती है, और कुछ नहीं होता। यही समानता है।
किसी से भी कुछ कह दो, वह मानने को राजी है। कैसी-कैसी बातों पर लोग राजी हो गए हैं! स्त्रियां राजी हैं कि उनकी आंखें मछलियों की तरह हैं! किसी की आंखें नहीं हैं मछली की तरह। उनके ओंठ गुलाब की पंखुड़ियों की तरह हैं! किसी के ओंठ गुलाब की पंखुड़ियों की तरह नहीं हैं। उनके शरीर से इत्रों की सुगंध आती है! किसी के शरीर से कभी नहीं आती। मगर सब राजी हैं! कवि राजी हैं कहने को, सुनने वाले राजी हैं, स्वीकार करने वाले राजी हैं। कहानियां पुरानी, पिटी हुई, कविताएं पुरानी, मरी हुई रोज कही जाती हैं और चलती चली जाती हैं। क्यों? वह इनर जो शैडो है, वह जो भीतर की अहंकार की छाया है, वह एकदम तृप्त होती है। कांटे से भी कहो कि तुम फूल हो, वह राजी हो जाता है। वह राजी हो जाता है।
सजग होना पड़े! इस अंतर-छाया के प्रति जागरूक होना पड़े। तो लाओत्से कहता है कि इस अंतर-छाया के प्रति जो जागरूक हो जाए, सातत्य जिस सत्य का है, उससे उसके संबंध हो जाते हैं। जो इस अंतर-छाया से बंधा रह जाए, उसके संबंध, जो क्षणभंगुर है, उससे ही होते हैं। इस सूत्र को दूसरे सूत्र में लाओत्से ने फैलाया है।
"इसलिए तत्वविद अपने व्यक्तित्व को पीछे रखते हैं।"
दोज हू नो, जो जानते हैं, वे अपने व्यक्तित्व को पीछे रखते हैं। जीसस
ने कहा है, धन्य हैं वे, जो अंतिम खड़े होने में समर्थ हैं! क्यों जीसस का यह वक्तव्यः क्योंकि धन्य हैं वे, जो अंतिम खड़े होने में समर्थ हैं? क्योंकि जीसस कहते हैं, तुम्हें पता हो या न पता हो, जो अपने को अंतिम खड़ा कर लेता है, वह प्रथम खड़ा हो गया। क्योंकि इससे बड़ी और कोई गरिमा नहीं है। और इससे बड़ी कोई उपलब्धि नहीं है। जिसने अपनी अंतर-छाया के अहंकार को खो दिया, उसको अब द्वितीय करने का कोई भी उपाय नहीं है। वह प्रथम हो गया। बिना हुए प्रथम हो गया। अब उसे प्रथम खड़े होने की जरूरत नहीं पड़ेगी।
अगर महावीर और बुद्ध ने सम्राट होने का पद छोड़ा, तो इसलिए नहीं कि सम्राट का पद छोड़ने से कोई अहंकार छूट जाएगा; बल्कि इसलिए कि जिनका अहंकार छूट गया, उन्हें अब सम्राट होने की कोई भी जरूरत नहीं है। अब वे सम्राट हैं। अब वे किस दशा में हैं और कहां हैं, इससे कोई भी भेद नहीं पड़ता। इररेलेवेंट! अब बुद्ध जो हैं, भिक्षा का पात्र लेकर भीख मांग सकते हैं; लेकिन बुद्ध की आंखों में भिखारी खोजे से भी नहीं मिलेगा। कम से कम भिखारी अगर कोई आदमी इस जमीन पर हुआ है, तो वह बुद्ध है। और सबसे ज्यादा भीख उसने मांगी है। हाथ में भिक्षा का पात्र है।
असल में, अब वह इतना निश्चिंत है अपने सम्राट होने के प्रति कि भिखारी
का पात्र कोई फर्क नहीं लाता है। ख्याल रखना, इतना निश्चिंत है! अपने सम्राट होने की बात इतनी पक्की हो गई है अब कि अब भीख मांगने से कोई फर्क नहीं पड़ता है। हम अगर डरते हैं भीख मांगने में, तो उसका कारण यह नहीं है कि हम भीख मांगने में डरते हैं। उसका कारण यह है कि हम भीख मांगें, तो हम भिखारी ही हो जाएंगे। भीतर के सम्राट का तो हमें कोई भी पता नहीं है। भीख मांगी कि भिखारी हो गए। जो हम करते हैं, वही हम हो जाते हैं। महावीर और बुद्ध भीख मांग सके शान से सम्राट की। उसका कारण था। इतने आश्वस्त हो गए; जिस दिन अंतिम अपने को खड़ा किया, उसी दिन प्रथम होना स्वभाव हो गया। लाओत्से कहता है, "इसलिए तत्वविद अपने व्यक्तित्व को पीछे रखते हैं, फिर भी वे सब से आगे पाए जाते हैं।"
पोंछ डालते हैं अपने को, सब तरफ से हटा लेते हैं अपने को; फिर भी अचानक इतिहास पाता है कि वे सबसे आगे खड़े हो गए।
आपको पता है? बुद्ध के समय में जो सम्राट थे बिहार में, उनमें से एकाध
का नाम भी आपको पता है? खो गए। राजनीतिज्ञ थे, उनका नाम पता है? किसी को कोई पता नहीं है। और एक भिखारी सामने आकर खड़ा हो गया। बुद्ध के पिता ने बुद्ध को कहा था, तू पागल है। लोग जन्म भर मेहनत करते हैं, जीवन भर, तब भी ऐसे महल उपलब्ध नहीं होते। और यह साम्राज्य इतना बड़ा हमारी पीढ़ियों ने निर्मित किया है! और तू पागल की तरह इसे छोड़ कर जा रहा है। लेकिन बुद्ध के पिता का

नाम अगर किसी को याद है, तो सिर्फ इसलिए कि बुद्ध, उनका लड़का, घर छोड़ कर गया था। अन्यथा बुद्ध के पिता का नाम इतिहास में कभी भी स्मरण नहीं हो सकता था। कोई कारण नहीं था। कोई जानता भी नहीं। क्योंकि बुद्ध के पिता जैसे सैकड़ों लोग सिंहासनों पर बैठ चुके और खाली कर चुके हैं। अगर आज बुद्ध के पिता का नाम मालूम है, तो सिर्फ एक वजह से कि एक लड़का भीख मांगने चला गया था।
बुद्ध अपने राज्य को छोड़ कर चले गए; क्योंकि उस राज्य में रोज-रोज लोग आकर हाथ-पैर जोड़ते और कहते कि वापस लौट चलो। पड़ोसी के राज्य में चले गए। सोचा, वहां कोई नहीं सताएगा। लेकिन पड़ोसी सम्राट को पता चला, वह भागा हुआ आया। उसने कहा कि तू नासमझ है। अगर पिता से नाराज है, तो कोई फिक्र नहीं। तू मेरे घर चल। मैं तुझे अपनी लड़की से विवाह कर देता हूं। राज्य तेरा ही होगा; क्योंकि मेरी लड़की ही है सिर्फ। तू फिक्र मत कर। अगर पिता से नाराज है, मेरे घर चल।
बुद्ध ने कहा, मैं नाराज किसी से नहीं हूं। मैं केवल बचता फिर रहा हूं। उधर पिता से बच रहा था, इधर आप पिता की तरह मिल गए। मुझ पर कृपा करो। मुझे अकेला छोड़ दो। क्योंकि तुम जो देना चाहते हो, उसका मेरे लिए अब कोई भी मूल्य नहीं है।
बुद्ध का वचन बहुत कीमती है। बुद्ध ने कहा, जब तक मुझे मेरे भीतर के मूल्य का कोई पता नहीं था, तब तक सब चीजें मूल्यवान मालूम पड़ती थीं। अब जब भीतर का हीरा मिल गया, तो अब बाहर के सब हीरे फीके हो गए हैं।
लाओत्से कहता है, "फिर भी वे सब के आगे पाए जाते हैं।"
इतिहास की इतनी भीड़-भड़क्कम है, सब लोग आगे होने को उत्सुक और आतुर हैं। और अचानक, अचानक राजनीतिज्ञ खो जाते हैं, सम्राट खो जाते हैं, धनपति खो जाते हैं; और न मालूम कैसे लोग, जिन्होंने अपने को पीछे खड़ा कर दिया था, वे आगे खड़े हो जाते हैं!
लाओत्से को हुए कोई ढाई हजार वर्ष हो गए। ढाई हजार वर्ष में कितने लोग
आए होंगे! लेकिन लाओत्से के आगे कोई भी आदमी खड़ा नहीं हो सका। और यह आदमी ऐसा था कि बिल्कुल पीछे खड़ा हो गया था। इसके पीछे खड़े होने का हिसाब लगाना मुश्किल है।
कहा जाता है कि लाओत्से मरने के पहले चीन को छोड़ दिया; सिर्फ इसीलिए
कि कोई उसकी समाधि न बना दे। मरने के पहले चीन छोड़ दिया, क्योंकि मरेगा तो कहीं कोई समाधि बना कर एक पत्थर न खड़ा कर दे। क्योंकि जब मैंने कोई निशान नहीं बनाए, तो मेरे मरने के बाद कोई निशान क्यों हो! लेकिन जो इस तरह अपने को पोंछ कर हट गया, उसे हम पोंछ नहीं पाए। सदियां बीत जाएं, लाओत्से को हम पोंछ नहीं सकते। वह ठीक कहता है कि तत्वविद अपने को पीछे रखते हैं, फिर भी वे सदा आगे पाए जाते हैं।
यह सदा आगे पाए जाने के लिए पीछे मत रख लेना। ऐसा नहीं होता। कि कोई सोचे कि चलो, ठीक है, तरकीब हाथ लगी; पीछे रख लो, आगे हो जाओ। नहीं, जो पीछे हो जाते हैं, वे आगे पाए जाते हैं। लेकिन अगर किसी ने अपने को आगे होने के लिए पीछे रखा, तो वह पीछे ही हो जाता है; आगे होने का कोई उपाय नहीं है।
तो इसमें कॉजल नहीं है, इसमें कोई कार्य-कारण संबंध नहीं है; कांसीक्वेंस है। यह ख्याल रखना, नहीं तो भूल होती है। नहीं तो भूल होती है। लोग कहते हैं, अच्छी बात है। उनके मन को तृप्ति मिलती है। अहंकार कहता है, यह तो बहुत बढ़िया बात है। बिना आगे हुए आगे होने की तरकीब हाथ लगती है, तो हम पीछे हुए जाते हैं। लेकिन आगे हो जाएंगे? नहीं, पीछे हो जाता है अगर कोई आगे होने के लिए, तो पीछे होता ही नहीं। पीछे होने का मतलब ही है कि आगे का ख्याल ही न रहा।
इसलिए दूसरा जो वाक्य है, इट इ.ज नॉट लिंक्ड कॉजली। यह पहले वाक्य के परिणाम की तरह नहीं है कि आग में हाथ डालो तो हाथ जलता है। ऐसा नहीं है। यह कांसीक्वेंस है, यह परिणाम है। इसको गणित की तरह मत सोचना कि पीछे खड़े हो जाएं, तो आगे पाए जाएंगे। कभी न पाए जाएंगे। पीछे खड़ा हो जाए कोई, तो आगे पाया जाता है। लेकिन पीछे खड़े होने का मतलब यह है कि आगे का जिसे ख्याल ही छूट गया है। उसे फिर पता ही नहीं चलता कि मैं आगे खड़ा हूं, पीछे खड़ा हूं। मैं कहां हूं, यह उसे पता ही नहीं चलता है।

"वे निज की सत्ता की उपेक्षा करते हैं, फिर भी उनकी सत्ता सुरक्षित रहती है।"
वे अपने को बिल्कुल ही उपेक्षित कर देते हैं, भूल ही जाते हैं, अपनी चिंता ही छोड़ देते हैं; फिर भी उनकी सुरक्षा में कोई अंतर नहीं पड़ता। असल में, जैसे ही कोई व्यक्ति अपना बोझ छोड़ देता है, परमात्मा उसका बोझ खींचने को तैयार हो जाता है। जैसे ही कोई व्यक्ति कह देता है कि ठीक है, अब मैं चिंता न करूंगा अपनी, वैसे ही सारा अस्तित्व उसकी चिंता करने लगता है। और जैसे ही कोई आदमी कहता है कि मैं अपनी चिंता, अपनी चिंता... । सारा अस्तित्व उसकी चिंता छोड़ देता है। और वह एलियनेटेड हो जाता है; वह इस पूरे जगत के बीच एक अजनबी हो जाता है, जो नाहक ही अपना बोझ ढोता है।
"चूंकि उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं, इसलिए उनके लक्ष्यों की पूर्ति
हो जाती है।"
ये मनुष्य के इतिहास में बोले गए सबसे ज्यादा पैराडाक्सिकल वचन हैं,
और सबसे मूल्यवान। इन एक-एक वचन से एक-एक बाइबिल निर्मित हो सकती है। लाओत्से कहता है कि चूंकि उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं, उनके सब स्वार्थ पूरे हो जाते हैं। वह कह यह रहा है कि स्वार्थ, जीवन का जो परम आनंद है, वही जीवन का स्वार्थ है। जो व्यक्ति अहंकार को छोड़ देता है, वह परम आनंद को उपलब्ध हो जाता है। और जो व्यक्ति अहंकार को छोड़ देता है, उसके लिए भय समाप्त हो जाता है। क्योंकि अहंकार के साथ भय है कि मैं मिट न जाऊं, नष्ट न हो जाऊं, हार न जाऊं, असफल न हो जाऊं। ये सब भय समाप्त हो गए। जहां भय नहीं है, वहां सुरक्षा है।
हम तो उलटा करते हैं। जितनी सुरक्षा करते हैं, उतने असुरक्षित हो जाते हैं। और जितने बचना चाहते हैं, उतने भयभीत हो जाते हैं। और जितना सोचते हैं कि अपने को बचा लें, बचा लें, बचा लें, उतना ही पाते हैं कि अपने को खोते चले जा रहे हैं, खोते चले जा रहे हैं।
एक आखिरी बात, फिर हम कल बात करेंगे।
अगर कभी नदी में आपने भंवर पड़ते देखे हों; नदी में कभी-कभी जोर से गोल भंवर पड़ते हैं। अगर भंवर में आप कोई चीज डाल दें, तो शीघ्र ही भंवर उसे घुमा कर नीचे ले जाता है। अगर आपको भंवर में गिरा दिया जाए और अगर आप लाओत्से को नहीं जानते, तो आप बहुत मुश्किल में पड़ेंगे। अगर जानते हैं, तो भंवर से बच सकते हैं।
अगर भंवर में आप गिर जाएं और भंवर ताकतवर हो, तो स्वभावतः आप पहले बचने की कोशिश करेंगे कि भंवर कहीं मुझे स्क्रू डाउन न कर दे। तो आप बचने की पूरी ताकत लगाएंगे। आप जितनी ताकत लगाएंगे, उतनी ही आपकी ताकत टूटेगी। क्योंकि भंवर की विराट ताकत आपकी ताकत के खिलाफ है; वह आपको तोड़ डालेगा। थोड़ी देर में आप थक जाएंगे, मुर्दा हो जाएंगे। तब भंवर आपको नीचे ले जाएगा। फिर बचना बहुत मुश्किल है।
लाओत्से कहता है, अगर कभी भंवर में फंस जाओ, तो पहला काम यह करना, भंवर
से लड़ना मत, भंवर के साथ डूबने को राजी हो जाना। तो तुम्हारी ताकत जरा भी नष्ट न होगी। और भंवर शीघ्रता से आदमी को नीचे ले जाता है। भंवर ऊपर बड़ा होता है, नीचे छोटा होता जाता है। स्क्रू की तरह नीचे छोटा होता जाता है। नीचे से बच कर निकलने में जरा भी कठिनाई नहीं है। अपने आप आदमी निकल जाता है। लेकिन ऊपर जो लड़ता है, वह नीचे बचता है, तब तक ताकत नहीं रहती। डूब जाना भंवर के साथ, नीचे निकल आना बाहर। कुछ करना न पड़ेगा।
इसे ऐसा समझें। आपने देखे होंगे जिंदा आदमी पानी में डूबते और मुर्दा आदमियों को तैरते देखा होगा। कभी सोचा कि बात क्या है? मुर्दे तैर जाते हैं, जिंदा डूब जाते हैं। बड़ी पैराडाक्सिकल बात है। आखिर मुर्दे को कौन सी तरकीब पता है जिससे वह पानी पर तैर जाता है। और जिंदा को कौन सी तरकीब पता है कि डूब जाते हैं और मर जाते हैं। जिंदा को एक ही तरकीब पता है कि बचने की बड़ी कोशिश करते हैं। वे बचने की कोशिश में ही थकते हैं, थक कर ही डूबते हैं। सागर नहीं डुबाता, पानी नहीं डुबाता, भंवर नहीं डुबाती। आप थक कर डूब जाते हैं। लेकिन मुर्दा लड़ता ही नहीं। मुर्दा कहता है, ले चलो, जहां ले चलना है। सागर उसे ऊपर उठा देता है। वह लड़ता ही नहीं, तैर जाता है ऊपर!

जो लोग भी तैरना जानते हैं, वे असल में, एक अर्थ में, मुर्दे की कला सीख लेते हैं। और जो होशियार तैराक हैं, वे अपने को मुर्दे की तरह पानी पर छोड़ देते हैं, हाथ-पैर भी नहीं हिलाते, और पानी उन्हें डुबाता नहीं। कोई उनके बीच समझौता नहीं है, पानी और उनके बीच कोई कंप्रोमाइज नहीं है, किसी तरह का कोई शड्यंत्र नहीं है। बस एक तरकीब जानने की जरूरत है कि वह मुर्दे की तरह पड़ जाए। मुर्दे की तरह पड़ने का क्या मतलब है? मरने का भय छोड़ दे; या मान ले कि मर गए। तो पानी पर तैर जाता है।
लाओत्से कहते हैं, सुरक्षित हैं वे, जिन्हें सुरक्षा की कोई चिंता न रही। अभय हो गए वे, जिन्होंने भय को अंगीकार कर लिया, भय से जो बचते नहीं। आगे आ गए वे, जो पीछे खड़े होने को राजी हो गए। और जो मिटने को तैयार, मरने को तैयार, अमृत उनकी उपलब्धि है।
अगला सूत्र हम कल लेंगे। कीर्तन में सम्मिलित हों। मुर्दे की तरह! ऐसे बैठे न रहें, मुर्दे की तरह बहें उसमें। अकड़ कर रोके न रहें कीर्तन में अपने को। कीर्तन भी, सम्मिलित हुआ जा सके, तो गहरे निर-अहंकार में ले जाने का कारण बन सकता है।

इक्कीसवां प्रवचन

जल का स्वभाव ताओ के निकट है

Chapter 8 : Sutra 1, 2 & 3

Water

1. The highest excellence is like (that of) water.
The excellence of water appears in its befitting all
things, and in its occupying, without striving
(to the contrary) the low place which all men dislike.
Hence (its way) is near to (that of) the Tao.

2. The excellence of a residence is in (the suitability of) the place;
That of the mind is in abysmal stillness;
That of association is in their being with the virtuous;
That of government is in its securing good order;
That of (the conduct) of affairs is in its ability;
And that of (initiation of) any movement is in its timeliness.

3. And when (one with the highest excellence) does not
wrangle (about his position) no one finds fault with him.

अध्याय 8 : सूत्र 1, 2 व 3

जल

1. सर्वोत्कृष्टता जल के सदृश होती है।
जल की महानता पर-हितैषणा में निहित होती है, और उस विनम्रता में होती है, जिसके कारण वह अनायास ही ऐसे निम्नतम स्थान ग्रहण करती है, जिनकी हम निंदा करते हैं। इसीलिए तो जल का स्वभाव ताओ के निकट है।

2. आवास की श्रेष्ठता स्थान की उपयुक्तता में होती है, मन की श्रेष्ठता उसकी अतल निस्तब्धता में, संसर्ग की श्रेष्ठता पुण्यात्माओं के साथ रहने में, शासन की श्रेष्ठता अमन-चैन की स्थापना में, कार्य-पद्धति की श्रेष्ठता कर्म की कुशलता में, और किसी आंदोलन के सूत्रपात की श्रेष्ठता उसकी सामयिकता में है।

3. और जब तक कोई श्रेष्ठ व्यक्ति अपनी निम्न स्थिति के संबंध में कोई वितंडा खड़ा नहीं करता, तब तक वह समादृत होता है।

श्रेष्ठता का आवास कहां है?

साधारणतः जब भी हम सोचते हैं, कोई व्यक्ति श्रेष्ठ है, तो हम सोचते हैं उसके पद के कारण, उसके धन के कारण, उसके यश के कारण। लेकिन सदा ही हमारे कारण उस व्यक्ति के बाहर होते हैं। यदि पद छिन जाए, धन छिन जाए, यश छिन जाए, तो उस व्यक्ति की श्रेष्ठता भी छिन जाती है।

लाओत्से कहता है, जो श्रेष्ठता छिन सके, उसे हम श्रेष्ठता न कहेंगे। और जो श्रेष्ठता किसी बाह्य वस्तु पर निर्भर करती हो, वह उस वस्तु की श्रेष्ठता होगी, व्यक्ति की नहीं। अगर मेरे पास धन है, इसलिए श्रेष्ठ हूं, तो वह श्रेष्ठता धन की है, मेरी नहीं। मेरे पास पद है; वह श्रेष्ठता पद की है, मेरी नहीं। मेरे पास ऐसा कुछ भी हो जिसके कारण मैं श्रेष्ठ हूं, तो वह

मेरी श्रेष्ठता नहीं है। अकारण ही अगर मैं श्रेष्ठ हूं, तो ही मैं श्रेष्ठ हूं।
लाओत्से यह कहता है कि श्रेष्ठता व्यक्ति की निजता में होती है। उसकी उपलब्धियों में नहीं, उसके स्वभाव में। क्या उसके पास है, इसमें नहीं; क्या वह है, इसमें। उसके पजेशंस में नहीं, उसकी संपदाओं में नहीं; स्वयं उसमें ही श्रेष्ठता निवास करती है। लेकिन इस श्रेष्ठता को नापने का हमारे पास क्या होगा उपाय? धन को हम नाप सकते हैं, कितना है। पद की ऊंचाई नापी जा सकती है। त्याग कितना किया, नापा जा सकता है। ज्ञान कितना है, प्रमाणपत्र हो सकते हैं। सम्मान कितना है, लोगों से पूछा जा सकता है। आदमी भला है या बुरा है, गवाह खोजे जा सकते हैं। लेकिन निजता की श्रेष्ठता के लिए क्या होगा प्रमाण?
अगर कोई बाह्य कारण से व्यक्ति श्रेष्ठ नहीं होता... और नहीं होता है, लाओत्से ठीक कहता है। सच तो यह है कि जो लोग भी बाहर श्रेष्ठता खोजते हैं, वे निकृष्ट लोग होते हैं। जब कोई व्यक्ति धन में अपनी श्रेष्ठता खोजता है, तो एक बात तो तय हो जाती है कि स्वयं में श्रेष्ठता उसे नहीं मिलती है। जब कोई राजनीतिक पद में खोजता है, तो एक बात तय हो जाती है कि निज की मनुष्यता में उसे श्रेष्ठता नहीं मिलती है। श्रेष्ठता जब भी कोई बाहर खोजता है, तो भीतर उसे श्रेष्ठता से विपरीत अनुभव हो रहा है, इसकी खबर देता है।
पश्चिम के एक बहुत बड़े मनस्विद एडलर ने इस सदी में ठीक लाओत्से को परिपूर्ण करने वाला, सब्स्टीट्यूट करने वाला सिद्धांत पश्चिम को दिया है। और वह यह हैः जो लोग भी सुपीरियर होने की चेष्टा करते हैं, वे भीतर से इनफीरियर होते हैं। जो लोग भी श्रेष्ठता की खोज करते हैं, वे भीतर से हीनता से पीड़ित होते हैं। और इसलिए एक बहुत मजे की बात घटती है कि अक्सर जिन लोगों को हीनता का भाव बहुत गहन होता है, इनफीरियारिटी कांप्लेक्स भारी होती है, वे कोई न कोई पद, कोई न कोई धन, कोई न कोई यश उपलब्ध करके ही मानते हैं। क्योंकि वे बिना सिद्ध किए नहीं मान सकते कि वे अश्रेष्ठ नहीं हैं, वे भी श्रेष्ठ हैं। और उनके पास एक ही उपाय है, आपकी आंखों में जो दिखाई पड़ सके।
मैंने एक मजाक सुना है। सुना है कि एडलर को मानने वाला एक बड़ा मनोवैज्ञानिक एक राजधानी में व्याख्यान करता है। वह कहता है कि जो लोग भीतर से दरिद्र होते हैं, वे लोग धन की खोज करते हैं और धनी हो जाते हैं। जो लोग भीतर से कमजोर होते हैं, भयभीत होते हैं, डरपोक होते हैं, वे अक्सर बहादुरी की खोज करते हैं और बड़े बहादुर भी हो जाते हैं। जो लोग हीन होते हैं, वे श्रेष्ठता की खोज करते हैं।
नसरुद्दीन भी उस सभा में मौजूद था। उसने खड़े होकर पूछा कि मैं यह जानना चाहता हूं, क्या वे लोग, जो मनोवैज्ञानिक हैं, मानसिक रूप से कमजोर होते हैं? दोज हू आर साइकोलॉजिस्ट्स, आर दे मेंटली इनफीरियर? जो लोग मन पर ही अपनी सारी प्रतिष्ठा को निर्भर कर देते हैं, क्या वे मानसिक रूप से कमजोर होते हैं?
इस बात की भी संभावना है। यह मजाक ही नहीं, इस बात की संभावना भी है।
इस बात की संभावना है कि जो लोग दूसरों के मनों के संबंध में जानने को बहुत आतुर होते हैं, भीतर इनके मन में भी कोई पीड़ा और ग्लानि का भाव बहुत होता है। असल में, हम जो भी बाहर करने जाते हैं, उसके कारण कहीं हमारे भीतर ही होते हैं।
लाओत्से कहता है, श्रेष्ठता निजता में होती है, स्वयं में होती है, स्वभाव में होती है।
पर उस श्रेष्ठता को हम जानेंगे कैसे? उसकी पहचान क्या है? क्योंकि यह जिसको हम अब तक श्रेष्ठता कहते रहे हैं, इसकी तो पहचान है। लेकिन वह पहचान लाओत्से की दृष्टि से सिर्फ इस व्यक्ति को भीतर हीन सिद्ध करती है, श्रेष्ठ सिद्ध नहीं करती।
लाओत्से कहता है, उसकी पहचान हैः "दि हाईएस्ट एक्सीलेंस इ.ज लाइक दैट
ऑफ वाटर!"
यह उसकी पहचान है कि वह जो परम श्रेष्ठता है, वह पानी के स्वभाव जैसी होती है।

पानी का स्वभाव यह है कि वह बिना किसी प्रयास के निम्नतम स्थान में प्रवेश कर जाता है। बिना किसी प्रयास के, अनायास ही, स्वभाव ही उसका ऐसा है कि वह नीचे की तरफ बहता है। आप पहाड़ पर छोड़ दें, थोड़े ही दिन में आप उसे घाटी में पाएंगे। इस घाटी तक पहुंचने के लिए उसे कोई सायास चेष्टा नहीं करनी पड़ती। इसके लिए वह सोचता भी नहीं, इसके लिए वह अपने को समझाता भी नहीं। इसके लिए वह साधना भी नहीं करता, तप भी नहीं करता, अपने मन को भी नहीं मारता। बस यह उसका स्वभाव है कि जहां गड्ढा हो, नीचा हो स्थान, वहीं वह प्रवेश कर जाता है। अगर उस गड्ढे से भी नीचा गड्ढा उसे मिल जाए, तो वह तत्काल उसमें प्रवेश कर जाता है।
लाओत्से कहता है कि जो परम श्रेष्ठता है, वह जल के सदृश होती है। श्रेष्ठतम व्यक्ति गड्ढे खोज लेता है, शिखर नहीं खोजता। क्यों? यह लक्षण बहुत अजीब मालूम पड़ता है! और इससे बेहतर लक्षण ढाई हजार साल में फिर नहीं बताया जा सका। लाओत्से ने जो लक्षण बताया है, वह परम रेखा हो गई, अल्टीमेट। उसके बाद फिर कोई लक्षण नहीं खोजा जा सका इससे बेहतर। क्या बात है?
इसे अगर हम दूसरी तरफ से देखें, तो समझ में आ जाएगा।
हीन आदमी प्रयास करता है ऊंचे स्थान की तरफ जाने का। हीन आदमी को मौका मिले ऊपर चढ़ने का, तो वह छोड़ेगा नहीं। मौका न भी मिले, तो भी जद्दोजहद करता है। उसका पूरा जीवन एक ही कोशिश में होता हैः और ऊपर, और ऊपर, और ऊपर। वह आयाम कोई भी हो--धन का, यश का, पद का, ज्ञान का, त्याग का--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, और ऊपर! वह आयाम अंत में यह भी हो सकता है कि निकृष्ट और हीन आदमी यह कहे कि मैं बिना ईश्वर को पाए तृप्त नहीं होऊंगा। जब तक मैं घोषणा न करूं अहं ब्रह्मास्मि की, तब तक मेरी तृप्ति नहीं है।
लाओत्से के हिसाब से अपने को ईश्वर की अंतिम स्थिति तक पहुंचाने की
जो आकांक्षा है, वह आकांक्षा विपरीत है जल के स्वभाव के। उसे हम ऐसा समझ लें कि वह अग्नि का स्वभाव है, उदाहरण के लिए। अग्नि ऊपर की तरफ भागती है। उसे कितना ही दबाओ, वह छूटते ही ऊपर की तरफ भागती है। अग्नि नीचे की तरफ नहीं जाती। अगर हम दीए को उलटा भी कर दें, तो दीया उलटा हो जाता है, लेकिन ज्योति उलटी होकर ऊपर की तरफ भागने लगती है। बुझ जाए भला, लेकिन ज्योति नीचे की तरफ जाने को राजी नहीं होती। उसे अगर नीचे की तरफ ले जाना हो, तो बड़े प्रयास की जरूरत है। उसे बहुत दबाना पड़ेगा। अगर अहंकार को नीचे की तरफ ले जाना हो, तो बड़े प्रयास की जरूरत है। लेकिन जल नीचे की तरफ सहज जाता है। अगर उसे ऊपर की तरफ ले जाना हो, तो बड़े प्रयास की जरूरत है। कुछ पंपिंग का इंतजाम करना पड़े, मशीनें लगानी पड़ें, तब हम उसे ऊपर चढ़ा सकते हैं। फिर भी मौका पाते ही पानी नीचे भाग आएगा।
यह नीचे की तरफ जाने की बात को लाओत्से श्रेष्ठता का परम लक्षण कहता है। क्योंकि नीचे जाने को वही राजी हो सकता है, जिसकी श्रेष्ठता इतनी सुनिश्चित है कि नीचे जाने से नष्ट नहीं होती है। ऊपर वही जाने को उत्सुक होता है, जिसे पता है कि अगर वह नीचे रहा, तो निकृष्ट समझा जाएगा। वह खुद भी अपने को निकृष्ट समझेगा। ऊपर पहुंच जाए, तो दूसरे भी उसे श्रेष्ठ समझेंगे। और दूसरों की आवाज सुन कर वह भी अपने को श्रेष्ठ समझने की व्यवस्था बना पाएगा। भीतर जो निकृष्टता का भाव है, वह ऊपर की तरफ जाने की प्रेरणा देता है। भीतर अगर श्रेष्ठता हो, तो आदमी पीछे, नीचे गड्ढे में समा जाना चाहता है। क्यों? आखिर यह गड्ढे में अनायास उतर जाने की भी बात क्यों? यह इसलिए कि वहां कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है, वहां कोई संघर्ष नहीं है, वहां जाने को कोई राजी ही नहीं है।
सुना है मैंने कि एक नए आदमी ने नसरुद्दीन से उसके गांव में निवास के लिए पूछा और कहा कि मैं तुम्हारे गांव में आकर बहुत ईमानदारी से धंधा करना चाहता हूं। नसरुद्दीन ने कहा, तुम बिल्कुल आ जाओ, देयर इ.ज नो काम्पिटीशन। अगर ईमानदारी से धंधा करना है, तो बिल्कुल आ जाओ, कोई काम्पिटीशन ही नहीं है। क्योंकि सभी धंधे वाले बेईमान हैं। तुम मजे से आ जाओ, कोई झगड़ा नहीं है। हम सभी खुश होंगे। कोई प्रतिस्पर्धा ही नहीं है।
लाओत्से कहता है कि वह जो श्रेष्ठता है आंतरिक, वह उस जगह खड़ी हो जाती है, जहां कोई संघर्ष नहीं है। और संघर्ष अंतिम स्थिति पर भर नहीं है। बाकी

सब स्थितियों पर है। इसलिए श्रेष्ठता अंतिम को खोज लेती है। वह उसकी सुरक्षा का कवच है।
लाओत्से के पीछे चीन का सम्राट वर्षों तक पड़ा रहा कि वह वजीर हो जाए।
उस जैसा ज्ञानी आदमी खोजना मुश्किल था। सिर्फ उसके वजीर होने की स्वीकृति से सम्राट की प्रतिष्ठा में हजार चांद जुड़ जाते। लाओत्से के पीछे उसके वजीर घूमते रहे। जहां-जहां लाओत्से को पता चले कि उसे पता लगाते लोग आ रहे हैं, वह उस गांव से विदा हो जाए। गांव में जब वजीर पहुंचें, वे पूछें, तो वे कहें कि रात ही लाओत्से यहां से चल पड़ा।
बामुश्किल लाओत्से को पकड़ पाए। एक नदी के किनारे वह बैठा था और मछलियां मार रहा था। वजीर ने हाथ-पैर जोड़े और कहा कि तुम पागल हो, तुम हमसे बचते फिर रहे हो और तुम्हें पता नहीं कि हम तुम्हें किसलिए खोज रहे हैं। सम्राट ने आदेश दिया है कि तुम्हें परम सम्मान के पद पर बिठा दिया जाए। तुम राष्ट्र के बड़े वजीर हो जाओ! लाओत्से चुपचाप बैठा रहा। उस वजीर ने समझा कि शायद उसने सुना नहीं। उसने उसे हिलाया और कहा कि हम तुमसे क्या कह रहे हैं, तुमने सुना?
पास में ही एक गड्ढे में कीचड़ में कोई लोट रहा है। लाओत्से ने कहा, देखो उस गड्ढे को, उसमें तुम्हें क्या दिखाई पड़ता है? कीचड़ है, गड्ढे में कोई हलन-चलन है। वजीर और उनके साथी गड्ढे के पास गए। देखा, एक कछुआ कीचड़ में लोटता है। उन्होंने कहा, एक कछुआ कीचड़ में लोट रहा है।
लाओत्से ने कहा, मैंने सुना है कि तुम्हारे राजमहल में एक सोने से मढ़ा हुआ कछुआ है। वह चीन का, उस समय के सम्राट का राज्य-चिह्न था। और मैंने सुना है कि हर वर्ष, वर्ष के प्रथम दिन पर उसकी पूजा होती है। और लाखों रुपए खर्च होते हैं। उन्होंने कहा, तुमने ठीक सुना है।
लाओत्से ने कहा, मैं तुमसे यह पूछता हूं, अगर तुम इस कीचड़ में लोटते हुए प्राणी से कहो, कछुए से कहो कि चल, हम तुझे राजमहल में बिठा कर सोने से मढ़ कर रख देंगे और हर वर्ष तेरी पूजा होगी, तो यह राजमहल जाना पसंद करेगा? या इसी गड्ढे में कीचड़ में लोटना पसंद करेगा?

उस वजीर ने कहा कि अगर यह पागल होगा, तो राजमहल में सोने में मढ़ने को राजी होगा; क्योंकि वह मौत है। वह पूजा तो मिलेगी, लेकिन मर कर मिलेगी। सोना तो मढ़ जाएगा, लेकिन भीतर से प्राण उड़ जाएंगे। अगर इस कछुए में थोड़ी भी समझ है, तो यह अपनी कीचड़ में ही लोटना पसंद करेगा।
लाओत्से ने कहा, मुझमें कम से कम इस कछुए के बराबर समझ तो है। तुम जाओ! मेरी कीचड़ भली। सोने में मुझे मत मढ़ो। क्योंकि मढ़ कर तुम मुझे मार डालोगे। असल में, सोने से मढ़ना और मरना एक ही बराबर है। बिना मरे कोई सोने से मढ़ा नहीं जा सकता। जितने बड़े पद पर जाना हो, उतना मुर्दा होना पड़ता है। जितने बड़े धन के ढेर पर बैठना हो, उतना मुर्दा हो जाना पड़ता है। मरे बिना ऊपर चढ़ना मुश्किल है। वह चढ़ने में ही प्राण कट जाते हैं। सब चढ़ाव आत्मघात हैं, सुसाइडल हैं।
इसलिए लाओत्से कहता है, परम श्रेष्ठता तो वह है, जो अनायास, जल के सदृश, उन स्थानों को खोज लेती है, जिन स्थानों में जाने के लिए हम कभी भी राजी न हों, जिनकी हमारे मन में बड़ी निंदा है।
"जल की महानता हितैषणा में निहित है और उस विनम्रता में, जिसके कारण
वह अनायास ऐसे निम्नतम स्थान ग्रहण करता है, जिनकी हम निंदा करते हैं। इसलिए तो जल का स्वभाव ताओ के निकट है।"
लाओत्से कहता है, ताओ का अर्थ है धर्म। ताओ का अर्थ है स्वभाव। ताओ का अर्थ है स्वरूप। जीवन का जो परम नियम है, उसका नाम है ताओ। लाओत्से कहता है, जल की यह व्यवस्था ठीक ताओ के निकट है। ताओ को उपलब्ध व्यक्ति भी इसी तरह, सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति भी इसी तरह नीचे, पीछे और दूर हट जाता है। छाया में, जहां उसे कोई देखे भी नहीं। भीड़ की अंतिम कतार में, जहां कोई संघर्ष न हो। और जब भी कोई वहां मौजूद हो, तब वह पीछे हटता चला जाता है।
दो तरह के लोग हैंः आगे बढ़ते हुए लोग और पीछे हटते हुए लोग। पीछे हटते हुए लोग कभी-कभी पैदा होते हैं। कभी कोई बुद्ध, कभी कोई लाओत्से, कभी कोई क्राइस्ट। आगे बढ़ते हुए लोगों की बड़ी भीड़ है।

एक सभा में नसरुद्दीन गया है। जरा देर से पहुंचा है, तो आगे जगह खाली नहीं रही है। दरवाजे के पास ही उसे बैठना पड़ा है। उसे बड़ी बेचैनी हुई है। सभापति के आसन पर बैठने की उसकी आदत है। उसने पीछे बैठ कर गपशप करनी शुरू कर दी। उसने कुछ लतीफे सुनाने शुरू कर दिए। कुछ लोग उसकी बातों में उत्सुक हो गए। उन्होंने सभापति की तरफ पीठ कर ली और नसरुद्दीन की बातें सुनने लगे। थोड़ी देर में पूरी सभा नसरुद्दीन की तरफ हो गई। सभापति का चेहरा लोगों की पीठ हो गई। सभापति चिल्लाया कि नसरुद्दीन, तुम यह क्या कर रहे हो? सभापति के पद पर मैं हूं!
नसरुद्दीन ने कहा, हम कोई पद नहीं जानते; हम जहां होते हैं, वहीं सभापति का पद होता है। सभा दो ही हालत में चल सकती है, या तो मैं सभापति रहूं और या फिर सभा नहीं चल सकेगी। सभापति तो मैं रहूंगा ही।
बुलाना पड़ा नसरुद्दीन को, सभापति के पद पर बिठालना पड़ा। तब सभा आगे चल सकी।
नसरुद्दीन ने कहा, हम जहां होते हैं, वहीं सभापति का पद होता है। यह हम
सब की आकांक्षा है। न भी हों सभापति के पद पर, तो भी हम जहां होते हैं, वहीं सभापति का पद है, ऐसा हम सब का भाव है। सारी दुनिया के सेंटर पर हम हैं। सब चांद-तारे हमारा चक्कर लगा रहे हैं। इसलिए जब पहली दफा गैलीलियो ने कहा कि नहीं, सूरज पृथ्वी का चक्कर नहीं लगाता, तो समस्त मनुष्य-जाति को धक्का जो पहुंचा वह यह नहीं था कि हमारी धारणा गलत हो गई। इससे क्या फर्क पड़ता है कि सूरज चक्कर लगाता है या नहीं लगाता है! कि पृथ्वी चक्कर लगाती है! नहीं, गहरा आघात आदमी को पहुंचा कि उसकी पृथ्वी, उसकी पृथ्वी जगत का सेंटर नहीं रह गई। आदमी को सदा ख्याल था कि पृथ्वी जगत का सेंटर है, केंद्र है। सूरज और चांद-तारे सब जमीन का चक्कर लगाते हैं। मेरी जमीन! आदमी की जमीन! गैलीलियो ने बड़ा धक्का पहुंचाया। उसने कहा कि नहीं, सूरज चक्कर लगाता नहीं, पृथ्वी ही चक्कर सूरज का लगाती है। और यह सूरज भी किसी महासूर्य का चक्कर लगा रहा है। हम केंद्र पर नहीं हैं।
फिर भी आदमी को डार्विन तक भरोसा था कि आदमी को परमात्मा ने अपनी ही शक्ल में बनाया--ही क्रिएटेड मैन इन हिज ओन इमेज। आदमी ने किताबें लिखी हैं। अगर गधे किताबें लिखें, तो वे लिखेंगे कि परमात्मा ने हमको उसकी ही शक्ल में बनाया। क्योंकि गधे यह मानने को राजी न होंगे कि परमात्मा आदमी को अपनी शक्ल में बनाता है। आदमी ने किताबें लिखी हैं, आदमी ने लिखा है कि ईश्वर ने हमें बनाया जगत का सर्वश्रेष्ठ प्राणी।
डार्विन ने बहुत मुश्किल खड़ी कर दी। उसने कहा कि परमात्मा का कोई पता नहीं चलता पीछे, पता यह चलता है कि आप बंदर से पैदा हुए हैं। भारी धक्का लगा अहंकार को। कहां आदमी परमात्मा से पैदा होता था, कहां अचानक बंदर से पैदा होना पड़ा! डार्विन का जो विरोध हुआ, वह इसलिए नहीं कि वह गलत कहता था, वह इसलिए कि आदमी के अहंकार को और एक सीढ़ी से नीचे गिरा दिया गया।
और फ्रायड ने इस सदी में तीसरा बड़ा धक्का दिया। आदमी सदा से सोचता था
कि मैन इ.ज ए रेशनल बीइंग, बुद्धिमान प्राणी है आदमी। फ्रायड ने कहा कि आदमी से ज्यादा निर्बुद्धि प्राणी खोजना मुश्किल है। आदमी जो भी करता है, वह बिल्कुल बिना बुद्धि के करता है। सिर्फ होशियार इतना है कि उस पर बुद्धि का मुलम्मा चढ़ाता है। रेशनलाइजेशन करता है, रीजन बिल्कुल नहीं है। तो जो करना चाहता है, उसके लिए कारण खोज लेता है। जो करना चाहता है, उसके लिए कारण खोज लेता है। अगर युद्ध करना है; तो कारण खोज लेता है। युद्ध नहीं करना है; तो कारण खोज लेता है। प्रेम करना है; तो कारण खोज लेता है। घृणा करनी है; तो कारण खोज लेता है। और हमेशा कारण खोज लेता है। लेकिन जो करना है, वह कारण के पहले करता है।
हम सब यही करते हैं। अगर मैं कहता हूं कि आप मुझे अच्छे नहीं मालूम पड़ते, तो मैं बराबर कारण बताऊंगा कि क्यों अच्छे नहीं मालूम पड़ते। लेकिन अच्छा नहीं मालूम पड़ना बिना कारण के पहले घटित हो जाता है मेरे इमोशंस में। फिर मैं कारण खोजता हूं, पीछे वजह खोज लेता हूं। एक आदमी मुझे अच्छा लगता है, तो मैं कहता हूं, वह सुंदर है इसलिए अच्छा लगता है। फ्रायड कहता है कि नहीं, आपको अच्छा लगता है इसलिए आप सुंदर कहते हैं। अच्छा पहले लग जाता है, फिर आप कहते हैं सुंदर है। लेकिन पीछे जब आप बताते हैं, तो आप कहते

हैं कि अच्छा इसलिए लगता है, क्योंकि सुंदर है। चांद सुंदर है, इसलिए अच्छा लगता है? कि आपको अच्छा लगता है, इसलिए सुंदर मालूम पड़ता है? आपका दिवाला निकल गया हो; चांद वही का वही होता है, फिर सुंदर नहीं मालूम पड़ता। फिर ऐसा लगता है कि चांद से आंसू टपक रहे हैं। चांद बैंक्रप्ट हो गया है। आपका भाव ही चांद पर आरोपित हो जाता है। आप जो भीतर अनुभव करते हैं, वह बाहर फैला देते हैं।
लेकिन आदमी कुशल है। वह अपने अंधे भावों के लिए भी तर्कयुक्त व्याख्याएं करता है। वह कहता है कि हमारी व्याख्याएं ये हैं। ऐसे ही हम चांद को पसंद नहीं करते; चांद सुंदर है, इसलिए पसंद करते हैं। फलां आदमी है, हम उसको आदर यों ही नहीं देते; उसमें सदगुण हैं, इसलिए आदर देते हैं। सचाई और है। आप किसी आदमी को आदर पहले दे देते हैं; सदगुण वगैरह की खोज पीछे होती है। और जब आप किसी आदमी से आदर छीनते हैं और उसकी निंदा करते हैं, तब भी आप सोचते हैं कि हम निंदा इसलिए करते हैं कि हमें उसके दुर्गुण मिल गए। फिर आप गलती करते हैं। निंदा आपके मन में पहले आ जाती है; दुर्गुण आप पीछे से खोज लाते हैं।
लेकिन आदमी सदा फ्रायड के पहले ऐसा ही मानता था कि वह जो भी करता है, बुद्धि से, तर्क से करता है। लेकिन इधर पचास वर्षों की साइकोएनालिसिस ने बहुत प्रमाणित कर दिया है कि आदमी बुद्धि से कुछ भी करता हुआ मालूम नहीं पड़ता। सैकड़ों प्रयोग हैं। बर्ट्रेंड रसेल ने एक उल्लेख किया है। बर्ट्रेंड रसेल ने उल्लेख किया है कि एक साबुन की फैक्टरी को बर्ट्रेंड रसेल ने राजी किया कि वह दस ब्रिटेन के बड़े से बड़े डाक्टरों का वक्तव्य ले अपनी साबुन के संबंध में। ब्रिटेन के दस बड़े वैज्ञानिक चिकित्सकों का वक्तव्य लेकर उस साबुन के मालिक ने अपना विज्ञापन अखबारों में दिया, जिनमें देश के चोटी के दस वैज्ञानिकों ने वक्तव्य दिए थे कि यह श्रेष्ठतम साबुन है। और दूसरे साबुन के मालिक को तैयार किया, जिसका साबुन बिल्कुल ही हेठा था, इस साबुन के मुकाबले बिल्कुल नहीं था, जिसको एक भी डाक्टर कहने को राजी नहीं था कि यह साबुन श्रेष्ठ है। एक सस्ती, दो कौड़ी की फिल्म अभिनेत्री को राजी किया कि वह कहे कि मेरा सौंदर्य इसी साबुन की वजह से है। फिल्म अभिनेत्री वाला साबुन बिका, दस डाक्टरों वाला साबुन नहीं बिका। आदमी बुद्धिमान प्राणी है! बहुत बुद्धिमान प्राणी है! वे दस चोटी के वैज्ञानिक किसी मतलब के नहीं हैं। लेकिन एक नाचने वाली लड़की ज्यादा मतलब की है। क्योंकि चोटी के वैज्ञानिक बुद्धि से बात करते हैं, नाचने वाली लड़की बुद्धि के पीछे, जहां से आप चलते हैं, उसको छूती है, उसको टिटिलेट करती है।
अब सबको समझ में आ गया है दुनिया में। इसलिए कुछ भी बेचना हो, लड़की को खड़ा करो और दलीलें देने की कोई भी जरूरत नहीं है। कुछ भी बेचना हो; इससे कोई संबंध नहीं है कि क्या बेचना है आपको। कुछ भी बेचना हो, लड़की को खड़ा करो अर्धनग्न; वह चीज बिकेगी। आप दुनिया भर के वैज्ञानिकों की दलीलें ले आओ, सब महात्माओं के वक्तव्य ले आओ; वह चीज नहीं बिकेगी। एक नाचने वाली लड़की सबको हरा देगी। क्योंकि आदमी बुद्धिमान प्राणी है, ऐसी भ्रांति है। है नहीं। आदमी चलता है किन्हीं और कारणों से। उसके भीतर जो चलने की व्यवस्था है, वह बौद्धिक नहीं है, रेशनल नहीं है। इम्मोशनल है, भावुक है, इंसटिंक्टिव है, वृत्तियों से चलता है। लेकिन मानने को मन नहीं होता। आदमी सदा अपने को जगत के केंद्र में, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, परमात्मा से सीधा उपजा हुआ--ऐसा मानता रहा है। इधर डेढ़ सौ वर्षों में जो मनुष्य को बहुत धक्के लगे हैं, जिनसे मनुष्य का बिल्कुल सारा का सारा भवन अहंकार का गिर गया है... ।
लाओत्से कहता है कि यह भवन बनाने की जरूरत ही नहीं है। किस पागल ने तुमसे कहा? लाओत्से ईश्वर का नाम भी नहीं लेता अपने पूरे वक्तव्यों में-- जान कर। क्योंकि वह कहता है, ईश्वर का नाम लेते ही आदमी कोशिश करता है कि अपने अहंकार को ईश्वर से जोड़ ले। वह नाम भी नहीं लेता ईश्वर का। वह परम पद की बात ही नहीं करता। वह मोक्ष की बात ही नहीं करता। वह कहता है, अंतिम पद! आखिरी पद! पीछे खड़े हो जाओ! वही मोक्ष है।

कोई राजी नहीं होता पीछे खड़े होने को। आप आगे खड़े होने को किसी भी काम में राजी कर सकते हैं आदमी को--किसी भी काम में! कितना ही एब्सर्ड और कितना ही मूढ़तापूर्ण हो, आगे खड़े होने के लिए आप आदमी को किसी भी चीज के लिए राजी कर सकते हैं। पीछे खड़े होने के लिए, अगर परमात्मा भी मिलता हो पीछे खड़े होने से, तो आदमी को आप राजी नहीं कर सकते हैं। पीछे खड़े होने की तैयारी ही हमारी भीतर की निकृष्टता नहीं दिखा पाती; भीतर श्रेष्ठता हो, तो ही संभव है कि कोई पीछे खड़े होने को राजी हो जाए। और मजा यह है कि प्रथम केवल वे ही पहुंच पाते हैं, जो पीछे खड़े हो जाते हैं। और मोक्ष की अंतिम ऊंचाई उनको उपलब्ध होती है, जो जल की भांति वादियों और घाटियों की अंतिम नीचाई को खोजने के लिए राजी हो जाते हैं।
यह जो विपरीत का नियम है, इसे ध्यान में रख कर लाओत्से कहता है कि मैं
एक ही सूचना देता हूं, जल के सदृश जो हो जाए, वह ताओ को उपलब्ध हो जाता है। "आवास की श्रेष्ठता स्थान की उपयुक्तता में है।"
हमारे लिए नहीं। ये वक्तव्य कोई भी हम पर लागू नहीं होंगे। लाओत्से कहता है, स्थान की श्रेष्ठता उसकी उपयुक्तता में है। हमारे लिए नहीं। अगर हम एक मकान खरीदते हैं, तो इसलिए नहीं कि वह मकान रहने के लिए उपयुक्त है। मकान हम इसलिए खरीदते हैं कि वह हमारे अहंकार को प्रोजेक्ट करने के लिए कितना उपयुक्त है। इसलिए कई बार आप ऐसे मकान में रहने को राजी हो जाएंगे जहां अमीरों के घर हैं, चाहे वह मकान रहने के उपयुक्त न हो। और उस इलाके में रहने को आप राजी न होंगे जहां गरीबों के घर हैं, चाहे मकान रहने को ज्यादा उपयुक्त हो। उपयुक्तता से हमें प्रयोजन नहीं है। हमारे लिए तो एक ही प्रयोजन है कि अहंकार किससे तृप्त हो।
कई बार हम बड़ी कठिनाइयां झेलते रहते हैं अहंकार की तृप्ति के लिए। अगर अहंकार टाई बांधने से तृप्त होता हो, तो हम पसीना झेल सकते हैं, लेकिन टाई हटा नहीं सकते। अगर रिस्पेक्टबिलिटी जूते पहनने में ही हो, तो चाहे जूतों में आग पड़ रही हो, लेकिन हम नंगे पैर नहीं चल सकते हैं।
चीन में स्त्रियां पैर में लोहे के जूते पहन कर पैर छोटे करती रही हैं, क्योंकि वे रिस्पेक्टबल थे। बड़े घर की स्त्री की पहचान उसका छोटा पैर थी। और इसीलिए चीन में पैर जो था, वह सेक्स-सिंबल बन गया था। जैसे आज स्तन सारी दुनिया में सेक्स-सिंबल बन गया है। चीन में पांच हजार साल तक स्तन पर कोई ध्यान नहीं देता था स्त्री के, पैर पर ध्यान देता था। छोटा पैर दिखा कि आदमी एकदम दीवाना हो जाता था। अभी कोई दीवाना नहीं होता। पैर से संबंध टूट गया, ख्याल मिट गया। कंडीशनिंग थी पांच हजार साल की।
तो जिसका पैर बड़ा था, वह स्त्री इतनी बेचैन और दुखी होती थी, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। पैर की वजह से नहीं; क्योंकि पैर बड़ा हो, इससे दुख का क्या संबंध है? बड़ा पैर तो और भी जमीन पर ढंग से रखा जाता है। चलने की क्षमता बड़े पैर में ज्यादा होती है। दौड़ने की क्षमता भी ज्यादा होती है। बलशाली भी होता है। शरीर को सम्हालने के उपयुक्त भी होता है। लेकिन नहीं, वह सवाल नहीं था। स्थान की उपयुक्तता उपयुक्तता में नहीं है, अहंकार की तृप्ति में है। तो जो स्त्री बिना किसी के कंधे का सहारा लेकर चलती थी, वह कुलीन घर की नहीं थी, यह सिद्ध होता था। सहारा चाहिए, कंधे पर किसी के हाथ चाहिए; क्योंकि पैर इतने छोटे कर लेते थे कि वे बड़े शरीर को सम्हालने के योग्य नहीं रह जाते थे। स्त्रियां चल नहीं सकती थीं।
आज भी वही हालत है; कोई फर्क नहीं पड़ गया। सिंबल्स बदल जाते हैं, प्रतीक बदल जाते हैं, हालत वही होती है। आप हजार तरह की मुसीबत झेलने को तैयार होते हैं, अगर अहंकार उससे तृप्त होता हो। और आप हजार तरह के आनंद छोड़ सकते हैं, अगर अहंकार तृप्त न होता हो। तो आप छोड़ सकते हैं। आदमी के ऊपर बढ़ने की यात्रा में कैसा भी कष्ट उसे मिले, वह शहीद होने को सदा तैयार है। हमारे पहनने के ढंग, हमारे कपड़े, हमारे जेवर, हमारा मकान, हमारी कारें, उनमें कोई में भी इस बात की फिक्र नहीं है कि वे उपयुक्त हैं। हमारा भोजन, उसमें भी कोई फिक्र नहीं है कि वह उपयुक्त है। फिक्र इस बात की है कि वह रिस्पेक्टबल है, अहंकार को तृप्ति देता है।
आपके घर एक मेहमान आता है, तो आप इसकी फिक्र नहीं करते कि मेहमान को जो भोजन दिया जाए, वह स्वास्थ्यप्रद हो। कोई फिक्र नहीं करता। इसलिए तो हर

मेहमान लौट कर फिर बीमार पड़ता है। मेहमान को बीमार पड़ना ही चाहिए; नहीं तो आपकी प्रतिष्ठा नहीं है। अगर मेहमान बिना बीमार पड़े घर चला जाए, तो उसका मतलब यह है कि स्वागत-सत्कार नहीं हुआ। आपने भी नहीं किया और मेहमान भी समझेगा कि स्वागत-सत्कार ठीक से नहीं हुआ है। सीधा मेजबान के घर से डाक्टर की एंबुलेंस पर जाना पड़े!
तो हम कोशिश तो पूरी करते हैं। बच जाए, उसकी किस्मत! नहीं, स्वास्थ्य
की फिक्र नहीं है कि उसे जो भोजन मिले, वह स्वास्थ्यप्रद हो। नहीं, उसे वह भोजन दिया जाए जिसका कोई अहंकार से संबंध है। वह जाने कि वह ऐसी चीज खाकर लौटा है, जो कहीं और नहीं मिल सकती है।
स्त्रियां गहने लादे रही हैं, वजनों, इतना वजन कि अगर उनसे कहा जाए कि इतना झोला उठा कर तुम दो घर चलो, तो वे इनकार कर दें। लेकिन सेर-सेर, दो-दो सेर सोना वे लाद कर चल सकी हैं। बहुत नाजुक स्त्रियां, जिनको नाजुक होने का ख्याल है, वे भी सोने के वक्त बिल्कुल नाजुक नहीं रह जातीं। सोने को ढोया जा सकता है। हालांकि सोने में और लोहे में तराजू पर कोई फर्क नहीं होता। जो वजन तराजू पर सोने का पता चलेगा, वही लोहे का पता चलेगा। लेकिन ईगो के तराजू पर फर्क है। तो अगर लोहा उठाना पड़े, तो हाथ दुखते हैं। लेकिन अगर सोना उठाना पड़े, तो पैरों में पर लग जाते हैं। बात क्या है? हो क्या जाता है?
अफ्रीका में औरतें हैं, गले में हड्डियों का इतना सामान पहनती हैं कि गला जो है, वह करीब-करीब ऊंट जैसा हो जाता है। लेकिन वह चलेगा, उसमें कोई तकलीफ नहीं है। अगर हम ऐसे किसी आदमी के गले को फंसाएं, तो वह कहेगा, आप फांसी लगा रहे हैं मेरी। लेकिन अगर वह सौंदर्य का प्रतीक हो, तो चल सकता है। कुछ भी चल सकता है।
अभी अमरीका में नई पीढ़ी के लड़के और लड़कियां हैं; वे सब तरह की गंदगी में जी रहे हैं। क्योंकि हिप्पीज ने गंदगी को एक मूल्य दे दिया, जो कभी नहीं था। हिप्पीज ने कहा कि ये स्वच्छता की जो बातें हैं, बुर्जुआ! ये बैठे-ठाले मुफ्तखोर लोगों की बातें हैं। यह जो स्वच्छता की--साबुन है, और पाउडर है, और डियोडरेंट है--यह सारी जो स्वच्छता है, स्नान है, ये सब झूठी बातें हैं। ये सब मुफ्तखोर लोगों की, बुर्जुआ लोगों की बातें हैं। असली आदमी इन बातों में नहीं पड़ता। तो आज गंदगी को एक नई वैल्यू हिप्पीज ने दे दी है। अब अगर किसी को हिप्पी के समाज में आदृत होना है, तो वह रिस्पेक्टबिलिटी का हिस्सा है कि उसको गंदा रहना चाहिए। वह जितना गंदा रहे, उतना महान हिप्पी है। आस-पास के हिप्पी, अगर आप पहुंच जाएं ठीक से बाल-वाल कटा कर, साफ-सुथरे, पुराने ढंग के साफ-सुथरे आदमी बन कर, तो सारे हिप्पी कहेंगे, स्क्वायर आ गया, यह पोंगा-पंथी आ गया! देखो, कैसा क्लीन शेव किया हुआ है!
हिप्पीज ने नया मूल्य बना लिया, तो आज हिप्पी लड़के और लड़कियां उस नए मूल्य के लिए भी राजी हैं। उसके लिए भी राजी हैं। गंदगी में रहने के लिए राजी हैं। उनके शरीर से बदबू निकले, तो वह मूल्य हो गया। और ऐसा नहीं कि ऐसा पहले हुआ है। हम सब ऐसे मूल्य देते रहे हैं। जैन साधु स्नान नहीं करता है। तो अगर जैन साधु को जो जानते हैं, वे उसके पास जाएं और पसीने की बदबू न आए, तो उन्हें शक हो जाए कि मामला कुछ गड़बड़ है। दातुन नहीं करता है। तो जब जैन साधु बात करे, तो उसके मुंह से बास आनी चाहिए। वह उसकी साधुता की प्रामाणिकता का सबूत है! अगर न आए, तो भक्त चिंता में पड़ जाएगा कि जरूर टूथपेस्ट कहीं छिपाया हुआ है। यद्यपि छिपाया हुआ है, आज तो छिपाया हुआ है। अब उस जैन साधु की बड़ी तकलीफ है। उसकी तकलीफ यह है कि उसके पास एक रिस्पेक्टबिलिटी का मूल्य है दो हजार साल पुराना। और अभी वह जो पढ़ता- सुनता है, और चारों तरफ देखता है, वह टूथपेस्ट का मूल्य भी है। उसकी नजर में दोनों का मूल्य है। वह बड़ी कनफ्यूजन में पड़ गया है। वह बड़े धोखे में पड़ गया है। वह दोनों काम एक साथ करता है। अपनी पोटली में टूथपेस्ट भी छिपाए रहता है और ऐसे भी दिखाए रखता है कि वह दातुन नहीं करता है। स्पंज से स्नान भी करता रहता है... ।
एक जैन साध्वी मुझे मिलने आई। तो मैंने पूछा कि तेरे शरीर से बास नहीं
आ रही! तो उसने कहा, आप से तो मैं सच कह सकती हूं कि बर्दाश्त नहीं होता

पसीना। तो मैं तो गीला कपड़ा भिगा कर स्पंज कर लेती हूं। लेकिन आप किसी को बताना मत। नहीं तो मेरी सब साधुता गई। क्योंकि वह सब साधुता इसमें है कि वह कितनी स्नान नहीं करती है। क्योंकि एक मूल्य था जैनों के मन में। वह मूल्य यह था कि जो आदमी स्नान करता है, वह शरीरवादी है। शरीर को स्वच्छ करना, शरीर को सजाना-संवारना, यह शरीरवादी का लक्षण है। आत्मवादी को शरीर की फिक्र ही नहीं करनी चाहिए।
इसमें आगे जैनियों से भी पहुंच गए कुछ लोग, जिनको हम परमहंस कहते रहे हैं। वे पाखाना करके बैठ जाएंगे और वहीं खाना खाएंगे। अगर परमहंस ऐसा न करे, तो लोग कहेंगे, कैसा परमहंस! अगर परमहंस होना हो, तो वहीं मल-मूत्र करो, वहीं बैठ कर खाना खाओ। तब लोग कहेंगे, यह है परमहंस! जिन-जिन के नाम के पीछे परमहंस पुराने दिनों में लगा है, वे ऐसे लोग हैं। जिस चीज को भी हम मूल्य दे दें और अहंकार की तृप्ति का रास्ता बता दें, आदमी वही करने को राजी हो जाता है। आदमी बड़ा अजीब है।
आप जब ये बातें सुन रहे हैं, तो आपको लगता होगा, ये दूसरों के बाबत हो रही हैं। ऐसी भ्रांति में मत पड़ना आप। आप अपनी तरफ खोजेंगे, तो खुद भी पा लेंगे कि आप क्या-क्या कर रहे हैं। जो आपकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है, सुख भी नहीं आता, शांति भी नहीं आती; लेकिन चारों तरफ उसकी रिस्पेक्टबिलिटी है, उसका आदर है, तो आप वह कर रहे हैं। चारों तरफ पड़ोसियों के ऊपर सिक्का जमाना है, तो एक आदमी ऐसी कार खरीद लेता है, जिसकी उसकी हैसियत नहीं है खरीदने की। लेकिन पड़ोसी पर सिक्का जमाना है।
नसरुद्दीन की पत्नी ने एक दिन उससे कहा है कि अब दो ही उपाय हैंः या तो बड़ी कार खरीद लो, या मुहल्ला बदल लो; जो भी तुम्हें सस्ता लगे। क्योंकि पड़ोसी ने एक बड़ी कार खरीद ली है। अब दो ही उपाय हैंः या तो बड़ी कार खरीद लो, या पड़ोस बदल लो।
नसरुद्दीन ने कहा कि बड़ी कार ही खरीद लेना सस्ता पड़ेगा; पड़ोस बदलना बहुत मंहगा काम है। और फिर इस पड़ोसी की तो सब चीजों को हम जवाब दे चुके हैं; नए पड़ोसियों की चीजों को फिर जवाब देने की शुरुआत करनी पड़ेगी। और पता नहीं, नए पड़ोसियों के पास किस तरह की चीजें हों, उनको जवाब देना पड़ेगा।
सब एक-दूसरे को जवाब दे रहे हैं। इसकी उन्हें कोई फिक्र नहीं कि उनकी जरूरत क्या है! खुद की जरूरत क्या है!
लाओत्से कहता है, "आवास की श्रेष्ठता स्थान की उपयुक्तता में है।"
और कभी यह हो सकता है कि महल उपयुक्त न हो, वृक्ष के नीचे बैठ जाना उपयुक्त हो। और कभी यह हो सकता है कि कीमती से कीमती वस्त्र उपयुक्त न हों और एक लंगोटी लगा कर धूप में लेट जाना उपयुक्त हो। लेकिन हम मजेदार लोग हैं, हम लंगोटी लगा कर भी धूप में लेट सकते हैं; लेकिन वह तभी, जब वह रिस्पेक्टबल हो जाए। तब फिर गैर-जरूरी लोग भी लेटे रहते हैं। मोटी औरतें दुबला होने का प्रयास करती रहती हैं, दुबली औरतें मोटा होने का प्रयास करती रहती हैं। ऐसी औरत खोजना मुश्किल है, जो कोई प्रयास न कर रही हो। अगर मोटी है, तो दुबला होने का प्रयास कर रही है। अगर दुबली है, तो मोटा होने का प्रयास कर रही है।
अमरीका में अगर बाल उसके काले नहीं हैं, तो वह काले बालों के लिए दीवानी है। और अगर बाल काले हैं, तो वह विपरीत बालों के लिए दीवानी है। मगर दीवानगी जारी है। क्योंकि किसी को इससे मतलब नहीं है कि उपयुक्त क्या है। मतलब इससे है कि चारों तरफ क्या हवा कह रही है। और हवा रोज बदल जाती है। और हवा को चलाने वाले बहुत और लोग हैं, जिनका आपको पता ही नहीं है।
वैंस पैकार्ड ने एक किताब लिखी हैः दि हिडेन परसुएडर्स! छिपे हुए फुसलाने वाले लोग! उनका धंधा इस पर निर्भर है कि आपको फुसलाते रहें। हिडेन परसुएडर्स हैं चारों तरफ। जब एक कपड़ा फैशन में छह महीने चल चुका होता है, तो वे हिडेन परसुएडर्स दूसरे कपड़े को गतिमान करते हैं। क्योंकि अन्यथा मिलें कैसे चलेंगी? धंधा कैसे चलेगा? कपड़ा तो एक चल सकता है सदा-सदा; लेकिन मिल एक कपड़े से नहीं चल सकती। और जब एक साबुन चल जाती है, तो एक साबुन काम कर सकती है। बड़े मजे की बात है कि सभी साबुन करीब-करीब एक से मैटेरियल से बनती हैं। लेकिन एक साबुन चल जाए, तो फैक्ट्री नहीं चलेगी। तो हिडेन परसुएडर्स हैं, छिपे हुए फुसलाने वाले लोग हैं। जैसे ही एक साबुन गति

पकड़ती है, तत्काल खबर आती है कि वह आउट ऑफ फैशन हो गई। और सब आदमियों को फैशन में होना परम धर्म है। फैशन के बाहर होना मतलब आप जिंदा ही नहीं हैं। फैशन के बीच होना चाहिए। फैशन के बीच होने के लिए सब आपको बदलना पड़ता है। अब अमरीका में इस वक्त बड़े से बड़ा जो प्रश्न है, वह यह है कि पुरानी कारों के ढेर लगते जा रहे हैं, जिनके लिए जगह नहीं है। लेकिन हर छह महीने में मॉडल बदल जाना चाहिए। पहले साल में बदलता था, अब वे छह महीने में बदलने लगे हैं। और अब जो हिडेन परसुएडर्स हैं... अब एक साल में कार का मॉडल बदलने की कोई जरूरत नहीं है, जहां तक कार का संबंध है। जहां तक अहंकार का संबंध है, हर महीने बदला जाए तो ठीक है। रोज बदला जाए तो और भी ठीक है। लेकिन हर साल कार का मॉडल बदलने से भी काम नहीं चलता। फैक्ट्रियां ज्यादा हैं। तो अब अमरीका का जो हिडेन परसुएडिंग विभाग है, वह लोगों को समझा रहा है कि एक कार तो गरीब आदमी के पास भी होती है; बड़े आदमी के पास दो कार होनी चाहिए। इसलिए अब बड़ा आदमी वह है, जिसके पास दो कार हैं। बड़ा आदमी वह है, जिसके पास दो मकान हैं। एक मकान तो गरीब आदमी के पास भी होता है। इससे कोई आपकी प्रतिष्ठा नहीं है। तो अब अमरीका में हर आदमी को दो मकान चाहिए। एक मकान जिसमें वह रहेगा और एक मकान जिसमें उसका अहंकार रहेगा। वह तो नहीं रह पाएगा दो में एक साथ। एक में उसका अहंकार रहेगा कि वह बड़ा आदमी है, वह खाली रखेगा।
एक बड़े आदमी के घर में मैं ठहरा था। सौ कमरे हैं। अकेले पति और पत्नी हैं। मैंने पूछा कि इन सौ कमरों का करते क्या होंगे? उन्होंने कहा, इनका कुछ नहीं करते हैं, यही इनका मूल्य है। गरीब आदमी अपने कमरे का कुछ करता है, हम इनका कुछ नहीं करते हैं। बस ये हैं। इनकी सफाई करवाते हैं, इनकी सजावट करवाते हैं। और ये हैं। इनका हम करेंगे क्या! हम दो ही हैं, पति- पत्नी। बेटा भी नहीं है। फिर इन पति-पत्नी का काम तो एक कमरे में चल जाता है। पुराने ढंग के पति-पत्नी, नहीं तो दो कमरे की जरूरत पड़ती; एक में ही चल जाता है। बाकी ये निन्यानबे कमरे का क्या हो रहा है? ये हैं। इनमें कौन रहता है?
इनमें भी कोई रहता है, वह हमारा अहंकार है। आदमी एक कमरे में रह जाए, अहंकार तो निन्यानबे कमरों को भी कम पाता है। स्थान की उपयुक्तता से हमें प्रयोजन नहीं।
"मन की श्रेष्ठता उसकी अतल निस्तब्धता में है।"
लाओत्से कहता है कि मन की श्रेष्ठता उसकी अतल निस्तब्धता में है। और हमारे मन की श्रेष्ठता? उसकी गहन वाचालता में है। जो आदमी अपने मन में जितने शब्दों, जितने विचारों से भरा हो, उतना हमें श्रेष्ठ मालूम पड़ता है। और लाओत्से कहता है, अतल निस्तब्धता में, जहां मन बिल्कुल शून्य और चुप हो जाता है, वहीं मन की श्रेष्ठता है। क्यों? क्योंकि जहां मन शून्य होता है, वहीं सत्य से मिलन है। क्यों? क्योंकि जहां मन शून्य होता है, वहीं शांति से मिलन है। क्यों? क्योंकि जहां मन शून्य होता है, वहीं दुख का अंत है। जितना मन चलता है, उतना दुख होगा। मन की जितनी यात्रा, दुख की उतनी बड़ी मंजिल उपलब्ध होगी।
लेकिन हमारी सारी कोशिश यह है कि आप कितना जानते हैं, कितना सोचते हैं, कितना विचारते हैं, कितने शब्दों के धनी हैं। जो आदमी बोल नहीं सकता, ज्यादा शब्दों का उपयोग नहीं कर सकता, ज्यादा विचारों का उपयोग नहीं कर सकता, वह ग्रामीण हो जाता है। वह ग्राम्य हो जाता है, वह गंवार हो जाता है। जरूरी नहीं है कि गंवार आप से कम बुद्धिमान हो; अक्सर तो आपसे ज्यादा बुद्धिमान होता है। लेकिन एक बात पक्की है कि वह आपसे कम बोल सकता है, कम सोच सकता है, इसीलिए गंवार है। आप शब्दों को मैनिपुलेट कर सकते हैं, आप शब्दों के साथ खेल सकते हैं।
हमारी सभ्यता में जो लोग सफल हैं, वे वे ही लोग हैं, जो शब्दों के संबंध में खेल करने में कुशल हैं। तो हम तो सिखाते हैं अपने बच्चों को कि शब्द सीखे, भाषा सीखे, साहित्य सीखे। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि साहित्य न सीखे। कह यह रहा हूं कि यह मन की परम उत्कृष्टता नहीं है। अगर कुछ भी इससे मिलता होगा, तो वह बाहर की उत्कृष्टताएं मिल जाती होंगी। इससे भीतर की

उत्कृष्टता नहीं मिलती। अब तक जगत में जिन लोगों ने भीतर के आनंद को जाना है, वे वे ही लोग हैं, जो शब्द के कचरे को बाहर छोड़ कर भीतर चले गए हैं। "संसर्ग की श्रेष्ठता पुण्यात्माओं के साथ रहने में है।"
संसर्ग की श्रेष्ठता, सत्संग की श्रेष्ठता पुण्यात्माओं के साथ रहने में है! कभी आपने सोचा कि आप संसर्ग की श्रेष्ठता कब अनुभव करते हैं? अगर किसी गवर्नर के पास खड़े होकर चित्र उतर जाए, तब लगता है, सत्संग हुआ। या किसी फिल्म अभिनेता के पास खड़े होकर अगर चित्र उतर जाए, तो समझो कि सत्संग हुआ।
एक हंसोड़ अमरीका का अभिनेता दूसरे महायुद्ध में युद्ध के मैदान पर गया--सैनिकों के मनोरंजन के लिए। बॉब उसका नाम है। मैकार्थर, जनरल मैकार्थर जहां मौजूद थे, वहां भी उसने आकर सैनिकों को हंसाने का कुछ कार्यक्रम किया। और वह बड़ा आनंदित हुआ कि उसे मैकार्थर के पास फोटो उतरवाने का मौका मिला। वह बड़ा आनंदित हुआ कि उसे मैकार्थर के पास फोटो उतरवाने का मौका मिला। फोटो उतर जाने के बाद मैकार्थर ने उससे कहा, बॉब, एक कापी मुझे भी भेज देना।
वह बॉब थोड़ा हैरान हुआ कि मैकार्थर को मेरे साथ के चित्र का क्या प्रयोजन होगा! लेकिन उसने कापी भेज दी। और बाद में उसने पत्र लिखा मैकार्थर को कि मैं जानना चाहता हूं कि मुझ गरीब अभिनेता के साथ उतरवाए चित्र का आपके लिए क्या मूल्य होगा! मैकार्थर ने कहा कि जब मेरे बेटे ने तुम्हारे साथ चित्र देखा, तो उसने कहा, पिताजी, पहली दफे आप किसी शानदार और जानदार और प्रसिद्ध आदमी के साथ खड़े हुए हैं। उसके बेटे ने कहा। क्योंकि बेटे को मैकार्थर का क्या मूल्य! बेटे को बाप का कोई मूल्य नहीं होता। लेकिन बॉब, फिल्म अभिनेता, उसके साथ मैकार्थर खड़ा है, तो बेटे ने कहा कि यह चित्र शानदार है आपका। मैंने बहुत चित्र देखे, न मालूम किस-किस के साथ आप खड़े रहते हैं। यह आदमी है, सेलिब्रिटी! यह है एक।
आपने कभी सोचा कि अगर आपको चित्र उतरवाने का मौका मिले, तो कभी मन में आंख बंद करके थोड़ा कंटेम्प्लेट करना कि किसके साथ उतरवाना चाहेंगे? सौ में निन्यानबे मौके तो ये हैं कि वह कोई अभिनेत्री या अभिनेता होगा। सौ में दस मौके ये हैं कि वह कोई राजनैतिक नेता होगा। क्या कोई एकाध मौका भी ऐसा है कि कोई पुण्यात्मा होगा? संदेह है। भला ऊपर से आप कह दें कि नहीं- नहीं, मैं नहीं ऐसा करूंगा। लेकिन भीतर!
एक यूनिवर्सिटी में एक धर्मगुरु ने आकर विद्यार्थियों को कुछ पर्चे बांटे। एक क्वेश्चनेयर था। और उसमें पूछा कि तुम दुनिया की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक कौन सी समझते हो? तो किसी ने लिखा शेक्सपियर की किताब, किसी ने लिखा बाइबिल, किसी ने लिखा कुरान, किसी ने लिखा झेंदावेस्ता, किसी ने लिखा गीता। जिसको जो पसंद थी। सारे इकट्ठे करके उसने उन विद्यार्थियों से पूछा कि तुमने जो-जो किताबें लिखीं, इनको तुमने पढ़ा? उन्होंने कहा, पढ़ा हमने नहीं है। ये श्रेष्ठ किताबें हैं, इन्हें पढ़ता कोई भी नहीं। जो किताबें हम पढ़ते हैं, वे दूसरी हैं। पर उनके बाबत आपने जानकारी नहीं चाही थी। आपने पूछा था, दुनिया की श्रेष्ठ किताबें।
असल में, श्रेष्ठ किताब की परिभाषा यही है कि जब उस किताब का नाम सब को पता हो जाए और कोई उसे न पढ़ता हो, तो समझना कि वह श्रेष्ठ किताब है। जब तक उसे कोई पढ़ता हो, तब तक वह श्रेष्ठ नहीं है, पक्का समझना। कुछ न कुछ गड़बड़ होगी।
पुण्यात्मा के संसर्ग में, लाओत्से कहता है, संसर्ग की श्रेष्ठता है।
और इस जगत में बड़ी से बड़ी श्रेष्ठता संसर्ग की श्रेष्ठता है। किसी पुण्यात्मा के साथ होने का क्षण इस जगत में स्वर्ण-क्षण है। लेकिन पुण्यात्मा के साथ होने का क्षण शारीरिक क्षण नहीं है। हो सकता है, आप बुद्ध के पास खड़े कर दिए जाएं और फिर भी पुण्यात्मा से संसर्ग न हो। क्योंकि पुण्यात्मा से संसर्ग होने के लिए आपकी तैयारी चाहिए। तैयारी कैसी? वही पानी के जैसी, नीचे बहने वाली तैयारी चाहिए! तो ही पुण्यात्मा का संसर्ग हो सकता है। अगर आप ऊपर चढ़ने के आदी हैं, तो पुण्यात्मा का संसर्ग नहीं हो सकेगा।

इसलिए सत्संग का नियम था पुराना कि जब कोई किसी गुरु के पास जाए, तो उसके चरणों में सिर रख दे। वह खबर दे कि मैं पानी की तरह होने को तैयार हूं। वह सत्संग का अनिवार्य हिस्सा हो गया था--चरणों में सिर रख देना। सभी चीजें धीरे-धीरे औपचारिक, फॉर्मल हो जाती हैं। लेकिन इससे उनका मूल्य समाप्त नहीं होता। लेकिन जिस आदमी ने आकर चरणों में सिर रख दिया है, वह इस बात की खबर देता है, वह अपने बॉडी-गेस्चर से, अपने शरीर की भाषा से कहता है कि मैं चरणों में सिर रखने को तैयार हूं, अगर मुझे कुछ प्रसाद मिल जाए। मैं सब छोड़ने को, अपने अहंकार को गिराने को लिटाने को तैयार हूं, अगर मुझे कुछ प्रसाद मिल जाए।
संसर्ग पुण्यात्मा से अभूतपूर्व क्षण है।
बुद्ध का जन्म हुआ, तो हिमालय से एक महा तपस्वी उतर कर बुद्ध के घर आया। बुद्ध के पिता उसे स्वागत से भीतर ले गए। उन्होंने लाकर एक छोटे से बच्चे को, नवजात बच्चे को उसके चरणों में रखा। वह महा तपस्वी कोई सौ वर्ष का बूढ़ा था। उसकी आंख से झर-झर आंसू गिरने लगे।
बुद्ध के पिता बहुत घबड़ा गए। उन्होंने कहा, आप हैं महा तपस्वी, आप रोते हैं मेरे बेटे को देख कर। कोई अपशकुन! यह आप क्या कर रहे हैं? यह खुशी का क्षण है, आप आनंदित हों और आशीर्वाद दें। आपको कुछ दुर्घटना दिखाई पड़ती है?
उस बूढ़े तपस्वी ने कहा, नहीं, इस बच्चे के लिए नहीं; दुर्घटना मेरे लिए है। क्योंकि यह बच्चा बुद्ध होने को पैदा हुआ है। लेकिन मैं तब इसके संसर्ग को मौजूद न रहूंगा। यह मैं रो रहा हूं अपने लिए कि यह बच्चा बुद्ध होने को पैदा हुआ है और इसके चरणों में एक क्षण बैठ कर भी मैं वह पा लेता, जो मैंने अनंत जन्मों में चल कर नहीं पाया। लेकिन वह क्षण मुझे नहीं मिलेगा। मेरे मरने की घड़ी तो करीब आ गई। और इसके बुद्धत्व के फूल खिलने में अभी तो वक्त लग जाएगा, कोई चालीस साल लग जाएंगे। जब इसका फूल खिलेगा, तब मैं मौजूद नहीं रहूंगा। इसलिए मैं रो रहा हूं।
लेकिन यह एक आदमी है, जो बुद्ध को देख कर रोता है कि चालीस साल बाद मौजूद नहीं रहेगा। ऐसे लोग थे कि बुद्ध उस गांव में जाएं, तो वे गांव छोड़ कर भाग जाएं। गांव छोड़ कर भाग जाएं! गौतमी नाम की एक महिला की कथा है कि वह बुद्ध जिस गांव में जाएं, वहां से भाग जाती थी। क्योंकि वह कहती थी, इस आदमी के संसर्ग में न मालूम कितने लोग बिगड़ गए। जो भी इसकी बातों में पड़ता है, झंझट में आ जाता है। न मालूम कितने लोग संन्यासी हो गए, न मालूम कितने लोग भिक्षु हो गए, न मालूम कितने लोग आंख बंद करके ध्यान में डूब गए। धन की फिक्र छोड़ दी, पद की फिक्र छोड़ दी। लोग न मालूम पागल हो जाते हैं! यह आदमी हिप्नोटिक है, यह आदमी सम्मोहक है। इससे बचना चाहिए।
लेकिन एक दिन बड़ी भूल हो गई। बुद्ध अचानक एक गांव में पहुंच गए। और कृशा गौतमी रास्ते से गुजर रही थी। उसे कुछ पता न था। बुद्ध का मिलना हो गया। भागती थी वर्षों से। बुद्ध के ही उम्र की थी और बुद्ध के ही गांव की थी। भागती थी वर्षों से; जहां बुद्ध जाएं, वहां छाया से बचती थी। लेकिन इतना जो भागता है, उसका रस तो है ही। इतना जो बचता है, उसका भय तो है ही। और बुद्ध की प्रतिभा का ख्याल भी तो है ही। वह अचानक रास्ते पर बुद्ध का आगमन हो गया। वह निकलती थी, उसने खड़े होकर देखा। एक क्षण रुकी और उसने कहा, क्या तुम कोई दूसरे बुद्ध आ गए? क्योंकि तुम मुझे खींचे लिए ले रहे हो! बुद्ध ने कहा, मैं वही हूं, जिससे तू भागती फिरती है। आज अचानक मिलना हो गया। वह उसी क्षण चरणों में गिर पड़ी, उसी क्षण उसने दीक्षा ली। बुद्ध ने कहा, लेकिन तू इतने दिन से भागती थी! उसने कहा, भाग-भाग कर भी मन में एक ख्याल तो बना ही था कि एक बार इस आदमी को देख लूं। शायद इसीलिए भागती थी कि डरती थी कि देखा कि मैं गई। और आज आकस्मिक हो गया है।
बुद्ध को भी भागने वाले लोग हैं। महावीर को सुनते कान में आवाज न पड़ जाए, तो कान में अंगुलियां डाल कर गुजरने वाले लोग हैं। जीसस को मार डालो, ताकि जीसस की बात लोगों तक न पहुंचे, ऐसे लोग हैं।
और लाओत्से कहता है, संसर्ग की श्रेष्ठता पुण्यात्माओं के साथ रहने में है। और पुण्यात्मा कौन है? किसे कहें पुण्यात्मा? कौन है पुण्यात्मा? क्या हमारे पास कोई कसौटी है कि हम नाप सकें कि कौन पुण्यात्मा है और कौन

पापी है? नहीं, बस एक ही कसौटी हैः जिसके पास, जिसके संसर्ग में आप अपने को खुला छोड़ कर बैठ पाएं और जिसके पास आनंद और जिसके पास शांति और जिसके पास प्रकाश की प्रतीति होती हो, वही पुण्यात्मा है!
आप इसकी फिक्र मत करना कि वह क्या खाता है और क्या पीता है। आप इसकी फिक्र मत करना कि वह क्या पहनता है और क्या नहीं पहनता। आप इसकी फिक्र मत करना कि वह क्या बोलता है और क्या नहीं बोलता। आप इसकी भी फिक्र मत करना कि लोग उसके बाबत क्या कहते हैं और क्या नहीं कहते। आप खुद ही प्रयोग कर लेना। लेकिन प्रयोग करने के लिए आपको पहले अपने पर प्रयोग करना पड़े। वह पानी की तरह होना पड़े। पानी की तरह जो हो जाए, उसे पुण्यात्मा का तत्काल पता चल जाता है, संसर्ग का क्षण उपलब्ध हो जाता है। फिर सारा जगत कुछ भी कहे, फिर कोई भेद नहीं पड़ता है।
लेकिन संसर्ग की श्रेष्ठता पुण्यात्माओं के साथ रहने में है, शासन की श्रेष्ठता सुव्यवस्था में है। और यह सुव्यवस्था लाओत्से की बड़ी अदभुत है। लाओत्से कहता है, सुव्यवस्था मैं उसे कहता हूं, जहां व्यवस्था की कोई जरूरत न हो। लाओत्से बहुत अजीब आदमी है! आई काल इट आर्डर, व्हेन नो आर्डर इ.ज नीडेड। अगर सम्राट यहां प्रवेश करे और लोगों को चिल्ला-चिल्ला कर कहना पड़े कि सम्राट आ रहा है, शांत हो जाइए, तो लाओत्से कहता है, यह अव्यवस्था है। सम्राट यहां प्रवेश करे, लोग चुप होने लगें; लोगों को चुप जान कर लोग कहें कि मालूम होता है, सम्राट प्रवेश कर गया, क्योंकि लोग चुप हुए जा रहे हैं, यह व्यवस्था है। लाओत्से कहता है, जहां व्यवस्था जरूरी नहीं है।
अगर गुरु को कहना पड़े कि मुझे आदर दो और तब कोई आदर दे, तो यह अनादर के
ही बराबर है। यह कोई व्यवस्था नहीं है। लाओत्से कहता है, गुरु वह है, जिसे तुम्हें आदर देना ही पड़ता है। अचानक, तुम्हें भी पता नहीं चलता, कब तुमने आदर दे दिया। जब तुम सिर उठा रहे होते हो चरणों से, तब पता चलता है कि अरे, यह सिर झुका! तो लाओत्से कहता है आदर है।
लाओत्से उलटा आदमी है। यह कहता है, जहां व्यवस्था की जरूरत है, वहां कोई व्यवस्था नहीं है। जहां पुलिस की जरूरत है चोरी रोकने के लिए, वह समाज चोरों का है। और जहां कारागृहों की जरूरत है अपराध रोकने के लिए, वह अपराधियों की जमात है। लेकिन जहां कोई कारागृह की जरूरत नहीं है; और जहां कोई पुलिस वाला खड़ा नहीं करना पड़ता; और जहां साधु-संन्यासी पुलिस वाले के दूसरे हिस्से की तरह लोगों को समझाते नहीं फिरते कि चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, यह मत करो, वह मत करो, जहां इसकी चर्चा ही नहीं चलती, वहीं व्यवस्था है। लाओत्से कहता है, शासन की श्रेष्ठता है व्यवस्था में।
"कार्य-पद्धति की श्रेष्ठता कर्म की कुशलता में है।"
और कर्म की कुशलता से लाओत्से का वही अर्थ है, जो कृष्ण का अर्थ है। कर्म में कुशल वही है, जिसका कर्ता खो जाए, जिसका करने वाला न रहे, बस कर्म ही रह जाए। क्योंकि वह कर्ता बीच-बीच में आकर कर्म की कुशलता में बाधा डाल देता है।
कभी आपने देखा है कि कार चलाते वक्त अगर आप चूक जाते हैं, एक्सीडेंट होने की हालत आ जाती है, तो वह वही क्षण होता है, जब ड्राइविंग की जगह ड्राइवर बीच में आ जाता है--तभी। अगर अकेली ड्राइविंग हो, तो एक्सीडेंट की कोई संभावना नहीं है। आपकी तरफ से तो नहीं है; दूसरे की तरफ से हो, तो वह दूसरी बात है। लेकिन जब ड्राइवर बीच में आ जाता है, तब गड़बड़ हो जाती है। ड्राइवर का मतलब है, जब आप बीच में आ जाते हैं। जब सिर्फ ड्राइविंग ही नहीं होती, आप भी बीच में आकर गड़बड़ करने लगते हैं, सोच-विचार चल पड़ता है, या अकड़ आ जाती है कि मुझसे कुशल और कोई ड्राइवर नहीं, तभी एक्सीडेंट हो सकता है। जहां कर्ता है, वहां कर्म की कुशलता खो जाती है।
कार्य की पद्धति की श्रेष्ठता है कर्म की कुशलता में, कर्ताहीन कर्म में। और कर्ताहीन कर्म तभी होता है, जब फल की कोई आकांक्षा नहीं होती। जब फल की आकांक्षा होती है, तो कर्ता मौजूद होता है। जब फल की कोई आकांक्षा नहीं होती, तो कर्म ही काफी होता है। इनफ अनटू इटसेल्फ! कर्म कर लिया, बात पूरी हो गई! इसलिए हम जो काम बिना किसी फल की आकांक्षा के करते हैं, उनमें हमारी कुशलता बड़ी श्रेष्ठ होती है। अगर आप शौकिया बागवानी करते हैं, तो आपकी बागवानी में जो कुशलता होगी, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। अगर आप

शौकिया चित्र बनाते हैं, तो चित्र बनाने में जो आपकी लीनता होगी, वह ध्यान बन जाएगी। अगर आप शौकिया सितार बजाते हैं--व्यवसायी नहीं, प्रोफेशनल नहीं, वह आपका धंधा नहीं है, आपका आनंद है--तो सितार बजाने में आप उस कुशलता को उपलब्ध हो जाएंगे, जिसकी लाओत्से बात करता है।
इसलिए आपको अपनी हॉबी में जितना आनंद आता है, उतना अपने काम में नहीं आता। क्योंकि काम में आपका कर्ता मौजूद होता है; हॉबी में कर्ता की कोई जरूरत नहीं होती, कोई फल का सवाल नहीं होता, करना ही आनंद होता है।
"और किसी भी आंदोलन के सूत्रपात की श्रेष्ठता उसकी सामयिकता में है।" कोई भी आंदोलन, कोई भी विचार, कोई भी संगठन, कोई भी धर्म सफल होता है सामयिक होने के कारण। टाइमलीनेस! वह अपने समय की जरूरत पूरा करता है, तो सफल होता है।
लेकिन यही उसका खतरा भी है। क्योंकि सभी आंदोलन समय से बंधे होते हैं; लेकिन समय तो बीत जाता है, आंदोलन छाती पर बैठे रह जाते हैं।
अब दुनिया में तीन सौ धर्म हैं। इनकी कोई जरूरत नहीं है, तीन सौ धर्मों की। आज एक धर्म काफी हो सकता है। लेकिन हो नहीं सकता, क्योंकि ये तीन सौ धर्म तीन सौ अलग-अलग समय में पैदा हुए। समय तो जा चुका, धर्म का ढांचा कायम है। और जो उसको पकड़े हुए हैं, वे कहते हैं कि हम इसको छोड़ेंगे नहीं। हमारे पुरखों ने... । उन्हें पता ही नहीं कि उसकी सफलता ही यही थी कि वह उस समय के उपयुक्त था। आज वही उसकी असफलता बनेगी, क्योंकि आज वह समय के उपयुक्त नहीं है। उसकी उपयुक्तता ही यही थी कि उस दिन के वह काम का था। बुद्ध ने जो कहा है, वह पच्चीस सौ साल पुराने काम का है। अगर आज उसे ठीक वैसा ही कोई कहे चला जाए, तो उसे जीवन के तर्क का कोई पता नहीं है। महावीर ने जो कहा है, वह पच्चीस सौ साल पहले की भाषा है। वह सफल हुआ इसीलिए कि उन्होंने सामायिक भाषा का उपयोग किया।
यह लाओत्से खुद सफल नहीं हुआ; इसका आंदोलन सफल नहीं हुआ। बिकाज ही स्पोक इन दि लैंग्वेज ऑफ टाइमलेसनेस, इसलिए सफल नहीं हुआ यह आदमी; यह ऐसी भाषा बोला, जो शाश्वत है। जब कोई शाश्वत भाषा बोलेगा तो आंदोलन नहीं चला सकता। आंदोलन चलाना हो तो समय की भाषा बोलनी पड़ती है, उस समय के लिए जो समझ में आ सके। लेकिन लाओत्से जैसे लोग आंदोलन नहीं चला सकते। ठीक वह जानता जरूर है लेकिन कि आंदोलन की सफलता उसकी सामयिकता में है। और लाओत्से भलीभांति जानता है कि उसके वश के बाहर है कोई आंदोलन चलाना। वह जो बोल रहा है, वह शाश्वत है।
इसलिए एक मजे की बात है कि जो आंदोलन सफल होते हैं, वे ही अंत में आदमी
के लिए गले पर गांठ बन जाते हैं। लेकिन दूसरी बात भी है, लाओत्से जैसे लोग आदमी के गले पर कभी गांठ नहीं बनते, लेकिन वे कभी सफल ही नहीं होते। लाओत्से जैसे लोग कभी आदमी को गलत जगह नहीं ले जाते, क्योंकि वे सही ले जाने के लिए भी कोई सामयिक भाषा नहीं बोलते हैं। बुद्ध और महावीर और कृष्ण और क्राइस्ट और मोहम्मद सफल हुए। उसका कारण है कि उन्होंने समय की भाषा बोली। लेकिन वही बंधन हो गया। अब चाहिए कि कोई उनकी समय की भाषा को बिखरा दे और समय की भाषा के पीछे छिपा हुआ जो कालातीत तत्व है, उसको उघाड़ कर बाहर रख दे। लेकिन वह अनुयायी मुश्किल करता है। वह कहता है, बोलो तो ठीक कुरान की पूरी आयत; उसको जरा इधर-उधर मत करना।
औरंगजेब ने एक आदमी को सूली दी, सरमद को, सिर्फ एक छोटी सी बात पर। और
वह बात इतनी थी कि सरमद एक आयत को पूरा नहीं बोलता था। एक आयत है, मुसलमान जिसको निरंतर दोहराता है, और बड़ी कीमती हैः कोई अल्लाह नहीं, सिवाय एक अल्लाह के। कोई अल्लाह नहीं, सिवाय एक अल्लाह के। लेकिन सरमद कहता था सिर्फ इतना हीः कोई अल्लाह नहीं। आधा ही बोलता थाः कोई अल्लाह नहीं। पुरोहित परेशान हो गए, औरंगजेब को जाकर कहा। सरमद को बुलाया गया। सरमद से कहा गया कि बोलो, सुना है कि तुम कुछ गलत बातें बोलते हो। उसने कहा, गलत नहीं बोलता; जो वचन है, वही बोलता हूं। सिर्फ आधा बोलता हूं। तो क्यों आधा बोलते हो? वचन पूरा बोलो! क्योंकि पूरे का मतलब और ही है। कोई अल्लाह नहीं है, सिवाय एक अल्लाह के। इसका तो मतलब और ही हुआ कि एक ही अल्लाह है, और कोई अल्लाह नहीं। लेकिन सरमद कहता, मैं आधा ही बोलता हूं, कोई अल्लाह नहीं। इसका तो मतलब हुआ, देयर इ.ज नो गॉड, कोई अल्लाह नहीं।

सरमद ने कहा, इतना ही मुझे अभी तक पता चला है; दूसरा हिस्सा मुझे पता नहीं चला। अभी तक मेरे अनुभव ने इतना ही कहा है, कोई अल्लाह नहीं। जिस दिन मुझे पता चलेगा दूसरा हिस्सा भी, कि सिवाय एक अल्लाह के, उस दिन वह भी बोलूंगा। जब तक मुझे पता नहीं, मैं नहीं बोलूंगा।

निश्चित ही, यह आदमी काफिर है। नास्तिक है। इससे और ज्यादा नास्तिक क्या होगा? गर्दन कटवा दी गई। बड़ी मीठी कथा है। चश्मदीद गवाह थे हजारों उस घटना के। इसलिए कथा न भी कहें, तो भी चलेगा; ऐतिहासिक तथ्य भी है। जिस दिन दिल्ली की मस्जिद के सामने सरमद का गला काटा गया, उसकी गर्दन कट कर गिरी सीढ़ी पर, लहू की धारा बही और आवाज निकलीः कोई अल्लाह नहीं, सिवाय एक अल्लाह के। कटी हुई गर्दन से!
सरमद को प्रेम करने वाले कहते हैं, जब तक कोई अपनी गर्दन न कटाए, तब तक
उस अल्लाह का कोई पता नहीं चलता है, जो एक है। लेकिन कुरान की भाषा को पकड़ेंगे, तो सरमद नास्तिक मालूम होगा। लेकिन सरमद ही आस्तिक है। और औरंगजेब जब मरा, तो उसके मन में जो सबसे बड़ी पीड़ा थी आखिरी मरते क्षण तक, वह सरमद को मरवा देने की थी। आखिरी जो प्रार्थना थी औरंगजेब की, वह यह थी कि मैंने कितने ही पाप किए हों, उनकी मुझे फिक्र नहीं है; लेकिन इस एक सरमद को मार कर जो मैंने किया है, यह काफी है। इससे ज्यादा और कोई पाप की जरूरत नहीं है। यह काफी पाप हो गया है। अगर यह मेरा माफ हो जाए, तो सब माफ। अगर यह मेरा माफ न हो, तो मेरे लिए कोई उपाय नहीं है।
स्वभावतः लेकिन सब आंदोलन, सब भाषाएं, सब अभिव्यक्तियां सामयिक होती हैं। वही उनकी सफलता है। वही उनकी अंत में असफलता भी बनती है। इसलिए बुद्धिमान जगत रोज-रोज समय की राख को झाड़ देता है और समय के अतीत, ट्रांसेंडेंटल जो है, कालातीत जो है, उसे उघाड़ कर निखारता चलता है। लेकिन इतनी बुद्धिमानी अनुयायियों में कभी भी नहीं होती। अन्यथा वे अनुयायी ही न होते। इतनी बुद्धिमानी जिस दिन इस जगत में होगी, उस दिन हम किसी भी बहुमूल्य पदार्थ को, किसी भी बहुमूल्य सत्य को कभी भी खोएंगे नहीं। अंतिम बातः "और जब तक कोई सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति अपनी निम्न स्थिति के संबंध में कोई वितंडा खड़ा नहीं करता, तब तक ही वह समादृत होता है।"
यह आखिरी शर्त लाओत्से जोड़ देता है कि यह भी हो सकता है कि आप अंत में खड़े हो जाएं और फिर लोगों से कहते फिरें कि देखो, पापी तो आगे खड़े हैं और पुण्यात्मा पीछे खड़ा है! और दुष्ट तो देखो सफल हुए जा रहे हैं और सीधा-सरल आदमी हारता जा रहा है! देखो, बेईमान अखबारों में हैं और मुझ ईमानदार की कोई भी खबर नहीं! चारों तरफ ऐसे लोग हैं, चारों तरफ, जो यही कह रहे हैं कि देखो, फलां आदमी ने बेईमानी की और सफल हो गए। यह कैसा न्याय है? यह परमात्मा के जगत में यह कैसा न्याय है कि चोर सफल हो जाते हैं और हम अचोर हैं और असफल हुए जा रहे हैं!
लाओत्से कहता है, अगर कभी भी तुमने अपनी आखिरी स्थिति के संबंध में वितंडा किया, तो जानना कि तुम श्रेष्ठ व्यक्ति नहीं हो। तुम्हारा समादर उसी क्षण समाप्त हो जाएगा। तुम्हारी श्रेष्ठता इसी में है कि तुम्हें जो भी उपलब्ध हो, वह तुम्हें परम भाव से स्वीकार है, अहोभाव से स्वीकार है। अगर तुम्हें पीछे खड़े होने से असफलता मिले, तो वही तुम्हारी सफलता है; अनादर मिले, वही तुम्हारा समादर है; अपमान मिले, वही तुम्हारा सम्मान है; गालियां तुम पर बरसें, वही तुम्हारे ऊपर फूलों की वर्षा है। लेकिन तुम वितंडा खड़ा मत करना। एक जरा सा वितंडा का शब्द, और सब नष्ट हो जाता है। जरा सी शिकायत, और श्रेष्ठता खो जाती है।
असल में, श्रेष्ठ व्यक्ति कभी भी शिकायत नहीं करता--कभी भी! उसकी कोई शिकायत ही नहीं है। क्योंकि जो भी उसे मिलता है, वह उसके लिए ही परमात्मा का अनुगृहीत है।
शेष हम कल बात करेंगे। एक पांच मिनट कीर्तन में डूबें। आप में भी जिनको खड़े होने की मौज आ जाती है, वे बीच की खाली जगह में खड़े हो जाएं। बीच में भी मौज आ जाए, तो दूसरों की फिक्र छोड़ दें और नाच में सम्मिलित हो जाएं।

ताओ उपनिषद, भाग एक
बाईसवां प्रवचन

लाओत्से सर्वाधिक सार्थक--वर्तमान विश्व-स्थिति में

प्रश्नः एक मित्र पूछते हैंः ओशो, वे क्या आशाएं व दूर-दृष्टियां हैं, जिनके कारण लाओत्से की पच्चीस सौ वर्ष पुरानी धर्मशिक्षाओं को आज पुनर्जीवित करने की प्रेरणा आपको हुई है?
दूसरे मित्र ने पूछा हैः पच्चीस सौ वर्ष पहले दी गई लाओत्से की प्रकृतिवादी, सहज, सरल जीवन में लागू होने वाली साधना-पद्धति का उपयोग आज के जटिल और असहज हो गए व्यक्ति के लिए किन दिशाओं में उपयोगी होगा, इस पर कृपया प्रकाश डालें।
एक और मित्र ने पूछा है कि सदा ही सभी साधकों की ऊर्ध्वगमन की अभीप्सा रही है; लेकिन लाओत्से ने साधना के लिए अधोगमन के प्रतीक जल को आदर्श कहा है। और धर्म है जीवन का ऊर्ध्व विकास। इसलिए जल के प्रतीक से होने वाले आध्यात्मिक ऊर्ध्वगमन को अधिक स्पष्ट करने की कृपा करें!
एक चौथा प्रश्न हैः प्रथम दिन के प्रवचन में आपने कहा है कि मनुष्य का अहंकार एक रोग है और प्रकृति तथा संत हमारे अहंकार से घास के कुत्ते जैसा व्यवहार करते हैं। कृपया समझाएं कि अहंकार भी तो प्रकृति का ही हिस्सा है। फिर अस्तित्व तथा संत उसके साथ घास के कुत्ते जैसा, अस्तित्व से भिन्न जैसा व्यवहार क्यों करते हैं?

लाओत्से ने जो भी कहा है, वह पच्चीस सौ साल पुराना जरूर है, लेकिन एक अर्थों में इतना ही नया है, जैसे सुबह की ओस की बूंद नई होती है। नया इसलिए है कि उस पर अब तक प्रयोग नहीं हुआ। नया इसलिए है कि मनुष्य की आत्मा उस रास्ते पर एक कदम भी अभी नहीं चली। रास्ता बिल्कुल अछूता और कुंवारा है। पुराना इसलिए है कि पच्चीस सौ साल पहले लाओत्से ने उसके संबंध में खबर दी। लेकिन नया इसलिए है कि उस खबर को अब तक सुना नहीं गया है। और आज उस खबर को सुनने की सर्वाधिक जरूरत आ गई है, जितनी कि कभी भी नहीं थी। क्योंकि मनुष्य ने पुरुष-चित्त का प्रयोग करके देख लिया है। यह पच्चीस सौ वर्ष का पिछला इतिहास पुरुष-चित्त के प्रयोग का इतिहास है--तर्क का, संघर्ष का, हिंसा का, आक्रमण का, विजय की आकांक्षा का। यह पच्चीस सौ वर्ष में हमने प्रयोग करके देखा है। आदमी रोज-रोज ज्यादा से ज्यादा दुखी हुआ है। जो हम पाना चाहते थे, वह मिला नहीं; जो हमारे पास था, वह भी खो गया है। यह पुरुष-चित्त के आधार पर हमने प्रयोग करके देख लिया, और हम असफल हो गए हैं। लाओत्से ने जब कहा था, तब पुरुष-चित्त पर इतनी बड़ी असफलता नहीं हुई थी। इसलिए लाओत्से को सुना नहीं गया। अच्छा हो कि हम ऐसा कहें कि लाओत्से अपने समय के पच्चीस सौ वर्ष पहले पैदा हो गया। यह उसकी भूल थी। उसे आज पैदा होना चाहिए था। आज उसकी बात सुनी जा सकती थी।
ऐसा समझें कि जैसे बीमारी पैदा न हुई हो और चिकित्सक पैदा हो गया हो।
और उसने औषधि की बात की हो, लेकिन किसी ने ध्यान न दिया हो! क्योंकि अभी वह बीमारी ही पैदा नहीं हुई है, जिसके लिए वह औषधि बता रहा है। लेकिन पच्चीस सौ साल में हमने वह बीमारी पैदा कर ली है, जिसकी औषधि लाओत्से है। पुरुष-चित्त का प्रयोग असफल हो गया। उसने लेकर हमें पहुंचा दिया है टोटल वार पर, पूर्ण युद्ध पर। और उसके आगे कोई गति दिखाई नहीं पड़ती। उसके आगे कोई मार्ग नहीं है। या तो मनुष्य-जाति समाप्त हो और या मनुष्य-जाति किसी नए मार्ग पर चलना शुरू करे। इसलिए आज लाओत्से की बात करने की सार्थकता है। आज लाओत्से चुना जा सकता है; चुनना ही पड़ेगा। अगर आदमी को बचना है, तो स्त्रैण-चित्त की जो खूबियां हैं, उनको स्थापित किए बिना बचने का अब कोई उपाय नहीं है। पुरुष हार चुका यह कोशिश करके कि हम सिर्फ पुरुष के आधार पर दुनिया को निर्मित कर लें। लेकिन पुरुष से ज्यादा गहरा तत्व स्त्री है; और उसे हम काट कर जीवन को निर्मित नहीं कर पाए। हमने सारी जमीन को एक पागलखाना जरूर बना लिया है; हम उसे एक परिवार नहीं बना पाए। वह स्त्री केंद्र पर न हो, तो कोई भी घर पागलखाना हो जाएगा। वह स्त्री केंद्र पर हो, तो हमारे हजार तरह

के तनावों को विसर्जित करने का काम करती है। अगर संस्कृति के केंद्र पर भी स्त्री हो, तो हमारे हजार तरह के तनाव विसर्जित हो जाते हैं। स्त्रैण-चित्त को हमें संस्कृति के निर्माण में बुनियादी आधार देना पड़ेगा। और वक्त आ गया है कि हमें आने वाले तीस-चालीस वर्षों में निर्णय करना है। इसलिए मैंने लाओत्से पर बात शुरू करनी उचित समझी।
निश्चित ही, आज लाओत्से बिल्कुल उलटा दिखाई पड़ता है। आदमी बहुत जटिल है, और लाओत्से सरलता की बात करता है। और आदमी बहुत अहंकारी है, और लाओत्से विनम्रता की बात करता है। और आदमी शिखर चढ़ना चाहता है चांद-तारों के, और लाओत्से खाइयों और गड्ढों के नियम की बात करता है। आदमी प्रथम होना चाहता है, और लाओत्से कहता है, अंतिम हुए बिना कोई और जीवन के आनंद को पाने का उपाय नहीं है। तो लग सकता है कि ऐसे उलटे युग में लाओत्से की बात कौन सुनेगा?
लेकिन मैं आपसे कहूं, जब हम एक अति पर पहुंच जाते हैं, तभी दूसरी अति
पर बदलने की हमारी तैयारी शुरू होती है। जटिलता की हम अति पर पहुंच गए हैं। अब उसके आगे कोई उपाय नहीं है। और विपरीत बात हमारी समझ में आ सकती है। जैसे कोई आदमी बहुत श्रम करके थक गया हो, तभी उसे नींद की बात समझ में आ सकती है। निद्रा श्रम के बिल्कुल विपरीत है।
लेकिन कोई थका ही न हो, जैसा कि अक्सर होता है। जिनके पास सुविधा है,
वे दिन में श्रम करने से बच जाते हैं और फिर शिकायत करते हैं कि रात उन्हें नींद नहीं आती। सुविधा है, श्रम करने से बच जाते हैं, तो वे सोचते हैं कि उन्हें और भी गहरा विश्राम उपलब्ध होना चाहिए। लेकिन वे गलती में हैं। क्योंकि विश्राम केवल उसी को उपलब्ध होता है, जो गहरे श्रम में गया हो। गहरे श्रम में जाने के बाद ही विश्राम में जाने की सुविधा बनती है। और गहरे विश्राम में जाने के बाद ही पुनः श्रम में उतरने की शक्ति अर्जित होती है। जीवन सदा ही विपरीत तटों के बीच में बहती हुई नदी की धार जैसा है। हमने पुरुष के किनारे पर काफी जी लिया। और अब वक्त आ गया है कि हम स्त्री के किनारे पर सरक जाएं। और उस सरकने से एक संतुलन और एक बैलेंस और एक सम्यक स्थिति निर्मित हो सकती है। यह बदलाहट का वक्त है। इसलिए मैं ऐसा नहीं देखता कि जटिल आदमी हैं, इसलिए कैसे हम लाओत्से की बात समझेंगे! मैं ऐसा देखता हूं कि चूंकि आदमी इतना जटिल हो गया है कि अब और जटिलता की बात उसकी समझ में नहीं आ सकेगी, अब विश्राम की बात ही समझ में आ सकती है।
असल में, आदमी वहां पहुंच गया है, जहां पुरुष-चित्त अपनी पूरी अभिव्यक्ति में है। अब और आगे उपाय नहीं है। तनाव पूरा हो जाए, तो विश्राम उपलब्ध हो जाता है। और आदमी दौड़ता रहे, दौड़ता रहे, और पूरी तरह दौड़ ले, तो गिर जाता है और रुक जाता है। कभी आपने सोचा कि दौड़ने की अंतिम मंजिल क्या होती है? दौड़ने की अंतिम मंजिल गिरने के सिवाय और कुछ भी नहीं होती। विपरीत आ जाता है अंत में हाथ।
लाओत्से अभी हाथ में आया जा सकता है। अपने समय में लाओत्से की बात लोगों की समझ में नहीं आई, क्योंकि लोग इतने जटिल नहीं थे कि लाओत्से उनके लिए चिकित्सक बन सकता। लोग इतने परेशान भी नहीं थे कि लाओत्से की बात उनके ख्याल में आती। लोग अभी प्रथम खड़े ही नहीं हुए थे कि अंतिम खड़े होने का सूत्र समझ पाते। लेकिन हम प्रथम खड़े हो गए हैं। लोगों के पास इतना धन भी नहीं था कि निर्धनता की मौज, निर्धनता का आनंद भी उनके ख्याल में आ सकता। लेकिन अब इतना धन जमीन पर इकट्ठा हुआ जा रहा है कि निर्धनता, स्वतंत्रता किसी भी दिन मालूम पड़ सकती है।
एक घटना मुझे याद आती है। कनफ्यूशियस एक गांव से गुजरता है; और देखता है, एक बूढ़ा आदमी अपने बगीचे में अपने बेटे को अपने साथ जोते हुए कुएं से पानी खींच रहा है। कनफ्यूशियस चकित हुआ। और कनफ्यूशियस ने बूढ़े आदमी के पास जाकर कहा कि क्या तुम्हें पता नहीं है कि अब लोग घोड़ों या बैलों से पानी खींचने लगे हैं! और राजधानी में तो कुछ मशीनें भी बना ली गई हैं, जिनके द्वारा पानी खींचा जाता है! उस बूढ़े आदमी ने कनफ्यूशियस को कहा कि जरा धीरे बोलो, कहीं मेरा बेटा न सुन ले। तुम थोड़ी देर से आना। कनफ्यूशियस बहुत हैरान हुआ। जब वह थोड़ी देर बाद पहुंचा, तो उस बूढ़े ने, जो वृक्ष के नीचे लेटा था, कनफ्यूशियस से कहा कि ये बातें यहां मत लाओ।

यह तो मुझे पता है कि अब घोड़े जोते जाने लगे हैं। घोड़ा जोत कर मैं बेटे का समय तो बचा दूंगा; लेकिन फिर बेटे के उस समय का मैं क्या करूंगा? और घोड़ा जोत कर मैं बेटे की शक्ति भी बचा दूंगा; लेकिन उस शक्ति का मेरे पास कोई उपयोग नहीं है। तुम अपनी मशीन और अपने घोड़े को शहर में रखो, यहां उसकी खबर मत लाओ।
लेकिन यह खबर रुक नहीं सकती थी। यह पहुंच गई। एक बाप के पास नहीं, दूसरे बाप के पास पहुंच गई होगी। और धीरे-धीरे सब जगह आदमी को हटा कर मशीन आ गई। यह जो बूढ़ा था, यह लाओत्से का अनुयायी था। लेकिन कनफ्यूशियस जीत गया। लेकिन आज फिर लाओत्से वापस जीत सकता है। क्योंकि जहां-जहां मशीन पूरी तरह आ जाएगी, वहीं-वहीं सवाल उठेगा कि आदमी समय का अब क्या करे? शक्ति का क्या करे? और जिस शक्ति और समय का हम उपयोग नहीं कर पाते, उसका हमें दुरुपयोग करना पड़ता है; क्योंकि बिना किए हम नहीं रह सकते। करना तो कुछ पड़ेगा ही। जां पाल सार्त्र ने कहा है कि चुनाव तुम कर सकते हो, लेकिन न चुनाव करने के चुनाव की कोई स्वतंत्रता नहीं है। यू कैन चूज, बट यू कैन नॉट चूज नॉट चूजिंग। चुनना तो पड़ेगा ही। करना तो कुछ पड़ेगा ही। अगर ठीक नहीं करोगे, तो गलत करना पड़ेगा। शक्ति का तो उपयोग करना ही पड़ेगा। अगर सृजनात्मक न हुआ, तो विध्वंस में हो जाएगा।
पच्चीस सौ साल तक लाओत्से की बात बीज की तरह पड़ी रही कि ठीक वक्त आए,
तो उसमें अंकुर आ जाएं। वह वक्त आ गया है। अब हम लाओत्से की बात समझ सकते हैं कि इसके पहले कि तुम आदमी को मशीन दो, आदमी की शक्ति का सृजनात्मक उपयोग पहले बता दो। और इसके पहले कि तुम आदमी के हाथ में एटम बम रखो, आदमी की आत्मा इतनी बड़ी बना दो कि एटम बम उसके हाथ में रखा जा सके। अन्यथा एटम बम उसके हाथ में मत रखो। छोटे आदमी के हाथ में एटम बम खतरनाक होगा। अज्ञानी के हाथ में शक्ति खतरनाक हो जाती है। अच्छा है कि अज्ञानी अशक्त हो। तो कम से कम कोई दुरुपयोग नहीं होता है।
लाओत्से अब समझा जा सकता है, क्योंकि हम वह सारा रास्ता चल कर देख लिए, जिसके लिए लाओत्से कहता है कि अंत में सिर्फ बीमारियां पैदा होती हैं। इसलिए मैंने लाओत्से को चुना कि हम पच्चीस सौ साल पुरानी उसकी बात--लेकिन बिल्कुल कुंवारी, क्योंकि उस पर कभी नहीं चला गया--उसकी फिर चर्चा चलाएं, शायद आदमी अब राजी हो जाए।
कहता हूं, शायद! क्योंकि कई बार ऐसा होता है कि हम मरने को राजी हो जाते हैं, लेकिन बदलने को नहीं। क्योंकि मरना ज्यादा आसान मालूम पड़ता है बजाए बदलने के। इसलिए कहता हूं, शायद आदमी राजी हो जाए। जरूरी नहीं है कि आदमी राजी हो ही। आदमी मरने को भी राजी हो सकता है। बदलाहट में बड़ा कष्ट होता है। और मरने को हम शहीदगी भी समझ सकते हैं कि हम शहीद हुए जा रहे हैं। और बदलाहट में अहंकार को चोट लगती है कि हमें बदलना पड़ा। आदमी एक कदम रख ले जिस दिशा में, पीछे लौटने में संकोच करता है कि लोग क्या कहेंगे!
सुना है मैंने कि एक रात मुल्ला नसरुद्दीन शराबघर से बाहर निकला-- पीया हुआ, डूबा हुआ। सुनसान निर्जन रास्ता है। अंधेरी रात में सिर्फ बिजली का खंभा ही एकमात्र रास्ते पर उसका गवाह है। चला रास्ते पर सोच कर कि कहीं बिजली के खंभे से न टकरा जाऊं। बिजली के खंभे से टकरा गया। क्योंकि जो आदमी किसी चीज से टकराने से बचेगा, वह उससे जरूर टकरा जाएगा। क्योंकि बचने के लिए उसे उसी का ध्यान रखना पड़ता है। देखता रहा बिजली के खंभे को कि कहीं टकरा न जाऊं, देखता रहा कि कहीं भूल-चूक न हो जाए। जिसको देखता था, उसी तरफ चलता चला गया और खंभे से टकरा गया। टकरा तो गया, उठा; पांच कदम फिर पीछे गया। और फिर उसने वही किया कि अब दुबारा न टकरा जाऊं, तो अब उसने और भी बिजली के खंभे पर ध्यान रखा। क्योंकि तर्क सीधा यही कहता है कि अगर बचना हो, तो अब पूरा ध्यान रखो। मालूम होता है, पिछली बार थोड़ा तुमने कम ध्यान रखा। अब वह पूरे रास्ते को भूल गया। अब वह बिजली का खंभा ही बस उसकी दृष्टि में रह गया, एकदम एकाग्र कि कहीं टकरा न जाऊं! और उसके कदम फिर चले और वह फिर जाकर टकराया। सिर फूट गया, लहूलुहान हो गया।
उठा और बोला कि बड़ी मुश्किल में हूं। आंख में आंसू आ गए। फिर तीसरी बार कोशिश की। लेकिन रास्ता नहीं बदला। इतना बड़ा रास्ता था। उस पर कहीं और भी जा सकता था। वह नहीं किया। किया उसने वही जो दो बार किया था। तीसरी बार

फिर किया, अब की बार और ताकत लगा कर किया। अब जब जाकर वह सिर के बल गिरा, तो सिर उसका घूम गया और एक बिजली के खंभे कई बिजली के खंभे मालूम होने लगे। अब वह और भी घबड़ाया। आखिरी समय उसने ताकत लगा कर अपने को इकट्ठा किया और भगवान के भरोसे उसने कहा, एक और कोशिश करके देखूं। फिर उसने वही किया पूरी ताकत लगा कर। और जब वह चौथी बार जाकर गिरा, तो उसने कहा, हे भगवान! निकलने का कोई रास्ता नहीं मालूम होता। ऐसा मालूम होता है कि चारों तरफ बिजली के खंभों से घेर दिया गया हूं। जहां जाता हूं, वहीं बिजली का खंभा मिल जाता है।
वह कहीं जा नहीं रहा है, वह एक ही जगह जा रहा है। और बिजली का खंभा एक
ही है। और अंधा आदमी भी बिना टकराए निकल सकता है। लेकिन वह आंख वाला आदमी, लेकिन बेहोश, नहीं निकल पाता है।
हम सब आंख वाले आदमी हैं, लेकिन बेहोश। और हमारी बड़ी से बड़ी बेहोशी को लाओत्से जो नाम देता है, वह अहंकार है। वह कहता है, अहंकार हमारी बेहोशी है, क्योंकि वह हमें जगत के प्रति तथ्यात्मक नहीं होने देती। हमारे प्रोजेक्शंस को ही वह जगत पर थोप देती है। हमको नहीं देखने देती कि जगत कैसा है। हम अपने को ही जगत पर थोप लेते हैं। हम सब वही देखते रहते हैं, जो हमारा अहंकार हमें दिखलाता है। वही सोचते रहते हैं, जो सोचने के लिए मजबूर करता है। वही मान लेते हैं, जो अहंकार हमसे कहता है, मान लो। तथ्य को हम देखने नहीं जाते। और तथ्य को केवल वही देख सकता है, जिसके भीतर अहंकार का प्रोजेक्टर विदा हो गया हो।

एक मित्र ने पूछा है कि यह अहंकार भी तो प्रकृति से ही पैदा होता है,
तो इसको हटाने की क्या जरूरत है?

लाओत्से नहीं कहता कि हटाओ। और लाओत्से यह भी नहीं कहता कि अहंकार प्रकृति से पैदा नहीं होता है। सब बीमारियां भी प्रकृति से ही पैदा होती हैं। जो कुछ भी पैदा होता है, प्रकृति से पैदा होता है। लाओत्से इतना ही कहता है कि अगर अहंकार की बीमारी को पकड़ोगे, तो दुख पाओगे। अगर दुख पाना हो, तो मजे से पकड़ो।
लेकिन आदमी अदभुत है। वह पकड़ता अहंकार को है और पाना चाहता है आनंद।
तब लाओत्से कहता है, तुम गलत बात कर रहे हो। एक आदमी को मरना है, तो जहर पी ले। जहर भी प्रकृति से ही पैदा होता है। लेकिन वह आदमी कहे कि जहर प्रकृति से पैदा होता है, जहर तो मैं पीऊंगा, क्योंकि प्रकृति से पैदा होता है; लेकिन मरना मैं नहीं चाहता। तब फिर वह कठिनाई में पड़ेगा।
लाओत्से कहता है, मरना हो, तो मजे से जहर पी लो और मर जाओ। न मरना हो, तो फिर जहर मत पीओ। मरने की घटना भी प्राकृतिक है, जहर का पीना भी प्राकृतिक है। लेकिन निर्णय तुम्हारे हाथ में है कि तुम मरना चाहते हो कि नहीं मरना चाहते।
अहंकार प्राकृतिक है। लेकिन उसकी पीड़ा, उसके नर्क को भोगना हो, तो आदमी भोग सकता है। न भोगना हो, न भोगे। आदमी के हाथ में है कि वह अहंकार के प्राकृतिक बीज को वृक्ष बनाए या न बनाए। लाओत्से नहीं कहता कि अहंकार को हटा दो। वह आपसे कहता है कि अगर दुख न चाहते हो, तो अहंकार से हटना होगा। अगर दुख चाहते हैं, तो अहंकार को और बढ़ाओ। हम उलटे हैं। हम चाहते वह हैं जो अहंकार से नहीं मिलेगा और अहंकार को भी नहीं हटाना चाहते हैं। इस दुविधा में हमारे प्राण संतापग्रस्त हो जाते हैं।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि सदा ही साधकों ने ऊर्ध्वगमन की बात कही
है, ऊपर जाने की। और लाओत्से नीचे जाने की बात करता है!

लाओत्से नीचे जाने की बात इसीलिए करता है कि नीचे जाए बिना कोई ऊपर नहीं जाता। जिन्होंने ऊपर जाने की बात कही है, उन्होंने लक्ष्य की बात कही है, साध्य की। और लाओत्से नीचे जाने की बात करके साधन की बात कर रहा है। ऊपर जाना हो, तो नीचे जाना पड़ेगा। यह उलटा दिखता है। नीत्से ने लिखा है कहीं कि जिस वृक्ष को बहुत ऊपर जाना हो, उसको अपनी जड़ें नीचे जमीन में गहरे

पहुंचानी पड़ती हैं। जिस वृक्ष को आकाश में जितना ऊंचा उठना हो, उसे पाताल की तरफ अपनी जड़ों को उतना ही गहरा पहुंचाना पड़ता है।
अब वृक्ष से हम दो बातें कह सकते हैं। हम कह सकते हैं कि तुझे ऊपर जाना है, तो जड़ों को नीचे फैला! हम उसे यह भी कह सकते हैं कि तू जड़ों को नीचे फैला, ऊपर जाने की घटना घट जाएगी। लेकिन अगर कोई वृक्ष ऊपर ही जाने की कोशिश में लग जाए और नीचे जाने की कोशिश बंद कर दे, जड़ों को नीचे जाने की कोशिश बंद कर दे, तो ऊपर तो जा ही नहीं पाएगा। कोई उपाय नहीं ऊपर जाने का। लाओत्से कहता है, ऊपर जाना हो, तो नीचे जाने की व्यवस्था तुम्हें करनी पड़ेगी। ऊपर को तुम भूल ही जाओ। वह प्रकृति के ऊपर छोड़ दो। तुम सिर्फ अपनी जड़ों को नीचे पहुंचा दो। प्रकृति तुम्हारे फूलों को आकाश में खिला देगी। उसकी तुम्हें चिंता भी करने की जरूरत नहीं; क्योंकि उतनी चिंता करने से भी तुम्हारी जड़ें कमजोर रह जाएंगी। तुम अपनी सारी चिंता ही जड़ों पर लगा दो; फूल अपने आप खिल जाएंगे। जहां जड़ें होती हैं, वहां फूल खिल ही जाते हैं।
जड़ें जितनी मजबूत हों, उतने ही बड़े फूल खिल जाते हैं।
लाओत्से कहता है, अंतिम जगह खोज लो, जैसे पानी अंतिम जगह खोज लेता है।
और तुम्हारे शिखर तुम्हारे पास चले आएंगे। तुम झील बन जाओ, और तुम गौरीशंकर बने हुए पाओगे अपने को। तुम गौरीशंकर होने की फिक्र ही छोड़ दो।
क्योंकि लाओत्से कहता है, नियम ऐसा है, जो ऊपर पहुंचना चाहता है, वह नीचे पहुंचा दिया जाता है; और जो नीचे पहुंचने को राजी हो जाता है, उसकी ऊंचाई के लिए कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होती।
नियम उसका समझ लें। कठिनाई क्या है कि कुछ नियम जो विपरीत होते हैं, हमारी समझ में नहीं आते। क्योंकि हम स्ट्रेट लॉजिक में भरोसा करते रहे हैं। वही पुरुष का चित्त है। सीधे तर्क में हमारा भरोसा है। हमें पता नहीं कि जिंदगी सीधे तर्क नहीं मानती। जिंदगी उलटे तर्क मानती है। हमारा भरोसा सीधे तर्क में है। हम ऐसे चलते हैं, जैसे कोई आदमी एक हाई-वे पर चलता है। सीधा रास्ता है। लेकिन जिंदगी पर कोई हाई-वे नहीं होते। जिंदगी पहाड़ पर चढ़ने वाले रास्तों जैसी है। सब गोल घुमावदार रास्ते होते हैं। अभी मैं जिस रास्ते पर खड़ा हूं पहाड़ के, ऐसा लगता है कि अगर इस पर सीधा चला जाऊं, तो चांद पर पहुंच जाऊंगा। चांद सामने दिखाई पड़ रहा है। लेकिन दो घड़ी बाद पता चलता है, रास्ता घूम गया और चांद की तरफ पीठ हो गई। जिंदगी गोल रास्ते हैं, घुमावदार रास्ते हैं। उसमें कोई चीज सीधी नहीं है। और हम सब सीधे होते हैं।
जैसे उदाहरण के लिए, अगर कोई आपसे कहे कि मैं सुबह घूमने जाता हूं और मुझे बहुत आनंद मिलता है, तो आप कहें, आनंद तो मैं भी चाहता हूं, तो मैं भी कल सुबह से घूमने जाऊंगा।
अगर आप आनंद पाने ही घूमने गए, तो आप सिर्फ थक कर वापस लौटेंगे, आनंद आपको मिलेगा ही नहीं। क्योंकि पूरे वक्त, एक-एक कदम चल कर आप नजर रखेंगे कि अभी तक आनंद मिला नहीं! अभी तक मिला नहीं! पता नहीं कब मिलेगा? दो मील हो गए चलते हुए, अब तक आनंद मिला नहीं! आपका ध्यान आनंद मिलने पर रहेगा, चलने पर नहीं। चलना तो जबरदस्ती रहेगा। जल्दी आनंद मिल जाए, तो घर वापस लौट जाएं। चलना तो एक मजबूरी रहेगी। अगर आनंद घर ही बैठे मिलता, तो आप न चले होते। चले हैं आप इसलिए कि किसी ने कहा कि आनंद चलने से मिलेगा। आप लौट कर कहेंगे कि गलत बात कही है। आनंद चलने से मुझे जरा भी नहीं मिला। चार मील भटक कर आ गया हूं, आनंद की कोई खबर नहीं है।
लेकिन जिसने खबर दी है, गलत खबर नहीं दी। चलने से आनंद मिल सकता है; लेकिन उसको ही, जिसे आनंद की फिक्र ही न हो। चलने का ही जिसे ध्यान हो, आनंद की फिक्र ही न हो। आनंद बाइ-प्रॉडक्ट है। जब कोई चलने में इतना तल्लीन हो जाता है कि चलने वाला मिट जाता है और चलने की क्रिया ही रह जाती है, तब आनंद का फूल खिलता है।
जीवन घुमावदार है। अगर आप सोचते हैं कि किसी को प्रेम करने से आनंद मिलेगा, तो आपको कभी न मिल सकेगा। यद्यपि प्रेम करने से आनंद मिलता है। लेकिन वह उसे ही मिलता है जो प्रेम में डूब जाता है और आनंद की जिसे चिंता ही नहीं है। जिसे आनंद की चिंता है, वह प्रेम तो करता है, लेकिन ध्यान आनंद पर रखता है। पाता है कि प्रेयसी का हाथ भी हाथ में ले लिया, अब तक आनंद मिला

नहीं। वह कहीं नहीं मिलने वाला है। फिर भी जो कहते हैं कि प्रेम से आनंद मिलता है, वे ठीक ही कहते हैं। असल में, प्रेम और आनंद में संबंध ऐसा नहीं है, जैसे हम पानी को गर्म करते हैं और वह भाप हो जाता है। कॉजल लिंक नहीं है। पानी को गर्म करिएगा, तो पानी भाप बनेगा ही। जीवन में जितने गहरे उतरिएगा, उतनी ही कॉजेलिटी, कार्य-कारण कम हो जाते हैं और उतने ही ज्यादा सहज परिणाम सघन हो जाते हैं। जीवन की जितनी गहरी बातें हैं, वे सब सहज परिणाम हैं।
आप कहीं संगीत सुनने गए हैं। अब आप बैठे हैं बिल्कुल रीढ़ को उठा कर, आसन साधे हुए कि आनंद मिलना चाहिए। आप सिर्फ थक जाएंगे, कोई आनंद नहीं मिलेगा।
विश्राम को उपलब्ध हो जाइए, आंख बंद कर लीजिए, आनंद की बात ही छोड़ दीजिए, संगीत में डूबिए। अगर आप संगीत में इतने डूब गए कि आपको आनंद का भी ख्याल न रहा, आप आनंद से भरे हुए घर लौट जाएंगे। यह आनंद का जो फूल है, आपके तनाव में नहीं खिलता, आपके विश्राम में खिलता है। और जो लोग भी साध्य के प्रति बहुत उत्सुक होते हैं, वे कभी विश्राम को उपलब्ध नहीं होते।
इसलिए लाओत्से कहता है, ऊपर की तुम फिक्र छोड़ो, तुम पानी की तरह हो जाओ। तुम नीचे बह जाओ, तुम गड्ढों में भर जाओ। शिखर तो उपलब्ध हो ही जाते हैं। वह उनकी बात ही नहीं करता। वे हो ही जाते हैं, उनकी चर्चा की भी जरूरत नहीं है।
लेकिन हम उलटे लोग हैं। अगर हम लाओत्से की बात भी सुनेंगे, तो भी हम इसीलिए सुनेंगे कि लाओत्से कहता है कि पहुंच जाओगे ऊपर, अगर नीचे गए। तो हम भरोसा कर लेना चाहते हैं कि पक्का है यह गणित कि हम नीचे चले जाएं और ऊपर न पहुंचें! तो उलटे और नीचे चले गए और ऊपर पहुंचने से वंचित हुए। पक्का है कि नीचे जाएंगे, तो ऊपर पहुंचेंगे! हम बिल्कुल पक्का करके जाते हैं। हम नीचे तो पहुंच जाएंगे, ऊपर हम नहीं पहुंचेंगे। क्योंकि वह ऊपर पहुंचना जो था, वह पक्का करके जाने वालों के हाथ की बात नहीं है। उसके लिए कोई गारंटी नहीं है। और जहां गारंटी है, वहां वह नहीं होगा। वह घटना ही नहीं घटेगी। इस जीवन के विपरीत तर्क को समझ लेने की जरूरत है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, शांति चाहिए। मैं उनसे कहता हूं, शांति को भूल जाओ, तुम सिर्फ ध्यान करो। वे कहते हैं कि ध्यान करेंगे, तो शांति मिल जाएगी? मैं उनसे कह रहा हूं, शांति को तुम भूल जाओ, तुम सिर्फ ध्यान करो। वे कहते हैं कि अगर ध्यान करेंगे, तो शांति मिल जाएगी? मैं उनसे कहता हूं, तुम शांति को छोड़ो। क्योंकि तुम इतने दिन से शांति पाने की कोशिश कर रहे हो, नहीं मिली। अब तुम इसको छोड़ दो, अब तुम ध्यान करो। वे कहते हैं, क्या शांति का ख्याल छोड़ देने से शांति मिल जाएगी? वह बात वहीं अटकी रहती है।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन जब सौ वर्ष का हुआ, तो अचानक गांव
के लोगों ने देखा कि वह इतना संतुष्ट, इतना आनंदित, इतना कंटेंटेड हो गया है कि लोग चकित हुए। क्योंकि उससे ज्यादा डिसकंटेंटेड आदमी खोजना मुश्किल था। बहुत असंतुष्ट आदमी था। हर चीज से परेशान आदमी था। हर चीज की शिकायत थी। एकदम आनंदित हो गया है।
तो गांव के लोग इकट्ठे हो गए। और सारे गांव के लोगों ने कहा कि नसरुद्दीन, चमत्कार है! तुम और शांत हो गए! हम कभी सोच ही नहीं सकते थे। यह चमत्कार हो गया। इसका राज क्या है?
नसरुद्दीन ने कहा कि मैंने निन्यानबे साल गंवाए शांत होने की कोशिश में। आज मैंने तय किया कि अब अशांति के साथ ही जी लेंगे। इतना ही राज है। आज मैंने तय कर लिया कि अब शांति नहीं चाहिए, अब अशांति के साथ ही जी लेंगे। हो गया बहुत। निन्यानबे साल कोशिश कर ली। शांति नहीं मिली। अब हम छोड़ते हैं। और सच, मैं एकदम शांत हो गया हूं।
क्योंकि जो अशांति के साथ जीने को राजी है, उसकी शांति में क्या कमी
रह जाएगी? जो दुख के साथ जीने को राजी है, उसके सुख को कौन छीन सकता है? और जो नीचे उतर कर आखिरी गड्ढे में पड़े रहने को तैयार है, उसके शिखर के छीनने का किसी के हाथ में कोई शक्ति नहीं है। जो ना-कुछ होने को तैयार है, वह सब

कुछ हो जाएगा। और जो मिटने को राजी है, परमात्मा की संपदा, सारी संपदा उसकी है।
तो लाओत्से इस सूत्र की बात कर रहा है। उसका यह मतलब नहीं है कि लाओत्से कहता है, अधोगामी हो जाओ। लाओत्से यह कहता है, ऊर्ध्वगामी होने का एक ही उपाय है कि तुम अंतिम खड़े होने को तैयार हो जाओ।

एक मित्र ने पूछा है कि लाओत्से स्त्रैण-चित्त की इतनी गहराई की बात करता है, लेकिन स्त्रैण-चित्त से अब तक एक तीर्थंकर, एक अवतार, एक पैगंबर, कोई एक जीसस, कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण पैदा नहीं हुआ। होना तो उलटा ही चाहिए था। अगर स्त्रैण-चित्त की ऐसी गरिमा है, तो इस जगत के सारे धर्म स्त्रैण-चित्त से निकलने चाहिए थे। लेकिन सभी धर्म पुरुषों से निकले हैं। ऐसा क्यों है? उन्होंने पूछा है।

यह जरूर समझ लेने जैसी बात है। ऐसा होने का कारण है। जैसा मैंने आपसे कहा है, बायोलॉजिकल स्त्री और पुरुष का जो संबंध है, जगत में जो चीज भी पैदा होती है, उसमें भी स्त्री-पुरुष का वैसा ही संबंध है। जब बच्चा पैदा होता है, तो पुरुष सिर्फ एक्सीडेंटल, सांयोगिक काम करता है। क्षण भर का उसका सहयोग है बच्चे को पैदा करने में। लेकिन शुरुआत वही करता है, इनीशिएट वही करता है, प्रारंभ वही करता है। क्षण भर का उसका काम है, लेकिन बच्चे के जन्म की यात्रा उसी से शुरू होती है। शेष सारा काम मां करती है। उस बच्चे को नौ महीने पेट में रखेगी, उसे खून देगी, उसे जीवन देगी, उसे श्वास देगी। फिर नौ महीने पर भी समाप्त नहीं हो जाता सब कुछ। फिर उसे बड़ा करेगी, पालेगी-पोसेगी, वह सब करेगी।
इस जगत में और चीजें भी जो पैदा होती हैं, वे भी ऐसे ही पैदा होती हैं।
आप चकित होंगे जान कर कि महावीर जरूर धर्म को जन्म देते हैं, जीसस धर्म को जन्म देते हैं, बुद्ध... । लेकिन इस जगत में कोई भी धर्म बिना स्त्रियों के बचता नहीं। स्त्रियां ही उसे बचाती हैं, बड़ा करती हैं और फैलाती हैं। यह आपके ख्याल में नहीं होगा; यह आपके ख्याल में नहीं होगा। जाकर मंदिर में, मस्जिद में, चर्च में झांक कर देखें। वहां कौन है? वहां पुरुष नदारद हैं। और अगर कोई पुरुष पहुंच भी गया है, तो सिर्फ अपनी पत्नी के भय की वजह से वहां हाजिर है। ये सारे मंदिर, सारे चर्च, सारे गिरजे स्त्रियां चला रही हैं।
धर्म को जन्म तो पुरुष दे जाता है, लेकिन उसकी देख-भाल, उसकी सम्हाल, उसको गर्भ में रखना और सम्हालना, और उसको बड़ा करना, स्त्रियां करती हैं। मनसविद कहते हैं कि दुनिया में कोई भी धर्म बच नहीं सकता, जिस धर्म में स्त्रियां दीक्षित न हों। वह धर्म बच नहीं सकता, क्योंकि उस धर्म को गर्भ नहीं मिलेगा।
क्या आपको पता है कि महावीर ने जब लोगों को दीक्षा दी, तो हर एक पुरुष
के मुकाबले चार स्त्रियों ने दीक्षा ली? और महावीर के भिक्षुओं में, संन्यासियों में, साधुओं में, तेरह हजार पुरुष थे, तो चालीस हजार स्त्रियां थीं। जीसस को पुरुषों ने सूली लगाई; लेकिन जिसने सूली से नीचे उतारा था, वह एक वेश्या थी। जब जीसस के सारे शिष्य, पुरुष शिष्य भाग गए थे भीड़ में, तब भी तीन स्त्रियां उनकी लाश के पास खड़ी थीं। अंतिम सांस जीसस ने स्त्रियों के बीच छोड़ी। और जिन्होंने उन्हें सूली से उतारा, वे स्त्रियां थीं। और जब पुरुष भाग गए थे, तब भी स्त्रियां वहां तैयार थीं। खतरा था उनकी भी मौत का।
जन्म तो सब पुरुषों ने दिया; क्योंकि बायोलॉजिकल जो है, वही साइकोलॉजिकल भी है। सब धर्मों को जन्म पुरुषों ने दिया है, लेकिन सब धर्मों को गर्भ स्त्रियों ने दिया है। यह अगर ख्याल में आ जाएगा, तो यह शिकायत आपके मन में नहीं उठेगी। और आज भी अगर जमीन पर धर्म जिंदा हैं, तो वह पुरुषों की वजह से नहीं। जन्म भला वे देते हों, लेकिन उनको जिंदा रखने के लिए स्त्रियों के सिवाय कोई उपाय नहीं है। किसी भी चीज को जन्म पुरुष देने की पहल कर सकता है, लेकिन उसको गर्भ नहीं दे सकता। और जन्म देने ही से किसी चीज को जन्म नहीं मिलता, गर्भ देने से ही वस्तुतः जन्म मिलता है।

क्योंकि हाड़-मांस, खून-मांस-मज्जा, वह स्त्रियां देती हैं। इसलिए ख्याल में नहीं आता। इसलिए ख्याल में नहीं आता। सुरक्षा, विस्तार, संरक्षण, स्त्रैण-चित्त का हिस्सा है। पहल, प्रारंभ, पुरुष-चित्त का हिस्सा है। लेकिन पुरुष पहल करने के बाद ऊब जाता है, दूसरे काम में लग जाता है।
अगर महावीर को फिर से जन्म मिले, तो एक बात पक्की है कि वे जैन धर्म की बात अब नहीं करेंगे। वे किसी दूसरे धर्म को जन्म दे देंगे। पुरुष रोज नए को जन्म देने के लिए उत्सुक होता है। स्त्री पुराने को सम्हालने के लिए आतुर होती है। एक अर्थ में प्रकृति इन दोनों से जीवन को स्थिर करती है। क्योंकि सिर्फ नए को जन्म देना काफी नहीं है, पुराने को सम्हालना भी उतना ही जरूरी है। अन्यथा जन्म देने का कोई अर्थ ही न रह जाएगा।
इसलिए पुरुष अगर ठीक पुरुष-चित्त का हो, तो सदा ही प्रगतिशील होता है। पुरुष अगर ठीक पुरुष-चित्त का हो, तो सदा ही प्रगतिशील होता है। स्त्री अगर ठीक स्त्री-चित्त की हो, तो सदा ही परंपरावादी होती है। परंपरा का इतना ही अर्थ हैः जिसको जन्म दिया जा चुका है, उसको सम्हालना है। और प्रगतिशीलता का इतना ही अर्थ है कि जिसको जन्म नहीं दिया गया है, उसे जन्म देना है। लेकिन जन्म देकर क्या करोगे, अगर कोई सम्हालने वाला उपलब्ध न हो! तो गर्भपात ही होंगे, और कुछ न होगा। एबॉर्शन्स हो जाएंगे। अगर पुरुष के ही हाथ में कोई चीज हो, तो एबॉर्शन ही होगा, और कुछ नहीं हो सकता। उसकी उत्सुकता उतनी ही देर तक है, जब तक उसने जन्म की प्रक्रिया को जारी नहीं कर दिया। प्रक्रिया जारी हो गई, वह दूसरे जन्म की प्रक्रिया पर हट जाता है। लेकिन वहीं से जीवन की असली बात शुरू होती है। वहां से स्त्री उसे सम्हाल लेती है।
पुरुष-चित्त और स्त्री-चित्त दोनों एक ही गाड़ी के दो पहिए हैं। इसलिए स्त्रियों ने कोई धर्म को जन्म नहीं दिया; लेकिन स्त्रियों ने ही सारे धर्मों को बचा कर रखा है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या जितने भी ज्ञानी हैं, उनका चित्त स्त्रैण
हो जाएगा?

हो ही जाएगा। लेकिन स्त्रैण से मतलब नहीं है यह कि वे स्त्रियां हो जाएंगे। स्त्रैण से मतलब यह है कि उनका चित्त एग्रेसिव की जगह रिसेप्टिव हो जाएगा, आक्रामक की जगह ग्राहक हो जाएगा। यह ग्राहकता ही जब होती है पैदा, तभी कोई व्यक्ति परमात्मा के लिए अपने भीतर द्वार खोल पाता है।

उन्होंने पूछा है, इसका अर्थ यह हुआ कि मोहम्मद तो ज्ञान के बाद भी तलवार लेकर लड़ने जाते हैं?

निश्चित ही जाते हैं। लेकिन मोहम्मद की तलवार पर आपको पता है, क्या लिखा है? मोहम्मद की तलवार पर लिखा हैः शांति के अतिरिक्त यह तलवार और कहीं नहीं उठेगी। तलवार पर खुदा है यह। आपको पता है, इसलाम शब्द का अर्थ ही होता है शांति! अगर मोहम्मद को तलवार भी उठानी पड़ती है, तो मोहम्मद के कारण नहीं, आस-पास की परिस्थितियों के कारण। लेकिन मोहम्मद जिन पर तलवार उठाते हैं, उन पर भी क्रोध और आक्रमण और हिंसा नहीं है। उन पर भी दया है। मोहम्मद को बहुत कम समझा जा सका है। इस जगत में जिन लोगों के साथ बहुत अनाचार हुआ है, उनमें एक मोहम्मद हैं। और उनकी तलवार की वजह से बहुत अनाचार हो गया। लेकिन मैं कहना चाहता हूं कि मोहम्मद की तलवार ठीक सर्जिकल है, ठीक सर्जन के हाथ में जैसे तलवार हो, ऐसी है! और कभी ऐसी जरूरत निश्चित हो जाती है कि किसी ऐसे व्यक्ति को भी तलवार उठानी पड़ती है, जिसके हाथ में तलवार की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। मोहम्मद के हाथ में तलवार की कोई कल्पना करने की जरूरत नहीं है। मोहम्मद के पास जो हृदय है, वह अत्यंत कोमल से कोमल हृदय है। लेकिन मोहम्मद के चारों तरफ जो स्थिति है, अगर इस कोमल हृदय को कुछ भी काम करना है, तो इसे हाथ में तलवार लेनी पड़ेगी।
लेकिन इसका दुष्परिणाम होता है। वह मोहम्मद के हाथ में तलवार लेने से नहीं होता, वह पीछे होता है; क्योंकि तब बहुत से ऐसे लोग मोहम्मद के पीछे

खड़े हो जाते हैं, जिनका मजा केवल तलवार हाथ में लेने का है। वे उपद्रव खड़ा करते हैं। उन्होंने मोहम्मद को बदनाम किया। उन्होंने इसलाम को भी विकृत किया।
मोहम्मद तलवार लेते हैं, क्योंकि जरूरत है। कृष्ण युद्ध की सहायता में खड़े हो जाते हैं, युद्ध करवाते हैं; क्योंकि उसकी जरूरत है। असल में, इस जगत में चुनाव जो है, वह एक बात समझ लेंगे, तो ख्याल में आ जाएगा। हम जगत में सब चीजों को दो में तोड़ देते हैंः अंधेरी और सफेद, व्हाइट एंड ब्लैक। जब कि वस्तुतः जगत में कोई चीज व्हाइट और ब्लैक नहीं होती, सभी चीजें ग्रे होती हैं; डिग्रीज होती हैं, डिग्रीज ऑफ ग्रे। थोड़ी ज्यादा सफेद और थोड़ी कम सफेद, थोड़ी ज्यादा काली और थोड़ी ज्यादा काली। जब भी हम कहते हैं कि यह ठीक और यह गलत, तो हम भूल जाते हैं कि हम जिंदगी की बात नहीं कर रहे हैं। मोहम्मद तलवार उठाते हैं इसलिए कि उनका न उठाना और भी बुरा होगा। इसको ठीक से समझ लें। लेसर ईविल यही है कि मोहम्मद तलवार उठा लें। क्योंकि तलवार तो उठेगी ही। और मोहम्मद नहीं उठाएंगे, तो जिसके हाथ में भी तलवार उठेगी, वह ग्रेटर ईविल होगा। मोहम्मद जिस स्थिति में हैं, उसमें उन्हें प्रतीत होता है कि उन्हें ही तलवार उठा लेना उचित होगा।
कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तू लड़! इसलिए नहीं कि कृष्ण की लड़ने में कोई उत्सुकता है। कृष्ण से ज्यादा स्त्रैण-चित्त का आदमी खोजना तो बहुत मुश्किल होगा। इसलिए हमने तो उनका चित्र भी बिल्कुल स्त्रियों जैसा बनाया है। इतना स्त्रैण चित्र हमने किसी का नहीं बनाया। कृष्ण को जितना हमने स्त्री जैसा चित्रित किया है, वैसा हमने बुद्ध-महावीर को भी नहीं किया, लाओत्से को भी नहीं किया। कृष्ण को तो हमने बिल्कुल स्त्रैण बनाया है। सब साज-संवार उनका स्त्रियों जैसा है। कपड़े-लत्ते स्त्रियों जैसे हैं। सारा ढंग उनका स्त्रियों जैसा है। उनका नाच, उनका गीत, सब स्त्रियों जैसा है। यह आदमी, जो इतना स्त्रैण हमने चित्रित किया है, यह अर्जुन को, जो कि बहुत बहादुर पुरुष था, भाग रहा था, उसको लड़वाने के लिए प्रेरणा देने वाला बना। आखिर कृष्ण को इतनी-इतनी-इतनी आग्रह करने की क्या जरूरत है कि अर्जुन लड़े?
जरूरत इसलिए है कि कृष्ण को एक बात साफ हैः अर्जुन नहीं लड़ता है, तो भी
जो बुराई है, वह होकर रहेगी; लेकिन बहुत बुरे हाथों से होकर रहेगी। अर्जुन उन सबसे बेहतर है। और अर्जुन युद्ध से भागना चाहता है, इस वजह से कृष्ण को और भी स्पष्ट हो गया कि यह आदमी बेहतर है और युद्ध इसी के द्वारा करवा लेना ठीक होगा। युद्ध तो होकर रहेगा। युद्धखोर करेंगे। कभी-कभी मैं सोचता हूं कि अगर अर्जुन की जगह भीम के रथ पर कृष्ण बैठे होते, तो शायद गीता पैदा न होती। क्योंकि भीम इतना आतुर होता कि जल्दी बढ़ाओ, आगे ले चलो। हो सकता है, कृष्ण खुद ही कहते कि क्षमा कर, यह युद्ध ठीक नहीं है। यह अर्जुन इसमें कारगर है, अर्जुन भागने की कहने लगा। उसने सिद्ध कर दी एक बात तो कि वह आदमी भला है, एकदम भला है। कृष्ण को पक्का हो गया कि इस भले आदमी के हाथ में तलवार दी जा सकती है।
असल जो सारी-सारी बात है, वह यह है कि तलवार भले आदमी के हाथ में ही दी
जा सकती है। और तलवार अक्सर बुरे आदमी के हाथ में होती है। और भला आदमी तलवार छोड़ देता है और बुरा आदमी तलवार उठा लेता है। इसलिए भला आदमी बुराई को करवाने का कारण बन जाता है। जगत में जब चुनाव करना पड़ता है, तो विकल्प ऐसा नहीं होता कि यह अच्छा है और यह बुरा है। विकल्प ऐसा होता है कि यह कम बुरा है, यह ज्यादा बुरा है। जीवन में सब चुनाव ऐसे ही हैं। यहां ऐसा नहीं है कि यह अमृत है और यह जहर है। यहां ऐसा है कि यह कम जहर है और यह ज्यादा जहर है। कम जहर को चुनना पड़ता है। यही अमृत का चुनाव है।
मोहम्मद और कृष्ण उस कम जहर को चुनते हैं। परिस्थितियां उनकी भिन्न हैं।
थोड़ा सोचें कि कृष्ण मर गए होते पहले ही इस महाभारत के युद्ध के, तो हमारी कल्पना में कभी ख्याल ही न आता कि कृष्ण भी युद्ध करवा सकते हैं। आता? कभी ख्याल न आता। जरा और इस तरह सोचें कि बुद्ध और जीए होते बीस वर्ष और महाभारत जैसी स्थिति आ गई होती, तो हमारी कल्पना में भी नहीं आता कि बुद्ध भी युद्ध के लिए हां कह सकते थे। हमारे देखने के पर्सपेक्टिव सीमित

होते हैं। जो हो गया, वही हम देखते हैं। जो हो सकता था, वह हम नहीं देखते हैं। अगर कृष्ण मर जाते दस साल पहले महाभारत के, तो हमें कभी भी ख्याल न आता कि यह आदमी, जो बांसुरी बजाता था, जो प्रेम के गीत गाता था, जो इतना माधुर्य से भरा था, यह युद्ध के लिए गीता जैसा संदेश दे सकता है!
मेरी दृष्टि में गीता से ज्यादा युद्ध के लिए प्रेरणा देने वाली और कोई धर्म-पुस्तक जगत में नहीं है।
लेकिन इसका कारण यह नहीं है कि ये पुरुष-चित्त हैं। इसका कारण, इसका कारण यह है कि चित्त तो बिल्कुल स्त्रैण हैं, बहुत रिसेप्टिव हैं, बहुत ग्राहक हैं, लेकिन जिस स्थिति में ये खड़े हैं, उस स्थिति में इनका ग्रहणशील चित्त परमात्मा को पूरी तरह ग्रहण करके जो कहता है, उसी को करने में ये संलग्न हो जाते हैं।
यह मोहम्मद की तलवार परमात्मा के लिए उठी तलवार है। एग्रेसिव मोहम्मद बिल्कुल नहीं हैं, आक्रामक बिल्कुल नहीं हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मोहम्मद के पीछे आक्रामक लोग इकट्ठे नहीं हुए। लेकिन पीछे इकट्ठे होने वालों की जिम्मेवारी मोहम्मद पर नहीं जाती, किसी पर भी नहीं जाती। महावीर जितना साहस का आदमी खोजना मुश्किल है। लेकिन कोई सोच भी नहीं सकता था कि महावीर के पीछे कमजोर और कायर इकट्ठे हो जाएंगे। वे इकट्ठे हुए। क्योंकि उनको आड़ मिल गई। जीवन बड़ा अजीब है। महावीर ने अहिंसा की बात की और महावीर ने कहा, अहिंसा को वही उपलब्ध हो सकता है, जिसके चित्त में भय बिल्कुल नहीं रहा। लेकिन भयभीत आदमी ने सोचा कि अहिंसा अच्छा धर्म है, इसमें कोई किसी को मारता-पीटता नहीं। न हम किसी को मारेंगे, न कोई हमें मारेगा। वह जो भयभीत आदमी था, उसको अहिंसा परम धर्म मालूम पड़ा। इसलिए नहीं कि अहिंसा परम धर्म था, बल्कि इसलिए कि उसके भय को लगा कि अगर सारी दुनिया अहिंसा मान ले, तो बड़ी निर्भयता से रहने का मजा आ जाए। तो जितने भयभीत आदमी थे, वे महावीर के पीछे इकट्ठे हो गए।
इसलिए यह आकस्मिक नहीं है कि महावीर के पीछे जो वर्ग इकट्ठा हुआ, वह एकदम इंपोटेंट, एकदम नपुंसक है। उसने जिंदगी में सब तरफ से अपने को सिकोड़ लिया। वह सिर्फ केवल बनिए के धंधे को पकड़ कर जी रहा है पच्चीस सौ साल से। क्या कारण है? उसको कोई धंधा नहीं समझ में आया; क्योंकि सब धंधे में खतरा लगा। सिर्फ एक धंधा उसको लगा कि यह ठीक है। इसमें ज्यादा झंझट नहीं, झगड़ा नहीं। और न कुछ पैदा करता है, न कहीं जाता है। बीच के मध्यस्थ का काम करता है, दलाल का काम कर रहा है। कोई सोच ही नहीं सकता कि महावीर जैसे हिम्मतवर आदमी के पीछे इतने गैर-हिम्मतवर लोग इकट्ठे होंगे, जो कुछ न कर सकें सिवाय दलाली के। दलाली भी कोई धंधा है? दलाली से भी कोई इनर पोटेंशियल, जो भीतर छिपी हुई शक्तियां हैं, वे जग सकती हैं? लेकिन यह सब से ज्यादा सुविधापूर्ण मालूम पड़ा भयभीत आदमी को। अजीब बात है, महावीर के पीछे कायर लोग इकट्ठे हो गए।
मोहम्मद अत्यंत दयालु व्यक्ति हैं। और दया के कारण ही तलवार उठाई। अगर दया थोड़ी भी कम होती, तो यह आदमी तलवार नहीं उठाता। लेकिन उनके पीछे खूंखार और जंगली आदमी इकट्ठे हो गए। क्योंकि तलवार दिखी, उन्होंने कहा, बड़े मजे की बात है, धर्म और तलवार दोनों का जोड़ हो गया, सोने में सुगंध आ गई। अब हमसे कोई यह भी नहीं कह सकता कि तुम मार रहे हो। अब हम धर्म के नाम पर मारेंगे और काटेंगे। तो मध्य एशिया की जितनी बर्बर कौमें थीं, तातार थे, हूण थे, तुर्क थे, वे सब इसलाम में सम्मिलित हो गए। क्योंकि तलवार को पहली दफा अपराधी के जगह से हटा कर मंदिर का रुतबा मिला। वे सब पीछे खड़े हो गए तलवार लेकर। उन्होंने सारी दुनिया रौंद डाली। आज जो दुनिया में इसलाम का इतना प्रभाव है, यह मोहम्मद की वजह से नहीं है; यह जो इतनी संख्या है, मोहम्मद की वजह से नहीं है। यह इन दुष्टों की वजह से है, जो पीछे इकट्ठे हो गए। इन्होंने रौंद डाली सारी दुनिया। लेकिन इसलाम मार डाला इन्होंने। शांति का धर्म सबसे ज्यादा अशांति का धर्म बन गया।
लेकिन मोहम्मद जिम्मेवार नहीं हैं। मोहम्मद क्या कर सकते हैं? महावीर क्या कर सकते हैं? महावीर सोच ही नहीं सकते कि मेरे पीछे वणिकों की एक कतार खड़ी हो जाएगी। कल्पना भी नहीं कर सकते। लेकिन जीवन के तर्क बड़े अजीब हैं, बहुत अजीब हैं। कुछ कहा नहीं जा सकता। और एक तर्क, जो कि लाओत्से

को समझने में भी उपयोगी होगा, वह यह है कि अक्सर आप विरोधी आदमी से प्रभावित होते हैं, दि अपोजिट। जैसा सेक्स में होता है, वैसा ही सब चीजों में होता है। आप अपने से विपरीत आदमी से प्रभावित होते हैं। यह बड़ी खतरनाक बात है; लेकिन यह होता है। महावीर बहादुर से बहादुर हैं; इसीलिए उनको महावीर नाम मिला। यह उनका नाम तो नहीं है। नाम तो उनका वर्द्धमान है। महावीर का नाम दिया, क्योंकि उनकी वीरता का कोई मुकाबला ही नहीं है। सच में नहीं है। ये महावीर के पीछे जो लोग प्रभावित हुए, वे कायर होंगे, यह सोचा भी नहीं जा सकता।
लेकिन हमेशा ऐसा होता है। वीरता से कायर ही प्रभावित होते हैं, वीर प्रभावित नहीं होते। वीर क्या प्रभावित होंगे! कि होओगे वीर, तो ठीक है, अपने घर के होओगे। लेकिन कायर एकदम प्रभावित हो जाता है कि यह रहा महावीर! इसके चरणों में सिर रखें! यह है आदमी असल में! क्यों? क्योंकि यह कायर भी सोचता रहा है, कभी हम भी ऐसे हो जाएं। हो तो नहीं सकते। यह आइडियल है, यह आदर्श है। लेकिन इसके चरणों में सिर तो रख सकते हैं। इसका यशगान तो कर सकते हैं! इसकी जय-जयकार तो बोल सकते हैं। यह उनका आदर्श बन जाता है; क्योंकि भीतर इससे विपरीत उनके आदमी छिपा है। वे इकट्ठे हो जाते हैं। वे अड़चन डाल देते हैं।
सदा ऐसा होता है कि हम अपने से विपरीत से आकर्षित हो जाते हैं। और तब बड़ी कठिनाई होती है। हम जिस वजह से आकर्षित होते हैं, हम उससे उलटे होते हैं। और फिर ये आकर्षित हुए लोग ही पीछे संप्रदाय निर्मित करेंगे, संस्था चलाएंगे, संगठन बनाएंगे। संप्रदाय होगा, वह इनके हाथ में होगा। फिर ये सारी व्याख्या बदलेंगे, फिर ये रि-इंटरप्रीट करेंगे, नई व्याख्याएं करेंगे। और सारी चीज और ही हो जाएगी। सारी चीज और ही हो जाएगी।
अगर इतिहास का यह ढंग हमारे ख्याल में आ जाए, तो शायद भविष्य में हम आदमी को सचेत कर सकें कि तुम जरा सोच-समझ कर... । अभी मनसविद कहते हैं कि जब भी कोई पुरुष किसी स्त्री से प्रभावित होता है, तो वह उन गुणों से प्रभावित होता है, जो उसमें नहीं हैं। स्त्री उन गुणों से प्रभावित होती है, जो उसमें नहीं हैं। जो हममें नहीं है, उससे हम प्रभावित होते हैं। जो हममें है, उससे हम कभी प्रभावित नहीं होते। क्योंकि वह तो हममें है ही। उससे प्रभावित होने का कोई कारण नहीं है। चूंकि विपरीत गुणों से लोग प्रभावित होते हैं, और विपरीत जितने गुण होते हैं, उतना ज्यादा रोमांच, उतना ज्यादा रोमांस, उतना प्रेम पैदा होता है। लेकिन फिर विवाह में वे ही विपरीत गुण कलह का कारण भी बनते हैं। अब यह मुश्किल है।
इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जितने बड़े प्रेम से विवाह होगा, उतने
ही खतरे में ले जा सकता है। क्योंकि प्रेम का मतलब यह होता है कि बड़ा ही विपरीत आकर्षण था। जो बहुत कठोर आदमी है, वह नाजुक से प्रभावित होगा। लेकिन जब दोनों साथ रहेंगे, तो नाजुक और कठोर में कोई तालमेल पड़ेगा नहीं। झंझट रोज आएगी। अगर कोई बहुत इंटलेक्चुअल, बहुत बुद्धिमान आदमी है, तो वह बुद्धिमान स्त्री से प्रभावित नहीं होगा, कभी नहीं होगा। वह एक ऐसी स्त्री खोजेगा, जिसमें बुद्धि नाम मात्र को न हो। वह उससे प्रभावित होगा। लेकिन फिर अड़चन आएगी। क्योंकि जब दोनों साथ रहेंगे, तो वह पाएगा, कहां की जड़बुद्धि से पाला पड़ गया।
अब इसमें किसी का कसूर नहीं है। यह सिर्फ जीवन का विपरीत का तर्क दिक्कत डालता है। विपरीत से हम प्रभावित होते हैं, लेकिन विपरीत के साथ रह नहीं सकते। इसलिए हमारी आखिरी दिक्कत यह होती है कि जिससे हम प्रभावित होते हैं, उसके साथ रह नहीं सकते; और जिसके साथ हम रह सकते हैं, उससे हम कभी प्रभावित नहीं होते।
इसलिए पुराने लोग ज्यादा होशियार थे, या कहें, चालाक थे। तो वे कहते थे, विवाह किसी और से करना और प्रेम किसी और से करना। ये दोनों काम कभी एक साथ मत करना। विवाह उससे करना, जिसके साथ रह सको। और प्रेम उससे करना, जिससे प्रभावित हो। और इनको कभी घोल-मेल मत करना, इनको कभी एक साथ मत लाना। अभी अमरीका के जो श्रेष्ठतम चिंतनशील लोग हैं, वे कहते हैं कि अमरीका
को अगर बचाना है, तो हमें यह पुरानी चालाकी वापस लौटानी पड़ेगी। क्योंकि अमरीका ने एक गलती कर ली है--गलती अब लगती है--कि वे कहते हैं कि जिससे

प्रेम हो, उससे ही विवाह करना। वह है तो बात बहुत अदभुत, लेकिन वह घट नहीं पाती। क्योंकि प्रेम उससे हो जाता है, जो विपरीत है। फिर उसके साथ रहने में मुसीबत खड़ी हो जाती है। जिन-जिन चीजों ने प्रभावित किया था, वे ही कलह का कारण बन जाएंगी। क्योंकि उनसे आपका तालमेल तो बैठ नहीं सकता।
ठीक जैसा पति-पत्नी के बीच घटता है, वैसा ही गुरु-शिष्य के बीच घटता है। यह गुरु-शिष्य का भी बड़ा रोमांस है! विपरीत से प्रभावित होकर लोग चले आते हैं; फिर साथ रहना भी मुश्किल हो जाता है। इसलिए जिंदा गुरु के साथ रहना बहुत कठिन पड़ता है; मरे गुरु के साथ दिक्कत नहीं आती। क्योंकि दूसरा मौजूद ही नहीं होता; आपकी जो मर्जी हो, माने चले जाओ।
अब जीसस ने तो कहा है कि जो तुम्हारे गाल पर चांटा मारे, दूसरा गाल उसके सामने कर देना। और ईसाइयत ने इतनी हत्याएं की हैं, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। यह क्या बात है? यह जीसस जैसे आदमी के पास ये लोग कैसे इकट्ठे हो गए? ये प्रभावित हुए, यह दुष्ट वर्ग प्रभावित हुआ एकदम। इसने कहा कि बात तो यही सच है। हम नहीं कर पाते, कोई हर्ज नहीं। लेकिन कम से कम हम जय-जय जीसस की तो कर ही सकते हैं, जयकार तो कर ही सकते हैं। वह इकट्ठा हो गया। उसने लोगों की गर्दनें काट दीं, यह शिक्षा समझाने के लिए कि जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे, दूसरा उसके सामने कर देना। उसने लाखों लोगों की गर्दनें काट दीं। क्योंकि यह सिद्धांत समझाना बिल्कुल जरूरी है, इस सिद्धांत के बिना दुनिया का हित नहीं होगा।
ऐसा विपरीत हो जाता है। इसलिए मोहम्मद आक्रामक नहीं हैं, न कृष्ण आक्रामक हैं। और मोहम्मद या कृष्ण के पास जैसे ही अनुभूति का सागर खुलता है, वैसे ही स्त्रैण-चित्त के द्वार खुल जाते हैं। स्त्रैण-चित्त से अर्थ केवल इतना ही है कि उस क्षण में आदमी जीवन के प्रति आक्रामक न होकर, जीवन की धाराओं के प्रति ग्राहक हो जाता है। वह एक गर्भ बन जाता है और जीवन को अपने भीतर समा लेने को तैयार हो जाता है। वह स्वीकार करने लगता है, अस्वीकार करना बंद कर देता है। उसकी स्थिति टोटल एक्सेप्टबिलिटी की, तथाता की हो जाती है। वह राजी हो जाता है। यह राजीपन, परिपूर्ण राजीपन ही स्त्रैण-चित्त का लक्षण है।

एक आखिरी सवाल। आखिरी सवाल एक छोटा सा, एक मित्र ने पूछा है कि क्या निरहंकारिता की क्षमता साधारण आदमी को भी मिल सकती है?

उनके प्रश्न से ऐसा लगता है कि बेचारे साधारण आदमी को कैसे मिलेगी? जब
कि सच्चाई यह है कि असाधारण को मिलनी बहुत कठिन है। क्योंकि असाधारण का मतलब ही अहंकारी होता है। साधारण को ही मिल सकती है। लेकिन साधारण साधारण को नहीं; एक्स्ट्राआर्डिनरिली आर्डिनरी, असाधारण रूप से जो साधारण होता है।
साधारण साधारण मैं किसको कहता हूं? साधारण साधारण उसको कहता हूं, जिसको सब तो साधारण कहते हैं, लेकिन वह खुद साधारण नहीं मानता। असाधारण रूप से साधारण मैं उसको कहता हूं, जिसको दुनिया चाहे असाधारण कहती हो, लेकिन वह अपने को साधारण मानता है।
मैं दस-बारह वर्ष पूरे मुल्क में घूमा। लाखों लोग मुझे मिले। सैकड़ों लोगों ने मुझसे आकर कहा कि आप जो बातें कहते हैं, वह साधारण आदमी की समझ में कैसे आएंगी?
मैंने उनसे पूछा, आपकी समझ में आती हैं?
उन्होंने कहा, मेरी तो समझ में आती हैं; लेकिन साधारण आदमी की समझ में कैसे आएंगी?
मैंने कहा, मुझे घूमते बारह साल हो गए, लाखों लोग मैंने देखे, सैकड़ों लोगों ने यह सवाल मुझसे किया, अब तक मुझे साधारण आदमी नहीं मिला, जिसने कहा हो कि मैं साधारण आदमी हूं, मेरी समझ में यह कैसे आएगा। तो मैंने उनसे कहा कि वह साधारण आदमी कहां है? मुझे उससे मिला दो, एक दफा उसके दर्शन करने जैसे हैं।
कोई आदमी अपने को साधारण नहीं मानता। सभी आदमी अपने को असाधारण मानते हैं। यही अहंकार है। और आदमी अपने को साधारण जान ले और मान ले, तो अहंकार

विदा हो गया। और सभी आदमी साधारण हैं। सभी आदमी साधारण हैं। असाधारण कोई भी नहीं है। सिर्फ एक ही आदमी को असाधारण हम कह सकते हैं, जो इस साधारणता को जान ले; बस। और किसी को असाधारण नहीं कह सकते।
मन हमारा करता नहीं यह मानने को कि मैं और साधारण! कितने-कितने उपाय
से हम समझाते हैं कि मेरा जैसा आदमी कभी नहीं हुआ, कभी नहीं होगा। हालांकि कभी इस पर सोचते नहीं कि ऐसा कहने का क्या कारण है? क्या ऐसी विशेषता है? क्या ऐसी खूबी है? कुछ भी ऐसी खूबी नहीं, कुछ भी ऐसी विशेषता नहीं। लेकिन मन यह मानने को नहीं करता कि मैं साधारण हूं। क्योंकि जैसे ही हम यह मानें कि मैं साधारण हूं, वैसे ही ऊपर चढ़ने की यात्रा बंद होती है।
असल में, असाधारण मानने का कारण है। जब मैं मानता हूं कि मैं असाधारण हूं, तो मैं जहां भी हूं, वह जगह मेरे योग्य नहीं रहती। मेरे योग्य जगह तो ऊपर है, जहां मैं नहीं हूं। दुनिया को पता नहीं है और दुनिया बाधाएं डाल रही है। अन्यथा मैं ठीक जगह पर अपनी पहुंच जाऊं। पहुंच कर मैं रहूंगा। ठीक जगह मेरी सदा मुझ से ऊपर है। जहां मैं हूं, वह मेरे योग्य जगह नहीं है। इसलिए मैं अपने को असाधारण मानता हूं कि मैं अपनी ठीक जगह को पा लूं। वह ठीक जगह मुझे कभी नहीं मिलेगी, क्योंकि जहां मैं पहुंच जाऊंगा, वह जगह साधारण हो जाएगी; और मेरी असाधारण जगह और ऊपर उठ जाएगी। अहंकार अगर चढ़ता है ऊपर, तो तभी चढ़ पाता है, जब वह मानता है कि ऊपर ही मेरी जगह है, नीचे मेरी जगह नहीं है। यह अहंकार की दौड़ की कीमिया है, केमिस्ट्री है।
लाओत्से कहता है कि अगर तुम जान लो कि तुम साधारण हो, नोबडी हो, ना-कुछ हो, तो फिर ऊपर न चढ़ सकोगे। साधारण का ख्याल आते ही तुम्हें लगेगा कि शायद जिस जगह मैं खड़ा हूं, यह भी तो अनधिकार चेष्टा नहीं है। शायद यह भी मेरी योग्यता न हो। तुम और पीछे हट जाओगे। तुम एक दिन वहां हट जाओगे, जहां और आगे हटने को कोई जगह नहीं बचती। तुम एक दिन वहां हट जाओगे, जहां हटने को कोई भी राजी नहीं होता। तुम एक दिन वहां हट जाओगे, जहां कोई प्रतिस्पर्धा नहीं करता कि यहां से हटो। लाओत्से कहता है, उसी दिन तुम असाधारण जीवन को उपलब्ध हो जाओगे। क्योंकि इतना जो विनम्र हो गया, अगर उसको भी परमात्मा नहीं मिलता, तो फिर परमात्मा की सारी बातचीत बकवास है। इतना जो शून्य हो गया, अगर उसको भी पूर्ण का साक्षात्कार नहीं होता, तो फिर पूर्ण का साक्षात्कार होता ही नहीं होगा।
यह जो साधारण हो जाने की अपनी तरफ से चेष्टा है--समझ, साधना, जो भी हम कहें--ऐसा मत सोचें कि साधारण आदमी यह कैसे करेगा? प्रत्येक आदमी साधारण है और प्रत्येक यह कर सकता है। लेकिन प्रत्येक को वहम है कि वह असाधारण है। उस वहम को तोड़ना जरूरी है।
लाओत्से यह नहीं कहता कि आप तोड़िए ही। वह यह कहता है कि अगर नहीं तोड़िएगा, तो दुख पाइएगा। और दुख आप पाना नहीं चाहते। लेकिन जिस चीज से दुख पाते हैं, उसको सम्हाल कर चलते हैं। करीब-करीब ऐसा मामला है कि हम अपनी बीमारियों को सम्हाल कर चलते हैं, कहीं बीमारी छूट न जाए। और दुख पाते हैं। और शोरगुल मचाते रहते हैं कि बहुत दुख है, बहुत दुख है। लेकिन जिस चीज से दुख मिल रहा है, उसे हम छोड़ना नहीं चाहते। अहंकार की गांठ हमारे सब दुखों की जड़ है। और अपने को साधारण जान लेना सब दुखों की औषधि है।
चौबीस घंटे के लिए कभी प्रयोग करके देखें--छोड़ें, ज्यादा की फिक्र नहीं करें--चौबीस घंटे के लिए साधारण हो जाएं। चौबीस घंटे एक ही स्मरण रख लें एक बार चौबीस घंटे कि मैं साधारण आदमी हूं, ना-कुछ। और चौबीस घंटे के बाद आप फिर कभी असाधारण न हो सकेंगे, न होना चाहेंगे। क्योंकि साधारण होने में आपको ऐसे आनंद की झलक मिल जाएगी, जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। लेकिन वह झलक मिलती नहीं, क्योंकि ऐसे अकड़े हुए हैं असाधारण होने में
कि वह झलक मिले कैसे? द्वार-दरवाजे बंद करके बैठे हैं असाधारण होने में। अपने सिंहासन से नीचे उतरें। स्वर्ण-सिंहासनों पर, अहंकार के, जीवन का रहस्य नहीं है। विनम्रता के साधारण धूल-धूसरित मार्गों पर भी बैठ जाने से जो मिल जाएगा, वह भी अहंकार के स्वर्ण-मंडित शिखरों पर बैठने से नहीं मिलता है।
इतना ही। कोई जाएगा नहीं। आज आखिरी दिन है, तो दस मिनट पूरे कीर्तन में डूब कर जाएं। शायद कीर्तन आपको साधारण बना दे। लेकिन उसमें भी आप अकड़े

बैठे रहते हैं कि कोई देख न ले कि इतना असाधारण आदमी और ताली बजा रहा है! जिनको नाचना हो, वे बीच में खड़े हो जाएं। बीच में भी नाचने का ख्याल आ जाए, बाहर आ जाएं। बिल्कुल साधारण हैं। पंद्रह मिनट के लिए तो कम से कम साधारण हो जाएं। और देखें कि साधारण कोई भी हो सकता है।